246

रूपेश

असली प्राचीन
रावण संहिता

लंकाधिपति रावण के रहस्य-चमत्कार भरे जीवनवृत्त के साथ ही
शिवोपासना व विभिन्न तंत्र साधनाओं की जानकारी



रावणसंहिता

[रावण जीवन चरित, रावण का तंत्र ज्ञान, आयुर्वेद ज्ञान, ज्योतिष ज्ञान एवं उनकी शिवभक्ति आदि विषयों से सम्बन्धित अनुपम एवं संग्रहणीय ग्रन्थ]

लेखक
आचार्य पं० शिवकान्त झा
ज्यौतिषरत्न, वेदविशारद

प्रकाशक—
श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार
कचौड़ीगली, वाराणसी २२१००१

प्रकाशक—
श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार
कचौड़ीगली, वाराणसी
दूरभाष : २३९२५४३
२३९२४७१

लेखक—
आचार्य पं० शिवकान्त झा

मुद्रक—
भारत प्रेस, वाराणसी

दो शब्द

'जिज्ञासा, प्राणी के विज्ञानात्मक-उत्कर्ष की आधारशिला है'', इस तथ्य को प्राय: सभी मानते व जानते हैं। यह भी जानते हैं कि निसर्गत: जिज्ञासु प्राणी अपनी चारों ओर घटित होने वाली घटनाओं के प्रति भी सर्वदा संवेदनशील रहने के आदी रहे हैं। इस आधार पर यह सोचना अनुचित नहीं ही है कि आदि काल से ही मनुष्य खगोलीय घटनाओं के प्रति भी स्वभावत: आकृष्ट होता रहा है। चूँकि आज भी जब लोग रात्रि के समय आकाश की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो उन्हें भव्य, चित्ताकर्षक एवं चमत्कारिक दृश्य स्वत: अपनी ओर आकृष्ट कर, कुछ विशेष सोचने को बाध्य कर देती हैं। निश्चय ही वे आकाशीय चमत्कारिक दृश्य लोगों को आह्लादित एवं आनन्दित करने वाली तो होती ही हैं; आश्चर्योत्पादक व डरावने अनुभव भी प्रदान करती हैं।

जिस प्रकार आकाश में चमकते अनन्त ताराओं को देखकर कभी तो आनन्दानुभूति होती है, कभी ग्रहण, उल्कापात, धूमकेतुओं आदि को देख लोग विस्मित व भयभीत भी हो जाते हैं। उसी प्रकार यह सोचना कथमपि अनुचित नहीं है कि सृष्टि के प्रारम्भिक दिनों में लोग उपरोक्त प्रकार की चमत्कारिक घटनाओं या दृश्यों से निश्चय ही अत्यधिक विस्मित व भयभीत ही होते रहे होंगे, जिन्हें कभी लोगों द्वारा परमेश्वर का कोप भी समझा गया होगा। फिर श्नै:-श्नै: उनके रहस्यों को उद्धाटित करने का सार्थक प्रयत्न भी किया गया होगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ रावणसंहिता के प्रवर्त्तक लंकेश्वर दशानन रावण के प्रसङ्ग में देवताओं से भगवान् श्री विष्णु का यह कहना कि वे अभी उसे युद्ध मे परास्त नहीं कर सकते, रावण को प्राप्त दिव्य शक्तियों की ओर ही संकेत करता है। यह अजेयता प्रजापति ब्रह्मा से प्राप्त वर के कारण ही थी। इसे प्राप्त करने के लिए रावण ने घोर तपस्या की थी। परन्तु प्राकृतिक कुछ विलक्षणता का परिणाम ही सही मनुष्यों और वानरों की उपेक्षा का फल पराजय के रूप में उसके सामने आया। लेकिन यह क्या कम महत्त्वपूर्ण है कि लंकेश को पराजित करने के लिए निराकार को साकार रूप लेना पड़ा। उनके युद्ध की चर्चा करते समय किसी ने सच ही कहा है—वैसा कोई युद्ध न कभी हुआ और न कभी होगा।

रावण ने अपने अभियान को पूरा करने के लिए शस्त्र और शास्त्र दोनों साधनों को अपनाया। वह तंत्रशास्त्र का परम ज्ञाता था, उसने औषध ज्ञान को स्वयं जांचा-परखा और फिर प्रयोग किया था, वह एक अच्छा दैवज्ञ भी था। इस ग्रन्थ

में उसके इन्हीं विविध रूपों पर प्राप्त सामग्रियों की सहायता से प्रकाश डाला गया है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि 'रावण संहिता' नाम का कोई भी ग्रंथ मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। किसी अंश में सही हो सकता है, परन्तु सम्पूर्णता से अलभ्य भी नहीं कहा जा सकता है।

पौराणिक और ज्योतिषीय गणना के आधार पर रावण की मृत्यु को लगभग नौ लाख वर्ष हो चुके हैं और इतने लंबे समय तक किसी ग्रंथ का मूल रूप में रह पाना संभव नहीं है। अर्थात् समय-समय पर इसमें काफी कुछ जुड़ा ही है। फिर भी प्रस्तुत ग्रंथ में उसकी उपलब्ध मौलिकता को बनाए रखते हुए ही कुछ ऐसा प्रयास किया गया है कि इसमें कुछ इस प्रकार की जानकारी और उपयोगी सामग्री जोड़ी जाए जिससे इस ग्रन्थ की मूल विषय सामग्री की जटिलता को कम कर सके तथा उसे अधिक महत्त्वशाली और उपयोगी भी बनाने में सहायक हो सके।

विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि यह 'रावणसंहिता' ग्रंथ प्राचीन साहित्य में रूचि रखने वाले पाठकों को महाबली व शास्त्र मर्मज्ञ रावण के जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं की जानकारी देने में सक्षम हो सकेगा।

अन्त में यह कि ग्रन्थ प्रलेखनादि व प्रूफादिशोधन के समय जिन महानुभावों का मुझे सहयोग प्राप्त हुआ और जिनके ग्रन्थ या पाण्डुलिपियों से सहयोग मिला, उन लोगों का हृदय से आभार व्यक्त करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। विशेषकर प्रकाशक महोदय की मैं मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए उनकी चिरायु की कामना करता हूँ, जिनके सत्प्रयास से ही यह ग्रन्थ आप विज्ञजनों की सेवा में प्रस्तुत हो सका है।

वैसे मैंने ग्रन्थ के प्रूफादि शोधन करने में निश्चय ही प्रमाद रहित प्रयास किया है। फिर भी यदि कहीं अशुद्धि रह गई हो, तो गलती करना मानवस्वभाव मान कर विद्वान् पाठक उसे सुधार कर पढ़ेंगे और सूचित भी करेंगे, तो बड़ी कृपा होगी।

अक्षय सप्तमी २०६६ **शिवकान्त झा**
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

❑❑❑

॥श्रीः॥

रावणसंहिता

प्रथम परिच्छेद

रावण जीवन वृत्तान्त

भगवान् विष्णु से खिन्न शुक्राचार्य द्वारा मेघनाद को शिवयज्ञ के लिये उत्साहित करते हुए कल्पान्तर की घटित रावण की उत्पत्ति, उसकी तपश्चर्या आदि के साथ राम-रावण युद्ध आदि घटनाओं की कथा जैसा कहा गया है, वैसी ही कथा के आधार पर यहाँ रावण के जीवन वृत्तान्त को प्रस्तुत किया जा रहा है—

राक्षसों का वध कर जब श्रीराम ने राज्य ग्रहण किया, तब समस्त मुनिगण राम-लक्ष्मण के बल-पराक्रम की प्रशंसा करने को अयोध्या में पधारे। पूर्व दिशा के निवासी कौशिक, यकृत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथि के पुत्र कण्ड्व, दक्षिण के निवासी स्वस्त्यात्रेय, नमुचि, अगस्त्य, सुमुख और विमुख, पश्चिम दिशा के आश्रयी नृषंगु, कवषी, धौम्य और सशिष्य कौषेय तथा उत्तर दिशा के आश्रयी—वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि आये।

समस्त ऋषि रघुनाथजी के राजभवन पर पहुँच कर ड्योढ़ी पर खड़े हो गये। वे सभी अग्नि के समान तेजस्वी थे। द्वारपालों ने इन्हें सादर बैठाया। तब वेद-वेदाङ्ग के ज्ञाता, अनेक शास्त्रों में निष्णात, मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अगस्त्यजी द्वारपालों से बोले—'दशरथनन्दन श्रीराम से जाकर हम मुनियों के आगमन की सूचना दो। द्वारपाल तत्क्षण ही रामचन्द्र के पास गया और ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्य आदि के पधारने का समाचार सुनाया।

महर्षियों का आगमन सुनकर श्रीराम ने कहा—सबकों यहाँ यथा सुख से ले आओ। फिर तो वे सब ऋषिश्रेष्ठ राम के पास पहुँचे। श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़ उठ खड़े हुए। सबका अर्घ्य, पाद्यार्घ्य से पूजन किया और बड़े आदर से सबको एक-एक गौ दान दिया।

तत्पश्चात् सबको प्रणाम करके शुद्ध भाव से उन्हें सुवर्ण के आसन पर बैठाया, जिस पर कुशासन और मृगचर्म बिछे थे। राम ने उन सबकी कुशल पछी। तब उन वेदवेत्ता महर्षियों ने कहा—हे रघुनन्दन! हे महाबाहो! आपके कुशल से हम सभी कुशलपूर्वक हैं।

आपने सब लोकों को रुलाने वाले रावण का वध किया, यह सौभाग्य की बात है। हे राम! आपके लिए पुत्र, पौत्रवान् रावण का नाश करना कोई बड़ी बात न थी। नि:सन्देह आप त्रैलोक्य विजयी हैं। राक्षसेन्द्र रावण का वध कर आपको सीता सहित विजयी देखकर हम अपना सौभाग्य समझते हैं।

धर्मात्मन् लक्ष्मण आपके ऐसे हितकारी भ्राता हैं कि, माताओं और बन्धुओं सहित हम आपको सकुशल देख रहे हैं। यह तो दैवात् ही था कि आपने प्रहस्त, विकट, विरूपाक्ष, महोदर और अकम्पन आदि राक्षसों को मारा। अन्यथा ये सब तो बड़े ही दुर्धर्ष थे। कुम्भकर्ण तो ऐसा था कि जिसके समान विशालकाय भूमण्डल में कोई था ही नहीं।

दैवात् ही आपने उसे भी मार डाला। त्रिशिरा, देवान्तक, नरान्तक भी ऐसे ही थे, पर उन्हें भी आपने मार डाला। राक्षसेन्द्र रावण तो अवश्य ही था। उससे द्वन्द्व युद्ध कर आपने विजय प्राप्त की—यह भी बड़ा आनन्द हुआ। परन्तु हे वीर! रावण का पराभव उतना अशक्य नहीं था जितना इन्द्रजीत का। युद्ध में उसे मार डालना—यह तो बड़े हर्ष की बात है, क्योंकि वह मायायुद्ध करता था। उसका वध सुनकर हम लोग बड़े आश्चर्य में पड़ गये।

परन्तु हमें तो आपके जय की इच्छा थी। उससे भी आपने विजय-लाभ किया, यह हमारा सौभाग्य है। क्योंकि उसे कोई मार नहीं सकता था। आपने हमें अभय दान दिया। भवितात्मा मुनियों के इन वचनों को सुनकर राम ने भी आश्चर्यचकित होकर हाथ जोड़ लिया और पूछा कि, हे भगवन् ! महाबली रावण और कुम्भकर्ण को छोड़कर आप इन्द्रजीत की प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?

यह रावण से बढ़ कर क्यों हुआ? अतिकाय त्रिशिरा आदि भी तो ऐसे ही दुर्धर्ष थे? इन्द्रजीत का प्रभाव, बल और पराक्रम कैसा था? उसने इन्द्र को कैसे जीता था और वह कैसे प्राप्त हुआ था? पुत्र से बलि पिता क्यों नहीं था? युद्ध में वह अपने पिता से अधिक पराक्रमी कैसे हुआ? मेरा यह निवेदन है कि मुझसे यह कथन कीजिये।

विश्रवा की उत्पत्ति प्रसङ्ग वर्णन

महात्मा राघव के इस वचन को सुनकर महातेजस्वी कुम्भयोनि अगस्त्यजी ने कहा—हे राम! सुनिये, इन्द्रजीत महत् तेजस्वी और बलवान् था जिससे उसका कोई शत्रु उसे मार नहीं सकता था, वह अपने शत्रु का वध करके ही रहता था। हे राघव! इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें पहले रावण का जन्म और उसकी वर-प्राप्ति का वर्णन करता हूँ।

पूर्व सत्युग में ब्रह्मा के एक पुत्र पुलस्त्य नामक थे। जिनके तप का प्रभाव ब्रह्माजी के ही समान था। तब एक तो उनका ऐसा तप दूसरे विमल गुणवान् भी थे। इससे ये सभी के मित्र बन गये। तप करने की इच्छा से वे मुनिश्रेष्ठ मेरुपर्वत के समीप तृणबिन्दु के आश्रम में जाकर तप करने लगे। तब उनको तप:स्वाध्याय में रत देख, वेदमंत्र श्रवण और विहार की इच्छा से बहुत-सी कन्याएँ वहाँ जाने लगीं।

उनमें अप्सराएँ भी रहती और ये सब ऋषियों, नागों और राजर्षियों की कन्याएँ थीं। इनके कारण तपस्वी पुलस्त्य के तप में विघ्न पड़ने लगा। इससे एक दिन पुलस्त्य जी ने कह दिया कि अब कल से जो कन्या यहाँ मुझे दिखाई पड़ेगी वह गर्भवती हो जायेगी। इस ब्रह्मशाप के भय से दूसरे दिन कन्याएँ वहाँ नहीं गयीं। परन्तु उनमें राजर्षि तृणबिन्दु की कन्या ने नहीं सुना था, इसलिए वह दूसरे दिन पुलस्त्यजी के आश्रम में चली गई और स्वच्छन्दता से विचरने लगी।

परन्तु उसने अन्य कन्याओं को वहाँ नहीं देखा। इससे उसे कुछ आश्चर्य हुआ। फिर भी वह राजर्षिकन्या वेद ध्वनि सुनने की इच्छा से मुनि का दर्शन करने चली गयी। किन्तु जैसे ही उन तेजस्वी मुनि को देखा, वैसे ही उसका शरीर पीला पड़ गया और वह गर्भवती हो गई। उसे अपना शरीर देखकर बड़ी व्यग्रता हुई और वह भागकर अपने पिता के आश्रम में चली आयी। यहाँ पिता ने देखते ही उससे जो समाचार पूछा तो उसने कहा—और तो कुछ नहीं।

आज पुलस्त्य मुनि के आश्रम में जाते ही मेरे अंगों में यह परिवर्तन अनायास हो आया है। मुनि ने नेत्र बन्द कर देखा तो उन्हें सबकुछ ज्ञात हो गया। वे उस कन्या को साथ ले पुलस्त्य मुनि के आश्रम पर आये और उनसे प्रार्थनापूर्वक उसे अपनी सेवकिनी बना लेने की प्रार्थना की। ब्राह्मण श्रेष्ठ पुलस्त्य जी धार्मिक राजर्षि तृणबिन्दु के उन वचनों को सुन उस कन्या को 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर अंगीकार किया।

कन्या को पुलस्त्य जी को सौंप राजा तृणबिन्दु अपने आश्रम में लौट आये। वह राजतनया भी अपने गुणों से पति को सन्तुष्ट कर वहाँ रहने लगी। तब एक दिन उसके शील-स्वभाव से सन्तुष्ट हो मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी उससे बोले कि 'हे सुश्रोणि! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिए हे देवि! आज मैं अपने ही तुल्य एक ऐसा पुत्र देता हूँ कि जो उत्तम वंशों का वर्द्धक होगा और पौलस्त्य नाम से प्रसिद्ध होगा।

परन्तु तुमने मेरी ध्वनि सुनकर गर्भ धारण किया है जिससे उसका नाम विश्रवा होगा। ऐसा वर पाकर वह देवी प्रसन्न हुई। फिर तो कुछ ही समय पश्चात् त्रिलोक विख्यात यशोधर्म समन्वित विश्रवा नामक पुत्र को प्रसव किया। यह विश्रवा भी वेदज्ञ मुनि व्रतचारी तथा अपने पिता के समान तपस्वी हुए।

वैश्रवण कुबेर की कथा

अल्पकाल में ही पुलस्त्य-पुत्र मुनिश्रेष्ठ विश्रवा अपने पिता के ही समान तप करने लगे। वे सत्यवादी, शीलवान्, जितेन्द्रिय, स्वाध्याय निरत, पवित्र, भोगों में अनासक्त और सर्वदा धर्म तत्पर रहा करते थे। जब विश्रवा के आचरण को देखकर महामुनि भरद्वाज ने अपनी देवाङ्गना तुल्य सुन्दरी कन्या का उनसे विवाह कर दिया।

फिर सन्तानेच्छुक उस कन्या से धर्मात्मामुनि विश्रवा ने एक ऐसा पुत्र उत्पन्न किया जो ब्राह्मणोचित समस्त गुणो से युक्त परम अद्भुत बलवान् था। उसके जन्म से पितामह पुलस्त्यजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने पौत्र में कल्याणकारिणी बुद्धि देखकर कहा कि यह तो धनाध्यक्ष होगा। फिर तो उन्होंने ही देवर्षियों सहित उसका नामकरण किया और कहा कि 'यह बालक विश्रवा से उत्पन्न हुआ है और वैसा ही है भी।

अत: इसका नाम वैश्रवण होगा। फिर तो उस महातपोवन में रहते हुए वह वैश्रवण भी बड़े तेजस्वी हुए। उन्होंने सोचा कि, धर्म की ही परमगति है। अत: मैं भी धर्माचरण करूँगा। उन्होंने कठिन व्रत के साथ हजारों वर्ष के घोर तप किए, जिसमें वे कभी जल पीकर, कभी वायु पान कर और कभी निराहार ही रह जाते थे।

इस प्रकार उन्होंने एक हजार वर्ष, एक वर्ष की भाँति व्यतीत कर दिये। तब तो ब्रह्माजी उनके इस तप को देखकर प्रसन्न हो गए और इन्द्रादिक देवताओं को साथ ले उन्हें वर देने के लिए उनके आश्रम पर पधारे और बोले—हे सुव्रत! हे वत्स! मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ, वर माँगो।

तब अपने समक्ष ब्रह्माजी को उपस्थित देख वैश्रवण ने कहा—भगवन् ! मेरी इच्छा है के मैं लोकपाल बनूँ और समस्त धन मेरे पास रहे। वैश्रवण की यह बात सुनकर ब्रह्माजी को और भी प्रसन्नता हुयी और उन्होंने 'तथास्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार की तथा वैश्रवण से फिर बोले—हे वत्स! मैं चौथा लोकपाल रचने ही वाला था, अब तुम्हीं उस पद को स्वीकार करो। जाओ अपार धन के स्वामी बनो। इन्द्र, वरुण और यम के साथ तुम्हारा चौथा स्थान होगा।

यह सूर्य के समान तेजस्वी पुष्पक विमान है, इसे तुम अपनी सवारी के लिए लो और आज ही से देवताओं की समानता प्राप्त करो। अब मैं अपने लोक को जाता हूँ, तुम्हारा कल्याण हो।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। ब्रह्मादि देवताओं के चले जाने पर धनेश वैश्रवणजी ने हाथ जोड़कर अपने पिता से कहा—'भगवन् ! मैंने पितामह ब्रह्माजी से अभीष्ट वरदान तो प्राप्त किया है, किन्तु उन्होंने मेरे रहने का कोई

स्थान नहीं बताया है। अत: अब आप ही मेरे लिए किसी ऐसे निवास स्थान का विचार कीजिये, जहाँ रहने से किसी भी प्राणी को कष्ट न हो?' पुत्र के इस प्रकार कहने पर मुनि श्रेष्ठ विश्रवा बोले—धर्मज्ञ! सुनो। दक्षिण समुद्र के तट पर एक त्रिकूट नामक पर्वत है, जिसके शिखर पर एक विशाल पुरी है, जिसका नाम लंका है।

विश्वकर्मा ने उसे राक्षसों के लिये बनाया था। वह अमरावती के ही समान रमणीक है। अत: तुम लंका में ही निवास करो। उसके चतुर्दिक् चौड़ी खाई खुदी है और वहयन्त्रों तथा शस्त्रों से परिपूर्ण है। वह लंकापुरी रमणीय है। सुवर्ण और वैदूर्य मणि के उसके द्वार हैं। पहले उसमें राक्षस रहा करते थे। किन्तु अब विष्णु के भय से वे वहाँ से भागकर पृथ्वी के नीचे रसातल में जा बसे हैं। तुम वहाँ जामकर सुख से रहो।

वहाँ तुम्हें या और किसी को भी कोई कष्ट न होगा। तब अपने पिता विश्रवा मुनि के ऐसा कहने पर धर्मात्मा पुत्र वैश्रवण अब राक्षस की चारों ओर समुद्र से घिरी हुई लंका में प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगे। देवता और गन्धर्व उनका यशोगान करने लगे। उनका हृदय बड़ा विनीत था। धर्मात्मा धनेश्वर वैश्रवण पुष्पक द्वारा समय-समय पर अपने माता-पिता के समीप प्राय: आते-जाते रहते थे।

राक्षसों का पूर्व इतिहास तथा उन्हें महादेव-पार्वती का वरदान

अगस्त्यजी के कहे हुए इस वृत्तान्त को सुनकर श्रीराम विस्मित हो गये। उन्होंने बारम्बार शिर कम्पितकर अगस्त्यजी की ओर देखते हुए पूछा—हे भगवन् ! आपसे यह सुनकर कि लंका में पहले ही से राक्षस रहते थे' मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्या वे राक्षस रावण, कुम्भकर्ण आदि से भी बढ़कर बली थे? हे ब्रह्मन् ! उनके मूल पूर्वज कौन थे और उनका क्या नाम था। विष्णु से उनका क्या बैर था कि उन्होंने उन्हें मार भगाया?

तब राम के ऐसा पूछने पर अगस्त्यजी बोले—हे राम! ब्रह्माजी ने पहले जल की सृष्टि की और उसकी रक्षार्थ अनेक प्राणियों को उन्होंने उत्पन्न किया। उनमें हेति और प्रहेति नाम के दो राक्षस थे। वे दोनों भ्राता मधु-कैटभ के समान ही वीर थे। उनमें प्रहित बड़ा धार्मिक था, जो तपोवन में जाकर तप करने लगा और हेति ने विवाह के लिए बड़ा यत्न किया। उस समय काल की एक बहन थी जिसका नाम 'भया' था। अभी वह कुमारी ही थी कि उसका रूप अति भयंकर हो गया। हेति ने उसी भया के साथ विवाह किया। उससे एक पुत्र हुआ जिसका नाम विद्युत्केश था।

उसका विवाह संध्या की पुत्री से हुआ, जिसका नाम सालकटङ्कटा था। उसे पाकर निशाचर विद्युत्केश बड़ा प्रसन्न हुआ और सुख से रहने लगा। कुछ काल पश्चात्

उस संध्या पुत्री ने विद्युत्केश से गर्भ धारण किया और मन्दराचल पर जाकर वहाँ एक पुत्र प्रसव किया और उस नवजात शिशु को वहीं त्याग फिर विद्युत्केश के पास चली आयी। इधर उसका वह त्यागा हुआ पुत्र मेघ की भाँति शब्द करने लगा। फिर मुँह में मुट्ठी डालकर धीरे-धीरे रोने लगा। उसी समय वृषभारूढ़ शिव-पार्वती आकाश मार्ग से उधर होकर कहीं जा रहे थे।

उन्होंने वहाँ उस बालक के रोने का शब्द सुना। जब निकट जाकर देखा तो पार्वतीजी को बड़ी दया आई। उन्होंने उनके कहने से उस राक्षस-पुत्र का वय उसकी माता के समान कर दिया और उसे अमरत्व भी प्रदान कर दिया। महादेवजी के लिए ऐसा करना कोई बड़ी बात नहीं थी। क्योंकि वे अक्षर और अविनाशी हैं। महादेवजी ने पार्वतीजी को प्रसन्न करने के लिए एक पुर के समान एक विमान भी दे दिया और हे नृपात्मज! पार्वतीजी ने राक्षसियों को यह भी वर दे दिया कि 'राक्षसियाँ गर्भ धारण करते ही शिशु उत्पन्न करें और वह तत्क्षण माता की आयु का हो जाया करें।

हे राम! फिर तो वह विद्युत्केश का पुत्र सुकेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ और महादेवजी के वरदान से वह बड़ा अभिमानी हो गया। अब आकाशचारी यान (विमान) और लक्ष्मी को प्राप्त कर वह सर्वत्र विचरण करने लगा।

सुकेश का वंश-विस्तार

तदनन्तर सुकेश को वरदान प्राप्त तथा धार्मिक देखकर विश्वावसु के समान तेजस्वी ग्रामणी नामक गन्धर्व ने अपनी 'देववती' रूप यौवनशालिनी कन्या, जो दूसरी लक्ष्मी के ही समान तीनों लोकों में प्रसिद्ध थी—उसे दे दी। उसमें सुकेश से अग्नि के समान शरीरधारी तीन पुत्र उत्पन्न हुए। बलवानों में श्रेष्ठ उन तीनों के क्रमशः ये नाम थे।

माल्यवान्, सुमाली और माली। सुकेश के ये तीनों पुत्र तीन लोकों के समान, तीनों अग्नियों के समान, तीनों वेदों के समान अथवा वात, पित्त, कफ के समान उग्र और भयङ्कर थे। तेजस्वी तो ऐसे थे कि शीघ्र ही बढ़कर युवा हो गये। फिर वे तीनों मेरु पर्वत पर जाकर कठोर नियमों द्वारा सब प्राणियों को भयोत्पादक तप करने लगे। उनके घोर तप से देवताओं और मनुष्यों सहित त्रैलोक्य संतप्त हो उठा। तब तो अपने विमान पर बैठकर ब्रह्माजी उन्हें वर देने आये। कहा, वर माँगो।

इस पर वे राक्षस वृक्षों की तरह थर-थर काँपते हुए हाथ जोड़कर बोले—हे देव! यदि आप हमें वर देना चाहते हैं तो हम आपसे यही माँगते हैं कि हममें परस्पर प्रीति बनी रहे और हमें कोई जीत न पावे। हम अपने शत्रुओं के संहारक हों और अजर-अमर हों। ब्राह्माजी ने कहा—तथास्तु। तुम लोग ऐसा ही होओ, सुकेश

के पुत्रों को ऐसा वर दे, ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। श्रीराम! अब वे राक्षस वरदान पाकर अत्यन्त निर्भय हो देवताओं और असुरों को सताने लगे।

देवता, महर्षि और चारण अनार्यों की भाँति अपना रक्षक ढूँढ़ने लगे। फिर उन्हें कोई रक्षक न मिला। तब वे शिल्पियों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा के पास गए और कहा कि देवताओं की इच्छानुसार आप ही उनके गृह-निर्माणकर्त्ता हैं। अत: हम लोगों के लिए भी किसी उच्चस्थान पर एक ऐसा भवन दीजिए जो शिव-भवन के समान बड़ा विस्तृत और ऊँचा हो। तब उन महाबलवान् राक्षसों के वचन सुनकर विश्वकर्मा ने उन्हें वास करने के लिए इन्द्र के समान स्थान बतलाते हुए कहा कि—'दक्षिण समुद्र के तट पर सुवेल पर्वत के समीप ही एक त्रिकूट नाम का पर्वत है, जिसके मध्य का शिखर बड़ा ही उन्नत मेघ के सदृश दीख पड़ता है, जिसके ऊपर पक्षी भी नहीं पहुँच सकते।

उसके ऊपर तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी एक नगरी बनी हुई है, जिसका नाम लंका है। उसकी दीवारें सोने की हैं और सुवर्ण तोरण से भूषित फाटक है। इस लंकापुरी को मैंने इन्द्र की आज्ञा से बनाया था। तुम लोग उसी में जाकर रहो। हे शत्रुओं के संहारक राक्षसों! जब तुम वहाँ बहुत से राक्षसों सहित बस जाओगे, तब शत्रुओं से दुर्धर्ष हो जाओगे। विश्वकर्मा के इन वचनों को सुनकर वे राक्षस अपने साथ सहस्त्रों सेवकों को लेकर उस नगरी में जा बसे। लंका के स्वर्णभूषित गृहों में बस कर वे बड़े हर्षित हुए।

हे राघव! इसी समय स्वेच्छया एक गन्धर्वी उत्पन्न हुई जिसका नाम नर्मदा था। उसकी तीन पुत्रियाँ थी, जो ह्री, श्री और कीर्ति के समान हीं द्युतिमती थीं। उसेन अपनी तीनों पुत्रियों को क्रमश: उन तीनों राक्षसों को दे दीं। उन्होंने उनसे उत्तरा, फाल्गुनी नक्षत्र में विवाह किया। उनसे माल्यवान् ने अपनी सौन्दर्यवती सुन्दरी नामक पत्नी से वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त ये सात पुत्र उत्पन्न किये। साथ ही उसने 'अनला' नामक एक सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न की। फिर सुमाली की भार्या केतुमती, जो पूर्णिमा की चन्द्रमा के सामन सुन्दरी थी।

उसने अपने गर्भ से प्रहस्त, कम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, महाबली, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रधर्ष और भासकर्ण ये महाबली पुत्र और कुम्भीनसी, केकसी, राका और पुष्पोत्कटा नाम की कन्याएँ भी उत्पन्न कीं। इसी प्रकार माली ने अपनी वसुधा नाम्नी सुन्दर पत्नी से अनल, अनिल, हर और सम्पाति ये चार पुत्र उत्पन्न किये। यही चारों विभीषण के मन्त्री हुए। इस प्रकार राक्षस श्रेष्ठ उन तीनों राक्षसों का परिवार बहुत बढ़ा और वे तीनों अपने सैकड़ों पुत्रों के साथ इन्द्र सहित

सब देवताओं, ऋषियों, नागों और यक्षों को सताने लगे। वे सब दुरासद राक्षस, वायु के सदृश संसार में सर्वत्र भ्रमण करते। संग्राम क्षेत्र में काल के समान अमित तेजस्वी हो जाते और वरदान के प्रभाव से गर्वित हो सर्वदा यज्ञों को नष्ट किया करते।

सुकेश के पुत्रों द्वारा सताये गये देवताओं की ओर से विष्णुजी का कुपित हो उन्हें मारने जाना

उन राक्षसों से पीड़ित होकर देवता, ऋषि और तपस्वी भय से व्याकुल हो देवदेव महादेव की शरण में गये। वहाँ जाकर उन्होंने तिपुरमर्दक कामारि शिवजी को प्रणाम किया और भय से कम्पित वाणी द्वारा यह निवेदन किया कि—'हे भगवन् ! हे प्रजाध्यक्ष! ब्रह्माजी के वर से धृष्ट हो सुकेश के पुत्र सम्पूर्ण प्रजा को बड़ा कष्ट दे रहे हैं।

हमारे शरणदाता आश्रम को उन्होंने उजाड़ दिया जो अब वास करने योग्य नहीं रह गया। देवतओं को स्वर्ग से हटाकर वे स्वयं ही अधिकार कर लिये तथा देवताओं के समानही अब वे तीनों राक्षस स्वर्ग में विहार करते हैं माली, सुमाली और माल्यवान्—ये तीनों राक्षस कहते हैं कि—'विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरुण और सूर्य मैं ही हूँ।

अब तो उन दुर्धर्ष और अहंकारी राक्षसों के साथ रहना हमारे लिये बड़ा कठिन हो गया है; क्योंकि वे हम सबको बड़ा कष्ट दे रहे हैं। हे प्रभो! हम आपकी शरण आये हैं। उनका नाश कर, हमें अभय कीजिये।' तब उन समस्त देवताओं की इस प्रार्थना को सुनकर कपर्दी, नीललोहित महादेवजी ने कहा—देवताओं! मैं तो उन राक्षसों को न मारूँगा। क्योंकि मुझसे तो वे अवध्य हैं। परन्तु मैं तुम्हें वह उपाय बतलाता हूँ कि, उन्हें कौन मार सकेगा। हे महर्षियों! तुम लोग इसी प्रकार देवताओं सहित भगवान् विष्णु की शरण में जाओ, वे उनका नाशकर डालेंगे।

भगवान् शिवजी के ऐसा कहने पर देवता उनकी जय-जयकार कर निशाचरों के भय से पीड़ित हो विष्णुजी के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने शंख, चक्र, गदाधारी देवनारायण के चरणों में प्रणाम किया और व्याकुलता से कहा कि—'हे देव! सुकेश के तीनों पुत्रों ने वरदान की शक्ति से आक्रमण करके हमारे स्थान हरण कर लिये हैं। त्रिकूट पर्वत के शिखर पर लंका नाम की जो दुर्गम नगरी है, वहीं रहकर वे निशिचर हम सब देवताओं को क्लेश दे रहे हैं। हे मधूसूदन! हमारे हितार्थ आप उनका संहार करें, हम सब आपकी शरण आये हैं। आप हमारी रक्षा करें।

आपके अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है जो हमारी रक्षा करे। राक्षस मद से मतवाले हो रहे हैं। अत:आप अपने चक्र से उनका शिर काटकर हमें अभय कीजिये।

देवताओं के इस प्रकार के निवेदन को सुनकर देवाधिदेव जनार्दन उन्हें अभय देते हुए बोले—'शिव से दर्पित राक्षस सुकेश को मैं जानता हूँ तथा उसके पुत्रों को भी जिनमें माल्यवान् श्रेष्ठ है, मैं अपरिचित नहीं हूँ। वे अवश्य ही धर्म की मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हैं।

मैं उनका नाश करूँगा। तुम बस चिन्ता त्याग दो।' समर्थ विष्णु से ऐसा आश्वासन पाकर देवता उनकी जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थान को चले आये। जब इसका समाचार माल्यवान् को प्राप्त हुआ, तब उसने अपने दोनों भाईयों को बुलाकर विष्णुजी के कुपित होने की सब बात कह सुनाई और कहा कि अब इस विषय में हम लोग भी उचित कार्यवाही करें; क्योंकि हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवद्रोही दैत्यों को इन्हीं विष्णु ने मारा है। नमुचि, कालनेमि, संह्लाद, राधेय, यमलार्जुन, हार्दिक्य, शुम्भ और निशुम्भ आदि बड़े-बड़े बलवान् और शक्तिशाली असुर इन्हीं के हाथ से मारे गये हैं। अब वही नारायण हमें भी मारना चाहते हैं।

अत: हम सब भी कोई उचित उपाय करें। तब ज्येष्ठ भ्राता माल्यवान् की यह बात सुनकर सुमाली और माली ने कहा—'भाई! हम लोगों ने स्वाध्याय, दान और यज्ञ किये हैं। ऐश्वर्य की रक्षा तथा उसका उपयोग भी किया है। हमने आरोग्यपद जीवन पाया है तथा अपनी कुल-परम्परागत हमने धर्म की स्थापना की है। हमने देवसेना रूपी अगाध सागर में प्रवेश करके बड़े-से-बड़े शत्रु पर भी विजय प्राप्त की है। अत: हम लोगों को मृत्यु से कोई भय नहीं है। नारायण,रुद्र, इन्द्र या यमराज कोई भी क्यों न हों, हमारे समक्ष भयातुर हैं।

परन्तु विष्णुजी हम पर क्यों कुपित हैं इसका कोई कारण नहीं ज्ञात होता। सम्भवत: देवताओं के ही उत्तेजन से उनका मन हमारी ओर से विपरीत हो गया है। अतएव हम सब एकत्र होकर आज ही सब देवताओं का वध कर डालें—यह उचित है। क्योंकि उन्हीं के कारण यह उपद्रव उपस्थित हुआ।' ऐसा विचार कर उन महाबली निशाचरों ने युद्धोद्योग की घोषणा कर दी। राक्षसों की सब सेना एकत्र होने लगी। रथ, हाथी, घोड़े, गधे, बैल, ऊँट, गरुड़ के समान पक्षी, सिंह, बाघ, सूअर और नीलगाय आदि वाहनों पर वे बलोन्मत्त निशाचर लंका छोड़कर देवलोक को चल दिये। उस समय पृथ्वी और आकाश में भयंकर उत्पात प्रकट हुए। सम्पूर्ण भूतों का लय-सा होता दिखाई पड़ा।

गीधों का समूह राक्षसों पर काल सदृश मँडराने लगा। फिर भी वे कालपाशबद्ध राक्षस नहीं लौटे और बढ़ते ही चले गये। जब देवदूतों ने राक्षसों के इस उद्योग का समाचार विष्णुजी से कहा, तब वह तत्क्षण ही सहस्र सूर्य के समान चमचमाता

कवच धारणकर, बाणों से पूर्ण दो तरकस लिये, कटिसूत्र धारण किये हुए, प्रदीप्त खड्ग उठा अपने वाहन गरुड़ पर जा बैठे और इनके अतिरिक्त उन्होंने पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, नंदकी खड्ग और शार्ङ्गधनुष इस प्रकार सभी श्रेष्ठ आयुधों को उन्होंने ग्रहण कर लिया।

फिर तो श्याम स्वरूप, पीताम्बर पहने और गरुड़ की पीठ पर सवार, श्रीनारायण सुमेरु पर्वत स्थित् विद्युत् मेघ के समान शोभित होते हुए राक्षसों के संहारार्थ वहाँ जा पहुँचे। उस समय सिद्ध, देवर्षि, महानाग, गन्धर्व और यक्ष उनकी स्तुति करने लगे।

देवासुर संग्राम

अब श्रीनारायण को युद्ध के लिए उद्यत देख इन राक्षसों ने उन पर अपने अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा आरम्भ कर दी। नीलवर्ण की कान्ति वाले श्रीनारायण राक्षसों के घेरे में जा पड़े। फिर तो जैसे खेतों पर टीड्डियाँ और अग्नि पर मच्छर, मधु-घट पर डाँस और सागर में मगर गिरते हों, ऐसे ही राक्षसों के चलाये हुए वज्रवत् बाण श्रीहरि के शरीर में समाने लगे। मानों प्रलयकाल में जीव भगवान् के शरीर में समा रहे हों।

राक्षसी सेना के विविध बाणों से श्रीहरि आच्छादित हो गये। किन्तु उनके प्रहारों को उन्होंने ऐसा ही सहन किया जैसे मछलियों के वेग को समुद्र सहता है। तदनन्तर उन्होंने शार्ङ्गधनुष उठा अपने वज्रवत् बाणों से राक्षसों का संहार करना आरम्भ कर दिया और मन के समान वेगवान् पैने बाणों से श्रीविष्णुजी ने सैकड़ों-सहस्त्रों राक्षसों को मार डाला। बचे-बचाये राक्षस भाग गये। पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने अपना पाञ्चजन्य शंख बजाया। उससे त्रिलोक व्यथित हो उठा। राक्षस तो और भयभीत हुए तथाकितनों को बाणों से, कितनों को अपने चक्र से मार-काट कर सर्वदा के लिये पृथ्वी पर सुला दिया।

सुमाली के सारथी का शिर काट डाला। यह देख सुमाली का भाई माली अपना धनुष तान गुरुड़ पर दौड़ा। उसके धनुष से छूटे शर विष्णुजी के शरीर में प्रवेश करने लगे। किन्तु उससे कुछ भी क्षुभित न होकर भूतभावन भगवान् ने अपना धनुर्टकोरकर माली के ऊपर कितने ही बाण बरसाकर व्याकुल कर दिये। वह युद्ध से विमुख हो गया। शंख-चक्र-गदाधारी ने उसके मुकुट, ध्वजा और धनुष को काटकर उसके रथ के घोड़ों को भी मार गिराया। अब वह अपनी प्रचण्ड गदा ले विष्णुजी से युद्ध करने चला।

उसने गरुड़ की ललाट पर गदा का प्रहार किया। गरुड़ उस प्रहार को न सह सके और विष्णुजी को उन्होंने युद्ध से विमुख कर दिया। इससे राक्षस हर्षित हो गर्जने

लगे। इस पर नारायण ने सुदर्शन चक्र चला दिया। सुदर्शन ने माली का शिर काटकर धड़ से पृथक् कर दिया। यह देख देवतओं में हर्ष ध्वनि होने लगी। माली का वध हुआ देख सुमाली और माल्यवान् शोक सन्तप्त हो सैनिकों सहित लंका की ओर भाग गये। इतने में गरुड़ भी स्वस्थ हो गये।

फिर तो वे रणभूमि में जाकर क्रोध में भरकर अपने पंखों के पवन से राक्षसों को भगाने लगे। ऊपर से विष्णुजी अपने सब अस्त्रों से उन्हें मार-काटकर चूर्ण करने लगे। राक्षसों की बड़ी दुर्गति हुई। उनका भयंकर रक्तपात हुआ। वे कटकर खण्ड-खण्ड हो गए।

राक्षस माली और माल्यवान् के मरने पर सुमाली का रसातल-वास और कुबेर का लंका में वास

इस प्रकार जब पद्मनाभ भगवान् उस राक्षसी सेना को मारते और भगाते ही चले गए, तब अपनी सेना का इस प्रकार संहार होते देख माल्यवान्, जो भागकर लंका तक पहुँचा था, फिर पीछे की ओर लौट पड़ा और क्रोध में भरकर, लाल-लाल नेत्र केये भगवान् पुरुषोत्तम पद्मनाभ से बोला—हे नारायण! तुम पुरातन क्षात्रधर्म को नहीं जानते। क्योंकि युद्ध से भयभीत हम भागे हुओं को तुम क्षुद्रवत् मार रहे हो।

युद्ध से परांमुख हुए जो मारना पाप है। ऐसा करने वाला पुण्यलोक स्वर्ग को नहीं पाता। हे शंख-चक्र-गदाधारी! यदि तेरी इच्छा युद्ध करने की ही है तो आ मैं तेरे समक्ष खड़ा हूँ। मुझ पर तू अपना बल प्रयोग करे। विष्णुजी ने उसे खड़ा हुआ देखकर कहा—तुम लोगों ने देवताओं को त्रस्त कर दिया। मैंने राक्षस नाश रूप उन्हें वर दिया है। अतः मैं इस समय राक्षसों का विनाश कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर रहा हूँ।

मैं तुम सबको अवश्य ही मार डालूँगा। भले ही तुम रसातल तक क्यों न जाओ, मैं तुम्हारा पीछा करूँगा। विष्णुजी ऐसा कर ही रहे थे कि उस राक्षसेन्द्र ने उन देवदेव के वक्षःस्थल पर अनी शक्ति चला दी। सुब्रह्मण्यप्रिय कमलनाभ भगवान् ने तत्क्षण ही उस शक्ति को अपनी छाती से निकाल उसी से माल्यवान् को मारा। भगवान् गोविन्द के हाथ से उस छूटी शक्ति ने माल्यवान् का कवच काट गिराया और उसकी छाती में प्रवेश कर उसे मूर्च्छित कर दिया। कुछ क्षण पश्चात् वह उठा और निश्चल खड़ा हो गया।

फिर उसने एक काँटेदार शूल उठा विष्णुजी को मारा। साथ ही उसने दौड़कर उनकी छाती में एक घूँसा भी मारा। फिर चार हाथ पीछे हटकर गरुड़ पर भी उसने प्रहार किया। फिर तो गरुड़जी ने जो अपने पंखों की प्रचण्ड वायु उसे दी तो

वह सूखे पत्तों की ढेर से उड़े पत्ते जैसे उड़ने लगा। तब अपने बड़े माल्यवान् को भागते देख सुमाली भी लंका को भाग गया।

माल्यवान् अपनी सेना सहित लंका में जा पहुँचा। इस प्रकार कमलनाथ भगवान् ने उन राक्षसों को कई बार मारा और भगाया और जब वे विष्णुजी की समक्षता न कर सके और सताये गये, तब वे अपने बाल-बच्चों सहित लंका का निवास त्यागकर पाताल में जा बसे। फिर सुमाली को राजा बना, वहीं सालकटङ्कटा के वश में रहने लगा। हे राम! तुमने जिन पुलस्त्य वंश वाले सब राक्षसों का संहार किया है, उनमें सुमाली, माल्यवान् और वे माली बड़े ही भाग्यशाली और प्रधान थे। अधिक क्या कहें, ये सब रावण से भी अधिक बलवान् थे।

शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णु के अतिरिक्त और कोई भी इन सुर-शत्रु राक्षसों का नाश नहीं कर सकता था। अत:तुम्हीं चार भुजाधारी, सनातन, अजेय अविनाशी और साक्षात् नारायण हो। राक्षसों का नाश करने के लिए ही तुम्हारा अवतार हुआ है। हे नराधिप! आज मैंने तुम्हें समस्त राक्षसों की जैसे उत्पत्ति हुई है सुना दी।

हे रघुत्तम! अब मैं तुम्हें रावण और उसके पुत्रों का अन्य वृत्तान्त और उनका अतुल प्रभाव सुनाता हूँ। इस प्रकार जब सुमाली रसातल में चला गया, तब श्रीकुबेरजी लंका में जा रहने लगे थे।

रावण, कुम्भकर्ण, सूर्पणखा तथा विभीषण का जन्म

कुछ दिन पश्चात् सुमाली राक्षस रसातल से निकलकर अपनी सुन्दरी कन्या सहित मनुष्यलोक में विचरने लगा। तब इस प्रकार पृथ्वी पर विचरते हुए उसने पुष्पक विमान पर आरूढ़ कुबेरजी को देखा, जो अपने पिता विश्रवा के दर्शन करने जा रहे थे। यह देख सुमाली को आश्चर्य हुआ। वह मृत्युलोक छोड़ रसातल में पहुँच अपनी पुत्री कैकसी से बोला—हे पुत्रि! अब तुम्हारे विवाह का समय हो चुका है।

अधिक क्या कहें, मानीजनों के लिए कन्या दुःख का कारण होती है। क्योंकि यह कोई पहले से नहीं जानता कि, कन्या का विवाह कैसे वर से होगा। मातृकुल, पितृकुल और श्वसुरकुल—इन तनों कुलों को कन्या सदैव संशययुक्त रखती है। अत: अब तुम ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा मुनि को स्वयं जाकर वरण कर लो। हे पुत्री! विश्रवा को वरण करने से तुझे कुबेर के समान ही तेजस्वी पुत्र लाभ होगा।

फिर तो वह कन्या अपने पिता के वचनों को सुन और पितृ-गौरव को स्वीकार कर जहाँ विश्रवा मुनि तपस्या कर रहे थे, वहाँ जाकर खड़ी हो गई। तब पूर्ण

चन्द्राननी उस परम सुन्दरी को देख परमोदार विश्रवा मुनि ने उस कन्या से कहा— 'भद्रे! तू किसकी दुहिता है और यहाँ कैसे आई है? तब उस कन्या ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! यहतो आप अपने तप से ही जान सकते हैं? फिर भी मैं आपको यह बतलाती हूँ कि, मैं अपने पिता की आज्ञा से आपके पास आई हूँ और मेरा नाम कैकसी है।

शेष वृत्तान्त आप स्वयं ही जान सकते हैं। विश्रवा मुनि ने ध्यान कर उसके आने का प्रयोजन ज्ञात कर लिया और तब उससे कहा—हे भद्रे! मैंने तेरे मन की बात जान ली। हे मत्तगजेन्द्रगामिनी! मुझसे पुत्र उत्पन्न कराने की तेरी अभिलाषा है, किन्तु इस दारुण समय में तू मेरे पास आई है।

अत: तुमसे क्रूर कर्मा राक्षस उत्पन्न होंगे। विश्रवा मुनि के ऐसे वचन सुन कैकसी ने कहा—हे भगवन् ! आप जैसे ब्रह्मवादी द्वारा मैं दुराचारी पुत्रों को नहीं चाहती। अत: आप मुझ पर कृपा कीजिये। इस पर मुनिश्रेष्ठ ने कहा—अच्छा, तेरा पिछला पुत्र मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

हे राम! फिर तो कुछ काल पश्चात् उसने बड़ा भयंकर वीभत्सरूपी राक्षस पुत्र प्रसव किया। उसके दस सिर, बड़े-बड़े दाँत और वीस भुजाएँ थीं तथा वह काले रंग का पहाड़ के समान था। उसके लाल होंठ, विशाल शिर और चमकीले बाल थे। उसके जन्मते ही पृथ्वी काँपने लगी, समुद्र खलबला उठा,, आकाश से बड़े-बड़े उल्कापात हुए।

सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया और देवताओ ने रक्त की वर्षा की। तदनन्तर पितामह ब्रह्मा के समान ही उसके पिता ने उसका नामकरण किया और कहा कि इस दस शिर वाले पुत्र का नाम दसग्रीव होगा। फिर कैकसी के गर्भ से कुम्भकर्ण का जन्म हुआ जिसके समान लम्बा-चौड़ा कोई अन्य प्राणी नहीं था।

फिर विकराल मुख वाली सूर्पणखा उत्पन्न हुई और सबके पश्चात् धर्मात्मा विभीषण का जन्म हुआ। उसके जन्म के समय आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई तथा देवताओं ने दुन्दुभी बजायी और सबने साधु-साधु कहा। कुम्भकर्ण और दसग्रीव उस महावन में बढ़ने लगे। कुम्भकर्ण बड़ा उन्मत्त हुआ।

उसको भोजन से कभी तृप्ति ही न होती थी और तीनों लोकों में घूमकर महर्षियों का भक्षण किया करता था। विभीषण बाल्यकाल से ही धर्मातमा था। वह सर्वदा धर्म में स्थित रह स्वाध्याय करता और नियमित आहार करते हुए इन्द्रियों को अपने वश में रखता।

कुछ काल पश्चात् धनपति वैश्रवण पुष्पक विमान पर बैठ अपने पिता का

दर्शन करने के लिए वहाँ आये, जो अपने तेज से प्रदीप्त हो रहे थे। तब उन्हें देखकर राक्षस-कन्या कैकसी अपने पुत्र दशग्रीव के पास आई और बोली—हे पुत्र! अपने भाई वैश्रवण को देखा, ये कैसे तेजस्वी हैं।

क्या ही अच्छा होता यदि तुम भी अपने भाई के समान हो। यद्यपि तुम बड़े पराक्रमी हो, तथापि ऐसा प्रयत्न करो, जिससे तुम भी वैश्रवण के ही समान तेजस्वी और वैभवशाली हो जाओ।' माता की यह बात सुनकर प्रतापी दशग्रीव को बड़ा रोष हुआ।

उसने कहा—माँ! तुम चिन्ता न करो। मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि, अपने पराक्रम से भाई वैश्रवण के समान या उससे भी बढ़कर हो जाऊँगा। यह कहकर उसने तपस्या करने का विचार किया और गोकर्ण के पवित्र आश्रम पर जाकर वहाँ भाईयों सहित तप करने लगा। उसने घोर तपकर ब्रह्माजी को प्रसन्न कर लिया। उन्होंने प्रसन्न होकर उसे विजयदायक वर प्रदान किया।

रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण का तप तथा वरदान

इतना सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने अगस्त्य मुनि से पूछा—हे ब्रह्मन! उन महाबली भाईयों ने कैसे तपस्या की? यह सुन अगस्त्यी प्रसन्न होकर बोले—हे रामजी! कुम्भकर्ण अपनी इन्द्रियों को संयमित कर धर्म-मार्ग में स्थित हुआ और ग्रीष्मकाल में अपने चारों ओर अग्नि जलाकर पञ्चाग्नि तापने लगा। फिर वर्षा ऋतु में वीरासन से बैठकर जल की वृष्टि को सहता तथा शीतकाल में जल में बैठा रहता। इस प्रकार तप करते हुए उसने दस हजार वर्ष व्यतीत कर दिये। विभीषण तो सदा से ही धर्मात्मा थे। वे नित्य धर्म-परायण हो पाँच हजार वर्षों तक एक पैर से खड़े रहे।

उनका नियम समाप्त होने पर आकाश से पुष्प वृष्टि हुई तथा देवताओं ने स्तुति की। तदनन्तर विभीषण ने स्तुति की। तदनन्तर विभीषण ने अपनी दोनों भुजाएँ मस्तक के ऊपर उठाकर स्वाध्याय-परायण हो पाँच हजार वर्षों तक सूर्य की आराधना की। इस प्रकार मन को वश किये विभीषण ने भी दश हजार वर्ष व्यतीत किये। दशग्रीव ने तो दश हजार वर्ष तक निरन्तर उपवास किया और प्रत्येक हजार वर्ष के पूर्ण होने पर वह अपना एक मस्तक काटकर अग्नि में होम कर देता था। इस प्रकार नौ हजार वर्ष व्यतीत होने तक उसके नौ मस्तक अग्निदेव को अर्पित हो गये और जब दस हजार वर्ष पूर्ण होने लगा तब उसने अपना दशवाँ मस्तक काटना चाहा, फिर तो उसी क्षण उसके समक्ष ब्रह्माजी आ उपस्थित हुए।

उनके साथ देवता भी थे। तब ब्रह्माजी ने सन्तुष्ट होकर कहा—दशग्रीव! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ, वर माँग। पितामह की यह वाणी सुनकर दशग्रीव का चित्त प्रसन्न

हो गया। उसने नत-मस्तक हो ब्रह्माजी को प्रणाम किया और हर्ष गद्गद वाणी में कहा—'भगवन् ! प्राणियों को मृत्यु का भय सर्वदा लगा रहता है, अतएव मैं अमर होना चाहता हूँ।' ब्रह्माजी ने कहा—ऐसा नही हो सकता। तू और कोई वर माँग। हे राम! जब लोककर्त्ता ब्रह्माजी ने ऐसा कहा, तब दशग्रीव ने हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की—प्रजानाथ! मैं गुरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं के लिये अवध्य होऊँ। अन्य प्राणियों की मुझे चिन्ता नहीं है।

मनुष्य आदि जीवों को तो मैं तृणावत् समझता हूँ। दशग्रीव के ऐसा कहने पर देवताओं सहित खड़े ब्रह्माजी ने कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा। हे राम! दशग्रीव से ऐसा कहकर ब्रह्माजी उससे फिर बोले—हे अनाथ! मैं तेरे ऊपर अति प्रसन्न हूँ। अत: मैं अपनी ओर से भी तुझे वर देता हूँ! तूने अपने जिन सिरों को काटकर अग्नि में होम किया है, वे सिर तेरे पूर्ववत् हो जायेंगे तथा एक और भी तुझे यह दुर्लभ वर देता हूँ कि जिस समय तू जैसा रूप धारण करना चाहेगा, वैसा रूप तेरा हो जायेगा।

ब्रह्माजी के यह कहते ही राक्षस दशग्रीव के होम किए सब सिर पूर्ववत् निकल आये। हे राम! दशग्रीव को ऐसा वर दे, ब्रह्माजी विभीषण से बोले—हे वत्स विभीषण! मैं तेरी धर्म बुद्धि देखकर प्रसन्न हूँ, अत: हे सुव्रत! तू वर माँग। धर्मात्मा विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा—हे भगवन् ! जब आप लोक गुरु ब्रह्माजी स्वयं ही मुझ पर प्रसन्न हैं, तब मुझे और चाहिए ही क्या? मैं तो ऐसे ही कृतार्थ हो गया। परन्तु आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो हे सुव्रत! आप मुझे यह वर दें कि, परम आपदा पड़ने पर भी मेरी बुद्धि धर्म पर ही तत्पर रहे और हे भगवान् ! बिना किसी के शिक्षित किये ही मुझे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना आ जाय और जिस आश्रम में मैं रहूँ उसके प्रति मेरी सदैव निष्ठा वृद्धि होती रहे।

हे परमोदार! मेरा यही सर्वोत्कृष्ट अभीष्ट है। ब्रह्माजी ने कहा—एवमस्तु! तुम जैसा चाहते हो सब कुछ वैसा ही होगा। राक्षस-योनियों में उत्पन्न होकर भी तुम्हारी बुद्धि अधर्म में प्रवृत्त नहीं होती, इसलिए मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ। विभीषण से ऐसा कहकर जब ब्रह्माजी कुम्भकर्ण को वर देने के लिए उद्यत हुए, तब सम्पूर्ण देवताओं ने हाथ जोड़कर यह प्रार्थना की—'भगवान् ! आप कुम्भकर्ण को वरदान न दीजिये।' क्योंकि आपको स्वयं ज्ञात ही है कि बिना वर पाये ही वह दुष्ट तीनों लोकों को सताया करता है। नन्दनवन में सभी अप्सराओं और इन्द्र के दश सेवकों को इसने भक्षण कर डाला है। इसके भक्षण किये ऋषियों और मनुष्यों की तो गणना ही नहीं है।

जब बिना वर पाये ही इसकी यह करनी है, तब वर पाने पर तो यह समस्त

त्रिभुवन को ही चर्वण कर जायेगा। अतः हे अमितप्रभ! वर के द्वारा इसे अज्ञान प्रदान कीजिए। इससे लोक कल्याण भी होगा और इसका भी मान बना रहेगा। तब देवताओं के ऐसा कहने पर पद्म सम्भव ब्रह्माजी ने सरस्वती देवी को स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही सरस्वती आ पहुँची और हाथ जोड़ कर बोलीं—'हे देव! मैं आ गयी हूँ, कहिए क्या आज्ञा है? ब्रह्माजी ने कहा—'वाणी! तुम राक्षसराज कुम्भकर्ण की जिह्वा पर बैठकर इसके मुँह से देवताओं के अनुकूल बात निकालो!' सरस्वती ने कहा—'बहुत अच्छा'।

यह कह सरस्वती कुम्भकर्ण के मुँह में प्रवेश कर गयी। तब ब्रह्माजी ने कहा—महाबाहु कुम्भकर्ण! तुम भी जो चाहो वर माँगो। यह सुनकर कुम्भकर्ण ने कहा—'देवदेव! मैं यह चाहता हूँ कि, मैं अनेक वर्षों तक सोता रहूँ। ब्रह्माजी ने कहा तथास्तु! ऐसा कहकर देवताओं सहित ब्रह्माजी चले गए। पश्चात् सरस्वती देवी भी उसके मुख से निकल आईं और आकाश-मण्डल में चलीं गयीं। अब कुम्भकर्ण को चेत हुआ।

वह दुरात्मा दुःखी हो चिन्ता करने लगा कि, हाय! मेरे मुख से ऐसा वचन क्यों निकल गया। मुझे ज्ञात होता है कि देवताओं ने आकर मुझे ठग लिया, इस प्रकार वे सब भाई तप द्वारा ब्रह्माजी से वरदान पाकर उस श्लेष्यान्तक वन में अपने पिता के पास फिर आ गये और सुख से रहने लगे।

कुबेर का लंकापुरी त्याग कैलाश पर अलकापुरी बसाना। तथा रावण का लंका प्रवेश

उधर सुमाली इन तीनों भाईयों के वरदान पाने का समाचार सुनकर मारीच, महोदर, प्रहस्त और विरूपाक्ष अपने इन मन्त्रियों और कुछ अनुचरों सहित पाताल से बाहर निकल दसग्रीव से मिलने आया। अपने प्राचीन रोष को लिये वह आकर दशग्रीव से हृदय लगाकर मिला और उसकी वर प्राप्ति की बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की तथा यह कहा कि जिस लंका नगरी में तुम्हारे भाई धनाध्यक्ष निवास करते हैं, वह हम लोगों की है।

पूर्व में वहाँ हम राक्षसों का निवास था। अब यदि साम, दाम, अथवा प्रयोग द्वारा पुनः आप उसे लौटाकर हस्तगत कर दें तो हम सबका कार्य सिद्ध हो जाय। दशग्रीव ने कहा—नानाजी! धनेश हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं, उनके सम्बन्ध में आप मुझसे ऐसी बात न कहें। सुमाली चुप हो गया। तब कुछ क्षण पश्चात् अवसर पाकर प्रहस्त ने नम्रता से कहा कि, हे महाबाहो! आप यह क्या कहते हैं? आप वीर हैं।

वीरों का ऐसा कोई भ्रातृभाव नहीं चलता। देखिये, अदिति और दिति दोनों

सगी बहिनें हैं। उन दोनों का ही विवाह प्रजापति कश्यप से हुआ है। उनमें अदिति ने देवताओं और दिति ने दैत्यों को जन्म दिया है। पूर्व में वनों, पर्वतों और समुद्रों सहित यह समस्त पृथ्वी दैत्यों के ही अधिकार में थी। परन्तु विष्णु ने युद्ध में दैत्यों को मारकर यह समस्त त्रिलोकी देवताओं के अधीन कर दी। आशय यह कि, एक आप ही ऐसा नहीं करने जा रहे हैं, ऐसा विपरीत आचरण पहले भी हुआ है।

प्रहस्त की यह बात सुनकर दशग्रीव प्रसन्न हो गया। उसने कहा—बहुत अच्छा! फिर तो दशग्रीव उन राक्षसों को साथ लेकर त्रिकूट पर्वत पर चला गया और वहाँ से उसने प्रहस्त को दूत बनाकर लंका में भेजते हुए यह कह दिया कि--'प्रहस्त! तुम शीघ्र ही जाकर यक्षराज कुबेर से शान्तिपूर्वक कह दो कि—'हे राजन् ! यह लंकापुरी राक्षसों की है।

यदि इसे आप प्रसन्नतापूर्वक हमें लौटा दीजिये तो आपके द्वारा यह धर्म का पालन समझा जायेगा।' फिर तो प्रहस्त कुबेर पालित लंका में गया और दशग्रीव ने जैसा सिखाया था, वैसा ही उनसे प्रस्ताव किया तथा यह कहा कि पूर्वकाल में यह रमणीक लंकापुरी सुमाली आदि राक्षसों के अधिकार में थी।

अब आप इसे इनको लौटा दें। हम प्रार्थना पूर्वक याचना करते हैं। इसीलिये आपके भाई दशग्रीव ने मुझे आपके पास भेजा है। तब प्रहस्त से ऐसी बात सुनकर कुबेर ने कहा—'पहले लंका निशाचरों से सूनी थी। उस समय पिताजी मुझे इसमें रहने की आज्ञा दी और मैंने आकर इसे बसाया।

हे दूत! तुम जाकर दशग्रीव से कह दो कि, यह पुरी तथा जो कुछ अकंटक यह राज्य मेरे पास है, वह सब तुम्हारा भी है। मेरा राज्य या धन तुमसे बँटा हुआ नहीं।' यह कहकर धनाध्यक्ष अपने पिता विश्रवा मुनि के पास चले गये और सब समाचार कह सुनाया तथा पूछा कि अब मैं क्या करूँ?

यह सुन मुनिश्रेष्ठ विश्रवा ने कहा—हे पुत्र! दशग्रीव ने मुझसे भी यह बात कही थी। इस पर उस दुर्बुद्धि को मैंने बहुत डाँटा और बार-बार कहा कि, ऐसी बुद्धि से तू नष्ट हो जायेगा। परन्तु जब से वर मिला है, तबसे वह बड़ा दुष्ट हो गया है और उसके लिए मान्य अमान्य कुछ नहीं रह गया है।

मेरे शाप से उसका स्वभाव बड़ा दारुण हो गया है। अतएव अब तुम अपने अनुयायियों सहित कैलास पर्वत पर जाओ और वहीं अपनी पुरी बनाओ और लंका को त्याग दो। कैलास बड़ा राज्य स्थान है। वहाँ तुम और भी सुखी रहोगे।

हे धनद! इस राक्षस से बैर करना उचित नहीं है; क्योंकि तुम जानते ही हो कि इसे सर्वोत्कृष्ट वर प्राप्त हो चुका है। यह सुन कुबेर अपने पिता की आज्ञा मान

सपरिवार, यात्रियों, वाहनों और धन को साथ ले, कैलास पर्वत पर चले गये। फिर तो प्रहस्त ने जाकर यह समाचार दशग्रीव से कह सुनाया, जो वहाँ पर्वत पर अपने मन्त्रियों और अनुचरों सहित बैठा था। उसने कहा—लंकापुरी खाली हो गई, अब आप हम लोगों सहित उसमें चलकर प्रवेश कीजिए।

फिर दशग्रीव अपने अनुचरों सहित लंका में जा बसा। लंका में पहुँच राक्षसों ने रावण को राजतिलक दिया तथा उसने उस पुरी को फिरसे बसाया। नीले मेघ के समान राक्षसों के समूह लंका में आकर बस गये। उधर कुबेर ने कैलास पर्वत पर जाकर अति सुन्दर इन्द्र की अमरावती के समान अपनी अलकापुरी स्थापना कर उसे बसाया।

रावण को सूर्पणखा के विवाह की चिन्ता

अब रावण अभिषिक्त हो अपने भाईयों सहित अपनी बहिन सूर्पणखा के विवाह की चिन्ता में पड़ा और कालकेयवंशी दानवेन्द्र विद्युज्जिह्व के साथ उसका व्याह कर दिया। पश्चात् जब एक दिन रावण वन में शिकार खेल रहा था कि, वहाँ उसकी दृष्टि दिति के पुत्र 'मय' पर जा पड़ी। उसके साथ एक सुन्दरी कन्या भी थी। तब रावण ने जो उसका समाचार पूछा तो 'मय' अपने जीवन का सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि, यह मेरी कन्या है जो हेमा नामक अप्सरा से उत्पन्न हुई है।

मैं इसके लिए योग्य वर की खोज में इधर-उधर विचर रहा हूँ, आप कौंन हैं, अपना परिचय तो दीजिए। पुलस्त्यनन्दन रावण ने ब्रह्मा की तीसरी पीढ़ी में अपने को उत्पन्न होने वाला बतलाकर कहा कि, इस प्रकार मेरा नाम दशग्रीव है। राक्षसेन्द्र के ऐसा कहने पर मय ने अपनी कन्या का हाथ दशग्रीव के हाथ में दे दिया और कहा कि यह मेरी कन्या हेमा अप्सरा से उत्पन्न हुई है, इनका नाम मन्दोदरी है, इसे आप पत्नी के रूप में ग्रहण कीजिये। दशग्रीव ने कहा—बहुत अच्छा।

फिर तो वहीं अग्नि प्रदीप्त कर उसने मन्दोदरी का पाणिग्रहण किया। मय ने उसको एक अद्भुत और अमोघ शक्ति भी प्रदान की। दशग्रीव ने उसी शक्ति से लक्ष्मण पर प्रहार किया था। इस प्रकार भार्या ग्रहण कर दशग्रीव लंका में चला गया। लंका में जाकर फिर उसने अपने दोनों भाईयों का भी विवाह किया।

कुम्भकर्ण का व्याह वैरोचन की पौत्री अर्थात् बलि की पुत्री वज्रज्वाला से और गन्धर्वराज शैलूष की धर्मज्ञा पुत्री सरमा से विभीषण का विवाह हुआ। समय पाकर मन्दोदरी के गर्भ से मेघनाद उत्पन्न हुआ। उसी को इन्द्रजीत कहा जाता है। उसने जन्म लेते ही मेघ-सा गर्जन किया था, जिससे समस्त लंकानिवासी स्तम्भित हो गए थे, इससे दशग्रीव ने उसका नाम मेघनाद रखा था।

रावण का कुबेर के दूत को मारना

अब कुछ दिनों के पश्चात् ब्रह्मा के वरदान के अनुसार कुम्भकर्ण को मूर्तिमती तीव्र निद्रा ने आ घेरा। तब उसने समीप स्थित अपने भाई रावण से कहा कि—'हे राजन! अब मुझे निद्रा बाधित कर रही है। अतएव मेरे सोने के लिए कोई पृथक् एक भवन बनवा दीजिए। यह सुन रावण ने एक योजन चौड़ा और दो योजन लम्बा एक सुन्दर गृह निर्माण करा दिया। उसका वह शयनगृहचित्र-विचित्र बड़ा ही दर्शनीय था।

महाबली कुम्भकर्ण निद्राविष्ट हो सहस्रों वर्षों तक उसमें पड़ा सोता ही रहा और जागा नहीं। उन दिनों रावण निरंकुश हो देवताओं, ऋषियों, यक्षों और गन्धर्वों को मारता-पीटता रहा। उसने बड़े-बड़े उपद्रव किये। तब धर्मज्ञ धनेश्वर ने अपना दूत भेजकर रावण को यह बतलाया कि—'आप अपने चरित्र को सुधारें और अपनी शक्ति को धर्म के कार्य में व्यय करें। यह सब उपद्रव करना उचित नहीं है।

अब तक जो कुछ किए हो वही बहुत है। अब तो ऐसा कोई कार्य न करो कि, जिससे कुल में दूषण लगे। अन्यथा देवता और देवर्षिगण मिलकर तुम्हारे मारने का उपाय सोच रहे हैं।' कुबेर का यह सन्देश सुनकर रावण के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये। उसने अपने दाँत कटकटाते और हाथ मलते हुए दूत को यह कहकर मार दिया कि, 'धनेश्वर मेरा बड़ा भाई है इसी से क्षमा करता हूँ, अन्यथा मैं उसे मार डालता। परन्तु अब तू यहाँ से जीवित नहीं जायेगा। उसे मारकर दुष्ट रावण ने राक्षसों को खिला दिया। पश्चात् वह रावण त्रिलोकी को विजय करने चला और सर्वप्रथम कुबेर पर ही उसने आक्रमण किया।

रावण का विजय हेतु पर्यटन और कुबेर से युद्ध

तब यह देखकर कि रावण मुझसे युद्ध करने आया है, कुबेर ने यक्षों को उससे युद्ध करने की आज्ञा दी। यक्षों और राक्षसों का भयंकर युद्ध हुआ। अल्प क्षण में ही रावण के मंत्री व्यथित हो गए। रावण भी रुधिर से नहा गया, तथापि कालदण्ड के समान अपनी गदा उठाकर उसने अनेक यक्षों को मार डाला। बात की बात में उसने यक्षों की सेना को भस्म कर दिया। बहुत थोड़े ही यक्ष शेष रह गए। तब कुबेर ने फिर बहुत से यक्षों को राक्षसों से युद्ध करने के लिए भेजा।

संयोधकटक नामक बड़ी वीर यक्ष भी अपनी बड़ी बलवती सेना लेकर आ पहुँचा। उसने अपने चक्र के प्रहार से राक्षस मारीच को मारकर मूर्च्छित कर दिया। परन्तु मारीच फिर जी उठा और युद्ध कर उस यक्ष को मार भगाया। पश्चात् रावण कुबेर-पालित अलकापुरी के प्रधान द्वार पर जाकर जा लगा।

वहाँ कुबेर के सैनिक यक्षों सहित द्वारपाल से उसका युद्ध हुआ। द्वारपाल ने

उसे बहुत मारा भी, परन्तु ब्रह्मा के वरदान से वह वीर धराशायी न हुआ। फिर तो रावण ने उस द्वारपाल को मारकर पुरी में प्रवेश किया।

रावण का कुबेर को युद्ध में परास्त कर पुष्पक विमान प्राप्त करना

तदनन्तर कुबेर ने मणिभद्र नामक महायक्ष को चार हजार यक्ष सैनिकों सहित रावण से युद्ध करने को भेजा। परन्तु रावण के मंत्री प्रहस्त और महोदर ने मिलकर दो हजार यक्षों को युद्ध में मार डाला और अकेले मारीच ने दो हजार यक्षों का संहार किया। क्योंकि राक्षसों का युद्ध माया के बल से होता था और यक्षों का सरलता युक्त था।

इससे यक्षों से राक्षस प्रबल हुए। परन्तु यक्ष मणिभद्र ने राक्षस धूम्राक्ष से बड़ा युद्ध किया। उसने अपनी गदा के प्रहारों से धूम्राक्ष को मार-काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया। वह लहुलूहान हो मूर्च्छित हो गया। यह देख रावण मणिभद्र पर टूट पड़ा। उसने मणिभद्र पर अपनी शक्तियों का प्रहार कर उसका मुकुट काट गिराया। इससे वह यक्ष वीर युद्ध क्षेत्र से पलायन कर गया।

यह देख राक्षस सिंहनाद करने लगे। इतने में कुबेर हाथ में गदा लिये दिखाई पड़े। उनके साथ कोष-रक्षक शुक और प्रोष्टपद तथा पद्म और शंखनामक कोष-देवता भी आए। उन्होंने आकर देखा तो पितृ-शापित रावण धृष्टता से खड़ा है और अपने ज्येष्ठ भ्राता का प्रणामादि शिष्टाचार भी नहीं करता।

तब ऐसे रावण को देख कुबेरजी ने पितामह कुलोचित वचन उससे कहा—'हे दुर्मते! मेरे मना करने पर भी तू नहीं मानता। इसका कटुफल तू नरक में पायेगा। अब तुझे सूझ पड़ेगा। अज्ञान का कर्मफल पश्चात् पाकर समझ पड़ता है। क्या तुझे अपने क्रूर कर्मों का नितान्त ही ज्ञान नहीं रहा? अरे मूढ़! जो अपने माता-पिता, ब्राह्मण और आचार्य का अपमान करता है, उसे यमराज के यहाँ बड़ा कष्ट प्राप्त होता है।

परन्तु मैं तुमसे अधिक वार्तालाप क्या करूँ? क्योंकि मूर्ख से अधिक वार्तालाप न करना चाहिए।' ऐसा कह कुबेर ने रावण के मारीच आदि मन्त्रियों पर भयानक प्रहार कर दिया। वे ताड़ित हो युद्ध क्षेत्र त्याग पलायन कर गये। तब रावण के मन्त्रियों को भगाकर महाबलवान् कुबेर ने रावण के मस्तक पर अपनी प्रचण्ड गदा का प्रहार किया, किन्तु रावण अपने स्थान से विचलित न हुआ। अब कुबेर और रावण दोनों परस्पर युद्ध करने लगे।

रावण व्याघ्र, शूकर, मेघ, पर्वत, सागर, वृक्ष, यक्ष और दैत्य के रूपों में दृष्टि आने लगा। उसका मुख्य स्वरूप दृष्टिगोचर ही न होता। उसी समय रावण ने अपने एक विशाल अस्त्र से कुबेर की विशाल गदा को विद्ध कर दिया। साथ ही उनके

मस्तक पर भी प्रहार किया। उस प्रहार को कुबेर सहन न कर सके और रक्त वमन करते हुए वृक्ष के समान धराशायी हो गए!

यद्यपि निधि देवताओं ने कुबेर को उठाकर नन्दन वन में पहुँचाया और सचेष्ट किया। इस प्रकार धनेश्वर को परास्त कर रावण ने विजय स्वरूप उनका पुष्पक विमान छीन लिया। पुष्पक की विचित्र रचना थी। अब दुर्मति रावण उस पर आरूढ़ हो कैलास से नीचे उतरा। अब उसने अपने को ऐसा समझा मानों त्रिलोकी को विजय कर लिया।

रावण को नन्दी का शाप

हे राम! इस प्रकार रावण अपने भ्राता कुबेर को विजय कर स्वामिकार्तिक के जन्मस्थान 'शरतण' नामक सरकण्डों के विशाल वन में जा पहुँचा। वहां से आगे के पर्वतों पर चढ़कर जब वह चला तो पुष्पक की गति अवरुद्ध हो गयी। वहाँ रावण सोचने लगा कि, पुष्पक क्यों नहीं चलता है? इतने ही में अति करालरूप काले-पीले रंगों वाले अति लघुरूप उसे नन्दीश्वर दिखाई पड़े, जो बड़े ही विकट रूप मूँढ़ मुड़ाये शिव की सेवा में लगे रहने वाले थे।

उन्होंने रावण के निकट जाकर निर्भीकता से कहा 'हे दशग्रीव! यहाँ शिवजी क्रीड़ा कर रहे हैं। अत: तू यहाँ से चला जा। इस पर्वत पर चाहे गरुड़, नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व और राक्षस कोई भी हो, नहीं जा सकता।' नन्दी के इन वचनों को सुनकर रावण मारे क्रोध के जल गया, उसके नेत्र लाल हो गये। वह अपने कुण्डलों को हिलाता हुआ पुष्पक विमान से उतर पड़ा और यह कहता हुआ की यह कौन शंकर है? पर्वत के नीचे आ गया।

वहाँ रावण ने देखा कि, नन्दी दीप्त शूल लिये दूसरे महादेव के समान ही शंकरजी के निकट खड़े हैं। तब वानर-जैसा नन्दीश्वर का मुख देख-देख रावण अट्टहास करने लगा। यह देख नन्दी बड़े कुपित हुए। उन्होंने कहा—दशानन! तूने जो मेरे वानररूप की अवज्ञा कर अट्टहास किया है तो मेरे समान ही तेजस्वी वानर तेरे वंश का मूलोच्छेदन करने के लिये उत्पन्न होंगे।

वे ही तेरे इस प्रबल अहंकार और शारीरिक बल के दर्प को दूर करेंगे। यद्यपि मैं तुझे अभी इसी क्षण मार डालता, तथापि क्या करूँ, तू तो स्वकृत दुष्कर्मों से पूर्व ही मर चुका है। फिर मरे को मारना ही क्या है? महात्मा नन्दीश्वर के यह कहते ही देवताओं ने आकाश से दुन्दुभी बजायी और पुष्प वर्षा की। परन्तु महाबली रावण ने इसकी किञ्चित् भी चिन्ता न की।

पर्वत के निकट जा वृषभपति रुद्र की अवहेलना करने के लिए उस पर्वत

को ही उखाड़ देना चाहा और तत्क्षण ही अपनी दोनों भुजाएँ उसके भीतर प्रवेश कर पर्वत को उठा लेना चाहा। पर्वत काँपने लगा। पर्वत के कम्प से महादेवजी के समस्त गण काँप गये और पार्वतीजी भी भयभीत हो महेश्वर से चिपट गईं। हे राम! फिर महादेवजी ने बिना किसी प्रयास के ही अपने पैर के अँगूठे से उस पर्वत को दबा दिया।

पर्वत के दबाते उनके नीचे रावण की विशाल भुजाएँ पिसने लगी। वह रोष से तथा भुजाओं के दबने की पीड़ा से सहसा ऐसे वेग से चिल्लाया कि उसके चीत्कार से त्रयलोक कम्पित हो गया। वज्रपात जैसा शब्द सुनाई पड़ा। देवता विचलित हो गये, समुद्र संक्षुब्ध हो गये, पर्वत काँप उठे। तब दशान के मन्त्रियों ने उससे कहा— हे दशानन! अब तुम उमापति नीलकंठ महादेव को स्तुति से प्रसन्न करो।

यहाँ तुम्हारी रक्षा का अब कोई अन्य उपाय नहीं है। महादेव जी बड़े दयालु हैं। शरण जाते ही वह तुम पर प्रसन्न हो जायेंगे। तब दशानन ने शिवजी को प्रणाम कर सामवेद के विविध मन्त्रों द्वारा उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया और उस प्रकार रोते-बिलकते उसे एक सहस्त्र वर्ष व्यतीत हो गये, तब महादेवजी रावण पर प्रसन्न हुए और पर्वत से भुजाएँ निकालने का उसे अवसर दिया। साथ ही उसी दिनसे उसके उस चीत्कार के कारण उन्होंने ही उसका नाम 'राव' रख दिया और कहा कि अब तेरी जिधर इच्छा हो, चला जा।

उसी समय श्री महादेवजी को प्रसन्न देख रावण ने देवताओं, गन्धर्वों, दानवों, राक्षसों, गुह्यकों, नागों तथा अन्य प्राणियों से अपनी अवध्यता तथा ब्रह्माजी द्वारा वर प्राप्ति की बात कहकर यह निवेदन किया कि—इतने पर भी मेरी जो शेष आयु रह गई है वह मेरे किसी कार्य से नष्ट न हो, इसका मुझे वर दीजिये और अपना एक शस्त्र भी दीजिए। इस पर शंकरजी ने उसे अपना चन्द्रहास नामक महादीप्त खड्ग (तलवार) प्रदान किया तथा उसकी शेष आयु भी दे दी।

साथ ही यह भी आदेश दे दिया कि, इस खड्ग का कभी अनादर मत करना अन्यथा यह मेरे पास चला आयेगा। रावण महादेवजी को प्रणाम कर पुष्पक पर बैठ वहाँ से लौट पड़ा और पृथ्वी के सभी बलवानों और पराक्रमी क्षत्रियों को सताने लगा। कितने ही शूरवीर उसकी अवज्ञा पर मार डाले गये। बुद्धिमान् जनों ने उसे दुर्जय समझ अपनी पराजय स्वीकार कर ली।

वेदवती द्वारा रावण को शाप

हे राजन् ! अब महाबली रावण पृथ्वी पर विचरता हुआ एक दिन हिमालय के वन में जा पहुँचा। वहाँ उसने साक्षात् देवकन्या के समान एक ऐसी कन्या देखी

जो मृगचर्म धारण किये तपोनुष्ठान में रत थी। उसे देखते ही रावण कामदेव से पीड़ित हो गया और मुसका कर उसका परिचय पूछते हुए उसे विमोहित कर अपनी अभिलाषा तृप्त करना चाहा और कहा कि तेरी युवावस्था और सौन्दर्य इस प्रकार के तप के योग्य नहीं है, तू अपने इस संकल्प को त्याग दे। फिर तू यह तो बतला कि, इतना कठिन तप किसलिए करती है?

तू किसकी पुत्री है और तेरा पति कौन है? तब रावण के इस प्रकार पूछने पर उस यशस्विनी एवं तपस्विनी कन्या ने रावण का सविधि आतिथ्य करते हुए कहा कि 'मैं ब्रह्मर्षि कुशध्वज की पुत्री हूँ। मेरा नाम वेदवती है। मेरे विवाह के लिए कितने ही देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग मेरे पिता से मिले और मुझसे ब्याह कर देने की प्रार्थना की, परन्तु मेरे पिता यह चाहते थे कि उनके जामात्र सुरेश्वर विष्णु हों, अन्य नहीं। इससे बलगर्वित दैत्येन्द्र शुम्भ ने उन्हें रात्रि में सोते समय मार डाला।

मेरी महाभागा माता उनकी शव के साथ सती हो गयीं। तबसे मैं अपने पिता की इच्छानुसार श्रीविष्णु को ही अपना पति बनाने के लिए तप कर रही हूँ। जो सत्य बात थी, वह मैंने तुमसे कह दी। उन पुरुषोतम के अतिरिक्त मेरा कोई अन्य पति नहीं हो सकता। हे रावण! मैंने तुमको जान लिया। तुम यहाँ से चले जाओ। मैं अपने तपोबल से त्रैलोक्य में जो कुछ होता है वह सब जानती हूँ। यह सुनकर कामबाण से पीड़ित रावण विमान से उतर पड़ा और अश्लीलतापूर्वक बकता हुआ उसके केशों को पकड़ कर उससे बर्बस अपनी काम-पिपाशा शान्त करना चाहा तथा विष्णु की निन्दा भी किया।

इस पर वेदवती ने क्रोध में भरकर अपने हाथ से जो इस समय खड्ग रूप हो गये थे—अपने उन बालों को काट डाला और अपने क्रोध से अग्नि प्रदीप्त कर रावण को भस्म करती हुई उस अग्नि में प्रवेश कर गई तथा यह कह गई कि पापात्मा! तेरा वध करने के लिए मैं पुनः उत्पन्न होऊँगी। क्योंकि पापी पुरुष को मारना स्त्रियों के वश की बात नहीं है।

यदि मैं तुझे शाप दूँ तो मेरी तपस्या क्षीण होगी। यदि मैंने कुछ भी सुकृत किया हो तो उसके पुण्य से फिर किसी धर्मात्मा के गृह में अयोनिज जन्म धारण करूँ। ऐसा कह वेदवती उस धधकती चिता में कूद पड़ी। चिता के चारों ओर पुष्प छितरा उठे। हे प्रभो! वही वेदवती जनकराजा के गृह में कन्या रूप से उत्पन्न होकर तुम्हारी भार्या हुई है। हे महाबाहो! तुम भी वे ही सनातन विष्णु हो।

रावण का राजा मरुत् को जीतना

वेदवती के अग्नि में प्रवेश करने के पश्चात् रावण पुष्पक विमान पर बैठ

चारों ओर पृथ्वी में विचरते हुये उशीरबीज नामक उस देश में जा पहुँचा कि जहाँ देवताओं सहित राजा मरुत यज्ञ कर रहे थे और बृहस्पतिजी के सगे भ्राता धर्मज्ञ संवर्त ऋषि सब देवताओं सहित उनका यज्ञ करा रहे थे। तब वरदान से अजित रावण के वहाँ पहुँचते ही उसे देख, उसके सताने के भय से बस देवता पक्षिरूप होकर पलायन कर गए। रावण अपवित्र कुत्ते के समान उस यज्ञशाला में प्रवेश कर गया और वहाँ जाकर राजा मरुत से बोला—या तो तुम मुझसे युद्ध करो या हार मानो।

मरुत ने पूछा—तुम कौन हो? यह सुनकर रावण अट्टहास करते हुए बोला—मैं तुम्हारी सरलता पर प्रसन्न हूँ। क्योंकि तुम धनद कुबेर के लघु भ्राता मुझ रावण को नहीं पहचान रहे हो। त्रैलोक्य में मेरे बल को कौन नहीं जानता? जिस रावण ने अपने ज्येष्ठ भ्राता को पराजित कर उसका यह पुष्पक विमान छीन लिया, उसे कौन नहीं जानता? राजा मरुत ने कहा—तुम धन्य हो। वास्तव में तुम्हारे जैसा श्लाघ्य पुरुष तो त्रिलोकी में कोई नहीं है जिसने अपने बड़े भाई को युद्ध में परास्त कर दिया। भला इस पर भी तुम अपनी प्रशंसा करते हो? रे दुष्ट! खड़ा रह। अब तू मेरे समक्ष जीता नहीं जा सकता।

मैं अपने पैने बाणों से तुझे आज ही यमालय भेजता हूँ। तदनन्तर राजा मरुत धनुष बाण ले रावण से युद्ध करने के लिए यज्ञशाला से बाहर निकले। किन्तु संवर्त मुनि ने उनके आगे आकर उनका मार्ग रोक दिया और कहा—यह माहेश्वर यज्ञ है, इसमें क्रोध करना अपके कुल के लिय घातक होगा, अतः इससे युद्ध न कीजिये।

यज़दीक्षित पुरुष क्रोध नहीं करते। फिर यह राक्षस अजेय भी है। तब अपने गुरु की आज्ञा मानकर राजा मरुत ने रावण से युद्ध करने का विचार त्याग दिया। रावण के मन्त्री ने कहा—मरुत हार गया। फिर तो ऐसी घोषणा कर यज्ञ में आये हुए ऋषियों को खा-चबाकर, उनका रक्त पेटभर पीकर रावण पुनः पृथ्वी मण्डल पर विचरने लगा।

इक्ष्वाकुवंशी महाराज अनरण्य का रावण को शाप

अब राजा मरुत को जीतकर राक्षसाधिप युद्धकांक्षी रावण नगरों में विचरने लगा। उसने महेन्द्र और वरुण के समान श्रेष्ठ राजाओं के समीप जाकर कहा कि, या तो तुम मुझसे युद्ध करो या अपनी हार मानो। तब बुद्धिमान् राजाओं ने परस्पर गोष्ठी कर अपनी हार मान ली। क्योंकि रावण को वरदान का बल था। मरुत, महेन्द्र, वरुण, सुरथ, गाधि, गय और पुरूरवा आदि सब राजाओं ने उससे अपनी पराजय स्वीकार ली। तब रावण अयोध्यापुरी में पहुँचा।

वहाँ महाराज अनरण्य से भी उसने वैसा ही कहा। किन्तु अयोध्यापति

महाराज अनरण्य ने कहा—मैं तुझसे युद्ध करूँगा। महाराज अनरण्य ने पहले ही से रावण का वृत्तान्त सुनकर अपनी सेना सजा रखी थी। फिर तो उनकी वह सेना राक्षस के वधार्थ शीघ्र ही युद्ध के लिए निकल पड़ी। उसमें दश हजार हाथी, एक लाख घोड़े तथा सहस्रों अश्वारोही और पदाती सैनिक थे।

दोनों ओर से युद्ध हुआ। महाराज अनरण्य और राक्षसेन्द्र रावण का अद्भुत युद्ध होने लगा। किन्तु कुछ ही क्षणों में रावण के बलवान् मन्त्रियों एवं मायावी राक्षसों ने उनकी समस्त सेना को काट-मारकर बचे बचाये सैनिकों को मार पीटकर भगा दिया। पृथ्वी रक्तरंजित हो गई। युद्ध क्षेत्र में भयानक दृश्य उपस्थित हो गया। फिर महाराज अनरण्य ने राक्षसराज के शिर में आठ सौ बाण मार उसे विक्षिप्त कर देना चाहा।

किन्तु उन सब बाणों से रावण को खरोंच तक न लगी। इतने में क्रोध में भरकर रावण ने महाराज के मस्तक पर जो एक थप्पड़ लगाया तो उसे वे सहन न कर सके और जैसे वन में बिजली का मारा साखू का वृक्ष गिर पड़ता है, वैसे ही वे धराशायी हुए। आहत होने पर उन्होंने कहा—'हे राक्षस! यह तो तुमने इक्ष्वाकुकुल का अपमान किया है, इसके कारण मैं कहता हूँ कि यदि मैंने दान दिया हो, होम किया हो, तप किया हो और न्यायपूर्वक प्रजापालन किया हो तो इक्ष्वाकुकुल में दाशरथी राम उत्पन्न होकर तेरा वध करें।

महाराज अनरण्य के मुख से यह वचन निकलते ही मेघों की गर्जना के तुल्य आकाश से नगाड़े के बजने का शब्द सुनाई पड़ा और पुष्प-वृष्टि हुई। तदनन्तर महाराज अनरण्य स्वर्ग सिधारे और रावण भी चला गया।

नारद जी द्वारा रावण को यमपुर विजय की प्रेरणा

राक्षसाधिप रावण पृथ्वी पर मनुष्यों को कष्ट देता हुआ विचर रहा था कि उसने मेघ पर आरूढ़ मुनिपुङ्गव नारदजी को देखा। उसने उन्हें प्रणाम किया और कुशल पूछ आगमन का कारण पूछा। देवर्षि ने कहा—विश्रवानन्दन राक्षसेन्द्र! खड़े रहो। मैं तुम्हारे मन्त्रियों और तुम पर बड़ा प्रसन्न हूँ।

तुमने तो गन्धर्व और नागादिकों को वैसे ही पराजित कर दिया है कि जैसे विष्णु ने दैत्यों को। अत: मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। अब मैं तुम्हारे हित की कुछ बात कहता हूँ, ध्यान से सुनो। हे तात! तुम तो देवताओं से भी अवध्य हो। फिर इन बेचारे मनुष्यो को क्यों मारते हो।

ये तो स्वयं ही मृत्यु के वशीभूत हैं। ये तो बेचारे स्वयं ही सदा विपत्तिग्रस्त रहते हैं और विशेषत: अपना कल्याण करने में अत्यन्त ही मूढ़ हैं। जरा आदि सैकड़ों

व्याधियों से आवृत्त रहते हैं। अत: ऐसों के मारने से क्या लाभ है? वे तो अपने सुख-दु:ख के समय को भी नहीं जानते। फिर ये सब मरकर यमपुरी ही में तो जायेंगे।

अतएव हे पौलस्त्यनन्दन! तुम यमराज की पुरी पर चढ़ाई करो। उस पुरी को जीतो; क्योंकि उसे जीतने पर ही तुम अपने से सबको जीता हुआ समझोगे। तब इस प्रकार नारद जी के समझाये जाने पर स्वतेज से दीप्त लंकापति रावण ने उन देवर्षि को प्रणाम किया और मुसकुराता हुआ कहने लगा—देवर्षि! आपका कहना यथार्थ है, मैं ऐसा ही करूँगा।

इस समय मैं विजयार्थ रसातल की यात्रा कर रहा हूँ। फिर त्रैलोक्य विजय कर नागों और देवताओं को अपना वशवर्ती बनाऊँगा और पुन: अमृत प्राप्ति के लिये समुद्र-मन्थन भी करूँगा। इस पर नारद जी ने कहा—अच्छा, यदि तुम्हें रसातल ही जाना है, तो अन्य मार्ग से क्यों जाते हो? यह मार्ग सीधे प्रेतराज के नगर यमपुरी को चला गया है, इससे तुम सीधे उनके समक्ष जा निकलोगे।

यह सुनकर रावण ने शरद्काल के मेघ के समान हँसकर कहा—बहुत अच्छा हम ऐसा ही करेंगे। अब मैं यम के वधार्थ ही इस दक्षिण दिशा के मार्ग से जाता हूँ। मेरी तो यही पूर्व प्रतिज्ञा थी कि, मैं चारों लोकपालों को विजय करूँ। उसमें सब प्राणियों को सताने वाले उस यम को मैं मारूँगा। ऐसा कह और नारदजी को प्रणाम कर रावण दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ा। नारदजी क्षण भर मौन हो विचार करते रहे। उन यमराज को कैसे यह रावण जीतेगा? इसका तो मुझे बड़ा कुतूहल है। अत: स्वयं ही चलकर यमराज और रावण का युद्ध देखूँगा।

रावण-यमराज युद्ध

यमपुरी पहुँच कर रावण ने देखा कि सब प्राणी बँधकर मारे-पीटे जा रहे हैं। सब प्राणी पुण्यों और पापों का फल पा रहे हैं। जल के स्थान में रक्त से पूर्ण अति गम्भीर वैतरणी नदी को सब पार कर रहे और बालू पर घसीटे जा रहे हैं। तब इस प्रकार के दृश्य देखते हुए रावण ने उन पापियों को, जो अपने पापकर्म फल से कष्ट भोगाये जा रहे थे, उन्हें अपने बल से मुक्त कर दिया। फिर तो रावण द्वारा जीवों को मुक्त हुआ देख यम-किन्नरों ने उस पर आक्रमण कर दिया।

यमराज के उन लाखों सैनिकों की गणना नहीं हो सकती जो अभिलषित युद्ध करने लगे। उधर रावण भी स्वयं युद्ध कर रहा था। कुछ क्षण पश्चात् सभी यम किन्नर एक स्वर से रावण पर टूट पड़े और उस पर शूलों की वर्षा करने लगे। उस शूल वर्षा से रावण का शरीर बिंध उठा और उसने रक्त स्नान सा कर लिया। परन्तु वह यमराज के सैनिकों पर बड़ी-बड़ी शिलाएँ बरसाने लगा। उधर यमकिन्नरों ने भी

अपने भी अपने भयानक प्रहारों से रावण का धनुष काट दिया और उसके कवच को तोड़ डाला।

फिर भी वह युद्ध करता ही रहा और अब वह पुष्पक विमान से उतर पृथ्वी पर खड़ा हो हाथ में दूसरा धनुष ले, दूसरे यमराज के समान, युद्ध के लिये सन्नद्ध हुआ। फिर पशुपतास्त्र को अभिमन्त्रित कर सबको ललकारते हुए रावण ने तिष्ठ-तिष्ठ कह उन पर भयानक प्रहार किया। पशुपतास्त्र का रूप धूम्र और ज्वालमाला से युक्त था।

ज्वालमाली बना रावण यम की सेना पर उसे भस्मसात् करता हुआ दौड़ रहा था। उसके उस अस्त्र के तेज से यमराज के समस्त सैनिक त्रस्त हो गिर पड़े। यह देख भयंकर विक्रमी राक्षस रावण अपने मन्त्रियों सहित पृथ्वी को कम्पित करता हुआ-सा महानाद करने लगा।

रावण के इस घोर नाद को सुनकर यमराज ने समझ लिया कि रावण की विजय हो गई और मेरी सेना नष्ट हो गई। तब वह स्वयं अपने विशाल रथ पर बैठ पाश और मुद्गर ले युद्ध करने आया। तदनन्तर सारथी ने उनके लाल रंग वाले घोड़ों को हाँका तो वह रथ घोर शब्द करता हुआ राक्षसराज रावण की ओर चल पड़ा। यम को स्वयं आता देख रावण के मंत्री भयभीत हो यत्र-तत्र पलायन करने लगे; परन्तु रावण किञ्चित् भयभीत न हुआ।

सात दिन-रात यम और रावण एक-दूसरे पर अपने अस्त्र शस्त्र से प्रहार करते रहे। परन्तु जब यमदेव ने युद्ध में इतनी दृढ़ता प्रकट की तब वह मूर्च्छित हुआ तथा उसने युद्ध से अल्प विराम लिया। किन्तु पलायन नहीं किया। यमराज ने कहा— अब मैं रावण का संहार ही कर डालूँगा। तदनन्तर यमराज ने क्रोध से अमोघ कालदण्ड को उठा रावण को मारना चाहा।

यह देख ब्रह्माजी उनके समीप आकर बोले—वैवस्वत महाबाहो! इस दण्ड को चलाकर तुम इस राक्षस को मत मारो। क्योंकि मैं इसको वरदान दे चुका हूँ। अत: मेरा वचन मिथ्या मत करो। ब्रह्माजी के ये वचन सुनकर, धर्मात्मा यमराज ने कहा— आप मेरे स्वामी हैं।

अत: मैं इस दण्ड को इस पर न चलाऊँगा; परन्तु आप ही बतलावें कि इस युद्ध में क्या करूँ? यह तो अपाके वरदानसे अवध्य ही है। अत: अब उस राक्षस की दृष्टि से मैं अदृश्य हो रहा हूँ। यह कहकर यमराज अन्तर्ध्यान हो गये। इस प्रकार रावण ने यमराज पर विजय प्राप्त की।

रावण का यमराज को जीतकर आगे बढ़ना

तदनन्तर समर-विजयी रावण समुद्र में प्रवेश कर अपने मन्त्रियों सहित

रसातल में जहाँ दैत्य और नाग रहते हैं और जिसके रक्षक वरुणदेव हैं वहाँ चला गया। तब वासुकि नाग की भोगवतीपुरी में जाकर वह नागों को जीतकर उस मणिपुरी में गया, जहाँ निवातकवच दैत्य वास करते थे। वहाँ पहुँच रावण ने सबको युद्ध की उत्तेजना दी। अतः उन्होंने बड़े हर्ष से अपने विविध अस्त्रों द्वारा रावण से महासंग्राम किया और उभय में किसी ने भी अपनी पराजय न स्वीकार की।

तब लोकपितामह ब्रह्मजी वहाँ भी शीघ्र ही पहुँचे और उन्होंने उन्हें समझा कर मित्रता करा दी। निवात कवचों ने रावण का बड़ा सत्कार किया। वहाँ रहकर रावण ने निवातों से सौ प्रकार की मात्राएँ सीखीं। फिर वरुणदेव के नगर की खोज करता हुआ रावण कालकेय दैत्यों के 'अश्म' नामक नगर में पहुँचा। कालकेय दैत्य बड़े बलवान् थे। किन्तु रावण ने उन्हें भी परास्त कर दिया। इसी युद्ध में रावण ने अपने बहनोई विद्युज्जिह्व को तलवार के घाट उतार दिया।

उस युद्ध में रावण ने क्षणमात्र में चार सौ दैत्यों को मार डाला। तदनन्तर रावण को श्वेत मेघ के सदृश वरुण का दिव्य भवन दिखाई पड़ा। रावण ने वहीं सुरभी गौ भी देखी जिसके थन से सर्वदा दूध की धार बहा करती थी। उस परम अद्भुत सुरभि की प्रदक्षिणा कर रावण ने वरुण का वह श्रेष्ठ भवन देखा जो सैन्य-सुरक्षित और बड़ा ही भयंकर था। वहाँ पहुँच कर रावण ने वरुण के सेनापतियों को ताड़ित किया तथा युद्ध कर उन्हें मार डाला।

इतने ही में महात्मा वरुण के पुत्र-पौत्र क्रुद्ध हो रावण से युद्ध करने को आ पहुँचे। फिर तो देवासुर संग्राम की भाँति दोनों ओर से आकाश में घोर युद्ध आरम्भ हुआ। वरुण की सेना ने अपने अग्निवत् बाणों को चलाकर रावण को संग्राम से विमुख कर दिया। तब उसके महोदर आदि मंत्री वरुण के पुत्रों से युद्ध करने लगे और उन्हें परास्त-सा कर दिया।

यह देख, तब तक सचेष्ट हो रावण भी उन पर प्रहार करने लगा। फिर जलधारा के समान बाण बरसा कर वरुण के पुत्रों को मारने लगा। वरुण के पुत्र युद्ध में मूर्च्छित हो गये। सारथी उन्हें उठाकर तत्क्षण घर ले आया। रावण गर्जन करने लगा साथ ही उसने वरुण के सेवकों से कहा कि तुम मेरा संदेश वरुण से जाकर कहो।

इस पर वरुण के 'प्रहास' नामक मन्त्री ने कहा—इस समय सलिलेश्वर वरुणजी गन्धर्व गान श्रवण करने के लिये ब्रह्मलोक गये हुए हैं। उनके वीर कुमारों को तो तुम परास्त ही कर चुके हो। अब वरुण महाराज की अनुपस्थिति में तुम क्या व्यर्थ परिश्रम करते हो? यह सुन रावण ने भी वहाँ भी अपने विजय की घोषणा करा दी।

रावण का बहुत-सी कन्याओं और स्त्रियों का हरण करना तथा उनसे शापित होना

वहाँ से लौटते समय दुरात्मा रावण मार्ग के राजर्षियों, देवताओं और दानवों की कन्याएँ हरण करता हुआ लंका में आया। जिसकी भी दर्शनीय कन्या सुन्दरी स्त्री को मार्ग में देखता, उसके बन्धुजनों को मारकर उसे हरकर अपने विमान में बैठा लेता। इस प्रकार उसने कितनी ही राक्षसों, असुरों, मनुष्यों, पन्नगों और यक्षों की कन्यायें अपने विमान में बैठा लीं। वे बेचारी दुःखी हो शोकार्त्त भयोत्पन्न अग्नि ज्वाला सी अश्रुधारा बहाती थीं।

एक नहीं सैकड़ों ही कन्याएँ शोक सन्तप्त ऐसा ही अश्रु प्रवाहित कर रही थीं। उनके शोक और विलाप का वर्णन नहीं हो सकता। उस सब कन्याओं और स्त्रियों ने भी रावण को यही शाप दिया कि 'यह दुर्मति पर स्त्री के कारण ही मारा जावे।' उन पतिव्रताओं के मुख से यह वाक्य निकला ही था कि, आकाश में दुन्दुभी बज उठी और पुष्पों की वर्षा भी हुई। फिर तो उन स्त्रियों के शाप से रावण का पराक्रम नष्ट हो गया और उसकी कान्ति मन्द पड़ गई।

उन पतिव्रताओं के शाप को सुन रावण उदास हो गया। इस प्रकार वह उनके विलाप और शाप सुनता हुआ लंका में आया। निशाचरों ने बड़ा स्वागत किया। परन्तु वह ज्योंही वहाँ पहुँचा कि, त्योंही उसकी बहिन उसके समक्ष आकर सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ी। रावण ने बहिन को उठाया और परिसान्त्वना देकर पूछा कि—क्या बात है?

तब उस राक्षसी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसकी ओर देख कर कहा कि तुम्हारे चौदह सहस्त्र कालकेय दैत्यों को मारने के समय मेरे पति को भी शत्रु समझकर मार डाला। अतः तू मेरा नाम मात्र का ही भाई है। हे राजन् तेरे कारण तुझे वैधव्य भोगना पड़ेगा। तब रावण ने उसे उठाकर धैर्य बँधाया और कहा—बहिन युद्ध में मुझे अपने और पराये का कुछ ज्ञान न था, जिससे तेरा स्वामी मेरे हाथ से मारा गया।

अब तू अपने ऐश्वर्यवान् भ्राता खर के पास जाकर रह। तेरा वह भाई खर अबसे चौदह हजार राक्षसों का स्वामी होगा। वह तेरी सब आज्ञाओं का नित्य पालन करेगा। इसके पश्चात् खर चौदह हजार भयानक राक्षसों को साथ ले तत्क्षण ही दण्डकवन को प्रस्थित हुआ। और वहाँ पहुँच कर निष्कण्टक राज्य करने लगा शूर्पणखा भी वहीं चली गयी।

खर और दूषण को जनस्थान भेजना

इस प्रकार जब दशग्रीव उस खर की घोर सेना और बहिन को सान्त्वना देकर हर्षित और स्वस्थ हुआ, तब अपने अनुचरों को साथ लेकर, वह निकुम्भिला

नामक लंका के उस उपवन में चला कि, जहाँ उसका भयंकर रूपधारी पुत्र मेघनाद काले मृग का चर्म ओढ़े हुए और दण्ड-कमण्डल लिये यज्ञ मण्डप में शोभित हो रहा था।

वहाँ रावण ने अपनी बीसों भुजाएँ फैलाकर पुत्र को हृदय से लगाया और पूछा कि 'हे पुत्र! तू यह क्या कर रहा है?' तब पुरोहित शुक्राचार्य ने रावण से कहा—तुम्हारे पुत्र ने सविस्तार सात बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया है। जिसमें अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध तथा वैष्णव यज्ञ तो इसने पूर्ण कर लिये हैं।

तत्पश्चात् महेश्वर यज्ञ आरम्भ होने पर तुम्हारे पुत्र को साक्षात् महादेवजी से कई वर प्राप्त हुए हैं। एक इच्छानुसार चलने वाला दिव्यरथ भी इसने पाया है और तापसी नाम की माया भी प्राप्त हुई है जिसके द्वारा अन्धकार व्याप्त हो जाता है। यह माया जिसे प्राप्त होती है उसकी गति को देवता या असुर कोई भी नहीं जान पाते।

इसके अतिरिक्त इसे दो अक्षय तरकस, दुर्जेय धनुष तथा संग्राम में शत्रुघाती एक बड़ा ही बलाढ्य शस्त्र भी प्राप्त हुआ है। आज ही यज्ञ की समाप्ति में यह सब इसे प्राप्त हुआ है तथा हम दोनों आज ही आपसे मिलने के इच्छुक थे।' यह सुनकर रावण ने कहा—यह कार्य अच्छा नहीं हुआ। क्योंकि इसमें तो विविध उपचारों से तुमने मेरे शत्रु इन्द्रादि देवों की पूजा भी की होगी।

अच्छा, जो किया वह ठीक ही है। इसमें सन्देह नहीं कि, तुम्हें पुण्य की प्राप्ति होगी। यह कह रावण अपने पुत्र और विभीषण को साथ ले अपने भवन में आया। वहाँ उसने उन सब रोती हुई स्त्रियों को विमान से उतार दिया। तब उन सब स्त्रियों के प्रति रावण की आसक्ति जानकर धर्मात्मा विभीषण ने कहा—राजन्! आपके ये आचरण आपके सुयश, धन और कुल का नाश करने वाले हैं। हे राजन्! जिस प्रकार आपने इन स्त्रियों के बन्धुजनों को मार-पीटकर इनको हरा है, उसी प्रकार मधु दैत्य आपके मस्तक पर पाँव रखकर आपकी बहित कुम्भनसी स्त्री को हर ले गया है।'

रावण ने पूछा—तुम सब क्या करते थे? विभीषण ने उत्तर दिया—आपका पुत्र यज्ञ में लगा था। मैं जल में निवास करता था और भैया कुम्भकर्ण नींद का आनन्दले रहे थे। इसी समय महावली मधु ने आक्रमण किया और यहाँ के प्रधान-प्रधान राक्षस मन्त्रियों को मारकर वह कुम्भीनसी को हर ले गया। यद्यपि वह अन्तःपुर में भलीभाँति सुरक्षित थी। परन्तु आप अपनी दूषित बुद्धि के कारण, पाप प्रवृत्त हुए हैं।

इस कर्म का फल आपको इसी लोक में प्राप्त हो गया। इसे आप भली प्रकार

समझ लें। तब विभीषण का यह वचन सुनकर राक्षेन्द्र रावण क्रोध से जल उठा। उसके नेत्र लाल हो गये। उसने कहा—मेरा रथ शीघ्र जोतकर लाया जाय। शूर-वीर योद्धा युद्ध के लिये सन्नद्ध हों। भाई कुम्भकर्ण और मुख्य-मुख्य निशाचर नाना प्रकार के आयुधों से सज्जित हो वाहनों पर आरूढ़ हों। मैं मधु का आज ही वधकर देवलोक की यात्रा करूँगा।

राक्षसों की चार हजार अक्षौहिणी सेना युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गई। मेघनाद उस सेना का अग्रणी हुआ। रावण मध्य में और कुम्भकर्ण उसके पृष्ठ भाग में स्थित हुआ। धर्मात्मा विभीषण अपने धर्माचार में रत लंका में रह गये। शेष सभी निशाचर मधुपुरी की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर दशग्रीव ने अपनी बहित कुम्भीनसी को देखा, किन्तु मधु का दर्शन नहीं हुआ।

कुम्भीनसी ने अपने भाई रावण से अपने पति मधु का जीवनदान माँगा। जब रावण हर्षित हो अपनी मौसेरी बहिन से बोला—शीघ्र बतला तेरा पति कहाँ है? मैं उसे अपने साथ लेकर जय के लिये स्वर्ग-लोक को प्रस्थान करूँगा। यह बात सुनकर कुम्भीनसी महल में सोये हुए पति को उठाकर बोली आर्यपुत्र! मेरे भाई दशग्रीव आपको स्वर्गलोक विजय पाने की इच्छा से आपको सहायक बनाना चाहते हैं।

तब पत्नी की बात सुनकर मधु ने बहुत अच्छा कहते हुए उसे स्वीकार किया और राक्षसेन्द्र के पास जाकर धर्मानुसार उसका पूजन किया। वहाँ से प्रस्थान करने के पश्चात् कैलाशपर्वत पर पहुँचते हुए सन्ध्या हो गई। इससे वहीं एक शिखर पर उसने अपनी सेना का शिविर स्थापित किया।

रावण को नलकूबर का शाप

इस प्रकार संध्या समय कैलास पर्वत के शिखर पर अपनी सेना को स्थित कर रावण स्वयं ही विश्राम करने लगा। अन्य सब सैनिक भी निद्रा विभोर हो रहे। इतने में चन्द्रोदय हुआ। महापराक्रमी रावण उठकर पर्वत शिखर पर बैठकर चन्द्रमा की प्रभा और वृक्षों के कारण वर्द्धित कैलास पर्वत की शोभा देखने लगा, जहाँ से कुबेर के भवन में गान करती हुई अप्सराओं की मधुर ध्वनि भी श्रवणगोचर हो रही थी। संगीत की तान, विविध पुष्पों की शोभा, शीतल वायु का स्पर्श, पर्वत की रमणीयता, रजनी की मधुवसा और चन्द्रोदय उद्दीपन की इन समस्त सामग्रियों के कारण रावण कामासक्त हो गया।

इसी समय सब अप्सराओं में श्रेष्ठ चन्द्रमुखी रम्भा इसी मार्ग से आ निकली। उसके सुन्दर शरीर पर दिव्य वस्त्र और आभूषण शोभ रहे थे। अङ्गों दिव्य चन्दन का अनुलेप लगा था और केशपाश में पारिजात के पुष्प गुँथे हुए थे। वह दिव्य

पुष्पों से दिव्य शृङ्गार करके किसी उत्सव में सम्मिलित होने जा रही थी। वह अपनी अलौकिक कान्ति से दूसरी लक्ष्मी के ही सदृश ज्ञात होती थी। उस समय रावण तो काम वशीभूत था ही। अत: उसने उठकर तत्क्षण ही रम्भा का हाथ पकड़ लिया।

रम्भा बहुत ही लज्जित हो गई। तथापि रावण ने मुसकाकर कहा—वरारोहे! तुम कहाँ जा रही हो। तुम्हारी क्या इच्छा है। यह समय किसे अभ्युदय का है, जो तुम्हारा उपभोग करेगा। यह सुन्दर शिला है, इस पर बैठकर विश्राम करो। हे भीरु! इस जगत् में मुझसे बढ़कर कोई नहीं है। इन्द्र, जिष्णु, अश्विनीकुमार कोई भी मेरी समता नहीं कर सकते। अत: मुझे त्याग कर तेरा अन्य के पास जाना उचित नहीं। देख मैं त्रिलोकी का विधाता दशग्रीव हूँ और तुझसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, अत: हे सुन्दरी! मेरा कहना मान ले।

रावण के ऐसे वचन सुन, रम्भा काँप उठी। उसने हाथ जोड़कर कहा—राक्षसराज! आप मुझ पर प्रसन्न होइये—मुझ पर कृपा कीजिये। आपको मुझसे ऐसी बात न कहनी चाहिये। क्योंकि आप मेरे महान् हैं, गुरु और पिता के तुल्य हैं। यदि मुझे और कोई ऐसा कहे तो आपको मेरी रक्षा करनी चाहिये। मैं धर्मत: आपकी पुत्र-वधू हूँ, यह आपसे सत्य कह रही हूँ।

मैं इस समय आपके भाई कुबेर के पुत्र नलकूबर की सेवा में जा रही हूँ और इस कार्य में विघ्न न करें। मुझे त्यागकर सज्जनों के मार्ग पर चलिए! रावण ने कहा—रम्भे! तुम अपने को मेरी पुत्र-वधू क्यों बता रही हो? यह विचार तो उस स्त्री के लिए आता है जो किसी एक पुरुष की पत्नी हो। तुम्हारे देवलोक की तो स्थिति ही कुछ और है। अप्सराओं का कोई पति नहीं होता। ऐसा कह उस निशाचर ने बलपूर्वक रम्भा को उस शिला पर बैठा लिया और कामासक्त होकर उसका उपभोग किया।

पश्चात् उस अप्सरा को उसने छोड़ दिया। वह भय कम्पित हो नलकूबर के पास चली गई और हाथ जोड़कर उसके चरणों में गिर पड़ी। नलकूबर ने कहा—'कल्याणी! यह क्या बात है?तुम मेरे पैरों पर क्यों गिर रही हो? वह थर-थर काँप रही थी। पश्चात् उसने हाथ जोड़कर, जो कुछ हुआ था वह सब बात कही। तब उस पर बलात्कार की बात सुनकर वैश्रवण कुमार नलकूबर ने ध्यान लगाकर रावण की सब बर्बरता को ज्ञात कर लिया।

उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने तत्क्षण सविधि आचमन कर हाथ में जल ले राक्षसेन्द्र रावण को यह भयंकर शाप दिया कि—'हे भद्रे! स्त्री की इच्छा न रहने पर यदि काम पीड़ित होकर किसी स्त्री पर अत्याचार करेगा तो उसके सिर

के सात टुकड़े हो जायेंगे। नलकूबर के इस शाप को जब रावण ने सुना तब से उसने अकामा स्त्रियों पर बलात्कार करना त्याग दिया।

देवताओं और राक्षसों का युद्ध तथा सुमाली वध

इसके बाद कैलाश पर्वत को लाँघकर महातेजस्वी दशानन समस्त सेना सहित इन्द्रलोक में जा पहुँचा। रावण के आक्रमण से इन्द्र का सिंहासन डगमगा गया। फिर तो आदित्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र साध्यगण तथा उनचासों देवताओं सहित उससे युद्ध करने चले।

इधर स्वयं इन्द्र भयभीत हो विष्णुजी के पास पहुँचे। ब्रह्माजी के वरदान की सब बात कह उचित मार्ग से प्रस्थान की प्रार्थना की। उन्हें उससे युद्ध करने की भी प्रेरणा दी। विष्णुजी ने कहा—अवश्य ही ब्रह्माजी से वरदान पाकर रावण इस समय बड़ा ही दुर्जय है।

तुम उससे युद्ध कर कदापि विजयी नहीं हो सकते और मैं ही इस समय उससे युद्ध करूँगा। क्योंकि शत्रु का वध किये विना विष्णु कभी समरभूमि से नहीं आते। किन्तु रावण वरदान के बल से सुरक्षित है। इससे अभी मेरा अभीष्ट पूर्ण नहीं होगा। तथापि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, मैं ही इस राक्षस की मृत्यु का कारण होऊँगा।

मैं ही इसे सपरिवार मारकर देवताओं को प्रसन्न करूँगा। परन्तु अभी समय की अपेक्षा है। तुम जाकर देवताओं सहित उससे निर्भय युद्ध करो। फिर तो ग्यारहों रुद्रादि सबने कवच धारण कर राक्षसों पर आक्रमण किया। प्रातःकाल से ही भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया। राक्षसों की अपार अक्षयवाहिनी को देख देवता व्यग्र हो गये। तदनन्तर विविध आयुधधारी देवताओं, राक्षसों और दानवों का घोर तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया।

रावण के शूरवीर और मन्त्रिगण युद्ध करने लगे। उन्होंने भीषण प्रहार कर देवताओं की सेना को मार गिराया। वे दशों दिशाओं में भाग चले। तब अपनी सेना को भागते देख अष्टम वसु, सवित्र, त्वष्टा औरपूषा तथा आदित्य देव ने बड़े साहस के साथ राक्षसों का सामना किया। युद्ध होने लगा। अब देवताओं की मार से राक्षसों की सेना त्रस्त होने लगी। यह देख राक्षस सुमाली बड़े क्रोध से उनसे युद्ध करने आया।

देवसेना नष्ट होने लगी। उसने इन देवताओं को भी मार भगाया। परन्तु सवित्र वसु फिर अपनी प्रचण्ड रथवाहिनी ले उस पर टूट पड़े। उन्होंने सुमाली के वेग को रोक दिया। सुमाली और वसु का रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। फिर तो महाबली वसु ने अपने महाबाण मारकर उसके सर्परथ को खण्ड-खण्ड कर गिरा दिया, फिर

अपनी प्रचण्ड गदा के प्रहार से उन्होंने उसे मार ही डाला तथा और भी जितने आये उन सबका उन्होंने गदा से मारकर संहार कर दिया।

मेघनाद का इन्द्र को बाँधकर लंका ले आना

अब देवताओं और राक्षसों का तुमुल युद्ध होने लगा। अन्धकार की उस घोर निविड़ता में इन्द्र, रावण और मेघनाद—यह ही तीन सावधान रह सके। देवताओं ने राक्षसों का घोर संहार कर दिया। यह देख रावण अत्यन्त ही कुपित हुआ। उसने अपने सारथी सूत से कहा—तुम शीघ्र ही मेरा रथ देवताओं की सेना के उस पार उदयाचल तक चलाओ।

सूत ने शत्रु देवताओं के मध्य से ही रथ को आगे बढ़ाया। इन्द्र ने देवताओं को उत्तेजना देकर कहा—क्या कहते हो, रावण को जीवित ही पकड़ लो। क्योंकि वरदान के प्रभाव से यह मारा तो जा नहीं सकता, अत: शीघ्रता करो। देवताओं से ऐसा कह इन्द्र दूसरी ओर घूमकर राक्षसों को मारने लगे। फिर तो रावण अबाध गति से उत्तर की ओर से देवसेना में प्रवेश कर गया।

इन्द्र दक्षिण की ओर राक्षसों पर प्रहार कर रहे थे।रावण सौ योजन तक प्रवेश कर गया। उसने अपने प्रचण्ड बाणों से देवताओं को त्रस्त कर दिया, इनमें में दानवों और राक्षसों ने बड़ा हाहाकार किया कि, हा! हम सब मारे गये, इससे यह निश्चय हो गया कि इन्द्र ने रावण को पकड़ लिया। फिर तो परम क्रोधातुर हो मेघनाद उस दारुण देवसेना पर टूट पड़ा। उसने कई उत्तम बाणों से इन्द्र के सारथि को मारकर घायल कर दिया।

तब इन्द्र रथ और सारथी को वहीं त्याग ऐरावत पर जा बैठे और मेघनाद को ढूँढ़ने लगे। पर वह तो अपनी माया द्वारा अन्तरिक्ष में अदृश्य हो रहा था। इन्द्र उसकी माया में फँस गये। उसने उन्हें बाँध लिया। यह देख देवता बड़े चिन्तित हुये। यद्यपि इन्द्र स्वयं अनेक प्रकार की माया जानते थे, तथापि इन्द्रजित् उन्हें बलपूर्वक पकड़े ले गया।

इससे देवता परम कुपित हो रावण को ऐसा मारने लगे कि, वह रण से विमुख हो गया। अब उसकी युद्धशक्ति सर्वथा ही क्षीण हो गयी। बाणों की घोर वर्षा से उसका शरीर जर्जरित हो गया। उसी समय अदृश्य रह मेघनाद अन्तरिक्ष से बोला—पिताजी! आप चिन्ता न करें, हमने इन्द्र को बाँध लिया है। अब युद्ध समाप्त हो गया, चलिए घर चलें। हमने देवताओं का मानमर्दन कर दिया। त्रिलोकपति इन्द्र को हमने बाँध लिया।

यह सुन देवताओं ने युद्ध स्थगित कर दिया और इन्द्र सहित वे वहाँ से

प्रस्थान कर दिये। रावण भी अपने पुत्र की बात सुन हर्षित हो वहाँ से चलकर मेघनाद के साथ हो उसकी प्रशंसा करने लगा और कहा—हे पुत्र! तूने मेरे कुल और वंश का गौरव बढ़ाया। आज तूने देवताओं सहित इन्द्र को जीत लिया। अच्छा, अब तू इन्द्र के रथ पर चढ़ और अपनी सेना सहित लंका को चल। मैं भी तेरे पीछे-पीछे अपने मन्त्रियों सहित हर्षित होता हुआ आता हूँ। इस प्रकार मेघनाद इन्द्र को पकड़कर लंका में ले आया।

ब्रह्मा का वर दे इन्द्र को छुड़ाना

इस प्रकार जब इन्द्र पकड़ कर लंका में लाये गये, तब सब देवता ब्रह्माजी को आगे कर रावण के पास गये। वहाँ पहुँच ब्रह्माजी ने आकाश में स्थित हो, पुत्र और भ्राताओं सहित बैठे हुए रावण से कहा—वत्स रावण! मैं तेरे पुत्र की शूर वीरता से सन्तुष्ट हूँ; क्योंकि वह तुमसे भी युद्ध में श्रेष्ठ हुआ है। इस प्रकार तुमने अपने पराक्रम से तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर ली।

अत: मैं तुम दोनों ही पर प्रसन्न हूँ। हे रावण! अबतेरा यह अतिबली पुत्र संसार में इन्द्रजीत नाम से विख्यात होगा। परन्तु हे महाबलाढ्य! अब तुम इन्द्र को छोड़ दो। इसके स्थान में बोलो कि, तुम देवतओं से क्या चाहते हो? इस महाविजयी इन्द्रजीत बोला—हे देव! यदि आप इन्द्र को छुड़ाना चाहते हैं, तो इसके बदले मुझे अमरत्व प्रदान कीजिए।

ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स! इस पृथ्वी का कोई भी प्राणी अमर नहीं हो सकता। मेघनाद ने कहा—अच्छा, अब मुझे यह वर दीजिए कि, मैं जब कभी शत्रु पर विजय पाने की इच्छा से संग्राम में उतरूँ और मन्त्रयुक्त अग्निदेव का पूजन करूँ, उस समय अग्नि से मुझे ऐसा दिव्य रथ प्राप्त हो जाया करे कि, जिस पर बैठकर युद्ध करते हुए मुझे कोई मार न सके। हाँ, यदि मैं जप और हवन को पूर्ण किये बिना ही युद्ध करूँ तब मेरी मृत्यु हो।

इस पर ब्रह्माजी ने कहा—एवमस्तु! ऐसा ही होगा। फिर तो यह वर पाकर मेघनाद ने इन्द्र को छोड़ दिया। सब देवता उनके साथ हो स्वर्ग को चले। उस समय इन्द्र दीन से हो रहे थे। उनका देवोचित तेज लुप्त सा! हो गया था और वे चिन्तामग्न हो कुछ और ही सोच रहे थे।

तब उनकी मन: स्थिति को पहचानकर ब्रह्माजी ने कहा—देवराज! यह तुम्हारे पूर्व पापों का ही फल है। अब यह शोक क्या करते हो? तुम्हें स्मरण है, तुमने उस उत्तम गुण-सम्पन्न मेरी उत्पत्ति की हुई सुन्दरी अहल्या पर, जिसे मैंने धर्मात्मा महर्षि गौतम को अर्पण किया था—कैसा अत्याचार किया था, उस समय तुम्हें मेरा कुछ भी भय न रहा और तुमने उस निरीह मुनि पत्नी का बलात्कार किया।

मुनि ने उसे अदृश्य हो जाने का शाप दिया और तुम्हें भी शापित किया। तब अहल्या की प्रार्थना पर गौतम ने कहा कि, 'इक्ष्वाकुवंश में एक तेजस्वी महारथी का अवतार होने पर कि जिनका श्रीराम नाम होगा और जब वे तपोवन में आवेंगे तब उनके दर्शन से तू पुनः पवित्र हो मुझे प्राप्त होगी और तुम्हें कहा था कि 'तू शत्रु के हाथ में पड़ेगा।'

वही तुम्हारा पाप उदय हुआ है। अब तुम वैष्णव यज्ञ कर उस पाप से निवृत्त होओ। तुम्हारा पुत्र जयन्त युद्ध में मारा नहीं गया है। उसे उसका नाना अपने साथ लेकर समुद्र में प्रवेशकर गया है। इस समय वह उन्हीं के पास विद्यामान् है।' ब्रह्माजी के वचन सुनकर देवराज ने स्वर्ग में जाकर वैष्णवयज्ञ किया और पुनः स्वर्ग का राज्य पालन रने लगे।

हे राम! इन्द्रजीत इस प्रकार का बली था। अन्यों की तो बात ही क्या है उसने देवराज इन्द्र को जीत लिया था। अगस्त्य मुनि का वचन सुन राम लक्ष्मण बड़े आश्चर्यचकित हुये। तब वानरों सहित राम के पास बैठै विभीषण ने भी कहा—हे महर्षे! अवश्य ही यह आश्चर्य की बात है, जिसे बहुत दिन पश्चात् आज मैंने यह आपसे श्रवण किया। आपका यह कथन सर्वथा ही यथार्थ है।

रावण की पराजय का इतिहास

तदनन्तर महातेजस्वी राम विस्मित हो अगस्त्यजी को प्रणाम कर बोले—हे द्विजोत्तम! जब क्रूर रावण पृथ्वी-पर्यटन करता था, तब क्या इस पृथ्वी पर कोई वीर था ही नहीं अथवा पृथ्वी वीरों से शून्य थी? राजा या राजमात्र! क्या कोई भी ऐसा पुरुष नहीं था? तब राघव के ऐसे वचनों को सुनकर भगवान् अगस्त्य ऋषि हँसकर श्रीराम से ऐसा बोले, मानों ब्रह्माजी महादेवजी से बोलते हों।

उन्होंने कहा—पृथ्वीपते! इसी प्रकार विचरता हुआ रावण एक बार स्वर्ग तुल्य अग्निदेव के स्थान जब माहिष्मतीपुरी में जा पहुँचा, तब वहाँ का राजा अर्जुन, जो अग्नि के ही सदृश प्रभावशाली था, वह अपनी स्त्रियों सहित नर्मदा पर जल विहार करने गया था। तब वहाँ पहुँच कर रावण ने उसके मन्त्रियों से पूछकर उससे भेंट करने की इच्छा प्रकट की। मन्त्रियों ने कहा कि, इस समय महाराज राजधानी में नहीं हैं।

यह सुन उस पुरी को त्याग कर रावण हिमालय के समान उस विन्ध्याचल पर आया, जो मानों पृथ्वी को फोड़कर निकाल हुआ-सा अपने सहस्रशिखरों से शोभित था और जिसकी कन्दराओं में सिंहादिक अनेकों जन्तु वास करते थे। वह स्वर्गीय उन्नतशील था। हिमालय-सा उत्तुङ्ग और विशाल कन्दराओं से युक्त था। तब

उस विन्ध्यपर्वत को देखते-देखते रावण नर्मदा नदी के तट पर जा पहुँचा, जो स्वच्छ पर्वतों पर बहती हुई पश्चिमोदधि गामिनी थी।

उसके तट पर सभी दर्शनीय प्राकृतिक दृश्य थे। वहाँ पहुँच रावण शीघ्र ही पुष्पक से उतर पड़ा और श्रेष्ठ नर्मदा नदी में स्नान करने को उद्यत हुआ। उसके शुक, सारण और मारीच नामक मन्त्रिगण भी साथ हुए। तदनन्तर उसने अनायास ही अपने मन्त्रियों से कहा—'देखो, इस समय अपने तीक्ष्ण ताप से तप्त होने वाला सूर्य आकाश के मध्य में स्थित है, तथापि मुझे यहाँ देखकर चन्द्रवत् शीतल हो गया है।

मेरे ही भय से यह वायु भी नर्मदा के जल से शीतल, सुगन्धित और श्रमनाशक होकर बड़ी सावधानी से प्रवाहित हो रहा है। तुम लोग भी इस महानदी में स्नान कर पापों से मुक्त हो जाओ। मैं भी इसके स्वच्छ पुलिन पर महादेवजी को पुष्पाञ्जलि अर्पित करूंगा।' रावण के ऐसा कहने पर उसके सब मन्त्रियों ने नर्मदा में प्रवेश कर स्नान किया और पुनः रावण के लिये पुष्पों का पर्वत-सा लगा दिया।

रावण स्नान करने नदी में प्रविष्ट हुआ। फिर स्नान कर बाहर आ सविधि मन्त्रों का जाप करते हुए जब हाथ जोड़कर चला तो सब राक्षस भी उसके पीछे-पीछे चले। राक्षसेन्द्र रावण जिधर जाता उधर ही अपने साथ एक सुवर्णमय शिवलिङ्ग ले जाता। उसने वहाँ भी बालुका में एक लिङ्ग स्थापित किया। उसकी सविधि पूजा की। फिर वह उसके समक्ष हाथ उठाकर भक्तिपूर्वक नाचने लगा और गाने लगा।

सहस्रार्जुन द्वारा रावण का बाँधा जाना

राक्षसेन्द्र रावण नर्मदा के जिस तट पर शिवजी की पुष्पों से पूजा कर रहा था, वहाँ से कुछ ही दूर हटकर माहिष्मती नगरी का राजा महाविजयी अर्जुन अपनी बहुत-सी रानियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था। उसकी सहस्त्र भुजाएँ थीं, जिनके परीक्षणार्थ नर्मदा के घाट के जल को रोक रहा था। तब उसकी भुजाओं से अवरुद्ध नर्मदा का जल समुद्र के द्वारा के समान उमँड़कर जिधर रावण बैठा पूजा कर रहा था उस ओर विपरीत गति से प्रवाहित होने लगा।

इससे रावण द्वारा शिव को समर्पित समस्त पुष्प प्रवाहित हो गये। रावण ने देखा, नर्मदा का जल समुद्र के द्वार के समान पश्चिम की ओर से बढ़कर पूर्व की ओर प्रवाहित हो रहा है। इसकी पूजा भी अभी समाप्त न हो पायी थी, कि आधे में ही जल की बाढ़ के कारण उसे अपनी पूजा समाप्त कर देनी पड़ी। वह नर्मदा की ओर घूमकर देखने लगा।

देखा तो जल की धारा पश्चिम से पूर्व की ओर अग्रसर है और अल्प समय में ही नदी शान्तपथ से पूर्ववत् प्रवाहित होने लगी। यह देख रावण मुख से कुछ न

बोला, किन्तु अपने दाहिने हाथ की अँगुली से शुक और सारण को नदी की बाढ़ का कारण ज्ञात करने के लिए संकेत किया।

वे दोनों भाई पश्चिम की ओर आकाश में उड़े। उड़ते-उड़ते जब आधा योजन निकल गये तब देखा कि, एक पुरुष स्त्रियों के साथ जलविहार कर रहा है, तो साल वृक्ष के समान परमोन्नत है, जिसके केश खुले हुए हैं और नेत्र मदात्य से लाल हो रहे हैं और वह अति मद्यपान से मतवाला हो रहा है तथा जैसे अपने सहस्त्रों चरणों से सुमेरु पर्वत पृथ्वी को दबाये हुए हो, ऐसे ही अर्जुन की सहस्त्रों भुजाओं से नदी का जल अवरुद्ध है।

वह बलवान् सहस्त्रों श्रेष्ठ स्त्रियों से समावृत्त है। शुक और सारण उस अद्भुत दृश्य को देखकर शीघ्र ही लौटे और रावणसे सब देखा हुआ वृत्तान्त का। शुक और सारण के इस प्रकार कहने पर रावण बोल उठा—'वही अर्जुन है।' तदनन्तर रावण अपने मन्त्रियों सहित युद्ध की लालसा से उधर की ओर चला और शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचा, जहाँ अर्जुन जलक्रीड़ा कर रहा था।

वह अञ्जन के समान काला और बड़ा ही बलवान् था। वहाँ पहुँच कर उसने अर्जुन को स्त्रियों से आवृत्त जल विहार करते हुए वैसी देखा जैसे बहुत-सी हथिनियों के साथ कोई गजेन्द्र जल विहार करता हो। राजा अर्जुन को देखते ही राक्षसराज रावण के नेत्र क्रोध से ला हो गये। उसने अर्जुन के मन्त्रियों से गम्भीर वाणी में यह क़हा—'मन्त्रियों! तुम लोग दैत्यराज अर्जुन से कहो कि, तुमसे युद्ध करने के लिए रावण आया है।'

मन्त्रियों ने कहा—'इस समय महाराज स्त्रियों के मध्य में हैं और ऐसी स्थिति में आप युद्ध करना चाहते हैं? आज के दिन क्षमा कीजिए और रात भर ठहर जाइये। कल अर्जुन से मिलकर युद्ध कर लीजियेगा। और यदि आपको युद्ध करने की बड़ी शीघ्रता हो तो हम सबको संग्राम में मारकर यमराज के पास पहुँचा जाइए।' यह सुन रावण के मन्त्रियों ने अर्जुन के कितने मन्त्रियों को मार डाला और कितने ही को भूखे होने के कारण खा डाला।

उभय मन्त्रियों के युद्ध से नर्मदा तट पर बड़ा कोलाहल मच गया। अर्जुन के पक्ष के योद्धा रावण के पक्ष वालों पर और रावण के पक्ष वाले वीर तथा मंत्रिगण अर्जुन के पक्ष वालों पर बाण, तोमर, भाले, त्रिशूल और वज्र आदिक अस्त्र शस्त्रों का प्रहार करने लगे। जब यह समाचार वीर राजा अर्जुन को मिला तो वह अपने साथ क्रीड़ित स्त्रियों से बोला—'तुम सब किञ्चित् भी भयभीत न होना।'

ऐसा कह उन सबको जल से बाहर निकाला और क्रुद्ध विकृत नेत्रों से अपनी

गदा ले तीव्रता से राक्षसों पर टूट पड़ा। परन्तु तत्क्षण ही विन्ध्य के सदृश अचल प्रहस्त हाथ में मूसल ले उसके समक्ष जा पहुँचा। उसने उस लौह जटित मूसल से अर्जुन पर प्रहार किया। फिर यम-सी भीषण गर्जना की। किन्तु अस्त्रकुशल अर्जुन ने तनिक भी चिन्ता न की और अपनी गदा से उसके प्रहार को व्यर्थ कर दिया।

उस गदाघातों से प्रहस्त धाराशायी हुआ। प्रहस्त को धराशायी हुआ देख मारीच, शुक, सारण महोदर और धूम्राक्ष युद्ध क्षेत्र से पलायन कर गये। यह देख स्वयं रावण ने वीर श्रेष्ठ अर्जुन पर आक्रमण किया। सहस्त्र भुजाधारी नरनाथ और बीज भुजाधारी निशाचरनाथ को रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। दोनों ही सिंह के समान बली थे।

भयानक गर्जना कर रुद्र और यमराज के समान कुपित हो एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। उस समय उन गदा-प्रहारों को वे दोनों उसी प्रकार सहन करने लगे, जैसे पर्वतों ने भयंकर वज्राघातों को सहन कर लिया था। विद्युत् की घोर गर्जन से जैसे दिशाएँ गूँज उठती हैं, उसी प्रकार उनकी गदाओं के प्रहार से सभी दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं।

इसी क्षण अर्जुन ने कुपित होकर रावण के विशाल वक्ष:स्थल पर पूर्ण शक्ति से गदा का प्रहार किया। परन्तु रावण तो वर के प्रभाव से सुरक्षित था, अत: उसके वक्ष:स्थल से टकराकर उस गदा के दो खण्ड हो गये। तथापि अर्जुन के गदा प्रहार से रावण एक धनुष पीछे हट गया और रोता हुआ पृथ्वी पर बैठ गया। रावण को व्याकुल देखकर अर्जुन ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और अपने सहस्त्र करों के द्वारा उसे जबरन से बाँध दिया।

रावण के बँध जाने पर सिद्ध, चारण और देवताओं ने 'धन्य-धन्य' कहा, अर्जुन के ऊपर पुष्पों की वर्षा की। फिर तो जैसे सहस्त्र लोचन इन्द्र राजा बलि को जीत अमरावती में आये थे, वैसे ही अर्जुन भी रावण को बाँधे हुए अपनी माहिष्मतीपुरी में आया।

पुलस्त्यजी का रावण को मुक्त कराना तथा रावण का लज्जित हो लंका को लौट आना

रावण को पकड़ लेना वायु को पकड़ लेने के ही समान था। स्वर्ग में वार्तालाप करते हुए पुलस्त्यजी ने जब देवताओं के मुख से यह बात सुनी तो वे पुत्रस्नेह वश थर्रा उठे और वायु गति से माहिष्मती नरेश से भेंट करने आये। राजा के द्वारपालों और मन्त्रियों ने उनके आगमन की सूचना राजा को दी। तब तपस्वी

पुलस्त्य का आगमन सुन वे हाथ जोड़े हुए उनकी आगवानी को आए। राजपुरोहित अर्घ्य और मधुपर्क सामग्री ले आगे चले।

राजा ने कहा—हे मुने! यह राज्य, ये स्त्री-पुत्र और हम सब लोग आपके ही हैं। आज्ञा दीजिए, अम आपकी क्या सेवा करें?' यह सुनकर, पुलस्त्य मुनि ने धर्म, अग्नि और पुत्रों का कुशलमंगल पूछा। साथ ही उन्होंने अर्जुन से कहा--'हे नरेन्द्र! तुममें अतुलित बल है। तभी तो तुम दशग्रीव को जीत लिया है। अहो! जिसके भय सेसागर और पवन भी मौन होकर आज्ञा पाने की प्रतीक्षा किया करते हैं! हे वत्स! अब मैं तुमसे यही माँगता हूँ कि, मेरा वचन मानकर, तुम रावण को मुक्त कर दो।'

अर्जुन के पुलस्त्यजी की आज्ञा शिरोधार्य की और बिना किसी आपत्ति के ही सहर्ष राक्षसेन्द्र रावण को मुक्त कर दिया। फिर अग्नि के समक्ष उपस्थित हो अपने मन को शुद्ध कर इसके साथ मैत्री भी कर ली। फिर ब्रह्माजी केपुत्र पुलस्त्यजी को प्रणाम कर राजा अर्जुन अपने भवन नें प्रविष्ट हुआ। पुलस्त्य ने भी रावण को विदा किया। यद्यपि अर्जुन ने रावण का स्वागत किया, तथापि पराजित हो जाने के कारण वह लज्जित होता हुआ लंका को चला गया। ब्रह्मपुत्र पुलस्त्यजी भी रावण को छुड़ा ब्रह्मलोक को प्रस्थित हुए।

जब रावण किष्किन्धा गया था

अर्जुन द्वारा मुक्त किया गया राक्षसाधिप रावण फिर सब पृथ्वी का परिभ्रमण करने लगा। जहाँ-कहीं भी उसे अधिक बलवान् मनुष्य या राक्षसों का होना सुनाई पड़ता, वह वहीं दौड़कर जाता और उसे युद्ध के लिये ललकारता। एक दिन वह बालिपालित किष्किन्धापुरी में पहुँचा और उसने सुवर्णमालाधारी बालि को युद्ध के लिये बुलाया।

तब युद्ध की इच्छा से आये हुए रावण से बालि के मन्त्री, तारा, तारा के पिता सुषेण, अंगद और सुग्रीव ने कहा—राक्षसेन्द्र! इस समय बालि तो बाहर गये हुए हैं, जो आपके जोड़ के हैं। अभी अल्प काल के लिये आप ठहरिये। बालि चारों समुद्रों पर सन्ध्या कर, अब आना ही चाहते हैं। तब-तक शंख के समान श्वेत हड्डियों के इस ढेर को देख लो। ये उनकी हड्डियाँ हैं, जो वानरराज बालि से युद्ध करने की इच्छा से आ चुके हैं।

हे रावण! यदि तुमने अमृतरस भी पान किया होगा, तो भी बालि के समक्ष जाने पर तुम फिर जीवित न रह सकोगे। हे विश्रवा पुत्र! आज तुम इस संसार को देख लो और अल्प क्षणों तक ठहरो, फिर तो तुम्हारा जीवन दुर्लभ हो जायेगा और यदि

तुम्हें मरने की शीघ्रता हो तो दक्षिण समुद्र पर चले जाओ। वहीं समुद्र के तट पर तुम्हारी बालि से भेंट हो जायेगी।

बालि पृथ्वी पर स्थित अग्नि के समान भभकता है। तब उनकी इन बातों को सुनकर उनका तिरस्कार करता हुआ रावण पुष्पक पर बैठा दक्षिण समुद्र की ओर गया। वहाँ पहुँच उसने सुवर्णगिरि के समान उन्नत बालि को सन्ध्योपासन करते हुए देखा। काजल के समान काले रंग का रावण विमान से उतर पड़ा और बालि को पकड़ने के लिये पैरों की आहट न करते हुये तत्क्षण ही उसकी ओर चल दिया। परन्तु दैवयोग से बालि ने उसे देख लिया।

किन्तु उसके दुष्ट अभिप्राय को जानकर भी वह किञ्चित् व्यग्र न हुआ और न उसकी ओर कुछ ध्यान ही दिया। उसने निश्चय कर लिया कि, यह मुझे पकड़ना चाहता है, परन्तु इस दुष्ट को अपने पार्श्व में दबाकर अन्य तीन समुद्रों पर जाऊँगा। इसके हाथ, वस्त्र और पैर लटकते रहेंगे जिससे गरुड़ के पंजे में फँसे हुए सर्प के समान लोग इसे मेरे पार्श्व में पड़ा देखेंगे।'

यह सोचकर बालि मौन ही रहा और वेद मन्त्रों का जाप करता रहा। जब रावण ने समझा कि अब तो मैं हाथ बढ़ाकर इसे पकड़ सकता हूँ, उसी समय बालि ने दूसरी ओर मुँह किये ही उसे इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे गरुड़ सर्प को दबोच लेता है। फिर तो वह उसे बगल में दाबे हुए बड़े वेग से आकाश में उड़ा। रावण उसे बारबार नोचता था। तब भी वायु जिस प्रकार बादल को उड़ा ले जाता है उसी प्रकार बालि उसे बगल में दबाये चलता था।

इस प्रकार रावण के परास्त हो जाने पर उसे मन्त्री उसे बालि से मुक्त करने के लिये रावण के पीछे-पीछे दौड़ते रहे। परन्तु बालि तक वे पहुँच ही नहीं पाते थे। इससे वे श्रमित होकर बैठ गये। इतने में महावेगवान् वानरराज बालि रावण को लिये हुए पश्चिम समुद्र पर पहुँचा, वहाँ स्नान, संध्या और जप करके वह उत्तर समुद्र पर आया।

वहाँ भी उसने संध्या की और पुनः पूर्व समुद्र पर आया। वहाँ भी सन्ध्योपासन करके उसे पार्श्व में दबाये किष्किन्धा लौट आया। किष्किन्धा के उपवन में पहुँचकर उसने रावण को अपनी काँख से छोड़ दिया और बार-बार हँसकर पूछा—कहिए, आप कहाँ से आ रहे हैं? तब काँख में इतनी देर दबे रहने के कारण रावण भी श्रमित हो गया था जिससे उसके नेत्र व्याकुल हो रहे थे।

राक्षसेन्द्र ने विस्मित हो बालि से कहा—वानरराज! तुम तो साक्षात् इन्द्र के समान हो! मैं राक्षसेन्द्र रावण हूँ, युद्ध करने की इच्छा से यहाँ आया था। परन्तु आज

तुम्हारे हाथ से पकड़ लिया गया। अहो! तुम्हारा बल, पराक्रम और गाम्भीर्य आश्चर्योत्पादक है। तुमने मुझे पशु के समान पकड़ चारों समुद्र पर परिभ्रमण किया है। हे वीर! तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कोई भी वीर नहीं है। जो मुझे लिये इस प्रकार वहन करे।

ऐसे गति तो मन, वायु और गरुड़ इन तीन की ही है। अथवा नि:सन्देह चौथे आप ऐसे वेगशाली हैं। हे वानरराज! मैंने आपका बल देख लिया। अब मैं अग्नि को साक्षी बनाकर आपके साथ सर्वदा के लिए मित्रता करता हूँ। स्त्री, पुत्र, नगर, राज्य, भोग, वस्त्र और भोजन—ये सभी वस्तुएँ हम दोनों की सम्मिलित रहेंगी।' फिर तो वानरराज और राक्षसराज दोनों ने अग्नि प्रज्वलित कर परस्पर बन्धु-स्नेह की स्थापना की और एक ने दूसरे का आलिङ्गन किया।

फिर दोनों हर्षित हो एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए किष्किन्धा में गये। रावण एक मास तक किष्किन्धा में सुग्रीव के समान रहा। फिर त्रैलोक्यनाशक रावण के मंत्री वहाँ आ उसे लिवा ले गये।

हे प्रभो! यह एक प्राचीन घटना का वृत्तान्त है, जिसमें बालि ने रावण को नत किया और पुन: अग्नि-सान्निध्य में उससे बन्धुत्व स्थापित किया था। हे राम! बालि में अनुपम बल था, किन्तु अग्नि जिस प्रकार पतङ्गे को दग्धकर देती है, उसी प्रकार आपने उस बालि को एक ही बाण से मार डाला।

अन्त में अगस्त्यजी बोले—हे राम! उस लोककण्टक रावण की यह उत्पत्ति कथा है जिसने इन्द्र तथा जयन्त को भी युद्ध में परास्त कर दिया था।

अत: हे पुत्र! अपना माहेश्वर यज्ञ तुम अब सम्पन्न करने के लिए उद्यत हो जाओ और सदाशिव को प्रसन्न करो।

॥ इस प्रकार रावणसंहितान्तर्गत रावण जीवन वृत्तान्त प्रथम परिच्छेद सरल, सुबोध हिन्दी भाषा में मैथिल आचार्य शिवकान्त झा द्वारा सुसम्पन्नता को प्राप्त हुआ॥१॥

॥ शुभमिति ॥

❑❑❑

द्वितीय परिच्छेद

रावण सदाशिव सम्वादात्मक

तन्त्र-मन्त्र साधना

त्रेता युग में कैलास पर्वत के शिखर पर, जो कि अनेक रत्नों से शोभित, अनेक वृक्षों एवं लताओं से व्याप्त था। जिस पर भाँति-भाँति के पक्षी मधुर ध्वनियों में किल्लोल कर रहे थे।

जहाँ पर सब ऋतुएँ अनेकानेक फूलों एवं फलों से सुन्दर ज्ञात होती थीं और शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन चल रहा था।

जहाँ पर वृक्षों की अटल एवं सुखद छाया में अप्सराओं की सुन्दर संगीत ध्ववनि होती थी और कोकिकालाओं का समूह बनों से प्रविष्ट होकर कुहुकता था, एवं ऋतुराज बसन्त अपने सेवकों के साथ सदा निवास करते थे।

जिस कैलास पर्वत के शिखर पर सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा अपने गणों सहित गणेशजी और स्वामिकार्तिकेय जी सदा निवास करते थे। उसी रम्य कैलास शिखर के ऊपर चराचर जगत के श्रीशंकर जी मौन धारण कर निवास करते थे।

जो सदा कल्याण करने वाले, आनन्द मूर्ति एवं दयारूपी अमृत के सागर हैं। जिनका वर्ण कर्पूर एवं कुन्द-पुष्प की भाँति उज्ज्वल और जो पवित्र सत्त्वगुणमय तथा व्यापक हैं।

जिनके दिशायें ही वस्त्र हैं, जो दीन दुखियों के स्वामी योगियों में सर्वश्रेष्ठ तथा योगियों को अत्यन्त प्रिय हैं। जिनकी जटायें गंगाजी की धारा से सदा भीगी रहती हैं।

जो विभूति से भूषित, शान्ति स्वरूप, सर्पों की माला एवं मुण्डों की माला धारण किये हैं। जिनके तीन नेत्र हैं, जो तीनों लोकों के स्वामी तथा त्रिशूलधारी हैं।

जो शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले, ज्ञानरूप, मुक्ति प्रदान करने वाले, आदि अन्त रहित, कल्पनातीत तथा विशेष रहित निरंजन हैं।

जो सबका हित करने वाला, देवताओं के भी देवता तथा निरामय अर्थात् जो रोग रहित हैं। जिनका ललाट अर्धचन्द्र द्वारा देदीप्यमान है और जो पाँच मुख वाले तथा सुन्दर भूषणों से भूषित हैं।

इस प्रकार प्रसन्न मुख शंकरजी को देखकर रावण ने संसार के हित की कामना से उनसे पूछा।

रावण उवाच

हे देवों के देव! जगत् गुरो!! सदाशिव! संसार का सदा कल्याण करने वाले मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मेरे स्वामी, क्षण मात्र में ही सिद्धि को प्रदान करने वाली! ऐसी तन्त्र विद्या को आप हमसे कहिये।

शिव उवाच

भगवान् शङ्कर बोले—हे वत्व ! तुमने संसार के हित की कामना से यह अच्छा प्रश्न किया, अत: तुम्हारे समक्ष इस उड्डीश नामक तन्त्र को कहता हूँ।

केवल पुस्तक में लिखी हुई विद्या बिना गुरु के सिद्धि प्रदान नहीं करती है, अत: बिना गुरु के इस तन्त्र शास्त्र पर किसी का अधिकार नहीं हो सकता है अर्थात् तन्त्र शास्त्र की जो भी क्रियाएँ की जायँ वे गुरुओं की सहायता से ही की जायँ।

पहले इस शास्त्र में षट् कर्म—१. मारण, २. मोहन, ३. उच्चाअन, ४. विद्वेषण, ५. आकर्षण तथा ६. वशीकरणादि के लक्षणों कका वर्णन करता हूँ। जो कि तन्त्र मत के अनुसार सिद्धि रूपी फल को देने वाले हैं।

षट्-कर्म

१. शान्ति कर्म, २. वशीकरण, ३. स्तम्भन, ४. विद्वेषण, ५. उच्चाटन एवं ६. मारण इन छ: प्रकार के कर्मों को मुनियों ने षट्कर्म कहा है।

षट्-कर्म-लक्षणम्

जिस प्रयोग से रोग, या किसी प्रकार की बाधादिकों की शान्ति या अनिष्ट ग्रहों की शान्ति आदि की जाती है, उसी प्रयोग को शान्ति कर्म कहते हैं, जिस प्रयोग के द्वारा किसी स्त्री, राजा, शत्रु या इष्ट को वश में किया जाता है अर्थात् अपनी इच्छा के अनुकूल आचरण कराया जाता है, उस प्रयोग को वशीकरण करहते हैं। जिस प्रयोग से अग्नि, जल, शत्रु के पराक्रम या शत्रु की सेना की रुकावट की जाती है उसी को स्तम्भन कर्म कहते हैं। जिस प्रयोग से एक दूसरे से लगे प्रेम को छुड़ा दिया जाता है, उसको विद्वेषण कहते हैं। जिस प्रयोग से मनुष्य अपने स्थान को छोड़कर भाग जाता है, उसे उच्चाटन कहते है। जिस प्रयोग से मनुष्य का मरण हो जाता है, उसे मारण कहते हैं।

विषय-कथनम्

हे राक्षसराज रावण, इस ग्रन्थ के प्रथम प्रकरण में आकर्षण, दूसरे प्रकरण में उन्मादन, तीसरे में विद्वेषण, चौथे में उच्चाटन, पाँचवें में ग्रामोच्चाटन, छठवें में जलस्तम्भन, सातवें में स्तम्भन, आठवें में वशीकरण इसके अतिरिक्त और भी अन्धा, बहिरा एवं गूंगा आदि बनाने का प्रयोग नवें, दशवें प्रकरण में वर्णित है।

इस ग्रन्थ में बहिरा बना देना, मूर्ख बना देना, भूत लगा देना, ज्वर चढ़ा

देना, बुद्धि का स्तम्भन करना, दही को नष्ट कर देना, पागल बनाना, हाथी-घोड़ा को कुपित कर देना, सर्प एवं मनुष्य को बुला देना, खेती आदि का विनष्ट करना, दूसरे के ग्राम में प्रवेश करना इसके अतिरिक्त भूतादिकों की सिद्धि, पादुका सिद्धि एवं नेत्र के अञ्जन आदि की सिद्धि शास्त्रीय रीति से वर्णित है।

इन्द्र जाल की क्रीड़ा, यक्षिणी मन्त्र साधन, गुटिका बनानाा, आकश में गमन करना, मरे हुए को जिलाना इसके अतिरिक्त और भी भयंकर विद्याओं, उत्तम मन्त्रों एवं उत्तम औषधियों तथा गुप्त कार्यों का वर्णन करूँगा। जो शङ्कर जी के कहे हुए उड्डीश को नहीं जानता वह क्राधित होकर क्या कर सकता है। यह उड्डीश तन्त्र सुमेरु पर्वत को हिला देने वाला तथा पृथ्वी को सागर में डुबा देने वाला है।

यह तन्त्र शास्त्र नीच कुलोत्पत्र को, पापी को, मूर्ख को, भक्ति हीन को, भूख (दरिद्र को), मोह में फँसे हुए को, शंकित चित्त वाले को और विशेष करके निन्दा करने वाले प्राणी को कदापि न देना चाहिए। क्योंकि इनसे उड्डीश तन्त्र की क्रिया नहीं हो सकती है। फिर सिद्धि तथा फल तो दूर रहा।

यदि इस विद्या की प्रतिष्ठा एवं अपनी आत्मा की रक्षा चाहे तो देवता व गुरु-भक्त, सज्जन, बालक, तपस्वी, वृद्ध, उपकारी तथा सुमति वाले विद्वान् के प्राप्त होने पर ही उन्हें यह विद्या प्रदान करे। इसी में इस शास्त्र की प्रतिष्ठा है।

इस तन्त्र शास्त्र के प्रयोग में तिथि, वार, नक्षत्र, व्रत, होम, काल बेला आदि का विचार नहीं किया जाता है। केवल तन्त्र के ही बल से औषधियाँ सिद्धि प्रधान करने वाली होती हैं। जिसका साधन करने से क्षण मात्र में ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

जैसे चन्द्रमा से हीन रात्रि, सूर्य से हीन दिवस तथा राजा से हीन राज्य सुखकर नहीं होता, उसी प्रकार गुरु से हीन मन्त्र भी सुख तथा फल देने वाला नहीं होता है। अत: इसमें गुरु की अत्यन्त आवश्यकता है।

जैसे इन्द्र का वज्र दैत्यों का विनाशक है, वरुण का पाश महा बलवानों का भी बाधक है, जैसे यमराज का दण्ड सबको दण्डित करता है एवं जैसे अग्नि देव सबको भस्म करने की शक्ति रखते हैं।

उसी प्रकार इस शास्त्र में विहित प्रयोग भी शक्ति रखते हैं। यह असत्य नहीं है, कहाँ तक कहा जाय इन मन्त्रों की शक्ति तो ऐसी है कि सूर्य को पृथिवी पर बुला ले।

अपकारी, दुष्ट, दुराचारी, पापी ऐसे व्यक्तियों पर यदि मारण का प्रयोग करे तो कोई दोष नहीं है। यदि बिना प्रायोजन किसी पर मारण प्रायोग किया जाय तो

अपना ही नाश हो जाता है। जो इस तन्त्र शास्त्र पर विश्वास नहीं करते उनको सिद्धि भी नहीं मिलती है।

मारण-प्रयोग

हे रावण ! अब मैं तुमसे मारण नाम का प्रयोग करता हूँ। जो कि मनुष्यों को शीघ्र सिद्धिकर है।

मारण का प्रयोग जिस किसी पर थोड़ी सी गलती कर देने पर भी नहीं करना चाहिये। मारण का प्रयोग किसी पर तब करे, जब जान ले कि यह हमको जान से मार डालना चाहता है।

मूर्ख का किया हुआ प्रयोग उसी को स्वयं नष्ट कर देता है, अतः अपनी आत्मा की रक्षा को चाहने वाला मारण का प्रयोग भी न करे, क्योंकि इसमें अपना ही प्राण जाने का भय रहता है।

जो व्यक्ति अपने ज्ञान-दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को देखने वाला है तथा प्रत्येक जीवात्मा को ब्रह्म के ही समान समझता है, वह संकटापन्न स्थिति उत्पन्न होने पर मारण का प्रयोग कर सकता है। यदि दूसरा कोई मारण करेगा तो दोष का भागी होगा। कथञ्चित् मारण का प्रयोग करना ही पड़े तो नीचे लिखे प्रमाण के अनुसार करे।

शत्रु के पैर के नीचे की मृत्तिका तथा चिता की भस्म एवं मध्यमा (बिचली) अंगुली का रक्त मिलाकर एक पुतली मूर्ति बनावे।

और उस मूर्ति को काले कपड़े में लपेट एवं काले डोरे से बाँध कुशासन पर सुला कर एक दीप जलावे।

तथा मारण मन्त्र का दशहजार जप कर पश्चात् १०८ उर्दी लेकर प्रत्येक को मारण मन्त्र से अभिमन्त्रित करे।

उस पुतली के मुख में मारण-मन्त्राभिमन्त्रित उर्दी डाल देवे। अर्धरात्रि के समय इस मारण प्रयोग को करने से इन्द्र तुल्य शत्रु भी मारा जाता है।

रात्रि में उक्त प्रयोग को करके प्रातःकाल उस मूर्ति को श्मशान भूमि में गाड़ दे। इस प्रकार बराबर एक माह तक प्रयोग करते रहने पर निश्चित शत्रु की मृत्यु होती है।

मारणमन्त्र—**ॐ नमः कालसंहाराय अमुकं हन हन क्रीं हुं फट्** भस्मी **कुरु कुरु स्वाहा।**

इस ग्रन्थ के प्रयोग में जहाँ अमुक शब्द आवे वहाँ शत्रु का नाम लेता जावे। चार अँगुली प्रमाण एक नीम की लकड़ी लेकर उसमें शत्रु के सिर के बाल लपेट उसी से शत्रु का नाम लिखे पश्चात् सावधानी से उस लिखे नाम से चिता के अङ्गार पर धूप

देवे। इस प्रकार तीन या सात रात्रि तक धूप देने से शत्रु को प्रेत पकड़ लेता है। प्रयोग करने वाला व्यक्ति कृष्णपक्ष की अष्टमी को प्रयोग आरम्भ करे तथा चतुर्दशी तक समाप्त कर दे और निम्न लिखित मन्त्र को प्रतिदिन १०८ बार जपे।

मन्त्र—**ॐ नमो भगवते भूताधिपतये विरूपाक्षाय घोरदंष्ट्रिणे ग्रहयक्षभूतेनानेन शङ्कर अमुकं हन हन दह दह पच पच गृह्ण हुं फट् स्वाहा ठः ठः।**

चार अङ्गुल प्रमाण मनुष्य की हड्डी लेकर पुष्य नक्षत्र में सिसके घर गाड़ दे। उसका परिवार सहित नाश हो जाय। यह प्रयोग बिना मन्त्र के ही प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार एक अंगुल प्रमाण सर्प की हड्डी लेकर आश्लेषा नक्षत्र में शत्रु के घर में गाड़ दे और निम्नलिखित मन्त्र का दश हजार जप कर दे तो शत्रु की सन्तति का विनाश होता है।

मन्त्र—**ॐ सुरेश्वराय स्वाहा।**

बिना मन्त्र जाप के कार्य नहीं सिद्ध होगा। अतः मंत्र जपे।

चार अंगुल प्रमाण घोड़े की हड्डी अश्विनी नक्षत्र में निम्नलिखित मंत्र से अभिमंत्रित करके गाड़ दे तो शत्रु के परिवार का नाश होता है।

मन्त्र—**ॐ हुँ हुँ फट् स्वाहा। सप्तदशाभिमंत्रितं कृत्वा निखनेत्।**

सत्रह बार मंत्र से अभिमंत्रित करके तबी हड्डी गाड़े।

निम्ब की कील आर्द्रा नक्षत्र में शत्रु के शयनागार में गोड़ने से शत्रु का मरण होने लगता है और उसे उखाड़ लेने पर पुनः सुखी हो जाता है।

इसी प्रकार शिरीष की कील शत्रु के घर आर्द्रा नक्षत्र में गाड़ने से शत्रु का नाश होता है।

मन्त्र—**हुँ हुँ फट् स्वाहा।**

एकविंशतिवारमभिमन्त्रितं कृत्वा द्वयोरपि प्रयोगे निखनेत्।

उपरोक्त दोनों प्रयोगों में २१ बार अभिमन्त्रित करके गाड़ने से सपरिवार शत्रु का विनाश होता है।

ज्वर द्वारा शत्रु का मारण

मन्त्र—**ॐ डं डां डिं डीं डुं डूं डें डैं डों डौं डंः डः अमुकं गृहण गृहण हुँ हुँ ठः ठः। अनेन मंत्रेण सहस्रवारमभिमन्त्रितं नरास्थि श्मशाने निखननेन मृत्युः।**

उपरोक्त मंत्र से हजार बार जिसके नाम पर अभिमन्त्रित कर मनुष्य की हड्डी श्मशान में गाड़े तो उसकी मृत्यु होय।

रिपु की विष्ठा (मल) तथा बिच्छू एक हँड़िया में बन्दकर ऊपर से मिट्टी

लगाकर पृथ्वी में गाड़ दे तो शत्रु का मलावरोध (मल रुकने से) मरण तुल्य कष्ट पाने लगता है और भूमि खोदकर हंडी खोल देने से पुनः सुखी हो जाता है।

मंगलवार को शत्रु के पाँव के नीचे की मिट्टी ला गोमूत्र में भिगोकर एक प्रतिमा (पुतली) बनावे।

जहाँ कोई मनुष्य न आ-जा सके ऐसे एकान्त स्थान पर या नदी का किनारा हो या बनादि हो, वहाँ पर एक वेदी बना उस पर पुतली को सुला दे और उसकी छाती में एक चोखा शूल (सूजा) गाड़ दे, पश्चात् बाम भाग में काल भैरव की स्थापना कर प्रतिदिन बलि एवं पूजन करे।

प्रयोग स्थान पर ११ वेद पाठी ब्राह्मण-ब्रह्मचारी बटुओं (बालकों) को भोजन करावे तथा कालभैरव के समक्ष कडुआ तेल का दीपक जलावे।

मूर्ति के दक्षिण (दाहिने) भाग में व्याघ्र के चर्मासन पर दक्षिण मुख बैठकर जितेन्द्रिय होकर रात्रि में निम्नलिखित मंत्र जपे।

सावधान चित्त हो रात्रि काल में उक्त मंत्र का दश हजार जप करे, ऐसा करने से १९ दिनों में शत्रु का मरण होता है।

आर्द्रपटी साधन का विनियोग

ॐ अस्य श्रीआर्द्रपटी महाविद्यामंन्त्रस्य दुर्वासा ऋषिर्गायत्री छंदः, हुं बीजं, स्वाहाशक्तिः, ममाऽमुकशत्रु-निग्रहार्थं जपे विनियोगः।

आर्द्रपटीसाधन मन्त्रः—**ॐ नमो भगवति आर्द्रपटेश्वरि हरितनीलपटे कालि आर्द्रजिह्वे चाण्डालिनि रुद्राणि कपालिनि ज्वालामुखि सप्तजिह्वे सहस्रानयने एहि एहि अमुकं ते पशुं ददामि अमुकस्य जीवं निकृन्तय एहि एहि जीवितापहारिणि हुं फट् भूर्भुवः स्वः फट् रुधिरार्द्रवशाखादिनि मम शत्रून् छेदय छेदय शोणितं पिब पिब हुं फट् स्वाहा।**

केवल जपमात्रेण मासान्ते शत्रुमारणम्।

स्नानादि से शुद्ध हो पवित्र आसन पर बैठकर पहले आर्द्रपटी का विनियोग करे अर्थात् 'ॐ अस्य श्री.) से लेकर 'विनियोगः' तक वाक्य पढ़कर हाथ में लिये हुए जल को पृथ्वी पर छोड़ दे। इस आर्द्रपटी मन्त्र का केवल एक मास पर्यन्त जप करने मात्र से ही शत्रु का मरण हो जाता है। यह आर्द्रपटी मन्त्र सब मंत्रों से श्रेष्ठ तथा तत्काल फलदायक है।

प्रयोग—कृष्ण पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ कर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी पर्यन्त समाप्त करे तथा अमुकशब्द के स्थान पर शत्रु का नाम उच्चारणसहित १०८ बार प्रतिदिन मन्त्र का जप करे। समाप्ति के दिन शत्रु के पैर के नीचे मिट्टी लाकर पुतली

बनावे तथा काली को बकरा की बलि देकर उसी रक्त में वस्त्र को भिगोवे ओर उक्त वस्त्र में पुतली को लपेट दे। पश्चात् मन्त्र का जप करता रहे। जब तक रक्त सूखेगा उतने ही समय में शत्रु समाप्त हो जायेगा।

बैरिमारण कवच

ॐ अस्य श्रीकालिकाकवचस्य भैरवऋषिर्गायत्री छन्दः, श्रीकालीदेवता, सद्यः शत्रुहननार्थे विनियोग।

हाथ में जल से उपरोक्त मंत्र मढ़कर पृथ्वी पर छोड़ दे।

काली का ध्यान

ध्यान—इस प्रकार करे कि भगवती काले वर्ण की तीन आँखों वाली, चार भुजाओं वाली, जिसकी जिह्वा बाहर निकलती हुई है और वह देवी चन्द्रमा के समान कान्तिमान है।

तथा नील कमल के समान श्याम है, शत्रुओं का नाश करने वाली, नरमुण्ड, खड्ग, खप्पर एवं कमल पुष्प अपने चारों हाथों में लिये हुई हैं।

लाल वस्त्र पहिने, भयंकर दाँतों वाली, बड़े जोरों से हँसती हुई एवं नंगी शरीर वाली काली।

मुर्दे पर बैठी हुई, मुण्डों की माला पहनी हुई, महादेवी काली का ध्यान करते हुए निम्नलिखित कवच का पाठ करना चाहिये।

कवच

हे भयंकर रूप धारण करने वाली एवं सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली और सब देवताओं द्वारा स्तुति की जाने वाली काली हमारे शत्रु का नाश करो।

ह्रीं ह्रीं स्वरूप वाली, ह्रीं ह्रीं सं हं रूपी बीज को धारण करने वाली, पुनः ह्रीं ह्रीं क्षैं क्षौं स्वरूपवाली काली, आप सदा शत्रुओं का नाश करने वाली हैं, अतः हमारे भी शत्रु का विनाश कीजिये।

श्रीं ह्रीं ऐं रूपवाली तथा संसार का बन्धन छुड़ाने वाली हे भगवती, आपने जिस प्रकार शुभ-निशुभ का वध किया था उसी प्रकार अमुक नाम वाले मेरे शत्रु का वध कीजिये।

ब्राह्मी (गायत्री), शैवी (पार्वती), वैष्णवी (लक्ष्मी), वाराही एक नारसिंही आदि अनेक रूप धारण करने वाली शंकर प्रिया हे कालिके शत्रु का विनाश करने के लिये आपको नमस्कार करता हूँ।

कौमारी, श्री (लक्ष्मी रूपी), सुरेश्वरी (इन्द्राणी रूपी) तथा भयंकर रूप धारण करने वाली और चण्ड-मुण्ड का विनाश करने वाली हे चामुण्डे! हमारे शत्रुओं को भक्षण कर जाओ।

ह्रीं ह्रीं रूपिणी तथा मुण्डों की माला धारण करने वाली हे कालिके, विकराल दाँतों दाँतों वाली एवं रक्त पान से प्रसन्न होने वाली हमारी सदा रक्षा करो।

मन्त्र—**रुधिरपूर्णवक्त्रे च रुधिरावितस्तिनि मम शत्रून् खादय खादय हिंसय हिंसय मारय मारय भिन्धि भिन्धि छिन्धि छिन्धि उच्चाटय उच्चाटय द्रावय द्रावय शोषण शोषय यातुधानिके चामुण्डे ह्रीं ह्रीं वां वीं कालिकायै सर्वशत्रून् समर्पयामि स्वाहा। ॐ जहि जहि किटि किटि किरि किरि कटु-कटु मर्दय मर्दय मोहय मोहय हर हर मम रिपून् ध्वंसय ध्वंसय भक्षय भक्षय त्रोटय त्रोटय यातुधानिका चामुण्डा सर्वजनान् राजपुरुषान् राजश्रियं देहि देहि नूतनं नूतनं धान्यं भक्षय भक्षय क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं स्वाहा।**

हे राक्षसराज रावण, मैंने इस दिव्य कवच का तुमसे वर्णन किया। जो इस कवच का भक्ति पूर्वक नित्य पाठ करेंगे उनके शत्रुओं का नाश होगा तथा शत्रु रोग से पीड़ित होंगे एवं धन-पुत्र सुख से रहित हो जायेंगे। इस कवच के एक हजार पाठ करने के बाद सिद्धि मिलती है। कवच सिद्ध होने पर मारण प्रयोग में अवश्यमेव सफलता प्राप्त होती है अन्यथा नहीं।

मारण कवच एवं मंत्र सिद्ध करके जलती हुई चिता से अंगार लावे पश्चात् अग्नि शान्त होने पर कोयले को चूर्ण कर शत्रु के पैर से स्पर्शित जल मिलाकर खूब घोंटकर स्याही बनावे, जब स्याही बन जाय फिर लोहे की कलम से शत्रु की कुरूप मूर्ति बनावे, जिसके पैर दक्षिण एवं शिर उत्तर की ओर हो पश्चात् उस मूर्ति हृदय पर अपना हाथ रखकर मंत्र सहित उक्त कवच का पाठ करे।

प्राण प्रतिष्ठा का मन्त्र जानने वाले विद्वान् से मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा करावे या स्वयं प्राणप्रातिष्ठा मंत्र से प्राण प्रतिष्ठा करे पश्चात् मूर्ति के कण्ठ को तीखे शस्त्र से एक ही बार में काट दें, फिर कटी हुई मूर्ति के मय शिर व धड़ के ऊपर जलते हुए अंगार से लेपन करें। इस प्रकार करने से शत्रु ज्वर से पीड़ित होकर प्राण त्याग देता है और केवल बायाँ पैर पोंछने से दरिद्र हो जाता है।

यह कवच बैरियों का नाश करने वाला तथा उनको वश में करने वाला और महान् ऐश्वर्य का दाता एवं पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि करने वाला है। प्रातः काल या सायंकाल पूजा के समय इसका पाठ करने से अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है।

और इसके केवल पाठ मात्र से शत्रु का उच्चाटर होता है, अर्थात् देश छोड़कर परेदश भाग जाता है। पश्चात् दास की तरह वश में होकर रहता है, यह शंकरजी का वचन सत्य है, सत्य है इसमें संशय नहीं है।

माला-निर्णय

मूँगा, हीरा तथा मणि की माला पुष्टि एवं वशीकरण प्रयोगों में आवश्यक है, आकर्षण प्रयोग में हाथी दाँत की माला से जप करे, विद्वेषण तथा उच्चाटन में स्फटिक या घोड़े के दाँतों की माला सूत में या बालों में गूँथकर जप करे। जिस प्रयोग में जिस प्रकार की माला लिखी है उसी प्रकार की माला पर जप करने से सिद्धि होती है।

शत्रु-मारण प्रयोग में या शत्रु सैन्य-स्तम्भन प्रयोग में गदहे के दाँतों की माला या स्फटिक की माला से जप करे।

धर्म, अर्थ एवं काम की सिद्धि के लिये शंख की माला से जप करे तथा सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिये कमल की माला से जप करे।

रुद्राक्ष की माला से सब प्रकार के मन्त्रों का जप किया जा सकता है। स्फटिक, मोती, मूँगा, रुद्राक्ष तथा पुत्रजीव की माला पर जप करने से विद्या की प्राप्ति होती है।

शान्ति एवं पुष्टि के प्रयोग में माला को कमल के सूत्र में पिरोवें, आकर्षण तथा उच्चाटन के प्रयोग में घोड़े की पूँछ के बालों में माला को गूँथें।

मारण प्रयोग में मनुष्य की स्नायु (हड्डी) में रहने वाले पतले चर्मतन्तु (तागे) में माला को पिरोवे और अन्य कार्यों के लिए कपाल का सूत ही प्रशंसनीय है। अर्थात् सूती तागे में माला पिरोनी चाहिये।

सत्ताइस दाने क माला सिद्धि प्रदान करने वाली होती है, अभिचार कर्म प्रयोग में १५ दाने की माला होनी चाहिये। जिस प्रयोग में जैसी माला का वर्णन है, उसमें वैसी ही माला द्वारा प्रयोग करना चाहिए।

रुद्राक्ष की माला से सब प्रकार के मन्त्रसिद्धि किये जा सकते हैं, ऐसा मन्त्र शास्त्र के तत्त्वदर्शियों ने कहा है तथा एक सौ आठ (१०८) दाने) की माला सब कार्यों में सिद्धि प्रदान करने वाली होती है।

वशीकरण प्रयोग में पूर्व मुख होकर बैठे तब फिर जपादिक कर्म आरम्भ करे एवं अभिचार में दक्षिण मुख बैठे, धन की इच्छा से जप करने वाले पश्चिम मुख बैठे तथा शान्तिकर्म, आयु, रक्षा, पुष्टि एवं विद्या आदि प्राप्ति के लिए उत्तर मुख बैठकर जप करना चाहिए।

जप-लक्षण

जप तीन प्रकार का होता है। १. वाचिक, २. उपांशु तथा ३. मानसिक। १. जिस जप में मन्त्र का उच्चारण दूसरे को भी सुनाई पड़े उसे वाचिक जप कहते हैं।

२. जो दूसरे को और अपने को भी स्वयं सुनाई न पड़े उसे उपांशु जप कहते हैं। ३. जिसमें जिह्वा, दाँत तथा ओष्ठ का हिलना न दिखाई दे, मंत्र के अक्षरों को केवल मन से ही चिन्तन किया जाय उसे मानस जप कहते हैं। मानस का ही विशेष अभ्यास हो जाने पर अजपा जाप के नाम से ऋषियों ने पुकारा है।

पराभिचार (मारण प्रयोग) में वाचिक जप करे अर्थात् मन्त्रों का जोर-जोर से उच्चारण करे, शान्ति एवं पुष्टि कर्म में उपांशु अर्थात् दूसरे को सुनाई न दे तथा मोक्ष एवं ज्ञान-प्राप्ति के निमित्त मानस जप करे।

काले जीरे के चूर्ण के अंजन से घोड़े अन्धे हो जाते हैं। यदि उनकी आँखों को मट्ठे से धो दे तो फिर पहले की भाँति देखने लगते हैं।

छछुन्दर का चूर्ण घोड़े की नाक में डाल देने से घोड़ा मूर्छित हो जाता है तथा जल में चंदन घिस कर पुनः नाक में पुनः नाम में डाल देने से स्वस्थ हो जाता है।

घोड़े की हड्डी की सात अंगुल की कील बना अश्विनी नक्षत्र ओन पर घोड़साल में गाड़ दे तो घोड़े मरने लगते हैं।

अश्वमारणमन्त्रः—**ॐ अश्वं पच पच स्वाहा।**

(अयुत-जपात् सिद्धिः)

उक्त मन्त्र दश हजार जपने से सिद्ध होता है, उपरोक्त कील इसी से अभिमंत्रित करके घोड़साल में गाड़े।

बेर के काष्ठ की आठ अंगुल की कील पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में यदि मल्लाह के घर में गाड़ दे तो उसकी सब मछलियाँ नष्ट हो जायेंगी।

मस्त्यनाशनमन्त्रः—**ॐ जले पच पच स्वाहा।**

(इत्येनन मन्त्रेणायुतजपात् सिद्धिः)

यह मंत्र दश हजार जपने पर सिद्ध होता है। इसी मंत्र से अभिमंत्रित कर कील गाड़नी चाहिए।

चमेली (फूल) की लकड़ी की आठ अंगुल की कील पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में निम्नलिखित मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करके धोबी के घर में गाड़ने से उसके सब वस्त्र नष्ट हो जाते हैं।

मन्त्र—**ॐ कुम्भं स्वाहा।**

(अयुत् -जपात् सिद्धिर्भवति)

यह मन्त्र दश हजार जपने से सिद्ध होता है।

महुआ के काष्ठ की चार अंगुल की कील चित्रा नक्षत्र में तेल पेरने के स्थान

पर गाड़ देने से सम्पूर्ण तेल विनष्ट हो जाता है।

तैलनाशनमन्त्रः—**'ॐ दह दह स्वाहा' (इत्यनेन सहस्त्रसंख्याकजपः)**

यह मन्त्र एक हजार जपने से सिद्ध होता है। उपरोक्त कील इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके ही गाड़े।

गन्धक का चूर्ण पानी में घोलकर शाक के ऊपर छिड़क देने से सब शाक नश्ट हो जाता है, यह प्रयोग बिना मन्त्र का है।

जामुन की लकड़ी की आठ अंगुल की कील अहीर के घर में जहाँ गायें दूही जाती हों वहाँ अनुराधा नक्षत्र में गाड़ देने से गायों का दूध सूख जाता है, यह प्रयोग बिना मन्त्र का है।

सफेद मदार की लकड़ी की सोलह अंगुल की कील कृत्तिका नक्षत्र में मदिरा उतारने वाले के घर में गाड़ देने से मदिरा नष्ट हो जाती है। यह भी प्रयोग बिना मन्त्र का है।

सोपाड़ी के लकड़ी की नव अंगुल की कील शतभिषा नक्षत्र में तमोली के घर में या खेत में गाड़ देने से उसके पान नष्ट हो जाते हैं।

भगवान् शंकर बोले कि, हे राक्षसराज रावण! मैं खेती के विनाश की विधि संक्षेप में कहता हूँ कि, जिस क्रिया को करने मात्र से अन्न के फसलों का सम्यक् विनाश होगा।

जहाँ पर आकाश से बिजली गिरी हो वहाँ की मिट्टी लाकर एक वज्र बनावे तथ निम्नलिखित मंत्र से अभितंत्रित कर जिस खेत में गाड़ दे उसकी फलस विनष्ट हो जायेगी।

सस्यनाशनमन्त्रः—**ॐ नमो वज्रपाताव सुरपतिराज्ञापयति हुं फट् स्वाहा।**

यह मन्त्र दस हजार जपने से सिद्ध होता है।

मोहनाभिधान

हे रावण! अव इसके आगे मोहन कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो, जो शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है।

सिन्दूर, केशर व गोरोचर को आँवले क रस में पीसकर तिलक करने से सब लोग मोहित हो जाते हैं।

सहदेई के रस में तुलसी का बीज घोटकर रविवार के दिन तिलक करने से सब लोग मोहित हो जाते हैं।

मैनसिल एवं कपूर मिलाकर केला के रस में घोंटकर तिलक करने से सभी लोग निश्चित मोहित हो जाते हैं।

हरताल, असगन्ध तथा गोरोचन कदली के रस में घोटकर तिलक करने से सब लोग मोहित होते हैं।

काकड़सिंगी, चन्दन, वच तथा कूट इनको एक में मिलाकर इसका धूप कपड़े एवं शरीर तथा मुख आदि पर देने से मोहन शक्ति प्राप्त होती है, अर्थात् उस आदमी को देखकर राजा, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि जीव भी मोहित हो जाते हैं, पान की जड़ का तिलक भी मोहनकारक है।

सिन्दूर तथा वच मिलाकर पान के रस में घोटकर मोहन मंत्र द्वारा अभिमंत्रित कर तिलक करने से सब लोग मोहित हो जात हैं। बिना मोहन मंत्र मोहन मंत्र सिद्ध किये ये सब प्रयोग सिद्ध नहीं होते, अत: मन्त्र अवश्य सिद्ध कर लें।

चिड़चिड़ा, भृङ्गराज, लाजवन्ती तथा सहदेविका इन सबको साथ घोटकर मोहन मंत्र से अभिमंत्रित कर तिलक करेन से सब लोग मोहित हो जाते हैं।

श्वेत दूर्वा (सफेद दूब) तथा हरताल एक साथ पीसकर एवं मोहन मंत्र से अभिमंत्रित करके तिलक करने से सब लोग मोहित हो जाते है।

विल्वपत्र को अच्छी तरह छाया में सुखाकर कपिला गौ के दूध में घिसकर गोली बनावे ओर उसे मोहन मंत्र से अभिमन्त्रित कर तिलक करे तो सब जगत् मोहित होता है।

मोहनमन्त्र:—**ॐ उड्डामरेश्वराय सर्वजगन्मोहनाय अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं फट् स्वाहा।**

यह मन्त्र एक लक्ष जप करने पर सिद्ध होता है। जब मन्त्र सिद्ध कर ले तो सात बार इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके तब तिलक करना चाहिये।

स्तम्भन प्रयोग

श्री शंकरजी बोले—हे रावण ! अब मैं आगे स्तम्भन प्रयोग का वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो कि, जिसके साधन से सिद्धि निश्चित रूप से हाथ में आ जाती है।

जल स्तम्भन का प्रयोग

शंकरजी बोले कि, इस स्तम्भन प्रयोग में पहले मैं जल का स्तम्भ कहता हूँ। केकड़ा का पैर, दाँत तथा रक्त एवं कछुआ का कलेजा, सूँइस की चर्बी तथा भिलावे का तेल इन सबको एक में मिलाकर पकावे। पकने के बाद इसका शरीर पर लेप करने से मनुष्य जल के ऊपर सुखपूर्वक स्थित हो सकता है अर्थात् डूब नहीं सकता। सर्प, नक्र (नाक) तथा नेवला की चर्बी और डुण्डुम का शिर इन सबको एक साथ भिलावे के तेल में पकावे, पकने के बाद एक लोहे के बर्तन में रख लेवे पश्चात्

कृष्ण पक्ष की अष्टमी आने पर शिवजी की पूजा एवं प्रणाम कर तथा स्तम्भन मन्त्र से एक हजार आठ बार घी की आहुति शंकरजी के नाम से देवे। पश्चात् स्तम्भन मंत्र को पढ़ता हुआ तैल का शरीर के ऊपर लेप कर जल पर सुख पूर्वक बैठ सकते हैं अथवा चल-फिर सकते हैं। इसी प्रयोग को शंकरजी के प्रसाद से सिद्ध कर प्राचीन महात्माओं ने बढ़ती हुई नदियों को पार कर चमत्कार दिखलाया है।

अग्नि स्तम्भन का प्रयोग

मेंढक की चर्बी तथा कपूर एक साथ मिलाकर लेप करने से अग्नि में शरीर नहीं जलता अर्थात अग्नि का स्तम्भन हो जाता है।

घिकुआर का रस लेपन करने से कोई वस्तु आग में नहीं जलती, अग्नि का स्तम्भन हो जाता है। हे रावण ! यह मेरा वचन सत्य है।

स्तम्भनमन्त्रः—**ॐ नमो भगवते जलं स्तम्भय स्तम्भय हुं फट् स्वाहा।**

यह मंत्र एक लक्ष जपने पर सिद्ध होता है। मन्त्र सिद्ध हो जाय तभी क्रिया करनी चाहिए।

आसन स्तम्भन का प्रयोग

मृतक की खोपड़ी में मिट्टी भरकर उसमें श्वेतगुञ्जा (सफेद कजीरी) का बीज बो दे और गौ के दूध से उसको खींचता रहे, जब वह जमकर लता के रूप में परिणत हो जाय तो उसकी शाखा (डालें) तोड़कर जिसके स्थान पर या जिसका निर्देश कर सामने डाल दे तो उस व्यक्ति के आसन का स्तम्भन हो जाता है। यह सिद्ध प्रयोग है।

आसन स्तम्भन मन्त्रः

ॐ नमो दिगम्बराय अमुकस्य आसनं स्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा।

यह मन्त्र दस हजार जपने पर सिद्ध होता है। मन्त्र सिद्ध होने पर एक हजार बार जप कर तब प्रयोग करना चाहिए।

बुद्धि स्तम्भन प्रयोग

उलूक (उल्लू) तथा बन्दर का विष्ठा पान में जिसको खिला दी जायेगी उसकी बुद्धि का स्तम्भन हो जायेगा।

जिस रविवार को पुष्य नक्षत्र हो उस दिन खर मञ्जरी की जड़ लावे, पश्चात् उसको पीसकर शरीर पर लेप करने से शस्त्र द्वारा शरीर पर क्षत (घाव) नहीं होता है।

खजूर मुख में तथा केतकी कमर में एवं भुजाओं पर मदार की जड़ बाँध लेने पर सर्व प्रकार के शस्त्रों का निवारण होता है।

रविवार के दिन बेल के कोमल पत्तों को विस (कमल) के नाल के साथ पीसकर शरीर पर लेप करने से शस्त्र का स्तम्भन होता है।

शस्त्र स्तम्भन मन्त्रः

ॐ नमो अघोररूपाय शस्त्रस्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा।

यह मन्त्र दस हजार जपने पर सिद्ध होता है।

मेघ स्तम्भन-प्रयोग

दो ईंट लाकर दोनों ईंटों द्वारा संपुट करे पश्चात् चिता के कोयले से उस पर मेघ लिखकर उस संपुट को स्तम्भन मंत्र से अभिमंत्रित करे, फिर उसे पृथ्वी में गाड़ देवे तो मेघ का स्तम्भन होता है।

निद्रा स्तम्भन का प्रयोग

भटकटैया को मधु के साथ पीसकर नास ले तो नींद न आवे अथवा मधु तथा भटकटैया दोनों को खूब घोंटकर अञ्जन बना लेवे और दोनों आँखों में लगा ले तो नींद का स्तम्भन हो जाय।

जहाँ गायों या भैसों या अन्य पशुओं आदि के रहने के स्थान हों वहाँ पर चारों ओर ऊँट की हड्डी गाड़ देने से पशुओं का स्तम्भन होता है।

ऊँट के रोवें लेकर चाहे जिस पशु पर छोड़ दें उसका स्तम्भन हो जायेगा, यह सिद्ध प्रयोग है।

हरलात के रस से मदार के पत्ते पर जिसका नाम लिखकर किसी बगीचा में ईशान कोण में गाड़ देने से उसके मुख का स्तम्भन हो जाता है। हे रावण! यह मेरा कहना सत्य है।

सैन्य स्तम्भन प्रयोग

रविवार के दिन श्वेत गुञ्जा-फल (सफेद कर्जिरी का फल) लेकर श्मशान भूमि पर गड्ढा खोदकर गाड़ देवें तथा ऊपर से पत्थर रखकर दबा दें, पश्चात् आठों योगिनियों की और रौद्री, माहेश्वरी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवही, कुमारिका, लक्ष्मी तथा ब्राह्मी एवं गणेश, वटुकभैरव, क्षेत्रपाल तथा दिग्पालों का षोडशोपचार से अर्थात् चन्दन, पुष्प, धूप-दीपादिकों से पूजन कर मदिरा व मांस की बलि पृथक् पृथक् नामों से देवे, पश्चात् सैन्य स्तम्भन मन्त्र का दस हजार जप करे।

ॐ नमः कालरात्रित्रिशूलधारिणी मम शत्रुसैन्यस्तम्भनं कुरु कुरु स्वाहा।

यह मन्त्र चालीस हजार जपने से सिद्ध होता है।

सैन्य पलायन प्रयोग

मंगलवार को कौआ तथा उल्लू की पाँख की कलम बनाकर गोरोचन से भोजपत्र के ऊपर पलायन मन्त्र को शत्रु-नाम सहित लिखे पश्चात् भोजपत्र के सहित उन दोनों पाँखों को यंत्र में भरकर गले में बाँधकर जिस सेना के सन्मुख जाकर जोरों से डाँटते हुए शब्द करे तो केवल उसके शब्द को सुनकर राजा एवं प्रजा सहित सम्पूर्ण सेना भाग जाय।

पलायनमन्त्रः—**ॐ नमो भयङ्कराय खड्गधारिणे मम शत्रुसैन्य-पलायनं कुरु कुरु स्वाहा।**

इस मंत्र का दश हजार जप करने पर सिद्धि होती है।

विद्वेषण प्रयोग

श्रीशंकरजी बोले कि, हे रावण! अब मैं विद्वेषण नामक प्रयोग कहता हूँ, तुम ध्यान से उसका श्रवण करो जो कि महाकौतुक रूप है।

हाथी का दाँत और सिंह का दाँत चूर्ण कर मक्खन के साथ खूब पीसकर तिलक करने योग्य बनाकर फिर उसको विद्वेषण मन्त्र से अभिमन्त्रित कर तिलक करे तो उस तिलक को देखते ही शत्रु आपस में लड़ने लगते हैं अर्थात् विद्वेषण हो जाता है।

एक हाथ में कौवे का पंख तथा दूसरे हाथ में उल्लू का पंख लेकर दोनों विद्वेषण मंत्र से अभिमंत्रित कर काले डोरे से एक साथ बाँध दें और।

जल में खड़े हो तथा उस बँधे पंखों को हाथों में लेकर सात दिन तक विद्वेषण मंत्र से प्रतिदिन एक सौ आठ बार तर्पण करने से विद्वेषण हो जाता है।

शत्रु के पाँव के नीचे की मिट्टी लाकर पुतली बनावे तथा उसके ऊपर हाथी एवं सिंह के बाल पलेट भूमि में गाड़कर उस पर वेदी बनाकर अग्नि स्थापन के पश्चात् मालती के पुष्पों का विद्वेषण मंत्र द्वारा हवन करे तो विद्वेषण हो जाता है।

जड़ सहित ब्रह्मदण्डी तथा कौवा ोड़ी को सात दिवस पर्यन्त चमेली के फूल के रस में भिगो दे पश्चात् उसे निकालकर पुनः सात दिवस पर्यन्त बिल्ली के मूत्र में भिगोवे फिर उसे निकाल लेवे पश्चात् शत्रु के घर के समीप उसी का धूप देवे। इस धूप की सुगन्धि जो-जो सूँघेगा उसमें परस्पर विद्वेषण होगा।

हाथी एवं सिंह के दाँतों का चूर्ण मक्खन में मिलाकर जिसका नाम लेकर विद्वेषण मन्त्र से अग्नि में हवन करे उसको अन्य से विद्वेषण होवे।

भैंस और घोड़े के बाल मिलाकर जिस सभा में धूप दे उस सभा में क्षण मात्र में ही विद्वेषण हो जाता है।

बिल्ली, मूषक और शत्रु के पैर के नीचे की मिट्टी लाकर एक में मिलाकर पुतली बनावे और उसे नीला कपड़ा ओढ़ावे तथा एक सौ बार विद्वेषण मंत्र से अभिमंत्रित कर शत्रु के घर में गाड़ देवे तो शीघ्र ही शत्रु सहित उसके परिवार वालों में विद्वेषण हो जायेगा।

एक हाथ में कौवे का पर तथा दूसरे हाथ में उल्लू का पर ले विद्वेषण मंत्र से अभिमंत्रित कर दोनों परों को एक साथ मिलाकर काले सूत से बाँधकर शत्रु के घर

में गाड़ दे तो पिता-पुत्र में विद्वेषण हो जाय, जब शान्त करना हो तो उसे निकालकर गुग्गुल का धूप दे तो शान्त हो जायेगा।

विद्वेषणमन्त्रः—**ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य अमुकेन सह विद्वेषणं कुरु कुरु स्वाहा।**

इस मन्त्र में जहाँ अमुक शब्द है वहाँ शत्रु का नाम लेना चाहिये। एक लाख मन्त्र जपने पर सिद्ध होता है। मन्त्र बिना सिद्ध किये प्रयोग सिद्ध नहीं होता।

उच्चाटन प्रयोग

शिवजी बोले कि, हे रावण! ध्यान देकर सुनो, यह उच्चाटन या वध उसी पर करना चाहिये कि जिसने घर, खेत, स्त्री, धन एवं पुत्र का अपहरण किया हो।

कलिहारी की जड़ उच्चाटन मन्त्र से अभिमन्त्रित करे और उसे जिस पर उच्चाटन करना हो उसके घर में गाड़ दे तो शीघ्र ही उसका उच्चाटन हो जायेगा।

ब्रह्मदण्डी और चिता का भस्म शिवलिङ्ग के ऊपर लेपन करे तथा ब्रह्मदण्डी, चिताभस्म और सरसो शनिवार के दिन शत्रु के घर में फेंकने से उच्चाटन होता है।

गूलर की चार अंगुल की लकड़ी की कील उच्चाटन मन्त्र मन्त्र से अभिमंत्रित कर शत्रु के सोने के स्थान पर खोदकर गाड़ देने से उच्चाटन हो जाता है।

कौवा और उल्लू का पर उच्चाटन कन्त्र से अभिमन्त्रित कर शत्रु के घर में गाड़ देने से उच्चाटन हो जाता है।

मनुष्य की हड्डी की चार अंगुल की कील उच्चाटन मंत्र से अभिमन्त्रित कर त्रु के गृह में मंगलवार को गाड़कर स्वयं पेशाब कर दे तो शत्रु का उच्चाटन निश्चित हो जाय।

सफेद सरसों और शंकरजी पर चढ़ायी हुई माला एवं जल इन तीनों को निम्नलिखित मन्त्र से अभिमंत्रित कर शत्रु के घर में गाड़ देने से उच्चाटन होता है और उसे खोदकर निकाल देने से पूर्ववत् सुखी होता है।

मन्त्र—**ॐ नमो भगवते रुद्राय कलादंष्ट्राय अमुकं पुत्रबान्धवैः सह हन दह दह पच पच शीघ्रं उच्चाटय-उच्चाटय फट् स्वाहा।**

दस हजार जप करने पर यह मन्त्र सिद्ध होता है। बिना मन्त्र सिद्धि के प्रयोग निष्फल होगा।

मध्याह्न (दोपहर) में जहाँ गदहा लोटा हो वहाँ की धूल पश्चिम मुख होकर बायें हाथ से उठा लेवे, पश्चात् उच्चाटन मन्त्र से अभिमन्त्रित कर सात दिन बराबर शत्रु के घर में फेंके तो गृह के स्वामी का उच्चाटन होवे।

उच्चाटनमन्त्रः—**ॐ नमो भीमास्याय अमुकगृहे उच्चाटनं कुरु कुरु स्वाहा।**

वशीकरण प्रयोग

शंकरजी कहते हैं--- हो रावण ! अब मैं वशीकरण प्रयोग करता हूँ जिसके द्वारा राजा, प्रजा एवं पशु भी वश में किये जा सकते हैं।

ककुनी, तगर, कूट, चन्दन, नागकेसर व धतूरा का पञ्चांग (जल-डाल-पात-फूल-फल) सबको सम भाग ले जल के सहयोग से घोट गोली बना छाया में सुखाकर वशीकरण मन्त्र से सात बार अभिमंत्रित कर जिसे वश में करना हो उसे खान-पान में खिलावे तो वशीकरण सिद्ध हो।

वश्यमन्त्र मन्त्र---**ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय मोहाय मोहाय मिलि ठः ठः स्वाह।**

इस मन्त्र को तीस हजार जप कर सिद्ध कर लें।

बेलपत्र तथ नीबू बकरी के दूध में घोट वशीकरण मन्त्र से अभिमंत्रित कर तेलक करने से भी वशीकरण होता है।

भाँग के बीज एवं घिकुआर की जड़ को एक साथ घोट वशीकरण मन्त्र से अभिमंत्रित कर तिलक करने से वशीकरण होता है।

गोरोचन, वंशलोचन, मछली का पित्त, केशर, चन्दन तथा काक जंघा की जड़ को सम भाग ले कुमारी कन्या द्वारा बावली के जल से पिसवा वशीकरण से अभिमंत्रित तिलक कर लगाने से वशीकरण सिद्ध होता है एवं विजय प्राप्त होती है।

रावशीकरण

चन्दन, रोरी, गोरोचन एवं कपूर को गौ के दूग्ध में घोट अभिमंत्रित कर तिलक कर लगाने से राजा लोग वश में हो जाते हैं।

चम्पा की कली रवि-पुष्य नक्षत्र में अथवा रवि-भरणी नक्षत्र में लाकर हाथ में बाँधे तो राजा लोग की वश में हों, अन्य मनुष्यों की क्या गणना? सुदर्शन की जड़ भी उक्त नक्षत्र में लाकर हाथ में बाँधने से वशीकरण होता है।

वशीकरणमन्त्र---**ॐ ह्रीं सः अभुकं मे वशमानय आनय स्वाहा।**

शिव उवाच

शंकर जी बोले---हे रावण, अब मैं उस विधि को कहता हूँ जिसे स्त्रियाँ वश में की जाती हैं।

मधु के साथ खस खस व चन्दन मिला तिलक लगा स्त्री के गले में हाथ डाले तो स्त्री वश में हो।

चिता की राख, बच, कूट, रोली एवं गोरोचन सम भाग ले चूर्ण कर स्त्री के शिर पर डालने से स्त्री वश में हो जाती है।

वशीकरण प्रयोग

शंकरजी कहते हैं--- हो रावण ! अब मैं वशीकरण प्रयोग करता हूँ जिसके द्वारा राजा, प्रजा एवं पशु भी वश में किये जा सकते हैं।

ककुनी, तगर, कूट, चन्दन, नागकेसर व धतूरा का पञ्चांग (जल-डाल-पात-फूल-फल) सबको सम भाग ले जल के सहयोग से घोट गोली बना छाया में सुखाकर वशीकरण मन्त्र से सात बार अभिमंत्रित कर जिसे वश में करना हो उसे खान-पान में खिलावे तो वशीकरण सिद्ध हो।

वश्यमन्त्र मन्त्र---**ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय मोहाय मोहाय मिलि ठः ठः स्वाह।**

इस मन्त्र को तीस हजार जप कर सिद्ध कर लें।

बेलपत्र तथ नीबू बकरी के दूध में घोट वशीकरण मन्त्र से अभिमंत्रित कर तिलक करने से भी वशीकरण होता है।

भाँग के बीज एवं घिकुआर की जड़ को एक साथ घोट वशीकरण मन्त्र से अभिमंत्रित कर तिलक करने से वशीकरण होता है।

गोरोचन, वंशलोचन, मछली का पित्त, केशर, चन्दन तथा काक जंघा की जड़ को सम भाग ले कुमारी कन्या द्वारा बावली के जल से पिसवा वशीकरण से अभिमंत्रित तिलक कर लगाने से वशीकरण सिद्ध होता है एवं विजय प्राप्त होती है।

रावशीकरण

चन्दन, रोरी, गोरोचन एवं कपूर को गौ के दूग्ध में घोट अभिमंत्रित कर तिलक कर लगाने से राजा लोग वश में हो जाते हैं।

चम्पा की कली रवि-पुष्य नक्षत्र में अथवा रवि-भरणी नक्षत्र में लाकर हाथ में बाँधे तो राजा लोग की वश में हों, अन्य मनुष्यों की क्य गणना? सुदर्शन की जड़ भी उक्त नक्षत्र में लाकर हाथ में बाँधने से वशीकरण होता है।

वशीकरणमन्त्र—**ॐ ह्रीं सः अभुकं मे वशमानय आनय स्वाहा।**

शिव उवाच

शंकर जी बोले—हे रावण, अब मैं उस विधि को कहता हूँ जिसे स्त्रियाँ वश की जाती हैं।

मधु के साथ खस खस व चन्दन मिला तिलक लगा स्त्री के गले में हाथ ाले तो स्त्री वश में हो।

चिता की राख, बच, कूट, रोली एवं गोरोचन सम भाग ले चूर्ण कर स्त्री शिर पर डालने से स्त्री वश में हो जाती है।

नीलकमल, भौंरे की दोनों पंख, तगर का जड़, श्वेत कौआगोड़ी सम भाग ले चूर्ण कर युवती के शिरपर डालने से स्त्री वश में होती है।

स्त्री-प्रसङ्ग के पश्चात् अपने वीर्य को बायें हाथ से स्त्री के बायें चरण के तलवे में लेप करने से स्त्री वशीभूत हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं है।

सेंधा नमक, शहद, कबूतर की विष्ठा एक में पीस लिंग पर लेप कर स्त्री से मैथुन करने पर स्त्री वश में हो जाती है।

गोरोचन, कुरैया, पारा और काश्मीरी केशर को धतूरे के रस में घोंट लिंग पर लेप कर स्त्री प्रसङ्ग करने से स्त्री अत्यन्त वशीभूत होती है।

छोटी एवं पतली इन्द्रिय द्वारा स्त्रियाँ सुखी नहीं होती हैं, उनके लिये मोटा एवं लम्बा होना चाहिये, अतः मोटा और लम्बा लिंग बनाने का प्रकार कहता हूँ।

कूट, छोटी पीपर, दोनों खरैटी, बच, असगन्ध, गजपीपर और कनेर को मक्खन के सहयोग से पीसकर लिंग पर लेप करे तो लिंग मोटा और लम्बा मूसल की तरह हो जाय।

लोध, केसर, असगन्ध, पीपर और शालपर्ण कड़वा तेल में पकाकर लिंग पर मालिश करने से लिंग लम्बा-मोटा होता है।

बच, खरैटी व पासा भैंस के मक्खन में खूब घोंटकर लिंग पर मलने से लिंग तुरन्त लोहा के समान हो जाता है।

भिलावा-गिरी, सेवार, कमल पत्र की राख को सेंधा नमक के साथ जल के सहयोग से घोटकर लेप करने से घोड़े की तरह लिंग बन जात है।

सूअर की चर्बी और मधु एक में मिला लेप करने से करीब एक माह के बाद लिङ्ग लम्बा तथा मोटा भी बन जाता है।

असगन्ध, सतावर, कूट, जटामासी और कटेली को चौगुने दूध और चौगुने तिल के तेल में पका लिंग तथा स्तन पर लेप करने एवं खाने से कड़ा होता है।

इसी प्रकार मुसली का चूर्ण भी घी में मिला लेप करने से काफी लाभ होता है तथा पीपर, सेन्धा नमक और मिश्री को दूध में पकाकर लेप करने से भी लिंग मोटा एवं लम्बा होता है।

यह ध्यान रहे कि उक्त औषधियाँ गालों पर भी लगाई जाती हैं तथा बाँहों में भी लगाई जाती हैं।

जटामाँसी, बहेड़ा, कूट, असगन्ध तथा सतावर इनको कड़वे तेल में पका लिंग पर मलने से लिंग कड़ा, मोटा एवं लम्बा होता है।

पारा, असगन्ध, हल्दी, गजपीपर एवं मिश्री जल से सहयोग से घोटकर लिंग व स्तन पर लेप करने से अद्भुत लाभ होता है।

गोरोचन, मछली का पित्त तथा मोर की शिखा को मधु एवं घी के सहयोग से घोटकर योनि के ऊपर लगा पुरुष से प्रसंग करने पर पुरुष वश में हो जाता है।

कुलथी, विल्वपत्र, गोरोचन एवं मैनशिल को सम भाग ले चूर्ण कर ताम्रपात्र में रख सरसों के तेल में सात दिन तक मीठी आँच में पका-पकाकर उतारता जाय, पश्चात् कपड़े से छानकर उस तेल को योनि पर लगा पुरुष के साथ रमण करने से पुरुष वश में होता है।

ककुनी, सौंफ, केसर, वंशलोचन सम भाग ले घोड़े के मूत्र में घोट कर योनि पर लगा मैथुन करने से पुरुष वश में हो जाता है।

कुचकाठिन्य की विधि

रेड़ी का तेल, मछली का तेल व बिल्वफल का लासा इन तीनों को मिलाकर स्तन पर लगाने से स्तन कड़े होते हैं। यह ध्यान रहे कि मलते समय हाथ ऊपर की ओर रहे।

काले रंग का बिच्छु तथा खंभारी के रस को तिल के तेल में पकावे व केवल तेल शेष रह जाय तो कपड़े से छानकर स्तन पर मले फिर तो गिरे स्तन भी कड़े होकर उठ जाते हैं।

श्वेत रंग के मोथे को काली गौर के दूध में पका लेप करने योग्य बना स्तन पर लेप करने से स्तन बड़ा एवं कड़ा हो जाता है।

वच, असगन्ध की जड़ तथा पत्र एवं गज पीपर इन सबको शुद्ध जल के सहयोग से पीस स्तन पर लेप करेन से स्तन ताड़ फल एवं बड़े आम्र फल के जैसे होते हैं।

गम्भारि के पत्ते का रस व तिल का तेल सम भाग लेकर दूने जल में पाक करे। जब केवल तेल शेष रह जाय तो कपड़े से छानकर शीशी, बोतल में रख स्तन पर मले फिर तो ठीक तौर से एक बार मलने के बाद ही स्तन लोहे जैसे कड़े हो जायेंगे।

इन उपरोक्त विधियों का वर्णन स्त्री-पुरुष के प्रसङ्गार्थ श्री शंकर जी ने स्वयं किया है।

योनि संस्कार

निम्बपत्र को कोरी हाँडी में जल देकर खूब उबाल कपड़े से छानकर योनि

को धोवे पशात् काले अगर व गुग्गुल को आग में जला योनि की सेंक पति के साथ मैथुन करे तो पति बड़ा प्रसन्न होता है।

जिस स्त्री की योनि में दुर्गन्ध मालूम पड़ती हो वह तो नीम के पानी से योनि को धोकर नीम के कोमल पत्ते पीस योनि पर लेप करे फिर दो-तीन बार के ऐसा होने से योनि-दुर्गन्ध समाप्त हो जायेगी।

रोम-नाशन

पलाश पत्र का भस्म तथा हरताल भस्म का चूर्ण केले के केले के रस में मिलाकर रोग स्थान पर लगा देने से बाल साफ हो जाते हैं फिर कभी नहीं जमते हैं।

एक भाग हरताल का भस्म, पाँच भाग शंख का भस्म, पाँच भाग पिलखुन का भस्म इन सबको केले के जल में मिला रोम स्थान पर लगाने से आराम से बाल साफ हो जाते हैं।

हरताल चूर्ण, शंख चूर्ण और मजीठ भस्म को पलाश के फूल के साथ पीसकर लेप रने से भी बाल साफ हो जाते हैं।

हरताल चूर्ण व शंख का चूर्ण चूने के पानी में घोटकर रोम स्थान पर लगा धूप दिखाने से बाल साफ हो जाते हैं।

सुपारी के पत्ते के रस में उत्तम गन्धक पीसकर रोम स्थान पर लगाने, धूप दिखाने से रोम साफ हो जाते हैं।

योनि-संकोचन

आमा हल्दी व खाने की हल्दी, कमल केसर तथा देवदारु की लकड़ी सम भाग ले जल में पीस योनि पर लगाने से योनि संकुचित होती है।

धव पुष्प, त्रिफला, जामुन की छाल, जामुन का रस, घी तथा मूलहठी समभाग लेकर पीसे फिर इसे योनि पर लगावे। यदि वृद्धा स्त्री हो तो भी उसका भग लकड़ी के तुल्य संकुचित हो जाता है।

नीले कमल का बीज, कटेरी, वच, काली मिर्च, कनेर की छाल व बीज, असन तथा हल्दी को समभाग घोटकर लेपन योग्य बना योनि पर लगाने से शीघ्र योनि संकुचित हो जाती है।

बीरबहूटी नाम की जड़ी को पीस पर लगाने से योनि सहज ही में कड़ी तथा गहरी भी हो जाती है।

स्त्री-द्रावण

कामशास्त्रों ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में आठ गुना काम अधिक बताया है सलिए औरतें जल्दी स्खलित नहीं होती हैं, एतदर्थ उन औषधियों का संक्षिप्त वर्णन करता हूँ कि, जिससे औरतें भी पुरुषों के साथ प्रेमानन्द ले सके।

सिन्दूर, इमली के फल को मधु में घोटकर भगद्वार पर लगा मैथुन करने से स्त्री का शीघ्र ही पतन हो जाता है।

त्रिफला चूर्ण को अच्छी तरह कपड़े से छानकर शहद में मिला योनि द्वार पर थोड़ा लगाकर स्त्री प्रसंग करने से स्त्रियाँ शीघ्र ही स्खलित हो जाती हैं।

पीपर, चन्दन, कटेरी तथा पकी इमली इन सबको घोट पीसकर लेप बना लिंग पर लगा मैथुन करने से शीघ्र ही स्त्री स्खलित हो जाती है।

अगस्त पत्र का रस, भुने सुहागे का चूर्ण, घी एवं शहद में मिला लेप बना लिंग पर लगा मैथुन करने से शीघ्र ही स्त्री का पतन हो जाता है।

अच्छी लोध, धतूर, कटेरी व पिपरामूल सम भाग ले चूर्ण कर शहद में मिला लिंग पर लगा मैथुन करने से शीघ्र स्त्री का स्खलन होता है।

असगन्ध के पत्तों को हंडी में उबाले, पश्चात् उसे तेल में उरिद एवं मुलहठी दोनों सम भाग पीस लिंग पर लगा मैथुन करने से स्त्री शीघ्र ही स्खलित हो जाती है।

बेल का फूल व मुण्डी का फूल और कपूर पीस लिंग पर लेप कर स्त्री प्रसंग करने पर स्त्री शीघ्र स्खलित होती है।

कटेरी की जड़ एवं फल भी, पीपर, काली मिर्च, गोरोचन सम भाग ले शहद में घोट लिंग पर लगा संभोग करने से स्त्री शीघ्र स्खलित होती है।

काली मिर्च, धतूर बीज, पीपर, लोध चूर्ण सम भाग ले शहद में घोट लिंग पर लेप कर मैथुन करने से कैसी भी स्त्री क्यों न हो पर उसके पतन में देर नहीं होती है।

उपर्युक्त औषधियों को निम्नलिखित द्रावण मंत्र से अभिमंत्रित कर लेना चाहिये। यह मंत्र १०८ बार जपने पर सिद्ध होता है।

मन्त्र—**ॐ नमो भगवते रुदाय उड्डामरेश्वराय स्त्रीणाम्मदं द्रावय द्रावय ठः ठः स्वाहा।**

आकर्षण प्रयोग

भगवान् शंकर बोले कि, हे राक्षसराज रावण, अब मैं आगे आकर्षण विधि का वर्णन करता हूँ, जिसके ज्ञान से सचमुच आकर्षण होगा। निम्नवर्णित प्रयोगों से मनुष्य, असुर, देवता, यक्ष, उरग, राक्षस, स्थावर, जंगम सभी का आकर्षण हो सकेगा इसमें संशय नहीं है।

आश्लेषा नक्षत्र में देवदारु वृक्ष की बाँझी लकड़ी लाकर बकरे के मत्र में कूट-पीसकर सुखा ले, जिससे कि भुरभुरी हो जाय, फिर तो जिसका आकर्षण करना हो उसके शिर पर थोड़ा डाल दे तो उसका आकर्षण हो जायेगा।

पंचमी की तिथि में हुरहुर की जड़ खोद लाये और जिसका आकर्षण करना हो उसे पान में खिला दे तो वह स्वयं वह स्वयं आकर्षित हो आपके पास चला आयेगा।

स्त्री के बायें पैर के नीचे की मिट्टी ला गिरगिटान के खून में सान उसकी प्रतिमा (पुतली) बनावे, पश्चात् प्रतिमा के वक्षस्थल पर उसी स्त्री का नाम लिखे, जिसका आकर्षण करना हो अर्थात् जिसे बुलाना हो। फिर उस प्रतिमा को मूत्र करने के स्थान पर गाड़ दे तथा प्रतिदिन उस पर मूत्र करे तो हजारों मील की दूरी पर रहने वाली स्त्री क्यों न हो पर वह आकर्षित होकर चली आयेगी।

यक्षिणी साधन

शंकरजी बोले कि मैं यक्षिणियों को सिद्ध करने का उपाय कहता हूँ कि, जिसके द्वारा मनुष्य की हर एक कामनाएँ सिद्ध होंगी।

इसके सिद्ध करने का कई प्रकार है—जैसे बहिन, माता, पुत्री तथा स्त्री के रूप में जो जिस भाव के इच्छुक हों उन्हें उन्हीं भाव का ध्यान करना चाहिये।

इस यक्षिणी साधन में मांस एवं पान का भक्षण अत्यन्त निषेध है, प्रातः काल स्नान कर नित्य क्रिया से छुट्टी पाकर जप करना चाहिये और किसी का भी स्पर्श न करना चाहिये। यह सब क्रिया तब तक करे जब तक वांछित पदार्थ देने वाली यक्षिणी प्रत्यक्ष रूप में प्रगट न हो जाय।

महायक्षिणी साधन

साधनमन्त्र—**ॐ क्लीं ह्रीं ऐं ॐ श्रीमहायक्षिण्यै सर्वैश्वर्यप्रदात्र्यै नमः।**

उपर्युक्त मन्त्र को जितेन्द्रिय हो बेल वृक्ष पर चढ़कर एक मास पर्यन्त प्रतिदिन एक हजार जपे।

मांस तथा मदिरा प्रतिदिन रखे क्योंकि न जाने वह नाना रूप धारण करने वाली यक्षिणी कब आकर उपस्थित हो जाय।

जिस समय यक्षिणी आकर उपस्थित हो जाय उस समय उसे देखकर भयभीत न हो (वह भयानक रूप भी धारण कर सकती है), अपना जप करता जाय, जब वह यह वचन कहे कि हम अमुक दिन बलि लेंगे तथा वरदान देंगे तो उसे मानकर उसी दिन वर की याचना करें, जैसे धन की इच्छा हो तो धन माँगे, इसी तरह कान में बात करना या नाचना या स्त्री लाना, राजा को वश में करना, आयु, विद्या, यश, बल आदि जिस चीज की इच्छा हो तो धन माँगे, इसी तरह कान में बात करना या नाचना या स्त्री लाना, राजा को वश में करना, आयु, विद्या, यश, बल आदि जिस चीज की इच्छा हो वही वरदान माँगे।

प्रसन्न हुई यक्षिणी सब कुछ देती है, इसमें सन्देह नहीं है यदि प्रयोग को अपने न कर सके तो किसी निर्भीक ब्राह्मण करावे। यह यक्षिणी-साधन देवताओं द्वारा किया गया है।

अथवा अपने सहायकों को रख ब्राह्मणों से करावे और प्रतिदिन तीन कुमारी कन्याओं को भोजन कराता रहे।

धनादि की सिद्धि होने पर धन अच्छे कार्य में खर्च करें, नहीं तो सिद्धि नष्ट हो जायेगी।

धनदा-यक्षिणी मन्त्र—**ॐ ऐं ह्रीं श्रीं धनं मम देहि देहि स्वाहा।**

धन देने वाली यक्षिणी का जप पीपल के वृक्ष पर बैठकर करने से धनदा प्रसन्न होकर धन देती है।

पुत्र की इच्छा वाला व्यक्ति आम के पेड़ पर चढ़कर जप करे तो पुत्रदा यक्षिणी प्रसन्न होकर पुत्र प्रदान करती है।

बरगद के पेड़ पर चढ़कर महालक्ष्मी का जप करने से वह प्रसन्न होकर घर में चिरस्थायी हो जाती है।

मदार की जड़ के ऊपर बैठकर जप करने से जया नाम वाली यक्षिणी प्रसन्न होकर सब कार्यों को सिद्ध करती है।

यक्षिणियों की साधना गुप्त रूप से करनी चाहिये, प्रत्यक्ष प्रकट रूप से करने में विघ्नों का भय रहता है तथा प्रयोग सिद्ध नही हो पाता।

भूतिनीसाधनम्

भूतिनी नाम की यक्षिणी अनेक रूप धारण करती है, जैसे कुण्डल धारण करने वाली, सिन्दूर धारण करने वाली, हार पहनने वाली, नाचने वाली, अत्यन्त नाचने वाली, चेटी, कामेश्वरी और कन्या आदि।

भूतिनीमन्त्र—**ॐ ह्राँ क्रूँ क्रूँ क्रँ कटुकटु अमुकी देवी वरदा सिद्धिदा च अं भः।**

भूतिनी का जप चम्पा के नीचे करे और प्रति दिन आठ हजार जप करे, पहले भूतिनी का पूजन करे पश्चात् गुग्गुल का धूप दे। उपर्युक्त विधि से करने पर सातवीं रात में भूतिनी आती है, जब इष्ट आ जाय तो उसे चन्दनमिश्रित जल से अर्घ्य देवे फिर तो प्रसन्न होकर भूतिनी उसी रूप में परिणत हो जाती है, जिस रूप में साधक की इच्छा है।

जब साधक यक्षिणी को माता के रूप में सिद्ध करता है तो वह १८ आदमियों को वस्त्राभूषण और भोजन प्रतिदिन देती है। भगिनी के रूप में सिद्ध होने

पर सुन्दर स्त्रियों को दूर-दूर से लाकर देती है तथा रसवाले दिव्य भोजनों को देती है, भार्या के रूप में सिद्ध होने पर अपनी पीठ पर चढ़ा स्वर्गादि लोकों को भ्रमण कराती है एवं भोजनादि के पदार्थों को भी उपलब्ध कराती है।

रात होने पर देवालय में सुन्दर पलंग बिछा सजावे तथा चमेली पुष्प, चन्दन आदि से पूजन कर गुग्गुल की धूनी कर मंत्र का आठ सहस्र जप करे। जप की समाप्ति पर सम्पूर्ण वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर यक्षिणी प्रकट होगी और साधक का आलिंगनचुम्बनादि कर भोग करेगी तथा कुबेर के धन-कोष से धन भी लाकर देगी।

शव-श्मशान-साधन

शंकरजी बोले कि, अब मैं मसान सिद्धि-अर्थात् मुर्दे के ऊपर चढ़कर सिद्धि किस प्रकार की जाती है उस आश्चर्यजनक क्रिया का वर्णन करूँगा जिसके ज्ञन के बाद साधक सिद्ध हो जाता है।

प्रथम निराहार एवं जितेन्द्रिय हो पश्चात् श्मशान भूमि में उस दिन जाय, जिस दिन मंगलवार को अमावस्या हो, फिर पुरुष शव का अन्वेषण कर उसकी छाती पर निर्भय हो बैठकर दश हजार मंत्र का जप करे पश्चात् वहाँ से उठ एकान्त में आ श्यामा और श्यामल सुन्दरी का षोडशोपचार से पूजन करे, यही शव-साधन की क्रिया है, ऐसा करने के बाद साधक जो आज्ञा देगा वह यक्षिणी करेगी।

शवसाधनमंत्र—**ॐ ह्रीं शवमेनं साधय साधय स्वाहा।**

श्वेत काकजङ्घा, गिद्ध की चर्बी, असगन्ध इनको लेकर ऊँटनी के दूध में पीस लेप बना पैर के तलवे में लगाने से मनुष्य पन्द्रह योजन तक निरापद चल सकता है।

पादुका सिद्धि का मन्त्रः- ॐ नमो भगवते रुद्राय भूत-बेताल-त्रासनाय शंख-चक्र-गदाधराय हन हन महते चन्द्रयुताय हूँ फट् स्वाहा।

इसी मन्त्र का लक्ष जाप पादुका (खड़ाऊँ) सिद्ध करता है, इसको सौ बार पढ़कर उपर्युक्त लेप अभिमंत्रित कर लेना चाहिए।

ॐ नमो भगवते रुद्राय मासे संमले काले खले घोर प्रवर सर सर स्वाहा।

कुत्ता, बिल्ली एवं नेवले का पित्त सम भाग लेकर पैर के तलवे में लेप कर पन्द्रह योजन आदमी जा सकता है तथा काक मांस एवं रसाञ्जन का लेप कर पन्द्रह योजन लौटकर पुनः वापस आ सकता है।

पदलेपनमन्त्र—**ॐ नमो भगवते रुद्राय हरति गदेश्वराय त्रासय त्रासय चालय चालय स्वाहा।**

इस मन्त्र द्वारा लेप को सात बार अभिमन्त्रित करके तब लेप को पैर के तलवे में लगावे।

काग क कलेजी, आँख एवं जीभ, मैनसिल, सिन्दूर, गुरुच, अजवाइन, मालती तथा विदारीकन्द को सम भाग में ले घोंट लेप बना पाद तले लगाने से सौ योजन तक जाने की शक्ति पैरों में आ जाती है। इस लेप को उपर्युक्त मंत्र से सात बार अभिमंत्रित कर लेना चाहिये।

मृतसञ्जीवनी प्रयोग

शंकरजी कहते हैं कि, मैं मृत सञ्जीवनी विद्या का प्रयोग प्रेमपूर्वक कहूँगा, अकोल नाम वृक्ष के नीचे एक शिव लिंग स्थापित करे, पश्चात् घट के ऊपर कसोरे में यव रख तथा जल से परिपूर्ण करे, प्रथम शिवलिंग की विधिवत् पूजा करे फिर वृक्ष की एवं यव तथा घट की पूजा करे और वृक्ष व लिंग तथ घट तीनों को एक सूत्र में बाँध देवे।

तथा इस क्रिया में चार आदमियों को साधक बनावे फिर सब साधक बारी-बारी से प्रणाम करें और एक-एक साधक दो-दो दिन तक पूजा करता रहे जब तक कि वृक्ष में फूल-फल न लगे। जब फल पक जाय तो कलश जो कि पहले से रखा है, उसी में रखे।

उस कलश का प्रति दिन षोडशोपचार से पूजन करे, कुछ दिनों बाद फिर बीजों को निकाल उनकी गुद्दी निकाले, छिलके अलग फेंक दे, फिर कोंहार के यहाँ से बड़े मुँहवाला घड़ा ला उसके अन्दर एक चौथाई भाग सुहागा से लेप करे।

पश्चात् शुद्ध मिट्टी रख उसें गोलाई में बीज बो दे फिर कुछ दिनों बाद जब बीज सूख जाय तो ताम्रपात्र से ढँककर (ध्यान रहे कि इस प्रकार ढंका जाय जिसमें तेल निकल सके), घड़ा को औंधा (नीचे मुख) कर ऊपर से आंच देकर तेल निकाले, जब तेल निकल जाय तब शीशी में रख ले और आधा मासा यह तेल तथा आधा-आधा मासा तिल का तेल मिलावे और जिस रोगी की मृत्यु सर्प काटने से हुई हो उस रोगी को नास दे तो वह जीवित हो जायेगा। सर्पदंशियों की यह अचूक दवा है।

अघोरमन्त्र—**अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यः नमस्तेऽस्तुरुद्ररूपेभ्यः।**

इसी अघोर मंत्र से घट की पूजा कर प्रतिदिन नमस्कार करने से संजीवनी प्रयोग सिद्ध होता है।

विद्याधर सिद्धि

ॐ ह्रीं गौर्गोपतये नमः।

अर्ध रात्रि में विद्याधर मंत्र का तीन हजार प्रति रात्रि जप करने से विद्याधर की सिद्धि होती है तथा गन्धर्व शब्द का ज्ञान एवं पुत्र और बल भी प्राप्त होता है।

शिवज कहते हैं कि, अब मैं इन्द्रजाल कौतुक का व्याख्यान करता हूँ, जिसके ज्ञान से प्रत्येक प्रकार के कौतुकों की जानकारी हो जाती है।

भूतकरणम्

भिलोय के रस में गुञ्जा (घुँघुची) विष, चित्ता तथा केंवाच का चूर्ण मिलाकर देने से भूत लगता है।

भूत चढ़ने के लक्षण ये हैं कि, जैसे धीरे-धीरे शरीर का हिलना, बार-बार मूर्च्छा का आना अथवा हाथ कँपना, पटकना आदि।

खस, चन्दन, कंगनी, तगर, लालचंदन और कूट एक में पीस लेप करने से भूत उतरता है।

मन्त्र—**ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय कुहुनी कुर्बली स्वाहा।**

इस मन्त्र के द्वारा सौ बार झाड़ने से भूत उतरता है।

लोहबान, घी, हींग, देवदारु, इन्द्रवारुणी, गोदन्ती, सरसों, केश, कुटकी, नीम की पत्ती, दोनों कटाई, बच, चव्य, बनउर, जव, बकरे का बाल तथा मोर की पूँछ।

बछड़े के मूत्र में पीस के सुखावे तथा मिट्टी की परई में अग्नि जला इसका धूप दे तो ग्रहादि एवं भूतादि डाकिनी-शाकिनी और भी ज्वरादि अनेक प्रकार के दुःख दरिद्रों की शान्ति होती है।

गुग्गुल, लहसुन, घी, साँप की केंचुल, बानर का बाल, मोर, मुर्गा एवं कबूतर की विष्ठा एक में मिलाकर धूप देने से बड़े-बड़े प्रेत शान्त हो जाते हैं एवं क्रूर ग्रह, पूतना, डाकिनी, एकाहिक ज्वरादि भी भयंकर से भयंकर नष्ट हो जाते हैं।

काली सरसों तथा काली मिर्च का अञ्जन भूत को उतार देता है, तगर, बकुची एवं निम्ब का अञ्जन भयानक ज्वर पीड़ा को शान्त करता है।

एक पात्र में गोरख मुण्डी की जड़ रखे पश्चात् हींग मिश्रित जल छोड़े फिर उस जल को पीने से ग्रहादि एवं भूतादिकों की बाधा शान्त होती है।

इन्द्र वारुणी का पका फल, कमलगट्टा और काली मिर्च गौ के मूत्र में पीसकर नास लेने (नाक में सूँघने) से ब्रह्मराक्षसादि एवं भूतादि की बाधाएँ शान्त होती हैं।

भूतनाशनमन्त्र—**ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः कोशेश्वराय नमो ज्योतिः पतंगाय नमो नमः सिद्धिरूपीरुद्राय ज्ञपति स्वाहा।**

इस मन्त्र को यथाशक्ति जप करने से कठिन से कठिन ग्रह शान्त हो जाते हैं।

शंकरजी के अघोर मन्त्र का हृदय में अर्थात् अजपा जाप करने से ज्वर शान्त होता है।

बरगद के पत्ते पर निम्नलिखित मंत्र कोयले से लिखकर ज्वरग्रस्त व्यक्ति को दिखाने से ज्वर उतर जाता है।

ज्वरनाशनमंत्र—**ॐ नमो भगवते रुद्राय छिन्धि छिन्धि ज्वरं ज्वराय ज्वरोज्वलित कपाल पाणये हुं फट् स्वाहा।**

इस मन्त्र को सिद्धि पर्यन्त जप करने से दूसरे पर ज्वर का आवेश हो जाता है।

उपर्युक्त मंत्र को भोजपत्र पर लिख दाहिने हाथ में बाँधे तथा नित्य १०८ बार जप करे तो सब प्रकार के ज्वर नष्ट हों।

धतूर का बीज, लोहे का मुर्चा, गोह की विष्ठा, करंज का बीज समान भाग ले चूर्ण कर जल में मिला खाने-पीने के साथ देने से पागलपन होता है तथा निम्नलिखित मंत्र से २१ बार अभिमंत्रित कर जल पिला देने से पागलपन शान्त हो जाता है।

उन्मादनाशनमंत्र—**ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये पिशाचाधिपतये आवेशय कृष्णपिंगलाय फट् स्वाहा।**

इस मंत्र को एक लक्ष बार जपकर सिद्ध कर लेना चाहिये।

शंकरजी कहते हैं कि अब मैं शत्रुओं को पीड़ा पहुँचाने का प्रकार कहता हूँ, जिसके प्रयोग से शत्रु व्रणी (फोड़ा-फुन्सी वाला) होकर विनष्ट हो जाता है।

सर्प, भौंरा, काला बिच्छू एवं बंदर के शिर का सम भाग ले चूर्ण कर शीशी में भर लेवे पश्चात शत्रु की शय्या या उसके वस्त्रादिकों पर डाल दे, इसके डालते ही शत्रु व्रणों से पीडित होकर मर जायेगा। यह चूर्ण यमदण्ड के सदृश है, जिसका निवारण देवतादिक भी नहीं कर सकते मनुष्यों की क्या गणना है।

जब शत्रु को पीड़ा रहित करना हो तो नील, लाल कमल एवं लाल चन्दन का मुर्गी के पित्त में मिला लेप करने से पीड़ा शान्त हो जायेगी।

विस्फोटक-करणमन्त्र—**ॐ नमो भवति गृहवराहो सुभगे ठः ठः स्वाहा।**

लक्ष जप द्वारा विस्फोटक मंत्र सिद्ध कर लेना चाहिये।

कुष्ठीकरण प्रयोग

शंकरजी कहते हैं कि, अब मैं शत्रु को कुष्ठ रोग होने की विधि कहता हूँ कि जिसके प्रयोग से शत्रु कोढ़ी होकर मर जाता है।

भिलावे का रस, घुंघुची एवं मेढ़क, गृहगोधी (चमगुदरी) इन सबको एक में मिला खाने-पीने के सामानों में खिला-पिला देने पर सात दिनों में ही कुष्ठ रोग उत्पन्न हो जाता है।

आँवला, खैर एवं नीम का चूर्ण, घी, शहद एवं शक्कर मिला पुराने चावल के साथ पीसकर खिलावे तथा परोरे की तरकारी और पुराने चावल का भात पथ्य दे तो कुष्ठ अच्छा हो जायेगा।

मक्षिकानिवारण प्रयोग

हरताल को जल में पीस लेप बना एक पुतली पर करके रख दे तो उसे सूँघकर मक्खियाँ भाग जायेंगी।

मूषकनिवारण प्रयोग

तिल, कुल्थी का चूर्ण, सफेद मदार के दूध में मिला मदार के पत्ते पर रख देने से चूहे भाग जाते हैं।

बकरी के मूत्र में बकरी की लेंड़ी तथा हरताल, प्याज सहित पीस कर चूहे के ऊपर इसका लेप कर लेप कर चूहा छोड़ देने से उसे देखते ही सब चूहे भाग जाते हैं।

बिल्ली की विष्ठा तथा हरताल एक में पीस चूहे के ऊपर लेप कर छोड़ देने से सूँघकर सब चूहे भाग जाते हैं।

मत्कुण-निवारण

मदार की रूई की बत्ती को महावर के रंग में कड़ुवे तेल में दीपक के जलाते ही खटमल भाग जाते हैं।

अर्जुन फल एवं पुष्प, लाख, चन्दन, गुग्गुल, सफेद अपराजिता की जड़, भिलावा, वायविडङ्ग इन सबको सम भाग ले चूर्ण कर धूप देने से सर्प, खटमल और मूस भाग जाते हैं।

सर्पनिवारण प्रयोग

सफेद गुड़, चंदन, वायविडङ्ग, त्रिफला, लाख, मदार का फूल इन सबको एक में मिला धूप देने से सर्प, बिच्छू भाग जाते हैं।

नागरमोथा, सरसों, भिलावा, केवाच का फल, गुड़ तथा मदार का फल इनको सम भाग ले चूर्ण कर धूप देने से खटमल, मच्छर, सर्प, मूस, और भी विषैले कीटाणु भाग जाते हैं। जैसे कि कायर पुरुष युद्ध से भाग जाते हैं।

मशक-निवारण

भिलावा, वायविडङ्ग, सोंठ, पोहकर मूल तथा जामुन इन सबको सम भाग ले चूर्ण कर धूप देने से मच्छर नष्ट हो जाते हैं।

क्षेत्रोपद्रवनाशन प्रयोग

अब खेतों में उपजी फसलों को नष्ट करने वाले जंतुआं के विनाशार्थ उपाय कहते हैं। बालू, सफेद सरसों एक साथ मिला खेत में डाल देने से टिड्डी, कीड़े, सूअर, मृग, मूस, मच्छरादि सब प्रकार के जीव मन्त्र के प्रभाव से भाग जाते हैं।

पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में बहेड़े की बाँझी लेकर निम्न लिखे मंत्र से अभिमंत्रित कर खेत में गाड़ देने से अन्न अधिक उपजता है।

अन्नोत्पादन-मन्त्र

ॐ नमः सुरभ्यः बलजः उपरि परिमिलि स्वाहा।

यह मन्त्र दस हजार जपने से सिद्ध होता है।

रक्त निवारण

लिसोड़े की छाल और साठी के चावल की पोटरी बाँध स्त्री की योनि में रख देन से खून का गिरना बंद हो जाता है।

आँवला, बहेड़ा तथा निसोत का चूर्ण जल के साथ पीसकर पीने से अधिक गिरता रक्त भी बन्द हो जाता है।

चावल का धोवन तथा सरफोंस की जड़ को पीसकर पीने से भी स्त्रियों और का खून बन्द होता है। यह ध्यान रहे कि दवा की मात्रा १० मासे से अधिक न हो।

देवदारु, रसाञ्जन, चिरायता, भिलावा, अडूसा, नागरमोथा इन सबका क्वाथ घी और शहद के संयोग से सिद्ध कर पीने से शूलप्रशूल सब प्रकार के प्रदर आदि रोग शान्त हो जाते हैं।

बन्ध्यात्वनाशन प्रयोग

रविवार को सुगन्धरा की जड़ ला एक वर्णा गौर के दूध के साथ पीस ऋतुकाल में पीने से तथा साठी का भात एवं मूँग की दाल पथ्य खाने से बन्ध्यादोष विनष्ट होता है।

दवा खाते समय स्त्री को किसी प्रकार की चिन्ता या शोक अथवा भय, अधिक परिश्रम, दिन में सोना, गर्म चीजों का भोजन, धूप, अधिक ठंड इन सबसे बचना चाहिए। ऐसे पथ्य से रहते हुए पति के साथ सहवाह करने से बन्ध्या अवश्य गर्भवती होती है।

नागरमोथा, कंगुनी, वैर, लाहरस तथा मधु इनको बराबर लेकर पुराना चावल के धोवन के साथ एक तोले की मात्रा में सात दिन तक पूर्वोक्त पथ्य से पीव तो बन्ध्या गर्भ धारण कर लेती है।

पीपर, केसर आदि व काली मिर्च घी के साथ चूर्ण कर खाने से बन्ध्या गर्भवती होती है।

सफेद कटेली, जटामासी के पत्ते, नये दूध के साथ पीसकर पीने से वन्ध्या गर्भवती होती है। पथ्य सात्त्विक भोजन करे।

असगन्ध को जल में पकाकर घी में भूने पश्चात् प्रात: स्नान के बाद दूध व घी के साथ पाय तो वन्ध्या पुत्रवती हो।

रजोधर्म शुद्धि के पश्चात् काली अपराजिता की जड़ को बछड़ा वाली नवीन गौ के दूध में तीन दिन पीने से वन्ध्या गर्भवती होती है।

पहले ब्यायी हुई गौ जिसके साथ बछड़ा हो ऐसे गौ के दूध के साथ नागकेशर का चूर्ण सात दिन तक पीने से तथा घी-दूध के साथ भोजन करने से वन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है।

तिल, रस, गुड़ तथा नये जवान बछड़े का मूत्र १ सेर इनको ले एक हण्डी में गौ की कंडी पर पकावे, पकने के पश्चात् ऋतु के समय सात बार पीवे तो अवश्य वन्ध्या पुत्रवती हो।

कदम की पत्ती, सफेद चन्दन तथा कटेरी की जड़ सबको समान भाग ले बकरी के दूध के साथ पीसकर पीने से अवश्य वन्ध्या पुत्रवती हो जाती है।

विष्णुक्रान्ता को जड़ सहित भैंस के नैनू (नूतन घी) के साथ सात दिन खाने से काक वन्ध्या भी पुत्रवती होती है।

जन्म लेने के पश्चात् जिस स्त्री का पुत्र मर जाता है उसे मृतवत्सा कहते हैं, जिस रविवार को कृत्तिका नक्षत्र हो उस दिन पीत पुष्पा नाम की जड़ी जड़ सहित लावे, उसे पानी में सात दिन पर्यन्त पीस कर दस मासे पीवे तो पुत्र न मरे।

नीबू के पुराने पेड़ की जड़ को दूध में पीस घी मिला पीने से पति प्रसंग द्वारा स्त्री को दीर्घजीवी पुत्र होता है।

गर्भस्तम्भन

प्रथम मास के गर्भ में यदि अकस्मात् पीड़ा उत्पन्न हो तो गौ के दूध में पद्माख, लालचन्दन व खस इन सबको बराबर ले पीस एक-एक तोला तीन दिन तक पीने से गर्भ नहीं गिरता अथवा मुलहठी, देवदारु, सिरस का बीज, काली गौ के दूध के साथ पीसकर पीने से भी गर्भ गिरने से रुक जाता है।

नील कमल की जड़, लाह का रस, काकड़ासिंगी ये सब बराबर ले गौ के दूध में पीसकर पिलाने से दूसरे मास की गर्भ पीड़ा अच्छी होती है।

पीपल की छाल, काला तिल, शतावर इन सबको बराबर ले गौ के दूध के साथ पीसकर पीने से दूसरे मास के गर्भ की पीड़ा अच्छी होती है।

चन्दन, तगर, कूट, कमल की जड़, कमल की केशर, काकोली और असगन्ध इन सबको ठण्डे पानी के साथ पीसकर पीने से तीसरे मास के गर्भ की पीड़ा जाती रहती है।

नील कमल व कमल की जड़, गोखरू गौ के दूध के साथ पीसकर पीने से चौथे महीने के गर्भ की पीड़ा जाती है।

गदहपूर्णा, काकोली, तगर, नीलकमल, गोखरू इन सबको गौ के दूध के साथ पीने से पाँचवें मास के गर्भ की पीड़ा जाती है।

कैंथ का गूदा ठंडे पानी में पीस और गौ का दूध मिलाकर पीने से छठे मास के गर्भ की पीड़ा जाती है।

कसेरू, पुष्कर मूल, सिंघाड़ा व नीलकमल पानी में पीसकर पीने से सातवें मास के गर्भ की पीड़ा अच्छी होती है।

मुलहठी, पद्माख, मुस्त, नागकेशर, गजपीपर इन सबको गौ के दूध के साथ पीसकर पीने से आठवें मास की गर्भपीड़ा जाती है।

इन्द्रायन के बीज, कंकोल (अकोल) मधु के साथ पीस घोंट कर खाने से नवें मास के गर्भ की पीड़ा शान्त होती है।

पुराना खाँड़, मुनक्का, छुहाड़ा, शहद व नील कमल को गौ के दूध में पीने से दसवें महीने के गर्भ की व्यथा दूर होती है।

सोंठ डाल कर पकाया हुआ गौ का दूध अथवा मुलहठी व देवदारु देवदारु आर सोंठ गौ के दूध के साथ पीसकर पीने से भी दसवें महीने की व्यथा दूर होती है।

आँवला और मुलहठी गौ के दूध के साथ पीने से गर्भ-स्तम्भन पूर्णरूपेण हो जातता है, फिर नहीं गिरता है।

कुम्भकार के हाथ की लगी मिट्टी, परवह चाक के ऊपर की हो, बकरी के दूध में मिलाकर पीने से गर्भ की व्यथा दूर होकर गर्भ सुस्थिर हो जाता है, फिर नहीं गिरता।

कसेरू, सिंघाड़ा नागरमोथा और रेड़ी इन सबको सम भाग ले चूर्ण कर सतावर डालकर पकाये हुए गौ के दूध के साथ पीने से गर्भव्यथा दूर होकर गर्भ सुस्थिर हो जाता है।

कोई की जड़, शहद, घी इनको दूध में डालकर खौलावे पश्चात् ठंडा कर सात दिन तक पीने से गर्भ स्राव, अरुचि आदि सब प्रकार का विकार नष्ट हो जाता है।

कमल की जड़, जिसको भसोड़ कहते हैं तथा तिल व मिर्च दूध में पीसकर पीन से गिरता हुआ गर्भ तुरन्त रुक जाता है।

ह्रीबेर, अतीस, नागरमोथा व काली मिर्च का काढ़ा बना पीने से गर्भ का रोग दूर होता है।

गौ के दूध में खाँड़ मिलाकर पीने से गर्भ का सूखना बन्द हो जाता है या गंभारी के फल का चूर्ण मधु के साथ खाये या दूध पीवे तो भी गर्भ का सूखना बन्द हो जाय।

सुखप्रसव प्रयोग

बच्चा पैदा होने के समय यदि व्यथा अधिक हो और बालक उत्पन्न होने में कठिनाई मालूम पड़ती हो तो गदहपूर्ना की जड़ का चूर्ण योनि में रख देने से बालक सुख उत्पन्न है।

प्रसिद्ध काढ़ा दशमूल का और सेंधा नमक वे घी मिलाकर पीने से भी सुखपूर्वक बालक उत्पन्न हो है।

गर्भमोचन मन्त्र

ॐ मन्मथः ॐ मन्मथः ॐ मन्मथः मन्मथवाहिनी लंबोदर मुंच मुंच स्वाहा।

नहा-धो शुद्ध हो उपर्युक्तं मंत्र से गरम जल अभिमंत्रित कर गर्भिणी को पिला देने से सुखपूर्वक बच्चा पैदा होता है।

करियारीकन्द, अपामार्ग (चिचिहिड़ा) या इन्दायन की जड़ को चूर्णकर पोटरी बाँध योनि में रखने से बन्द हुआ मासिक धर्म खुल जाता है।

तिल की जड़, बह्मदण्डी की जड़, मुलेठी, काली मिर्च तथा पीपर इन सबको कुचकुचाकर जल के साथ काढ़ा बनाकर पीने से बन्द हुआ मासिक खुल जाता है और रक्त गुल्म भी अवश्य नष्ट हो जाता है।

माल कंगनी के नवीन पत्र, जपा (दुपहरिया) के फूल के साथ खाने से बन्द मासिक खुल जाता है।

श्री शंकरजी बोले कि, हे रावण! मेरे कहे गये इस उड्डीशतंत्र को सभी के लिए न देवे अर्थात् पात्र समझकर ही प्रदान करे अन्यथा अनिष्ट हो जायेगा। इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए।

विद्यादात्री निर्गुण्डी यक्षिणी मन्त्र प्रयोग

यह ७ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ सररस्वत्यै नमः। इति सप्ताक्षरो मन्त्रः।

निर्गुण्डीमूलमारूढो जपेदेकाग्रमानसः। विद्या प्राप्तिर्भवेन्नित्यं नान्यथा शङ्करोदिम्। अयुतं जपेत्।

निर्गुण्डी की जड़ पर बैठकर एकाग्र मन से जप करे। इससे नित्य विद्या प्राप्त होती है। शंकर का यह कथन निष्फल नहीं होता। इसका दश हजार जप करना चाहिये।

विद्या यक्षिणी साधन

यह ६ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ ह्रीं वेदमातृभ्यः स्वाहा। इति नवाक्षरो मन्त्रः।

पञ्चविंशतिसहस्रं जपेत्। पञ्चमेवा दशांशतो होमस्तदा विद्या प्राप्त भवति।

मन्त्र का २५ हजार जप और पाँचवें दिन जप का दशांश होम करना चाहिये इससे विद्या प्राप्त होती है।

डाकिनी साधन

मन्त्र—**ॐ नमो चढ़ौ चढ़ौ सूरवीर धरती चढ्या पाताल चढ पग पाली चढ्या कुणकुण वीर हनुमन्तवीर चढ्या धरती चढ़ पगपानचढ़ी एडी चढ़ी मुरचै चढ़ी मुरचै चढ़ी पिण्डी चढ़ी पिण्डी चढ़ी गोंडां चढ़ी गोडां चढ़ी जांध चढ़ी जांघ चढ़ी कटि चढ़ी कटि चढ़ी पेट चढ़ी पेटसूं धरणी चढ़ी धरणीसूं पांसली चढ़ी हियासूं छाती चढ़ी छातीसूं खबा चढ़ी खवासूं कण्ठचढ़ी कण्ठसूं मुख चढ़ी मुखसूं जिह्वा चढ़ी जिह्वासूं कान चढ़ी कानसूं आंख चढ़ी आंखसूं ललाट चढ़ी ललाटसूं सीस चढ़ी सीससूं कपाल चढ़ी कपालसूं चोटी चढ़ी हनुमान् नारसिंह चले वीर समदवीर दीठ वीर आज्ञावीर सोसन्तावीर ये वीर चढ़े।**

ग्रहण की रात्रि को चौका लगाकर घी का दीपक जलाये और एक पैर पर खड़ा होकर मन्त्र का १०८ जप करे तो डाकिनी उपस्थित होती है। उससे भयभीत न हो और सम्मुख बात करे। ऐसा करने साधक जो काम कहेगा उसे डाकिनी करेगी।

तस्कर ग्रहण चेटक

एक अन्य प्रयोग का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमः किष्किन्धापर्वतपर कदलीवन तिस्के फल तोड़नेवाला चोर तेरे कुञ्जनको देनी पकड़ दे इतनी आज्ञा फुरो। इति मन्त्रः।

जिन पर सन्देह हो उनका नाम लिखकर आटे में गोली बनाये। इसमें से प्रत्येक गोली पर २१ बार मन्त्र पढ़कर पानी में डालता जाय। जिसने चोरी किया है केवल उसी के नाम गोली तैरती रहेगी, शेष डूब जायगी। इस प्रकार चोर के नाम का पता लग जायगा।

ग्रहनाशनभूतेश्वर मन्त्र

ॐ नमो भगवते भूतेश्वराय कलिकलिनखाय रौद्रदंष्ट्राकरालवक्त्राय त्रिनयनाय धगधगितपिशङ्गललाटनेत्राय तीव्रकोपानलामिततेजसे पाशशूल-खट्वाङ्गडमरुकधनुर्बाणमुद्गराभयदण्डत्रासमुद्राव्ययदसंयदाइदण्डमण्डिताय कपिलजटाजूटार्द्धचन्दधारिणे भस्मरागरञ्जितविग्रहाय उग्रफणिकालकूटा-टोपमण्डितकण्ठदेशाय जयजय भूतनाथामरात्मन् रूपं दर्शयदर्शय नृत्यनृत्य चलचल पाशेन बन्धबन्ध हुंकारेण त्रासयत्रासयवज्रदण्डेन हनहन-निशितखड्गेन छिन्धिछिन्धि शूलाग्रेण भिन्धिभिन्धिमुद्गरेण चूर्णयचूर्णय सर्वग्रहानावेशयावेशय स्वाहा। इति मन्त्रः।

गुग्गुलं मधुनाक्तेन घृतेन सह धूपयेत्। मन्त्रेण तेन हारीत तर्जयेद्ग्रपीडितम्।। ग्रहाविष्टेन चेत्तस्मै दीयते बलिरुत्तमः। मुक्तो भवति तस्माच्च संशयो नास्ति तत्र च।।

मधु से सिक्त गुग्गुल का घी के साथ धूप दे। हे हारीत! फिर हम मन्त्र से ग्रहपीड़ित को डरावे। ग्रहाविष्ट के द्वारा उसे उत्तम बलि देना चाहिये। तब वह ग्रहबाधा से मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है।

भूतोपद्रवनाशका उड्डीश मन्त्र

मन्त्र—**ॐ नमो भगवते नारसिंहाय घोररौद्रमहिषासुररूपाय त्रैलोक्याडम्बराय रौद्रक्षेत्रपालाय ह्रों ह्रों क्रीं क्रीं क्रीमिति ताडय ताडय मोहय मोहय द्रम्भि द्रम्भि क्षोभय क्षोभय आभि आभि साधय साधय ह्रीं हृदये आं शक्तये प्रीतिललाटे बन्धय बन्धय ह्रीं हृदसे स्तम्भय स्तम्भ किलि किलि ईं ह्रीं डाकिनि प्रच्छादयप्रच्छादय शाकिनीं प्रच्छादय प्रच्छादय भूतं प्रच्छादय प्रच्छादय प्रभूतं प्रच्छादय स्वाहा राक्षसं प्रच्छादय प्रच्छादय ब्रह्मराक्षसं प्रच्छादय प्रच्छादय सिंहिनीपुत्रं प्रच्छादय प्रच्छादय डाकिनीग्रहं साधय साधय शाकिनीग्रहं साधय साधय। अनेन मन्त्रेण डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतपिशाचाद्येकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकचातुर्थिकपञ्चवातिक-पैत्तिकश्लेष्मिक सन्निपातकेसरिडाकिनीग्रहादीन्मुंचमुंच स्वाहा। गुरूकी शक्ति मेरी भक्ति फूरो मन्त्र ईश्वरो वाचा। इति मन्त्रः।**

लोहे की सलाई से २१ बार झाड़ने अथवा छप्पर की तीली से झाड़ने से उन्मादादि भूतबाधा दूर होती है।

डाकिनी से बालक को छुड़ाने का मन्त्र

ॐ कालाभैरो कपिली जटा रातदिन खेलै चौपटा काला भैरूं भस्म मुसाण जेहि मांगू सो पकड़ी आन। डङ्किनी सङ्किनी पटसिहारी जरख चढन्ती

गोरखमारी छोडिछोडिरे पापिणी बालक पराया गोरखनाथका परवाना आया। इति मन्त्रः।

तीर से झाड़ने तथा अभिमन्त्रित पानी पिलाने से बालक डाकनी से छूट जाता है—यह निश्चित है।

प्रेतादि या रोगादि झाड़ने का उत्तम मन्त्र

ॐ नमो आदेस गुरूको घोरघोर इन घोर काजीकी किताब घोर मुल्लाकी बांग घोर रैगरकी कुण्ड घोर धोबीकी कुण्ड घोर पीपलका पान घोर देवकी दिवाल घोर आपकी घोर बखेरता चल पारकी घोर बैठता चल वज्रका किवाड तोड़ता चल सारका किवाड़ तोड़ता चल कुनकुनसो बन्द करता चल भूतकू पलीतकू देवकू दानवकू दुष्टकू मुष्टक चोटकू फेटकू मेलेकू घरेलेकू उलकेकू बुककेकू हिडकेकू भिडकेकू ओपरीकू पराईकू भतनीकू पलीतनीकू डङ्किणीकू स्यारीकू भूचरीकू खेचरीकू कलुबेकू मलबेकू उनकू मथवायकं तापकू तेजराकू माथाकी मथवायकू मगरांके पीडकू पेटके पीडकू सांसकू कांसकू मरेकू मुसाणकू कुणकुणसा मुसाण कचिया मुसाण भुकिया मुसाण कीटिया मुसाण चीड़ी चौपटाका मुसाण नुह्या मुसाण इन्हींको बन्दकरि एड़ीकी एड़ी बंध करि पीड़ाकी पीड़ी बंध करि जांघकी जाड़ी बंधकरि कट्यांकी कड़ी बंधकरि पेटकी पीड़ा बन्धकरि छातीकी शूल बन्धकरि सरिकी सीस बन्धकरि चोटीकी बन्धकरि नौनाड़ी बहत्तर कोठा रूमरूममें घर पिण्ड में दखलकर देस बङ्गालाका मनसारा मसेवडा आकर मेरा करज सिद्ध न करै तो गुरू उस्तादसूं लाजै सब्दसाचा पिण्डकाचा फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा। इति मन्त्रः।

मद्यमांस छडछरीला अतर तेल दीपक रविवारकी रविवार भाङ्गसुलफा चढ़ाना तो सिद्ध हो पीछे मन्त्र सातवार पढ़कर झाड़ दे तो सर्वोपद्रव दूर होकर सुखी होवे इसमें सन्देह नहीं।

नजर झाड़ने का मन्त्र

ॐ नमो सत्यनाम आदेश गुरूको ॐ नमो नजर जहां परपीर न जानी बोलै छलसों अमृतवानी कहो नजर कहांते आई यहाँ की ठौर तोहि कौन बताई कौन जात तेरो कहा ठाम किसकी बेटी कहा तेरो नाम कहांसे उड़ी कहांको जाया अबही वसकरले तेरी माया मेरी जात सुनो चित लाय जैसी होय सुनाऊं आय तेलन तमोलन चूहड़ी चमारी कायथनी खतरानी कुह्मारी महतरानी राजाकी रानी जाको दोष ताहीके सिर पड़ै जाहर पीर नजरसो रक्षा करै मेरी भक्ति गुरूकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र द्वारा मोर-पंख से झाड़ने से आराम होता है।

डाकिनी के चोट मारने का मन्त्र

ॐ नमो महाकाली जोगनी जोगनी पारशाकिनी कल्पवृक्षीयदृष्टि जोगनी रौद्ररुद्राय कालदण्डेन साधय साधय मारय मारय चूरय चूरय अपहर शाकिनी सपरिवारं नमः ॐ हूं हूं हैं ह्रौं फट् स्वाहा। इति मन्त्रः

डाकिनी को चोट मारने का प्रयोग—उक्त मन्त्र से सात बार गूगल को अभिमन्त्रित कर ओखली में डालकर मूसल से कूटने से उस मूसल की चोट डाकिनी को लगेगी। यदि इस मन्त्र से अपना सर मूंडे तो डाकिनी का सिर मुंड जायगा। किसी वस्तु पर मन्त्र पढ़कर जिसके घर में उस वस्तु को फेंक दे तो डाकिनी उसके घर में जाकर बोलेगी। इस मन्त्र को पढ़कर आंखों जल का छींटा मारने से डाकिनी जल उठेगी।

डाकिनी द्वारा भक्षित को झाड़ना

ॐ डाकन शाकन और सिहारी भैरौ यतीके चक्र मारी अन्नपान खाय परायातकै तिस पापनका भण्डारा फूटै नरसा टूटै पाप न छूटै गुरूकी शक्ति चेलेकी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र से सात बार झाड़ने से डाकिनी द्वारा ग्रसित को आराम होता है।

डाकिनी दूर करने वाला मन्त्र

ॐ नमो आदेस गुरूको डाकिनी सिहारी किन्ने मारी जती हनुमन्तने मारी कहां जाय दबकी किन देखी जती हनुमन्तने देखी सातवें पाताल गई सातवें पातालसूं कौन पकड़ल्याया जती हनुमन्त पकड़ल्याया एकताल दे एक कोठा तोड्या दो ताल दे दो कोठा तोड्या तीन ताल दे तीन कोठा तोड्या चार ताल दे चार कोठा तोड्या पांच ताल दे पांच कोठा तोड्या छः कोठा तोड्या सात ताल दे सातवों कोठो खोलदेखै तो कौन खड़ी छै? डाकिनी सिहारी भूतप्रेत चलै जती हनुमन्तसेरे झाड़े सूं चलै ॐ नमो आदेश गुरूको गूरूकी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

मोर के पंख अथवा लोहे से झाड़ने से सभी उपद्रव दूर होते हैं।

अन्य प्रयोग

ॐ नमो आदेस गुरूको गिरहवाज नटनीका जाया चलतीवेर कबूतर खाया पीवै दारू खाय जो मांस रोगदोषकूं लावै फांस कहांकहां सूं लावैगा गुदगुद में सुन्नावैगा वोटी वोटीमेंसूं ल्यावैगा चामचाममेंसूं ल्यावैगा नौनाडी बहत्तरकोठामेंसूं ल्यावैगा मारमार बन्दीकरकर ल्यावैगा न ल्यावैगा तो अपनी माताकी सेजपर पग धरैगा मेरा भाई मेरा देखादिखलाय तो मेरी भक्ति गुरूकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

मोर के पंख से झाड़ने से भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी आदि सब भाग जाते हैं।

डाकिनी को बोलवाने का मन्त्र

ॐ नमो आदेस गुरुको ॐ नमो जय नरसिंह तीनलोक चौदहभुवन में हाथ चावी और होठ चावी नयन लाल लाल सर्व वैरी पछाड़मार भगतनको प्राण राखि आदेश आदिपुरुषको। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र को पढ़कर पानी पिलाकर पूछने पर डाकिनी-शाकिनी निश्चित रूप से बोलती है।

प्रेतादि झाड़ने का मन्त्र

ॐ नमो नारसिंहाय हिरण्यकशिपुवक्षःस्थलविदारणाय त्रिभुवनव्यापकाय भूतप्रेतपिशाच-डाकिनीकुलोन्मूलाय स्तम्भोद्भवाय समस्तदोषान् हरहर विसरविसर पचपच हनहन कम्पयकम्पय मथमथ ह्रीं ह्रीं फट्फट् ठः ठः एहिरुद्रेहि। रुद्र आज्ञापयति स्वाहा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र को पढ़-पढ़कर सरसों मारने से सब दोष दूर होते हैं।

दूसरे के कृत्य को उलटना

एकठोसरसों सोलाराई मोरो पठवलकी रोजाई खायखाय पड़ै भार जे करै ते मरै उलट विद्या ताहीपर परै शब्द साचा पिण्ड काचा तौ हनूमानका मन्त्र साचा फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र से राई और नमक उतारकर आग में डालने से दूसरे द्वारा की गई विद्या उलट कर करनेवाले पर ही जा पड़ती है।

रात्रिज्वर निवारण तन्त्र

काकमाचीभवं मूलं कर्णे बद्धं निशिज्वरम्। निहन्ति नात्र सन्देहो यथा सूर्योदयात्तमः।।

काकमाची (काली मकोय) की जड़ कान में बाँधने से रात में होनेवाला ज्वर नष्ट हो जाता है। इसमें उसी प्रकार कोई सन्देह नहीं है जैसे सूर्योदय से अन्धकार नष्ट होने में सन्देह नहीं है। अथवा भाँगरा की जड़ को डोरे सहित कान में बाँधने से रात्रिज्वर दूर होता है।

अर्श निवारण तन्त्र

ॐ काका कर्ता क्रोरीकर्ता ॐ करतासे होय यो रसना दशहूंसे प्रकटै खूनी वादी बवासीर न होय। मन्त्र जानके न बतावै द्वादश ब्रह्महत्याका पाप होय लाख जप करै तो उसके वंसमें न होय शब्द सांचा पिण्ड काचा तौ हनूमानका मन्त्र साचा फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र से बासी पानी को २१ बार अभिमन्त्रित करके आबदस्त लेने से बवासीर (अर्श) की पीड़ दूर होकर फिर कभी नहीं होती। जो कोई इस मन्त्र का १ लाख जप करता है उसके वंस में कभी बवासीर का रोग नहीं होता। जो इस मन्त्र को जानकर अर्शरोगी को आबदस्त के लिये जल के लिये नहीं कहता उसे १२ ब्राह्मणों की हत्या का पाप लगता है। अत: आबदस्त के लिये इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल ले जाने के लिये अवश्य कहना चाहिये। यदि कहने पर भी रोगी ऐसा जल नहीं ले जाता तो उससे मन्त्री (मन्त्र जाननेवाला, दोषभागी) नहीं होता। यह मन्त्र हमारा अनेक बार का परीक्षित है।

अन्यत्। ॐ उमतीउमती चलचल स्वाहा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र को २१ बार पढ़कर लाल सूत में गाँठ दे। इसी तरह गाँठ देकर दाहिने पैर के अँगूठे में बाँधने से खूनी बवासीर की पीड़ा दूर हो जायगी। यह अनुभूत प्रयोग है।

दाँत के कीडे झाड़ने का मन्त्र

ॐ नमो आदेस गुरूको वनमें व्याई अञ्जनी जिन जाया हनुमन्त काड़ा मकड़ा माकड़ा ए तीनू भस्मन्त गुरूकी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र इश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

दीवाली की रात से एक लाख जप करने से मन्त्र सिद्ध होता है। फिर नीम की डाली से झाड़ने से दांत का दर्द तत्काल दूर होता है। यदि इस मन्त्र से कटाई के बीजों का धूआँ डाढ़ों में दिया जाय तो उसके सब कीड़े पानी में गिर पड़ेंगे।

अन्यत्। ॐ नमो कीडरेतूं कुण्डकुण्डाला लाल पूंछ तेरा मुक काला में तोहि पूंछूं कहां ते आया तोडमांस सबको क्यौं खाया अब तूं जाय भस्म हो जाय गोरखनाथके लागूं पाय शब्द सांचा पिण्डकांचा फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र द्वारा नीम की टहनी से ७ बार झाड़ने से सब कीड़े मर जाते हैं।

अन्यत्। ॐ नमो नाड़ीनाड़ी नौसे नीड़ी बहत्तरसौ कोठा चलै अगाड़ी डिगै न कोठा चलै न नाड़ी रक्षा करै जती हनुमन्तकी आन मेरी भक्ति गुरूकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

सूत में ६ गाँठ लगाकर उसे छल्ले की तरह बना ले फिर उसको नाभि पर रखकर मन्त्र पढ़े और उस पर फूँक मारे तो थोड़ी देर में धरण ठिकाने आ जायगी।

अन्य प्रयोग : वन में जब सङ्खाहुली फूले तो उसको हल्दी से रँगे चावलों से शनिवार को निमन्त्रित करे। फिर रविवार को प्रात:काल जाकर सात प्रदक्षिणा करके

हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये, स्तुति करे और सूर्य की ओर मुख करके उसकी जड़ में दूध डाले। फिर उसे खोद लाये। उसे कमर में बाँधते ही धरण यथास्थान आ जाती है—इसमें सन्देह नहीं है।

हूक का मन्त्र

ॐ नमो सारकी छुरी धारका वान हूकन चलै रे महम्मदा ज्वानकी आन शब्द साचा पिण्डकाचा फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

मन्त्र को २१ बार पढ़ता जाय और प्रत्येक बार तेज छूरी से जमीन पर रेखा खींचता जाय तो हूक बन्द हो जाती है।

प्लीह निवारण मन्त्र

ॐ नमो हुतास पर्वत जहा सुरहगा सुरहगाय के पेटमें वच्छा वच्छाके पेट में तिल्ली दबादबाकर तिल्ली कटै सरकण्डा बढ़ै फीहा कटै हरौ फुरौ। इति मन्त्रः।

छुरी से भूमि पर लकीर बनाकर उसे काटता जाय और साथ ही साथ मन्त्र भी पढ़ता जाय तो तिल्ली ठीक हो जाती है।

कखलाई निवारणार्थ मन्त्र

ॐ नमो कखलाई भरी तलाई जहां बैठा हनुमन्ता आई पकै न फूतै चलै न पीठ रक्षा करै हनुमन्त वीर, दुहाई गुरू गोरखनाथ की शब्द साचा पिण्डकांचा फुरो मन्त्र ईश्वरीवाचा, सत्य नाम आदेस गुरूको। इति मन्त्रः।

नीम की टहनी से २१ बार झाड़कर भूमि की मिट्टी उस पर लगा दे तो तीन ही दिन में कखलाई बैठ जायगी।

रींघनवायु का मन्त्र

ॐ नमो आदेस गुरूको ॐ नमो कामरूदेसकामा७ा देवी जहां बसै इस्मायल जोगी इसमायलजोगीके पुत्री तीन एक तोड़ै एक पिछोड़ै एक रींघनवाय तोड़ै शब्द साचा पिण्डकाचा फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

मङ्गल और शनिवार को मणिहारी की मुंगरी से झाड़ने से आराम होता है।

सुखप्रसव

मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ मुक्ताः पाशा विमुक्ताशा मुक्ताः सूर्येण रश्मयः। मुक्ताः सर्वभयाद्‌गर्भ एहि माचिरमाचिर स्वाहा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र से ८ बार जल को अभिमन्त्रित करके गर्भिणी स्त्री को पिलाने से उसे सुखपूर्वक प्रसव हो जायगा।

कुछ अन्य मन्त्र

ऐं ह्रीं भगवति भगमालिनि चल चल भ्रामय पुष्पं विकासय विकासय स्वाहा।

ॐ नमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्वने प्रतिचालितसकलसुरासुरचित्ताय युवतीभगवासिसे ह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा। इति मन्त्रः।

उक्त दोनों मन्त्रों में से किसी एक के द्वारा दूध को अभिमन्त्रित करके गर्भवती को पिलाने से सुखपूर्वक प्रसव होता है।

नेत्रपीडा निवारण मन्त्र

ॐ नमो श्रीरामकी धनुही लक्ष्मणका बाण आंख दर्दकरै तो लक्ष्मण कुमारकी आन। इति मन्त्रः।

नीम की टहनी से इस मन्त्र को पढ़ते हुये २१ बार झाड़ने से तीन दिन में आँख की पीड़ा दूर हो जायगी—इसमें सन्देह नहीं है। यह अनुभूत प्रयोग है।

अन्यत्। ॐ नमो झलमलजहरभरी तलाई अस्ताचल पर्वतसे आई जहां बैठा हनुमन्ता जाई फूटै न पाकै न पीड़ा जती हनुमन्त हरै पीड़ा मेरी भक्ति गुरुकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरीवाचा सत्य नाम आदेस गुरूको। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र को पढ़कर नीम की टहनी से झाड़ने से पीड़ा मिट जाती है।

कण्ठवेल का मन्त्र

ॐ नमो कण्ठवेल तूं द्रुमद्रुमाली सिरपर जकड़ी वज्रकी ताली गोरखनाथ जागता आया बढ़ती बेलको तुरत घटाया जो कुछ बची ताहि मुरझाया घटगई वेल बढ़न नहिं पावै बैठी तहां उठननहिं पावै फूटै और पीड़ा करै तो गुरू गोरखनाथकी दुहाई सत्य नाम आदेश गुरूको मेरी भक्ति गुरूकी फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

सात दिन चाकू की नोक से झाड़े और भूमि पर २१ लकीर बनाता जाय। इससे कण्ठवेल समाप्त होता है।

बिच्छू झाड़ने का मन्त्र

ॐ नमो आदेश गुरूको कालो विच्छूं कांकरवालो उत्तर विच्छूं नकर टालो उतरै तो उतारूं चढ़ै तो मारूं गरुड़मोरपङ्ख हकालू शब्द साचा पिण्ड काचा फुरो मन्त्र ईश्वरीवाचा। इस मन्त्र से झाड़ने से विच्छूका विख उतर जाता है।

अन्यत्। कालीविच्छू कङ्करवाला हरी पूंछ भौंराला सोनाकागाडू रूपेका पतनाला आठ गांठ नौकोर नीचे विच्छू ऊपर मोर कौन मोरा रेतो भकभकार विच्छू रेतो बावन वीर नीड निकोरके कौन वैदमानुषपर गया खातेजाते लागी वार उतर रे विच्छू तुझे ख्वाजममन्दीनचिरागतृष्टीकी आन। इति मन्त्रः।

जहाँ तक विच्छू चढ़ा हो वहाँ पकड़कर बुहारी (झाड़ू) से झाड़ दीजिये। जैसे-जैसे दर्द नीचे उतरे वैसे-वैसे आप भी नीचे पकड़ते जाँय। जब दंश स्थान पर दर्द उतर आवे तब झाड़ना बन्द कर दे और दंश स्थान पर तेलिया मोहरा पानी में घिसकर लगा दे। इससे दंश स्थान की पीड़ा भी समाप्त हो जायगी।

सर्प झाड़ने का मन्त्र

खं खः। इति द्व्यक्षरो मन्त्रः।

जब कोई सर्प काटने का समाचार दे तब पानी को मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित करके समाचार देनेवाले व्यक्ति को देकर कहे कि 'जाकर इस पानी को सर्पदष्ट को पिला दो।' इस पानी को पीने से सर्पविष उतर जाता है।

अन्यत्। ॐ नमो भगवति वज्रमये हनहन ॐ भक्ष भक्ष ॐ खादय खादय ॐ अरिरक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माङ्गि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे वज्रकराञ्चिते पूर्वां दिशं बन्ध बन्ध ॐ दक्षिणां दिशं बन्धबन्ध ॐ पश्चिमो दिशं बन्ध-बन्ध ॐ उत्तरा दिशं बन्धबन्ध ॐनागान् बन्धबन्धसॐ नागपत्नीं बन्धबन्ध ॐ असुरान् बन्धबन्ध ॐ यक्षराक्षसपिशाचान् बन्धबन्ध ॐ प्रेतभूतगन्धार्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्षरक्ष ॐ ऊर्ध्वं रक्षरक्ष ॐ अधो रक्षरक्ष ॐ क्षुरिके बन्धबन्ध ॐ ज्वल महाबले घटघट ॐ मोदिमोदि सटावलि वज्राङ्गि वज्रप्रकारे हुं फट् ह्रीं ह्रीं श्रीं फूं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीं अशेषेभ्यो रक्षरक्ष विषं नाशय अमुकस्य सर्वाङ्गानि रक्षरक्ष हुं फट् स्वाहा। इति मन्त्रः।

जल को मन्त्र से तीन बार अभिमन्त्रित करके पिलाने से विष उतर जाता है।

अन्यत्। ॐ ह्रुं सूं ॐ नालकान्तिदंष्ट्रिणि भीमलोचने उग्ररूपे उग्रतारिणि छिलि किलि रक्त लोचने किलि किलि घोरनिःस्वने कुलु कुलु ॐ तडिज्जिह्वे निर्मांसे जटामुण्डे कट कट हन महोज्ज्वले चिलिचिलि मुण्डमालाधारिणि। स्फोटय मारय मारय स्थावरं विषं जङ्गमं विषं नाशय नाशय ॐ महारौद्रि पाषाणमयि विषनाशिनी वनवासिनी पर्वतविचारिणि कह कह ॐ हस नम नम दह दह क्रुध क्रुध ॐ नीलजीमूतवर्णे विस्फुर ॐ घण्टानादिनि ललज्जिह्वे महाकाये क्षुं ह्रुं आकर्ष आकर्ष विषं धून धून हेहर यं ज्वालामुखि वज्रिणि महकाये अमुकस्य स्थावरजङ्गमविषं छिन्दि छिन्दि किटि किटि सर्वविषनिवानिणि हुं फट्। इति मन्त्रः।

पहाड़ के एक नीलवर्ण पत्थर के टुकड़े को अभिमन्त्रित करके दष्ट स्थान पर चिपका दे और मन्त्र पढ़ता जाय। जब तक विष रहेगा तब तक पत्थर दष्ट स्थान पर

चिपका रहेगा और विष के समाप्त होने पर स्वयं ही पत्थर अलग हो जायगा—इसमें सन्देह नहीं है।

सर्पकीलन का मन्त्र

ॐ नमो सर्पा रे तूं थूलं मथूला मुख तेरा बना कमलका फूला सर्पा रे सर्पा बान्धूं तेरी दादी भुवा जिनने तोकूं गोद खिलाया सर्पा रे सर्पा बान्धूं तेरा रतन कटोरा जामे तोकूं दूध पिलाया सर्पा रे सर्पा बीज कीलनी बीजपान तेरा कीला करै जो धाव तेरी डाढ भस्म हो जाय गुरु गोरख धी जाय जलाय ॐ नमो आदेश गुरूको मेरी भक्ति गुरूकी शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र को शिवरात्रि से प्रारम्भ करके वर्ष दिन पर्यन्त प्रतिदिन सवा पहर तक असंख्य बार जपे तो यह सिद्ध हो जाता है फिर इस सिद्ध मन्त्र से आरने उपले की भस्म को सर्प पर डालने से उसकी डाढ़ बन्द हो जायगी। फिर साधक उस सर्प को खिलौने की भाँति उठा सकता है।

सर्प कीलने का मन्त्र

बजरी बजरी बजरकिवाड़ बजरी कीलूं आसपास मरै सांप होय खाख मेरा कील्या पथर कीलै पथर फूटै न मेरा कीला छूटै मेरी भक्ति गुरूकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र से साँप को एक कङ्कण मारने से उसका उत्कीलन हो जायगा।

सर्पों को भगाने का मन्त्र

ॐ प्लः सर्वकुलाय स्वाहा अशेषकुलसर्पकुलाय स्वाहा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र से सात बार मिट्टी को अभिमन्त्रित करके घर में डाल दे तो सर्प भाग जाँयेगे।

पागल कुत्ते का मन्त्र

ॐ कामरू देश कामाक्षा देवी जहां बसे इसमायलजोगी इसमायलजोगी का झामरा कुत्ता सोनाकी डाढ रूपा का कुंड़ा बन्दर नाचे रीछ बजावे सीता बेटी औषध बांटै कूवरका विष भाजै शब्द साचा पिण्ड काचा फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

इस मन्त्र से झाड़ देने से पागल कुत्ते का विष उतर जाता है और किसी तरह की पीड़ा नहीं होती।

आधासीसी का मन्त्र

ॐ नमो वनमें व्याई वानरी, उछल वृक्षपै जाय। कूदकूद शाखानपै,

कच्चे वनफल खाय। आधा तोड़े आधा फोड़े, आधा देय गिराय। हंकारत हनुमानजी, आधा सीसी जाय। इति मन्त्रः।

बननें ब्याई अञ्जनी, कच्चे वनफल खाय। हांकमारी हनुमन्तने, इस पिण्डे से आधासीसी उतरजाय। इति मन्त्रः।

इन मन्त्रों से विभूति से झाड़ने से आधा सीसी दूर होकर पीड़ा समाप्त हो जाती है।

निम्नलिखित ६ कोष्ठ के यन्त्र को लिखकर सिर में बाँधने से आधा सीसी दूर होती है। निम्नलिखित चार कोष्ठ के यन्त्र को स्याही से कागज पर लिखकर माथे में बाँधने से निश्चित रूप आधा सीसी नष्ट हो जाती है। यह यन्त्र अत्यन्त गुप्त है।

कमल झाड़ने का मन्त्र

ॐ नमो वीरवैताल असराल नारसिंहदेव खादी तुषादी पीलियाकूं भिदाती कारै झारै पीलिया रहैन नकनिशान जो कहीं रहे जाय तो हनुमन्तकी आन मेरी भक्ति गुरुकी शक्ति फुरो मन्त्रं ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

काँसे की कटोरी में तेल भरकर रोगी के सिर पर रखकर मंत्र पढ़े और कुशा से उस तेल को चलाता जाय। जब तेल पीला हो जाय तब उतार ले। इससे पीलिया (कवल) रोग तीन दिन में अच्छा हो जायगा।

दर्द और थनपल को झाड़ना

ॐ वनमें जाई वानरी, जिनजाया हनुमन्त्र। सज्ज खधा टाकिया, हो गया भस्मीभूत। इति मन्त्रः।

स्त्री का बांया स्तन दुखे तो अपने दाहिन, और यदि इसका दाहिना स्तन दुखे तो अपने बाये स्तन को कण्डे की राख से ७ बार झाड़ने से स्त्री को आराम हो जायगा।

जमोगा का मन्त्र

सुनरे जमोगे मतिकर अभिमान तेरा नहीं दुनिया में ठिकान, बालक दिया है श्रीभगवान बचोगे नहीं तूं जिमी आसमान दुहीई औघड़की छू खंदके मारता हूं वान। इति मन्त्रः।

रामसर की तर-कमान बनावे और मन्त्र पढ़कर तीर बालक को मारे तो जमुवे की पीड़ा से वह छूट जायगा। यह अनुभूत प्रयोग है।

दबा पसली झाड़ने का मन्त्र

सत्य नाम आदेस गुरूका उंखंखारी खंखारा कहां गया सवालाख पर्वतों गया सवालाख पर्वतों जाय कहा करैगा सवाभार कोईला करैगा सवाभार

कोईलाकर कहाकरैगा हनुमन्त वीर नव चन्द्रहासखड्ग गढ़ैगा नव चन्द्रहास खड्ग घड कहाकरैगा जानवा डौरू पांसलीवाय काटकूट खारीसमुद्र नाखैगा जगद्गुरूकी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरी वाचा। इति मन्त्रः।

तिल के तेल और सिन्दूर से झाड़ने से आराम होगा।

सर्व रोग निवारक मंत्र

''पर्वत ऊपर पर्वत और पर्वत कटिक शिला कटिक शिला पर अंजनी जिन पाया हनुमान नेहला टेहला काँख की कखाई पीछे की आदटी कान की कनफेट रांग की बद कण्ठ की कण्ठमाल घुटने का डमरु डाढ़ की डढ़शूल पेट की ताप तिल्ली फिया इतने को दूर करे भस्मन्त नातर तुझे माता अंजनी की दूध पिया हराम मेरी भक्ति गुरू की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाचा सत्य नाम आदेश गुरू का।''

विधि—शनिवार को व्रत रख कर नियमपूर्वक रहकर एक माला उपरोक्त मंत्र की जपे। इसी प्रकार सात शनिवार तक करता रहे। ऐसा करने से मंत्र सिद्ध हो जाता है।

कंखाई अदीठ, कनफेर, बद (एक प्रकार का चर्म रोग), कण्ठमाला, दाढ़ का दर्द इन्हें राख से झाड़ना चाहिए। डमरु को, ताप तिल्ली को छुरी से झाड़ें उपर्युक्त सभी रोगों के लिए भभूति बना कर देना चाहिए।

बवासीर नाशक मंत्र

''ओम नमो नमो सिद्ध नमो चौरासी उदर जड़ी रक्त सड़ी चूवे मत खड़ी पड़ी तोहे देखे लोना चमारिन धूप गुगल की दी अग्यारी जो रहे बवासीर तो हजार हराम गुरू गोरख की शक्ति आन गौरी माई की।''

विधि—दीपावली, होली अथवा ग्रहण काल में यह मंत्र जप कर सिद्ध किया जाता है। सिद्ध मंत्र से अभिमंत्रित काली मिट्टी की पट्टी पेड़ू पर बाँधें तथा अभिमंत्रित लाल धागा कमर में बाँधें। जिस व्यक्ति को यह रोग है वह नित्य शौच के जल को अभिमंत्रित कर प्रयोग करे तो लाभ होता है।

पीलिया झाड़ने का मंत्र

''ओम नमो वीखेताल असराल नारसिंह देव तुषादि पीलिया कूं भिदाती कौरे झौरे पीलिया रहे न नेक निशान जो कहीं रह जाए तो हनुमान की आन मेरी भक्ति गुरू की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाचा।''

विधि—श्री हनुमान जी की मूर्ति के आगे नित्य एक हजार मंत्रों का जप कर इक्कीस दिनों तक इक्कीस हजार बार जपने से मंत्र सिद्ध हो जाता है।

साधना पूर्ण होने के बाद पीलिया ग्रस्त रोगी को सामने बैठाकर कांसे की कटोरी में तेल डाल कर उसके सिर के ऊपर रखें और तेल को कुश से हिलाते हुए इक्कीस बार मंत्र बोलें। ऐसा करने पर यदि कटोरी का तेल पीला हो जाए तो समझना चाहिए कि मंत्र सिद्ध हो गया है। इसी विधि को तीन दिन करते रहने से पीलिया का रोग मुक्त हो जाता है।

रोगी से हनुमानजी पर प्रसाद और गाय को घास, पक्षियों को अनाज आदि पुण्यप्रद कर्म करा देना चाहिए।

कण्ठवेल पीड़ा मुक्ति मंत्र

"ओम नमो कण्ठवेल महावेल तुम दरद दियो अब हिलो चलो तुरतहि जाओ सात लोक सात समुन्दर पार जा के डूबो हमें बचाओ न जाओ तो बहत्तर हजार चमार की नाद में गिरो दुहाई बाबा शंकर की गौरा पार्वती की।"

विधि—किसी भी नवरात्रों में प्रतिदिन एक माला जप कर उपरोक्त मंत्र को सिद्ध करलें। फिर आवश्यकता पड़ने पर रोगी को मोरपंख से झाड़ें। सोमवार से रविवार तक प्रतिदिन सात बार झाड़ देने से कण्ठवेल सूख जाती है और रोगी को पूर्ण लाभ मिलता है।

बालज्वर नाशक मंत्र

ॐ नमो आदेश भगवती बालकष्ट, बाल रोग, बाल पीड़ा दूर कर सर्व विधि सुख दे, जो मेरा आदेश नहीं माने तो राजा राम की दुहाई।

प्रयोग—शिशु यंत्र, (जो कि तावीज की तरह होता है) पर केशर की तिलक लगाकर नित्य एक हजार मंत्र जप करें। इस प्रकार तीन दिन करने पर वह यंत्र विशेष प्रभावशाली हो जाता है, इसके बाद वह यंत्र जिस बालक के गले में काले धागे में पहनाया जाय तो बालक का बुखार या अन्य किसी भी प्रकार का रोग दूर हो जाता है, और वह स्वस्थ हो जाता है। इस **'चमत्कारी तावीज'** को प्राप्त करने के लिए आप हमारे केंन्द्र से सम्पर्क कर सकते हैं।

नक्सीर स्तम्भन मंत्र

ॐ नमो गुरु की आज्ञा सार-सार महासागरे बांधूं सातवार फिर बांधूं तीन बार लोहे की सार बांधे हनुमन्त वीर पाके न फूते तुरत सेखे।

उपर्युक्त मंत्र की सिद्ध करके आवश्यकता पड़ने पर भस्म से ७ बार रोगी को झाड़ना चाहिए।

मसान रोग (सूखा रोग) नाशक प्रभावशाली झाड़ा

मसान रोग सिर्फ बच्चों में ही पाया जाता है। यह एक अत्यंत खतरनाक बीमारी है। इसके प्रकोप से बच्चा दिन-ब-दिन बिना वजह कमजोर होता चला जाता है।

'सफेद मसान गुरू गारख की आन यमदण्ड मसान काल भैरों की आन सुकिया मसान लोना चमारी की आन फुलिया मसान गोरे भैरों की आन हल्दिया मसान ककोड़ा भैरों की आन पीलिया मसान दिल्ली की योगिनी की आन कलेदिया मसान रामचन्द्र की आन कौकड़िया मसान कालिका की आन सिलसिलिया मसान वीर मुहम्मद पीर की आन।'

यदि किसी बालक को मसान रोग (अर्थात सूखा रोग) का प्रकोप हो गया हो तो इस मंत्र से दिया गया झाड़ा अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध होता है।

कलिया मसान नामक एक दुष्ट प्रेतात्मा के कोप भाजन का शिकार हुए अबोध ही मसान रोग से ग्रसित होते हैं। अतएव भूत-प्रेतादि उतारने के झाड़ों की तरह ही यह झाड़ा दिया जाता है। इस झाड़े को मोरपंख से सुबहो-शाम दोनों ही समय पर दिया जाता है।

एक बार में पूरा मंत्र पढ़कर फिर मोरपंखी से झाड़ा देवें। इस प्रकार एक बार में सात झाड़े देवें। लगातार दोनों समय झाड़ा देने से वह रोगी बालक सात दिनों में पूर्णत: स्वस्थ हो जाएगा।

आधाशीशी नाशक मंत्र

'बन में जाई बंदरी जो आधा फल खाई खड़े मुहम्मद हांकवें आधा सीसी जाई।'

किसी भी ग्रहण के अवसर पर उक्त मंत्र को दस हजार बार जाप करके सिद्ध कर लें।

अब आधासीसी (माइग्रेन) के सिर पर २१ बार इस मंत्र को पढ़ कर फूंक मार देने से आधासीसी का रोग दूर हो जाएगा।

नेत्र बाधा निवारण मंत्र

'ओम अगाली गगाली अताल पताल गर्द मर्द अदार कार फट उत्कन हूठ।'

नेत्र बाधाओं युक्त रोगी को रविवार के दिन उक्त मंत्र का जाप करते हुए नीम के पत्तों के झोहरे (डाल) से इक्कीस बार झाड़ा देवें तो नेत्र बाधा से मुक्ति मिल जाएगी।

अन्न पचाने का मंत्र

'अन्न हाथ वज्र हाथ, भस्म करे सब पेट का भात, दुहाई हजरत शाह कुतुब आलम की।'

पाचन शक्ति नियमित करने के लिए यह एक स्वयंसिद्ध तथा प्रभावशाली मंत्र है। खाना खाने के पश्चात अपने हाथ को इस मंत्र से ३१ बार अभिमंत्रित करके

पेट पर फेरें तो भोजन तुरन्त ही पच जाएगा। इस मंत्र के नियमित प्रयोग से पाचन संस्थान सुदृढ़ हो जाता है।

आँख की फूली काटने हेतु

'उत्तर कूल काछ सूत योगी का बाछ इस्माइल योगी की बेटी एक माशे चूहा एक काटे फूला काछ।'

यह एक स्वयंसिद्ध मंत्र है। फिर भी किसी शुभ नक्षत्र में मात्र एक माला जप करने से भी यह मंत्र सिद्ध हो जाता है।

किसी को आंख की फूली हो गई हो तो इस मंत्र को पढ़कर लोहे की कील से इकत्तीस बार जमीन में ठोकें तो ऑख की फूली स्वतः ही कट जाएगी।

शारीरिक पीड़ा नाशक मंत्र

'लशकर फराउन हरदी नील गर्क शुद्ध जहाँ।'

पीली मिट्टी व दही से इस मंत्र को लिखकर सिद्ध कर लें। फिर उस पीली मिट्टी के वजन के समान गुड़ लेकर बच्चों में बाँट दें तो समस्त प्रकार की शारीरिक पीड़ा का नाश हो जाता है।

बवासीर नाशक मंत्र

'खुरीसानी की दोवासाई खूनी वादी तत्वा लजाय।'

बवासीर के रोगी शौच के पश्चात् उक्त मंत्र से अभिमंत्रित जल से आबदस्त (गुदा प्रक्षालन) लेवें तो बवासीर रोग शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

'ईसा ईसा ईसा काँच कपूर के सीसा, यहव अधर जाने नहीं कोय, खूनी बादी एक न होय, दुहाई तख्त सुलेमान बादशाह की।'

उक्त मंत्र स्वयंसिद्ध मंत्र है। बवासीर रोग से मुक्ति पाने का यह सर्वाधिक सरलतम प्रयोग है।

शौच के वक्त गुदा प्रक्षालन (आबदस्त) के लिए उपयोग में आने वाले जल को इस मंत्र से ५ बार अभिमंत्रित करके गुदा प्रक्षालन (आबदस्त) करें तो नियमित प्रयोग से कुछ ही दिनों में बवासीर दूर हो जाएगी।

सूखा रोग झाड़ने का मन्त्र

सूखा रोग का ही दूसरा नाम मसान रोग है, क्योंकि कालिया मसान नामक प्रेतात्मा की कुदृष्टि का शिकार होने पर ही बालक इसके शिकार बनते हैं। जब मसान हर समय बालक के साथ रहने लगता है, तब तो गंडे-तावीज बांधने के साथ ही यह झाड़ा देना भी अनिवार्य हो जाता है।

सपेदा मसान, गुरु गोरख की आन। यमदण्ड मसान, काल भैरों की आन। सुकिया मसान, नोना चमारी की आन। फुलिया मसान, गौरे भैरों की

आन। हलदिया मसान, ककोड़ा भैरों की आन। गीलिया मसान, दिल्ली की आन। कमेदिया मसान, कालिका की आन। कीकड़िया मसान, योगिनी की आन। सिलसिलिया मसान, वीर मोहम्मदा पीर की आन। रामचन्द्र की आन।

मसान रोग का यह झाड़ा सामान्य रूप से नजर उतारने के झाड़ों के विपरीत भूत-प्रेत उतारने के झाड़ों के समान दिया जाता है। मोरपंख के झाड़न से सुबह-शाम दोनों समय देना अधिक उचित है। यह झाड़ा देते समय आप पूरा मन्त्र पढ़ने के बाद एक बार झाड़ें और इस प्रकार सात झाड़े एक समय में दें।

सर्वरोग नाशक तान्त्रिक यन्त्र अथवा तावीज

सामग्री—शिशु स्वास्थ्य यन्त्र, घी का दीपक व अगरबत्ती।

माला—मूंगे की माला।

समय—दिन या रात का कोई भी समय।

आसन—सफेद रंग का सूती आसन

दिशा—पश्चिम दिशा।

जप—संख्या-तीन हजार।

अवधि—तीन दिन।

मन्त्र—**ॐ नमो आदेश भगवती भवानी बालकष्ट, बाल रोग, बाल पीड़ा दूर कर सर्व विधि सुख दे, जो मेरा आदेश नहीं माने तो राजा राम की दुहाई।**

मन्त्र सिद्ध किए हुए शिशु यन्त्र को सामने रखकर और उस पर केशर का तिलक लगाकर नित्य एक हजार मन्त्र जप करें। इस प्रकार तीन दिन करने पर वह यन्त्र विशेष प्रभावशाली हो जाता है, इसके बाद वह यन्त्र जिस बालक के गले में काले धागे में पहनाया जाए तो बालक का बुखार या अन्य किसी भी प्रकार का रोग दूर हो जाता है और वह स्वस्थ हो जाता है।

अंडकोष वृद्धि रोकने का यन्त्र

इस यन्त्र को केसर से भोजपत्र पर रविवार के दिन लिखकर, चांदी या तांबे के तावीज में करके, लाल डोरे की सहायता से दाहिने हाथ में बांधने से अंडकोष वृद्धि रुक जाती है।

यह यन्त्र अनार की कलम से लिखा जाता है तथा गले में भी बांधा जा सकता है।

ॐ नमो नलाई-ज्यां बैठ्या हनुमत आई पके न फुटे, चले बाल जति रक्षा करे। गुरु रखवाला, शब्द साचा पिंड काचा चलो मन्त्र ईश्वरो वाचा सत्य नाम आदेश गुरु को।

कौ
म,
रीत
ाम
ाद

नियमित मासिक-धर्म हेतु तान्त्रिक टोटके

एक सादा पान बनवाकर इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए सात बार अभिमन्त्रित करें और रोगिणी को खिला दें तो उसका अनियमित मासिक धर्म ठीक और निर्धारित समय पर हो जाएगा।

'ॐ नमो आदेश श्री रामचन्द्र सिंह गुरु का। तोड़ूं गांठ औंगा ठाली। तोड़ दूं लाग। तोड़ दूं मरित। परित देकर पाय। यह देख हनुमन्त दौड़कर आये। अमुक की देह शांति पाये। रोग कूं वीर भगाये। रोग न नसै तो नरसिंह की दुहाई। फुरो हुकुम खुदाई।'

थोड़ा-सा अदरक लेकर इस मन्त्र से सात बार फूंककर मासिक धर्ममें होने वाली पीड़ाओं से ग्रसित स्त्री को खिलाने से मासिक-पीड़ा शांत हो जाती है।

'ॐ नमो आदेश मनसा माता का। बड़ी-बड़ी अदरख। पतली पतली रेश। बड़े विष के जल फांसी दे। शेष गुरु का वचन न जाए खाली। पिया पंच मुण्ड के बाभ पद ठेलीं। विषहरी राई की दुहाई।'

मृतवत्सा दोष निवृत्ति हेतु दो मन्त्र

प्रथम मन्त्र—**ओं परब्रह्म परमात्मने अमुकी, गर्भ दीर्घजीवी सुतें।**

मृतवत्सा दोष निवारण के लिए ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को १००८ मन्त्र का विधिपूर्वक जप करें तो सिद्धि होती है।

द्वितीय मन्त्र—**ॐ अदिते दिते दिव्यां गति मासूति सुरि रस्मच गर्भा ठहः ठहः ठहः।**

साधक को चाहिए कि वह स्नानादि से निवृत्त होकर उपर्युक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए काचनी के पेड़ के नीचे जाए। सोमवार प्रदोष के दिन जब रात्रि में एक प्रहर रह जाए तो जाने का वही समय उपयुक्त रहेगा। धूप-दीप और नैवेद्य आदि से वृक्ष का पूजन करके पकी हुई फली तोड़ लाएं। गाय के दूध में इसके बीजों से मिश्रित खीर बनावें। गर्भिणी स्त्री को स्नानादि से पवित्र कराके सफेद मिट्टी से लीपे हुए चौके अथवा किसी परम पवित्र स्थान पर बिठाएं और उसे आदेश दें कि अदिति माता का ध्यान करते हुए खीर का सेवन करे। खीर के केवल उसे ७ ग्रास ही खाने चाहिए। स्त्री को इन नियमों का भी पालन करना चाहिए कि जब तक शिशु उत्पन्न न हो जाए तब तक किसी भी दूसरी स्त्री की छाय उस पर नहीं पड़नी चाहिए। उसे कुशा के आसन पर सोना चाहिए और दिन में एक बार ही भोजन करना चाहिए। इस प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाले शिशु की सुरक्षा हो सकती है।

मृतवत्सा नारी हेतु झाड़ा

मृतवत्सा दोष से ग्रसित स्त्री का झाड़ा करने के लिए मछली पकड़ने वाला कांटा लाएं और उसे इस मन्त्र से सात बार फूंकें। इसी मन्त्र को जपते हुए रोगिणी का झाड़ा करें और इस कांटे को तावीज में भरकर कमर में पहनवा दें। वह निश्चित रूप से जीवित संतान उत्पन्न करेगी।

छोटी मोटी खप्पर, तूं धरती कितना गुण। जियके बल काट कू जान विज्ञान। दाहिनी ओर हनुमान रहे, बायीं ओर चील। चहुं ओर रक्षा करे वीर बानर नील। नील बानर की भक्ति लखि न जाय। जेहि कृपा मृतवत्सा दोष न आय। आदेश कामरू कामाख्या माई का। आज्ञा हाड़ि दासी चण्डी की दुहाई।

गर्भाशय के विकार मिटाने का झाड़ा व गंडा

'ॐ नमो कामरू कामाख्या देवी। जाल बांधूं। जलबाई बांधूं। बांध दूं जल के तीर। पांचों दूत कलुवा बांधूं। बांधू हनुमन्त बीर। सहदेव की आन व अर्जुन का बाण। रावण रण को थाम ले नहीं तो हनुमन्त की आन। शब्द सांचा। पिंड कांचा। फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।'

इस मन्त्र का जप करते हुए स्त्री का झाड़ा करें। लाल धागा लेकर सिर से पांव तक नापें और इस मन्त्र को उच्चारित करते हुए उसके ऊपर २१ गांठें लगाएं और स्त्री को धारण करवा दें।

ज्वरों के लिए झाड़ा

सभी प्रकार के बुखारों को उतारने में यह शाबर मन्त्र समान रूप से समर्थ है। रोगी को उत्तर की तरफ मुंह करके बैठा दें और स्वयं उसके सम्मुख बैठकर सात बार यह मन्त्र पढ़ते हुए झाड़ा दें। लगातार तीन दिन सुबह अथवा शाम को यह झाड़ा दें, परन्तु तीनों दिन स्थान और समय एक ही रखें।

दोई भाई ज्वर सुरा महावीर नाम। दिन रात खटि गैर महावीर के नाम।। फर छुद से छतीस रूप महूर्तमों धराय। नाराज नामूर के घर दुआर फिराए।। ज्वाला ज्वरमाल ज्वर काला ज्वर झुमकि दार। ज्वर, उमा ज्वर, भुता ज्वर, झुमकि घोड़ा ज्वर।। भुमा, तिजारी ओ चौथाई। सवंग को भंग घोटन शिव ने बुझाई।। यह ज्वर-ज्वर सुरा ते कौन और तकाव। शीघ्र अमुक अंग छोड़ तुम जाव।। यदि आंगन में तू भूलि भटिकाय। तो महादेव के लागा तु खाय।। आदेश कामरू कामाख्या माई। आदेश हाड़ी दासी चण्डा की दोहाई।।

दाँत दाढ़ का दर्द निवारक हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो आदेश। गुरु जी का।। बन में ब्याई अंजनी। जिन जायाहनुमन्त।। कीड़ा मकुड़ा माकड़ा। ये तीनों भस्मन्त।। गुरु की शक्ति। मेरी भक्ति।। फुरे मन्त्र। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र का ग्रहण के समय ११ माला जप हनुमान् जी विषयक सभी नियमों का पालन करते हुए करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा। फिर आवश्यकता के समय नीम की डाली लेकर दर्द वाले स्थान पर छुआते हुए मंत्र जपते हुए ही २१ बार झाड़ा करें तो उस व्यक्ति का दाँत/दाढ़ का दर्द कुछ ही क्षणों में दूर हो जायेगा तथा वह व्यक्ति सुख का अनुभव करेगा, फिर रोगी व्यक्ति से पीला प्रसाद बटवा दें।

वायु नाशक हनुमान् मन्त्र

पर्वत पर बाइल काग। कै अण्डे, कै बच्चे? सात अण्डा, सात बहिन।। कौन-कौन बहिन? दाँत-चमोकनी मुँह-चमोकनी। आँख-चमोकनी। पैर-चमोकनी।। हाथ-चमोकनी।। बाय-बाय री हरहुल्ला। आवेगा अनुमान बाबा।। मारेगा लोहे का सोटा।। भाग-भाग रे बहन चोदबाय, सात समन्दर पार।। हुई जाय।।

विधि—इस मंत्र को ग्रहण-काल में श्री महावीर बजरंगी विषयक समस्त नियमों का पालन करते हुए ११ माला का जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा। फिर आवश्यकता के समय वायु-रोग से पीड़ित व्यक्ति का झाड़ा लोहे की वस्तु से करें तो पीड़ित व्यक्ति वायु-रोग से निदान पाएगा।

समस्त व्याधियाँ नाशक हनुमान् मन्त्र

कौरव-पाण्डव कहाँ गए? बन में गए। बन में क्या करेंगे? बन कटवाएँगे बन कटा के क्या करेंगे? सहस्त्र मन कोयला करेंगे? सहस्त्र मन कोयले का क्या करेंगे? छप्पन-छुरी बनाएँगे। छप्पन-छुरी का क्या करेंगे? बाय को, चीस को, भड़क को, फुँसी को, फोड़े को, टोक को, नजर को, सिर-दर्द को काट-पीट के खारे समुन्दर में बहाएँगे। खारे समुन्दर में बहा के क्या करेंगे? बहोड़ (बहुर) के उल्टे न आवे ईश्वरो वाचा, पिण्ड कांचा मेरे गुरु का शब्द सांचा देखूँ बाबा हनुमान। तेरे शब्द का तमाशा

विधि—इस मंत्र की साधना २१ दिन की है, साधक श्री राम-दूत हनुमान विषयक समस्त नियमों का पालन करते हुए १ माला का जप प्रतिदिन करें तो यह मन्त्र सिद्ध होगा फिर आवश्यकता के समय मंत्र में कहे समस्त रोग-दोष का झाड़ा करने से नाश होता है।

बाय रोग झाड़ने का हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो तडम। उतड भड तेल करे।। दीजे बाती तैल बरै। गलत-सलत।। तू बाई रोग। निनाई रहै:। तो यति हनुमन्त। की दुहाई फिरै।। शब्द सांचा। पिण्ड काँचा।। फुरो मन्त्र। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मन्त्र को ग्रहण-काल, होली, दीपावली में श्री बजरंगी विषयक सभी नियमों का पालन करते हुए ११ माला का जप करने से यह मन्त्र सिद्ध होगा, फिर इस मंत्र से बाय वाले रोगी का झाड़ा "भस्म" से करें तो रोगी बाय-रोग से निदान पाये।

कान दर्द दूर करने का हनुमान् मन्त्र

आसमीन नगोर। वन्ही कर्म न जायतं।। दोहाई महावीर की। जो रहे कान की पीर।। अंजनी-पुत्र कुमार। वायु-पुत्र महाबल को मार।। ब्रह्मचारी हनुमन्तई। नमो-नमो।। दुहाई महावीर की। जो पीर मुण्ड की।।

विधि—इस मंत्र की साधन दीपावली की रात्रि में श्री रामदूत हनुमान् जी विषयक समस्त निथमों को ध्यान में रख कर पाँच माला का जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होता है फिर जब कोई कान दर्द से पीड़ित व्यक्ति आये तो साँप के बिल की मिट्टी लेकर इस मंत्र को जपते हुए २१ बार झाड़ा करे तो रोगी दर्द में आराम पाएगा।

अण्ड वृद्धि व सर्प भगाने का हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो आदेश गुरु जी का। जैसे के लेहु रामचन्द्र।। कबूत ओसई करहु राध। बिनि कबूत पवनपूत।। हनुमन्त धाउ हर-हर। रावन कूट मिरावन श्रवइ।। अण्ड खेतहि श्रवइ अण्ड। अण्ड विहण्ड खेतहि श्रवइ।। वाजं गर्भ हिश्रवइ स्त्री। षीलहि श्रवइ शाप हर-हर।। जंबीर हर जंबीर हर-हर। शब्द सांचा।। पिण्ड काँचा। फुरो मन्त्र।। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र का अनुष्ठान ११ दिन का है, साधक श्री हनुमान् जी विषयक समस्त नियमों का पालन करते हुए प्रातिदिन २ माला का जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा, फिर इस मंत्र को जपते हुए अण्डकोश को हलके हाथ से मले तथा २१ बार जल को शक्तिकृत कर रोगी को पिलाए तो अण्डकोश वृद्धि शान्त हो जाती है, तथा मिट्टी के एक ढेले को २१ बार अभिमंत्रित कर साँप के बिल पर रखने से साँप निकल जाता है।

४. यदि बवासीर के मस्से फूले हुए हों और वे विशेष कष्ट दे रहे हों, तो गेंडे की जननेन्द्रिय को सुखाकर उसका कंकण बनवा लें और उसे रोगी के दाहिने

हाथ की कलाई में धारण करवायें, तो सभी मस्से सूख जायेंगे तथा बवासीर की पीड़ा भी शान्त हो जायेगी।

हवा आदि रोग दूर करने का हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो आदेश गुरु जी का।। काली चिड़ी चिग-चिग करे। धोला आवे वाते आवे हरे।। यती हनुमान हाँक मारे।। मथवाई और वाई जाये भगाई। हवा हरे।। गुरु को शक्ति। मेरी भक्ति।। फुरो मन्त्र। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र को होली या दीपावली की रात्रि को किसी कुएँ के ऊपर श्री हनुमान् जी की प्रतिमा स्थापित कर हनुमान् जी विषयक सभी नियमों का पालन करते हुए, इस मन्त्र का अनगिनत जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा, फिर आवश्यकता के समय पृथ्वी पर मंत्र का जाप करते हुए २१ रेखाएं सीधी खींचे फिर रोगी को उन रेखाओं के पास बिठा कर इन रेखाओं के ऊपर रोगी के दोनों हाथ रखवा दें पुन: इन मंत्र से रोगी का २१ बार झाड़ा मोर पंख से या लोहे की वस्तु से करें, झाड़ा करते समय रोगी अचानक या अंजाने में आगे की ओर खिसक पड़ेगा तो उसकी मथवाय, वाय, हवादि रोग उसी क्षण नष्ट हो जाएँगी और वही सुखी होगा।

दाद झाड़ने का हनुमान् मन्त्र

ॐ हाथ वेगे चलाई। आदि-नाथ, पवन-पूत।। हनुमन्त कर मोरकत। मेरु चाल, मन्दिर चाल।। नव-ग्रह चाल, दोष-चाल। दिनाई चाल, डोरी चाल। इन्द्रहि चाल, चाल-चाल। हनुमन्त बिना, सह-काल।। उठि विषि तरु-वर चाल। हम हनुमन्ते मुगरे।। लिंगडा परोरे वर्ध छले। तरुयरी घानपरि हि।। यष अष्टोत्तर-शत व्याधि। लावरे विशालाव अहरो।। विष आह।।

विधि—इस मंत्र को ग्रहण काल या दीपावली में श्री राम दूत हनुमान् जी विषयक समस्त नियमों का पालन करते हुए ११ माला जप व दशांश हवन करने से यह मन्त्र सिद्ध होगा, फिर ताँबे के कलश में शुद्ध जल भर कर २१ बार शक्ति-कृत कर दाद-वाले व्यक्ति को पिलायें, यह क्रिया नित्य करें जब तक दाद न दूर हो जाय।

आधा शीशी विनाशक हनुमान् मन्त्र

ॐ कारी चिरई चौकही। राव तीरे बासा।। या किसी हाँक दे हनुमन्त वीर, आधा-शीश विनाशा।।

विधि—इस मंत्र को ग्रहण-काल में पवन-पुत्र हनुमान् विषयक सभी नियमों का पालन करते हुए ११ माला का जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा। फिर

आधा-शीशी दर्द से पीड़ित व्यक्ति का उपलों की राख से झाड़ा करने से आधा-शीशी का दर्द दूर होता है।

कान की पीड़ा निवारक हनुमान् मन्त्र

वनरा गाँठि वानरी। तो डाँटे हनुमान, कंठ।। बिलारी, बाधी, थरैली कर्ण मूल, सम जाइ।। श्री रामचन्द्र की बानी। पानी पथ होइ जाइ।।

विधि—इस मंत्र का अनुष्ठान सात दिन का है, साधक अंजनी-पुत्र श्री बीर बजरंगी के समस्त नियमों का पालन करते हुए प्रतिदिन १ माला का जप करे तो यह मन्त्र सिद्ध होगा। फिर जब कान की पीड़ा से व्यक्ति आये तो मोर पंख की भस्म से २१ बार झाड़ा करें, तो रोगी व्यक्ति की पीड़ा दूर हो, वह सुखी होगा।

नकसीर रोग निवारक हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो आदेश। गुरू जी का।। सार-सार। महा-सागरे बाँधूँ।। सात बार फिर बाँधूँ। तीन बार लोहे की।। तार बाँधूँ। सार बाँधेहनुमन्त वीर।। पाके न फूटे। तुरन्त सेखे।। आदेश। आदेश। आदेश।।

विधि—इस मंत्र को ग्रहण-काल में ११ माला जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा, साधन में श्री हनुमान् जी विषयक सभी नियमों का पालन करें एवं जब किसी व्यक्ति के नाक से रक्त गिर रहा हो तो राख लेकर इस मन्त्र को जपते हुए २१ बार नाक का झाड़ा करें तत्काल ही नकसीर बन्द हो जाएगी और पीड़ित व्यक्ति सुख का अनुभव करेगा।

समस्त रोग शान्ति का हनुमान् मन्त्र

पर्वत ऊपर पर्वत। पर्वत ऊपर स्फटिक शिला।। स्फटिक शिला पर अंजनी। जिन जाया हनुमन्त।। नेहला-टेहलाकाँख की कखराई।। पीठे की आदटी। कान की कनफेट।। राल की बद। कण्ठ की कण्ठमाला।। घुटने का डहरु। दाढ़ की दढ़शूल।। पेट की ताप, तिल्ली किया। इतने को दूर करे।। भस्मंत न करे तो तुझे माता अंजनी का।। दूध पिया हराम। मेरी भक्ति गुरु की शक्ति।। फुरो मन्त्र, ईश्वरो वाचा। सत्यनाम आदेश गुरु जी का।।

विधि—जो साधक ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया हो वह इस मंत्र का जप करते हुए रोगी का झाड़ा करे तो रोगी तत्काल रोग से निदान पाएगा।

आधा सीसी नाशक हनुमान् मन्त्र

बन में ब्याई अंजनी। कच्चे बन फल खाय।। हाँक मारी हनुमन्त ने। इस पिण्ड से आधा।। सीसी उतर जाय।।

विधि—इस मंत्र को ग्रहण काल में १० माला का जप श्री हनुमान के विषयक सभी नियमों को ध्यान रखते हुए करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा, फिर जब

आपके पास कोई आधा-सीसी दर्द से पीड़ित व्यक्ति आये तो राख लेकर २१ बार इस मंत्र का उच्चारण करते हुए झाड़ा करें तो वह शीघ्र ही आधा सीसी दर्द से निजात पायेगा।

डिब्बा (पल्ली) का रोग दूर करने के लिए हनुमान् मन्त्र

ॐ सत्य नामआदेश गुरु जी का।। डंक खारी। खंखरा कहाँ गया? सवा लाख पर्वतो गया। सवा लाख पर्वतो जाय क्या करेगा? सवा भार को कोयला करेगा।। सवा भार कोयला कर क्या करेगा? हनुमन्त वीर नव चन्द्रहास खड्ग घड़ेगा।। नव चन्द्रहास खड्ग घड़ क्या करेगा? जात व ढोख पसली बाय काल कूट खारो समुद्र नखेगा। जगद्गुरु की शक्ति।। मेरी भक्ति। फुरो मन्त्र, ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र का ग्रहण-काल में ११ माला जप श्री हनुमान् जी विषयक सभी नियमों को ध्यान में रखकर करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा, फिर आवश्यकता के समय तिल के तेल में असली सिंदूर मिला कर डिब्बा वाले बालक का झाड़ा करने से वह बालक शीघ्र ही इस रोग से निदान पाता है।

नेत्र पीड़ा निवारक हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो। झल-मल।। जहर भरी तलाई।। अस्ताचल पर्वत ते आई।। तहाँ बैठा हनुमन्त जाई।। फूटे न पाके करै न पीड़ा यती हनुमन्त राखै हीड़ा।। शब्द सांचा। पिण्ड कांचा।। फुरो मन्त्र। इश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र का ग्रहण-काल में सात माला का जप, हनुमान् जी के विषयक सभी नियम मानते हुए करने से यह मंत्र सिद्ध होता है, फिर आवश्यकता के समय में निम्बू की टहनी लेकर २१ बार रोगी के नेत्रों का झाड़ा मंत्र जपते हुए करने से वह नेत्र पीड़ा से मुक्ति पाता है।

बवासीर नाशक हनुमान् मन्त्र

ॐ काका कता। क्रोरी कर्ता।। ॐ करता से होय। यरसना दश हूँस प्रकटे।। खूँनी-बादी बवासीर न होय।। मन्त्र जान के न बताए, द्वादश ब्रह्म हत्या का पाप होय। लाख जप करे तो उसके वंश में न होय।। शब्द सांचा। पिण्ड कांचा।। फुरे मन्त्र। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र का अनुष्ठान सात दिन का है, साधक श्री हनुमान् जी के नियमों का पालन करते हुए प्रतिदिन १ माला जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा फिर आवश्यकता के समय रात्रि का रखा हुआ पानी लेकर, इस मंत्र से २१ बार अभिमंत्रित करके गुदा प्रक्षालन करें तो खूनी और बादी बवासीर दोनों ठीक हो जाती है।

बगली दर्द दूर करने का हनुमान् मन्त्र

वात् वात्। अकाल वात्।। अन्ध वात्। कुन-कुने वात्। कुट-कुटे वात्। आभार प्रति चक्रे शीघ्र फाट।। तौमार डांके। पवन-पुत्र हनुमान कार आज्ञाय।। राजा श्रीरामेर आज्ञाय।।

विधि—इस मंत्र को होली की रात्रि या मंगल-पुष्य नक्षत्र में हनुमान् जी विषयक सभी नियमों को मानते हुए सात माला जप करें, तो यह मंत्र सिद्ध होगा, फिर आवश्यकता होने के समय में २१ बार झाड़ा करने तथा शुद्ध पीली सरसों का तेल को लेकर २१ बार अभिमंत्रित कर दर्द वाले स्थान पर मर्दन करने से रोगी शीघ्र रोग से मुक्ति पायेगा, रोगी के ठीक हो जाने पर रोगी व्यक्ति से सात बालकों को मीठा भोजन तथा हनुमान् जी को चोला व लंगोट चढ़वायें।

आधा सीसी नाशक हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो आदेश-। गुरु जी का।। काली चिडी चिग-चिग करे।। घोली आवै वासे हरै। जती हनुमन्त। हाँक मारे।। मथवाई और। आधा-सी सी नाशै।। गुरु की शक्ति।। मेरी भक्ति। फुरे मन्त्र। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र का ग्रहण-काल में हनुमान् जी विषयक सभी नियमों को ध्यान रख सात माला जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा, फिर रोगी का माथा पकड़ कर इस मंत्र से २१ बार झाड़ा करने सेरोगी व्यक्ति का आधा-सीसी का दर्द थोड़ी देर में दूर हो जाएगा।

उखड़ी नाभि ठीक करने का हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो नाड़ी-नाड़ी। नौ से नाड़ी।। बहत्तर कोठा। चलै अगाड़ी।। डिगै न कोठा। चले नाड़ी।। रक्षा करे यती। हनुमन्त की आन।। शब्द सांचा। पिण्ड कांचा।। फुरे मन्त्र। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र को ग्रहण-काल में श्री पवनतनय के सभी नियमों को मानते हुए ११ माला का जप करें, तो मंत्र सिद्ध होगा फिर आवश्यकता के समय रोगी व्यक्ति जिसकी नाभी उखड़ी होवे, उसे लिटा करके उसकी नाभि के ऊपर एक ऐसा बाँस का पोला, जिसमें कि नौ गाँठ हों, खड़ा कर दें और इस मंत्र को जपते हुए २१ बार फूँक बाँस के छेद में जोर-जोर से मारें तो उखड़ी हुई नाभि ठीक हो जायेगी।

बाला झाड़ने का हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो वारा रे। तू सदा बलवन्ता।। बाला ने खोदे। हनुमन्ता।। शब्द साँचा। पिण्ड काँचा।। फुरो मन्त्र। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मन्त्र को होली, दीपावली या पर्व-काल में श्री हनुमान् जी विषयक सभी नियमों का पालन करते हुए ११ माला का जप करने से यह मंत्र सिद्ध होगा, फिर आवश्यकता के समय साँभर नमक की कंकड़ी को २१ बार शक्तिकृत कर बाला वाले स्थान पर २१ बार झाड़ा करें, जब तक पीड़ा न दूर होवे तब तक रोज ही झाड़ा करें।

नोट—यंत्र-मंत्र-तंत्र सिद्ध करने के लिए किसी भी तांत्रिक या पहुँचे हुए व्यक्ति की सलाह अवश्य लें। अन्यथा फायदे की जगह आपको नुक्सान हो सकता है।

सिर दर्द निवारक हनुमान् मन्त्र

लंका में बैठ के। माथ हिलावे हनुमन्त।। सो देखि के राक्षस। गण पराय दूरंत।। बैठी सीता देवी। अशोक वन में।। देखि हनुमान को। आनन्द भई मन में।। गई उर विषाद देवी। स्थिर दरशाय।। ''अमुक'' के सिर। व्यथा पराय।। ''अमुक'' के नहिं कछु। पीर नहिं कछु भार।। आदेश कामाख्या हाड़ी। दासी चण्डी की दोहाई।।

विधि—इस मंत्र का सात दिन का अनुष्ठान है, साधक श्री हनुमान जी विषयक सभी नियमों का पालन करते हुए प्रतिदिन १ माला का जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा और जब आवश्यकता हो तो रोगी व्यक्ति को दक्षिण की ओर मुख करके बैठा दें और उसके सिर को हाथ से पकड़ कर इस मंत्र को जपते हुए राख द्वारा २१ बार झाड़ा करें तो उसका सिर-दर्द दूर हो वह सुख का अनुभव करे।

(अमुक की जगह पीड़ित का नाम उच्चारण करें)

आधा-सीसी दर्द नाशक हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो वन मे। ब्याई बानरी।। उछल वृक्ष पर। जाय, कूद-कूद।। शाखा नरी। कच्चे वन।। फल खाय। आधा तोड़े।। आधा फोड़े। आधा देय गिराय।। हंकारत हनुमान जी। आधा सीसी जाय।।

विधि—इस मंत्र की सिद्धि के लिए ग्रहण काल में श्री हनुमान् जी विषयक सभी नियमों का पालन करते हुए १० माला का जप करें तो यह मन्त्र सिद्ध हो जायेगा। फिर जब कभी आवश्यकता हो तो राख (भस्म) लेकर आधा-सीसी से पीड़ित व्यक्ति का झाड़ा करे तो वह शीघ्र ही सुख का अनुभव करेगा।

नेत्र रोग नाशक हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो वने बिआई। बानरी जहाँ-जहाँ।। हनुमन्त। आँखि पीड़ा।। कषावरि गिहिया। लाइ चरिउ जाइ।। भस्मन्तन। गुरु की शक्ति।। मेरी भक्ति।। फुरो मन्त्र।। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र को ग्रहण-काल में श्री हनुमान् जी विषयक सभी नियमों को मानते हुए १० माला का जाप करें तो यह सिद्ध होगा। फिर जब आवश्यकता हो तब नेत्र रोग से पीड़ित व्यक्ति के आँख पर हाथ फेरते हुए २१ बार इस मन्त्र को जपते हुए फूँक मारें तो रोगी की व्यथा मिट जाएगी और वह सुखी होगा।

दन्त पीड़ा निवारक हनुमान् मन्त्र

ॐ राई-राई। तू मेरी माँई।। धरती नी धूलि। मसानी छाई।। सान खवाई। सो हनुवन्त।। की दुहाई। मारा गुरु।। जपत जलत बाई। हालि मन्त्र गुरु खवाई।। मेरी भक्ति। गुरु की शक्ति।। फुरे मन्त्र। ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र की साधना २१ दिन की है, श्री हनुमान् जी विषयक समस्त नियमों का पालन करते हुए प्रतिदिन १ माला का जप करने से यह मंत्र सिद्ध होता है फिर जब दाँत के दर्द वाला कोई व्यक्ति आये तो इस मंत्र को जपते हुए २१ बार झाड़ा करने से शीघ्र ही दाँत दर्द से पीड़ित व्यक्ति आराम पायेगा।

स्त्री सर्व-रोग नाशक हनुमान् मन्त्र

हनुमान हठीले। लोहे की लाट।। वज्र का खीला। भूत को बाँध।। प्रेत-को बाँध। मैली कुचमैली।। कूँख मैली, रक्त मैली। ऐसी चौदा मैली। पकड़ चोटी न निकाले। तो अंजनी का दूध।। हराम करे। महादेव की जटा। में आग लगे। ब्रह्मा के वचन से।। राम चन्द्र के वचन से। मेरे वचन से।। मेरे राजगुरु। के वचन से।। इसी वक्त भाग जा।।

विधि—इस मंत्र का अनुष्ठान २१ दिन का है, साधक केशरी नन्दन बजरंग बली विषयक सभी नियमोंका ध्यान रख कर प्रतिदिन १ माला का जप करें तो यह मंत्र सिद्ध होगा, फिर आवश्यकता के समय रोगी व्यक्ति का झाड़ा लोहे की वस्तु से इस मंत्र को जपते हुए करें तो रोगी रोग से निदान पायेगा।

सर्व-शूल नाशक हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो भगवते। चिन्तामणि हनुमान?। अंग-शूल, अति-शूल। कटि-शूल, कुक्षि-शूल।। गुद-शूल, मस्तक-शूल। सर्व-शूल, निर्मूलय।। निर्मूलय, कुरु-कुरु स्वाहा।।

विधि—इस मंत्र को ग्रहण-काल में केशरी-नन्दन हनुमान् जी विषयक सभी नियमों का पालन करते हुए ११ माला का जप व दशांश हवन करने से यह मंत्र सिद्ध होगा, फिर आवश्यकता के समय-शूल-ग्रस्त रोगी व्यक्ति को अभिमन्त्रित जल पिलायें या भस्म अभिमन्त्रित कर खाने को दें अथवा एक निम्बू शक्ति-कृत कर शूल-ग्रस्त भाग के ऊपर फिरायें, बाद में उस निम्बू को नदी या तालाब में विसर्जित

कर दें इन तीनों प्रयोगों से रोगी की शूल-व्याधि नष्ट होगी, शूल रोग जब अच्छा हो जाय तब यथा शक्ति दान-पुण्य अवश्य करवायें।

रोग-दोष नाशक हनुमान् मन्त्र

ॐ नमो आदेश। गुरु जी का।। अहल बाँधूँ। जहल बाँधू।। अंबर तारा अस्सी। कोस की विद्या बाँधूँ।। बाँधूँ नदी की धारा। बाँधू तर्कशास्त्र का तीर।। मस्तक बैठा। हनुमन्त वीर।। वीर हनुमन्त से। क्या-क्या चले?।। चौंसठ चक्र चलै। चौंसठ चक्र से।। क्या-क्या चले? भूत-चले। प्रेत-चले।। राक्षस चले। ब्रह्म-राक्षस चले।। चुड़ैल चले। सोखा तपोखा चले।। पर्वतऔ धरणी चले। चौंठ योगिनी चलै।। ताप-तिजारी चलै। नव नाड़ि, बहत्तर।। कोठां माँहे सो निकाले। ''अमुक'' को आराम करे।। न निकाले, तो राजा। राम चन्द्र की दुहाई।। मेरी भक्ति, गुरु की शक्ति। फुरे मन्त्र ईश्वरो वाचा।।

विधि—इस मंत्र की साधना २१ दिन की है, साधक श्री हनुमान विषयक सभी नियमों को मान कर प्रतिदिन १ माला जप तथा दशांश हवन करें तो यह सिद्ध होगा, आवश्यकता के समय मोर पंख द्वारा रोगी का २१ बार झाड़ा करने में समस्त रोग-दोष दूर होते हैं।

दुर्बलता दूर करने का हनुमान् मन्त्र

तू है वीर। बड़ा हनुमान।। लाल लंगोटी। मुख में पान।। एर-भगावै। वैर-भगावै। ''अमुक'' में। शक्ति जगावै।। रहे इसकी काया। दुर्बल तो माता।। अंजनी की आन। दुहाई गौरा। पार्वती को।। दुहाई राम की। दुहाई सीता की।। लै इसके पिण्ड की खबर। न रहैं इस पे कोई कसर।।

विधि—इस मंत्र की साधना २१ दिन की है, साधक श्री बजरंग बली के सभी नियमों का पालन करते हुए १ माला प्रतिदिन जपें तो यह मंत्र सिद्ध होगा, आवश्यकता के समय इस मंत्र को जपते हुए मोर पंख द्वारा २१ बार झाड़ा करें तो रोगी व्यक्ति की दुर्बलता दूर हो एवं उसके सभी रोग-दोष दूर होते हैं।

रोग लकवा ठीक करने का मंत्र

''ॐ नमो गुरुदेवाय नमः, ॐ नमो महादेवाय नमः, ॐ नमो उस्ताद गुरु कूं, ॐ नमो आदेश गुरु कूं, आदेश जमीन आसमान कूं, आदेश पवन पाणी कूं आदेश चंद्र सूरज कूं, आदेश नवनाथ चोरासी सिद्ध कूं, आदेश गूंगी देवी, बहरी देवी, लूली देवी, पांगुली देवी, आकाश देवी, पाताल देवी, उलूझणी देवी, पूकंनी देवी, टकंटुकी देवी, आरीदेवी, चंद्रगेहली देवी, हनुमान जाति अंजनी का पूत, पवन का व्याती, वज्र का कांच, वर्ज का लंगोटा ज्यू

चले, ज्यू चल, हनुमान जति की गदा चले ज्यू चल, राजा रामचंद्र का बाण चले ज्यू चल, गंगा, जमना का नीर चले ज्यू चल, दिल्ली आगरा का गैलो चले, ज्यू चल, कुम्हार का चाक चले ज्यू जल, गुरु की शक्ति हमारी भक्ति, चलो मंत्र ईश्वरी वाचा।''

विधि—चदंन का धूप लगाकर, मोरपंख से दिन में तीन बार (सुबह, दोपहर, शाम) झाड़ा देना, प्रत्येक झाड़े में मंत्र को सात बार बोलना २१ दिन तक लगातार यह प्रयोग करने से लकवा ठीक ही जाता है। परंतु २१ दिन तक नित्य तीन बार खेजड़ी सींचनी जरूरी हैं। व्यक्ति के ठीक हो जाने पर 'उतारा' करना भी जरूरी है।

रोग बिच्छू का विष उतारने का मंत्र

ॐ नमो सुरह पर्वत पर जाप हरी दूव खाती फिरे, ताल-तलैय्या पानी पीएं, सरह गाय ने गोबर किया, जा में उपजे बिच्छू सात काले पीले, धौले लाल रंग बिरंगे और हराल उतर रे उतर बिच्छू का जाया नहीं तो गरुड़ जी डडके आया, सत्य नाम आदेश गरु का, शब्द सांचा पिण्ड कांचा फुरो मंत्र ईश्वरी वाचा।

उपर्युक्त मंत्र का झाड़ा मोर पंख से पीड़ित व्यक्ति को २१ बार देने पर बिच्छू का विष उत्तर जाता है।

रोग दन्त शूल नाशक मंत्र

अग्नि बांधौ अनिश्वर बांधौ सौलाल विकराल, बांधौ लोहा लुहार बांधौ वज्र के निहाय वज्र घन दांत विहाय तो महादेव की आन।

इस मंत्र को नौ दिन तक रात्रि में नित्य २१०० बार जाप करके सिद्धि कर ले, तब प्रयोग करना हो तो तर्जनी अंगुली से २१ बार मंत्र पाढकर जार देने से दूर हो जाता है! दांत वज्र के समान मजबूत हो जाते हैं।

पूर्व स्नानादि से पवित्र होकर करे। साधना करते समय एक समय भोजन करे तो साधना शीघ्र ही फलीभूत होती है।

रोग प्रेमिका (पत्नी) को वशीभूत करने मंत्र

ॐ शिवे भगवे भगे-भगे भंग, क्षोभय-क्षोभय, मोहय, मोहय, छादय-छादय, क्लेदय क्लेदय क्लीं शरीर ॐ फट् स्वाहा।

यह मंत्र एकांत में जिस किसी भी स्त्री की फोटो के सामने १०८ बार पढ़ा जाएगा, वह युवती काम के वशीभूत होकर दौड़ी चली आएगी यदि ७ दिन तक सोते समय बराबर प्रयोग किया जाए तो अभीष्ट स्त्री कामातुर होकर रात्रि में सेज पर आवेगी, ध्यान रहे, सावधान। इस मंत्र का गलत प्रयोग न करे। मंत्र से गलत कार्य न करे, वरना जातक का भयंकर अहित हो सकता है।

रोग बवासीर (खूनी) दूर करने का मंत्र

ॐ नमो हनुमंत, मेरी पीड़ा तेरी पीड़ा हर ले हनुमंत मेरी पीड़ा, बवासीर को ठीक कर, तुझे शपथ लक्ष्मण भाई की, तुझे शपथ सीता माई की;

इस मंत्र के १,००० जाप करने पर खूनी बावासीर बंद हो जाएगा। जब भी बवासीरर की तकलीफ बढ़ने लगे तो इस मंत्र का जाप आपको निश्चित रूप से लाभ प्रदान करेगा। जब तकलीफ बढ़ जाए तो २१ बार मंत्र जाप करते हुए एक मौली पीड़ित व्यक्ति के हाथ में बांध दे। खूनी बवासीर बंद हो जाएगा।

रोग नेत्र पीड़ा नाशक मंत्र

नमो रामजी धनी लक्ष्मण के बान। आँख दर्द करे तो लक्ष्मण कँवर की आन। मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा, सत्य नाम आदेश गुरु का।

इस मंत्र का जाप किसी शुभ मुहूर्त (पुष्य नक्षत्र, रवियोग, अमृत सिद्ध) योग के समय आरंभ करके २१ दिवस तक १०००० जाप रोज करके, धूप, दीप और नैवेध आदि से पूरे मन से लक्ष्मण जी की पूजा करे तो यह मंत्र सिद्ध हो जाता है। प्रयोग की आवश्यकता पड़ने पर केवल १०८ बार मंत्र पढ़कर जार देने से कैसा भी नेत्ररोग या नेत्र सम्बन्धी पीड़ा दूर हो जाती है।

रोग शिरः शूलादिशामक मंत्र

वन में ब्याही अजंनी कच्चे फूल फूल खाय। हाक मारी हनुमंत ने इस पिण्ड से आधा सीस उतर जाय।

कृष्ण पक्ष की चौदस (चतुद्रशी) तिथि को श्मशान में जाकर इस मंत्र के १०००० दस हजार जाप करके कुछ राख (भस्मी) अभिमन्त्रित कर ले। फिर रोगी के मस्तक पर राख (भस्मी) मलते हुए इस मंत्र के सात बार जाप करने से सिरदद्र ठीक ही जाता है।

रोग गांठ या फोड़े को ठीक करने के मंत्र

ॐ नमो हनुमंताय नमो ॐ नमो विष कटा नख फटा सिर कटा अस्थि मेद मज्जा फोड़ो फनसो आदी‿ हुंबल। रेल्या रोग रीघण वाय जावे चौसठ जोगनी बावन पीर, रक्षा कीजै भैख आय रक्षा कीजै। शब्द साँचा पिण्ड काच फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा।

ग्रहण काल में उक्त मंत्र सिद्ध होता है। सूर्य ग्रहण के समय विशेष रूप से फलदायी है। जब ग्रहणकाल में प्रयोग करना हो तो उस समय मोर की पंख को लेकर, मोरपंख से पृथ्वी साफ करते हुए, व उक्त मंत्र पढ़ते हुए सात बार जाड़े और

जमीन की धूल को प्रभावित स्थानों या फोड़े, फुँसी आदि पर लगावे, इससे निश्चित रूप से गांठ, फोड़े, फुन्सी आदि ठीक होगी।

मस्तक पीड़ा निवारण मन्त्र

ॐ नमः आज्ञा गुरु को केश में कपाल, कपाल में भेजा बसै भेजी में कीड़ा करै न पीड़ा कंचन की छेनी रूपे का हथौड़ा पिता ईश्वर गाड़ इनको थापे श्री महादेव तोड़े शब्द साँचा फुरो मन्त्र ईश्वरो उवाच।

प्रयोग विधि—इस मन्त्र को पहले १०८ बार पढ़कर सिद्धि कर लें, फिर प्रयोग करते समय राख को सात बार पढ़कर काटें तो मस्तक पीड़ा दूर हो जाता है।

सर्वाङ्ग वेदना हरण मन्त्र

निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर इक्कीस बार झाड़ने से समस्त शरीर का दर्द दूर हो जाता है।

ॐ नमो कोतकी ज्वालामुखी काली दोबर रंग पीड़ा दूर कर सात समुद्र पार कर आदेश कामरु देश कामाक्षा माई हाड़ी दासी चण्डी की दुहाई।

आधा शीश का दर्द दूर करने का मन्त्र

ॐ नमो बन में बिआई बंदरी। खाय दुपहरिया कच्चा फल कंदरी। आधी खाय के आधी देती गिराय। हूकत हनुमंत के आधा शीशी चलि जाय।।

प्रयोग विधि—भूमि पर छुरी से सात रेखा खींच कर रोगी को सम्मुख बैठाकर सात बार मन्त्र पढ़ कर झाड़ने से आधा शीश का दर्द दूर होता है।

उदर वेदना निवारक मन्त्र

ऊं नून तूं सिन्धु नून सिंधु वाया। नून मन्त्र पिता महादेव रचाया।। महेश के आदेश मोही गुरुदेव सिखाया। गुरु ज्ञान से हम देऊं पीर भगाया।। आदेश देवी कामरु कामाक्षा माई। आदेश हाड़ी रानी चण्डी का दुहाई।।

प्रयोग विधि—दाहिने हाथ की केवल तीन उँगलियों से सेंधा नमक का एक टुकड़ा लेकर ऊपर लिखे मन्त्र से तीन बार पढ़कर, अभिमन्त्रित करें बाद में यह टुकड़ा रोगी को खिलाने से पेट की पीड़ा शान्त होती है।

नेत्र पीड़ा निवारक मन्त्र

ॐ नमः झिलमिल करे ताल की तलइया। पश्चिम गिरि से आई करन भलइया।। तहँ आय बैठेउ वीर हनुमन्ता। न पीड़ै न पाकै नहीं फूहन्ता।। यती मनुमन्त राखे होड़ा।।

प्रयोग विधि—सात दिन तक नित्य सात बार नीम की टहनी द्वारा झाड़ने से नेत्र पीड़ा शान्त होती है।

रोग निवारण मन्त्र

पर्वत ऊपर पर्वत और पर्वत ऊपर फटिक शिला फटिक शिला ऊपर अञ्जनी जिन जाया हनुमन्त नेहला टेहला काँख की कखराई पीछे की आदटी कान की कनफटे रान की बद कंठ की कंठमाला धूटअने का डहरु डाढ़ की डढ़ शूल पेट की ताप तिल्ली किया इतने को दूर करे मस्मन्त नातर तुझे मा का दूध पिया हराम मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा सत्य नाम आदेश गुरु का।

सिद्ध करने की विधि—सात शनिवार हनुमान् जी की मूर्ति के सम्मुख धूप दीप प्रज्वल्लित कर नैवेद्यादि अर्पित कर नित्य एक सौ आठ बार मन्त्र का जाप करें, मन को सर्वथा शुद्ध रखें, कामेच्छा आदि विकार मन में न आने पावे, इस प्रकार सिद्धि प्राप्त हो जाने पर कखबारी, बद, कंठमाला, दाढ़ शूल, कन फेर, अदीठ, रोगों को राख से एक सौ आठ बार मन्त्र पढ़ कर मन्त्र पढ़ कर झाड़ें तथा ताप, तिल्ली को छुरी से एक सौ आठ बार मन्त्र पढ़कर झाड़ने से उपरोक्त रोग दूर होते हैं।

विशेष—रोग दूर हो जाने पर रोगी से हनुमान् जी को प्रसाद चढ़वा कर वितरित करें और किसी से कोई द्रव्य ग्रहण न करें।

ऋतु वेदना निवारण मन्त्र

ॐ नमो आदेश देवी मनसा माई बड़ी-बड़ी अदरख पतली-पतली रेशे बड़े विष के जल फाँसी दे शेष गुरु का बचन जाय खाली पिया पञ्च मुण्ड के बाम पद ठेली विषहरी राई की दुहाई फिरै।।

प्रयोग विधि—अदरख को तीन बार मन्त्र पढ़ कर रोगिनी को खिलाने से ऋतुमती को वेदना शान्त होती है।

मासिक विकार दूर करने का मन्त्र

आदेश श्री रामचन्द्र सिंह गुरु को तोड़ू गाठ औंगा ठाली तोड़ दूँ लाय तोड़ि देऊँ सरित परित देकर पाय यह देखि मनुमन्त दौड़ कर आय अमुक का देह शांति वीर भगाय श्री गुरु नरसिंह की दुहाई फिरै।

प्रयोग विधि—एक पान का बीड़ा ले तीन बार मन्त्र पढ़ कर खिलाने से समस्त प्रकार के मासिक विकार दूर होते हैं।

प्रसव कष्ट निवारण मन्त्र

ॐ मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि लम्बोदर मुञ्च मुञ्च स्वाहा। आं मुक्ता पाशा विपाशश्च मुक्ता सुर्य्येण रश्यमः।। मुक्ता सर्ध्व फयादर्भ एहि मारिच स्वाहा। एतन्मत्रेणाष्ट वार जयनभि मनय पितम तत्क्षणात सुख प्रसवो भवति।।

प्रयोग विधि—केवल एक हाथ से खींचा हुआ कुएँ का जल लाकर आठ बार मन्त्र पढ़कर पिलाने से प्रसव वेदना दूर होती है तथा बालक सुखपूर्वक होता है।

विशेष—एक हाथ से कुएँ का जल खींचने के बाद जमीन पर न रखना चाहिये अन्यथा प्रभाव निष्फल होगा।

मृगी रोग हरण मन्त्र

ॐ हलाहल सरगत मंडिया पुरिया श्री राम जी फूँके। मृगी बाई सूखे, सुख होई ॐ ठः ठः स्वाहा।।

प्रयोग विधि—भोजपत्र पर अष्टगन्ध से इस मन्त्र को लिखकर गले में बाँधने मात्र से मृगी रोग चला जाता है।

रतौंधी विनाशक मन्त्र

ॐ भाट भाटिनी निकली कहे चलि जाई उस पार जाइब हम जाऊं समुद्र। भाटिनी बोली हम बिछाइब हग उपसमाशि पर मुन्डा मुन्डा अंडा।

नैन वेदना विनाशक मन्त्र

नमो राम जी धनी लक्ष्मण के बान। आँख दर्द करे तो लक्ष्मण कुवंर की आन। मेरी भक्ति गुरु की शक्ति। फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा, सत्य नाम आदेश गुरु का।

इस मन्त्र का किसी शुभ मुहूर्त में जाप प्रारम्भ करके इक्कीस दिवस तक दस हजार बार नित्य जाप कर धूप दीप और नैवेद्य आदि से मनोयोग पूर्वक लक्ष्मण जी की पूजा करें तो यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। प्रयोग की आवश्यकता होने पर केवल एक सौ आठ बार मन्त्र पढ़ झार देने से नेत्रों का दर्द दूर हो जाता है।

मस्तक शूल विनाशक मन्त्र

"निसुनीह रोई बद कर मेघ गरजहि निसु न दीपक हलुधर फुफुनिबेरि फूनि डमरु न बजै निसुनहि कलह निन्न पुटु काच मई।"

इस मन्त्र को दीपावली की रात्रि को इक्कीस सौ बार जाप कर सिद्ध कर लेना और प्रयोगावसर पर केवल इक्कीस मन्त्र को पढ़कर फूँक मार देने से दर्द देवता भाग जाते हैं।

आँखों का दर्द दूर करने का मन्त्र

"सातों रीदा सातो भाई भातों मिल के आँख बराई दुहाई सातों देव की, इन आंखिन पीड़ा करै तो धोबी को नाँद चमार के चूल्हे परै। मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।"

इस मन्त्र को दीपावली या होली की रात्रि से प्रारम्भ कर इक्कीस दिवस तक नित्य एक सौ आठ बार जाप कर पूजन करने से यह सिद्ध हो जाता है और

आवश्यकता के समय केवल इक्कीस बार मन्त्र पढ़ फूँक मार देने से दर्द देवता विदा हो जाते हैं।

दन्त शूल नाशक मन्त्र

अग्नि बांधौ अग्नीश्वर बाँधौं सौलाल बिकराल बाँधौ लोहा लुहार बाँधौ बज्र के निहाय वज्र घन दाँत विहाय तो महादेव की आन!।

इस मन्त्र को केवल नौ दिन तक रात्रि में नित्य इक्कीस सौ बार जाप करके सिद्ध कर लें, फिर जब प्रयोग करना हो तो तर्जनी उंगली से इक्कीस बार मन्त्र पढ़कर झाड़ देने से दाँत का दर्द दूर हो जाता है।

तपेदीक (टी० बी०) आदि सर्व ज्वर नाशक अद्भुत मन्त्र

ओम् कुबेर ते मुखं रौद्रं नन्दिन्ना नन्द मावद। ज्वरं मृत्यु भयं घोरं विषं नाशय में ज्वरम्।।

आम के एक सौ आठ ताजे पत्ते तोड़ शुद्ध गाय के घी में डुबा दें, यदि घी कुछ कम हो तो पत्तों पर चुपड़ दें और जिस स्थान पर रोगी की शय्या पड़ी हो आम, बेरी अथवा पलाश की लकड़ी की समिधा में अग्नि प्रज्जवलित करके उपरोक्त मन्त्र से एक सौ आठ आहुति दें, यदि रोगी बैठने योग्य हो तो उसे हवन कुण्ड के समीप बैठा दें यदि रोगी बैठने के योग्य न हो तो उसकी चारपाई हवन कुण्ड के समीप ही डलवा दें और हवन के समय रोगी का मुँह खुला रखें। इस प्रकार की क्रिया से साधारण ज्वर तो केवल तीन या पाँच दिन में ही दूर हो जाते हैं और पन्द्रह या इक्कीस दिवस में टी० बी० जैसे राज रोग भी सदैव के लिये दूर हो जाते हैं।

हवन सामग्री में निम्न वस्तुयें बराबर-बराबर लेकर मिला लेना चाहिये। मण्डूक पर्णी, गूगल, इन्द्रायण की जड़, अश्वगन्ध, विधारा, शालपर्णी, मकोय, अड़ूसा, बांसा, गुलाब के फूल, शतावरी, जटामांसी, जायफल, बंशलोचन, रास्ना, तगर, गोखरू, पाण्डरी, क्षीर काकोली, पिश्ता, बादाम की गिरी, मुनक्का, हरड़ बड़ी, लौंग, आँवला, अभिप्रवाल, जीवन्ती, पुनर्नवा, नगेन्द्र वामड़ी, खूब कला, अपामार्ग, चीड़ का बुरादा उपरोक्त सब चीजें बराबर भाग तथा गिलोय चार भाग, कुष्ठ १। ४ भाग, केशर, शहद, देशी कपूर, चीनी, दस भाग तथा गाय का घी सामर्थ्य के अनुसार जितना डाल सकें। समिधा ढाक, शुष्क बांस या आम की ही होनी चाहिये। हवन काल में अन्य कोई औषधि न देना चाहिये।

पसली झारने (दूर करने) का मन्त्र

हं मन्दिर के किनारे सुरहा गाय सुरहा गाय के पेट में उच्छा बच्छा के

पेट में कलेजा कलेजा के पेट में डब डब कर उमा बढ़े दुहाई लेना लोना चमारी की।

इस मन्त्र को होली, दीपावली की रात्रि या ग्रहण के अवसर पर पवित्रता पूर्वक १००८ बार लोहबान की धूनी देते हुए जाप कर सिद्धि कर लेवे और जब प्रयोग की आवश्यकता हो तो एक सेर लकड़ी और उंगली के नाप की सात सींकें लेकर इक्कीस बार मन्त्र पढ़कर झारने से पसली रोग से मुक्ति मिल जाती है।

बिच्छू का विष झाड़ने का मन्त्र

ओम् नमो गुरह गाय पर जाप हरी दूब खाती, फिर ताल तलैया पानी पीवे, गुरह गाय ने गोबर किया, जिसमें उपजे बिच्छू सात, काले, पीले, भूरे और हराल, उतरे रे जहर बिच्छू का जाय, नहीं गरुड़ उड़कर आया सत्य नाम, आदेश गुरु का, शब्द साँचा फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा।

प्रयोग विधि—दीवाली के दिन इस मन्त्र को एक सौ आठ बार जप कर सिद्ध कर लें। फिर जिसे बिच्छू ने काटा हो इस मन्त्र को पढ़ कर (फूँक कर) पानी पिलावें तो विष उतर जायेगा।

दूसरा मन्त्र (डंक झाड़ने का)

ॐ सुमेर पर्वत नोना चमारी सोने रायी, सोने के सुनारी हुकबुक वाद-विलारी, धारिणी, नला, कारि-कारि समुद्र पार बहायो दोहाई नोना चमारी की फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।

प्रयोग विधि—इस मन्त्र को एक हजार बार जपकर सिद्ध कर लें। जब किसी को बिच्छू काटे तो इस मन्त्र से इक्कीस बार पढ़ कर झाड़ें तो बिच्छू का विष उतर जायेगा।

मन्त्र—ओम् सुखं शिर, काली माई स्याहा।

प्रयोग विधि—इस मन्त्र को प्रात:काल चारपाई पर से उठते ही और जैसे ही पृथ्वी पर पैर रखा जाये तब इस मन्त्र को पढ़ लें तो आपका सारा दिन ठीक रहेगा और सर्प-बिच्छू आदि से बचेंगे। (सर्प-बिच्छू नहीं काटेगा)।

पीलिया (कँवर) का मन्त्र

ॐ नमो वीर वैताल असुराल नाहर सिंह देव जी स्वादी तरवादी सुभाल तुभाल, पीलिया को काटे, झारे पीलिया रहे न नेक निशान, जो रह जाय तो हनुमान की आन।

प्रयोग विधि—शुद्ध सरसों का तेल एक कटोरे में लेकर रोगी के मस्तक पर सफेद चन्दन से सात बार मलें और प्रत्येक बार मन्त्र का उच्चारण करता जायें और कम-से-कम दिन भर में दो बार प्रयोग करें।

ज्वर नाशक तन्त्र धूप

देवदारू, इन्द्रावणी, लोहबान, गोदन्ती, हींग, सुगंध वाला, कुटकी, नींबू के पत्ते, वच, दोनों कराई, चव्य, सूखा बिनौला, जौ, सरसों, शुद्ध घी, काले बकरे की बाल, गोर शिखा इन सब चीजों को लेकर बैल के मूत्र में पीस कर मिट्टी के कोरे बरतन में रख छोड़ें। इसे माहेश्वर धूप कहते हैं। इसकी धूनी देने से सब प्रकार के ज्वर तथा उन्मत्त रोगी को यह धूप देने से ग्रह, राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, चुड़ैल, नाग, पूतना, शाकिनी, डाकिनी आदि तथा अन्य विघ्न भी क्षण में दूर होते हैं। यह परीक्षित है।

ज्वर नाशक मन्त्र

ॐ नमो भगवते रुद्राय शूल पाणये। पिशाचाधिपतये आवश्य कृष्ण पिंगल फट् स्वाहा।

प्रयोग विधि—इस मन्त्र को कागज के ऊपर कोयले से लिख कर दाहिनी भुजा पर बाँधे तो नित्य आने वाला ज्वर दूर हो।

ज्वर नाशक अन्य मन्त्र

श्रीकृष्ण बलभद्रश्च प्रद्युम्न अनिरुद्ध च। ऊषा स्मरण मन्त्रेण ज्वर व्याधि विमुच्यते।।

प्रयोग विधि—इस मन्त्र को कागज पर लिख कर धूप-दीप देकर गले में बाँधने से ज्वर दूर होता है तथा उसका जाप करने से भी ज्वर दूर होता है।

बाई झारने का यन्त्र

ओम् मूलनमः धुक्षतमः जाहि जाहि ध्वांक्ष तमः प्रकीर्ण अंग प्रस्तार प्रस्तार मुंच मुंच।

प्रयोग विधि—मंगलवार या रविवार को तिलोई पक्षी के पंख से झारें तो बाई दूर होती है।

बालकों को रोना दूर करने का मन्त्र

वावति-वावति-छोटी वावति, लम्बी केश वावति, चलली कामरु देश, कामरु देश से आइल भगाना सिर लोट पर चढ़े मसाना, ठोकर मारी तीन, दीख लेब छीन सत्य नाम कामरु के, विद्या नोना योगिनी के, सिद्ध गुरु के वन्दौं पाँव।

प्रयोग विधि—जो बालक अधिक रोता हो या दीठ लग गई हो तो उस बालक के सिर पर हाथ रख कर मन्त्र पढ़कर फूँक मारें।

जानवरों के कीड़ा झाड़ने का मन्त्र

ओम् नमो कीड़ा रेकुण्ड कुण्डालों लाल पूँछ, तेरा मुँह काला। मैं

तोंहि पूँछा कंह से आका, तूने सब माँस खाया। अब तू जा, भस्म हो जाय, गुरु गोरख नाथ की दुहाई।

प्रयोग विधि—नीम की हरी ताजी डाली से मन्त्र पढ़ कर सात-बार झाड़े तो सब कीड़े मर जायेंगे।

वायु गोला का मन्त्र

ओम् ऐ चा चा।

प्रयोग विधि—चाकू से बीस आड़ी और चालीस खड़ी लकीरें खींच कर इस मन्त्र को पढ़ कर उसे फूँकें तो वायु गोला का रोग जाता है।

वायु गोला झाड़ने का मन्त्र

कान्हपुर हाई कहाँ चले वनही चले वागहे के कोयला कोयला का करवेह सारी पत्रखण्ड कर बेहु अष्टोत्तर दाँत व्याधि काटे के सिर रावण का दश, भुजा बीस, ककुही वर वटी वायु गोला बाँधू गुल्म महादेव गौरा पार्वती के नीलकंठ लोना चम्माइन की दुहाई।

इस मन्त्र से वायु गोला झारे तो लाभ होता है।

कान का दर्द झाड़ने का मन्त्र

आसमीन नगोट वन्ही कर्म हीन न जायते, दोहाई महावीर की जो रहे कान की पीर अंजनी पुत्र कुमारी वायु पुत्र महाबल को मारी ब्रह्मचारी हनुमन्तई नमो नमो दोहाई महावीर की जो रहे पीर मुण्ड को।

प्रयोग विधि—इस मन्त्र को पढ़कर कान तथा माथे पर फूँक मारें।

मृगी (मिरगी) का मन्त्र

ओम् हाल हलं स्मगत मंड़िका पुड़िया श्रीराम फुंकै मिरगी वायु सूखे।। ओम् ठः ठः स्वाहा।।

इस मन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर किसी ताँबे के यन्त्र में भरकर बाँधने से मृगी रोग दूर होता है।

प्रसव आसानी से होने का मन्त्र-यन्त्र

मन्त्र—**अस्ति गोदावरी तीरे जम्भला नाम राक्षसी। तस्याहः स्मरण मात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्।।**

प्रसव वेदना से गर्भिणी बहुत परेशान हो तो वट (बरगद) के पत्ते पर ऊपर लिखा यन्त्र तथा मन्त्र लिखकर उसके (गर्भिणी) के मस्तक पर रखने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है।

दूसरा प्रसव मन्त्र

गंगा तीरे तसेत काशी चरतेय हिमालये। तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाप येच्चैव तत् क्षारणात्।। ततः प्रसूयते नारी काक रुद्रो वचो यथा।

प्रयोग विधि—श्वांस को रोककर जितनी बार यह मन्त्र जपा जा सके उतनी बार जप कर, गुड़ या गरम जल अथवा गरम दूध को अभिमन्त्रित करके गर्भिणी को खिलाने तथा पिलाने से प्रसव बालक सुखपूर्वक पैदा होगा। यह परीक्षित है।

आँख दुखने का मन्त्र

ओम् नमो झल मल जहर नली तलाई अस्ताचल पर्वत से आई जहँ जा बैठा हनुमान जाई, फूटे न पाके करे न पीड़ा यती हनुमन्त की दोहाई।

प्रयोग विधि—नीम की हरी पत्तीदार डाली से सात बार मन्त्र पढ़कर झाड़ना चाहिये।

जानवरों के खुरहा रोग का मन्त्र

अर्जुन फलानी जिस्न सेत बाजी कपिध्वज, गिरिउ विकामुक पार्थर्व सव्य साची धनंजयः इति अर्जुन दश नामानि पशु पीड़ा हराणिचः।

प्रयोग विधि—नीम की डाली से मन्त्र द्वारा (मन्त्र पढ़ कर) झारना चाहिये।

आधा शीशी झाड़ने का मन्त्र

ओम् नमो वन में बसी बानरी, उछल, पेड़ पर जाय, कूद-कूद डालन पर फल खाय, आधी तोड़े-फोड़े आधा शीशी जाय।।

प्रयोग विधि—जमीन पर हाथ से सात सीधी लकीरें खींचे तथा फिर सात आड़ी रेखाओं से उन्हें काटने जायें। इस प्रकार सात बार करके रोगी के माथे पर फूंक मारते जायें और हाथ फेरते जायें तो आधा शीशी जाये।

रतौंधी झाड़ने का मन्त्र

मन्त्र पढ़-पढ़ के फूंके भाट भाटिन संग चली कहाँ जाव, जायेउ समुद्र पार, भाटिन कहा मैं विआयेऊ कुश की छाली विआयेऊ उपसमा छीकर मुद्रा अंडा धों सो हिलतारा सोहिल तारा राजा अजैपाल तर कर केदार पानी भरत रहै उन देखे पावा बालाउ गोडिया मेला उजाल तोके मैं अधोखी ईश्वर महादेव की दोहाई, हनुमान कै दोहाई यही समय उतरि जाइ।

प्रयोग विधि—इस मन्त्र को पढ़कर सात बार झाड़े।

बवासीर झाड़ने का मन्त्र

ओम छई छलक कलाई आहुम आहुम कं कां कीं हूँ फट् फुरो मंत्र ईश्वरो वाचः।

प्रयोग विधि—इतवार और मंगलवार के दिन इस मन्त्र से पानी फूक कर आबदस्त लेने से बवासीर का रोग जाता है।

द्यूत विजय मन्त्र

गृहीत्वा पुष्यनक्षत्रे श्वेतगुञ्जां च मूलकम्। धारयेद्दक्षिणे हस्ते द्यूतकार्ये जयो भवेत्।

दत्तात्रेय तन्त्र में कहा गया है कि पुष्य नक्षत्र मे श्वेत गुञ्जा की जड़ लेकर दाहिने हाथ में बाँधने से जूए में विजय होती है।

अन्यत्। धत्तूरं करवीरं च अपामार्गस्य मूलकम्। हरितालसमायुक्तं तिलकं सुदिन कृतम्। अजाक्षीरेण संपेष्य क्षणे राजकुले जयी। विरोधे द्यूतकार्ये च नान्यथा शङ्करोदितम्।

अन्य प्रयोग : धतूरा, कनेर तथा अपामार्ग (चिरचिटा) की जड़ के साथ हरिताल को बकरी के दूध में पीसकर उत्तम दिन तिलक करने से राजकुल में, शत्रु के विरोध में तथा जूए में तत्काल विजयी होती है। यह शंकर का वचन है, अन्यथा नहीं हो सकता।

अन्यत्। हस्तनक्षत्र होय रवि, तादिन ऐसा करै उपाय। न्योतै पेडपवाण्डको, दिन पहेलेही जाय। रविदिन ताकूं ल्यायके, बांध दाहिनी बांह। खेलै जूवा जो कोई, जीतै संशय नाहि।

अन्य प्रयोग : निम्नलिखित यन्त्र को रेड के पत्ते पर कौवे के पंख से स्याही द्वारा रात के समय शुद्ध होकर लिखे। इस ६४ कोष्ठ के यन्त्र में :

मेखैरकन्दयेरूपाजिजनंदनीचनः छदावींयमंत्रंषहेष्ठिवामोक्षिणपात्रम्।

इस ३२ अक्षर के मंत्र को अनुलोम और विलोम रीति से लिखकर भुजा में धारण करे। फिर जूआ खेलने पर साधक सदैव जीतेगा।

अन्य प्रयोग : मन्त्र इस प्रकार है :

याअववाविर्रिज्कुल्फतूहदूकानअमुकस्यवसतनअमुकस्यजारीगद्दीवहक्व-याफताहोयावा सितो। इति मन्त्रः।

गोमहिषी दुग्धवर्धन उपाय

वीरभद्रोड्डीश तन्त्र में १५ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ ह्रीं करालिनि पुरुषसुखं मुखं ठं ठः। इति पञ्चदशाक्षरो मन्त्रः।

अनेन मन्त्रेण तृणादिकं अष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य गोमहिष्यादीनां दातव्यं अति क्षीरदास्ता भवन्ति।

इस मन्त्र से तृण आदि को १०८ बार अभिमन्त्रित करके गाय और भैंस आदि को खिलाना चाहिये। इससे ये पशु अधिक दूध देंगे।

भूत-प्रेत बाधानाशक मंत्र

"ओम नमो आदेश गुरू को ओम अपर के या कट मेष खम्ब प्रति प्रहलाद राखे पाताल राखे पाँव देवी जंघा राखे काली का मस्तक राखे महादेव जी कोई या पिण्ड प्राण को छोड़े-छोड़े तो देवदानव भूत-प्रेत-डाकिनी-शाकिनी गण्डा ताप तिजारी जूड़ी एक पहरु दो पहरु सांझ को सबेरे को किया को कराया को उलट वाही के पिण्ड परे इस पिण्ड की रक्षा श्री नरसिंह जी करे शब्द सांचा पिण्ड कांचार फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा।"

विधि—सूर्य या चन्द्र ग्रहण अथवा दीपावली की महानिशा में इस मंत्र को सिद्ध कर लिया जाये। सिद्ध के समय पूजा, प्रसाद, धूप, दूप, फूल, नैवेद्य आदि का ध्यान रखना चाहिए।

आवश्यकता होने पर इस मंत्र से सात बार जल से अभिमंत्रित करके रोगी को वह जल पिला दें साथ ही बाधाग्रस्त व्यक्ति को मोरपंख से मंत्रोच्चारण करते हुए सात बार झाड़ दें।

प्रेतादि दोष नाशक मंत्र

'ओम नमो आदेश गुरू को, लड़गढ़ी सों मुहम्मद पठाण, चढ्या श्वेत घोड़ा, श्वेत पलाण, भूत बाँधि, प्रेत बाँधि, चौसठ जोगिनी बाँधि, अड़सठ स्थान बाँधि, बाँधि, बाँधि रे चोखी तुरकिनी का पूत, बेगि बाँधि, जोतू न बाँधे तो अपनी माता की शैय्या पर पाँव धरे, मेरी भक्ति गुरू की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा।'

यदि किसी को भूत-प्रेत-जिन्न इत्यादि ऊपरी बाधा का रोग लग गया हो तो इस गण्डे को रोगी के बांध देने से समस्त ऊपरी बांधाओं का नाश होता है। परन्तु ध्यान रखें कि यह प्रयोग आमजनों या साधारण मनुष्य के करने के लिए नहीं अपितु किसी आमिल या तांत्रिक द्वारा ही सम्पन्न किया जाना चाहिए।

इस प्रयोग को करते समय आमिल (तांत्रिक) को अपने पास दीपक जलाकर रखना चाहिए, लोबान की धूनी देवें तथा सीप में थोड़ी मिठाई अवश्य रखें।

अब रोगी के सिर से लेकर पाँव तक की लम्बाई का सात रंग वाला डोरा माप कर लेवें और उक्त मंत्र को पढ़ते हुए उस सूत के डोरे में ३१ गाँठें लगाकर गण्डा तैयार कर लें।

इस प्रकार से तैयार गण्डे को उस रोगी के गले में पहना देवें। गण्डे के प्रभाव से रोगी की समस्त ऊपरी बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

ध्यान रखें कि पृथक्-पृथक् रोगी के लिए पृथक्-पृथक् ही गण्डा तैयार

किया जाता है। इस **'चमत्कारी गण्डे'** को प्राप्त करने के लिए आप हमारे केंद्र से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

भूत-प्रतों को भगाने का तन्त्र

अन्य भूतों की अपेक्षा प्रेत अधिक शक्तिशाली और दुष्ट होता है। अगर आपके घर में लोग बार-बार बीमार पड़ते हों, स्त्री-पुरुष भयानक स्वप्न देखकर भय से चौंक उठते हों, कोई स्त्री पागल की तरह अनाप-शनाप बकती हुई भूत खेलती हो अथवा घर के छप्पर और हाते में ढेले, रोड़े अथवा हड्डियों के टुकड़े बरसते हों, तो समझना चाहिए कि आपके घर में भूतों के साथ ही प्रेत की भी बाधा है। ऐसी हालत में इस भयंकर भूत-प्रेत बाधा दूर करने के लिए निम्नलिखित तन्त्र का प्रयोग कीजिए।

सर्वप्रथम एक मरे हुए कौवे को तलाश कर ले आइए। फिर मंगलवार को एक कच्चा बांस काटकर ले आइए। उस बांस को करची सहित आंगन में गाड़ दीजिए और उसकी चोटी पर उस मरे हुए कौवे को टांग दीजिए। बांस गाड़ने के पहले ही उस कौवे की उसकी चोटी से बांध देना चाहिए, जिससे गाड़ने के बाद चोटी पर टांगने में कठिनाई न पड़े।

इसके बाद अमावस्या की आधी रात को किसी कौवे के घोंसले से सात लकड़ियाँ, पांच पंख और कुछ बीट ले आइए, फिर आंगन के अन्दर तिकोना होम-कुंड खोदकर उसमें बेल, आम और नीम की सूखी लकड़ियाँ, चिड़चिड़ी, धूप, गुग्गल, जौ, तिल और घी के योग से निम्नलिखित काक-मन्त्र का पाठ करते हुए होम कीजिए।

ॐ काक-पच्यै नमः स्वाहा श्री फट्।

उपर्युक्त मन्त्र का पाठ करते हुए एक सौ आठ बार आहुतियाँ देकर होम-यज्ञ समाप्त कीजिए। याद रहे, होम के समय कौवे के घोंसले की लकड़ियाँ अन्यान्य लकड़ियों में मिला देंगे और पंख एवं बीट साकल में। इस प्रकार होम-यज्ञ समाप्त करने पर घर की सभी प्रेत-बाधाएं दूर हो जाएंगी।

इस होम की भस्म उठाकर मिट्टी के पके हुए पात्र में हिफाजत से रख दीजिए। जब कभी कोई स्त्री भूत-प्रेत खेले, तो कुछ भस्म उसके सिर पर छिड़ककर जरा-सी भस्म उसे चटा दिया कीजिए। उसी समय उसके शरीर से भूत-प्रेत की बाधा दूर हो जाएगी।

भूतप्रेत भगाने का मन्त्र

किसी उल्लू पक्षी को पकड़कर उसके दाएं डैने का एक बड़ा पंख निकाल

लें तथा उल्लू को छोड़ दें। फिर उस पंख को पानी से धोकर रख लें। अगले दिन प्रातःकाल स्नानादि से पवित्र होकर पूर्व की ओर मुंह करके पद्मासन लगाकर बैठें और पंख को अपने सामने रखकर निम्नलिखित मंत्र का १००८ बार जप करें—

ॐ नमः रुद्राय, नमः कालिकायै, नमः चंचलाय, नमः कामाक्ष्यै, नमः पक्षिराजाय, नमः लक्ष्मीवाहनाय, भूतप्रेतादीनां निवारणं कुरु कुरु ठं ठं ठं स्वाहा।

हर बार मंत्र जप पूरा होने पर पंख के ऊपर एक फूंक मारते जाना चाहिए अथवा गंगाजल छिड़कना चाहिये। इससे पंख अभिमंत्रित हो जाता है। जब मंत्र जप पूरा हो जाए तो अभिमंत्रित पंख को लकड़ी की किसी पेटी के भीतर रेशमी वस्त्र में लपेटकर रख दें तथा आवश्यकता के समय उसे निकालकर प्रयोग में लाएं। जिस स्त्री अथवा पुरुष को भूत-प्रेत आदि लगा हो, उसे अभिमंत्रित पंख द्वारा १०८ बार झाड़ते समय उपरोक्त मंत्र का उच्चारण करते रहने से भूत-प्रेत आदि दूर भाग जाते हैं। इस अभिमंत्रित पंख को तावीज में बंद करके भुजा अथवा कंठ में धारण करने से भूत-प्रेत कभी पास नहीं फटकते।

रविवार की अमावस्या को कहीं से एक उल्लू पकड़ लाएं। उल्लू को पकड़ते समय निम्नलिखित मंत्र का ७ बार उच्चारण करें—

ॐ नमो पक्षिराजाय नमो लक्ष्मी वाहनाय मम अभिलाषा पूर्ति कुरु कुरु स्वाहा।

फिर उस उल्लू के दाएं डैने तथा पूंछ का एक-एक पंख नोचकर अपने पास रख लें और उल्लू को उड़ा दें। दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर कुश के आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर उल्लू के दोनों पंखों को अपने सामने रख लें। अब धूप, दीप, गंध, अक्षत एवं पुष्प आदि से उनका पूजन करके निम्नलिखित मंत्र का १००८ बार जप करें—

ॐ नमः शिवाय, नमः कमलासनाय, नमः लक्ष्मी वाहनाय, नमः मनोभिलाषा पूर्ति करणाय, मम दुष्ट ग्रहं शान्तं कुरु कुरु स्वाहा।

इस विधि द्वारा २१ दिनों तक नित्य प्रातःकाल उल्लू के पंखों का पूजन तथा मंत्र का जप करें। फिर उन पंखों को लाल रंग के किसी रेशमी कपड़े में लपेटकर अपनी दाईं भुजा में बांध लें। इस प्रयोग से कुछ ही दिनों में अभिचार कर्म, दुष्ट ग्रहों और भूत-प्रेत का प्रभाव दूर हो जाता है तथा मनोभिलाषा पूर्ण होती है।

भूत-प्रेत से स्वयं मुक्ति

ॐ नमो भगवते रुद्राय नमः कोशेश्वराय नमो ज्योतिः पतंगाय नमो रुद्राय नमः सिद्धाय स्वाहा।

भूत बाधा से पीड़ित व्यक्ति द्वारा स्वयं इस मन्त्र का अपनी सामर्थ्य भर अधिक से अधिक संख्या में जप करते रहने से ही भूत-प्रेत बाधा दूर हो जाती है।

भूत-प्रेत हटाने हेतु शक्तिशाली यन्त्र व मन्त्र

रवि, पुष्य, रवि मूल नक्षत्र अथवा किसी शुभ मुहूर्त में नीचे दिये यन्त्र को अष्टगंध की स्याही और अनार की कलम द्वारा बनाएं और चांदी के तावीज में बंद

ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा सर्व दुष्टान् स्तम्भय स्तम्भय मोहय मोहय जंभय जंभय अंघय अंघय वधिरय वधिरय मूकवत् कारय कारय कुरु कुरु ह्रीं दुष्टान् ठः ठः ठः।

करके, १२५०० बार मन्त्र का जप करें। फिर तावीज को काले डोरे की सहायता से दाएं बाजू पर धारण कर लें। यदि शत्रु आक्रमण करने आए तो तावीज पर बायां हाथ रखकर उपर्युक्त मन्त्र को पढ़ना प्रारंभ कर दें। शत्रु भाग खड़ा होगा अथवा पराजित हो जाएगा। किसी के भूत, पिशाच, प्रेत व चुड़ैल की छाया पड़ी हो, तो तावीज को दाएं हाथ की मुट्ठी में बंद करके, मन्त्र-जप करें और तावीज से झाड़ा दे दें, भूतादि का उपद्रव शांत हो जाएगा। यन्त्र को बाजू पर बांधकर और मन्त्र-जप करके किसी यात्रा पर जाएंगे, तो मार्ग में किसी प्रकार की कोई दुर्घटना नहीं होती है।

भूत-प्रेत-पिशाच-डाकिनी निवारण यन्त्र

इस यन्त्र को आंकडां नामक पौधे के हरे पत्ते पर गोरोचन, हरताल, हिंगुल और मैनसिल के मिश्रण से लकड़ी की कलम द्वारा लिखा जाता है। यन्त्र लिखने के बाद दीप और धूप जलाकर इसकी पूजा करें और फिर पत्ते को लपेटकर कलावे अथवा कच्चे सूत की डोरी से गले, भुजा अथवा कमर से बांध दें। कितना भी शक्तिशाली भूत हो इस यन्त्र के प्रभाव से स्वयं छोड़कर भाग जाता है।

भूतादि दुष्ट आत्माओं के निवारण के मन्त्र

ऐ सरसो पीला सफेद और काला। तू चलना-फिरना भाई-सा चाला।। तोहरे बाण से गगन फट जाय। ईश्वर महादेव के जटा कटाय।। डाकिया, योगिनी व भूतपिशाच। काला, पीला, श्वेत, सुसांच।। सब मार-काट करूं खेत खरिहान। तेरे नजर से भागे भूत लै जान।। आदेश देवी कामरू कामाक्षा माई। आज्ञा हाड़ि दासी चण्डी दोहाई।।

थोड़ी-सी सरसों लेकर उपर्युक्त मन्त्र का ३ बार उच्चारण करके भूत-बाधा से ग्रस्त रोगी पर फूंकें और उसमें से थोड़ी-सी बचाकर अग्नि में डाल दें।

ओं नमो भसाणं वरसिने भूत-प्रेतनां पलायनं कुरु कुरु स्वाहा।

इस मन्त्र का प्रयोग करने से पहले इसकी सिद्धि आवश्यक है। सिद्धि प्राप्त

करने के लिए इसका १००० जप करना चाहिए। उसके बाद ही इसके प्रयोग का अधिकार प्राप्त होता है। भूत-ग्रस्त रोगी को ७ बार झाड़ना चाहिए।

जीरा जीरा महाजीरा जिरिया चलाय! जिरिया की शक्ति से फलानी चलि जाय।। जीये तो रमटले मोहे तो मशान टले। हमरे जीरा मन्त्र से अमुख अंग भूत चले।। जाय हुक्म पाडुआ पीर की दोहाई।।

ऊपर्युक्त मन्त्र से थोड़ा-सा जीरा ७ बार अभिमंत्रित कर रोगी के शरीर से स्पर्श कराएं और उसे अग्नि में डाल दें। रोगी को इस स्थिति में बिठाना चाहिए कि उसका धुआं उसके मुख के सामने लगे। इस प्रयोग से भूत-बाधा की निवृत्ति होगी।

भूत सबको भई काहे आमन्द अपार। जिसको गुमान से अमुको को भार।। हमरे संइको पऊं करो सलाम हजार। जाते होय भूत आवेश किनार।। जितनी मेथी छोर बड़े और आदि से अन्त। तिसके ध्रूम ग्रन्थ ते जल में भूत भगते।। अमुक अंग भूत नहीं, यह मेथो के लाय। उठी के आगे रत क्षण में जाय पराय।। आलेश देवी कामरू कामाक्षा माई। आज्ञा हाड़ि दासी चण्डी की दोहाई।।

थोड़ी-सी मेथी को ७ बार अभिमंत्रित करके रोगीके शरीर से स्पर्श कराएं औंर उसे अग्नि में डाल दें। रोगी को इस स्थिति में बिठाना चाहिए कि उसका धुआं उसके मुख के सामने लगे। इस प्रयोग से भूत-बाधा की निवृत्ति होती है।

तह कुठठ इलाही का बान। कूडूम की पत्ती चिरावन। भाग भाग अमुक अंग से भूत। मारूं धुलावन कृष्ण वर पूत। आज्ञा कामरू कामाख्या हारि दासी चण्डी दोहाई।

एक मुट्ठी भर धूल लेकर उसे ३ बार अभिमंत्रित करें और भूत-बाधा ग्रस्त रोगी पर फेंकें। इससे भूत-बाधा की निवृत्ति होती है।

ओं नमः आदेश गुरु को हनुमंत बीर बीर बजरंगी वज्र धार डाकिनी शाकिनी भूत प्रेत जिन्न सबको अब मार मार, न मारे तो निरंजनि निराकर की दोहाई।

इस मन्त्र के प्रयोग से पहले हनुमान्‌जी की पूजा-उपासना करना आवश्यक होता है। इसका शुभारम्भ शनिवार से करना चाहिए। निरन्तर २१ दिन तक श्रद्धापूर्वक पूजा, उपासना व २२१ मन्त्र नित्यप्रति जप करने के पश्चात् किसी चौराहे की कंकड़ी लें, उस कंकड़ी और उड़द को ७ बार अभिमंत्रित करके रोगी को झाड़ा दें।

हल्दी गीरी बाण वाण को लिया हाथ उठाय। हल्दी बाण से लीनगिरी

पहाड़ थहराय।। यह सब देख बोलत बीर हनुमान। डाइन योगिनी भूत प्रेत मुंड काटौ तान।। आज्ञा कामरू कामाक्षा माई। आज्ञा हाड़ि की चंडी की दोहाई।।

थोड़ी-सी हल्दी लेकर उसे ३ बार अभिमंत्रित करके अग्नि में छोड़ें ताकि उसका धुआं रोगी के मुख की ओर जाए। इसे हल्दी बाण मन्त्र कहते हैं।

डाइन-चुड़ैल दोष की निवृत्ति के लिए मन्त्र

बैर बैर चुड़ैल पिशाचनी बैर निवासी। कहुं तुझे सुनु सवं नासी मेरी गांसी।। वर बैल करे तूं कितना गुमान। काहे नाहीं छोड़ती यह जान स्थान।। यदि चाहै तूं रखना अपना मान। पल में भाग कलाश लै अपनो प्रान।। आदेश देवी कामरू कामाक्षा माई। आदेश हाड़ि दासी चण्डी की दुहाई।।

डाइन, चुड़ैल व प्रेतनी आदि से प्रभावित रोगी को स्वस्थ करने के लिए २१ बार इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए फूंक मारनी चाहिए। स्मरण रहे इस मन्त्र का प्रयोग इसे सिद्ध करने के बाद ही करना उपर्युक्त रहेगा। दशहरे में १०८ बार मन्त्र जप से इसकी सिद्धि हो जाती है।

चुड़ैल भगाने की दूसरी विधि

बैर वर चुड़ैल पिशाचनी बैर निवासी। कहुं तुझे सुनु सर्वनासी मेरी मांसी।।

इस मन्त्र को दीपावली, होली, दशहरा या ग्रहण के दिन सिद्ध करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर मन्त्र पढ़कर रोगी पर फूंक मारें। यह क्रम तब तक करें जब तक कि रोगी चुड़ैल बाधा से पूरी तरह मुक्त न हो जाए।

मसान

सफेदा मसान, गुरु गोरख की आन। यमदण्ड मसान काल भैरों की आन। सुकिया मसान, नोना चमारी की आन। फुलिया मसान, गौरे भैरों की आन। हलदिया मसान, ककोड़ा भैरों की आन। पीलिया मसान, दिल्ली की योगिनी की आन। कमेदिया मसान, कालिका की आन। कीकड़िया मसान, रामचन्द्र की आन। सिलसिलिया मसान, वीर मोहम्मद पीर की आन।

इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए २१ बार झाड़ा करने से मसान दोष समाप्त हो जाता है।

डाकिनी मन्त्र

ॐ नमो नारसिंह पाईहार भस्मना। योगिनी बंध डाकिनी बंध चौरासी दोष, बंध अष्टोत्तर शत व्याधि बंध, खेदी खेदी, भेदी भेदी, मारे मारे, सोखे सोखे, ज्वल ज्वल, प्रज्वल प्रज्वल, कुरों नारसिंह सवीर की शक्ति।।

किसी भी ग्रहण में जपकर उपरोक्त मन्त्र को सिद्ध कर लें। फिर इस मन्त्र का सस्वर उच्चारण करते हुए बाधाग्रस्त व्यक्ति को झाड़ा देवें। तुरन्त लाभ होगा।

चुड़ैल हेतु मन्त्र

ॐ नमो आदेश गुरु का। कवलाछरी बावन वीर। कलू बैठनो जल के तीर। तीन पान का बीड़ा खवाऊं। जैठे बैठा जतलाऊं। वाचा चूके तो कंकाली की दुहाई। मेरी भक्ति गुरु की शक्ति। फुरे मन्त्र ईश्वरो वाचा मेरे गुरु का वचन सांचा।।

इस मन्त्र से झाड़ा करने से बाधाग्रस्त सभी चुड़ैल दोषों से मुक्त हो जाता है।

औपरा हेतु मन्त्र

उलटंतं देह, पलटंतं काया। उतर आव गुरु ने बुलाया। शेष सत्य नाम आदेश गुरु को।

इस मन्त्र का जप करते हुए बाधाग्रस्त व्यक्ति को ३१ बार झाड़ा करें तो रोगी स्वस्थ हो जाता है।

डायन हेतु मन्त्र

जल बांका। जल बांका। अमुकेर, काया बांका। डाइनेर दृष्टि पढ़न पानी। सुनो गोमाया अधर कहानी। समन काटि के माता दिहली। बार उज्जान छोड़े भाठी। घर धूला बान। धूसर बान। शब्द भेदी महाबान। ऐहि मन्त्र पढ़ें से। ॐ हानिः श्री राम हुंकारे।

इस मन्त्र का जप करते हुए धूल-राख, सरसों पीड़ित व्यक्ति को मारने से बाधाग्रस्त व्यक्ति शीघ्र ठीक हो जाता है।

भूत-प्रेत आदि निवारण मन्त्र

ॐ ह्रीं श्रीं कुंथुं अरं च मल्लि, वंदे मुणिसुव्वयं नमि जिणं च, वंदामि रिट्ठनेमि, पासं तह वद्धमाणं च-मम वांछितं पूरय पूरय ह्रीं स्वाहा।

पीले वस्त्र, पीला आसन, पीली माला का उपयोग करते हुए पूर्व की ओर मुंह कर जप शुरू करें। ११००० जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्ध होने पर भूत-प्रेत आदि के भय के समय एक माला फेरने से संकट टल जाएगा। अनार की कलम से अष्टगन्ध स्याही से भोजपत्र पर लिखकर गले में बांधने से ज्वर जायेगा। रवि पुष्य नक्षत्र में लिखकर पास में रखने से यात्रा में किसी प्रकार का भय नहीं होगा।

श्री मणिभद्र भूत-प्रेत-बाधा निवारण-मन्त्र

श्री मणिभद्र देव एषः योगः फलतु।

यह मन्त्र एक बार प्रतिदिन में ही बोला जाता है।

ओं नमो भगवते मणिभद्राय, क्षेत्रपालाय, कृष्णारूपाय, चतुर्भुजाय, जिन शासन भक्ताय, नव नाग सहस्त्रवलाय, किन्नर किं पुरुष गन्धर्व राक्षस भूत प्रेत पिशाच सर्व शाकिनीनां निग्रहं कुरु कुरु स्वाहा मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

उत्तर दिशा की ओर मुंह करके, लाल रंग की माला से तीन दिन में १२५०० जप करें। ब्रह्मचर्य का पालन करें और दीपक अखंड रखें तब मन्त्र सिद्ध हो। फिर रोज एक माला का जप करें, भूत-प्रेत आदि की सर्व बाधाएं दूर होंगी।

भूत-प्रेत व दुष्टभय निवारक मन्त्र

ॐ ह्रीं अ सि आ उ सा सर्व दुष्टान् स्तंभय स्तंभय मोहय मोहय जंभय जंभय अंधय बधिरय बधिरय मूकवत् कारय-कारय कुरु कुरु ह्रीं दुष्टान् ठः ठः ठः।

किसी को भूत, पिशाच, प्रेत व चुड़ैल की छाया पड़ी हो, मुट्ठी बंद करके इस मन्त्र का १०८ बार उच्चारण करें व झाड़ें तो उपद्रव निश्चय ही शान्त हो। ईशान कोण की तरह मुंह करके आधी रात के समय आठ रात्रि तक इस मन्त्र की साधना करें, धूप-दीप करें, ११०० जप करें तो व्यन्तर-देवका उपद्रव शान्त हो। यही नहीं जिस समय शत्रु सामने आक्रमण करने आए तो मुट्ठी बंद करके इस मन्त्र का १०८ बार जप करें। वह मुट्ठी शत्रु के सामने करें तो शत्रु स्वयं परास्त हो जाएगा।

आप एक सद्गृहस्थ हैं अत: ऊपरी हवाओं से लोगों को बचाने और छुड़ाने का कार्य तो अवश्य करें परन्तु इसे अपना व्यवसाय न बनाएं। दूसरों का भला करने के लिए नि:स्वार्थ भाव से जो यह कार्य करता है, उसे समाज में सम्मान और परमपिता परमेश्वर की कृपा से सभी सुख स्वयं ही मिलते रहते हैं। परन्तु जो इस कार्य को पेशा बना लेते हैं, उनका तो लोक और परलोक दोनों ही खराब हो जाते हैं, अत: इस बारे में विशेष सावधान रहें।

सुख-समृद्धि दायक कालिका मन्त्र

ॐ नमो आदेश गुरु को। साथ भवानी कालिका।। बारह वर्ष कुमार। एक माई परमेश्वरी।। चौदह भुवन द्वार। दो पक्ष निर्मली।। तेरह देवी-देव। अष्ट भुजी परमेश्वरी।। ग्यारह रुद्रकर सेव। सोलह कला सम्पूर्णा।। तीन नयन भरपूर। दश अवतारी।। पाँच देव रक्षा करें। नव नाथा-चौरासी सिद्ध।। षट्-दर्शन पाइए। पन्द्रह तिथि जान।। चार वेद वखानिए। काली कर कल्याण।।।

विधि—इस मन्त्र का जो साधक नित्य सच्चे मन से माँ कालिका का ध्यान कर जप करता है वह संसार के सम्पूर्ण सुख प्राप्त करता है। उसको जीवन में किसी तरह का अभाव नहीं रहता है।

इस मन्त्र में महा कालिका के चौंतीस के यन्त्र की सम्पूर्ण विधि समाई हुई है इस लिए इस मन्त्र का जप कर झाड़ा करने से भूत-प्रेतादि दोषों का निवारण होता है।

भूत आदि हटाने का बाग मन्त्र

तह कुष्ठ इलाही का बान कूडूम की पित्ती चिरावत भाग भाग अमुकं अंग से भूत मारूँ धुनवान कृष्ण वर पूत आज्ञा कामरुकामाख्या हाड़ी दासी चण्डी की दुहाई।।

एक मुट्ठी धूल तीन बार मन्त्र पढ़कर मारने से भूत भय दूर होते हैं।

चुड़ैल भगाने का मन्त्र

बैर बर चुड़ैल पिशाचनी बैर निवासी। कहुँ तुझे सुनु सर्व नासी मेरी गाँसी।।

किसी भी शुभ रात्रि को १००१ बार जप करके सिद्ध कर लें फिर रोगी पर प्रयोग करना हो तो ११ बार पढ़कर जल छिड़कें।

भूत भय नाशन मन्त्र

ॐ नमः श्मशान वासिने भूतादीनां पलायनं कुरु कुरु स्वाहा।।

प्रयोग विधि—दीपावली की रात्रि को एक हजार आठ मन्त्र जाप कर सिद्धि कर लें फिर जब प्रयोग करना हो तो रविवार को दिन में कुत्ता और घुग्घु का मल (विष्ठा) ऊँट के बाल, सफेद घुघुंची, गन्धक, गोबर, कड़ुवा तेल, सिरस नामक वृक्ष के फल तथा पत्ते लाकर हवन कर उपरोक्त मन्त्र का एक सौ आठ बार जाप करने से भूत-प्रेत-वैताल-राक्षस, डाकिनी, शाकिनी, प्रेतनी, आदि समस्त बाधायें दूर होती हैं।

डायन, पिशाचिनी भगाने का मन्त्र

वर बैल करे तू कितना गुमान काहे नहीं छोड़ता यह जान स्थान यदि चाहै तूँ रखना आपन मान पल में भाग कैलाश लै अपनी प्रान आदेश देवी कामरु कामाक्षा माई आदे हाड़ी दासी चण्डी की दुहाइ।

सिद्धि करने की विधि—इस मन्त्र को विजयादशमी की रात्रि को एक सो आठ बार जाप कर सिद्धि करें, फिर रोगिणी पर इक्कीस बार पढ़कर फूँक मारें तो डायन चुड़ैल पिशाचिनी आदि से छुटकारा प्राप्त हो।

भूत भय नाशन

ॐ नमः श्मशान वासिने भूतादीनां पलायनं कुरु-कुरु स्वाहा।

मंत्र प्रयोग करने की विधि—दीपावली की रात्रि को १००८ बार मंत्र का जाप कर मंत्र को सिद्ध ले, फिर जब प्रयोग करना हो तो रविवार को कुत्ता, बिल्ली

और चूहा का मल (विष्ठा) ऊंट के बाल, गंधक, गोबर कड़वातेल लाकर सबका मिश्रण तैयार कर उक्त मंत्र से १०८ बार हवन करने से भूत-प्रेत-बैताल राक्षस, डाकिनी, शाकिनी, प्रेतनी आदि समस्त बाधाएं स्वतः ही दूर हो जाती है।

भूत बाधा नाशन प्रयोग

गुग्गुल, धूप बत्तीसा, सरसों आदि लावें। इसे पीसी हुई लालमिर्च के साथ मिलाकर-घर में धूप के रूप में जलावें। भूत-प्रेत आपके घर के आस-पास भी फटक नहीं पाएंगे।

चामुण्डा मन्त्र प्रयोग

३२ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमो भगवते रुद्राय ॐ चामुण्डे अमुकीं वशमानय स्वाहा। इति द्वात्रिंशत्यक्षरो मन्त्रः।

पुष्ये पुष्पं च संग्राह्य भरण्यां तु फलं तथा। शाखां चैव विशाखायां हस्ते पत्रं तथैव च।। मूले मूलं समुद्धृत्य कृष्णोन्मत्तस्य तत्क्रमात्। पिष्ट्वा कर्पूरसंयुक्तं कुंकुमं रोचनासमम्।। तिलकात्स्त्री वशं याति यदि साक्षादरुन्धती। काकजङ्घा वचा कुष्ठं शुक्रशोणितमिश्रितम्।। तैर्दत्ते भोजने बाला श्मशाने रोदिति ध्रुवम्। प्रातर्मुख तु प्रक्षाल्य सप्तवाराभिमन्त्रितम्। यस्या नाम्ना पिबेत्तोऽयं सा स्त्री वश्या भवेद ध्रुवम्।।

काले धतूरे का पुष्प नक्षत्र में फूल, भरणी में फल, विशाखा में शाखा, हस्त में पत्र और मूल में जड़ का क्रमशः संग्रह करके उन्हें पीसकर कपूर, केसर तथा गोरोचन को समभाग मिलाकर उससे तिलक करने पर यदि साक्षात् अरुन्धती के समान पतिव्रता ही कोई स्त्री क्यों न हो वह साधक के वंश में हो जाती है। काकजङ्घा, वचा, कूठ तथा शुक्र और शोणित को मिश्रित करके भोजन में देने से बोला निश्चित रूप से श्मशान में रोती है। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से प्रातःकाल सात बार मुख धोकर जिसके नाम से जल का पान साधक करेगा वह स्त्री निश्चित रूप से उसके वश में हो जायगी।

नजर उतारने का मंत्र-१

मुर्गे की चोंच के ऊपरी भाग को दूध में धोने के बाद सोने या चांदी के तावीज में भरें। फिर तावीज में काले रंग का रेशमी डोरा पिरोकर उसका मुंह बंद कर दें। सोमवार के दिन प्रातः काल पूर्वाभिमुख बैठकर तावीज को अपने सामने रखकर निम्नलिखित मंत्र का १००८ बार उच्चारण करके उसे अभिमंत्रित करें अर्थात् प्रत्येक बार मंत्र पढ़ने के बाद तावीज पर एक-एक फूंक मारते चले जाएं। फिर तावीज को बालक के गले में पहना दें। इसके प्रभाव से बालक को किसी की नजर नहीं लगेगी।

ॐ नमः शिवाय दुष्टिदोषविनाशनाय नमः रुद्राय, नमः उमामहेश्वराय, कं खं गं घं ङं डिम डिम स्वाहा।

एक पूरा नीबू लेकर श्री हनुमान्‌जी का स्मरण करके निम्न मंत्र का जप करते हुए नजर से पीड़ित बच्चे के सिर से पैर तक उतारें। फिर उस नीबू को ले जाकर किसी चौरहे पर काटकर प्रत्येक मार्ग पर फेंक दें। छुरी भी चौराहे पर ही छोड़ आएं। बुरी नजर दूर हो जाएगी। मंत्र इस प्रकार है—

ॐ श्री हनुमते नमः।

नजर उतारने का मन्त्र-२

सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, दीपावली, होली में सिद्ध करके निम्नलिखित मन्त्र से नजर झाड़े।

गुरु चरण दिया मन, श्री हरि मोक्ष कारण, देव-दानव-दैत्यादि, खाई नरसिंह वीर आसी सब उड़ाई आलाली पालाली चोटी चोटी हंकारे फूंकारि उड़ाव मारी शलि लेकर पांव पांव टुकरियां जाए, अनुकार आए, डाईनेर दृष्टि, पलायकरा अक्षा वीर नरा सिंह आज्ञा।

नजर उजारने का मन्त्र-३

ओं नमो भगवते श्री पार्श्वनाथाय ह्रीं धरणेंद्र पद्मावति सहिताय आत्मचक्षु प्रेतचक्षु पिशाचचक्षु सर्वग्रह नाशाय सर्व ज्वर नाशाय ह्रीं श्रीं पार्श्वनाथाय स्वाहा।

इस मन्त्र को दीपावली के दिन, इसकी एक माला फेरकर सिद्ध कर लें, फिर शुद्ध जल को इस मन्त्र से सात बार अभिमंत्रित कर, रोगी को पिलाने से कैसी भी नजर लगी हो, तुरन्त उतर जाएगी।

नजर उतारने का मन्त्र-४

ॐ नमो सत्यनाम आदेश गुरु को। ॐ नमो नजर जहां पर वीर न जानी, बोले छल सो अमृत बानी। कहो नजर कहां से आई, यहां की ठौर तोहि कौन बताई, कौन जात तेरी का ठाम, किसकी बेटी कहो तेरा नाम। कहां को जाया, अब ही बस कर ले, तेरी माया, मेरी बात सुनो चित लगाओ, जैसी होय सुनाऊं आय, तेलन तमोलन चुहड़ी चमारी। कायथनी, खतरानी, कुम्हारी, महतरानी राजा की रानी, जाको दोष तुम्हारे सिर पर पड़े। हनुमंत वीर नजर से रक्षा करें। मेरी भक्ति, गुरु की शक्ति, फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।

ग्रहण के समय मन्त्र जप कर सिद्ध करें और बालकों को नजर लग जाने पर मोर के पंख से झाड़ें। इससे लाभ होगा।

नजर उतारने का मंत्र-५

मोर का पंख या मोर पंख का झाड़ू लेकर बालक के सिर से पांव तक झार दे और झारते हुई इस मंत्र को पढ़ते जाए।

ॐ नमो सत्य नाम आदेश गुरु का, ॐ नमों हनुमंत वीर नजर को बांधे, बावन वीर कहुरे, नजर कहां से आई। यहां की राह तोहे कौन बताई। क्या है जाति तेरा क्या है नाम किस तरह की लड़की, कहां है तेरा धाम, कहां से आई कहां तक जाए, अबहि बस करले तेरी माय। मेरी जाति सुनो चितलाय। जैसी सुनाऊ आए। तेलिन, तमोलिन, चुड़ि चमारिन, कायथिन, कथरानी, कुम्हारीन्, मेहतरानी, राजा रानी, जिसकी नजरे उसी के जाए पड़े प्रत्यक्ष देव दृष्टि रक्षा करे।

उक्त मंत्र द्वारा झार से नजर उतर जाएगी। यदि मोर पंख नही हो तो जलती हुई अगरबत्ती और चाकू से भी झारा जा सकता हैं।

दृष्टिदोष (नजर) नाशक मन्त्र

मंत्र को दीपवली के दिन इसकी एक माला फेरकर सिद्ध कर लें। फिर शुद्ध जल को इस मन्त्र से सात बार अभिमंत्रित कर रोगी को पिलानेसे कैसी भी नजर लगी हो, तुरन्त उतर जाएगी।

ओं नमो भगवते श्री पार्श्वनाथाय ह्रीं धरणेंद्र पद्मावति सहिताय आत्मचक्षु प्रेतचक्षु पिशाचचक्षु सर्वग्रह नाशाय सर्व ज्वर नाशाय ह्रीं श्री पार्श्वनाथाय स्वाहा।

नजर लगने पर इन मन्त्रों का प्रयोग करें

ग्रहण के समय प्रस्तुत मन्त्र को जप कर सिद्ध करें और बालकों को नजर लग जाने पर मोर के पंख से झाड़े। इससे फायदा होगा।

ॐ नमो सत्यनाम आदेश गुरु को। ॐ नमो नजर जहां पर वीर न जानी, बोले छल सो अमृत बानी। कहो नजर कहां से आई, यहां की ठौर तोहि कौन बताई, कौन जात तेरी का ठाम, किसको बेटी कहो तेरा नाम। कहां को जाया, अब ही बस कर ले, तेरी माया, मेरी बात सुनो चित लगाओ, जैसी होय सुनाऊं आय, तेलन तमोलन चुहड़ी चमारी। कायथनी, खतरानी, कुम्हारी, महतरानी राजा की रानी, जाको दोष तुम्हारे सिर पर पड़े। हनुमंत वीर नजर से रक्षा करें। मेरी भवित, गुरु की शक्ति, फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।

नजर झाड़ने का मन्त्र-१

ॐ नमो सत्य आदेश गुरु को, ॐ नमो नजर जहां पर पीर न जानी, बोले छलसों अमृतवानी, कहो नर्जर कहा ते आई, यहां की ठौर तोहि कौन

बताई, कौन जात तेरो कहां ठाह, किसकी बेटी कहा तेरो नाम, कहां से उड़ी कहां को जाया, अब ही बसकर ले तेरी माया। मेरी बात सुनो चित लाय, जैसी होय सुनाऊं आय। तेलन, तमोलन, चुहड़ी, चमारी, कायथनी, खतरानी, कुम्हारी, महतरानी, राजा की रानी, जाको दोष ताही के शिर पड़े, जाहर पीर नजर से रक्षा करे, मेरी भक्ति, गुरु की शक्ति, फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा।

इस मन्त्र का जप मंगलवार से प्रारम्भ कर शनिवार को समाप्त करना चाहिए, ५१ मालाएं फेरनी चाहिए। साधक को दक्षिण की तरफ मुंह कर तेल का दीपक जलाकर इस मन्त्र को सिद्ध करना चाहिए। शनिवार की शाम को जब मालाएं पूरी हो जाएं, तब एक किलो गेहूं उबालकर जंगल में फेंकने के बाद पीछे मुड़कर नहीं देखना चाहिए। इस प्रकार से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। सिद्ध होने पर मोर-पंख से मात्र तीन बार इस मन्त्र को पढ़कर नजर झाड़ दें तो निश्चय ही नजर उतर जाती है। चाहे वो बालक या स्त्री हो अथवा मकान या दुकान।

नजर झाड़ने का मंत्र-२

कई बार बच्चों को नजर आदि लगने की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिससे बच्चा बीमार हो जाता हैं, उलटी, दस्त, बुखार, जुकाम आदि समस्या उत्पन्न हो जाती है। निम्न मंत्र से २१ बार झाड़ा देने पर नजर उतर जाती है।

हरि हरि स्मरिके हय मन करुं स्थिर चाउर आदि फेक के पाथर आडिवीर डायन दूतिन दानवी देवी के आहार बलक गण पहिरे हाड़ गला हार राम लखण दूनो भाई धनुष लिए हाथ देखि डायनी भागत छोड़ शिशु माय गई पराय सब डायरी योगिनी सात समुद्र पार में खावे खारी पानी आदेश हाड़ी दासी चण्डी माई आदेश नैना योगिनी के दोहाई।

उपरोक्त मंत्र को २१ बार पीड़ित व्यक्ति (जो नजर या टोकार आदि से पीड़ित हो) के सामने पढ़े। पढ़ते समय अगरबत्ती अवश्य ही लगा लेवे।

नजर दोष दूर करने का मंत्र

ॐ नमो नजर जहां पर पीर न जानी। बोले छल सों अमृत बानी।। कहौं नजर कहां ते आई? यहां की ठोरि तोहि कौन बताई? कौन जात तेरी कहां ठाम? किसकी बेटी क्या तेरी नाम? कहां से उड़ी कहां की जाया? अब ही बस कर दे तेरी माया? मेरी जात सुनो चितलाय। जैसी होय सुनाऊं आय। तेलन तमोलन चुहड़ी चमारी। कामथनी खातरानी कुम्हारी।। महतरानी राजा की रानी। जाको दोष ताहि सिर पड़े। हनुमन्त वीर नजर के रक्षा करें। मेरी भक्ति गुरु की शक्ति। फुरो मंत्र ईश्वरी वाचा।।

इस मंत्र को पढ़ते हुए रोगी को सिर से पैर की तरफ झाड़ा करे तो दृष्टि का दोष नजर लगना समाप्त हो जाता है। सूर्य-चंद्र ग्रहण के समय जप करके इस मंत्र को सिद्ध कर लेना चाहिए। बालकों को नजर लग जाने पर मोर के पंख से ११ बार झाड़ दें। सुख व शांति होगी।

डायन की नजर झाड़ने का मन्त्र

हरि हरि स्मरिके हम मन करुँ स्थिर चाउर आदि फेंक के पाथर आदि वीर डायन दूतिन दानवी देवी के आहार बालक गण पहिरे हाड़ गला हार राम लषण दूनों भाई धनुष लिये हाथ देखि डायनी भागत छोड़ शिशु माथ गई पराय सब डायनी योगिनी सात समुद्र पार में खावे खारी पानी आदेश हाड़ी दासी चण्डी माई आदेश नैना योगिनी के दोहाई।

प्रयोग विधि—उपरोक्त मन्त्र विधि के अनुसार सिद्धि कर झाड़ने से दृष्टि बाधा दूर होती है।

नजर झाड़ने का हनुमान् मन्त्र

हनुमान चलै। अवधेसरिका।। वृज-मण्डल। धूम मचाई।। टोना-टमर। डीठि-मूठि।। सबको खैचि बलाय। दुहाई छत्तीस।। कोटि देवता की। दोहाई लोना।। चमारिन की।।

विधि—इस मंत्र को ग्रहण-काल में, पवन पुत्र हनुमान् जी विषयक सभी नियमों का पालन करते हुए १० माला का जप करें तो यह मन्त्र सिद्ध होगा, फिर आवश्यकता के समय मोर पंख से २१ बार झाड़ा करने से बालकों को लगी नजर दूर हो जाती है।

अतर मोहिनी

मन्त्र—**अलहम्दोगवानीवो मेरेपर हो दिवानी जो न हो दिवानी तो सैयाद कादर अब्दुलं जलानी चुट्टा पकडकर करो दिवानी। इति मन्त्रः।**

उत्कृष्ट अतर (इत्र) को शीशी में डालकर १०८ बार मन्त्र पढ़े और शीशी के भीतर फूँक मारे। इसी तरह प्रत्येक माला पूरी होने पर फूँक मारता रहे। जब १ हजार मन्त्र पढ़ चुके और शीशी में दश फूंके लग चुकें तब शीशी को किसी स्वच्छ स्थान में रख दे। इसी प्रकार २१ दिनों तक करने से शीशी का अतर चक्कर देने लगेगा। जब अतर चक्कर देने लगे तब जान ले कि वह सिद्ध हो गया है। अगर २१ दिन में अतर चक्कर न मारे तो फिर ४० दिन तक मन्त्र का जप करे। तदुपरान्त जिस स्त्री की इच्छा से यह कार्य किया हो उसे अतर सुँघाने से वह वशीभूत हो जाती है। यह अत्यन्त चमत्कारी और अनुभूत मन्त्र है, इसे मिथ्या नहीं जानना चाहिये।

लूणमोहिनी

मन्त्र—**ॐ नमो हयलूण सुहावय लूण अईसा लूण मसाणां हमां पाया अमुकादिद अमुक खाय तरुवाचाटत जन्म जाय। इति मन्त्रः।**

इस मन्त्र से २१ बार नमक को अभिमन्त्रित कर खिलाने से वशीकरण होता है।

सुपारीमोहिनी

मन्त्र—**पीर मैं नाथ पीर तूं नाथ जिस्को खिलाऊं तिस्को वश करना फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा। इति मन्त्रः।**

ग्रहण के समय नाभि पर्यन्त जल में खड़ा होकर एक सुपारी को सात बार अभिमन्त्रित करके निगल जाय। जब वह (मल के साथ) निकले तब उसे जल से धोकर फिर दूध से धोवे और १०८ बार मन्त्र पढ़कर गूगल की धूनी दे। तदुपरान्त उस सुपारी का एक टुकड़ा भी जिसे खिला दे वह चाहे पुरुष हो या स्त्री, अवश्य वश में हो जायगा।

इलायचीमोहिनी

मन्त्र—**ॐ नमो काला कलुवा काली रात निसकी पुतली मांझी रात काला कलुवा घाटवाट सोतीको जगाय ल्याव बैठीको उठाय ल्याव खड़ीको चलाय ल्याव वेगी धर ल्याव मोहिनी जोहिनी चल राजाकी ठाव अमुकीके तनमें चटपटी लगाव जियाले तोड़ जो कोई खाय हमारी इलायची कभी न छोड़ै हमारा साथ घरको तर्जे बहेरको तजै घरके साईको तजै हमे तज और कनेजाय तो छाती फाड तुरत मरजाय सत्य गुरू आदेस गुरूकी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा ईश्वर महादेवकी वाचासे टरै तो कुम्भी नरकमें पड़ै। इति मन्त्रः।**

२१ दिन में इसे सिद्ध कर ले। फिर इस मन्त्र से अभिमन्त्रित इलायची जिसे खिला दे वह अवश्य वश में हो जायगा।

लौंग मोहिनी

मन्त्र—**सत्य नाम आदेश गुरूको लौंकलौंग मेरा भाई इन्हीं लौंगने शक्ति चलाई पहेली लौंग राती माती दूजी लौंग जोवनमाती तीजी लौंग अंग मरोड़ै चौथी लौंग दोऊ कर जोड़ै चारों लौंग जो मेरी खाय फलाने के पाससे फलानेकने आजाय गुरूकी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा। इति मन्त्रः।**

शनिवार से प्रारम्भ करके रात्रि के समय पूजन करे और मन्त्र का नित्य १०८ जप करने से २१ दिन में सिद्ध होता है। फिर ४ लौंग अभिमन्त्रित करके जिसे खिला दे वह अवश्य वश में हो जाता है—यह बिल्कुल सत्य है।

राजवशीकरण

मन्त्र—**हथेली में हनुमन्त बसै, भैरूं बसै कापाल। नारसिंहकी मोहिनी,**

मोहा सब संसार। मोहन रे मोहन्ता वीर सब वीरनमें तेरा सीर सबकी दृष्टि बांधिदे तोहि तेल सिन्दूर चढ़ाऊ तोहि तेल सिन्दूर कहांसे आया कैलासपर्वतसे आया कौल ल्याया अञ्जनीका हनुमन्त गौरीका गणेश ल्याया कालागोरा तोतला तीनू वसै कपाल विन्दा तेल सिन्दूरका दुश्मन गया पताल दुहाई कामियां सिन्दूरकी हमें देख सीतल होजाय मेरी भक्ति गुरूकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा सत्य नाम आदेश गुरूको। इति मन्त्रः।

रविवार को नृसिंह का पूजन करके १२१ बार मन्त्र पढ़े। इसी प्रकार सात रविवारों तक करे, तेल का दीपक जोड़े, लोहबान की धूप दे और मोदक चढ़ाये। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध होता है। सिद्ध मन्त्र से सिन्दूर को अभिमन्त्रित करके मस्तक पर बिन्दी लगाने से राजा का क्रोध शान्त हो जाता है और वह प्रसन्न होता है।

सभा मोहिनी

मन्त्र—**कालूं मुख धोये करूं सलाम मेरी आंखोंमें सुरमा बसै जो देखै सो पायन परै दुहाई गौसुलआजमदस्तगीरकी छू। इति मन्त्रः।**

सवा लाख गेहूं पर मन्त्र पढ़े, फिर उसे पिसवाकर उसके आटे में घी और चीनी मिलाकर हलवा तैयार करे। गौसुल आजमदस्तगीरकी नियाज दिलावे और उस हलवे को स्वयं खाकर सिद्ध हो। पदुपरान्त जब राज दरबार में जाने का काम पड़े तब सुरमें को मन्त्र से अभिमन्त्रित कर नेत्रों में लगाकर जाय तो सम्पूर्ण सभा वशीभूत होकर साधक की हाँ में हाँ मिलायेगी।

नग्न मोहिनी

मन्त्र—**पद्मनी अञ्जन मेरा नाम इस नगरीमें पैसके मेहेसगरागाम राज करन्ता राजा मोहूं फरस बैठा पञ्चमोहूं पनघटकी पनिहार मोहूं इस नगरीमें पैसके छत्तीस पवना मोहूं जो कोई मारमार करन्ता आवै ताहि नारसिंह वाया पगके अंगूठा तरे घेरघेर ल्यावै मेरी भक्ति गुरूकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा सत्य नाम आदेश गुरूको। इति मन्त्रः।**

रवि-शनि की रात को धूप, दीप, चन्दन, पुष्प, रोली, चावल, गूगल, पान सुपारी और लौंग से नृसिंह का पूजन करे और १०८ बार मन्त्र का जप करे। प्रत्येक मन्त्र से पान, सुपारी, शक्कर, घृत और गूगल का हवन करे। इससे सिद्धि प्राप्त हो जाने पर नन्दन वन के कपास की रूई में ओंगा की जड़ लपेटकर बत्ती बनावे और तेल से दीपक भरकर उस बत्ती को जलाकर काजल पारे। उस काजल को सात बार अभिमन्त्रित करके नेत्रों में लगा लेने पर सम्पूर्ण पुरुष, बालक, वृद्ध और तरुण वश में हो जाते हैं। जिस ग्राम में साधक जायेगा वहाँ सब ग्रामवासी उसकी सेवा करेंगे।

शत्रु मोहिनी

मन्त्र—**ॐ नमो उच्छिष्टचाण्डालिनि कङ्कालमालाधारिणि साधुसाधु त्रैलोक्यमोहिनि प्रकाण्डक्षोभिणि शत्रून् क्षोभय क्षोभय हुं फट् स्वाहा। इति मन्त्रः।**

यह क्षोभणी देवी का मन्त्र है। इसके जप तथा हवन से शत्रुओंको क्षोभ होता है। यदि बट और शमी वृक्ष की समिधा से घी के साथ एक हजार नित्य हवन करे तो स्त्री वशीभूत होती है—इसमें सन्देह नहीं।

मूली मन्त्र प्रयोग

२५ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ मूली मूली महामूली सर्वं संक्षोभय संक्षोभय उपद्रवेभ्यः स्वाहा। इति पञ्चविंशत्यक्षरो मन्त्रः।

अंजलि में जल लेकर इस विद्या का जप करने से एक मास में वस्त्राभूषणों से अलंकृत सुन्दर स्त्री प्राप्त होती है।

वशीकरण तन्त्र

यह १८ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमः सर्वलोकवशङ्कराय कुरु कुरु स्वाहा। इत्यष्टादशाक्षरो मन्त्रः।

अष्टोत्तरशतजपात्सिद्धिः। एतस्मिन्सिद्धे मन्त्रे मन्त्री सर्वयोगान् साधयेत्। तथा च। ईश्वर उवाच। नृकपाले रविदिने तण्डुलैः पायसं कृतम्। छायाशुष्कं तु तच्चूर्णं खाने पीने च दीयते। यावज्जीवं वशं याति नारी वा पुरुषोपि वा। अदासो दासतां याति प्राणैरपि धनैरपि।

१०८ बार जप स सिद्धि होती है। इस मन्त्र के सिद्ध होने पर साधक सभी भोगों को सिद्ध करे। कहा भी गया है : ईश्वर बोले : रविवार के दिन मनुष्य की खोपड़ी में चावल से खीर बनाये फिर छाया में सुखाकर उसका चूर्ण बना ले। उसे खान-पान में देने से चाहे नारी हो या पुरुष वह यावज्जीवन वशीकृत रहता है तथा प्राण और धन सहित दास हो जाता है।

अन्यत्। पल्लीपुच्छं गृहीत्वा तु वर्तिं ऋतुमतीस्त्रियः। ज्वालितां यं रवौ वारे दर्शयेत्स वशो भवेत्। ब्रह्मदण्डीवचाकुष्ठचूर्णं ताम्बूलमिश्रितम्। रवौ वारे कृतं चेत्स सर्वलोकेवशंकरः।

छिपकली की पूंछ को ऋतुमयी स्त्री के वस्त्र में लपेटकर बत्ती बनाकर रविवार के दिन उसे जलाकर जिसे दिखाये वह वशीकृत होता है। ब्रह्मदण्डी, वचा तथा कुष्ठ के चूर्ण को ताम्बूल के साथ रविवार के दिन मिश्रित करने से वह सर्वलोकवशंकारी होता है।

गृहीत्वा वटमूलं च जलेन सह घर्षयेत्। विभूत्या संयुतं तस्य तिलको लोकवश्यकृत्।

बरगद की जड़ लेकर उसे जल से घिसे। उसकी विभूति के साथ उसका तिलक संसार को वश में करनेवाला होता है।

पुष्ये पुनर्नवामूलं करे सप्ताभि मन्त्रितम्। यस्यास्ते स भवेत्पूज्यो वधूभिः सर्वमोहकः।

पुष्य नक्षत्र में पुनर्नवा की जड़ को सात बार अभिमन्त्रित करके जो अपने हाथ में रखता है वह वधुओं से पूज्य होता है और सबको मोहित करता है।

अपामार्गस्य मूलं तु कपिलाक्षीरपेषितम्। ललाटे तिलकस्तस्य वशीकुर्या-ज्जगत्त्रयम्।

अपामार्ग की जड़ को कपिला गाय के दूध में पीसकर जो अपने ललाट पर तिलक करता है वह तीनो लोकों को वशीकृत करता है।

गृहीत्वा सहदेवीं वै छायाशुष्कं तु कारयेत्। ताम्बूले निहितं तस्याश्चूर्णं लोकवशङ्करम्।

सहदेवी को लेकर उसे छाया में सुखा ले। उसका चूर्ण ताम्बूल में रखकर देने से वह लोकवशंकारी होता है।

गृहीत्वौदुम्बरं मूलं ललाटे तिलकः कृतः। प्रियो भवति सर्वेषां दृष्टिमात्रान्न संशयः। ताम्बूले या प्रदातव्यं सर्वलोकवशङ्करम्।

गूलर की जड़ को लेकर उसका तिलक ललाट पर लगाकर साधक दर्शन मात्र से सर्वप्रिय हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। इसे ताम्बूल में देने से भी सर्वलोकों का वशीकरण होता है।

देवदालीं च सिद्धार्थगुटिकां कारयेदबुधः। मुखनिक्षेपमात्रेण सर्वलोक-वशङ्करः।।

बुद्धिमान साधक देवदाली तथा सिद्धार्थ (पीली सरसों) की गुटिया बनाकर उसे मुख में डालकर समस्त संसार को वश में कर लेता है।

कुंकुमं तगरं कुष्ठं हरितालं मनःशिलां। अनामिकाया रक्तेन तिलकः सर्ववश्यकृत्।।

कुंकुम, तगर, कूठ, हरिताल तथा मैनसिल को अनामिका अंगुली के रक्त से मिलाकर तिलक लगाते ही साधक सभी को वश में कर लेता है।

गोरोचनं पद्मपत्रं प्रियंगु रक्तचन्दनम्। एकी कृत्य जपेन्मन्त्रं सर्वलोक-वशङ्करम्।।

गोरोचन, पद्मपत्र, प्रियंगु तथा रक्तचन्दन को एकत्र कर मन्त्र का जप करने से साधक सर्वलोकों को वश में कर लेता है।

गृहीत्वा श्वेतगुञ्जायाच्छायाशुष्कं तु कारयेत्। कपिलापयसार्द्धेन तिलको लोकवश्यकृत्।।

श्वेतगुंजा को लेकर उसे छाया में सुखा ले। उनका आधा कपिला गाय का दूध उसमें मिलाकर तिलक बनाने से साधक समस्त लोकों को वश में करने वाला होता है।

तन्मूलं पत्रताम्बूलं सर्वलोकवशङ्करम्। तन्मूलाल्लेपयेद्देहं सर्वलोकवशङ्करः।।

श्वेतगुंजा की जड़ तथा उसके पत्तों को ताम्बूल के साथ खाने से साधक सर्वलोकों को वश में करता है। श्वेतगुंजा की जड़ को देह में लेप लगाना भी सर्वलोकवश्यकारी है।

श्वेतदूर्वां गृहीत्वा तु कपिलाक्षीरपेषिताम्। तल्लेपनाद्भवेन्मन्त्री सर्वलोक-वशङ्करः।।

सफेद दूब को लेकर कपिला गाय के दूध में पीस ले। इस लेप को लगाकर साधक सर्वलोकों को वश में करता है।

श्वेतार्कं वै गृहीत्वा तु छायाशुष्कं तु कारयेत्। कपिलापयसार्द्धेन तिलकः सर्ववश्यकृत्।।

सफेद मदार को लेकर छाया में सुखाकर उससे आधा कपिला गाय का दूध उसमें मिलाकर उससे तिलक लगाना सर्वलोकवश्यकारी होता है।

बिल्वपत्राणि संगृह्य मातुलिङ्गं तथैव च। अजादुग्धेन संपेष्य तिलको लोकवश्कृत्।।

बिल्वपत्र तथा बिजौरा नीबू एकत्र करके बकरी के दूध में पीसकर तिलक लगाना सर्वलोकवश्यकारी होता है।

कौमारीकंदमादाय विजयाबीजसंयुतम्। तिलकं धारयेद्भाले सर्वलोक-वशङ्करम्।।

हरताल, अश्वगन्धा, सिन्दूर तथा केले का रस एकत्र पीसकर तिलक करना सर्वलोकवश्यकारी है।

अपामार्गस्य बीजानि छागीदुग्धेन पेषयेत्। तल्लेनाद्भवेन्मन्त्री सर्वलोक-वशङ्करः।।

अपामार्ग के बीच को बकरी के दूध के साथ पीसकर लेप बनाये। इस लेप को धारण करने से साधक समस्त लोकों को वश में करता है।

हरितालं च तुलसी कपिलादुग्धपेषिता। अनेन तिलको भाले सर्वलोक-वशङ्करः।।

हरताल तथा तुलसी को कपिला गाय के दूध से पीसकर ललाट पर तिलक लगाना समस्त लोकों को वश में करनेवाला है।।७६।।

धात्रीफलरसे भाव्यमष्टगन्धं मनःशिला। अनेन तिलको भाले सर्वलोक-वशङ्करः।।

आँवले के रस में अष्टगन्ध और मैनसिल को पीसकर भाल पर तिलक लगाना समस्त लोकों को वश में करने वाला है।

राजावशीकरण तन्त्र

यह २८ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमो भास्कराय त्रिलोकात्मने अमुकं महीपतिं मे वश्यं कुरुकुरु स्वाहा। इत्यष्टाविंशत्यक्षरो मन्त्रः।

अष्टोत्तरशतजपात् सिद्धिः। एतस्मिन्सिद्धे मन्त्रे मन्त्री तन्त्राणि कुर्यात्। तथा चः ईश्वर उवाच। कुंकुमं चन्दनं चैव कर्पूरं तुलसीदलम्। गोक्षीरघर्षितं तस्य तिलको राजमोहनः।।

१०८ मन्त्र के जप से सिद्धि होती है। इस प्रका मन्त्र के सिद्ध होने पर साधक तन्त्रों को करे। कहा गया है : ईश्वर बोले : कुकुंम, चन्दन, कपूर और तुलसीदल को गाय के घी में घोंटकर तिलक लगाना, राजवशीकरण करता है।

करे सुदर्शनामूलं बध्वा राजप्रियो भवेत्।

हाथ में सुदर्शना की जड़ बाँधकर साधक राजप्रिय हो जाता है।

सिंहीमूलं रहेत् पुष्ये कटिं बध्वा नृपप्रियः। हरितालं चाश्वगन्धा कर्पूरं च मनःशिला। अजाक्षीरेण तिलको राज्यवश्यकरः परः।।

पुष्य नक्षत्र में सिंही (भटकटैया) की जड़ को कमर में बाँधने से मनुष्य राजप्रिय होता है। हरिताल, अश्वगन्दा, कपूर तथा मैनसिल को बकरी के दूध से पीसकर तिलक लगाकर साधक राजा को वश में कर लेता है।

गृहीत्वा सुदर्शनामूलं पुष्यनक्षत्रवासरे। कर्पूरं तुलसीपत्रं पेषयेल्लिप्तवस्त्रके। विष्णुक्रान्तानि बीजानि तैलं प्रज्वाल्य दीपके। कज्जलं पातयेद्रात्रौ शुचिः पूर्व समाहितः कज्जलं चाञ्जयेन्नेत्रे राज्यवश्यकरो भवेत्। चक्रवर्ती भवेद्वश्यो ह्यन्यलोकस्य का कथा।।

पुष्य नक्षत्र में सुदर्शना की जड़ को कपूर और तुलसी के पत्र के साथ पीसकर वस्त्र पर उसका लेप करे। विष्णुक्रान्ता के बीजों को उसमें लपेटकर दीपक में

तेल डालकर रात में पवित्र और शान्तचित्त हो उसका बत्ती जलाकर काजल पारे। उस काजल को आँख में लगाने से साधक राजा को वश में करता है! इससे चक्रवर्ती राजा भी वश में हो जाता है, फिर अन्य लोगों की बात ही क्या?।

अपामार्गस्य बीजानि गृहीत्वा पुष्यभास्करे। खाने पाने प्रदेयानि राजवश्य कराणि हि।।

पुष्य नक्षत्र में रविवार को अपामार्ग के बीजों को लेकर उसे खान-पान में देना चाहिये। ये बीज राजा को भी वश में करनेवाले हैं।

पति वशीकरण तन्त्र

यह १६ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमो महायक्षिणि पतिं मे वश्यं कुरुकुरु स्वाहा। इत्येकोनविंशत्यक्षरो मन्त्रः।

अष्टोत्तरशतजपात् सिद्धिः। एतस्मिन्सिद्धे मन्त्रे मन्त्री तन्त्राणि कुर्यात्। तथा चः ईश्वर उवाच। गोरोचनं योनिरक्तं कदलीरससंयुतम्। एभिस्तु तिलकं कृत्वा स्वपतिं वशमानयेत्।।

१०८ जप से सिद्धि होती है। इस मन्त्र के सिद्ध होने पर साधक तन्त्रों को सिद्ध करे। कहा भी गया है ईश्वर बोले : गोरोचन और योनिरक्त को केले के साथ मिलाकर तिलक करने से नारी अपने पति को वश में करती है।

पञ्चाङ्गदाडिमीं पिष्ट्वा श्वेत सर्षपसंयुताम्। योनिलेपात्पतिं दासं करोत्यपि च दुर्भगा।।

अनार के पंचांग को पीसकर श्वेतगुंजा तथा सरसो के साथ योनि में लेप करके दुर्भगा नारी भी पति को दास बना लेती है।

जिह्वामलं लवङ्गं च खाने पाने प्रदापयेत्। पतिवश्यकरं देव पतिर्दासस्तु जायते।

जिह्वा का मैल तथा लौंग खान-पान में दे। हे देव! यह पति को वश में करनेवाला है। इससे पति दासवत हो जाता है।

स्त्रीवशीकरण तन्त्र

दत्तात्रेय तन्त्र में २० अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमः कामक्षीदेवि अमुकीं मे वश्यां कुरुकुरु स्वाहा। इति विंशत्यक्षरो मन्त्रः।

अष्टोत्तरशतजपात् सिद्धिः। एतस्मिन्सिद्धे मन्त्रे मन्त्री तन्त्राणि साधयेत्। तथा चः रविवारे गृहीत्वा तु कृष्णधत्तूर पुष्यकम्। शाखालतां गृहीत्वा तु पत्रं मूलं

तथैव च। पिष्ट्वा कर्पूरसंयुक्तं कुंकुमं रोचनं समम्। तिलकेन वशे कुर्याद्यदि साक्षादरुन्धती।।

१०८ बार जप से मन्त्र सिद्ध होता है। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से साधक तन्त्रों को सिद्ध करे। कहा भी गया है कि रविवार को काले धतूरे का फूल, शाखा, लता, पत्र और मूल लेकर उसमें कपूर, कुंकुम तथा गोरोचन समान भाग डालकर पीसे। इस लेप का तिलक लगाकर मनुष्य स्त्री को वश में कर लेता है चाहे वह साक्षात् अरुन्धती ही क्यों न हो।

अथाकर्षण तन्त्र

यह २१ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नम आदिरूपाय अमुकस्याकर्षणं कुरुकुरु स्वाहा। इत्येकविंशत्यक्षरो मन्त्रः। अष्टोत्तरशतं जपेत्। सिद्धिर्भवति। एतस्मिन्सिद्धे मन्त्रे मन्त्री तन्त्राणि कुर्यात्। तथा च। ईश्वर उवाच। आकर्षणविधिं वक्ष्ये शृणु सिद्धिं प्रयत्नतः। राज्ञां प्रजानां सर्वेषां सत्यमाकर्षणं भवेत्।

१०८ बार जप से सिद्धि होती है। इस मन्त्र के सिद्ध होने पर साधक तन्त्रों को करे। कहा भी गया है: ईश्वर बोले: मैं आकर्षणविधि को कहता हूँ, प्रयत्नपूर्वक उसे सुनो। इससे राजा तथा प्रजा सबका आकर्षण होता है।

कृष्णाधत्तूरपत्रस्य सरोचनरसेन तु। श्वेतकर्वीरलेखन्या भूर्जपत्रे लिखेन्मनुम्। यस्य नाम लिखेन्मध्ये खदिराङ्गारतापितम्। शतयोजनमायाति नान्यथा शङ्करोदितम्।।

काले धतूरे के पत्ते के रस के साथ गोरोचन को पीस कर उस रंग से सफेद कनेर की कलम से भोजपत्र पर उक्त मन्त्र को लिखे। मन्त्र के 'अमुकस्य' पद के स्थान पर साध्य का नाम लिखे। फिर खैर के कोयले पर उसे तपाने पर सौ योजन दूर रहने वाला भी साधक को पास आ जाता है। शंकर का यह कथन अन्यथा नहीं हो सकता।

पगच्छेदन

मन्त्र—**ॐ नमो गण्डियाभैरो गलत हाथ माथे गघरी मसकदारू जहां भेजूं तहां जाय अमुकाकी गांड मार गांड में लोही चलाव न चलावै तो लोनाचमारीकी कुण्ड में जाय फुरो मन्त्र फट् स्वाहा। इति मन्त्रः।**

सवासेर मद्य, सवा पाव काला उहद, तिल दो पैसे भर—इन सबको भैरव को भेंट देकर सर्प की हड्डी की माला से नित्य ५०० मन्त्र का जप करने से बैरी की गुदा से रुधिर गिरने लगेगा।

एक अन्य ३८ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ सूर्यवरण निर्मल तारा साहीका कांटा नीबू मांरा अक्काससे तारा टूटा अमुकिया तेरा पैर छूटा।

रविवार, शनिवार या मंगलवार को अर्धरात्रि के समय कुएँ में पैर लटकाकर नंगा बैठ जाय और मुख उस ओर करे जिधर वांछित स्त्री का घर हो। बायें हाथ में नीबू और दाहिने में सेहनर (नर साही) का काँटा लेकर आकाश की ओर देखता हुआ मन्त्र पढ़ता रहे जब तारा टूटने लगे तब मन्त्र द्वारा उस काँटे को नीबू के भीतर इस प्रकार चुभाये कि काँटा केवल आधे नीबू में चुभे, पार न हो। पार ही जाने पर प्राणनाशक का भय होता है। यह कृत्य करने से स्त्री को तत्काल रुधिर गिरने लगेगा, इसमें सन्देह नहीं है। उस नीबू को लाकर जल के समीप शीतल स्थान में रखने से रुधिर गिरता रहेगा। परन्तु उसका शरीर क्षीण नहीं होगा। किन्तु यदि उस नीबू को धूप में रक्खे तो शरीर भी सूखने लगेगा। उक्त प्रकार से तारा टूटने पर ही काँटे को नीबू के बाहर निकालकर नीबू के छिद्र को किसी वस्तु से बन्द करने से रुधिर का निकलना बन्द होकर आराम होगा।

कुछ अन्य प्रयोग

मन्त्र—**उलटा पुलटा नारा चलै, अर्जुन मारा बान। अमुकिया तेरा गर्भ चलै, कंसासुरकी आन। इति मन्त्रः।**

सफेद फूलवाले हुलहुल के १२१ बीजों को १२१ मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करके पान में रखकर मुंह में चबाये और पीक थूके। जो स्त्री उस पीक का उल्लंघन करेगी उसको (योनि से) रक्त गिरने लगेगा। फिर उस पान सिट्टि खिला देने से रुधिरस्राव बन्द हो जायगा यह सर्वथा सत्य है।

मन्त्र—**ॐ हकालूं चौंसठ योगिनी हकालूं बावन वीर घस घट लोही झिरै नैर झिरै वानी मरैरे रक्तिया वीर हियो धरै ना धीर रक्तियो रक्तियो रङ्गकी रक्तियो मांगै मासकी बड़ी चावै चणा चलावै पीड़ मसाणकी माटी भौराके बिलमें लपेटी जिस्के ऊप करूं सही स्त्री झरती दीखै शब्द साचा पिण्डकाचा चलो मन्त्र ईश्वरोवाचा। इति मन्त्रः।**

श्मशान की ७ कंकड़ियाँ लेकर कूएँ के जगत् के ऊपर २१ बार अभिमन्त्रित करके धूप दे और उनसे स्त्री को मारे। इससे उसको रक्तस्राव होने लगेगा—यह सत्य है।

मन्त्र—**ॐ नमो आदेस गुरुको काला कलवां तूं अवधूत हकालूंगा दडाव लाऊ भूत हाड काट चटपटी लगाव छाती छोल पैर चलाव हिये पैठि हूल चलाव चलावचलवा रे कालाभैरूं कालिकाके पूत चलावेगी हुकम साथ न चलावै तो माता चामुण्डाका तीर चूकै। इति मन्त्रः।**

रविवार के दिन काला चिड़ा पकड़े, रेशम का सवा दो हाथ का और सूत

का दो हाथ का डोरा बनावे। दो दीपक—एक घी का और दूसरा तेल का जलावे। तेल के दीपक में ढाई पाव तेल और घी के दीपक में सवा पाव घी डाले। सवा पैसा भर उड़द घी के दीपक में डाले, सवा पैसा भर उड़द और उक्त सूत का डोरा (धांगा) तेल के दीपक में डाले और मन्त्र पढ़े।

रेशम के डोरे से चिड़े को फाँसी लगावे और गला काट डाले, जो रक्त गिरे उसे तेल के दीपक में एकत्र करे। चारों पहरों में सात-सात मन्त्र पढ़े और गूगल की धूप देता जाय। जब रात व्यतीत होने पर दिन निकल आये तब सिद्ध हुआ जानना चाहिये। फिर तेल के दीपक की १ उड़द सात बार अभिमन्त्रित करके जिस स्त्री को मारा जाय और रेशम का डोरा स्पर्श कराया जाय उसको रक्तस्राव होने लगेगा। घी के दीपक का उड़द उसे देने से रक्तस्राव शान्त होगा।

४. सत्यानासी का बीज २ माशा और चीनी ४ माशा खिलाने से मासिक धर्म के पूर्व ही रक्तस्राव होने लगेगा इसमें सन्देह नहीं है। यह सिद्ध प्रयोग है।

५. खटमल में दो विशेष गुण हैं। उसे नीचे-ऊपर के दो भागों में विभक्त करके यदि नीचे के भाग को स्त्री को खिला दिया जाय तो तत्काल रक्तास्राव होने लगेगा। फिर ऊपर के भाग को खिला देने से रक्तस्राव रुक जायगा।।१४।।

६. कौवे की चोंच से रविवार को मार्ग में रेखा खींच दे। यदि स्त्री उस रेखा का उल्लंघन करेगी तो उसको रक्तस्राव होने लगेगा। फिर उसी चोंच को धोकर उसके धोवन को पिलाने से रक्तस्राव बन्द होगा।

शत्रु मूत्रबन्धन मन्त्र

भौमवारे गृहीत्वा तु मृत्तिकां रिपुमूत्रतः। कृकलाया मुखे क्षिप्वा कंकवृक्षे च बन्धयेत्।। मूत्रबन्धो भवेत्तस्य उद्धृते तु पुनः सुखी। बिना मन्त्रेण सिद्धिः स्यात्सिद्धियोगः उदाहृतः।।

मंगलवार को शत्रु द्वारा मूत्रत्याग किये स्थान की मिट्टी लेकर गिरगिट के मुख में डालकर उसे धतूरे के वृक्ष से बाँध दे तो शत्रु का मूत्रबन्धन हो जायगा। उसको खोल देने से पुन: शान्ति होगी। इसमें बिना मन्त्र के ही सिद्धि होती है यह सिद्ध योग कहा गया है।

बुदे वा शनिवारे वा कृकलां गृह्य यत्नतः। शत्रुर्मूत्रयते यत्र कृकलां तत्र निक्षिपेत्। निखनेद्भूमिमध्ये च उद्धृते च पुनः सुखी। नपुंसको भवेत्सत्यं नान्यथा शङ्करोदितम्।।

बुधवार को या शनिवार को गिरगिट को यत्न से पकड़ ले। शत्रु जहाँ मूतता हो वहाँ गिरगिट को खोदकर गाड़ दे तो शत्रु का मूत्र—बन्ध होगा। गिरगिट को

निकाल लेने से सुखी होगा। इससे शत्रु नपुंसक भी हो जाता है—यह शंकर का कथन असत्य नहीं हो सकता।

प्राकृत ग्रन्थ का प्रयोग : रविवार के दिन मरे हुए छछून्दर की खाल में शत्रु के मूत्र की मिट्टी भरकर ऊँचे स्थान में लटकाने से मूत्र बन्द हो जाता है और वह गूंगा तथा पागल हो जाता है। उस मिट्टी को छछून्दर की खाल से निकाल देने से सुख होता है। शत्रु के मूत्र में बिच्छू का डंक गाड़ने से भी शत्रु को अत्यन्त पीड़ा होती है। फिर डंक निकालने से शान्ति होती है।

शत्रुशिरसि पादुकाहनन

मन्त्र—**ॐ नमो हनुमन्त बलवन्त माता अञ्जनी पुत्र हलहलन्त आवो चढन्त आवो गढ़किला तोड़न्त आवो लङ्का जालि वालि भस्मकरि आवो ले लङ्का लंगूरते लपटाते सुमेरते पटकावो चन्द्री चन्द्रावली भवानी मिलगावो मङ्गलचार जीते राम लक्ष्मण हनूमानजी आवोजी तुम आवो सात पानका बीडा चावत मस्तक सिन्दूर चढ़ावो आवो मन्दोदरीके सिंहासन डुलन्ता आवो यहां आवो हनुमान आया जागते नृसिंह माया आगे भैरूं किलकिलाय ऊपर हनुमन्त गाजै दुर्जनको डार दुष्टको मार संहार राजा हमारे सतगुरु हम सतगुरुके बालका गुरुकी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा। इति मन्त्रः।**

मन्त्र की सिद्धि के लिये २१ दिन या ४१ दिन में दश हजार जप करे, पान का बीड़ा तथा मोदक का भोग लगावे, नैवेद्य द्वारा हनुमान्‌जी का पूजन करे और सिन्दूर तथा सुगन्धित पुष्प चढ़ावे। फिर भूमि पर शत्रु की एक प्रतिमा बना कर यथोचित बीजों को लिखे। उसके वक्ष पर शत्रु का नाम लिखकर उस पर मन्त्र से दो जूते मारे। यदि प्रतिमा के सर पर जूता मारा जाय तो शत्रु का सर फूट जाता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और वह पागल हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं है।

शत्रुपीडन

मन्त्र—**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिपुरभैरव त्रिपुरवीर मम शत्रोरमुकस्य पीडां कुरुकुरु स्वाहा। इति मन्त्रः।**

वृश्चिक के चन्द्रमा में गधे की खाल पर नीचे दिये तन्त्र को लिखे। उसमें नीचे शत्रु का नाम और उसकी माता का नाम लिख कर यन्त्र को गूगल की धूप देकर १०८ बार मन्त्र पढ़कर शत्रु के चौखट के नीचे या आँगन में अथवा मार्ग में गाड़ दे। जब शत्रु इस मन्त्र का उल्लंघन करेगा तो उसे अत्यन्त पीड़ा होगी अथवा शत्रु के पाँव के नीचे की मृत्तिका को सात करेलियों में भरकर प्रत्येक करेलों के ऊपर सात बार मन्त्र पढ़कर चरखे के टेकुये में पिरोये और फिर उन्हें अग्नि में तपाये। इससे बैरी को अवश्यमेव अत्यन्त कष्ट होगा।

मन्त्र—ॐ कालाभैरूं झङ्कालका तीर मार तोड दुश्मनकी छाती धोर हाथ कलेजो काढ बत्तीस दांत तोड यह शब्द नाचलै तो खड़ी योगिनी का तीर छूटै गुरूकी शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा सत्यनाम आदेश गुरूको। इति मन्त्रः।

कनेर का २१ फूल और गूगल की २१ गोली सरसों के तेल सहित मन्त्र पढ़-पढ़कर होम करे तो ११ दिन अथवा २१ दिन में शत्रु को पीड़ा प्राप्त होगी।

मन्त्र—ॐ नमो आदेश गुरूको लाल पलङ्ग औरङ्गी छाया काढ कलेजा तूही चख। इति मन्त्रः।

चौका देकर दीपक जलावे और तीन बार कहे कि 'आओ महावीर पहलवान हनुमान्जी।' फिर तीन बार कहे 'आओ कलुवा वीर रणधीर।' ऐसा कहने के बाद गूगल की धूप देकर नैवेद्य चढ़ावे, नित्य १ हजार मन्त्र पढ़े तथा घी, लौंग, सुपारी, जायफल, गूगल और मिश्री का १२५ बार होम करे। ऐसा करने से ११ दिन में सिद्धि होती है। फिर ब्राह्मण भोजन कराकर २१ दिन तक प्रतिदिन मन्त्र का १ हजार जप करें तो शत्रु का नाश होता है।

एक अन्य प्रयोग

मन्त्र—ॐ नमो आगिया वैताल पैठ सातवें जाहु पाताल लावो अग्निकी जलती झाल बैठजाहु ब्रह्माके कपाल पहेरौ लाल फूलकी माल चडौ ठोकके अपनी ताल चलौ चलौ जलावो आग न जलावो तो माता कालिकाकी आन। इति मन्त्रः।

होली से आरम्भ करके मन्त्र का १ लाख जप करके मछली का नैवेद्य लगाने और गन्धक का धूप देने से मन्त्र सिद्ध होता है। फिर जहाँ आग प्रकट करनी हो वहाँ मन्त्र पढ़कर फूंक मारने से आग प्रकट करनी हो वहाँ मन्त्र पढ़कर फूंक मारने से आग प्रकट होती है।

मूठचालन मन्त्र

मन्त्र—ॐ नमो कालाभैरों मसाणवासा चौसठ जोगनी करै तमासा उड़दकी मुट्ठी रक्तावाण चल रे भैरों कचियामसाण मै कहूं तोसों समझाय सवापहेरमें धुवा दिखाय मूवा मुरदा मरघटवास माता छोडै पुत्रकी आस जलती लकड़ी धिकै मसाण भैरों मेरा वैरी तेरा खान सेलीसिङ्गी रुद्रबाण मेरे वैरीको नहीं मारै तो राजारामचन्द्रलक्ष्मणजतीकी आन शब्द साचा पिण्डकाचा फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा। इति मन्त्रः।

किसी मुर्दे को देखकर श्मशान में जाकर उसकी हड्डी लेकर चिता में खूब

लाल करे और उसमें एक मुट्ठी उड़द डाले दे। इन उड़दों में जो जल जायँ उन्हें अलग कर ले और जो खिल जाय उन्हें अलग कर ले जले उड़दों पर २१ बार मन्त्र पढ़कर प्रात:काल बिना मुंह धोये शत्रु को मारे तो वह यमलोक चला जायगा।

सर्वकार्य सिद्धि भैरव मन्त्र प्रयोग

मन्त्र—**ॐ काली कङ्काली महाकालीके पुत्र कङ्कालभैरुं हुकम हाजिर रहै मेरा भेजा काज करै मेरा भेजा रक्षा करै आन बान्धूं वान बान्धूं चलते फिरतेके औसान बान्धूं दसोंसुर बान्धूं नौ नाड़ी बहत्तर कोठा बान्धूं फलमें भेजूं फूलमें जाय कोठे जो पड़ै थरथर कांपै हलहल हलै गिरगिर पड़ै उठउठ भागै बकबक बकै मेरा भेजा सवाघड़ी सवापहेर सवादि सवामास सवावरसकूं बावल न करै तो माता कालीकी शय्यापर पग धरै वाचा चूकै तो ऊभा सूखै वाचा छोड़े कुवाचा करै तो धोबीकी नाद चमारके कुण्डेमें पड़ै मेरा भेजा बावल न करै तो रुद्रके नेत्रसे अग्निकी ज्वाला कढै सिरकी लटा टूटि भूमिमें गिरै माता पार्वतीके चीरपर चोट पड़ै विना हुकुम नहीं मारना हो कालीके पुत्र कङ्कालभैरू फुरो मन्त्र इश्वरोवाचा सत्य नाम आदेस गुरूको। इति मन्त्रः।**

कालरात्रि अथवा ग्रहण की रात्रि को तिकोना चौका लगाकर दक्षिणमुख बैठे और लाल कनेर के फूल, मोदक, सिन्दूर, लौंग का जोड़ा तथा चौमुखा दीपक रखकर इस मन्त्र का १ हजार जप तता दशांस हवन करे। जब भयङ्कर स्वरूप में भैरव सम्मुख आवे तब भयभीत न हो और तत्काल फूलों की माला उसके गले में डालकर मोदक अर्पण करे। इससे भैरव प्रसन्न हो जायगा और फिर उससे जो कार्य कहा जाय वह तत्काल कर देगा।

कुछ अन्य प्रयोग

२७ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है।

मन्त्र—**ॐ नमो भगवति दुर्वचने किलिकिलि वाचोभञ्जिनि मुखस्तम्भिनि स्वाहा। इति सप्तविंशत्यक्षरो मन्त्रः।**

इसके जपमात्र से सभी के मुख का स्तम्भन होता है।।२।।

मन्त्र—**ॐ नमो याचली याचली उस्का चश्मा कुलफ उस्का बाजू कुलफ दुश्मनको जेर कर हमको सेर। इति मन्त्रः।**

हनुमानजी का विधिपूर्वक पूजन करके मन्त्र का १ हजार जप और १ हजार गूगल की गोली का होम करने से सिद्ध होता है। तदुपरान्त सात बार मन्त्र पढ़कर शत्रु की ओर फूंके तो वह बड़बड़ाने नहीं पावेगा।

मन्त्र—**ॐ अलफ अलफ अलफ दुसमनके मुहमें कुलफ मेरे हाथ कुञ्जी रूपा तेरे कर दुश्मन जेर कर। इति मन्त्रः।**

शनिवार की रात्रि में घृत का दीप जलाकर फूल, बताशा चढ़ाकर गूगल की १ हजार आहुति देने से मन्त्र सिद्ध होता है। फिर हाकिम के सामने १०८ बार मन्त्र पढ़कर शत्रु की ओर फूंक मारकर यदि उससे बात किया जाय तो वह बोल नहीं सकेगा। यदि आवेदन पत्र पर १०८ बार पढ़कर लोहबान की धूप देकर वह आवेदन पत्र अधिकारी को दे तो निश्चित रूप से मनोरथ सिद्ध होगा।

मन्त्र—**ॐ ह्रीं श्रीं खेतलवीर चोसठयोगिनी प्रतिहार मम शत्रू अमुकस्य मुखबन्धनं कुरुकुरु स्वाहा। इति मन्त्रः।**

घी, शहद और मद्य की १ हजार आहुतियाँ देकर लोहे की ४ अंगुल की कील श्मशान में गाड़ने से शत्रु का मुख स्तम्भन हो जाता है।

मेघ स्तम्भन

यह १६ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ हूं ह्रीं क्षं क्षां क्षिं क्षीं क्षुं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः हूं फट् ठः ठः। इत्येकोनविंशत्यक्षरो मन्त्रः।

पूर्वाभिमुखो भूत्वा लक्षं जपेत्। वैश्वानरसमीपे वेतसमिदा घृताक्तयाऽयुतं जुहुयात्। सिद्धो भवति। पुनः मन्त्रं पठित्वा मेघावलोकनेन सर्वे मेघाः प्रणश्यन्ति वासवो न वर्षन्ति। नदीं समुद्रगां शोषयति। मेघशब्दो न भवति। उदकमध्ये स्थित्वा जपेत्। आनावृष्टिर्भवति।।

पूर्वाभिमुख होकर एक लाख जप और अग्नि मेंघी से सिक्त बेंत की समिधा का दश हजार होम करे। इससे मन्त्र सिद्ध होता है। पुनः मन्त्र पढ़कर मेघ को देखने से सभी मेघ नष्ट हो जाते हैं और इन्द्र वर्षा नहीं करते। यहाँ तक कि समुद्रगामिनी नदियों को साधक सुखा देता है और मेघों का गर्जन बी नहीं होता। पानी में खड़े होकर जप करने से अनावृष्टि के समय वर्षा होती है।

सेना स्तम्भन

२८ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमः कालरात्रि त्रिशूलधारिणि मम शत्रुसैन्यस्तम्भनं कुरुकुरु स्वाहा। इत्यष्टाविंशत्यक्षरो मन्त्रः।

अष्टोत्तरशतजपात्सिद्धिः। एतस्मिन्सिद्धे मन्त्रे मन्त्री तन्त्राणि कुर्यात्।

१०८ मन्त्र जप से सिद्ध होती है। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से साधक तन्त्रों को करे।

स्नापलायन

यह २६ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमो भयङ्कराय खड्गधारिणे मम शत्रुसैन्यं पलायनं कुरुकुरु स्वाहा। इत्येकोनत्रिंशदक्षरो मन्त्रः।

अष्टोत्तरशतजपात्सिद्धिः। एतस्मिन्सिद्धे मन्त्रे मन्त्री तन्त्राणि कुर्यात्।

१०८ जप से सिद्ध होती है। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से साधको तन्त्रों को करे।

अग्नि स्तम्भन

निम्नलिखित मन्त्र को बजनपत्र पर पीले द्रव्य से लिखकर पूजा करे। फिर इसे भूमि में गाड़कर पानी की धार डालता रहे। इससे घर में अग्नि का भय नहीं रहता।

यह २१ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमोऽग्निरूपाय मम शरीरे स्तम्भनं कुरुकुरु स्वाहा। इत्येकविंशत्यक्षरो मन्त्रः। अष्टोत्तरशतजपात् सिद्धिः एतस्मिन्सिद्धे मन्त्रे मन्त्री तन्त्राणि कुर्यात्।

१०८ मन्त्रजप से सिद्धि होती है। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से साधक तन्त्रों को करे।

कुछ अन्य प्रयोग

१. प्राकृत ग्रन्थ में मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ वज्रयोगिनी वज्रकिवाड़, वजरी बांधू दसूं दुवार। झाड़ो झड़ै न लिङ्गी करै, तो वज्रजोगनीका वाचा फुरै।

२. अन्य मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमो आदेस गुरूको चार घाटी चार वटी रक्त चुवै चोरासी घाटी रक्त चुवै भील धीर थांभ हनुमन्त वीर लङ्कासा कोट समुदरसी खाई इस नारीके रक्त चुवै तो सोषिया वीरका दुहाई लूणा चमारीका दुहाी अजैपाल जोगीकी दुहाई लूंणा चमारीकी दुहाई अजैपाल जोगीकी दुहाई इति मन्त्रः।

उक्त दोनो मन्त्रों का विधान समान है।

कुमारी कन्या का काता हुआ ढाई पूणी सूत लेकर उसका डोरा बनाकर मन्त्र द्वारा सात गाँठ देकर उसे कमर में बाँधने से गर्भपात रुक जाता है। यह सत्य है।

पदस्तम्भन

मन्त्र—**ॐ नमो आदेस गुरूको चार आंटी चार वाटी नीर चढ़ै चौरासी घाटी आवै नीर भीजै चीर बांधगाय सोखता वीर सोखता वीर लङ्का वसै सोला कुण्डा रक्तका भर्षै शब्द सांचा पिण्ड काचा फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा। इति मन्त्रः।**

आधी रात को मन्त्र पढ़कर २१ बार लोहबान जलावे। २१ दिन तक ऐसा करने से सिद्धि होती है। फिर कुमारी कन्या द्वारा काते सूत का डोरा बनाकर कमर में बाँधने से पदस्तम्भन होता है।

यह २६ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ नमो नारायणाय अमुकं अमुकेन सह विद्विष्टं कुरुकुरु स्वाहा। इति

षड्विंशत्यक्षरो मन्त्रः। अष्टोत्तरशतजपात्सिद्धिः। एतस्मिन्सिद्धे मन्त्रे मन्त्री तन्त्राणि कुर्यात्।

१०८ बार जप से सिद्धि होती है और सिद्ध मन्त्र से साधक तन्त्रों को करे। प्राकृत ग्रन्थ में मन्त्र इस प्रकार है :

ॐ बारा सरसो तेरा राई यारकी मारी मसाणकी छाई पढ़के मारू कर दलवार अमुका कढ़ै न देखै अमुकीका द्वार मेरी भक्ति गुरूकी शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरोवाचा सत्य नाम आदेस गुरूको। इति मन्त्रः।

सरसों, राई और श्मशान की भस्म इन तीनों को मङ्गलवार के दिन आक की लकड़ियों की अग्नि में १०८ बार होम करे। इस होम की भस्म को स्त्री या पुरुष के द्वार पर डाल दे तो दोनों में अवश्य बैर भाव उत्पन्न हो जायगा।

एक अन्य मन्त्र इस प्रकार है :

सत्य नाम आदेस गुरूको आकढाक दोनों वन राई अमुका अमुकी ऐसी करै जैसे कूकर और विलाई। इति मन्त्रः।

शनिवार से प्रारंभ करके ७ दिन इस मन्त्र को आक के पत्तों पर लिख अर्ध रात्रि के समय प्रत्येक पत्ते को सात मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके ढाक की लकड़ी के अङ्गारों में जलावे तो साध्यों के बीच अवश्य बैर भाव उत्पन्न हो जाता है।

कुछ अन्य प्रयोग

वस्त्र पुर्षसिलवालमें हरिया मङ्गलके दिन जारै। तेहिकी राख खवावै उनको वैर बन्धै या मारै।। गधामुत्र लेवै शनिरविदिन, धरतीपड़न न पावै। तामें राई रखे तीन दिन, फिरले ताहि सुखावै। रविदिन धूनी दे लेजावै, जहांमित्र दोपावै। उनके मध्य डारकर आवै, वैरबाव होजावै।।

मन्त्र—**ॐ नमो भगवति श्मशानकालिके अमुकममुकेन सह विद्वेषय विद्वैषय हनहन पचपच मथमथ हुं फट् स्वाहा। इति मन्त्रः।**

इस मन्त्र से कड़वा तेल में नीम के पत्ते, तिल और चावल मिलाकर होम द्रव्य तैयार करे। फिर श्मशान की अग्नि से खैर की लकड़ियाँ जलाकर उसमें उक्त द्रव्य की १० हजार आहुतियाँ दे। इससे दो साध्यों में अवश्य बैर भाव उत्पन्न हो जाता है।

व्यापार वृद्धि मंत्र-१

व्यापार का दैनिक कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व यदि इस मंत्र का १०८ बार उच्चारण करके दुकान खोलें और व्यापार का दैनिक कार्य प्रारम्भ करें तो उस दिन ब्रिकी बढ़ती है और किसी प्रकार का कोई उपद्रव या परेशानी नहीं आती। इस मंत्र

को सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। नित्य दुकान खोलने से पूर्व एक माला जपना ही पर्याप्त है।

श्री लुल्ले महाशुक्ले कमलदल निवासे महालक्ष्म्यै नमः लक्ष्मी माई सत्य की सवाई आवो माई करो भलाई, ना करो तो समुद्र की दुहाई ऋद्धि-सिद्धि खावोमीट तो नौ नाथ चौरासी सिद्धों की दुहीई।

व्यापार वृद्धि मंत्र-२

भंवरवीर तू चेला मेरा खोल दुकान कहा कर मेरा उठै जो डंडी बिकै जो माल भंवरवीर की सौंह नहि खाली जाय।

बिक्री बढ़ाने के लिए यह अनुभूत मंत्र है। इसका प्रयोग केवल रविवार के दिन ही माना जाता है और ३ रविवार तक लगातार करने से सफलता मिलती है। प्रयोग इस प्रकार से है कि काले उड़द को २१ बार अभिमंत्रित कर व्यापार स्थल पर डालें। बिक्री में वृद्धि होगी।

व्यापार बंधन मुक्ति का मंत्र

कभी-कभी अचानक ही व्यवसाय चौपट होता हुआ प्रतीत होता है। सम्भव है धन्धे की बरकत तन्त्र-तन्त्र से बाँध दी गई हो। अगर ऐसा हो तो इस मन्त्र का प्रयोग किया जाना चाहिए। तुरंत लाभ मिलने लग जाता है।

" ओम नमो आदेश गुरू को वावन वार चौसठ सातऊ कलवा पांचऊ वड़वा जिन्न भूत परीत देव दानव दुष्ट मुष्ठ मैली मशाण इन्हीं को कील कील नजर दीठ मूँठ टोना टारे लोना चमारी गाजे या धन्धे दुकान की बरकत को बन्धन न छुड़ावे तो माता हिंगलाज की दुहीई।"

विधि—नवरात्रि में एक हजार जप से उक्त मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्धि के समय धूप जलाना चाहिए। मन्त्र सिद्धि के बाद बालकों और कन्याओं को भोजन कराना चाहिए।

बंधित दुकान में पाँच नीबुओं को इस मन्त्र से २१ बार अभिमन्त्रित कर एक सूत्र में पिरो कर दुकान में टाँगना चाहिए। सरसों के कुछ दानों पर २१ मन्त्र पढ़कर दुकान में डालें।

रोजगार बाधानाशक एवम् व्यापार वृद्धि कारक मन्त्र

'ओम नमो सात समुद्र के बीच शिला जिस पर सुलेमान पैगम्बर बैठा सुलेमान पैगम्बर के चार मुवक्किल पूर्व को धाया देव दानवों को बाँधि लाया दूसरा मुवक्किल पश्चिम को धाया भूत-प्रेत कूं बाँधि लाया तीसरा मुवक्किल उत्तर को धाया अयुत पितृ को बाँधि लाया चौथा मुवक्किल दक्षिण को धाया डाकिनी शाकिनी को पकड़ि लाया चार मुवक्किल चहुं दिशि धावें छलछिद्र

कोऊ रहन न पावें रोग-दोष को दूर भगावें शब्द सांचा, पिण्ड कांचा, फुरो मंत्र ईश्वरो वाचा।'

यदि किसी का धंधा ठप्प पड़ गया हो, दुकान चलती नहीं हो, व्यवसाय मंदा पड़ गया हो अथवा चलते व्यापार में विघ्न आने लग गये हों तो उक्त शाबर मंत्र का विधिपूर्वक प्रयोग करने से अप्रत्याशित रूप से रोजगार चलने लगा जाता है और व्यापार की समस्त बाधाएं नष्ट हो जाती हैं।

एक बुर्जुग फकीर बाबा ले मुझे यात्रा प्रवास के दौरान रेल में बातचीत के समय विशिष्ट प्रयोग बताया था। उनका कहना था कि यदि पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साध इस प्रयोगल को सम्पन्न कर लिया जावे तों कोई भी ताकत व्यापार को वृद्धि करने से नहीं रोक सकती हैं इस प्रयोग को करने वाले साधक का व्यवसाय दिन-दूनी-रात-चौगनी तरक्की करने लग जाएगा।

प्रयोग इस प्रकार है कि इस कपड़े के चार पुतले बनावें और इस मंत्र को पढ़कर उन चारों पुतलों पर फूंक मारकर उन्हें अभिमंत्रित कर लेवें। तत्पश्चात् अपने व्यावसायिक स्थल के चारों कोनों में एक-एक पुतला उक्त मंत्र को पढ़ते हुए गाड़ देवें। इसके बाद प्रतिदिन प्रातः व्यापार स्थल पर जाने से पूर्व एक माला इस मंत्र की अवश्य जपें।

इस प्रकार करते रहने से रोजगार की समस्त बाधाएँ नष्ट होकर आश्चर्याजनक रूप से व्यापार चल निकलता है यह एक सिद्ध प्रयोग है। इन चमत्कारी पुतलों को प्राप्त करने के लिए आप हमारे केन्द्र से सम्पर्क कर सकते हैं।

धन प्राप्ति का मंत्र-१

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः ध्वः ध्वः स्वाहा।

व्याघ्र चर्म, मृग चर्म अथवा किसी भी चर्मासन पर बैठ कर या किसी नदी या जलाशय के तट पर वट वृक्ष के नीचे बैठकर इस मन्त्रं की साधना करने से साधक को अनायास धन प्राप्त होता है। साधना २१ दिन में एक लाख पच्चीस हजार मंत्र जाप द्वारा ही सम्पन्न की जा सकती है। परंतु मंत्र सिद्ध होने पर अकस्मात् धन प्राप्त होता है। यह निश्चित है।

धन प्राप्ति का मंत्र-२

ॐ सरस्वती ईश्वरी भगवती माता क्रां क्लीं, श्रीं श्रीं मैम धनं देहि फट् स्वाहा।

धन की प्राप्ति में यदि बराबर रुकावट आ रही हो, तो इन मंत्र का एक सौ आठ-आठ बार (१०८) जप ४० दिन तक करें। लक्ष्मी जी प्रसन्न होकर धन देगी,

यदि किसी की उधारी बाकी हो, व्यक्ति की नियत रुपया वापस नहीं देनी की हो, तो इस मंत्र के जप द्वारा व्यक्ति की बुद्धि निर्मल व शुद्ध हो जाती है तथा आपका रुका हुआ रुपया मंत्र बल से मिलने लगता है।

धन प्राप्ति का मंत्र-३

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्मी, महासरस्वती ममगृहे आगच्छ-आगच्छ ह्रीं नमः।

इस मंत्र को दीपावली की रात्रि को कुमकुम या अष्टगंध से थाली पर लिखें तथा उसी रात्रि को १८०० या यथेष्ट जप करें। तो उस वर्ष में साधक बहुत अधिक दौलत या ऋद्धि सिद्धि को प्राप्त करता है, यह अद्‌भुत प्रयोग है।

धन का भंडार प्राप्त करने का मंत्र

ॐ यक्षाय कुबेराय वैश्रवणाय, धन धन्याधिपतये धन धान्य समृद्धि मे देहि दापय स्वाहा।

यह देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर का अमोघ मंत्र है। इस मंत्र के तीन माह तक रोज १०८ बार जाप करे, जाप करते समय एक कौड़ी (धनलक्ष्मी कौड़ी) अपने सन्मुख अवश्य ही रखे। तीन माह बाद प्रयोग पूरा होने पर उस कौड़ी को आप अपनी तिजोरी, गल्ले या लॉकर में स्थापित कर दे। आपके धन का भण्डार हमेशा भरा हुआ रहेगा।

धन वृद्धि करने का मन्त्र

ॐ नमो भगवती पद्म पदमावी ॐ ह्रीं ॐ ॐ पूर्वाय दक्षिणाय उत्तराय आष पूरय सर्वजन वश्य कुरु कुरु स्वाहा।

सिद्धि करने की विधि—विधान पूर्वक दीपावली की रात्रि को सिद्धि कर लें, पत्पश्चात् प्रातः शय्या त्याग से पूर्व एक सौ आठ बार मन्त्र पढ़कर चारों दिशाओं के कोणों में दस-दस बार फूँकें तो साधक को सभी दिशाओं से धन प्राप्ति हो।

अधिक अन्न उपजाने का मन्त्र

"ॐ नमः सुरभ्यः बलजः उपरि परिमिलि स्वाहा"

प्रयोग विधि—सर्वप्रथम इस मन्त्र को दस सहस्त्र बार जाप कर सिद्धि करें, फिर जब प्रयोग करना हो तो जब पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हो तो बहेड़े नामक वृक्ष का बाँदा लेकर एक सौ आठ बार मन्त्र से अभिमन्त्रित करें तथा जिस खेत की उपज बढ़ानी हो उस खेत में गाड़ देने से अन्न की उपज अधिक होती है।

गाय भैंस आदि को दूध बढ़ाने का मन्त्र

"ॐ नमो हुंकारिणी प्रसव ॐ शीतलम्"

प्रयोग विधि—उपरोक्त मन्त्र एक सौ आठ बार पढ़कर पशुओं को चारा खिलाने से दूध की वृद्धि होती है।

अति दुर्लभ निधि दर्शन मन्त्र

"ॐ नमो विघ्नविनाशाय निधि दर्शन कुरु कुरु स्वाहा"

प्रयोग विधि—शुभ दिवस तथा नक्षत्र में इस मंत्र को सहस्त्र बार जप करे, सिद्धि हो जाने पर जब प्रयोग करना हो तब जिस स्थान में धन गड़े होने की सम्भावना हो उस स्थान पर धतूरे के बीज, हलाहल, सफेद घुघुंची, गन्धक, मैनसिल, उल्लू की विष्ठा तथा शिरीष वृक्ष का पंचांग बराबर-बराबर लें सरसों के तेल में पकावें तथा इसी से धूप करने दस सहस्त्र बार मन्त्र का जाप करने से भूत-प्रेत तथा पितृ आदि का साया उस स्थान से हट जाता है और भूमि में गड़ी धनराशि साधक को दृष्टिगोचर होने लगती है।

ऋद्धि करण मन्त्र

ॐ नमो पदमावती पद्मानने लक्ष्मी दायिनी बाछां भूत-प्रेत विंध्यवासिनी सर्व शत्रु संहारिणी दुर्जन मोहनी सिद्ध ऋद्धि वृद्ध कुरु कुरु स्वाहा ॐ नमः क्लीं श्री पद्मावत्यै नमः।

प्रयोग विधि—छार छबीला, कपूर, कचरी, गूगुल, गोरोचन समभाग लें मटर के समान गोलियाँ बनाकर रविवार या शनिवार की आधी रात से जाप प्रारम्भ करें और बाईस दिन तक एक सौ आठ बार मन्त्र जाप करें तथा एक सौ पाँच बार मन्त्र जाप कर हवन करें तथा पूजन में लाल वस्तु ही रखें तथा लाल वस्त्र ही पहने तो बाईस दिन पश्चात् लक्ष्मी जी की अनुकम्पा से ऋद्धि प्राप्त होगी।

आकस्मिक धन प्राप्ति मन्त्र

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमः ध्वः ध्वः।।

प्रयोग विधि—मृगशिरा नक्षत्र में वध किये श्याम मृगचर्म पर आसीन हो किसी सरिता के तट कनकागुदी वृक्ष के नीचे बैठ श्रद्धा विश्वास पूर्वक इक्कीस दिन में एक लाख बार मन्त्र जपने से अनायास धन प्राप्त होता है।

नवग्रहजन्य दोष-उत्पात शान्ति के यन्त्र-मन्त्रादि

इस जन्म तथा उस जन्म के असत् कर्मों के फलस्वरूप नौ ग्रहों की अशुभ दृष्टि से मानव को नाना प्रकार के अनिष्टों की उपलब्धि होती है अथवा यों मानिये कि ज्योतिष शास्त्र के अनुसार आकाश मण्डल में स्थित ग्रह पिण्डों के प्रभाव से उत्पन्न उत्पात दो प्रकार के होते हैं।

१. सम्पूर्ण राष्ट्र पर प्रभाव डालने वाले ग्रह, उत्पात ग्रह, युद्ध, भूकम्प, तूफान, रक्त वर्षा, केतूदय आदि। २. व्यक्ति विशेष पर होने वाले नाना प्रकार के ग्रह युतियों द्वारा परिलक्षित होते हैं, जिनका विवेचन ज्योतिष शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों में किया गया है।

तन्त्र शास्त्र के अन्तर्गत यन्त्र मन्त्रों का विशिष्ट महत्त्व है। इस विषय पर कई स्वतन्त्र ग्रन्थ भी निर्मित किये गये हैं, मगर तन्त्र-मन्त्र गुरु परम्परा वैशिष्ट्य के कारण गुह्य हैं, इसलिये सर्वसाधारण बहुत से विषयों से अपरिचित रहते हैं। हमने परम्परा प्राप्त ग्रह दोष निवारणार्थ यन्त्रों आदि का विशेष अनुभव किया है, जिन्हें जन साधारण के लिये बहुत ही सरल रीति से यहाँ उद्धृत कर रहे हैं। इन यन्त्रों को प्रारम्भ में सिद्ध करना पड़ता है, तदुपरान्त ही कोई व्यक्ति इन्हें किसी दूसरे को बनाकर दे सकता है। इन्हें सिद्ध करने की विधि संक्षेप में आगे लिख रहा हूँ।

प्रयोग विधि—प्रारम्भ में जिस ग्रह मन्त्रादि को सिद्ध करना ही उस ग्रह के देवता के बार (दिन) व्रतोपवास करें और विधिवत आठ हजार या बत्तीस हजार (ग्रह सम्बन्धित) मन्त्रों का जप-हवनादि प्रतिदिन दो हजार के हिसाब से करें, फिर उस ग्रह की काल होरा में यन्त्र निर्माण कर उसका पूजनादि करें, इसके पश्चात् अभिलाषित व्यक्ति को उपवास एवं यन्त्र पूजन कराकर यन्त्र धारण करना चाहिये और ग्रहण, होली, दीपवाली, विजयादशमी (दशहरा), रामनवमी, अमावस्या, बसंत पंचमी आदि शुभ ग्रह नक्षत्रों में यन्त्रों का पूजन करना चाहिये व जिस ग्रह का यन्त्र हो उसके वार (दिन) में प्रायः पूजन धूप-दीप, आदि करते रहना चाहिये तो अति उत्तम होगा।

विशेष ध्यान रखें—

१. यन्त्रों को भोजपत्र पर अष्टगन्ध, केशर अथवा रक्त चन्दन (लाल चन्दन) या केशर मिश्रित सफेद चन्दन आदि से अनार या तुलसी की कलम (लेखनी) अथवा सोने (स्वर्ण) की निब (कलम) से ही लिखना चाहिये।

२. यन्त्र स्वर्ण अथवा रजत (चाँदी) के पत्र पर भी अंकित हो सकते हैं।

३. यन्त्रों को ताँबा-चाँदी अथवा सोने के ताबीज (खोल) में भरकर धारण करना चाहिये।

४. इन यन्त्रों का निर्माण यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण अथवा गुरुधारक व्यक्ति ही कर सकते हैं।

५. सूर्य यन्त्र, चन्द्र, मंगल, गुरु (बृहस्पति) शुक्र इन यन्त्रों को लाल डोरे में, बुध यन्त्र को हरे डोरे में, शनि-केतु-राहु के यन्त्रों को काले रंग में डोरे में पिरोकर दाहिनी भुजा अथवा गले में धारण करना चाहिये।

अष्टगन्ध बनाने की विधि

असली केशर, कस्तूरी, कपूर, काला अगर, गोरोचन, हाथी का मद,

सफेद चन्दन तथा लाल चन्दन इन सबको पीस लें और घोलकर रोशनाई बना लें। हाथी मद के अभाव में पिसी हल्दी लेनी चाहिये।

नवग्रहों के यन्त्रादिकों की जानकारी निम्न प्रकार से हैं—

१. रवि (सूर्य) यन्त्र मन्त्रादि

रसेंदुनागा नगबाणरामा युग्मांववेदा नवकोष्ठमध्ये। विलिख्य धार्यं गद्दनाशनाय वदन्ति गर्गादिमहामुनीद्राः।।

पुराणोक्त रवि मन्त्र

ह्रीं जपाकुसुम संकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्। तमोऽरिं सर्व पापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्।।

अर्थात्—जपा (अढौल) के फूल के समान जिन सूर्य भगवान् की कान्ति है और जो 'कश्यप' से उत्पन्न हुए हैं, अन्धकार जिनका शत्रु है, जो सभी प्रकार के पापों को नष्ट करते हैं, उन सूर्य-भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ।

वैदिक रवि मन्त्र

ॐ आकृष्टोनेत्यस्य मन्त्रस्य हिरण्यस्तुः सविता। त्रिष्टुप् सूर्य प्रीत्यर्थ जपे विनियोगः। ॐ आकृष्णेनन रजसा वर्तमानो निवेशयन्न मृतंमर्त्य च। हिरण्ययेन सविसार थेनादेवोयाति भुवनानिपश्यन्।।

तन्त्रोक्त रवि मन्त्र

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः। अथवा **ॐ ह्रीं ह्रीं सूर्याय नमः।** जपसंख्या सात हजार। कलियुग में अट्ठाइस हजार।

सूर्य गायत्री मन्त्र

ॐ सप्त तुरंगाय विद्यमहे सहस्राय किरणाय धीमहि तन्नोरविः प्रचोदयात्।

अथवा

ॐ आदित्याय विद्महे प्रभाकराय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।।

सूर्य—मध्य भाग, वर्तुल मण्डल, अंगुल बारह, कलिंग देश, कश्यप गोत्र, रक्तवर्ण, सिंह राशि का स्वामी, वाहन सप्ताश्व, समिधा मदार।

दानद्रव्य—माणिक्य (माणिक) सोना, ताँबा, गेहूँ, घी, गुड़, लाल फूल, केशर, मूँगा, लाल गऊ, लाल चन्दन, दान का समय अरुणोदय (सूर्योदय काल)।

धारण करने का रत्न—माणिक्य (माणिक रत्न)।

यदि रत्न धारण करने में असमर्थ हैं तो जड़ी बिल्व पेड़ (बेल) की जड़ को गले अथवा भुजा में धारण करना चाहिये।

२. चन्द (चन्द्रमा) का यन्त्र-मन्त्रादि

नगद्विनंदा गजषट् समुद्रा शिवाक्षदिग्बाण विलिख्यकोष्ठे। चंद्रकृतारिष्ट-विनाशयनाय धार्य मनुष्यैः शशियंत्रमीरितम्।।

पुराणोक्त चन्द्र जप मन्त्र

दधि, शंख, तुषाराभं क्षीरोदार्णव सम्भवम्। नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुट भूषणम्।।

अर्थात्—दही, शंख अथवा हिम के समान जिनकी दीप्ति है और उत्पत्ति क्षीरसागर (समुद्र) से है, जो शिव (शंकर भगवान) के मुकुट पर अलंकार की तरह विराजमान रहते हैं, मैं उन चन्द्रदेव को प्रणाम करता हूँ।

वैदिक चन्द्र मन्त्र

ॐ आप्याय गौतमः सोमो गायत्री सोमप्रीत्यर्थ जपे विनियोगः। ॐ आप्यावस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्याम्। भवा वाजस्य सगथे।।

तन्त्रोक्त मन्त्र

श्रीं श्रीं श्रौं सः चन्द्रमसे नमः।

अथवा

ॐ ऐं ह्रीं सोमाय नमः।

जपसंख्या—ग्यारह हजार, कलियुग में चौवालीस हजार।

सोम गायत्री मन्त्र

ॐ अमृताङ्गाय विद्महे कलारूपाय, धीमहि तन्नः सोमः प्रचोदयात्।

चन्द्र—अग्निकोण, चतुरस्त्र मण्डल, अंगुल चार, यमुनातटवर्ती देश, अत्रिगोत्र, श्वेत वर्ण, कर्क राशि का स्वामी, वाहन हरिण, समिधा पलाश।

दान द्रव्य—मोती, सोना, चाँदी, चावल, मिश्री, दही, सफेद कपड़ा, सफेद फूल, शंख, कपूर, सफेद बैल, सफेद चन्दन। दान का समय संध्या काल। (गोधूलि वेला)

धारण करने का रत्न-मोती या चन्द्रकान्त मणि (मूनस्टोन), अभाव में सीप अत्यधिक प्रभावशाली। जड़ी-खिरनी वृक्ष की जड़ को, सफेद कपड़े में सीकर गले अथवा भुजा में धारण करें।

३. मंगल का यन्त्र-मन्त्रादि

गजग्निदिश्याथ नवाद्रिबाणा पातालरुद्रारससंविलख्य। भौमस्य यंत्रं क्रमशो विधार्यमनिष्टनाशं प्रवदन्ति गर्गाः।।

पुराणोक्त भौम जप मन्त्र

ह्रीं धरणीगर्भसभूतं विद्युत-कान्तिसमप्रभम्। कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम्।।

अर्थात्—पृथ्वी के उदर से जिनकी उत्पत्ति हुई है, विद्युत-पुंज (बिजली) के

सदृश (समान) जिनकी (प्रभा) है, और जो हाथों में शक्ति धारण किये रहते हैं, उन मंगल देव को मैं प्रणाम करता हूँ।

वैदिक जप मन्त्र

ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः रूपोऽङ्गारको गायत्री, अङ्गारकप्रीत्यर्थ जपे विनियोगः।

अथवा

ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् अपार्ठ रेतार्ठसि जिन्वसि।

तन्त्रोक्त भौम मन्त्र

क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः।

अथवा

ॐ हूँ श्रीं मंगलाय नमः।

जपसंख्या—दस हजार, कलियुग में चालीस हजार।

भौम गायत्री मन्त्र

ॐ अङ्गारकाय विद्महे शक्तिहस्ताय धिमहि तन्नो भौमः प्रचोदयात्।

मंगल—दक्षिण दिशा, त्रिकोणमण्डल, अंगल ३, अवन्ति देश, भारद्वाज गोत्र, मेष, वृश्चिक का स्वामी, वाहन मेढा, समिधा-खदिर।

दान द्रव्य—मूँगा, सोना, ताँबा, मसूर, गुड़, घी, लाल कपड़ा, लाल कनेर का फूल, केशर, कस्तूरी, लाल बैल, लाल चन्दन।

दान का समय—सबेरे दो घटी तक।

धारण करने का रत्न—मूँगा, अभाव में जड़ी-अनन्त मूल, नागजिह्वा की जड़, लाल डोरा व कपड़ में सिलकर धारण करना चाहिये।

ऋणमोचन मंगल स्तोत्र

मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्ता धनप्रदः।
स्थितसनो महाकायः सर्वकर्मावरोधकः।।
लोहितो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः।
धरात्मजः कुजो भौमो भूतिदो भूमिनन्दनः।।
अङ्गारको यमश्चैव सर्वरोगापहारकः।
वृष्टेः कर्ताऽपहर्ता च सर्वकामफलप्रदः।।
एतानि कुजनामानि नित्यं यः श्रद्धया पठेत्।
ऋणं न जायते तस्य धनं शीघ्रमवाप्नुयात्।।

धरणीगर्भ-संभूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम्।।
स्तोत्रमङ्गारकस्यैतत् . पठनीयं सदा नृभिः।
न तेषां भौमजा पीडा स्वल्पाऽपि भवति क्वचित्।।
अङ्गारक महाभाग! भगवन्! भक्तवत्सल।
त्वां नमामि ममाशेषमृणमाशु विनाशय।।
ऋण-रोगादि-दारिद्रयं ये चान्ये ह्यपमृत्यवः।
भय-क्लेश-मनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा।।
अतिवक्त्र दुराराध्यं भोग-मुक्त-जितात्मनः।
तुष्टी ददासि साम्राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात्।।
विरञ्चि शक्र-विष्णूनां मनुष्याणां तु का कथा।
तेन त्वं सर्वसत्त्वेन ग्रहराजो महाबलः।।
पुत्रन् देहि धनं देहि त्वामस्मि शरणं गतः।
ऋण-दारिद्रय-दुःखेन शत्रूणां च भयात्ततः।।
एभिर्द्वादशभिः श्लोकर्यः स्तौति च धरासुतम्।
महतीं श्रियमाप्नोति ह्यपरो धनो युवा।।

।।ऋणमोचनमङ्गलस्तोत्र सम्पूर्णम्।

४. बुध का यन्त्र-मन्त्रादि

नवब्धिरुद्रा दशनागषट्का बाणार्कसप्ता नवकोष्ठयंत्रे। विलिख्य धार्यं गदनाशहेतवे वदंति यंत्रं शशिजस्य धीराः।।

पुराणोक्त बुध जप मन्त्र

ह्रीं प्रियङ्ग कलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्। सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम्।।

अर्थात्—प्रियंग की कली की भाँति जिनका श्याम वर्ण है, जिनके रूप की कोई उपमा ही नहीं है, उन सौम्य और सौम्यगुणी से युक्त बुध को मैं प्रणाम करता हूँ।

वैदिक बुध मन्त्र

ॐ उद्‌बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टासूर्ते सठं सृजेयायमं च। अस्मिन्त्सधस्थेऽअद्ध्यत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत।।

अथवा

ॐ उद्‌बुध्यध्वं बुधो बुधस्त्रिष्टुप्, बुधप्रीत्यर्थ जपे विनियोगः। ॐ

उद्‌बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिध्वं बहवः सनीलाः। दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावती वसे निह्वये वः।।

तन्त्रोक्त बुध मन्त्र

ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः। अथवा **ॐ ऐं श्रीं श्री बुधाय नमः।**

जपसंख्या—नौ हजार, कलियुग में तैतीस हजार।

बुध गायत्री मन्त्र

ॐ सौम्यरूपाय विद्महे बाणेशाय धीमहि तन्नो बुधः प्रचोदयात्।

बुध—ईशानकोण, बाणकार मण्डल, अंगुल ४, मगधदेश, अत्रिगोत्र, पीतवर्ण, मिथुन, कन्या का स्वामी, वाहन सिंह, समिधा अपामार्ग, चिचिड़ा, लटजीरा।

दानद्रव्य—पन्ना, सोना, काँसी, मूँग, खाँड़, घी, हरा कपड़ा, सफेद फूल, हाथी दाँत, कपूर, शस्त्र, फल।

दान का समय—सबेरे पाँच घटी तक।

धारण करने का रत्न—पन्ना, अभाव में जड़ी-विधारा (वृद्ध मूल)। हरे रंग के डोरे या कपड़े में दाहिनी भुजा या गले में धारण करें।

५. बृहस्पति (गुरु) का यन्त्र-मन्त्रादि

दिग्बाणसूर्या शिवनन्दसप्ता षड्विश्वनागाः क्रमतोऽककोष्ठे। विलिख्य धार्य गुरुयंत्रमीरितं रुजाविनाशाय वदंति तद्‌बहुधाः।।

पुराणोक्त गुरु जप मन्त्र

ह्रीं देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चनसन्निभम्। बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्।।

अर्थात्—जो देवताओं और ऋषियों के गुरु हैं, कंचन (स्वर्ण) के समान जिनकी प्रभा है और जो बुद्धि के अखण्ड भण्डार तथा तीनों लोकों के प्रभु हैं उन बृहस्पति जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

वेदोक्त गुरु मन्त्र

ॐ बृहस्पते अतीत्यस्य गृत्समदो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप्, बृहस्पतिप्रीत्यर्थ जपे विनियोगः।

ॐ बृहस्पति अतियदर्यो अहद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।।

तन्त्रोक्त गुरु मन्त्र

ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः।

अथवा

ॐ ऐं क्लीं बृहस्पतये नमः।

जपसंख्या—उन्नीस हजार, कलियुग में छिहत्तर हजार।

गुरु गायत्री मन्त्र

ॐ अङ्गिरसाय विद्महे दिव्यदेहाय धीमहि, तन्नो जीवः प्रचोदयात्।

गुरु—उत्तर दिशा, दीर्घ चतुरस्र मण्डल, अंगुल ६, सिन्धु देश, अंगिरा गोत्र, पीत वर्ण, धनु, मीन का स्वामी, वाहन हाथी, समिधा पीपल।

दानद्रव्य—पुखराज, सोना, काँसी, चने की दाल, खाँड़ घी, पीला फूल, पीला कपड़ा, हल्दी, पुस्तक, घोड़ा, पीला फल।

दान का समय—संध्या काल।

धारण करने का रत्न—पुखराज नग। अभाव में जड़ी भारंगी (बमनेठी, पीले डोर या कपड़े में दाहिनी भुजा या गले में धारण करें।

६. शुक्र का यन्त्र-मन्त्रादि

रुद्रांगविश्वा रविदिग्गजाख्या नगामनुश्वांकक्रमाद्विलेख्या। भृगोः कृतरिष्ट-निवारणाय धार्यं हि यंत्रं मुनिना प्रकीर्तिता।।

पुराणोक्त शुक्र मन्त्र

ह्रीं हिमकुन्द-मृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्। सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्।।

अर्थात्—तुषार, कुन्द अथवा मृणाल के समान जिनकी आभा (शोभा) है और जो दैत्यों के परम गुरु हैं, उन सब शास्त्रों के अद्वितीय वक्ता श्री शुक्राचार्यजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

वेदोक्त शुक्र मन्त्र

ॐ शुक्रं त इत्यस्य मन्त्रस्य भरद्वाज ऋषिः शुक्रो देवतास्त्रिष्टु, छन्दः, शुक्रप्रीत्यर्थ जपे विनियोगः।

ॐ शुक्र ते अन्यद्यजनं ते अन्यद्विषुरुपे अहनीद्यौरिवासि। विश्वादि माया अवसिस्वधावोघद्रा ते पूषन्निहरातिरस्तु।

तन्त्रोक्त शुक्र मन्त्र

द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः।

अथवा

ॐ ह्रीं श्रीं शुक्राय नमः।

जपसंख्या—सोलह हजार, कलियुग में चौसठ हजार।

शुक्र गायत्री मन्त्र

ॐ भृगुजाय विद्महे दिव्येदेहाय धीमहि तन्नः शुक्रः प्रचोदयात्।

शुक्र—पूर्वदिशा, षट्कोण मण्डल, अङ्गुल नौ, भोजकट देश, भृगुगोत्र, श्वेतवर्ण, वृषभ (वृष), तुला का स्वामी, वाहन अश्व, समिधा उदुम्बर।

दानद्रव्य—हीरा, सोना, चाँदी, चावल, मिश्री, दूध, सफेद कपड़ा, सफेद फूल, सुगन्ध, दही, सफेद घोड़ा, सफेद चन्दन।

दान का समय—अरुणोदय काल (सूर्योदय काल)।

धारण करने का रत्न—हीरा। अभाव में जड़ी। मंजीठ की जड़ को सफेद कपड़े या डोरे में दाहिनी भुजा या गले में धारण करें।

७. शनि का यन्त्र-मन्त्रादि

अर्कांद्रिमन्वास्मररुद्रअंका नगाख्यतिथ्या दश मन्दयन्त्रम्। विलिख्य भूर्जोपरि धार्यविद्वच्छनेः कृ तारिष्टनिवारणाय।।

पुराणोक्त शनि जप मन्त्र

ह्रीं नीलञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यामग्रजम्। छायामार्ताण्ड संभूतं तं नमामि शनश्चरम्।।

अर्थात्—नील अंजन के समान जिनकी दीप्ति है और जो सूर्य भगवान के पुत्र तथा यमराज के बड़े भ्राता हैं, सूर्य की छाया से जिनकी उत्पत्ति हुई है, उन शनैश्चर (शनि) देवता को मैं प्रणाम करता हूँ।

वैदिक शनि मन्त्र

ॐ शमग्निरित्यस्यरिंविठिः ऋषिः, शनैश्चरप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः।

ॐ शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः। शं वातो वात्वरपा अपस्त्रिधः।।

तन्त्रोक्त शनि मन्त्र

प्रां प्रीं प्रौं शनये नमः।

अथवा

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शनैश्चराय नमः।

जपसंख्या—तेइस हजार, कलियुग में बानवे हजार।

शनि गायत्री मन्त्र

ॐ भगभवाय विद्महे मृत्युरूपाय धीमहि तन्नः शौरिः प्रचोदयात्।

शनि—पश्चिम दिशा, धनुषाकार मण्डल, अङ्गुल दो, सौराष्ट्र देश, कश्यप गोत्र, कृष्ण वर्ण, मकर, कुम्भ राशि का स्वामी, वाहन गिद्ध, समिदा शमी।

दान द्रव्य—नीलम, सोना, लोहा, उड़द, कुलथी, तेल, काला कपड़ा, काला फल, कस्तूरी, काली गौ, भैंस, खड़ाऊँ। दान का समय-मध्याह्न काल।

धारण करने का रत्न—नीलम अथवा कालाश्वपदीय अँगूठी (काले घोड़े के पैर की नाल की अँगूठी), शनिवार के दिन के होरा में बनवा कर उँगली में धारण करना चाहिये। अभाव में जड़ी-अम्लवेत (श्वेत विरैला) की जड़ को काले कपड़े या डोरे में दाहिनी भुजा या गले में धारण करें।

८. राहु का मन्त्र

विश्वाष्टतिथ्या मनुसूर्यदिश्या खगमहीद्रैकदशांककोष्ठे। विलिख्य यंत्रं सततं विधार्य राहोः कृतरिष्टनिवारणाय।।

पुराणोक्त राहु मन्त्र

ह्लीं अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम्। सिंहिकागर्भसंभूतं तं राहूं प्रणामाम्यहम्।।

अर्थात्—जिनमा केवल आधा शरीर है तथा जिनमें महान् पराक्रम है, जो चन्द्र और सूर्य को भी परास्त कर देते हैं और सिंहिका के गर्भ से जिनकी उत्पत्ति हुई है, उन राहु देवता को मैं प्रणाम करता हूँ।

वैदिक राहु मन्त्र

ॐ कयान इत्यस्य मन्त्रस्य वामदेवो राहु गायत्री, राहुप्रीत्यर्थ जपे विनियोगः।

ॐ कयानश्चित्र आभुव दूती सदसावृधः सखा। कया शचिष्ठयावृता।।

तंत्रोक्त मन्त्र

भ्रां भ्रीं सौं सः राहवे नमः।

अथवा

ॐ ऐं ह्लीं राहवे नमः।

जपसंख्या—अठारह हजार, कलियुग में बहत्तर हजार।

राहु गायत्री मन्त्र

ॐ शिरो रूपाय विद्महे, अमृतेशाय धीमहि तन्नो राहुः प्रचोदयात्।।

राहु—नैऋत्य कोण, सूर्पाकार मण्डल, अङ्गुल बारह, राठीनापुर (मलयदेश), पैठीनस गोत्र, कृष्णवर्ण, वाहन व्याघ्र, समिधा दूर्बा (दूब)।

दाद द्रव्य—गोमेद, सोना, सीसा, तिल, सरसों का तेल, नीला कपड़ा, काला फूल, तलवार, कम्बल, घोड़ा, सूप।

दान का समय—रात्रि।

धारण करने का रत्न—सीलोनी गोमेद नग। अभाव में जड़ी, सफेद चन्दन।

९. केतु का यन्त्र-मन्त्रादि

मनुखेचर-भूपातिथि-विश्व-शिवा दिग्सप्तादशसूर्यमिता। क्रमतो विलिखेन्नवकोष्ठमिते परिधार्य नरा दुःखनाशकराः।।

पुराणोक्त केतु मन्त्र

ह्रीं पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रह-मस्तकम्। रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्।।

अर्थात्—पलाश के फूल की तरह जिनकी लाल दीप्ति है और जो समस्त तारकाओं में श्रेष्ठ माने जाते हैं, जो स्वयं रौद्र रूप और रौद्रात्मक हैं ऐसे रूप वाले केतु को मैं प्रणाम करता हूँ।

वैदिक केतु मन्त्र

ॐ केतु कृण्वन्नित्यस्य मन्त्रस्य मधुच्छन्दा ऋषिः, केतुर्देवता गायत्रीछन्दः, केतुप्रीत्यर्थ जपे विनियोगः।

ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशोमर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः।।

तन्त्रोक्त मन्त्र

स्त्रां स्त्रीं स्त्रौं सः केतवे नमः।

अथवा

ॐ ह्रीं केतवे नमः।

जपसंख्या—अठारह हजार, कलियुग में बहत्तर हजार।

केतु गायत्री मन्त्र

ॐ पद्मपुत्राय विद्महे अमृतेशाय धीमहि तन्नः केतुः प्रचोदयात्।

केतु—वायव्य कोण, ध्वजाकार मण्डल, अङ्गुल छह, अन्तर्वेदी (कुश) देश, जैमिनी गोत्र, धूम्र वर्ण, वाहन कबूतर, समिधा-कुशा।

दान द्रव्य—लहसुनियाँ, सोना, लोहा, तिल, सप्तधान्य, तेल, धूमिल कपड़ा, धूमिल फूल, नारियल, कम्बल, बकरा, शस्त्र। दान का समय-रात्रि।

धारण करने का रत्न—लहसुनियाँ नग या लाजवर्त नग, अभाव में जड़ी, असगन्ध की जड़ी को काले कपड़े या डोरे में गले अथवा दाहिनी भुजा में धारण करें।

नवग्रहों का यन्त्र-मन्त्रादि

जिन व्यक्तियों के कई ग्रह अरिष्ट चल रहे हों उन्हें चाहिये कि ग्रहण, होली, दीपावली, विजयादशमी, रामनवमी, अमावस्या, नागपंचमी, वसंत पंचमी आदि शुभ मुहूर्तों में विधि-विधान पूर्वक यन्त्रों का निर्माण, भोजपत्र पर अष्टगन्ध की स्याही से पूरा विधान ऊपर नवग्रहों के यन्त्रों में लिखा जा चुका है। निर्माण करके

निम्नलिखित नवग्रह स्तोत्र से कम-से-कम छियानवें हजार मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित करके विधि-विधान पूर्वक धारण करने से नवग्रह दोषों की पीड़ा शान्ति होती है।

नवग्रह स्तोत्र

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्।।
दधिशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम्।
नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम्।।
धरणीगर्भसंभूतं विद्युत्-कान्तिसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम्।।
प्रियङ्गुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम्।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम्।।
देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चनसन्निभम्।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्।।
हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम्।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम्।।
नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्।
छायामार्तण्डसंभूतं तं नमामि शनैश्चरम्।।
अर्धकायं महावीर्य चन्द्रादित्यविमर्दनम्।
सिंहिकामगर्भसंभूतं तं राहूं प्रणमाप्यहम्।।
पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम्।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम्।।
इति व्यासमुखोद्गीतं यः पठेत् सुसमाहितः।
दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्नशान्तिर्भविष्यति।।
नर-नारी-नृपाणां च भवेद् दुःस्वप्ननाशनम्।
ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्धनम्।।
ग्रहनक्षत्रजाः पीडास्तस्कराग्निसमुद्भवाः।
ताः सर्वाः प्रशमं यान्ति व्यासो ब्रूते न संशयः।।

अशुभ फलवाले ग्रहों के उपाय

जिस समय कोई अशुभ ग्रह आप को अशुभ फल दे रहा हो उसकी शान्ति हेतु प्राचीन काल के महर्षियों-विद्वानों ने उसके यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र आदि का जपानुष्ठान, व दानादि का विधान किया है, जो आपको उपरोक्त नवग्रह जन्य दोष

शान्ति आदि का पूरा विधान जप-संध्या आदि विस्तृत रूप से लिखकर समझाया गया है। मन्त्र-जपादि स्वयं अथवा किसी कर्मनिष्ठ यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मण से करायें। जो महानुभाव असमर्थ हों वे सब ग्रहों के दोष शान्त्यर्थ सामान्य औषधि से स्नान करें।

औषधि स्नान—लाजवन्ती (छुई-मुई), कूट, खिल्ला, कंगुनी, जौ, सरसों, देवदारु, हल्दी, लोध, सर्वौषधि (कूट-जटामांसी, दोनों हल्दी, मुरा, शिलाजीत, चन्दन, वच, चम्पक और नागर मोथा ये दस औषधि सर्वौषधि हैं।), इन औषधियों के जल से सतीर्थोदक स्नान करने से सभी ग्रहों की पीड़ा नाश होती है।

सभी ग्रहों के दुष्ट दोष नाश के सबसे सुलभ उपाय है, पीपल वृक्ष पर जल, दीपदान तथा गौ और ब्राह्मण पूजा आदि से ग्रहों के दोष नाश होते हैं।

मूलमन्त्र

मन्दवारे तु येऽश्वत्थं प्रातरुत्थाय मानवाः।
आलभन्ते च तेषां वै ग्रहपीडां व्यपोहतु।।
यथा ग्रहो द्विजस्तद्वद्विज्ञेयो वेदपारगः।
तोषयन् मृदुवस्त्राद्यैस्तुष्टमेनं विसजर्दयेत्।।
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव।
गवां प्रशस्यते वीर! ग्रहपापहरं परम्।।

।। इस प्रकार रावणसंहितान्तर्गत तन्त्र-मन्त्र साधना द्वितीय परिच्छेद सरल, सुबोध हिन्दी भाषा में मैथिल आचार्य शिवकान्त झा द्वारा सुसम्पन्नता को प्राप्त हुआ।।२।।

।। शुभमिति ।।

❒❒❒

तृतीय परिच्छेद

रोग चिकित्सा ज्ञान

प्रथम रोग परीक्षा की आवश्यकता

रावण एक महायोद्धा, तपस्वी, महाज्ञानी और एक निपुण चिकित्सक भी था। यहाँ इस परिच्छेद में रावण द्वारा वर्णित रोग और उसके निदान सम्बन्धि यथा उपलब्ध सामग्रियों को हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं—

सर्वप्रथम वैद्य के लिए यह आवश्यक है कि वह रोगी के रोग का भली-भाँति परीक्षण कर लेने के पश्चात् ही उसे उपयुक्त औषधियाँ दे। जो वैद्य रोग की परीक्षा पूर्णरूप से न कर औषधियों का प्रयोग प्रारम्भ कर देते हैं उन्हें कदापि सफलता नहीं मिलती। विधि-विधान में कुशल चिकित्सक में स्वयमेव सिद्धियाँ निहित रहती हैं। देश-काल तथा रोग के भेदों का ज्ञान रखने वाला चिकित्सक औषध-प्रयोग में नि:संदेह ही सफल होता है। वैद्य को रोग की साध्यता-असाध्यता का विचार करके साध्य रोगों की ही चिकित्सा करनी चाहिए।

किसी भी रोग की उत्पत्ति पित्तादि दोषों के अभाव में नहीं होती। अत: उन दोष-लक्षणों को भली प्रकार से समझकर ही उपचार करना चाहिए। वैद्य को ऐसे रोगों की भी चिकित्सा करनी चाहिए जिन रोगों के लक्षण स्थायी न रहते हों।

रोग परीक्षा विधि और उसके प्रकार

रोग परीक्षा के निमित्त प्राय: तीन विधियों को अपनाया जाता है, जैसे—रोगी के नेत्र एवं मुखाकृति देखकर, अंगों का स्पर्श करके तथा भोजनादि सम्बन्धी बातें पूछकर। रोग के दो भेद होते हैं—एक साध्य और दूसरा असाध्य। इनमें भी साध्य के दो प्रकार होते हैं, कृच्छ्रोपाय (कठिनता से ठीक होने वाले) तथा सुखोपाय (सरलतापूर्वक ठीक होने वाले)। इसी प्रकार असाध्य के भी दो भेद कहे गये हैं—एक याप्य (निवारणीय) और दूसरा अयाप्य (अनिवारणीय)।

प्राय: सभी रोग प्रकृत्या साध्य होते हैं, किन्तु उनके प्रति असावधानी बरतने से साध्य भी असाध्य में परिवर्तित हो जाया करते हैं। यदि रुग्ण व्यक्ति सावधानीपूर्वक शीघ्र ही चिकित्सक द्वारा उपचार कराये और स्वयं भी देश-काल, प्रकृति तथा अवस्थानुसार चलकर अपनी वाणी एवं जननेन्द्रियादि पर नियंत्रण कर ले तो ऐसे बुद्धिमान् रोगी के असाध्य रोग भी साध्य बन जाते हैं।

रोग, अग्नि, शत्रु और विष आदि का सूक्ष्म रूप भी बढ़कर अनेक विकार पैदा कर देते हैं। असावधानी करने पर ये सभी प्राणियों को मृत्यु की गोद में सुला

देते हैं। कोई भी रोग अपने स्तर से नीचे आने पर अनेक दोषों को उत्पन्न करता है अथवा छूट जाने पर भी अल्प कारणों से पुनः आक्रमण कर देता है।

नाड़ी से रोग ज्ञान विधि

हाथ के अंगूठे की जड़ में चलने वाली नाड़ी जीवसाक्षिणी कही जाती है। उसके प्रयत्न द्वारा ही शारीरिक सुख-दुःख की अनुभूति होती है। वह नाड़ी वातविकार में जोंक और साँप की गति के समान चलती है। पित्तदोष के कारण वह कुलिंग पक्षी, काक और मेढ़क की चाल से चलती है। कफ के कुपित होने पर उसकी गति हंस तथा कपोत के समान रहती है तथा सन्निपातज रोगों में लवा, तीतर और बटेर की चाल से चलती है। दो दोषों के प्रकोप से वह कभी-कभी मंद एवं द्रुत गति से चलती है। अपने स्थान से पतित होने पर वह जीवों के प्राण भी ले लेती है।

रुक-रुककर चलने वाली, मन्दरूपा और शीतल नाड़ी प्राणनाशिनी होती है, ज्वरावस्था में उष्ण होकर वह वेगपूर्वक चलती है। काम-क्रोध के उद्वेगावस्था में वह वेगवाहिनी तथा चिन्ता, शोक, भय आदि की स्थिति में क्षीणप्राय रहा करती है। क्षीणधातु तथा मंदाग्नि वाले व्यक्ति की नाड़ी अत्यन्त धीमी होती है, किन्तु आमदोष के कारण नाड़ी में रक्तपूर्णता, किंचित् उष्णता तथा भारीपन देखने में आता है।

प्रदीप्त क्षुधाग्नि वाले व्यक्ति की नाड़ी हल्की, गहरी तथा वेग से प्रवाहित होती है। स्वस्थ मनुष्य की नाड़ी स्थिर तथा बलवान् होती है। क्षुधातुर व्यक्ति की नाड़ी में चपलता तथा क्षुधा के अभाव में स्थिरता पायी जाती है। इस प्रकार नाड़ीज्ञान को श्रेष्ठ वैद्यों ने कहा है।

चिकित्सा का समय

किसी प्रकार का रोग जब तक क्षीणावस्था में हो, सूक्ष्म दाहक हो या वेग की प्रबलता से रहित हो तभी उसे उपयुक्त औषध द्वारा नियंत्रित कर लेना चाहिए। जब तक रोगग्रस्त प्राणी अपनी प्रकृतिस्थ अवस्था में न आ जाय तब तक चिकित्सक को उसके रोगशमन का उपाय निरन्तर करते ही रहना चाहिए।

वैद्य का दायित्त्व

प्रत्येक वैद्य का यही वैद्यत्व है, वह आयु का स्वामी कदापि नहीं हो सकता। कुछेक रोग ऐहिक तथा कुछेक पूर्वजन्मार्जित कर्मों के फलस्वरूप होते हैं तथा कुछ शीत-पित्तादिक विकार के कारण। कुछ रोग दोषज तथा कर्मज होते हैं। ये द्विदोषज रोग प्राणियों का संहार कर दिया करते हैं।

शास्त्रीय विधानानुसार तथा रोगानुसार चिकित्सा करने के परिणामस्वरूप भी रोग का शमन न होने पर उसे कर्मज रोग समझना चाहिए। जिस रोग में अल्प विकार के साथ गरिष्ठता हो तो उसे दोनों दोषों का परिणाम कहा जाता है। कर्म और

दोषहारक उपायों तथा औषधों के द्वारा कर्मदोष का क्षय होने पर कर्मदोषजनित रोग स्वत: ही नष्ट हो जाते हैं।

विष, शस्त्र, अग्नि तथा वज्रादि से मृत्यु होना कर्मज है। इस प्रकार से मृत्यु के ग्रास बने व्यक्तियों के लिए केवल एक संजीवनामृत ही उपयोगी होता है। शरीरस्थ जितने भी रस, रक्तादि धातुएँ हैं उन सब का प्रक्रिया द्वारा अपनी साम्यावस्था में आ जाना ही रोगदोषों की चिकित्सा तथा चिकित्सकों का प्रशस्त कर्म होता है।

ज्वर क्या है?

जिस प्रकिया के द्वारा रोगों में कठिनता उत्पन्न होती हो उसे अनर्घ कहा जाता है। अत: वह परित्याज्य है,क्योंकि श्रेष्ठ वैद्यों ने उसकी निन्दा की है। ज्वर के सन्दर्भ में ऐसा कहा गया है कि जिस रोग में पसीने का निकलना एकाएक बंद हो जाय, सभी अंगों में ताप होने के साथ ही-साथ पूरा शरीर जकड़ा हुआ-सा जान पड़े तो उसे ज्वर की संज्ञा दी गयी है।

सामान्यज्वर चिकित्सा

समस्त रोगों में सबसे पहले ज्वर की उत्पत्ति हुई और यह सभी रोगों में बलशाली हुआ। भगवान शिव ने इसे पूर्वकाल में वरदान दिया था कि तुम सभी में ज्येष्ठ और श्रेष्ठ बनोगे। अल्प ज्वर के होने पर भी भूख की कमी, मुख के स्वाद का फीका पड़ना, बल और तेज की क्षीणता तथा शीतविकार आदि दोषों के लक्षण इसमें पाये जाते हैं। अतएव इसके शमनार्थ रोगी से लंघन कराना उचित है। यहाँ लङ्घन से तात्पर्य भूखा रखना है।

लंघन करने के फलस्वरूप जब दोष का शमन होकर ज्वर उतर गया होता है तब शरीर में मृदुता और हलकापन आकर क्षुधा प्रज्वलित होने लगती है। विशेषतया आमाशय दोष से उत्पन्न ज्वर में वमनीय रोगी को पथ्य देने के पश्चात् ही वमन कराना उचित होता है, ऐसा वैद्यों से मेरी सलाह है।

लंघन का समय

पहले दिन दोष आमाशयस्थ क्षुधाग्नि के स्थान को आक्रमित कर उसे नष्ट कर देता है जिसके परिणामस्वरूप ज्वरोत्पत्ति हुआ करती है। अत: इसमें क्षुधाग्निवर्धक लंघन उपकारी होता है। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि वमन किये हुए रोगी को लंघन न करायें अथवा लंघन किये हुए को वमन न करायें क्योंकि वमन अधिक कष्टकारी होता है। अत: जिस रोगी ने लंघन किया हो उसे वमनकारी औषध न दें।

जिस रोगी को दोषाग्नि पूर्णरूप से आक्रमित न कर सके तो उसके लंघन से दोष निकल जाता है। इसके द्वारा ज्वर का निवारण, क्षुधाग्नि तथा रुचिवर्धन होता है। यह प्रदूषित रक्त का शुद्धिकरण भी करता है, किन्तु दोष और शक्ति का विचार

करके ही लंघन कराना उचित होता है। इसका प्रयोग वातरोग, भूख-प्यास, मुख सूखना तथा मूर्च्छाग्रस्त रोगियों पर करना संगत होता है, किन्तु बाल, वृद्ध, गर्भवती नारी, कृशकाय तथा निर्बल व्यक्ति पर करना अनुचित माना गया है। इसके अतिरिक्त चिन्ता, परिश्रम, क्रोध, शोक, कामविकार तथा क्षयोत्पन्न ज्वर में भी प्रयोग निषिद्ध है।

जिन रोगियों में दोष की अवस्था न रहते हुए भी रोग अपनी तरुणावस्था में जा पहुँचा हो, उनमें वमनकारी प्रयोग से रोगी में हृदयरोग, श्वास, अफरा (पेट फूलना) तथा मूर्च्छा–जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यदि वमन कराने से शारीरिक बल पर कोई दुष्प्रभाव न पड़े तो वमन कराना उचित है, क्योंकि शक्ति पर ही स्वास्थ्य निर्भर होता है तथा उसी के लिए चिकित्सा का इतना विधान भी किया जाता है।

रोगी को उस दशा में लंघन कराना निषिद्ध माना गया है जब उसके अपानवायु और मल-मूत्र का निःसरण स्वाभाविक ढंग से हो रहा हो, शरीर में हलकापन हो, मन में उत्साह, मुख तथा कंठ में विरसता का अभाव हो, क्षुधा-पिपासा की प्रबलता और अंतरात्मा में आनंद की अनुभूति हो रही हो।

लंघन के दोष

लंघन के व्यभिचार से रोगी में निम्न प्रकार के दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं, जैसे—शरीर की हर एक जोड़ों में शिथिलता, सम्पूर्ण शरीर में पीड़ा, खाँसी आना, मुख का सूखना, मंदाग्नि, मन में अनुत्साह, बुद्धिनाश, वायु का ऊर्ध्वगमन, मन में तमोगुण की उत्पत्ति, शरीर, क्षुधाग्नि तथा बल का ह्रास।

अलंघन का समय

निम्न लक्षणों के पाये जाने पर रोगी को लंघन कराना निष्प्रयोजनीय होता है, जैसे—मल-मूत्र का निःसरण, अधोवायु का संचरण, सुखपूर्वक नींद आना, आलस्यराहित्य, शिर का हलकापन, कफादि का निःसरण, मुख, हृदय तथा उदर का शुद्ध होना, पसीना निर्गत होना, भोजन की इच्छा आदि। उत्तम वैद्य के लिये यह आवश्यक है कि वह रोगी की पूरी तरह से विवेचना करके ही औषध प्रयोग करे।

पथ्य का महत्त्व

ऐसे-ऐसे दोष, देश-काल, अवस्था तथा रोगविकार की समानता के अनुसार चेष्टापूर्वक अनुपान के साथ औषधि और पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए। लंघनीय रोगी को लंघन न कराने के फलस्वरूप उसमें कफोत्पन्न क्लेश, मानसिक न्यूनता, बार-बार थूकने की इच्छा, शरीर में भारीपन तथा आलस्य आदि दोष उत्पन्न हो जाया करते हैं।

कभी-कभी चिकित्सा का सहारा लिये विना केवल पथ्य सेवन से ही शताधिक उपायों से दूर न होने वाले रोग भी दूर हो जाया करते हैं। क्षुधातुर रोगी को

यवागू (षड्गुण जल में पाचित लपसी) के साथ में भुने हुए चावलों के भात सेवनीय होते हैं। यह यवागू अग्निदीपक, अन्न का पाचन करने वाली तथा रुचिकारक होती है। अतः इसे आहारार्थ ग्रहण करना लाभकारी होता है।

सुरापान के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले रोगों में, ग्रीष्मकाल में, कफ-पित्त की अधिकता में, रक्तपित्त के ऊर्ध्वगामी होने पर, जलन और वमन में यवागू का पेय हानिकारक है। शेष के ज्वरावस्था में ज्वरनाशक फलों के रस तथा शक्कर और मधुमिश्रित सत्तू का रस पिलाना हितकर होता है।

श्रमोपरान्त, उपवास तथा सामान्य ज्वर की अवस्था में रसदार मंड और भात का सेवन करना लाभदायक होता है।

मूँग डालकर पकाये गये चावलों का भात कफज रोगी के लिए हितकारक होते हैं।

यही मूँग-चावल मिश्रित भात स्निग्धता के साथ पकाकर खाने से शीतपित्त (जुलपित्ती) के ज्वर में गुणकारी होता है।

मूँग और आँवले का रस वात-पित्त वाले रोगियों के लिए लाभकर होता है।

ज्वर नाशक क्वाथ

पित्त-कफ वाले रोगी में नीम और पटोल का क्वाथ पान करना लाभप्रद है। लाल रंग का गन्ना और मूँग का काढ़ा वात-कफ वाले रोगी के लिए लाभप्रद होता है। परवल के पत्ते, हलदी, नागरमोथा, नीम का छिलका, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), कुटकी, कटेरी और देवदारु—इनका क्वाथ बनाकर पीने से त्रिदोषज (वात, पित्त, कफ) ज्वर का नाश होता है।

सोंठ, पुष्करमूल, गुरुच तथा कटेरी। इनका काढ़ा पीने से श्वास, कास तथा वात-पित्ताधिक सन्निपातज ज्वर का निवारण होता है। महुआ का फूल, फालसा, अंगूर, त्रायमाण, खस (एक प्रकार का तृणविशेष), कुटकी, त्रिफला और खम्भारी। इन सबका शीतल जूष पान करने से सभी-प्रकार के ताप दूर होते हैं।

यदि कोष्ठबद्धता का रोगी कुटकी, त्रिफला, त्रायमाण, गुड़, और दाख (अंगूर) का काढ़ा बनाकर पी ले तो उसकी कब्जियत दूर हो जाती है। कफ रोग से पीड़ित मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह उक्त पेय को न पीवे। भोजनोपरांत जल और पेया पीने से कफज रोगी में कफ की वृद्धि होती है।

कफाधिक्य के कारण कृश शरीर के रोगी को भूसीरहित यव को अच्छी तरह से पकाकर पीना लाभदायक होता है। रोगियों के प्रति शुभेच्छुक चिकित्सक का यह कर्तव्य है कि वह कुलथी, चना और अनारदाना के साथ पकाये गये हलके यूष

अथवा रूक्ष, कटु रसों वाले चिकने और रुचिकारक यूष सेवन करने का परामर्श दे।

दोष का परिपाक भली प्रकार से हो जाने पर घृत का प्रयोग अमृत के समान फलदायक होता है, किन्तु इसके विपरीत वह विष का कार्य करता हैं। प्राय: दश दिनों के पश्चात् कफज ज्वर का परिपाक हो जाता है। अत: उसी समय से कुशल वैद्य घृत का प्रारम्भ करा दे।

यदि रोगी या निरोगी व्यक्ति सायंकाल में हलका भोजन ले तो उसे अभीष्ट सिद्धि मिलती है, क्योंकि यह समय कफ की कमी और जठराग्नि-वृद्धि का काल होता है। कफ-वातजनित ज्वर में तृषातुर रोगी को गरम जल तथा विधिवत् पाचित यूषादि रसों के प्रयोग करने चाहिए।

पित्त और मद्यपान के विष से उत्पन्न ज्वर में तिक्तक (परवल, चिरायता, कृष्णखदिर) का काढ़ा अथवा मोथा, पित्तपापड़ा, खस, कुटकी, चन्दन तथा सोंठ का क्वाथ बनाकर पिपासा एवं ज्वर शमनार्थ प्रयुक्त करें। (इति षडंग:)

तरुण ज्वर (प्रारंभिक अवस्था) में औषधों का प्रयोग वर्जित है, केवल सिद्ध किये गये पेया आदि देने चाहिए। अत: ऊपर कथित षडंग में बतलायी गयी औषधियों का कषाय सोलहगुने जल में पकाये जाने पर जब चौथाई भाग शेष रहे तो उसे तरुण ज्वर में प्रयुक्त करें।

सात दिनों तक रहने वाला ज्वर तरुण, बारह दिनों तक मध्यम तथा इसके बाद बना रहने वाला ज्वर प्राचीन कहा जाता है। जिस समय ज्वर धीमा, शरीर हलका तथा मल चलायमान हो उस समय तरुण ज्वर में भी औषधों का प्रयोग किया जा सकता है।

दोषों की मूलप्रकृति में विकार प्रविष्ट होने पर दोष की परिपक्वता समझनी चाहिए। किसी-किसी विद्वानों का कथन है कि वातविकार सात दिन में, पित्तविकार दश दिन में तथा कफ का विकार बारह दिनों में परिपक्व होता है। चिकित्सक को निर्बल दोष वाले औषधिसाध्य रोगों की चिकित्सा विचारपूर्वक करनी चाहिए। दोष का परिपाक हो जाने के अनन्तर यदि दोष को शरीर से बहिर्गत न किया जाय तो वह दोष रोगी की मृत्यु का कारण बन जाता है। अत: इसके लिए ज्वर को विषम बनाने तथा ज्वर को बलहीन करने की आवश्यकता पड़ती है।

कुछ लोग तीन दिन तथा कुछेक लोग दश दिन के पश्चात् औषधि-व्यवस्था को उचित मानते हैं। किसी-किसी के मत से तरुण ज्वर में कषाय का प्रयोग अनुपयोगी होता है। उनका मानना है कि कषाय-प्रयोग से दोष शरीर में जम जाया करते हैं, जिन्हें बाहर निकालना एक दुष्कर कार्य होता है।

सभी प्रकार के ज्वर में सेवन योग्य द्रव्य

सभी प्रकार के ज्वरों में सबसे पहले रोगी को सोंठ, मोथा, देवदारु, धनिया और बृहतीद्वय (कंटकारी, कटेहरी) का ज्वरनिवारक पाचन प्रयुक्त कराना चाहिए। पथ्य ग्रहण करने से पूर्व सेवित औषधि अधिक बलकारी होती है। अतएव रोग को क्षीण और स्वयं को शक्तिशाली बनाने के इच्छुक बाल, वृद्ध, तरुण, तरुणी तथा कोमल प्रकृति वाले रोगियों को पथ्य लेने से पूर्व ही औषधि का सेवन करना आवश्यक है।

भोजनोपरांत औषधि सेवन से रोगी में क्लान्ति और दुर्बलता आती है। ऐसा करने पर रोग का शमन न होकर उसका वर्धन होता है तथा रोग का प्रकोप बराबर बढ़ता ही जाता है। ठीक इसी प्रकार औषधि सेवन के उपरांत पथ्य न लेने से औषधि फलहीन हो जाती है। तदनन्तर पथ्याक्रान्त औषधि देकर शीघ्र ही दोष का पाचन एवं बल का वर्धन किया जाता है।

पथ्ययुक्त औषध ग्रहण करने से रोगी में जब कुछ स्वस्थता आ जाय तब किसी स्वच्छ, एकांत और वायुरहित स्थान में ले जाकर चिकित्सक को स्वेदन कर्म करना चाहिए। इस प्रकार अवस्थानुसार मात्रा सहित औषधि प्रयोग के द्वारा रोगी रोगमुक्त हो जाता तथा चिकित्सक भी यशस्वी होता है।

मिताहारी-मिबिहारी

यदि रोगमुक्त व्यक्ति पुनः ज्वराक्रान्त न होना चाहे तो उसे प्रमाणानुसार आहार-विहार करते हुए नित्यप्रति शक्त्यानुसार व्यायाम भी करते रहना चाहिए। जो व्यक्ति क्षुधारक्षण करते हुए कालोचित और उपयुक्त आहार लेता तथा विकृतिविहीन पदार्थों का अनुसरण करता है वही मिताहारी कहलाता है।

दिन के दोनों सन्ध्याओं में अनिद्रित रहना, समय से सोना-जागना, इन्द्रियों को अपने वश में रखना, मुख्य व्यायाम, मार्गभ्रमण तथा परिश्रम आदि गौण व्यायाम कहे जाते हैं। जो पुरुष सर्वांगसुंदरी और नीरोग भार्या के साथ ऋतुकाल में शक्ति का रक्षण करते हुए रात्रि में रमण करता है वह मितविहारी कहलाता और अजरता-अमरता को प्राप्त करता है।

प्रातःकालीन जलपान से होने वाला लाभ

नित्यप्रति प्रातःकाल सोकर उठते ही साक्षात् अमृततुल्य गुणकारी स्वच्छ और शीतल जल का पान करने वाला व्यक्ति अजरत्व तथा अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। प्रतिदिन प्रातःकाल सुंदर जल को अच्छी तरह से पीने वाला पुरुष राजयक्ष्मा, खाज-खुजली तथा कुष्ठादि रोगों से रहित हो जाता तथा उसके शरीर का कांतिवर्धन भी होता है।

व्यायाम, भोजन व मैथुनान्त का पान

दीर्घकाल तक जीवित रहने के इच्छुक व्यक्ति को व्यायाम, भोजन तथा मैथुन के अन्त में शक्करमिश्रित मधु और दूध का पान करना चाहिए। जल का व्यवहार बिलकुल ही नहीं करना चाहिए।

परिणाम से अनभिज्ञ रहने वाले मूढ़ बालक यौवनारम्भ काल में ऐसे दुष्कर्म करने लगते हैं जिनसे शरीरस्थ धातुओं का क्षय हो जाता है। ये धातुएँ ही शरीर को विकसित कर बल-बुद्धि को बढ़ाती हैं। धातु को ही शरीर का आधार-स्तम्भ भी माना जाता है।

वीर्यहानि के दुष्परिणाम

वीर्यक्षय के कारण शक्तिहीन प्राणी यौवनान्त में अपने किये हुए दुष्कर्मों पर पश्चात्ताप करके अनेक प्रकार के कष्ट भुगतने के लिए विवश हो उठते हैं। उनके कर्मफल निम्नरूप में उभरकर सामने आते हैं, जैसे—दुर्बलता, मूढ़ता, दीप्ति, बुद्धि और स्मृति का लोप होना।

इस प्रकार के दुर्भाग्य से मन में निराशा, उत्साहहीनता, उत्साहहीनता से रोगग्रस्तता तथा रोगग्रस्तता के परिणामस्वरूप मृत्यु का होना सुनिश्चित रहता है। यदि अल्प वयवाले जीवन-पर्यन्त भाग्यशाली तथा पौरुषवान बने रहना चाहें तो उन्हें इस प्रकार के दुष्कर्मों का परित्याग कर देना ही उचित है।

क्रोध, चिन्ता, अहंकार और ईर्ष्या की ज्वाला में निरन्तर जलने वाला व्यक्ति भी स्वल्पायु होता है। अत: विवेकशील प्राणी को इन सब दोषों से सदैव बचना चाहिए।

वातादिज्वर का उपचार

रावण कहते हैं कि—क्रमानुसार वातज्वारदि रोगों की उन औषधियों का वर्णन करता हूँ जो बल-बुद्धिवर्धक तथा आयुष्य का महान कारण रूप है। चिरायता, मोथा, अमृता (गुरुच, हरड़, छोटी पीपर), सुगंधवाला, दोनों बृहती (कंटकारी, कटेहरी) और गोखरू। इन्हें पकाकर तैयार किया गया कषाय वातज्वर को दूर करता है।

पिप्पली (छोटी पीपर), सारिवा (सालसा), दाख (अंगूर) सौंफ, हरेणु (एक गंधद्रव्यविशेष) तथा गुड़ के साथ इन औषधों का कषाय वातज्वरनाशक होता है। दाख, गिलोय, कम्भारी (खम्भारी), त्रायमाण, सालसा। इन सबका क्वाथ खजूर के रस के काढ़े में मिलाने पर वातज्वरविनाशक हो जाता है।

कुटकी, मोथा और इन्द्रयव। इनके क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से

पित्तज्वर में लाभ होता है। लोध, कूठ, गिलोय (गुरुच), पुष्करमूल और सालसा। इनका क्वाथ बना शक्कर मिलाकर पीने से पित्तज्वर में लाभ पहुँचाता है। यह क्वाथ साक्षात् अमृतस्वरूप होता है। नीम, केशर, वंशलोचन और धनिया को घोंटकर पान करना पित्तजज्वर में लाभकारी होता है।

दुरालमा, पित्तपापड़ा, प्रियंगु का फूल, चिरायता, अडूसा और कुटकी। इनका काढ़ा शक्कर मिलाकर पीने से प्यास, पित्तज्वर तथा जलन शान्त होती है। परवल के पत्ते और इन्द्रयव का काढ़ा बना उसमें मधु मिलाकर पान करना तेज पित्तज्वर और पिपासा को दूर करता है।

पित्तज्वर विनाश हेतु एक अकेला पित्तपापड़ा ही पर्याप्त होता है। यदि उसमें गौरीसर, हरिचन्दन, सोंठ और मोथा भी मिला दें तो पित्तज्वर दूर होने में देर नहीं लगती। सोंठ, सुगंधवाला, पित्तपापड़ा, खस, मोथा और चन्दन। इन्हें पकाकर काढ़ा करके पीने से प्यास, वमन, ज्वर तथा दाह आदि रोगों का निवारण होता है।

दाख, अमलनास और कम्भारी (गम्भारी) का काढ़ा पीने से पित्तज्वर का नाश होता है। दाख, हरीतकी (हरड़), पित्तपापड़ा, कुटकी और अमलतास। इनका क्वाथ मूर्च्छा, प्रलाप, जलन, पिपासा तथा मुख का सूखापन दूर करता है।

एक दिन तक धनिया को जल में भिंगोये रखकर दूसरे दिन छानकर उसमें शक्कर मिला ले और पान करें तो पित्तज्वर के कारण उत्पन्न होने वाली जलन शान्त हो जाती है। अमलतास, सीसक, पीला चंदन या छोटा प्लक्ष (पाकड़), तमालपत्र (आबनूस का पत्ता) और बहेड़ा। इनको पीसकर हड्डी और मज्जा के दाह में लेप लगाना लाभप्रद होता है।

बेर वृक्ष के पत्तों से निकले हुए झाग से सिद्ध करके बिदारीकंद, अनार, लोध, कैथ (एक फलविशेष) और बीजपूर। इन्हें पीसकर तीन बार मस्तक पर लेप लगाने से जलन नष्ट होती है। इससे पुराने बुखार में होने वाली जलन भी दूर हो जाती है।

केले या नीम के पत्तों पर पीठ के बल लेटे हुए रोगी के नाभिस्थल में एक काँसे का पात्र रखकर शीतल जल की तेज धारा गिराने से शीघ्र ही जलन मिट जाती है। अथवा जिस नारी का कंठप्रदेश गलहार से विभूषित हो, उसके अंग-प्रत्यंग शीतल चन्दन से लिप्त हों तथा उसके स्तन, जाँघें और नितम्ब के भाग परिपुष्ट हों—ऐसी कल्याणमयी नवयौवना नारी का प्रेमालिंगन करने पर तत्काल ही शारीरिक जलन शांत हो जाती है।

कमलपुष्पों तथा हंसों का समूह, फौव्वारे से युक्त वापी तथा चंदन से लेपित

शरीरांगी सुखदायिनी स्त्री भी दाहहारिणी होती है। अथवा पित्तज्वर से ग्रस्त रोगी यदि जलहीन मेघों के समान शुभ्र, निर्मल, चंद्रकिरणों से शीतल तथा चंदनाभिषिक्त स्थान में निवास करें तो भी पित्तज्वर का नाश हो जाता है।

केश, त्वचा, तालु और जीभ की शुष्कता में सेंधानमक के साथ मधु मिलाकर बीजपूर की केशर के सहित मस्तक पर लेपित करने से उत्तम फल मिलता है।

हरड़, प्रियंगु का पुष्प, पिप्पली (छोटी पीपर), लोध, दोनों हलदी (हलदी एवं दारुहलदी) और आँवला। इन सब वस्तुओं से कुल्ला करने पर मुख की कड़ुआहट दूर होती है। मुखशोधन के परिणामस्वरूप भोजन के प्रति रुचि भी बढ़ती है।

कफज्वर का उपचार

कूठ, इन्द्रयव, मरोड़फली और परवल। इन सबका कषाय निर्मित कर उसमें कालीमिर्च और शहद मिलाकर पान करने से कफज्वर का प्रकोप नष्ट होता है। परवल, त्रिफला, गिलोय, कूड़ा, कुटकी, वच (कुलंजन) अथवा दशमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, खम्भारी, गोखरू, बेल, श्योनाक (सोनापाठा), पाढल, अरणी, दोनों कटेरी (छोटी एवं बड़ी) और बाँसा—इन्हें दशमूल कहा जाता है।) का काढ़ा बनाकर मधु के साथ पीना कफज्वर में लाभकारी होता है।

स्नेहसंज्ञक क्वाथों में घृत और मधु डालकर एक साथ ही पाक करें। यहां यह ध्यान रहे कि कार्तिक मास का निकाला हुआ मधु और घी पुराना होना आवश्यक है। दश साल का रखा हुआ घी पुराना माना जाता है।

आँवला, हरड़, पिप्पली और त्रिफला। इन सबका एकीकृत योग अग्निदीपक, दोषशामक, कफनाशक तथा सम्पूर्ण ज्वरों का निवारक होता है।

कायफल (कट्फल), पुष्पकरमूल, छोटी पीपर और कर्कटशृंगी (काकड़ासिंघी)— इन चार वस्तुओं का लेह मधु के साथ सेवन करने पर श्वास, कास (खाँसी), कफ और ज्वर का विनाश हो जाता है। उक्त रोगों का नाशक होने के अतिरिक्त यह प्लीहा (बरवट, तिल्ली), हिचकी तथा बालरोगों में भी लाभप्रद होता है।

उपर्युक्त औषधों के चूर्णित कल्क की वटिकाओं की मात्रा पाँच रत्ती होनी चाहिए तथा गीले रस को सीपी द्वारा चाटना उपयुक्त होता है। अथवा सुविज्ञ चिकित्सक को इसकी मात्रा का निर्धारण ज्वरदोषबल, औदरिक अग्निबल, शारीरिक बल, अवस्था, औषधबल तथा आमाशयिक बल को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए।

छोटी पीपर, करीर, चव्य, चित्रक, अतीस, सोंठ, स्याह एवं श्वेत जीरा, पाठा, हींग, रेणुका, दाख, सफेद सरसों, कुटकी, महानिम्ब, इन्द्रयव, अजमोदा, छोटी इलायची, भारंगी और वायविडंग (भाभीरंग)—इन बीस वस्तुओं से सम्मिलित योग से पाचित किया हुआ यह कृष्णादिगण कफरोगविनाशक माना गया है।

वातपित्तज्वर का उपचार

मिलित दोषों में मिलित औषधों का पाचन (दोषशामक कषाय या काढ़ा) देना लाभकारी होता है। इसके लिए त्रिफला, शाल्मलि (सेमल), रास्ना, अमलतास और बाँसा—इनका क्वाथ पान करने से वातपित्तज्वर तत्क्षण ही नष्ट हो जाता है।

अतीस, गुरुच, मोथा, चिरायता, लघुपञ्चमूल (सरिवन, पिठवन, दोनों कटेरी तथा गोखरू)—इनका पाचित कषाय पीने से शीघ्र ही वात-पित्तज्वर दूर हो जाता है। अथवा चिरायता, गिलोय, दाख, आँवला और कचूर—इनका काढ़ा बना गुड़ मिलाकर पीने से वातपित्तज्वर का शमन होता है।

कटेरी, खिरेंटी, रास्ना, त्रायमाण तथा लाल कचनार। इनका क्वाथ वात-पित्तज्वर को नष्ट कर देता है। अथवा गुरुच, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ—इनके द्वारा सिद्ध पंचभद्र नामक औषध वात-पित्तज्वर में सेवनीय कहा गया है।

चिरायता, सोंठ, मोथा और गिलोय—इनका क्वाथ कफाधिक्य ज्वर में तथा पाठा, नेत्रवाला, खस या कमलगट्टायुक्त क्वाथ पित्ताधिक्य ज्वर में प्रयोज्य है। इन् अवलेहिका का प्रयोग ऊर्ध्वगामी रोग में भोजनोपरांत तथा निम्नगामी रोगों में भोजन से पूर्व करना उचित है।

पाठा, रास्ना, गुरुच, सोंठ, मोथा, चिरायता और पोहकरमूल। इनका काढ़ा संधिशूल, ज्वर, श्वास, खाँसी, हिचकी तथा अरुचि में लाभकारी होता है।

कंटकारी, गुरुच, भारंगी, सोंठ, कूड़ा, जवासा, चिरायता, चंदन, मोथा, परवल और कुटकी। इनका उत्तम कषाय पीने से पित्तकफजन्य ज्वर, जलन, पिपासा, अरुचि, वमन, खाँसी एवं पार्श्वशूल (पसली का दर्द) नष्ट होता है।

गुरुच, नीम, धनिया, चंदन और पुष्करमूल—इन पंच पदार्थों से निर्मित इस गुडूच्यादि क्वाथ के पान करने से जठराग्नि का प्रज्वालन होता है। अत: यह समस्त प्रकार के ज्वर में प्रयोक्तव्य है। गिलोय, चंदन, मोथा, कमलगट्टा, पान, कूड़ा, बासाँ, जंगीहर्रें, सोंठ,खस, पाठा, धनिया, सुगन्धवाला और कुटकी। इनके कषाय को छोटी पीपर और शहद के साथ चाटने से कास, श्वास, ज्वर, वमन, पिपासा तथा जलन दूर होती है।

परवल, चंदन, मरोड़फली, पाठा, कुटकी और गिलोय। इन सब वस्तुओं

को पटोलादिगण कहते हैं। इसके द्वारा पित्तज-कफज ज्वर, वमन, दाह, ग्लानि और पिपासा दूर होती है।

पत्र-पुष्प के साथ निचोड़ा हुआ अड़ूसे का रस, क्षुद्रशर्करा (यावनालशर्करा) को एक साथ पीने से कफ-पित्तजन्य ज्वर, छिन्नपित्त तथा कामला रोग (पीलिया) नष्ट हो जाता है।

केवल एक कुटकी को नियमपूर्वक गरम जल के साथ सेवन करने पर कफ-पित्तज्वर का रोगी रोग से छुटकारा पा सकता है। अथवा परवल, नीम, त्रिफला, मुलेठी और वरुना का कषाय पान करना कफ-पित्तमिश्रित ज्वर में लाभकारी होता है।

गुरुच, इन्द्रयव, नीम, परवल, कुटकी, सोंठ,चंदन तथा मोथा। इन आठ वस्तुओं से निर्मित अमृताष्टक नामक क्वाथ पीने से पित्त-कफ का ज्वर छूट जाता है।

मिट्टी के खप्पर पर गरम की हुई बालुका को बिस्तर के अध:पुट में स्थापित बासी तक्रजल (मट्ठे का पानी) में बिखरने से उत्पन्न होने वाला स्वेद, वात, कफ, शिर:शूल तथा अंग-भंग आदि रोगों को दूर कर देता है।

उक्त प्रकार का बालुकास्वेद नाड़ीस्रोत की कठोरता हटाकर उसे आमाशय में पहुँचाकर वात-कफ के स्तंभ को नष्ट कर देता और ज्वर को दूर भगा देता है।

बिजौरा नीबू के फल का केशर तथा लाल सहिजन के फूल कालीमिर्च के साथ मुख में धारण करने पर वात, कफ, मुखरोग, मुख का सूखापन, जकड़न और अरुचि को दूर करता है।

पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ। इन पाँच वस्तुओं का समूह क्षुधावर्धक तथा कफ-पित्तज्वर निवारक होता है।

अमलतास, करीर, कुटकी, मोथा और हरड़। इनका निर्मित कषाय आमाशयिक शूल, कफज-वातजज्वरनाशक, पाचक तथा दीप्तिकारक होता है।

पिप्पलियों से निकाला हुआ जल, चक्षु रोगनाशक तथा पाचक होता है जिसके फलस्वरूप यह वात-कफ के दोष, ज्वर एवं प्लीहा (बरवट) के रोगों का नाशक होता है।

मोथा, पित्तपापड़ा, जवासा, गिलोय और सोंठ। इन सबसे सिद्ध किया हुआ जल वात, कफ, भोजन में अनिच्छा, शारीरिक जलन, वमन, सूखापन और ज्वर को हटाता है।

कटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहकरमूल। इनका निर्मित कषाय पान करने से कफ-वाताधिक्य ज्वर, श्वास, खाँसी, अरुचि, पार्श्वशूल के कारण उद्भूत ज्वर तथा त्रिदोषज ज्वर नष्ट होता है।

दशमूल (संरिवन, पिठवन, बेल, सोनापाठा, परवल, खम्भारी, अरणी, छोटी एवं बड़ी कटेरी और गोखरू) का रस छोटी पीपर के साथ पीने से कफ-वातज्वर, अरुचि, निद्रालुता, पसली का दर्द, श्वास, कास आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं।

सन्निपातज्वर का उपचार

सर्वप्रथम सन्निपात ज्वर में कफ पर नियंत्रण करना अत्यन्त आवश्यक होता है। कफ को नियंत्रित कर लेने पर वात-पित्त पर विजय पाना सरल हो जाता है। वात, पित्त और कफ—इन तीनों के बलवान हो जाने या विलोम की अवस्था में आने पर उसे सन्निपात के नाम से जाना जाता है। गहरे जल में किसी डूबते हुए व्यक्ति के समान सन्निपातग्रस्त रोगी को अपनी बुद्धि के द्वारा आश्रय देकर उसे बाहर खींच लाना ही सुयोग्य चिकित्सक का कर्तव्य माना जाता है।

जिस समय रोगी की पिपासा शान्त होकर उसे नींद आने लगे और शरीर में हलकेपन की अनुभूति हो तो सन्निपातज्वर की निर्बलता समझ लेनी चाहिए। सान्निपातिक ज्वर में लंघन, बालुका स्वेदन, नस्य (नाक द्वारा सूँघने की वस्तु), कुल्ला, अवलेह तथा अंजनादि के प्रयोग करने चाहिए।

सन्निपातज्वर में तीन दिन, पाँच दिन या दश दिन अथवा जब तक आरोग्यता का अवलोकन न हो तब तक उसे लंघन कराना उचित है, क्योंकि लंघनों की सहनीय शक्ति ही दोषों की शक्ति का प्रतीक होता है। दोषों का दमन होने के पश्चात् लंघन-शक्ति में असमर्थता आ जाती है।

कफ और पित्त—ये दोनों ही धातु पदार्थ होने के फलस्वरूप दीर्घकालिक लंघन का सहन कर सकते हैं, किन्तु वायु पर नियंत्रण हो जाने के उपरांत उसे क्षणमात्र भी आमाशय सहन नहीं कर सकता। इसके लिए अदरक के रस में सेंधा नमक और त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) मिलाकर उसे गले तक रख लें और बार-बार उससे कुल्ला करते रहें।

इस प्रक्रिया के द्वारा रोगी के हृदय में जमा हुआ सूखा कफ धीरे-धीरे पसली, शिर और गले के द्वारा खिंचकर बाहर निकल आयगा और कफ की क्षीणता हो जायगी जिसके परिणामस्वरूप इसके सभी औपद्रविक लक्षण जैसे—ग्रंथिभेद, ज्वर, नींद का अभाव, श्वास, कास, गलरोग, मुख और नेत्रों की भीषणता, अचैन्यता तथा उत्क्लेश आदि शान्त हो जाते हैं।

रोगी के दोषों के बलाबल का विचार कर उससे दिन में एक से चार बार तक उक्त कथित रीति से कुल्ला करायें। सन्निपात ज्वरग्रस्त व्यक्तियों के लिए यह विधि एक परमौषधस्वरूप है।

बिजौरा नीबू, और अदरक के रस को हलका गरम कर उसमें त्रिलवण (सेंधा नमक, सोंचर नमक और काला नमक) मिलाकर सन्निपात रोगी को नाक से सूँघने के लिए दें। अथवा इसके अतिरिक्त किसी अन्य अनुभूत एवं तीक्ष्ण नस्य का भी प्रयोग कर सकते हैं। नस्य प्रयोग के द्वारा शुष्क कफ का भेदन होने से वह गीला हो जाता है। इसके अतिरिक्त इससे शिर, हृदय, कंठप्रदेश, मुख तथा पसली के रोगों का भी शमन हो जाता है।

चिरायता, कालाजीरक, कुटकी, वच और कायफल। इनके चूर्ण को रोगी के शरीर पर मलने से सान्निपातिकज्वर में निकलने वाला पसीना सूख जाता है। अथवा गोपीचंदन, लोध, कालाजीरा, चिरायता, कुटकी, वच, भूरिछड़ीला तथा पंचलवण (सेंधा नमक, साँभरनमक, खारा नमक, सौचर नमक और कचलोन) का सिद्ध गुंडन भी सान्निपातिक पसीने को रोकता है।

शिरीष के बीज, गोमूत्र, पिप्पली, कालीमरिच, सेंधानमक, लहसुन, मैनसिल तथा वच। इनसे सिद्ध किया हुआ अंजन मूर्च्छितावस्था में प्रयुक्त करने से रोगी में चेतनता आती है।

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, सोंठ, कालीमरिच, पीपर, भूरिछड़ीला। इन सबका महीन चूर्ण बनाकर शहद के साथ चाटने से सन्निपात में लाभ होता है।

इस अवलेह के द्वारा कठिनतम सन्निपात का विनाश होने के साथ ही हिचकी, श्वास, खाँसी तथा गला रूँधने में भी लाभ मिलता है। उक्त कथित चूर्ण का प्रयोग कफाधिक्य सन्निपात में अदरख के रस के साथ करना लाभप्रद सिद्ध होता है।

हलदी, भद्रमुस्तक (विशेष प्रकार का नागरमोथा), त्रिफला, कटुकी, नीम, परवल, देवदारु और कटेरी।

उक्त वस्तुओं का कषाय निर्मित कर पीने से सन्निपात दूर होता है। इसके साथ ही अविपाक, पसीना निकलना, खाँसी, सूखापन, अरुचि आदि ज्वरावस्था में पाये जाने पर उन औपद्रविक लक्षणों को भी उसी प्रकार नष्ट कर डालता है जिस प्रकार वज्राघात से पर्वतों के पंख नष्ट हो जाते हैं।

सभी सान्निपातिक ज्वरों में मधु का प्रयोग अनुचित कहा गया है, क्योंकि यह शीतवर्धक होता है। इसी प्रकार दुग्धप्रयोग की भी मनाही की गयी है। त्रिदोषज ज्वर में बलाबल के अनुसार उसके समतुल्य क्रियाओं का प्रयोग अच्छा होता है। इसका कारण यह है कि भिन्न रूपवाले औषधों के प्रयोग से दोषवर्धन होता है।

सन्निपात ज्वर की आरंभिक अवस्था में लंघनोपरांत रोगी को कवलग्रह से अच्छा लाभ मिलता है। अत: इसमें सेंधा नमक के साथ लावा का पीसा हुआ सत्तू

हितकर पथ्य होता है। किसी-किसी के मत से जल में सिद्ध लावा का सत्तू भी शीतल होने के कारण पित्त में हितकारक तथा दाहज्वरनाशक होता है।

सन्निपात में पञ्चमुष्टिकयूषपथ्य महत्त्व

सन्निपात में त्रिकंटक (बृहती, अग्निदमनी, जवासा) अथवा केवल गोखरू के साथ पकाया हुआ पंचमुष्टिकयूष ही दोषों के शमन होने तक पर्याप्त लाभकारी होता है।

पंचकोल (छोटी पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) तथा कुलथी, मूँग और पुष्करमूल—इनमें से प्रत्येक वस्तुओं को एक-एक मुट्ठी-भर लेकर चूर्ण कर लें। पुनः इन्हें अठगुने जल में पका लेने पर पंचमुष्टिक यूष तैयार हो जाता है। इस यूष को वात-पित्त की अधिकता वाले सन्निपात, गुल्म, श्वास-कास तथा क्षयज्वर (तपेदिक) में प्रयोग करने से उत्तम फल मिलता है।

यहाँ उक्त पंचकोल में सोंठ की मात्रा एक मुट्ठी-भर, शेष अन्य चारों की मात्रा एक मुट्ठी-भर में होनी चाहिए।

द्वात्रिंशाङ्गक्वाथ का योग और उपयोग

द्वात्रिंशांग क्वाथ का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित बत्तीस वस्तुएँ प्रयुक्त की जाती हैं जो इस प्रकार से हैं—

कायफल, मोथा, वचा, पाठा, पुष्करमूल, कालाजीरक, पित्तपापड़ा, देवदारु, हरड़, काकड़ासिंगी, बहेड़ा, चिरायता, सोंठ, भारंगी, कूड़ा, कटुकी, कचूर, धनिया, रोहिस नामक तृण, दशमूल, अदरख और हींग।

उक्त प्रकार का द्वात्रिंशाङ्ग क्वाथ गलगण्ड, गण्डमाला, स्वरभंग, कफ, कर्णमूल, सन्निपात, ग्रंथिरोग तथा कण्ठरोग का शमन करने वाला होता है।

चतुर्भद्रकपञ्चमूल का लाभ और योग

लघुपंचमूल, किरातादिगण (चिरायता, मोथा, गुरुच और सोंठ)। इनका क्वाथ पित्त की अधिकता वाले सन्निपात में सौंफ के साथ तथा कफाधिक्य सन्निपात ज्वर में पीपर के साथ सेवन करना प्रशस्त माना जाता है अथवा कफ की अधिकता में काला नमक के साथ भी प्रयुक्त हो सकता है।

सोंठ, अतीस और मोथा—इन तीनों को एक-एक कर्ष की मात्रा में लेकर गुरुच मिला देने पर चातुर्भद्रिक क्वाथ कहा जाता है। बिल्व (बेल), सोनापाठा, खम्भारी, लाल रंग का लोध और अगेयु वृक्ष मिलाकर पकाया हुआ काढ़ा बृहत् पंचमूल नाम से जाना जाता है। यह अग्निदीपक और कफ-वात का नाश करने वाला होता है।

पञ्चमूल का योग एवं लाभ

दशमूल की दश वस्तुओं में से सरिवन, पिठवन, बृहती कंटकारी और गोखरू—इन पंचमूलों को शुष्क गोबर के साथ साधित करने पर यह वात-पित्तहारक तथा वीर्यपुष्टिकारक हो जाता है।

अब दशमूल की शेष बची हुई पाँच वस्तुओं को उक्त पंचमूल में समाविष्ट कर देने पर सन्निपातज ज्वर, श्वास, कास, तन्द्रा (आलस्य) तथा पार्श्वशूल में लाभकारी होता है।

इसके अतिरिक्त इसे नियमित रूप से पीपलचूर्ण के साथ सेवन करने पर कंठग्रह, हृदयग्रह आदि समस्त उपद्रवों का यह शमन कर देता है। एरण्ड (रेंड़, अण्डी) के रस में पिप्पली मिलाकर इसका प्रयोग एकोत्तरवृद्धि (एक-एक की संख्या प्रतिदिन बढ़ाना) क्रमानुसार तीन, पाँच, सात या दश दिनों तक करने पर इससे खाँसी, श्वास, ज्वर, उदर का गर, बवासीर तथ मन्दाग्नि रोग का नाश हो जाता है।

चतुर्दशाङ्ग का योग एवं लाभ

पित्तज्वर, वात-पित्त के औपद्रविक लक्षण तथा सन्निपात के दोषशमनार्थ दशमूल के साथ किरातादिगण को निशोध के साथ प्रयोग करना आवश्यक होता है।

अष्टदशाङ्ग का योग एवं लाभ

दशमूल, कचूर, काकड़ासिंगी, पुष्करमूल, भारंगी, दुरालभा, कूड़ा के बीज, परवल और कटुकी। इन अट्ठारह वस्तुओं का मिश्रित रस अष्टादशांग कहलाता है। इसका रस त्रिदोषज ज्वर, श्वास, कास, हृदयग्रह, पार्श्वशूल, हिचकी तथा वमन को दूर करने वाला होता है।

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, मोथा, कूड़ा के बीज, धनिया, नागकेशर और छोटी पीपर। इनका कषाय पीने से आलस्य, प्रलाप (व्यर्थ की बकवास), खाँसी, भोजन में अनिच्छा, जलन, मूर्छा तथा श्वासादि लक्षणों वाले ज्वर शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

मुस्ताद्योगण का योग एवं लाभ

मोथा, पित्तपापड़ा, खस (एक प्रकार का सुगंधित तृण), देवदारु, सोंठ, त्रिफला, जवासा, नील, कबीला, निशोथ, चिरायता, पाठा, वच, कटुकी, मुलेठी और पिपरामूल का समायोजन ही मुस्तादिगण कहलाता है।

यद्यपि अष्टादशांग रस तथा मुस्तादिगण सन्निपातनाशक होते हैं, किन्तु आयुर्वेदज्ञों का मानना है कि ये औषधियाँ प्राय: पित्ताधिक्य वाले सन्निपात में ही अपना गुण प्रकट करती हैं।

शठ्यादि द्रव्य योग के लाभ

कचूर, पोहकरमूल, गुरुच, सोंठ, परवल, त्रायमाण, दुरालभा, पिप्पली, कटेहरी, पित्तपापड़ा, रास्ना, हरीतकी (हरड़), कटुकी, देवदारु और भारंगी—इन्हें सम परिमाण में सिद्ध किया हुआ।

बृहत् शठ्यादिगण सन्निपात को नष्ट करने के साथ-ही-साथ खाँसी, श्वास, दिन में नींद आना, रात्रि में जागना, मुख का सूखना तथा आंगिक जलन में भी लाभकारी होता है।

योगराज रस के योग एवं लाभ

सोंठ, धनिया, भारंगी, पोहकरमूल, चंदन, परवल, नीम, त्रिफला, मुलेठी, खिरेंटी, खांड़, कुटकी, मोथा, गजपिप्पली, गेंठी या अमलतास, चिरायता, गुरुच, दशमूल, कटेरी। इनके सम्मिश्रण से निर्मित क्वाथ द्वारा सन्निपातज्वर नष्ट होता है। इसके द्वारा सन्निपात उत्पन्न करने वाली निकटतम मृत्यु पर भी विजय-लाभ किया जा सकता है।

कारव्यादि द्रव्य योग के लाभ

कारवल्ली, पुष्करमूल, अण्डी, त्रायमाण, वासा (अडूसा नामक पौधा), गिलोय, दशमूल, कचूर, काकड़ासिंगी, तेजपात, भारंगी, पुनर्नवा (गदहपूरना नामक घास)। इन सब चीजों को समान भाग में लेकर काढ़ा बना पीने से शोथरोग (सूजन) तथा अत्यन्त प्रबल सन्निपातज्वर निर्मूल हो जाता है।

सान्निपातिक ज्वर में पसीने की उत्पत्ति होने पर कुलथी का चूर्ण बिखेरने से उत्तम फल मिलता है, क्योंकि प्रान्तर भागों में निरन्तर गीला पसीना निकलते रहने से रोगी की मृत्यु अवश्यंभावी होती है। जिस शीतग्रस्त सन्निपात रोगी के ललाट से अतिशीतल स्वेद का नि:सरण हो अथवा कण्ठोत्पन्न पसीना वक्ष:स्थल की ओर अग्रसर हो रहा हो तो ऐसा रोगी शीघ्र ही काल के गाल में समा जाता है।

निशोथ, इन्द्रायण (इनारुन), त्रिफला, कुटकी और अमलतास। इन सबके साथ पकाया हुआ सर्वज्वरनाशक तथा दोषभेदक क्वाथ जवाखार के साथ पीना लाभकारी सिद्ध होता है। इस क्वाथ को पित्ताधिक्य सन्निपात में दश दिन, कफाधिक्य में बारह दिन तथा वाताधिक्य में सात दिनों तक पीने से त्रिदोष को नष्ट कर दूषित रक्त, मज्जादि धातुओं तथा मल को परिपक्व कर देता है।

निगृहीत व्यक्ति का परित्याग करने या उसके वधार्थ सन्निपात का सीमा-काल ७/९/११/१४/१८ या २२ दिनों का माना जाता है।

सन्निपात में निषेध

जो वैद्य सन्निपात के आवेश में कंपित एवं प्रलपित रोगी को मांस-भक्षण कराता है वह वैद्य कहलाने का अधिकारी नहीं होता। सन्निपातज्वर में जलनयुक्त रोगी को शीतल जल से सिंचित करने वाला भी वैद्य नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसी अवस्था में ज्वरातुर किस प्रकार जीवन धारण कर सकता है?।

सन्निपातरूपी गहरे सागर में निमज्जित हो रहे रोगी को बाहर निकालने वाला चिकित्सक ही धर्मात्मा और पूजनीय होता है। सन्निपात की चिकित्सा करना मृत्यु के साथ युद्ध करने के समान होता है। अत: सन्निपात पर विजय पाने वाला ही समस्त रोगों को पराजित करने में सफल होता है।

सन्निपात उपचार कर्ता का कर्तव्य

सन्निपात रोगी में औषध-प्रयोग की निष्फलता से निराश हुए चिकित्सक को दाहाकुल और पिपासु को शीतलजल का प्रयोग कदापि नहीं कराना चाहिए। सन्निपात ज्वरोपरांत कर्णमूल में अत्यन्त दुर्दमनीय सूजन उत्पन्न हो जाती है जिसकी असहनीय पीड़ा से कोई विरला रोगी ही बच पाता है।

इसके लिए कलिहारी का सेवन या घृतपान कराना उचित होता है। तत्पश्चात् वात-पित्तनाशक लेप और तत्क्षण साधित कवलग्रहों का प्रयोग करना चाहिए। सोंठ, देवदारु, रास्ना और चित्रक—इन्हें पीसकर लेप लगाने से कानों की सूजन दूर होती है।

कुलथी, कायफल, सोंठ तथा कारवल्ली। इनका चूर्ण जटामांसी के साथ गरमाकर कुछ उष्ण रहने पर बार-बार कर्णमूल में लेपित करना आवश्यक होता है।

आभिचारिक प्रयोगों तथा गुरुजनों के शाप से शापित होने के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले ज्वरों को हवनादि, देवार्चन, शुभ कर्मों के द्वारा तथा औत्पातिक ग्रहों में दान, स्वस्तिवाचन एवं अतिथि-सत्कार से दबाना चाहिए। देशकाल के विचारक प्रबुद्ध चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह वानस्पतिक गंध तथा विषोत्पन्न ज्वरों को पित्तोपयोगी एवं विषोपयोगी कषायों का सेवन कराकर विजित करें।

क्रोधोत्पन्न ज्वर मनोरथ की सिद्धि तथा कामज ज्वर कामोपभोग से दूर होते हैं। अथवा काम, क्रोध या भय से उत्पन्न होने वाले ज्वर सान्त्वना देने, इच्छित वस्तु को पाने तथा मन को हर्षोल्लसित करने से नष्ट होते हैं। भूताभिषंग द्वारा प्रादुर्भूत ज्वर को भूतविद्या में कथित बंधन, आवेशन तथा ताड़न आदि प्रयोगों द्वारा विजित करें। किन्तु इस संदर्भ में यह स्मरण रहे कि वातादि दोषों के अभाव में ज्वरोत्पत्ति नहीं हो सकती।

माहेश्वरधूप का निर्माण व लाभ

सरलवृक्ष का गोंद, देवदारु, हींग, मोथा, कटुक (एक प्रकार का सुगंधित तृण), कटुकी, सर्षप (सरसों), नीम के पत्ते, मदनफल, दोनों बृहती, साँप की केंचुल, बिनौला, यव, बहेड़ा या धान की भूसी, गाय के गिरे हुए सींग, खुर और बाल, मोरपंख, बिल्ली का मल।

बकरी के रोम तथा घृत—इन सब पदार्थों को गौ के बछड़े के मूत्र के साथ मिलाकर सिद्ध करने से माहेश्वरधूप तैयार होता है। इस धूप की अग्नि में धूनी देने पर सभी प्रकार के भूत-ग्रहादिकों की बाधा दूर हो जाती है।

जीर्णज्वर का उपचार

कटेरी, सोंठ, गुरुच—इनके क्वाथ में छोटी पीपर मिलाकर जीर्णज्वर, श्वास, कास, शूल, जठराग्निमंदता और नासिका रोगों में पान करना हितकारी होता है (इतिनिदिग्धिकादि:)। कास, श्वास, अपच, अरुचि, पांडुरोग कृमिजन्य औपद्रविक रोगों, जीर्णज्वर तथा मन्दाग्नि में गुड़-पिप्पली का सेवन लाभप्रद सिद्ध होता है।

गुरुच के काढ़ा में पीपर का चूर्ण मिलाकर पान करने या पंचमूलीघृत का सेवन करने से पुराना बुखार और कफ का उन्मूलन होता है। काली अगरु का जुलाब शिर के भारीपन और शूल का नाशक होता है। इससे इंद्रियों की सक्रियता तथा जीर्णज्वर में रुचि उत्पन्न होती है। अत: यह प्रयोग करने योग्य है।

निरन्तर बना रहने वाला विषमज्वर तथा दीर्घकालिक जीर्णज्वर में ज्वरहारक पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए। चौलाई, वास्तूक (बथुआ), छोटी मूली, पित्तपापड़ा, गिलोय और परवल का पत्ता—इनका शाक बनाकर खाना जीर्णज्वर में लाभकारी होता है।

सुविज्ञ चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह रोगी को पुत्री (शाकविशेष) के साथ तुम्बी आदि लाभकारी शाकों का भी सेवन कराये। ज्वर से निर्बल होने वाले व्यक्ति में वमन, विरेचन आदि कर्म नहीं करने चाहिए, बल्कि दुग्ध या निरूह कर्म के द्वारा संचित मलों को निकालना ही उचित होता हैं। भोजन में अरुचि और शारीरिक निर्बलता के फलस्वरूप मल-मूत्र में विवर्णता रहती है।

ज्वरशांति के पश्चात् उसका पुनरावर्तन रोकने के उद्देश्य से रोगी का शोधन करते रहना आवश्यक होता है। ज्वर के जीर्ण और कफ के क्षीण होने की दशा में दूध अमृततुल्य गुणकारी होता है, किन्तु वही दूध ज्वर की तरुणावस्था में विष बनकर रोगी की मृत्यु को आमंत्रित करता है। पिप्पली-चूर्ण मिलाकर दुग्धपान करने से कफ का उन्मूलन होता है।

लघुपंचमूल द्वारा निर्मित दुग्धपान करने वाला व्यक्ति कास, श्वास, शिरःशूल, पार्श्वशूल तथा नासिका रोग से विमुक्त हो जाताहै। गोखरू, वच, कटेरी, गुड़ और मोथा—इनसे पाचित रसदुग्ध शोषनाशक, ज्वरापहारक तथा मल-मूत्रावरोध निवारक कहा गया है।

जीरकपाक के निर्माण हेतु अठगुना जीरा और जीरा से चौगुना जल डालकर आग पर पकावें। जब पकाने पर केवल जीरा ही शेष रह जाय तब जीरकपाक को पककर तैयार समझना चाहिए। उक्त जीरकपाक जीर्णज्वर में वज्रप्रहार के समतुल्य होता है तथा श्वास, खाँसी और मन्दाग्नि को भी दूर करता है।

ज्वररहित होने वाले दुर्बल तथा मिथ्याहारी व्यक्तियों में ज्वर का स्वल्पांश रहने से वायु की प्रेरणावश वे पुनः पूर्ववत् आक्रमण कर देते हैं।

ऐसे दोष प्रतिदिन-रात एक स्थान से दूसरे स्थान को आच्छादित करते हुए परिव्याप्त रहते हैं। ऐसी अवस्था में सुधार लाने के लिए निम्न प्रकार के पंचकषायों के प्रयोग विभिन्न रीतियों से करने चाहिए—

१. इन्द्रयव, परवल के पत्ते और कटुकी, २. परवल, सरिवन, मोथा, पाठा और कटुकी, ३. नीम, परवल, त्रिफला, दाख, मोथा तथा कूड़ा, ४. चिरायता, गिलोय, चंदन तथा सोंठ एवं ५. गिलोय, आँवला और मोथा।

उक्त प्रकार का कषाय ऐकाहिक (एक दिन के अंतर पर आने वाला), द्वयाहिक (दो दिन के अन्तर पर), त्र्याहिक (तीन दिनों के अन्तराल से) और चातुर्थिक (चार दिनों के अन्तर पर) ज्वर, सम या वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज तथा त्रैदोषिक (सान्निपातिक)—इन पाँच प्रकार के ज्वरों का दमन करके रोग से कृशांग मनुष्यों के अंग-प्रत्यंगों में बलवर्धन करता है। गुड़मिश्रित कालीजीरक के सेवन से विषमज्वर (टायफायड) का नाश होता है। इससे मन्दाग्नि दूर होकर वातज रोगों का भी शमन होता है।

विषमज्वर से आक्रान्त व्यक्ति को गुड़मिश्रित त्रिफला का क्वाथ अथवा सम परिमाणिक गिलोय, मोथा और आँवला का निर्मित कषाय पान करना लाभकारी होता है। अथवा मोथा, आँवला, गुरुच, सोंठ और कटेरी—इनका काढ़ा बनाकर पीने या छोटी पीपर के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से विषमज्वर का अन्त हो जाता है।

परवल, सारिवा (सरिवन), मोथा और कूड़ा। इनका क्वाथ पीने से दूसरे दिन आने वाला ज्वर शीघ्र ही उतर जाता है।

उक्त प्रकार के ज्वराक्रांत रोगी को प्रतिदिन प्रातःकाल घृत के साथ लहसुन अथवा दूध के साथ पिप्पली तथा अंडी के रस का पान करना चाहिए। अथवा प्रथम

बार पाँच पिप्पली खाकर दुग्धपान करें। तदनन्तर प्रतिदिन एक-एक पिप्पली की संख्या बढ़ाते हुए एक सौ पिप्पली तक प्रयोग करें। सौ की संख्या पूरी हो जाने पर उसे क्रमश: घटाकर पाँच पर ले आवें। इस पिप्पली सेवनकाल में दूध अथवा दुग्धनिर्मित पदार्थ ही पथ्य के रूप में लेने चाहिए।

पिप्पली और एरण्ड (रेंड़) तैल के सेवन से वात,रक्तपित्त, श्वास, पाण्डुरोग (पीलिया), बवासीर, गुल्म तथा शोथरोग का नाश होता है। इसके सेवन से विषमज्वर में भी बल मिलता है।

एकान्तर-चातुर्थिकज्वर का उपचार

एक दिन के अंतराल पर पुनरावर्तित होने वाला ज्वर त्र्याहिक तथा दो दिनों के अन्तर पर आने वाला ज्वर चातुर्थिक कहलाता है। त्र्याहिक और चातुर्थिक ज्वर में साधारण प्रयोगों से काम नहीं चलता। इसे विशिष्ट चिकित्सा के द्वारा ही दबाया जा सकता है।

सोंठ, गुरुच, मोथा, चन्दन, खस और धनिया। इनके संमिश्रण से पाचित क्वाथ शक्कर और मधु के साथ पीने पर त्र्याहिक ज्वर जाता रहता है। रविवार के दिन अपामार्ग (चिचिड़ा) की जड़ को सात लाल धागों में लपेटकर कमर में बाँध लेने से त्र्याहिक ज्वर भाग जाता है।

गंगा के उत्तरी छोर पर एक नि:सन्तान तपस्वी मृत हो गया था। उसके लिए तिलांजलि देने से ऐकाहिक ज्वर उतर जाता है। 'अरे ज्वर! अंग, बंग, कलिंग, सौराष्ट्र, मगध तथा वाराणसी में जो वार्ता हुई थी,उसे क्या तू भूल गया?'—इस मंत्र का उच्चारण करते हुए रोगी के हाथ में पीपल वृक्ष के पत्ते को समर्पित कर देना चाहिए।

सूर्यरश्मि के सदृश, अरुण कान्ति सम्पन्न वानर के दिव्य मुख का स्मरण करने मात्र से ही कठिन से कठिनतम ऐकाहिक ज्वर छूट जाता है। वासा (अड़ूसा), आँवला, सरिवन, दारुहलदी, हरड़ और सोंठ। इन सब वस्तुओं का काढ़ा शहद और शक्कर मिला कर पीने से चातुर्थिक ज्वर का निवारण होता है।

अगस्ति (हथिया) वृक्ष के पत्तों से सिद्ध किया हुआ नस्य लेने से अतिप्रचण्ड चातुर्थिक ज्वर निर्मूल हो जाता है। अथवा अतिप्राचीन घी के साथ हींग का सेवन करना भी उक्त फल दिलाता है। यदि विषमज्वर से ग्रस्त व्यक्ति नित्य लहसुन के छिलकों का तिलतैल के साथ सेवन करे तो वह निश्चय ही ज्वर को मार भगाता है तथा सभी वातरोगों से छूट जाता है।

गूगल, नीम के पत्ते, वचा, कूड़ा, हरड़, सरसों, यव और घी—इनका धूप

देना भी विषमज्वर का उन्मूलन कर देता है। अथवा नागरमोथा, गन्धेज तृण, वचा, सरलवृक्ष की राल, नीम, अर्क, अगरु, देवदारु और बिलाव का विष्ठा। इनका धूप देने से ज्वर से कम्पायमान व्यक्ति भी स्वस्थ हो जाता है। भूतावेशित ज्वरों में प्राय: अपराजिता (लशुनिया नामक घास) का प्रयोग करना लाभकारी होता है।

बकरी की खाल और बाल, वचा, कूड़ा, गुग्गुलु, निम्बपत्र—इनमें मधु मिलाकर धूपन करने से ज्वर नष्ट हो जाता है।

उक्त ज्वर शांत मंत्र

निम्नलिखित मंत्रों को भोजपत्र पर लिखकर विषमज्वराक्रांत व्यक्ति की दाहिनी भुजा में बाँध देने से ज्वरोन्मूलन होता है। मंत्र इस प्रकार है—

ॐ ठः ठः ठः सः सः हूं हः–इत्येतानि मन्त्रपदानिभूर्जपत्रे लिखित्वा बन्धनीयानि विषमार्तस्य दक्षिणभुजे ।

उक्त मंत्र के अतिरिक्त रुग्ण व्यक्ति की भुजा में निम्न मंत्र भी लिखकर बाँध देना उचित है। मंत्र इस प्रकार है—

ॐ हूँ हूँ हूँ विकृतानन! अमुकस्य ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकं ज्वरं नाशय नाशय इति च पत्रे लिखित्वा बन्धनीयम् ।

सोमदेव के अनुचरों सहित तथा मातृमण्डल के साथ शिवजी के अर्चन-पूजन से भी मानव विषमज्वर से रहित हो जाता है। अथवा त्रैलोक्य के स्वामी सहस्रों शिरवाले विष्णुदेव की पूजा उनके सहस्र नामों की स्तुति द्वारा किये जाने पर मनुष्य समस्त प्रकार के ज्वरों से त्राण पा लेता है।

भूमिजयंती, खिरेंटी (सहदेई नामक तृणविशेष) अथवा चौलाई की जड़ को शिर पर बाँधने से ज्वर नहीं रह जाता। अथवा हरड़ का सेवन मधु के साथ करने पर ज्वर छूट जाता है। इसके साथ भोजन में सोंठ का भी उपयोग करणीय होता है।

ज्वरकाल में ज्वर की प्रबलता तथा कालचिन्तन से व्यथित व्यक्ति को अभीष्ट वचनों द्वारा उसकी मानसिकता को दूर करने चाहिए।

पिप्पल्याद्य घृत के लाभ

ज्वर के समय कफ की क्षीणता में बारह रात्रि तक निम्नलिखित घृत का पान रोगी को कराना चाहिए जो इस प्रकार से है—छोटी पीपर, चंदन, मोथा, खस, कटुकी, इन्द्रयव, शालपर्णी (सरिवन), आँवला, कालीसर, अतीस, काकोल, दाख, कर्करा, बेल, त्रायमाण और कटेरी।

इनके मिश्रण से पाचित घृत का सेवन करने से सभी प्रकार के ज्वरों का शीघ्र ही निवारण हो जाता है।

उक्त प्रकार का घृत ज्वरों के अतिरिक्त क्षय, खाँसी, शिरःशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, समस्त शरीरांगों में जलन तथा विषमज्वरादि में दमनात्मक रूप से साबित होता है। घृतनिर्माण में औषधिपिष्ट (कल्क) से चौगुना स्नेह, स्नेह से चौगुना क्वाथ और क्वाथ से चौगुना जल का परिमाण रखा जाता है।

घृतनिर्माण की मंद विधि में चौगुना, तीव्र विधि में अठगुना तथा तीक्ष्ण से तीक्ष्णतम विधि में सोलह गुना जल का प्रयोग उचित होता है।

दशमूली घृत के लाभ

दशमूली के रस में घी, दूध, क्षार (जवाखार, सज्जीखार, सुहागा) और पिप्पली आदि पंचकोल की वस्तुएँ मिलाकर पाक कर लें। इस घृत से ज्वर, खाँसी और मन्दाग्नि रोग दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त इससे वात, पित्त, कफ, प्लीहा (तिल्ली), पाण्डुरोगादि नष्ट होकर अंग-प्रत्यङ्गों में निखार आकर बलवर्धन होता है।

पुनः उक्त रोग शान्ति के मन्त्र

निम्नलिखित मंत्र को भोजपत्र या काँसे के पात्र पर लिखकर रोगी को दिखलाना चाहिए। मंत्र इस प्रकार से है—

"ॐ नारदग्रामान्नारदपत्तनान्नारदो भिक्षुर्नारदगुहायां सर्वज्वरान् समादि-शति, वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकैकाहिकद्व्याहिकत्र्याहिकचातुर्थिक-ज्वरान्समादिशति। लेखदर्शनाद् भवद्भिरमुकशरीरे क्षणमपि न स्थातव्यम् ॐ सः ॐ ठः स्वविषये स्वाहा–इत्येतदूं भूर्ज्जपत्रं कांस्यपात्रे वा लिखित्वा दर्शयेत्।

सफेद कनेर की जड़ हाथ में बाँध देने से ऐकाहिक, चातुर्थिक आदि ज्वर नहीं आते। अथवा छुछुन्दरी का चूर्ण, शिवार्पित पदार्थ, घुँघची की जड़। इनके साथ भैंस का मक्खन मिलाकर धूप देने से ऐकाहिक, द्वयाहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, पाक्षिक तथा अविराम ज्वर का नाश हो जाता है।

घी, तैल और गुड़ आदि पदार्थों को लगातार कई दिनों तक सिद्ध करने का विधान है, क्योंकि दीर्घकालिक घी, तैल या गुड़ में सामान्य की अपेक्षा अधिक गुण पाया जाता है।

कल्याणघृत निर्माण एवं उपयोग

इन्द्रायण, त्रिफला, कौन्ती (रेणुका—गंधद्रव्य विशेष), देवदारु, एलुवा (मुसव्वर), शालपर्णी (सरिवन), तगरमूल, दोनों हलदी (हलदी, दारुहलदी), दोनों सारिवा (गौरी आसाऊ, करिया वासाऊ), प्रियंगु, नीलपद्म, इलायची, मंजीठ, दन्ती, अनार, केशर, वायविडंग (भाभीरंग), पृश्निपर्णी (पिठवन), कूड़ा, चंदन, पद्माख (कमलगट्टा), तालीसपत्र, कंटकारी तथा मालती का नूतन पुष्प—इन अट्ठाइस

वस्तुओं को एक साथ पीसकर सिद्ध किये हुए कल्क से चौगुना जल मिलाकर एक प्रस्थ घी के साथ पाक करने पर कल्याणघृत तैयार हो जाता है। यह घृत ऐसे व्यक्तियों के लिए लाभकारी होता है जिन्हें मृगी, ज्वर, खाँसी, शोष (सूखापन), क्षय, अग्निमांद्य, पीनस (नाक से रक्त प्रवाह का होना, नकसीर), तृतीयक-चातुर्थिक ज्वर, वमन, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र (रुक-रुककर कष्टपूर्वक पेशाब का आना), विसर्प (कुष्ठ का एक प्रकार), दाद, खाज-खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विष तथा प्रमेह (धातुरोग) आदि रोग हो। इसके अतिरिक्त भूतज्वर से व्यथित हृदय वाले तथा वन्ध्या नारियों के लिए भी यह परमोपयोगी सिद्ध होता है। यह आयु और बलवर्धक घी सभी प्रकार से प्रशंसनीय होता है।

यह कल्याणघृत दु:ख-दारिद्र्यनिवारक, पापनाशक, राक्षसों का हन्ता तथा समस्त ग्रह-बाधाओं को दूर भगाने वाला होता है।

बृहत् कल्याणघृत निर्माण एवं उपयोग

पूर्वोल्लिखित २८ पदार्थों में से प्रथम २१ पदार्थों को जल में पकाने से निकलने वाले रस में एक बार की ब्याई हुई गाय का चौगुना दूध डालकर पका लें। तदनन्तर उसमें २-२ माशा की मात्रा में काकोली, केंवाँच, ऋद्धिनाम्नी औषधि, मेदा तथा महामेदा—इनका कल्क मिलाकर पुन: पकाने से बृहत् कल्याण घृत तैयार होता है। यह वीर्यवर्धक तथा सन्निपात उन्मूलक है।

सज्जीखार, नागरमोथा, कूड़ा, मरोड़फली, लाख (लाक्षा), दारुहलदी और मंजीठ। इनके साथ छहगुने छौछ में सिद्ध किये गये तैल को पकाये। पक जाने पर उतार लें। इसके मालिश करने से शीत और दाह का विनाश होता है।

लाक्षादितैल से भूतादि बाधा नाश

लाक्षा का रस और तैल समान भाग में लेकर इसमें चौगुना जल तथा रास्ना, चंदन, राई, मोथा, असगन्ध, हलदी, सौंफ, शतावरी, देवदारु, मुलेठी, मरोड़फली, मुष्कदाना और रेणुका—इनका कल्क बना पकाया गया तैल बालकों की भूत-प्रेतादिक बाधा को दूर कर ज्वर को नष्ट करता है। शरीर पर इसके मालिश से बल की वृद्धि होती है।

पाक तैल के लक्षण

जब स्नेह कल्क अंगुलियों से आवर्तित करने पर भी अनावर्तित के समान जान पड़े तथा आग में डालने पर शब्दित न हो तो उस तैल को परिपक्व हुआ समझना चाहिए। जब शब्द का निकलना और झाग का उठना बन्द हो जाय तथा रसादिकों की गंध एवं उनके रंग दूसरे रूप में परिवर्तित हो जाये तो तैलपाक की पूर्णता समझनी चाहिए।

इसी प्रकार कुशल चिकित्सक को घृतपाक की भी पहचान करनी चाहिए। तैलपाक में केवल झाग अधिक उठता है, किन्तु अन्य लक्षणों में समानता रहती है।

ज्वर से मुक्त होने के लक्षण

ज्वरमुक्त होने के निम्न लक्षण कहे गये हैं, जैसे—शरीर का हलकापन, मानसिक ग्लानि, मोह तथा ताप का मिट जाना, मुख में पाक, इंद्रियों में हर्ष, किसी प्रकार की पीड़ा की अनुभवहीनता, पसीने का नि:सरण न होना, मन में अन्न के प्रति रुचि उत्पन्न होना तथा शिर में खुजली की अनुभूति होना। ज्वरमुक्त व्यक्ति को अपनी पूर्वावस्था न आने तक उसे व्यायाम, मैथुन, स्नान, अपथ्य आहार का परित्याग कर देना उचित होता है।

ज्वरातिसार का उपचार

प्रत्येक चिकित्सक के लिए रोग निदानानुसर चिकित्सा कार्य करना अनिवार्य होता है,किन्तु निदान द्वारा ज्वरातिसार का निर्णयात्मक स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं हो पाता।

अत: ज्वरातिसार की गणना विषम रोगों में की जाती है। ज्वर और अतिसार की चिकित्सा विभिन्न रीतियों से की जाती है, किन्तु उन दोनों का पारस्परिक संबंध होने पर उनकी चिकित्सा विभिन्न रीतियों से नहीं की जानी चाहिए अन्यथा वे उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते जाते हैं।

अर्थात् केवल ज्वर की चिकित्सा- मात्र से अतिसार की वृद्धि तथा अतिसार की चिकित्सामात्र से ज्वर की वृद्धि होती रहती है।

ज्वर तथा अतिसार की चिकित्सा विशिष्ट प्रयोगों द्वारा ही की जानी चाहिए। ज्वरातिसार में चना आदि रूखी वस्तु, तक्र (मट्ठा) आदि अम्ल वस्तु, अरारोट आदि कोमल वस्तु तथा जवाखार आदि क्षार पदार्थों का प्रयोग करना उचित होता है।

ज्वर तथा अतिसार—इन दोनों रोगों में ऋषियों ने प्रथमतया लंघन कराने का आदेश दिया है। तदनन्तर वक्ष्यमाण उत्पलादि षट् पदार्थों से साधित पेया, लाजा एवं मण्डादि का पथ्य देना श्रेयस्कर होता है। इसके लिए नीलकमल, पृश्निपर्णी (पिठवन), बला (खिरेंटी), बेल, धनिया और सोंठ—इनके द्वारा सिद्ध पेया, छाँछ आदि अम्ल पदार्थों का सेवन अतिसार वाले ज्वर में कराना हितकर होता है।

नागरादि द्रव्य का लाभ

सोंठ, अतीस, मोथा, चिरायता, गुरुच और इन्द्रयव। इनके मिश्रण से पकाया हुआ क्वाथ सभी प्रकार के ज्वर और अतिसार में उपयोगी सिद्ध होता है।

पाठेन्द्रादि द्रव्य का लाभ

पाठा, इन्द्रयव, चिरायता, मोथा, पित्तपापड़ा और गिलोय। इन सब वस्तुओं का सेवन सोंठ के साथ किये जाने पर आमातिसार और आमज्वर नष्ट होते हैं।

हीवेरादि द्रव्य का लाभ

सुगंधवाला, अतीस, मोथा, बेल, सोंठ और धनिया—इनका पकाया हुआ रसपान करना योग्य है। पथ्य में मांड़रहित चावल का भात खायें। इसके प्रयोग से अफरा (पेट फूलना), शूल आदि नष्ट होकर आम का परिपाक होता है।

गुडूच्यादि द्रव्य का लाभ

गिलोय (गुरुच), अतीस, धनिया, सोंठ, बिल्वादिगण, सुगंधवाला, पाठा, चिरायता, कूड़ा,चन्दन, खस और कमलगट्टा। इनके द्वारा पाचित कषाय शीतलता के फलस्वरूप मिचली, अरुचि, वमन, प्यास और जलन आदि औपद्रविक लक्षणों का शमनकारक होता है। अत: यह ज्वरातिसार में भी प्रयोक्तव्य कहा गया है।

कलिङ्गादि द्रव्य का लाभ

इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, चिरायता, चकवँड़ (चक्रमर्द) और वासा (अड़ूसा)। इनका पकाया हुआ कषाय ज्वरातिसार के ताप को निश्चय ही नष्ट कर देता है।

वत्सकादि द्रव्य का लाभ

१. कूड़े का फल, दारुहरिद्रा, कटुकी और गजपीपर। २. गोखरू, छोटी पीपर, धनिया, बेल, पाठा और अजवायन। यहाँ पर कथित ये दोनों सिद्ध नामक रस ज्वरातिसार का दमन करके दाह का भी शमन करते हैं।

पञ्चमूल्यादि द्रव्य का लाभ

पंचमूल, बला (खिरेंटी) बेल, गिलोय, मोथा, सोंठ, पाठा, चिरायता, सुगंधवाला तथा कूड़ा की छाल और फल। इन सबका नि:सृत रस समस्त प्रकार के अतिसार, ज्वर, वमन, शूल, श्वास और भयंकर खाँसी को भी नष्ट कर देता है। पंचमूल के संबंध में निर्णयात्मक मत यह है कि पित्ताधिक्य में लघुपंचमूल तथा वात-कफाधिक्य में बृहत् पंचमूल का प्रयोग करना उत्तम होता है।

पुरनंप्युत्पलादि द्रव्य का विशेष लाभ

नीलपद्म, अनार का छिलका और कमलकेशर (पराग)। इन सब वस्तुओं को चावल की धोवन के साथ पीसकर पान करने से ज्वरातिसार में लाभकर होता है।

उशीरादि द्रव्य का लाभ

खस, सुगंधवाला, मोथा, धनिया, बेल, खिरेंटी, धव के फूल, लोध और सोंठ। इनसे सिद्ध किया हुआ औषध अग्निदीपक, पाचक, अरुचि, आमदोष, अफरा (पेट का फूलना), शूल, मलावरोध तथा ज्वर के सहित एवं ज्वररहित रक्तातिसार को मिटा देता है।

उक्त दशमूल के लाभ

इस दशमूल कषाय के साथ दो-दो तोले सोंठचूर्ण का सेवन करने से ज्वर, अतिसार, सूजन और संग्रहणी रोग का नाश हो जाता है।

विडङ्गादि का लाभ

वायाविडंग (भाभीरंग), अतीस, मोथा, दारुहरिद्रा, पाठा और इन्द्रयव। इनका कषाय कालीमरिच के साथ पान करने से शोथयुक्त अतिसार का उन्मूलन होता है।

गुडूच्यादि द्रव्य का विशेष लाभ

गुरुच, करंज, मोथा, लालचंदन और सुगंधवाला। इनके कषाय को कूड़ा नामक औषध के साथ सेवन करने से ज्वरातिसार और सूजन दूर होती है।

किरातादि द्रव्य का लाभ

चिरायता, मोथा, गिलोय, सोंठ, सुगंधवाला और कूड़ा। इनसे पकाया हुआ रस पान करने से अतिसार तथा मुख्यत: ज्वर का निवारण होता है।

ज्वरनाश के निमित्त लंघन के अतिरिक्त जगत् में कोई अन्य उपाय या औषधि नहीं है। लंघन के द्वारा उत्थित दोष परिपक्व होकर दूर हो जाते हैं। जिस व्यक्ति में अत्यधिक पतले मल निकल रहे हों उसके लिए लावा का सत्तू और मसूर का यूष अत्यन्त उपयोगी पथ्य होता है।

बृहच्छालपर्ण्यादि द्रव्य का लाभ

सरिवन, पिठवन, कटेहरी, कंटकारी, बला, गोखरू, बेल, पाठा, सोंठ और धनिया। इनका पकाया हुआ रस सभी प्रकार के अतिसार में लाभदायक होता है।

लघु शालपर्ण्यादि के लाभ

सरिवन, खिरेंटी, बेल, पिठवन तथा अनार—इनके द्वारा निर्मित पेया पित्तज तथा कफज अतिसार में लाभकारी होता है। वातज-कफज अतिसार में चिकित्सक को धान्यपंचक, धनिया या सोंठ से पाचित आहार देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

लघु पंचमूल से सिद्ध रस वातज-पित्तज अतिसार में उपयोगी माना गया है, किन्तु इससे पूर्व चिकित्सक को पक्व तथा अपक्व आम के लक्षणों पर भली-भाँति विचार कर लेना आवश्यक होता है। आमातिसार के गरिष्ठ होने पर वह गहराई में चला जाता तथा पक्वावस्था में उभर कर ऊपर आ जाता है। अत: आमातिसार को बाँधने वाले औषधों का प्रयोग करना उचित नहीं है।

आमावस्था में बंधित अतिसार के द्वारा सूजन, पाण्डु, कुष्ठ, गुल्म, औदरिक रोग तथा प्लीहा (तिल्ली, बरवट) आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। आम की दशा में अवरोधित अतिसार, अफरा (पेट का फूलना), लीवर के रोग, ग्रहणी तथा बवासीर आदि का उत्पत्तिकारक हो जाता है।

आमावस्था में धातुक्षीण एवं बलहीन हो जाने वाले दोषपूर्ण और आर्द्र आमातिसार का बंधन अवश्य ही कर लेना चाहिए अन्यथा रोगी में परिपक्वावस्था

आने तक उसकी मृत्यु होने की सम्भावना बनी रहती है। जिस रोगी में थोड़ा-थोड़ा करके या तेज दर्द के साथ अतिसार निकल रहा हो उसे हरड़ और पिप्पली के कल्क का हल्का गरम विरेचन देना उचित होता है।

प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि आमातिसार में वह हरिद्रादिगण, वचादिगण अथवा पिप्ल्यादियुक्त किसी यवागू या यूष का पान करे। धनिया, सोंठ, मोथा, सुगंधवाला और बेल। इनसे पकाया हुआ काढ़ा पीने से **आमातिसार**, **शूल** तथा **विबंध** दूर होकर **क्षुधावृद्धि** होती है।

पित्तज अतिसार में सोंठ के अतिरिक्त धनिया आदि चार वस्तुओं को लाभकारी बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त सोंठ के सहित चार वस्तुओं को भी गुणकारी कहा गया है। अतिसार की परिपक्वता तथा क्षुधाग्नि नाड़ी की कोमलता में शीघ्र ही बंध कर लेना आवश्यक होता है।

वातोत्पन्न अतिसार रोगी को, पंचमूल, बला, सोंठ, धनिया, नीलकमल और बेल के फल मट्ठा या किसी अन्य वस्तु के साथ देने चाहिए।

कच्चटादि द्रव्य का लाभ

कफोत्पन्न अतिसार में निम्नलिखित वस्तुओं का योग गंगधारा के समान प्रवाहित होने वाले अतिसार को भी रोक देता है, जैसे—जलचौलाई, उमारे, अनार, सिंघाड़ा, पत्रज, बेल, सुगंधवाला, मोथा और सोंठ।

पित्तोत्पन्न अतिसार में चिरायता, मोथा, कूड़ा और रसोत—इन्हें मधु के साथ सेवन कराने से होने वाली पीड़ा भी दूर हो जाती है। अतः पित्तातिसार में यह सदैव ही सेवनीय है। अथवा कूड़ा के बीज से निकाले गये जल को एक पल की मात्रा में पान करने से यह पित्तातिसार के अतिरिक्त अन्य औदरिक रोगों को भी नष्ट कर डालता है।

पित्त-कफोत्पन्न अतिसार के रोगियों में कूड़ा, अतीस, मोथा, हलदी, दारुहलदी, मुद्गपर्णी, और माषपर्णी—इनका सम्मिलित योग शहद और शक्कर के साथ देना लाभप्रद सिद्ध होता है।

कूड़े का छिलका और उसका फल तथा मोथा—इनका काढ़ा बनाकर मधु और शक्कर के साथ पीने से तत्काल ही **अतिसार** नष्ट हो जाता है।

बेल और आम की गुठली का काढ़ा शहद और शक्कर के साथ पीने से **वमनरूप अतिसार** उसी प्रकार भस्म हो उठता है जिस प्रकार अग्नि में दी गयी आहुतियाँ भस्म हो जाया करती है। अथवा प्रियंगु, रसोत और मोथा। इनका काढ़ा बनाकर पीने से **पिपासा**, **अतिसार** और **वमन** का नाश होता है। इसे चावल की धोवन में मधु मिलाकर पिलाना उचित है।

परवल, इन्द्रयव, धनिया—इनका क्वाथ मधु और शक्कर डालकर उपयोग [illegible] **वमनयुक्त अतिसार** नष्ट होता है। अत: यह भी सेवनीय है। सर्वप्रथम कफातिसार में लंघन और पाचनकर्म रोगी में उपकारी होते हैं। अतएव **कफातिसार** के अतिरिक्त **आमातिसार** में उक्त कंचटादि दीपनगण का प्रयोग करणीय होता है।

त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), अतीस, हींग, वच, कालानमक और हरड़। इनका चूर्ण गुनगुने जल के साथ पान करने पर प्रबल आमातिसार भी नष्ट होता है। समुद्रफली का दलोत्पन्न रस या कूड़े के छिलके का काढ़ा मधु के साथ पीने से **आमातिसार** दूर होता है।

अनार के पत्ते, सिंघाड़ा, पाठा का मूलकंद, चित्रक, एक दिन का रखा हुआ चौलाई का बासी जल और पका हुआ वेल—इनका कषाय बनाकर गुड़ और सोंठ के साथ खाना उपयोगी होता है। यह दाड़िमादि कषाय **पित्तोत्पन्न अतिसार** में दुर्निवार ग्रहणी रोग को भी शीघ्र ही अवरुद्ध कर डालता है।

बकरी के दूध में पाचित तथा शक्कर, सेमल वृक्ष के गोंद और इन्द्रयव के चूर्ण के साथ मिलाया हुआ बेल रक्तातिसार को दूर कर देता हैं, जल की सहायता से संयंत्र द्वारा पीसी गयी सोंठ का गोला बनाकर उसे रेंड़ के पत्ते से लपेट कर उसके बाहर से मिट्टी का लेप लगा दें। पुन: उसे धीमी आँच पर पकावें। अच्छी प्रकार सिद्ध हो जाने पर उसे मधु के साथ चटाने पर यह शुण्ठीपाक **आमातिसार**, **अरुचि** और **शूल** को निर्मूल कर देता है।

कपित्थ (बेल के आकार का कैथ नामक फलविशेष) का रस अथवा कायफल को मधु के साथ चटाने से **उदरविकार** शीघ्र ही दूर हो जाता है। छोटी पीपर को मधु के साथ चाटने या चिरशोधित चित्रक के साथ मट्ठा पीने तथा छोटे बेल की गुद्दी खाने से उदर-संबंधी **अतिसार** के सभी रोग दूर होते हैं।

कूड़े की छाल का घना काढ़ा अतीस के साथ प्रयोग करने पर समस्त प्रकार के अतिसार दूर होते हैं। जहाँ लेह विधान में रस और कल्क की मात्रा निर्धारित नहीं की गयी है वहाँ सुविज्ञ चिकित्सक को रस का चतुर्थांश भाग कल्क में ग्रहण करना चाहिए।

इसी भाँति खरल में पेषित कपास और पाकड़ का रस मधु के साथ, अनार तथा कूड़ा की छाल का कषाय भी शहद के साथ तथा बेल के गूदे को गुड़ के साथ देने से दुर्निवार रक्तातिसार दूर होकर आमशूल, विबंध तथा कुक्षिरोगों का भी विनाश होता है।

सलई वृक्ष, बेर, जामुन, चिरौंजी का वृक्ष तथा अर्जुन वृक्ष। इनकी छाल से निर्मित कषाय दूध के साथ पान करने तथा मधुमिश्रित जल को अलग से चाटने पर **रक्तातिसार** का निवारण होता है। अथवा शतावरी के कल्क को दूध के साथ पीकर दुग्धनिर्मित अन्न का पथ्य ग्रहण करने से रक्तातिसार जाता रहता है। इसके अतिरिक्त शतावरी घृत का प्रयोग भी आशातीत फल दिखाता है।

मधुमिश्रित प्रियंगु का कल्क चावल की धोवन के साथ पान करने पर **रक्तातिसार** नष्ट होकर शरीरस्थ धातुओं पर भी रस का संप्रेक्षण होता है। अथवा काले तिलों में एक भाग शक्कर मिलाकर घी-दूध के साथ पीने से **रक्तातिसार** पर शीघ्र नियंत्रण होता है।

कूड़ा, अतीस, बेलगिरी (बेल का गूदा), सुगंधवाला और मोथा। इनके द्वारा पकाया हुआ कषाय दीर्घकालिक वेदना तथा रक्तयुक्त आमातिसार में अत्यन्त लाभदायक होता है।

भयग्रस्तता तथा शोकाकुलता के फलस्वरूप प्रादुर्भूत अतिसार हेतु वातातिसार में वर्णित औषधियाँ ही उपयुक्त होती हैं,किन्तु सभी प्रकार के बहुवर्णीय अतिसार में पुटपाक विधि पर निर्भर रहना पड़ता है। तीक्ष्ण क्षुधाग्नि वाले व्यक्ति के दीर्घकालिक, पीड़ारहित तथा विविधवर्णीय परिपक्व अतिसार में पुटपाक विधि से औषधोपचार करणीय होता है।

कीड़े-मकोड़े से अभक्षित कुटज वृक्ष की चिकनी छाल को लेकर उसे तुरन्त अच्छी तरह से पीस डालें। पुनः उसका गोला बना तंडुलतैल से अभिसिंचित करके जामुन के पत्तों के पुट पर कुशा से बाँध दें। तदनन्तर उसके चतुर्दिक् गाढ़ी मिट्टी का लेप लगाकर उसे धीमी आँच पर पकावें। पक जाने पर पाकपुट के उस पेषित पदार्थ को निचोड़कर उसके रस को मधु मिलाकर **रक्तातिसारी** को पान करायें तो निश्चय ही रोग पर नियंत्रण होता है। ऐसा कथन व्यास, आत्रेय आदि महर्षियों का है।

सोनापाठा की छाल को पीसकर कल्क बना लें तथा बिरिया नमक को खम्भारी के पत्तों से अच्छी तरह आवेष्टित कर बाहर से मिट्टी का लेप लगा उसे आग के अंगारों के मध्य स्थापित कर दें। भली प्रकार से पक जाने पर निकालकर उसका रस निचोड़ लें। रस के ठण्ढा हो जाने पर उसमें मधु मिलाकर रोगी को पान करायें। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि पकाने के समय जब उसका रंग लाल हो जाय तो उसे परिपक्व समझना चाहिए।

सबसे पहले कूड़ा नामक औषध को एक सौ पल लेकर जल में पकावें। तदनन्तर उसमें से जितना रस निकले उसमें १-१ पल की मात्रा में सेंमल का गोंद,

सुपारी, पाठा, समंगा, अतीस, मोथा, बेलगिरी और धाय के फूल—इन सब वस्तुओं का बारीक कल्क मिलाकर उसे पुन: तबतक पकाते रहें जबतक कि वह गाढ़ा होकर करछुल पर चिपकने न लग जाय।

देशकाल के मर्मज्ञ चिकित्सक द्वारा इस सिद्धरस का प्रयोग चावल के माँड़, जल या बकरी के दूध के साथ रोगी पर किये जाने से रक्त, नील और पीत रंग वाले सभी प्रकार के **दारुण अतिसार** नष्ट हो जाते हैं।

कूड़ा को एक पल की मात्रा में लेकर अठगुने जल में पका लें। तदनंतर उसे अनार के रस के साथ पुन: पाचित करें। पक जाने पर एक तोले परिमाण में **रक्तातिसार** में पान करने से मरणासन्न रोगी भी मृत्य के चंगुल से छूट जाता है।

उक्त क्वाथ के निर्माण में अनार के रस को कूड़े के क्वाथ के समान ही पूर्वकालीन तार्किक सिद्धाचार्यों ने माना है।

कूड़ा के बीज (इन्द्रयव), दारुहलदी, दूधिया नामक घास, छोटी पीपर, सोंठ, लाक्षा और कुटकी। इन छह प्रकार की वस्तुओं से परिपाक किया हुआ घृत मण्ड-पथ्य के साथ पान करने पर **त्रिदोषोत्पन्न अतिसार** को भी शीघ्र ही अपने नियंत्रण में ले लेता है।

सप्ताङ्गघृत का लाभ

दारुहलदी, लाक्षा, कटुकी, बेल का गूदा, कूड़े की छाल, इन्द्रयव तथा पिप्पली। इन सप्त पदार्थों से सिद्ध घृत, मण्ड के साथ पान करने से सभी **अतिसार** नष्ट हो जाते हैं।

चाङ्गेरीघृत का लाभ

सरलवृक्ष का गोंद, सोंठ अम्ल लोन, कोल, दही का पानी और काँजी। इनके साथ पकाया हुआ एक प्रस्थ परिमाण का घृत **वेदनायुक्त अतिसार** के लिए लाभकारी होता है।

आमावस्था से रहित, शूलार्त लंघनादि के फलस्वरूप शारीरिक दुर्बलता तथा कुछ-कुछ क्षुधाग्नि की जागृति देखकर पूर्वकथित घृत को दूध के साथ परिपक्व करना चाहिए। **अतिसार** रोगियों के लिए दुग्धप्रयोग अमृत के समान गुणकारी होता है, किन्तु दीर्घकालिक अतिसार में दुग्धपान के समय तीन भाग जल मिलाना उचित है।

रक्त और मल का नि:सरण समाप्त होने के पश्चात् वायुविकार के परिणामस्वरूप मलरहित जो फेनिल पदार्थ निकलता है उसे प्रवाहिका कहते हैं। इसके लिए छोटे बेल का गूदा, गुड़, तेल, पिप्पली तथा सोंठ—इनका लेह बनाकर वायु के शमन हो जाने पर प्रगोग करना चाहिए।

एरण्ड (रेंड़), बेल का गूदा, इन्द्रयव, गोखरू और कांजी के साथ पकायी

गयी हरड़ को मधु या गुड़ के साथ खाने से भयंकर वमन, अतिवेदना और महारक्तातिसार भी नष्ट हो जाता है।

प्रवाहिकाग्रस्त रोगी सारयुक्त दही और मधु के साथ पूर्वोक्त हरड़ का सेवन करे अथवा गरम कड़ाह में पकाये गये दूध को ठण्ढा करके मधु के साथ पकाकर उक्त हरड़ के अनुपान द्वारा पान करें।

देवदारु का गोंद, अंकोट (ढेरा वृक्ष) और पाठा का मूल, कूड़ा की छाल, सेमल तथा शीशम का गोंद, धाय का फूल, लोध और अनार। इन सबको पीसकर चावल की धोवन के साथ एक कर्ष परिमाण की गोली बना लें। इसे प्रतिदिन प्रात:काल १-१ गोली चावल की धोवन और शहद के साथ खाने से **समस्त अतिसारों** का निवारण होता है।

यदि अतिसार के कारण मलद्वार में क्षत या जलन हो तो परवल और मुलेठी के रस या बकरी के दूध से गुदाद्वार का सिंचन करने पर लाभ होता हैं। गुदभ्रंश की अवस्था में मूषिकामांस के द्वारा स्वेदनकर्म (भाप देना) तथा गोधा (गोह नामक साँपविशेष) के मांसरस का प्रोक्षण करना उचित है। इसके अतिरिक्त चांगेरी घृत का प्रयोग भी लाभकारी सिद्ध होता है।

कुशल चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने अनुभूत प्रयोगों द्वारा अतिसार के अंत में दिखाई पड़ने वाले शोथादि का उपचार करे, किन्तु अतिसारावस्था में यदि सूजन, दर्द, ज्वर, प्यास, खाँसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा तथा हिचकी आदि के लक्षण भी विद्यमान हों तो ऐसे रोगी का परित्याग कर देना चाहिए। **अतिसार** के रोगी को स्नान, जल में तैरना, तैल मालिश, गरिष्ठ और भारी पदार्थों का भोजन, व्यायाम तथा अग्निसेवन आदि कर्म नहीं करने चाहिए।

अतिसार रोगी में भूख जगने और पेट के हलका होने पर उदरविकार का शमन होना समझना चाहिए। रोगमुक्ति के पश्चात् कुछ दिनों तक रोगी को वातकारक पदार्थों के सेवन से बचना आवश्यक रहता है।

ग्रहणी का उपचार

ग्रहणी (अग्निवर्धक नाड़ी) के आश्रित अजीर्णविकार का शीघ्र ही उपचार करना आवश्यक होता है। इसमें सबसे पहले पूर्वकथित अतिसार विधि से आमाशय का परिपाक करना चाहिए।

तदनन्तर कैथ नामक फल, बेल का गूदा, अम्ललोना, मट्ठा और अनार—इनसे पकायी गयी यवागू देने से आमाशय का परिपाक होकर ठीक प्रकार से मल का परिवर्तन होता है।

लघुपंचमूल, पंचकोल, पाठा, बेल का गूदा, इमली और अनार। इनके द्वारा अन्न को सम्पादित करना चाहिए। ग्रहणी रोगी के निमित्त मट्ठा (छाँछ) ग्रहस्थान को हलका करके अग्निदीपन करता तथा मधुपाक के फलस्वरूप पथ्य होता है। इसके द्वारा कभी पित्त का प्रकोप नहीं होता।

निम्नांकित कषाय खाँसीनिवारक तथा रूखा होने से कफोत्पन्न संग्रहणी में उपकारी होता है। यह सरस और अम्लरस से पूरित होने के फलस्वरूप **वातोत्पन्न ग्रहणी** तथा **कृमिविनाशक** होता है।

पाठा, इन्द्रयव, चित्रक और सोंठ। इनका काढ़ा बनाकर पान करें अथवा महीन चूर्ण का गरम जल के साथ सेवन करें।

निरन्तर आमभाव की स्थिरता, अग्नि की मन्दता तथा आमाशयिक **ग्रहणी रोग** में जल के साथ पक्वित समान मात्रा की सोंठ, मोथा, अतीस और गुरुच—इनका काढ़ा बनाकर पान करें।

अथवा धनिया, अतीस, सुगंधवाला, यवानी, मोथा, सोंठ, बला, मुगवन, मषवन (माषपर्णी) और हरड़। इन सबका क्वाथ अग्निदीपन तथा क्षुधावर्धन करने वाला होता है। अतः यह **संग्रहणी** में प्रयोक्तव्य है।

चित्रक (चीता), पिपरामूल, जवाखार, सज्जीखार, पंचलवण, व्योष (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), हींग, अजमोद और चव्य। इन सबको चूर्णित कर उसमें बिजौरा नीबू अथवा अनार का रस मिलाकर वटी बना लें। इस वटी के सेवन से आमाशय का परिपाक होकर क्षुधाग्नि की वृद्धि होती है।

कच्चे बेल के गूदे या कल्क सोंठचूर्ण में मिलाकर गुड़ के साथ खायें और ऊपर से छाँछ का सेवन करें तो **ग्रहणी रोग** पर विजयश्री मिलती है।

जामुन, अनार, सिंघाड़ा, पाठा, जलचौलाई के पत्ते, पका हुआ एक दिन पूर्व तोड़ा हुआ बेल और गुड़—इसका सेवन सोंठ के साथ करने पर सभी प्रकार के अतिसार और ग्रहणी रोग का नाश होता है। अथवा सोंठ, अतीस और मोथा का काढ़ा पीना भी **आमाशय का परिपाक** करता है।

वातोत्पन्न ग्रहणी रोग में हिंग्वष्टक चूर्ण और अष्टफल घृत भी लाभकारी है। अथवा सोंठ, अतीस, मोथा, धाय का फूल, रसोत, कूड़ा की छाल, इन्द्रयव, बेल का गूदा, पाठा और कटुकी। इनके समान भाग चूर्ण में मधु मिलाकर चावल की धोवन के साथ पित्तोत्पन्न या **रक्तपित्तोत्पन्न ग्रहणीविकार** में पान करने से लाभ होता है। इस चूर्ण के सेवन से बवासीर, गुदशूल और प्रवाहिका रोग भी दूर होता है।

यह पूर्वोक्त नागरादि चूर्ण कृष्णात्रेय द्वारा प्रशंसा-प्राप्त है। चावल की धोवन

तैयार करने की रीति यह है कि चावलों को अठगुने जल में भिंगो दें। पुनः उस भिंगोये हुए चावल के जल को निथार कर रख लें और उपयोग करें।

भूनिम्बाद्य चूर्ण का लाभ

चिरायता, परवल, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपर), मोथा, चीता तथा कूड़े की छाल—इन सब वस्तुओं को दो-दो भाग लेकर सबका चूर्ण बना लें। सिद्ध होने के पश्चात् गुड़ और ठण्ढे जल के साथ सेवन करने पर **ग्रहणी**, **गुल्म रोग**, **कामला**, **ज्वर**, **रक्तपीड़ा**, **प्रमेह** (धातुसंबंधी रोगविशेष), **अरुचि** तथा **अतिसार** रोग नष्ट होते हैं।

यवानी (जवायण), पिप्पलीमूल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, कालीमरिच, चीता, सुगंधवाला, स्याहजीरा, धनिया, काला नमक—इन्हें बराबर मात्रा में लें। पुनः अम्लबेंत, धाय, छोटी पीपर, बेल और अनार—इनका चूर्ण पहले से तिगुना, शक्कर छह गुना और इन सभी का अठगुना कैथ लेकर चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण के सेवन से **अतिसार**, **ग्रहणी**, **गुल्म**, **जलोदर**, **हिचकी**, **खाँसी**, **अरुचि** तथा **श्वास** आदि रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसे कपित्थाष्टक चूर्ण के नाम से कहा गया है।

कफोत्पन्न ग्रहणी रोग में विधिवत् वमन कराने के पश्चात् कटु, अम्ल, लवण, क्षार और तिक्त—इन पंचरसों का प्रयोग करके क्षुधाग्नि को बढ़ाना चाहिए।

त्रिदोषज ग्रहणी में दोषों के शमनार्थ उनके तीन समान भाव का विधान वर्णित किया गया है।

अतः इसके लिए चिरायता, मोथा, गुरुच, चंदन, सुगंधवाला और कूड़ा। इनके द्वारा पकाया हुआ कषाय समस्त प्रकार की ग्रहणी को मिटा देता है।

मसूर-कषाय के साथ सोंठमिश्रित घृत का पाक करें। इस घृत के सेवन से **कुक्षिगत रोग**, **ग्रहणी**, **पाण्डु** तथा **कामला** रोग शीघ्र ही निर्मूल हो जाता है।

ब्रीहि नामक धान्य और प्राण्यंग क्वाथ की मात्रा बासी होने पर २ पल कही गयी है। त्रिकटु और त्रिफला का कल्क ८ तोले, गुड़ २ पल तथा घी ८ पल। इन सबको पकाकर **अग्निमांद्य** में सेवन करना उपयोगी बतलाया गया है।

बेल का गूदा, चीता और सिंघाड़ा। इनके काढ़ा या कल्क के साथ पकाया हुआ घृत बकरी के दूध के संग सेवन करने से ग्रहणी, मलद्वार की सूजन, मन्दाग्नि और अरुचि में लाभ होता है।

मोचरस (मुसव्वर), सम्भालू, नीलकमल, त्रिकटु, लावा, बेल का गूदा,

सुगंधवाला, धाय के फूल। इन सबों को बकरी के दूध और अम्ललोना के रस में मिलाकर घृत पकायें। यह घृत विशेषत: **बालकों के ग्रहणी** में लाभकारी होता है।

सोंठ, पिप्पलीमूल, चीता, गजपिप्पली, गोखरू, छोटी पीपर, धनिया, बेल, पाठा और जवायण। इनका कल्क बना अम्ललोनी के रस में चौगुना दही मिलाकर घृतपाक करें। इस घृत से कफ, वायु, **बवासीर**, **ग्रहणी**, **मूत्रकृच्छ्र** (रुक-रुककर पेशाब का निकलना), प्रवाहिका, अधोवायु निकलने के समय होने वाली पीड़ा, मलावरोध तथा मूत्रावरोध में लाभ होता है।

कालीमरिच, पिप्पलीमूल, सोंठ, छोटी पीपर, जवायन, वायविडंग (भाभीरंग), गजपीपर, हींग, सोंचर नमक, विड्नमक, सेंधा नमक, खारी नमक, जवाखार, चीता, वच (कुलंजन)। इन सबको अर्ध पल की मात्रा में ग्रहण कर एक प्रस्थ घी में पाचित करें। इसका घृतपाक खाँसी, श्वास, क्षीणता, बवासीर, भगन्दर तथा कफज, वातज एवं कृमिज रोगों को उसी प्रकार जला डालता है जिस प्रकार कुपित दावाग्नि समूचे वनप्रान्त को भस्म कर देता है।

शुण्ठीघृत का लाभ

सोंठ के कल्क को दशमूल के रस में मिलाकर पकाया जाने वाला घृत सूजन और ग्रहणीस्थान की आमावस्था को शीघ्र ही दूर कर देता है। अथवा केवल सोंठ के कल्क के साथ पकाया हुआ घृत विकारयुक्त वायु को यथास्थान बैठाकर **ग्रहणी**, **पाण्डु**, **प्लीहा** (तिल्ली), **खाँसी** और **ज्वरादि उत्पातों** को शीघ्र ही शान्त कर देता है।

कल्याणकगुड का लाभ

शोधित थूहर (सेंहूड़ नामक पौधा) छह मांशा, पिप्पलीमूल, जीरा, चव्य, त्रिकटु, गजपीपर, हाऊबेर, अजमोदा, वायविडंग, सम्भालू, त्रिफला, जवायन (यवानी) पाठा, चीता और धनिया २-२ तोला लेकर चूर्ण बना लें। अब इनमें निशोथ ८ पल और तैल ८ पल डालकर आँवले के ३ प्रस्थ रस के साथ आग पर पकावें।

पककर तैयार हो जाने पर इस पाक को कल्याणकगुड़ कहा जाता है। इस पाक में इलायची, दालचीनी और तेजपात मिलाकर एक कर्ष की मात्रा में सेवन करने पर समस्त ग्रहणी विकार, श्वास, खाँसी स्वरभेद (गला बैठना) तथा शोथ आदि रोगों का उन्मूलन होता है। इसके अतिरिक्त इस कल्याणकगुड़ के प्रयोग से **दीर्घकालिक अग्निमांद्य** का निवारण होता, पौरुषशक्ति को बढ़ाता तथा वन्ध्या नारियों को गर्भधारण के योग्य बनाता है।

ग्रहणी रोग में जिन लक्षणों के आधार पर उसकी असाध्यता जानी जाती है, उन्हीं लक्षणों के द्वारा अतिसार की भी असाध्यता समझनी चाहिए।

वृद्धावस्था का ग्रहणी रोग प्रायः दूर नहीं होता। यदि संयोगवश दूर भी हो जाय तब भी वह पूर्णरूप से कभी निर्मूल नहीं हो सकता।

त्रिफला, मालकांगनी (मालककुनी), चव्य, बेल का गूदा, लोहधूर, कटुकी, मुश्कदाना, मोथा, कूड़ा, पाठा, हींग, सौंफ, जवाखार, बचा, मुलेठी, त्रिकटु, वायविडंग, पिप्पलीमूल सज्जीखार, नीम, तेजपात, मरोड़फली, अजमोदा, इन्द्रयव, गुरुच और देवदारु—इन सबको एक-एक कर्ष तथा पंचलवणों को एक-एक पल की मात्रा में लेकर तीन कुडव (९६ तोला) घी और तेल के साथ मिलाकर निर्धूम आँच पर धीरे-धीरे पकाकर हाथ की हथेली द्वारा सेवन करें।

इसे घी के साथ सेवन करने पर **ग्रहणी**, **पाण्डुरोगी** के **वात-कफ**, **प्लीहा**, **मूत्रावरोध**, **श्वास**, **हिचकी**, **खाँसी**, **थकावट**, **ज्वर** तथा सभी प्रकार के विष (स्थावर-जंगम) और नेत्र रोगों से छुटकारा मिलता है।

जिस रोगी को शयनावस्था में अपने दोनों ओर (पार्श्व में) घटी पर स्थापित जलाधार का-सा बोध हो तो उसे घटीयंत्रक नामक ग्रहणी रोग कहा जाता है। इसे असाध्य माना जाता है।

अर्श (बवासीर) का उपचार

बवासीर, **अतिसार** और **ग्रहणी**—ये तीनों ही विकार पारस्परिक रूप से एक-दूसरे के उत्पन्नकर्ता होते हैं। अर्थात् इन तीनों में से जिस व्यक्ति में किसी एक दोष की प्रधानता होती है उसमें शेष दो अन्य दोषों के उत्पन्न होने की भी संभावना बनी रहती है। अग्निबल के क्षीण होने से उक्त कथित तीनों रोग की वृद्धि तथा अग्निवर्धन से उनका उन्मूलन होता है। अतः उक्त रोगों की दशा में अग्निबल का अभिरक्षण करना आवश्यक है।

बवासीर के विनष्टीकरण हेतु चार प्रकार के साधन बतलाये गये हैं जिनमें पहला वनौषधियों का प्रयोग, दूसरा क्षारवस्तु का सेवन, तीसरा है शस्त्रादि द्वारा कर्तित कर उन्हें अलग करना और चौथा औषधियुक्त अग्नि द्वारा भाप लेना।

अतिसार और बवासीर में वायु और अतिसारोत्पादक वस्तुओं का उपचार करना अनुचित है। इसके लिए उदावर्त (मल-मूत्र के वेग को रोककर ऊपर की ओर चढ़ने वाला वायु ही उदावर्त होता है) नामक रोगनिग्रह की विधि अपनानी चाहिए।

छाँछ में अजवायन और विड् नमक मिलाकर पीने से मल-विबंध में गुणकारी है। छाँछ से पीड़ित होने के फलस्वरूप गुदाद्वार पर मस्से पुनः नहीं निकलते। छाँछ के सेवन से नाड़ियों तथा इन्द्रियों के स्रोत परिमार्जित हो जाते हैं। सभी रस अपने उपयुक्त स्थान में जाकर बल और आनन्द उत्पन्न करते हैं।

उक्त प्रकार से निर्मित छाँछ वात-कफ के शताधिक दोषों को मिटा देता है। अथवा पिप्पली के साथ गुड़, निशोथ और दन्ती के साथ हरड़ को घी में पकाकर सेवन करने से वातादिक विकार निर्मूल होते हैं। अथवा काला तिल और भिलावे का फल एक साथ पाचित कर खाने से भूख बढ़ती, **कुष्ठरोग नष्ट** होता तथा **बवासीर** का उन्मूलन होता है।

तिल, भल्लातक (भिलावाँ), हरड़, गुड़ और जटामांसी। इनका प्रयोग श्वास, खाँसी, पाण्डु तथा ज्वर में करना लाभकारी होता है। सूरन (जमीकन्द) के ऊपर मिट्टी का लेप लगाकर अग्नि में पका लें। तदनन्तर उसमें तैल और नमक मिलाकर खाने से **बवासीर** का नाश हो जाता है।

व्योमा (अभ्रक) क्षार के जल में उबाले हुए बैगन को घी में भूनकर निरन्तर सात दिनों तक सेवन करें। तत्पश्चात् तक्रपान करें तो **बवासीर** की वेदना के साथ ही उसके साथ के अन्य रोग भी दूर हो जाते हैं।

गुड़ के साथ हरड़ का सेवन करने पर पित्त-कफ के रोगों का शमन होता तथा मलद्वार के सभी दोष मिट जाते हैं। अथवा चीते की जड़ का छिलका पीसकर मस्से पर लेप लगायें और ऊपर से सिद्ध किया हुआ मट्ठा या दही आदि **अर्शोघ्न क्षारीय** पदार्थों का प्रयोग करें।

त्रिफला, दशमूल और दन्ती—इनको एक-एक भाग लेकर एक द्रोण जल में क्वाथ पकावें। जब जल का चौथाई भाग शेष बच रहे तब उसमें एक सौ पल अगरु मिला देना चाहिए। पुनः इस क्वाथ को किसी स्वच्छ पात्र में एक मास तक रख देने पर यह दन्त्यरिष्ट नामक क्वाथ तैयार हो जाता है। इस क्वाथ का पान करने से **मलद्वार के विकार**, **कृमि**, **उदावर्त**, **ग्रहणी** और **पाण्डु** रोगों का उन्मूलन होता है।

बवासीर के रोगी को चीता, हाऊबेर और हींग का चूर्ण बना तक्र के साथ पान करावें। अथवा इन्द्रयव और कालीमरिच का चूर्ण देने से भी लाभ मिलता है।

अभयारिष्ट का निर्माण और लाभ

अभया (हरड़) आधा प्रस्थ, आँवला एक प्रस्थ, कैथ नामक फल दश पल, इन्द्रायण पाँच पल तथा वायविडंग (भाभीरंग), छोटी पीपर, लोध, कालीमरिच और शैलबालुक—इन सबको दो-दो भाग में ग्रहण कर चार द्रोण जल में पाक करें। जब पकने पर एक द्रोण रस शेष रहे तब उसमें ठण्ढा होने पर दो सौ पल की मात्रा में गुड़ मिलाकर घी के बरतन में उस रस को पन्द्रह दिनों तक रख छोड़े। पन्द्रह दिनों के अनन्तर उसमे दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीसपत्र,

सोंठ, मिरच और पीपर मिलाकर रख दें। रोगी के बलाबल के अनुसार इसके सेवन की मात्रा निर्धारित करें।

इस अभयारिष्ट के सेवन से **मलद्वार के सभी विकार**, **ग्रहणी**, **पाण्डु**, **हृद्रोग**, **गुल्म**, **प्लीहा** (बरवट), **उदररोग**, **कुष्ठ**, **सूजन**, **भोजन में अरुचि**, **कमलवात**, **श्वेतकुष्ठ**, **कृमिरोग**, **अर्बुद** (चर्मकील), **ग्रंथिरोग**, **व्यंगरोग** (शरीर पर नीला दाग पड़ना), **क्षय** तथा **ज्वरादि** को नष्ट कर भूख को जगाता तथा बल को बढ़ाता है।

दुरालभाद्यरिष्ट का निर्माण और लाभ

दुरालभा एक प्रस्थ,वासा (अड़ूसा), चीता, हरड़, आँवला, पाठा, सोंठ और दन्ती—इन्हें तीन-तीन पल लेकर एक द्रोण जल में परिपाक करें। चौथाई भाग शेष रहकर उसके ठण्ढा हो जाने पर उसमें शक्कर डालकर घृतपात्र में छोटी पीपर, चव्य, प्रियंगु, मधु तथा घृत से लेपित कर उस रस को उसी पात्र में पन्द्रह दिनों तक स्थापित कर दें।

तत्पश्चात् शक्त्यानुसार यथावसर इसकी मात्रा का पान करें। यह दुरालभारिष्ट अर्श, ग्रहणी, उदावर्त, अरुचि, मल-मूल का दूषित निःसरण होना, कब्जियत, मन्दाग्नि, हृद्रोग तथा **पाण्डुरोग** के सभी उत्पातों को नष्ट कर देता है।

कल्याणलवण का निर्माण और लाभ

भिलावाँ, त्रिफला, दन्ती और चीता। इनको बराबर भाग में लेकर दुगुना सेंधा नमक मिला कर चूर्ण बना नारियल के खोपड़ा पर गोबर की धीमी आँच देकर पकावे। इसके सेवन से बवासीर में अत्यन्त लाभ होता है।

प्राणमोदक का निर्माण और लाभ

सोंठ ३ पल, कालीमरिच चौथाई भाग, पीपर १६ तोला, चव्य १ पल, तालीसपत्र १ पल, केशर आधा पल, पिपरामूल २ पल, तेजपात आधा कर्ष, छोटी इलायची १ कर्ष, दालचीनी और मृणाल (कमलनाल) १ कर्ष और गुड़ ३० पल। इन सबको कूट-पीसकर चूर्ण बना लें।

अब इस चूर्ण को २ तोले की मात्रा में वटी बना लें। इसे **प्राणदा वटिका** कहा जाता है। इस वटी का सेवन भोजन से पूर्व और भोजनान्त में भी करना चाहिए। इसके साथ अनुपान के रूप में मदिरा, मांसरस, यूष, दूध या जल आवश्यक है।

इस वटी के द्वारा सभी प्रकार के अर्श तथा उसके सहवर्ती रोग नष्ट होते हैं। इससे वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातिक रोग, कृमिरोग तथा हृद्रोग भी निर्मूल होते हैं।

इसके अतिरिक्त मदात्यय, मूत्रकृच्छ्र, वातज रोग, गलग्रह, विषम ज्वर

(टायफाइड), अग्निमांद्य, पाण्डुरोग आदि भी नष्ट हो जाते हैं। वात-पित्तजनित विड्ग्रह में सोंठ की अनुपलब्धता रहने पर हरड़ का प्रयोग करना उचित है।

पूर्वकथित अनुपान की मात्रा श्लेष्मजनित रोगों में १ पल, वातजनित में २ पल तथा पित्तोत्पन्न रहने पर ३ पल लेनी चाहिए। इस गुटिका के द्रव्यों से चतुर्गुण शक्कर खरल करके मन्दाग्नि, अमलपित्त तथा बवासीर में सेवनीय है।

काङ्कायनमोदक का निर्माण और लाभ

हरड़ ५ पल, कालीमरिच आधा पल, पीपर १ पल, पिपरामूल २ पल, चव्य ३ पल, चीता ४ पल, सोंठ ५ पल, यवक्षार (जवाखार) २ पल, भिलावाँ ८ पल और इनसे दुगुना जमींकद (सूरन) तथा इन सबसे दुगुने परिमाण में गुड़ मिलाकर २-२ तोले की गोली बना इसे प्रातःकाल एक गोली खाने के पश्चात् तक्र (छाँछ) का पान करें।

यह कांकायन मोदक क्षुधाग्नि को बढ़ाकर ग्रहणी और पाण्डुरोगों को नष्ट करता है। इसे महर्षि कंकायन ने शस्त्र, क्षार और अग्नि प्रयोग के विना ही बवासीर पर विजय पाने के लिए अपने शिष्यों से वर्णन किया था। यह मोदक बवासीर विनाश के लिए अतीव लाभकारी होता है।

लवणोत्तमाद्य चूर्ण का लाभ

सेंधा नमक, चीता, इन्द्रयव, करंज और वाडनीम। इन सबको मथकर इनके रस का सात दिनों तक पान करने वाला व्यक्ति वातोत्पन्न रोगों का दमन कर डालता है।

समशर्करचूर्ण का लाभ

सोंठ, पीपर, मरिच, पान का पत्ता, दालचीनी और छोटी इलायची। इनके एकत्रित चूर्ण में बराबर का शक्कर मिलाकर प्रतिदिन मात्रा बढ़ाते हुए सेवन करें।

अंतिम दिन से पुनः उसी प्रकार मात्रा घटाते हुए समाप्त करें। इसके द्वारा मन्दाग्नि, बवासीर, गुल्म, भोजन में अनिच्छा, श्वास, कण्ठरोग तथा हृदय के रोग दूर होते हैं।

चतुःसमो मोदक का निर्माण और लाभ

जो चिकित्सक सोंठ, भिलावाँ, विधायरा और गुड़—इन चारों को समान भाग में लेकर बवासीर, संग्रहणी आदि रोगों को विदीर्ण करने वाला 'अर्द्धदारक' नामक मोदक का निर्माण करता है वह मानो एकाएक रोगग्रस्त दारक को बढ़ाता है।

व्योषादि चूर्ण का लाभ

सोंठ, मरिच, पीपर, चित्रक, भिलावाँ, वायविडंग, काला तिल, हरड़। इनके चूर्ण को गुड़ के साथ सेवन करने से बवासीर, शोथ, विष, कुष्ठ, विड् विबंध, अग्निमांद्य, कृमि तथा पाण्डुरोग दूर होते हैं।

मरिचादि चूर्ण का लाभ

कालीमरिच १ भाग, पीपर २ भाग, सोंठ ३ भाग तथा चीता ४ भाग ग्रहण करें। चीते से चौगुना जमीकंद (सूरन) मिलाकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को प्रतिदिन कौंछ और गुड़ के साथ सेवन करने से बवासीर का रोग जाता रहता है।

शूरणपिण्डी का लाभ

जमीकंद १६ भाग, चीता ८ भाग, सोंठ २ भाग तथा मरिच १ भाग। इनके द्वारा सिद्ध इस सूरणपिण्डी से बवासीर का नाश होता है।

स्वल्पसूरणो मोदक कु गुण और लाभ

कालीमरिच, सोंठ, चित्रक, जमीकंद—इन्हें क्रमानुसार द्विगुणित परिमाण में लेकर इन सबसे दुगुना गुड़ मिलाकर मोदक बना लें। यह **बवासीर** रोग में सेवनीय होता है। उक्त प्रकार का मोदक क्षुधाग्नि को बढ़ाकर शीघ्र ही शूल और गुल्मरोग का उन्मूलन कर देता है, साथ ही श्लीपद (हाथीपाँव) तथा अर्शरोग का भी विनाश कर डालता है।

बृहच्छूरणादि के योग और लाभ

सोंठ ८ भाग, कालीमरिच ४ भाग, त्रिफला ४ भाग तथा अन्य पदार्थ पूर्वकथित शूरणादिगण के समान लें। इन सबका एकत्रित परिमाण लगभग १०८ पल होना चाहिए। अथवा जमीकंद १६ भाग, चीता ८ भाग, सोंठ ८ भाग, कालीमरिच ४ भाग, त्रिफला, पिप्पली और पिप्पलीमूल २-२ भाग, सोंठ के अंश परिमाण (८-८ भाग) से तालीशपत्र, भिलावाँ तथा बायविडंग (भाभीरंग) ले लें।

चीते के परिमाण से मुसली ८ भाग, विधायरा १६ भाग, दालचीनी और इलायची ४-४ भाग । इन सबके चूर्ण में दुगुना गुड़ मिलाकर मोदक बना ले और कामोपभोग हेतु प्रयोग में लाएँ।

यह मोदक भारी, पुष्टिकर एवं वीर्यवर्धक होता है जिसके परिणामस्वरूप यह कामोपभोग से वंचित रहने वाले धनहीन व्यक्तियों के लिए अत्यन्त उपद्रवकारी सिद्ध होता है।

पूर्वकल्प में इसी योगराज के प्रभाववश पाण्डुनंदन भीम एवं महर्षि अगस्त्य भी बहुभोजी बनकर भोजनभट्ट की उपाधि से विभूषित हुए थे। यह मोदक केवल क्षुधाग्निवर्धक ही नहीं होता वरन् बवासीर रोग में शस्त्र, क्षार तथा अग्नि-प्रयोग विफल हो जाने पर भी यह रोगमुक्ति का कार्य कर दिखाता है।

इसके अतिरिक्त यह शोथ (सूजन), श्लीपद (फीलपाँव), ग्रहणी, वात-पित्त-कफ, वलीपलित (असमय में ही केशों की श्वेतता तथा चमड़े पर झुर्री पड़ना)

आदि रोगों को भी नष्ट करने में पूर्णतया सफल रहता है। अतः सुयोग्य चिकित्सक को इसका निर्माण यत्नपूर्वक करना उचित होता है।

चव्यादि घृत का गुण व लाभ

चव्य, सोंठ, कालीमरिच, पीपल, पाठा, जवाखार, धनिया, अजवायन, पिप्पलीमूल, विड् नमक, सेंधा नमक, चित्रक, बेल का गूदा और हरड़। इन सबका चूर्ण घी में पाचित कर लें। पुनः मलदोष को हटाकर धातुओं के अनुकूल बनाने के लिए इसकी समूची मात्रा में चौगुने दही में इस घृत को मिलाकर प्रयोग करें।

यह प्रवाहिका, गुदभ्रंश (काँच निकलना), मूत्रकृच्छ्र, परिस्रव, मलद्वार, जाँघ और जोड़ों की पीड़ा को दूर करता है।

पिप्पल्यादि तैल घृत का लाभ

छोटी पीपर, मुलेठी, बोल, सौंफ, मैनफल, वचा, कूठ, सोंठ, चीता और देवदारु। इन सब वस्तुओं को एक साथ पीसकर दुगुने दूध में पका लें। पक जाने पर इस तैल के द्वारा **बवासीर** तथा **मूर्छित वायु** वाले रोगियों में बस्तिकर्म करना श्रेष्ठ कहा गया है।

इस तैल से बस्तिकर्म करने पर गुदभ्रंश, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, कमर, जाँघ तथा पृष्ठभाग की कमजोरी, जाँघों की जोड़ का आनाह (एक प्रकार का वातशूल), पिच्छास्राव, मलद्वार की सूजन, वायु से कान्तिलोप तथा बवासीर का पुनरावर्तन आदि दूर होते हैं।

कल्याणलेह या बहुलाशक गुड के लाभ

निशोथ, तेजबल, दन्ती, गोखरू, चित्रक, कचूर, सोंठ, इन्द्रायण, मोथा, नागरमोथा, वायविडंग (भाभीरंग) तथा हरीतकी (हरड़)—इनके निर्मितीकरण के लिए ये सभी वस्तुएँ १-१ पल, भिलावाँ ८ पल, विधायरा ६ पल, जमीकंद १६ पल लेकर २ द्रोण जल में पकावें। पक जाने के पश्चात् जब चौथाई भाग शेष रह जाय और रस परिपक्व हो जाय तब उसमें तीन गुना गुड़ मिला लें। जब यह पककर गाढ़ा हो जाय और करछुल में चिपकने लगे तब इसे आग से नीचे उतारकर कथित वस्तुओं के चूर्ण को मिला देवें।

इसमें मिलाने वाली वस्तुएँ इस प्रकार से हैं—निशोथ, तेजबल, जमीकंद (सूरन) और चित्रक २-२ पल, इलायची, दालचीनी, कालीमरिच और नागकेशर ६-६ पल। इन सबके मिश्रण से चूर्ण का परिमाण ३२ पल बनाकर लेह में मिलाकर किसी पात्र से ढँक दें। तदनन्तर मात्रानुसार सेवन करें। औषधि का पाचन हो जाने पर दूध या मांसरस का आहार ग्रहण करें।

इस लेह के सेवन से पंचगुल्म (पार्श्वगुल्म, हृदगुल्म, नाभिगुल्म, बस्तिगुल्म तथा नाभिहृदयान्तरालग्रंथि गुल्म), प्रमेह (धातु-संबंधी रोग विशेष), पाण्डुरोग, श्वास, समस्त प्रकार के बवासीर तथा सम्पूर्ण औदरिक रोगों का नाश हो जाता है।

यह **ग्रहणी रोग** से उत्पन्न होने वाली सुस्ती को दूर कर **राजयक्ष्मा** का भी विनाश कर डालता है। यह लेह **पीनस रोग** (नाक से होने वाला रक्तस्राव), अस्थिगत वायु तथा अन्यान्य प्रकार के रोगों में भी गुणकारी माना गया है।

इस बाहुलाशक नामक गुड़ के प्रयोग से बारम्बार उत्पन्न होने वाला अर्श रोग निर्मूल हो जाता है। यह **आयुवर्धक**, **वलीपलितनाशक**, **वृद्धत्वनिवारक** तथा **अर्शोन्मूलक** है।

यहाँ गुड़पाक की पहचान इस प्रकार बतलायी गयी है कि जब जलपूर्ण पात्र में डाला हुआ गुड़ नीचे डूब जाय और बिना विकीर्ण हुए एक ही स्थान में स्थिर रहे तो उस गुड़पाक को सिद्ध समझना चाहिए। अथवा पाक के गाढ़ा होकर करछुल में चिपकने पर उसे परिपक्व जानना चाहिए। गुड़पाक की परिपक्वता हो जाने पर वह सरलतापूर्वक मसलने, स्पर्श करने योग्य बन जाता है। ऐसी दशा में वह रसपूर्ण तथा सुंदर वर्णवाला हो जाता है।

भल्लातक गुड का लाभ

इसके लिए सबसे पहले एक द्रोण जल में दो हजार की संख्या में भिलावें के फल को पकावें। जब पककर रस का चौथाई भाग शेष रह जाय तो उसमें १०० पल (१६ सेर ४ पल) गुड़ डालकर पकावें। तदनन्तर ५०० भिलावाँफलों को उसमें छीलकर पुन: मिला दें।

उसके पूर्णरूप से पक जाने पर त्रिफला, त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपर), अजवायन, मोथा, सेंधा नमक, दालचीनी, इलायची, तेजपात और केशर— इन सबको १-१ कर्ष की मात्रा में लेकर चूर्ण बना उस रस में मिला दें।

प्रात:काल नित्यप्रति इस गुड़ का सेवन करने से क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

इस गुड़ के द्वारा **कुष्ठ**, **बवासीर**, **कामला**, **प्रमेह**, **ग्रहणी**, **गुल्म**, **पाण्डुरोग**, **प्लीहा** (तिल्ली) तथा समस्त प्रकार के औदरिक रोगों का उन्मूलन होता है।

भल्लातकावलेह के योग और लाभ

चीता, त्रिफला, मोथा, पिप्पलीमूल, चव्य, गुरुच, गजपिप्पली (गजपीपर), अपामार्ग (चिचिड़ा), दंडोत्पल, एवं वनतुलसी (तुलसी की एक प्रजाति)। इन सब वस्तुओं को ४-४ पल की मात्रा में लेकर एक द्रोण जल में पका लें। इसमें दो हजार भिलावाँ के फलों को भी बिन-चुनकर मिला दें।

पकाने के पश्चात् जब सभी औषधियाँ चौथाई भाग में रह जायँ तब उसे एक लौहपात्र में पुन: पकावे। उसी क्षण उसमें ५० पल तीक्ष्ण लौहचूर्ण, ६४ तोला (२ कुडव) घृत, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च), त्रिफला, चित्रक, सेंधा नमक, विड् नमक, साँभर नमक, काला नमक और वायविडंग (भाभीरंग) १-१ पल, विधायरा ३२ तोला और मुसली, जमीकंद ८ पल। इन सबका चूर्ण बनाकर उक्त रस में छोड़ दें। इसके पककर ठण्ढा हो जाने पर इसमें ६४ तोला मधु मिला लें। इस अवलेह का सेवन प्रात:काल तथा आहारकाल में प्रतिदिन करें।

इस अवलेह के सेवन से बवासीर, ग्रहणी, पाण्डु, भोजन में अनिच्छा, कृमिरोग, गुल्मरोग, पेट की पथरी (अश्मरी), प्रमेह और शूलरोग का नियंत्रण होता है। यह वीर्यवर्धन करके वलीपलित रोग को मिटाता है। इस प्रकार यह समस्त रोगों के लिए एक उत्तम रसायन-स्वरूप है।

वासा (अड़ूसा), सामान्य लोध, रसोत और लांगली (कलिहारी)। इन सबको समान भाग में लेकर जल में पीस नाभिस्थल के चतुर्दिक् चार अंगुल तक के स्थान में लेप लगाने से पुन: बवासीर के उत्पन्न होने की सम्भावन नहीं रह जाती।

प्रारम्भिक काल में रक्तज बवासीर से स्रवित होने वाले दूषित रक्त को रोकना कदापि उचित नहीं होता, क्योंकि एकाएक रक्त को अवरुद्ध कर देने से अफरा तथा रक्तविकार उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है।

मक्खन और तिल अथवा केशर, मक्खन और शर्करा या दही की मलाई या मट्ठे के सेवन करने से रक्तवाहिनी बवासीर का विनाश होता है।

मंजीठ, नीलकमल, मोचरस, लोध, तिल और चन्दन। इन सब वस्तुओं को बकरी के दूध में पीसकर प्रयोग करने से अर्श का निवारण होता है।

कूठ के फल और उसका छिलका, केशर, नीलकमल, लोध, धाय (धव या धावड़ा)। इन्हें जल में पीसकर घी में पकाकर देने से रक्तार्श (खूनी बवासीर) में लाभ होता है।

कूड़ा के कल्क को छाँछ के साथ पीसकर पीने से बवासीर का रक्त शीघ्र ही रुक जाता है।

कुटजावलेह के गुण और लाभ

एक सौ पल कूड़े की छाल को पीसकर एक द्रोण जल में पाक करें। पकने पर जब अष्टमांश शेष रह जाय तब उसे नीचे उतार कर कपड़े से छान लें और पुन: आग पर पकावें। पकने के पश्चात् लेह के समान गाढ़ा हो जाने पर उसमें भिलावाँ, वायविडंग, त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर), त्रिफला, रसोत, चित्रक, कूड़ा के

फल, वचा, अतीस और बेल का गूदा। इन सबको एक-एक पल तथा तीस पल गुड़ मिला दें। पुन: उसमें ३२ तोले मधु और ३२ तोले घी को भी डाल दें।

इस प्रकार से पकाया गया कुटज अवलेह वातज, पितज, कफज, त्रिदोष और रक्तार्श को शान्त करता है। इसके द्वारा अम्लपित्त, अतिसार, पाण्डु, अरुचि, ग्रहणी, कोमलता, दुर्बलता, शोथ तथा कामला रोग उन्मूलित होता है।

इसके अनुपान हेतु घृत, मधु, मट्ठा, जल और दूध का उपयोग करना चाहिए। यह कुटजावलेह अनेकानेक रोगों को निर्मूल करने में सक्षम कहा गया है।

शतमस्वाक्षार का लाभ

चार प्रस्थ भस्म को कठपाडर के छहगुने जल में डालकर किसी मजबूत लोहे के बरतन में आग पर पकावें। पकाते समय उसे करछुल से धीरे-धीरे चलाते भी रहें। जब थोड़ा अंश शेष रह जाय तब नाभिशंख के अनेक टुकड़ों को आग में जलाकर उसकी राख मिला दें।

इस प्रकार परिपक्व किया हुआ क्षार शताधिक रोगों को जलाकर भस्मीभूत कर डालता है। जिस पाक में गाढ़ापन या पतलापन अधिक मात्रा में न हो तो उसे 'स्मरपाक' कहा जाता है। इस प्रकार का क्षार अर्शादि रोगों में उपचारार्थ प्रयुक्त होता है।

क्षीरसूत्र का लाभ

थूहर (सेंहुड़) के दूध में हलदी का चूर्ण मिलाकर उसमें सूत्र को कई बार सिद्ध कर **बवासीर के मस्सों** पर कसकर बाँध देने से उसे काट देता है, साथ ही **भगन्दर रोग** को भी दूर कर देता है।

यन्त्रादि क्रिया

अर्श रोग में सबसे पहले दायीं ओर, फिर बायीं ओर, पुन: पीछे की ओर तथा अंत में अगले भाग के मस्सों को पंचतिक्त के द्वारा चिकना बनाकर क्षार या अग्नि से जलाना चाहिए।

वातज, पित्तज, कफज, तथा रक्तज अर्शांकुरों का पथरी और निर्गुण्डी (सम्भालू) के पत्तों से लेखन करने के पश्चात् क्षारयुक्त लेप लगायें।

तत्पश्चात् अर्शोयन्त्र के द्वार को हाथ से आच्छादित कर सौ अक्षर के उच्चारण काल तक स्थिरता बनाये रखें। पुन: हाथ हटा लेने पर यदि वे मस्से पके हुए जामुन के वर्ण वाले दीख पड़े तो लेप की सफलता समझनी चाहिए।

इसकी विपरीतता में पुन: क्षारयुक्त गाढ़ा लेप लगाना चाहिए। लेप के सफल हो जाने पर दही अथवा दही के पानी से उन क्षारयुक्त मस्सों को प्रक्षालित कर दें।

तदनन्तर मुलेठी के कल्क का लेप लगायें। जो मस्से ताड़ के समान कठोर

होने के फलस्वरूप बाधित न हो सके हों उन्हें अग्नि द्वारा दाग दें। ऐसा करने पर यदि दाहजनित पीड़ा हो तो मधु-घृत के द्वारा इन्हें निर्वापित कर दें। जब वे मस्से अच्छी तरह से दग्ध हो जायँ तो उन पर वट, सेंहुड़, पाकड़, चन्दन, गेरू या गुरुच के कल्क में घी मिलाकर लेप लगा देने चाहिए।

इस प्रक्रिया के अनन्तर रोगी को एक मुहूर्त (२ घटी) तक जलपूर्ण पात्र में बैठाये रखना आवश्यक है। तत्पश्चात् पूर्वोक्त क्षार को गरम जल के द्वारा मस्सों के स्थान में पहुँचा दें।

ऐसा करने से मल-मूत्र की तीव्रता बढ़ती हैं। दग्ध करने से उत्पन्न होने वाली जलन में सौ बार धोये हुए घी का लेप लगाना उचित होता है।

व्रण को पकाने के लिए नवान्न, उड़द तथा मट्ठे आदि का सेवन निर्धारित मात्रा के अनुसार करें। व्रणशोधन के निमित्त गूगुल के साथ त्रिफला का काढ़ा पान करें। जीर्णावस्था में धान, मूँग, सेंधा नमक तथा तिक्त पदार्थों का पथ्यरूप में सेवन करें। इस प्रकार इस बलवान रोग की गहरी जड़ को काटकर निर्मूल कर डालें। इस प्रक्रिया के पश्चात् भी ऐसे पदार्थों से दूर रहें जिनसे इनकी पुनरावृत्ति होती हो।

क्षुधा या भूख वृद्धि के उपचार

क्षुधाग्नि की साम्यावस्था में मिताहार के द्वारा उस अग्नि का अभिरक्षण करना आवश्यक होता है। इसका कारण यह है कि समाग्नि की अवस्था में किसी प्रकार के दोष की उत्पत्ति संभव नहीं होती। किन्तु इस अग्नि के विषमावस्था में होने पर वात का, तीक्ष्ण होने पर पित्त का और मंद होने पर कफ का नियंत्रण करना चाहिए।

इस प्रकार करने से उन्माद, राजयक्ष्मा आदि दुर्दम्य रोगों के आक्रमण से बचा जा सकता है।

हिङ्वष्टक चूर्ण के योग व लाभ

त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च) ३, अजवायन ४, सेंधा नमक ५ जीरा ६ और स्याहजीरा ७। इन सभी का समान भाग में चूर्ण बनाकर इसमें आठवाँ भाग हींग मिला दें।

इसे प्रतिदिन भोजन के समय प्रथम कौर में घी के साथ सेवन करने से जठराग्नि बढ़ती है, साथ ही वातरोगों का भी विनष्टीकरण होता है।

राजमण्ड के योग और लाभ

चावल के गरम माँड़ को हींग और साँभर नमक (समुद्री नमक) मिलाक पीने से **विषमाग्नि** तथा **मन्दाग्नि** में लाभ होता है।

यदि चावलों का माँड़ निम्नलिखित आठ वस्तुओं के सार से संयुक्त कर सेवन किया जाय तो क्षुधाग्नि की वृद्धि, बस्तिस्थान का शुद्धिकरण, प्राण एवं रक्त का वर्धन, ज्वर तथा कफ-पित्त का दूरीकरण एंव वायु का प्रशमन होता है।

चावल २ पल, मूँग १ पल तथा सोंठ, कालीमिर्च, पीपर, धनिया, सेंधा नमक, हींग और तैल। इसी के योग से यह मंड तैयार किया जाता है। अथवा मूँग २ पल और चावल—इन दोनों को चौगुने जल में उबालकर पकने पर मांड़ निथार लें और उसे गोघृत में भून डालें।

तत्पश्चात् भुनी हुई हींग १ माशा लेकर सेंधा नमक, त्रिकटु, और धनिया का चूर्ण बनाकर उसमें मिला दें और किसी स्वच्छ पात्र में रख दें। पुन: उसे किसी चतुर नायिका के हाथ में देकर किसी निर्जल, निर्जन और वातरहित स्थान में ले जायँ। वहाँ जाने पर उस नायिका को मधुर कटाक्ष के द्वारा अपनी ओर आकर्षित कर रोगी को वह मंड प्रेमपूर्वक दिखावे। इस प्रक्रिया के अनन्तर उस राजमंड का पान करने से रोगी का त्रिदोष नष्ट हो जाता है।

नागरमोथा, गुड़ या सेंधा नमक के साथ हरड़ का सेवन **क्षुधाग्विर्धक** होता है।

भोजन के प्रारंभ में नित्यप्रति अदरक और सेंधा नमक का सेवन करना **रुचिकारक** और **अग्निवर्धक** होता है। इसके अतिरिक्त जिह्वा और कंठप्रदेश का भी विशुद्धिकरण करता है।

सेंधा नमक, हरड़, सफेद जीरा और चित्रक। इनके चूर्ण में घी मिलाकर गरम जल से सेवन करने पर **मंदाग्नि** तथा **दुर्बलाङ्गी** व्यक्ति भी गरिष्ठ खाद्य पदार्थ को शीघ्र ही पाचित कर लेता है।

अतीस, हरड़, गिलोय (गुरुच)—इनके कषाय में त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपर) को तेजपत्र और दालचीनी के द्वारा सुवासित करके खाने से मन्दाग्नि और कफोत्पन्न उपद्रव शान्त होते हैं।

गुड़ के समान भाग में सैंधव नमक, हींग, त्रिफला, अजवायन और त्रिकटु को लेकर खरल में घोंटकर गुटिका बना लें। इसके सेवन करने वाले की क्षुधाग्नि इतनी तीव्र हो जाती है कि वह अपनी इच्छित वस्तु को भरपेट खा लेने पर भी ऊबता नहीं है।

सोंठ अथवा पीपर या हरड़ किंवा दाड़िम (अनार) को गुड़ के साथ नित्य सेवन करने के फलस्वरूप आम, अनपच, मलद्वार के रोग तथा विड्विबंध का निवारण होता है।

वायविडंग (भाभीरंग), भल्लातक (भिलावाँ), चित्रक (चीता) अमृता (हरड़) और सोंठ। इन सब पदार्थों के सम परिमाण को गुड़ के साथ मिलाकर घी के साथ सेवन किये जाने पर रोगी की **क्षुधाग्नि** बालकों के समान प्रज्वलित हो उठती है।

हरड़ के चूर्ण को धनिया के तुषोदक से सिद्ध करके छोटी पीपर, सेंधा नमक और हींग को उसमें मिश्रित कर दें।

इसके सेवन से वमन-संबंधी उपद्रव तथा वर्धित अजीर्ण का शमन होकर भूख की उत्पत्ति होती है।

चित्रकगुड का लाभ

चीता और दशमूल २०० पल अथवा गिलोय १०० पल। इनका काढ़ा बना लें। पक जाने पर उसमें हरड़ ८ सेर और गुड़ १०० पल को भी मिलाकर तब तक उसे पकावें जब तक पूर्णरूप से गुड़पाक न हो जाय। पकने के पश्चात् ठंढा होने पर दूसरे दिन ६४ तोला मधु, त्रिसुगंध (इलायची, तेजपात, दालचीनी) २ पल और त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च) २ पल भी उसमें मिश्रित कर दें। तदनंतर उसमें जवाखार भी २ कर्ष की मात्रा में मिला दें। इस प्रकार यह एक श्रेष्ठ रसायन के रूप में तैयार हो जाता है।

इसके द्वारा मानव की जठराग्नि इतनी प्रज्वलित हो उठती है कि वह शुष्क काष्ठ को भी सहज ही पचा डालने में समर्थ हो जाता है।

इससे श्वास (दमा), खाँसी, क्षय, कृमिरोग, गुल्म, उंदर, बवासीर और कुष्ठ रोग का विनाश हो जाता है। इसके सेवन से दुःसाध्य पीनस (नकसीर) रोग का भी विनष्टीकरण होता है।

भोजन की विषमता (कमो-बेशी) के परिणामस्वरूप प्रायः अजीर्ण रोग की उत्पत्ति हुआ करती है। यह अजीर्ण ही रोगों का मूल कारण माना जाता है। अजीर्ण का निवारण न होने तक रोगमुक्ति भी संभव नहीं होती।

इसके सामान्य लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं, जैसे—शरीर में ग्लानि, भारीपन, आलस्य, तंद्रा, भ्रम, वायु के कारण अचेतना, मल का रुक जाना अथवा आमावस्था (अपरिपक्वावस्था) में निकलना आदि।

दिन में सोते समय हींग, त्रिकटु और सेंधा नमक का लेप पेट पर लगाने से अजीर्ण का निवारण होता है।

दिन में शयन की आवश्यकता

निम्नलिखित व्यक्तियों को दिन में शयन कराना आवश्यक बतलाया गया है जैसे—व्यायाम, मैथुन तथा घुड़सवारी से क्लान्त होने पर, अतिसार रोग से ग्रस्त,

शूल, श्वास, प्यास से आकुल, हिचकी आने से क्लेशित, दुर्बल, क्षीण कद वाले, बालक, मादक पदार्थों के सेवन से व्यथित, वृद्ध, घी-दूध आदि के सेवन से अजीर्णग्रस्त, रात्रिजागरण तथा त्रिकालभोजी होने पर।

देवदारु, वचा, मोथा, सोंठ, अतीस और हरड़। इनके रस को पीने से सभी प्रकार के अजीर्ण नष्ट हो जाते हैं।

भोजनपरान्त तुरन्त ही आचमन करके रात्रि में शुचितापूर्वक गुनगुना अथवा शीतल जल पीने से जठराग्नि प्रज्वलित होती है।

जल में धनिया और सोंठ को पकाकर सुयोग्य चिकित्सक को अजीर्ण रोग में पान कराना उचित है। इस प्रकार का पक्व जल कच्चे अजीर्ण को पकाता, शूल को मिटाता तथा बस्ति का शुद्धिकरण करता है।

अजीर्ण रोग में हरड़ और छोटी पीपर के चूर्ण में सौवर्चल (सोंचर) नमक मिलाकर दही के पानी या गरम जल के साथ रोगी के बलाबल के अनुसार पान कराने से अजीर्ण दूर होता है।

इस चूर्ण के द्वारा चार प्रकार के अजीर्ण (मन्दाग्नि, अरुचि, आनाह और वातगुल्म) शान्त होकर शूलवेदना भी नष्ट होती है।

जिस किसी शक्तिशाली व्यक्ति में स्नेहपान के परिणामस्वरूप अजीर्ण उत्पन्न होने की आशंका हो उसे भोजनकाल में सबसे पहले सोंठ खाकर भोजन करना चाहिए। तदनन्तर हरड़ का सेवन करें।

जलन का शमन

भोजनोपरान्त जिसके हृदय, कोष्ठ तथा कण्ठनली में जलन की अनुभूति हो उसे अंगूर, शक्कर तथा हरड़ के साथ मधु का सेवन करना उचित होता है।

हींग १ भाग, वचा २ भाग, पीपर ३ भाग, अदरक ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हरड़ ६ भाग, चित्रक ७ भाग और कूठ ८ भाग। इनका चूर्ण दही या दही के पानी, मदिरा या गुनगुना जल के साथ सेवन किये जाने से वात का शमन, शोथ, विवर्णता, अजीर्ण, प्लीहा (तिल्ली) तथा औदरिक रोगों का विनष्टीकरण, बल, बुद्धि, तेज तथा पुष्टि का वर्धन होता है।

जीर्ण-शीर्ण अंगों तथा विषपायी व्यक्तियों के लिए यह अग्निमुख नामक चूर्ण अत्यन्त लाभकारी है। इसके अतिरिक्त यह बवासीर, श्लेष्मा (बलगम), गुल्म, खाँसी, श्वास (दमा), **क्षयनाशक** तथा **क्षुधाग्निवर्धक** भी होता है। इसका प्रयोग निरापद रूप में सभी रोगों में किया जा सकता है।

बृहदग्निमुख चूर्ण का योग और लाभ

दोनों क्षार (जवाखार, सज्जीखार), चित्रक, पाठा, करंज, पंचलवण, छोटी इलायची, तेजपात, भारंगी, वायविडंग (भाभीरंग), हींग, कूठ, कचूर, दारुहलदी, निशोथ, मोथा, वचा, इन्द्रयव, आँवला, जीरा, विषाविल, हरड़, स्याहजीरा, अम्लवेंत, इमली, अनार, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमरिच), भिलावाँ, अजमोदा, अजवायन, देवदारु, अतीस, विधायरा, हाऊबेर और अमलतास—ये सब चीजें सम भाग और तिल, कठपाडर, सहिजन, तालमखाना, ढाक (पलाश), आसन (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली अर्क, धव, पिप्पल, इमली, कोट, शोधित लौहमल और चूने का भस्म)।

उक्त वस्तुओं को भी समान परिमाण में लेकर महीन चूर्ण बना लें। तत्पश्चात् तीन दिनों तक बिजौरा नीबू के रस और पुन: तीन दिन तक मक्खन और अदरख के रस में सिद्ध कर लें।

इस प्रकार 'बृहद्ग्निमुख' नामक चूर्ण तैयार हो जाता है। यह जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी और जठराग्निवर्धक होता है।

इसका सेवन विधानपूर्वक किये जाने पर अपच, गुल्म, प्लीहा (तिल्ली, बरवट), बवासीर, औदरिक रोग, **आँतों की वृद्धि** तथा वातगतरक्त में यह लाभ पहुँचाता है, साथ ही **मंदाग्नि** को भी दूर करता है।

अथ भास्करलवण

पिपरामूल, धनिया, स्याहजीरा, सेंधा नमक, विड् नमक, चव्य, तेजपात, तालीशपत्र और केशर। इन सबका २-२ पल भाग, काला नमक ५ भाग, कालीमरिच, जीरा और सोंठ १-१ पल, इनसे दालचीनी और इलायची आधा भाग, समुद्री नमक ६४ तोला, अनार ३२ तोला तथा अम्लबेंत २ पल।

इन सबको खरल में एक साथ चूर्णित करने पर श्रेष्ठ 'भास्करलवण' चूर्ण का निर्माण होता है। इसे जगत के हितार्थ सूर्यदेव ने निष्पादित किया है। यह वात, कफ, वातगुल्म तथा वातपीड़ा का निवारण करता है।

इस चूर्ण का प्रयोग मट्ठा, दही का पानी, मदिरा, सिम्हालू-रस, चित्रकरस या इनकी कांजी के साथ अथवा जांगलदेशीय हिरन के मांसरस या अन्य प्रकार के रुचिकारक रसों के साथ करना उपयोगी होता है।

उक्त विधि से इस चूर्ण के सेवन करने पर मंदाग्नि में तीव्रता आती है। इसके अतिरिक्त **अर्श**, **ग्रहणी**, **कोढ़**, **भगन्दर** (गुदा का रोगविशेष), हृद्रोग, **आमदोष**, **पेट की कब्जियत**, **प्लीहा**, **पथरी**, **साँस फूलना** (दमा),

खाँसी, **औदरिक रोग**, **शर्करा प्रमेह** (बीस प्रकार के प्रमेहों में से एक) तथा **पाण्डुरोग** का नाश हो जाता है।

वार्ताकु गुटिका के योग और लाभ

थूहर (सेंहुँड़) ४ पल, त्रिलवण (सेंधा नमक, विड् नमक, काला नमक) ३ पल, बैंगन ३२ तोला, अर्क ८ पल और चित्रक २ पल। इन सब चीजों को बैंगन के रस में जलाकर गोली बना लें। इसे भोजनोपरान्त सेवन करने से भक्षित पदार्थ का पाचक शीघ्र ही हो जाता है।

इसके अतिरिक्त यह वटी श्वास (दमा), खाँसी, बवासीर, विषूचिका, पीनस (नकसीर) और हृद्रोग में भी परम उपयोगी है। अजीर्ण और ग्रहणी रोग में इसका प्रयोग अमोघ कहा गया है।

अग्निघृत का योग और लाभ

पिप्पली (छोटी पीपर), पिप्पलीमूल, गजपिप्पली, चित्रक, हींग, वचा, अजमोदा और पाँच प्रकार के नमक, सज्जीखार, जवाखार, हाऊबेर—ये सब वस्तुएं आधा-आधा पल। इन्हें एक प्रस्थ घी में पकावें। इसमें घी के बराबर दही, कांजी तथा चूकन को पहले से ही मिला दें।

इस प्रकार से यह अग्निघृत निर्मित होता है। यह मंदाग्नि रोग में परमोपयोगी होता है। इसके साथ ही यह अर्श, गुल्म, औदरिक रोग, अरुचि, कफ, खाँसी, मज्जागत वायु, ग्रहणी, शोथ, भगन्दर, बस्ति तथा कुक्षिरोगों को उसी प्रकार मिटा देता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अँधेरा मिट जाता है।

चुक्रसन्धान के योग और लाभ

चावल का जल १ प्रस्थ, छाँछ और कांजी ३ पल, दही आधा प्रस्थ, अम्लबेंत और मूली ८ पल, गुड़ २ सेर, सोंठ २ पल (मतान्तर से), सफेद सोहागा २ पल, कालीजीरी २ पल, पीपर और कालीमरिच २ पल तथा हलदी २ पल।

इन सब पदार्थों को किसी चिकने और मजबूत बरतन में रखकर धान्य या यव की ढेरी में स्थापित कर बासी बनावें।

अर्थात् इन्हें निम्न समयावधि तक उस अन्न की ढेरी में रखे रहें, जैसे—ग्रीष्मकाल और शरद् ऋतु में तीन दिन, वर्षाऋतु में चार दिन, वसन्त ऋतु में छह दिन और हेमन्तकाल में आठ दिनों तक रखकर बासी बना लें। तदनन्तर उसे उबालकर फाड़ दें तो यह चुक्र (कांजी) सिद्ध हो जाता है।

शार्दूलकाञ्जिक का योग और लाभ

गुड़, शहद, कांजी और दही का पानी। इन्हें क्रमशः बढ़ाते हुए दुगुने

परिमाण में लेने चाहिए। तत्पश्चात् छोटी पीपर, अदरक, देवदारु, चीता, चव्य, बेल का गूदा, जटामांसी, अजवायन, अजमोदा, हरड़, सोंठ, धनिया, कालीमरिच, जीरा और हींग। इन सब वस्तुओं को बराबर भाग में मिलाकर कांजिक को सिद्ध कर लें।

सिद्धिप्राप्त यह काञ्चिक श्वास, खाँसी, अतिसार, पाण्डुरोग, कामला (पीलिया), आमदोष, गुल्मपीड़ा, वातपीड़ा, सामान्य वेदना, सूजन आदि रोग समूल नष्ट कर देता है।

विसूचिका रोग का उपचार

कूड़ा और सेंधा नमक के कल्क में चुक्र (कांजी) और तैल को मिलाकर किंचित् गरम कर लें। इसे विषूचिका रोग में मालिश करने से हाथ-पैरों की पीड़ा (ऐंठन) तथा शूल का निवारण होता है।

चुक्र के अभाव में तिलकांजिक का ग्रहण करना चाहिए। करंज, नीम, चुरनहार, गुरुच, कोह और कूड़ा। इनका सिद्ध किया हुआ कषाय भीषण विसूचिका का भी विनाश कर डालता है।

त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), करंज का फल और हलदी की जड़। इनको बिजौरा नीबू के रस में साधित कर वटी बना कर छाया में सुखा लें। विषूचिका रोग में यह वटी अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होती है।

अथवा दालचीनी, तेजपात, रास्ना, अगरु, सहिजन, कूड़ा, वचा और सौंफ। इनके चूर्ण को मट्ठे में सिद्ध करके उबटन लगाने से हाथ-पैरों की अकड़न और विसूचिका का नाश होता है। इसका पकाया हुआ तैल भी गुणकारी कहा गया है।

बढ़ी हुई प्यास तथा उत्क्लेश की अवस्था में लौंग का जल पीना हितकर है। अथवा जायफल और भद्रवन का ठण्ढा क्वाथ भी लाभदायक सिद्ध होता है।

आमरोग के फलस्वरूप वर्धित विसूचिका में पैर की एड़ी में जलन होना एक शुभ संकेत माना जाता है। जब इस रोग की वर्तमानता या निवृत्ति में मल का निकलना रुक जाय तब देवदारु, हरड़, कूड़ा, सौंफ, हींग और सेंधा नमक को मट्ठे में पीसकर उदर पर लेपित कर देना उचित है।

जवाखार के साथ जौ का चूर्ण मट्ठे में मिला गरम करके प्रयुक्त किये जाने पर उदर की पीड़ा शांत होती है। अथवा कूड़ा के गरम रस से परिपूरित घड़ी के द्वारा बस्तिकर्म करने या हाथ-पैरों को तपाने से भी विषूचिका दूर होती है।

अजीर्णावस्था में तेज पीड़ा होने पर भी दर्दनिवारक औषधियों का पान करना कदापि उचित नहीं है, क्योंकि अग्नि के दोषाच्छादित रहने पर वह दोषशामक औषधियों को पाचित करने में अक्षम रहता है।

रोगी में वमन, विरेचन, लंघन आदि की प्रक्रिया पूर्ण होने के पश्चात् जब वह क्षुधातुर हो रहा हो तब चिकित्सक को दीपन, पाचन और पेय पदार्थों से उसका उपचार करना आवश्यक होता है। ऐसा न करने पर उसमें आमाशयिक उपद्रव होने की आशंका बनी रहती है।

मोथा, वायविडंग (भाभीरंग), पंच लवण, जवाखार, चीता, हर्रे, पाठा, पिप्पलीमूल, कूड़ा, सज्जीखार,। इनका मिश्रित चूर्ण अत्यन्त रुचिकर होता है। इस चूर्ण को कटूष्ण जल या ऐसे मट्ठे के साथ सेवन करना चाहिए जिसमें आधा जल मिलाया गया हो।

इससे रोगी की क्षुधाग्नि वर्धित होकर उसमें बल और तेज का प्रादुर्भाव होने लगता है।

कृमिरोग का उपचार

प्रात:काल उठते ही गुड़ खाकर बासी पानी के साथ तेजपात और अजवायन का सेवन करने पर आँतों में रहने वाले कीड़े मल के साथ निकल जाया करते हैं।

कृमिरोग में कूड़ा के पत्तों के रस में शहद मिलाकर सेवन करने से लाभ होता हैं। अथवा केउँआ या पत्तूर के रस का प्रयोग करें। कृमियों के विनष्टीकरण तथा क्षुधाग्निवर्धन हेतु वायविडंग और त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर) के चूर्ण के साथ राजमण्ड का उपयोग करना अच्छा होता है।

कृमिसमूहों को नष्ट करने के निमित्त वायविडंग (भाभीरंग) अथवा श्वासरोगोक्त चूर्ण को मधु मिलाकर लेह्य के समान चाटें। कृमिरोग में इन्द्रायण की जड़ को कालीमरिच के साथ पीसकर पान करने से कृमियों का निर्मूलन होकर जठराग्नि की वृद्धि होती है।

वायविडंग, तंडुल, त्रिकटु, सहिजन और कालीमरिच—इनके साथ रक्त में सिद्ध की गयी जवाखार के साथ यवागू भी **कृमिनिवारक** होती है।

मोथा, मूसाकानी का फल, देवदारु और सहिजन—इनके क्वाथ में पीपर और वायविडंग के कल्क (जल के साथ पीसी हुई औषधि) को मिलाकर पान करने से मलद्वार और जननेंद्रिय तक फैले हुए दीर्घकालिक कृमियों का नाश हो जाता है।

मूषकपर्णी (मूसाकानी) के पत्तों को पीसकर पीठीं के संग मालपूआ बनाकर खायें। तदनन्तर कृमिविनाशक सौवीर कांजी का पान करें। तेजपात के बीज के रस को मधु के साथ अथवा इसके बीज को कल्क के रूप में मट्ठे के साथ पीने से कृमि नष्ट होते हैं।

इसके अतिरिक्त आँवला रस के साथ बकरे का मूत्र या सुरसादिगण का

प्रयोग भी लाभकारी सिद्ध होता है। अथवा त्रिफला, निशोथ, दन्ती, वचा और कबीला—इनके साथ गोमूत्र में साधित घृत (त्रिफलादिघृत) भी कृमिनाशक होता है।

धतूरा या पान के पत्तों का निकाला हुआ रस पारद में मिलाकर पेट और नाभि पर लेप लगाने से जूएँ नष्ट होते हैं। कृमिरोगी को दूध, मांस, गुड़, घी, दही, शाक, अम्ल या मधुर पदार्थों का परित्याग कर देना चाहिए क्योंकि ये सभी पदार्थ कृमियों को बढ़ावा देते हैं।

पाण्डुरोग का उपचार

सर्वप्रथम पाण्डुरोगी के चिकित्सार्थ रोग की साध्यता-असाध्यता का विचार करते हुए उसे घृत द्वारा चिकना बनाकर मधु-घृत के साथ हरड़ का चूर्ण प्रयोग कराकर वमन-विरेचन कर्म कराना चाहिए।

यंत्र में पीसी हुई हलदी के साथ पकाया हुआ घी या फल (त्रिफला, जायफल आदि) या उपयोगी तैल का पान कराना उचित है। इसके अतिरिक्त सेवनीय औषधों का विरेचन लें या घी के साथ रेचक (दस्तावर) पदार्थों का प्रयोग करें।

वातजन्य पाण्डुरोग में स्निग्ध (आर्द्र-उष्ण) तथा पित्तज में सिद्धशीत (शुष्कता और उष्णतारहित शीतल प्रयोग) तथा कफजनित पाण्डुरोग में कड़ुआ, रूखा और उष्ण प्रयोग एवं मिश्रित दोष में मिश्रित प्रयोग करने चाहिए। पित्तजन्य पाण्डु में निशोथ चूर्ण में दुगुना शक्कर मिलाकर आधा पल की मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। वातज पाण्डु में शोधित शिलाजतु को केशर और मिश्रीमिलित बकरी के दूध के साथ प्रयोग करना गुणकारी होता है।

कफजनित पाण्डुरोग, ज्वर, अतिसार (बार-बार पतला दस्त आना), शोथ, ग्रहणी, साँस फूलना, खाँसी, भोजन में अनिच्छा, कंठरोग तथा हृदय के रोगों में दशमूल का काढ़ा सेवनीय होता है। त्रिफला, गुरुच, वासा (अडूसा नामक पौधा), कुटकी, चिरायता और नीम—इनके साथ पकाया हुआ क्वाथ मधु के साथ लेने से पाण्डु एवं कामला रोग नष्ट होते हैं।

हरें, कालातिल, त्रिकटु—ये सब १-१ तोला लेकर इनके समान परिमाण में स्वर्णमाक्षिक (सोनामाखी) मिलाकर चूर्ण बना लें। पुनः इसे मधु के साथ मोदक बनाकर पाण्डुरोग के अंत में नित्यप्रति सेवन करना आवश्यक कहा गया हैं। बकरी की तप्त लेंड़ी (मल) को एक-दो बार गोमूत्र में भिंगोगर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को मधु और घी के साथ भात के संग खावें। यह चूर्ण दीपन और जठराग्निवर्धक होने के कारण शोथ तथा पाण्डुरोग का उन्मूलन कर देता है।

नवायसचूर्ण के योग और लाभ

त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आँवला), मोथा, वायविडंग (भाभीरंग) और त्रिफला। इन सब वस्तुओं के सम परिमाण में लौहचूर्ण को ९ भाग मिलाकर चूर्ण तैयार कर लें। इसके घी और मधु के साथ नित्य सेवन करने से पाण्डुरोग, हृद्रोग, कोढ़ और कामला रोग का निर्मूलन होता है।

योगराज चूर्ण का योग व लाभ

त्रिफला ३ भाग, त्रिकटु ३ भाग, चीता ३ भाग, वायविडंग ३ भाग, शिलाजीत ५ भाग, रौप्यमल (चाँदी का किट्ट) ५ भाग, सोनामाखी ५ भाग, लौहचूर्ण ५ भाग, तथा शक्कर ८ भाग। इन सबका बारीक चूर्ण बनाकर मधु में डुबो दें। तदनन्तर उसे एक लौह के स्वच्छ पात्र में रख छोड़े।

अब इसे गूलर के फल के बराबर की मात्रा में नियमित रूप से सेवन करते रहे। इसकी जीर्णावस्था में कुलथी, काकमाची (मकोय) और कपोत के अतिरिक्त अन्य प्रकतिरंजक पदार्थों का भरपूर उपभोग किया जा सकता है। इस अमृतोपम योग को योगराज के नाम से अभिहित किया गया है।

यह समस्त रोगों का विनाशक और अत्युत्तम मंगलकारी रसायन है। यह योगराज चूर्ण **पाण्डु**, **विष**, **खाँसी**, **क्षयरोग**, **विषमज्वर**, **अरोचकता**, मृगी, **कामला** तथा **बवासीर** को मिटाने वाला कहा गया है।

कामला और पाण्डु रोग का उपचार

कामला रोगी के चिकित्सार्थ पहले चिकित्सक को चाहिए कि वह रोगी को स्निग्ध बनाकर रेचक औषधों का प्रयोग करे। इसके पश्चात् ही रोगनिवारक औषधि का सेवन कराये।

हलदी, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडंग और मण्डूर। इनके मिलित चूर्ण को घी और मधु के साथ कामला रोगी को दे। अथवा हलदी, दारुहलदी, मंडूर, त्रिफला, कुटकी के चूर्ण को घृत और शहद के साथ चाटने में उपयोग करायें।

हर्रे और हलदी—इनके समान परिमाण में मंडूर मिलाकर चूर्ण बना लें। तत्पश्चात् गुड़, मधु और जल के साथ सेवन करें। अथवा त्रिफला या गुरुच या हलदी या नीम का रस घी और शहद मिलाकर पान करने से कामला रोग जाता रहता है।

गूमा के फल का रस आँखों में अंजन के समान प्रयुक्त करना अथवा हलदी, गेरू और आँवला का चूर्ण सेवन करना लाभकारी सिद्ध होता है। आँवला, मण्डूर (लौहकिट्ट), त्रिकटु, हलदी, मधु, घी तथा शक्कर आदि पदार्थ भी कामला रोग का अतिशीघ्र नाश कर देते हैं।

विडङ्गादि लोह के योग और लाभ

वायविडंग (भाभीरंग), मुस्तक (मोथा), त्रिफला, देवदारु, षड्‌षण (सोंठ, कालीमिर्च, पीपर पिपरामूल, चव्य और चित्रक)—इनके समान भाग में मण्डूर चूर्ण को मिलाकर अठगुने गोमूत्र में डाल कर आग पर पका लें। तदनन्तर २-२ तोला की गोली बनाकर प्रतिदिन सेवन करने पर कामला और पाण्डुरोग का शीघ्र ही उन्मूलन हो जाता है।

जलाये हुए अक्षकाष्ठ तथा लौहकिट्ट को आठ बार गोमूत्र में भिगोकर चूर्ण बना लें। पुन: इसे मधु के साथ दीर्घकाल तक सेवन करते रहने पर कुम्भक नामक **पांडुरोग** भी नष्ट हो जाया करता है।

त्रिकटु, चित्रक, वायविडंग, त्रिफला, मोथा और इनके बराबर मंडूर को चूर्णित कर मट्ठा, घी, मधु या किंचित् उष्ण जल के साथ सेवन करने से कामला, पाण्डु, हृद्रोग, कोढ़, अर्श, मूर्च्छा आदि रोग दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त कामला और पाण्डुरोग में जो-जो क्रियाएँ की जाती या सुनी जाती हैं उन्हें ही हलीमक रोग (हकलाना, तुतलाना) में भी अपनानी चाहिए।

हरिद्रादि घृत के योग व लाभ

हलदी, त्रिफला, नीम, बला (खिरेंटी) और मुलेठी। इनके द्वारा साधित सदुग्ध भैंस का घी भी कामला रोग में उपयोगी होता है।

मूर्व्वादि घृत का लाभ

मरोड़फली, कुटकी, हलदी, वासा (अडूसा), छोटीपीपर, चंदन, पितपापड़ा, त्रायमाण, कूड़ा, चिरायता, और परवल। इन सबको २-२ तोला लेकर कल्क बना लें। तदनन्तर उसे चौगुने दूध में एक प्रस्थ घी डालकर पकावे। पक जाने पर इस घृत के सेवन से **पाण्डुरोग**, **ज्वर**, **विस्फोटक शोथ**, **बवासीर** और **रक्तपित्त** का निवारण होता है।

व्योषादि घृत का लाभ

त्रिकटु, बेल का गूदा, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा (लाल गदहपूरना), मोथा, मंडूर, पाठा, वायविडंग (भाभीरंग), देवदारु, वृश्चिकाली (एक प्रकार का पौधा) और भारंगी।

इनका कल्क बना दूध डालकर घी में परिपाक करने से व्योषाद्य घृत तैयार होता है। इस घृत के सेवन से सम्पूर्ण रोगों का शमन होना सम्भव होता है।

तिक्तक घृत का लाभ

त्रिफला, दोनों हलदी (हलदी एवं दारुहलदी), वासा (अडूसा), कचूर, कूड़ा, पितपापड़ा, त्रायमाण, कटुकी और नीम। इनको २-२ पल की मात्रा में लेकर

एक द्रोण जल में पाचित कर लें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें छोटी पीपर, मोथा, चन्दन, त्रायमाण, कूड़ा तथा चिरायते का कल्क बनाकर एक प्रस्थ घी में पका लेने पर तिक्तक घृत निर्मित होता है।

इस घृत के प्रयोग से **कुष्ठ**, **ज्वर**, **बवासीर**, **शोथ**, **ग्रहणी**, **पाण्डु**, **दाद-खाज** तथा **नामर्दी** दूर होती है।

मण्डूर वटिका का निर्माण व लाभ

त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमरिच), त्रिफला, मोथा, वायविडंग, चव्य, चीता, दारुहलदी, दालचीनी, स्वर्णमाक्षिक (सोनामाखी), गठिवन और देवदारु। इनको २-२ पल परिमाण में लेकर पृथक्-पृथक् चूर्णित कर लें।

पुनः अंजन के सदृश शुद्ध मण्डूर का दोगुना भाग लेकर अठगुने गोमूत्र में पकाकर पहले से तैयार चूर्ण में एकीकृत करके गूलर के फल के बराबर या जठराग्नि बल के अनुरूप वटी बना डालें।

इस वटी को मट्ठे के अनुपान द्वारा सेवन करें। पुराना रोग होने पर इच्छा के अनुरूप रुचिकर आहार ग्रहण करें। पाण्डुरोगियों के निमित्त यह मण्डूरवटिका जीवनदाता के रूप में सिद्ध होता है।

इसके अतिरिक्त यह कुष्ठ, अजरक, सूजन, ऊरुस्तंभ, कफज रोग, कामला, प्रमेह (धातुसंबंधी विकार), बवासीर तथा प्लीहा (तिल्ली) रोग को भी निर्मूल करता है।

पुनर्नवामण्डूर का निर्माण व लाभ

पुनर्नवा (गदहपूरना नामक घास), निशोत, सोंठ,पीपर, कालीमरिच,वायविडंग (भाभीरंग), देवदारु, चित्रक, रक्तपुनर्नवा (लाल रंग का गदहपूरना), हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, दन्ती, चविका, अजवायन, इन्द्रायण (कूड़े का फल), कटुकी, पिपरामूल और मोथा।

इन सबको समान भाग में लें और इनसे दुगुनी मात्रा में मंडूर लेकर अठगुने गोमूत्र में पका लें।

तत्पश्चात् इसे किसी चिकने पात्र में रखकर प्रतिदिन सेवन करते रहें तो यह पाण्डु, शोथ, उदरशूल, अर्श,कृमि तथा प्लीहा (तिल्ली) आदि रोगों का विनाश कर डालता है।

पंचकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ), कालीमरिच, देवदारु, त्रिफला, वायविडंग, मोथा और कटुकी। इन्हें १-१ पल लेकर चूर्ण बना लें। तदनन्तर उक्त चूर्ण से दुगुनी मात्रा में मंडूर को लेकर अठगुने गोमूत्र में पका लें। पक कर गाढ़ा हो जाने पर उसे निकाल कर रख छोड़े।

उक्त औषध की वटी २-२ तोले के परिमाण में बनाकर सेवन करने पर **पाण्डुरोग**, **अग्निमांद्य**, **अरोचकता**, **अर्श**, **ग्रहणी**, **ऊरुस्तंभ**, **हलीमक** (हकलाकर बोलना), **कृमि**, **प्लीहा** (बरवट, तिल्ली), **औदरिक** तथा **गलरोग**-समूहों का विनष्टीकरण कर डालता है।

विडङ्गादि लौह का निर्माण व लाभ

वायविडंग, त्रिफला, त्रिकटु, दारुहलदी, पीपर और मण्डूर। इसके चूर्ण का सेवन घृत-मधु के साथ किये जाने पर कामला और पाण्डुरोग का निवारण होता है।

मण्डूर, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला और कटुकी। इनका चूर्ण घृत-मधु के साथ **कामला रोग** में लाभकारी होता हैं।

कामला तथा पाण्डुरोग में जौ, गेहूँ, चावल, मृग का मांसरस, मूँग, अरहर तथा मसूर आदि उपयोगी आहार कहे गये हैं।

रक्तपित्त रोग का उपचार

रक्तपित्त रोगी के दोष जब तक ऊर्ध्वगामी रहें और उसमें बल, मांसादि की क्षीणता न हुई हो तभी उसका रोगाकर्षण कर लेना ही उपयुक्त माना जाता है। रक्तपित्त व्यक्ति के लिए मटर का यूष तथा शक्करमिश्रित लावा का सत्तू पथ्यस्वरूप होता है। रक्तपित्त की ऊर्ध्वगामी अवस्था में सर्वप्रथम रेचक तथा अधोगामी संचरण में वामनिक औषधों का प्रयोग लाभकारी रहता है।

निशोथ, त्रिफला, सारिवा, छोटीपीपर और शक्कर। इनका मिश्रित मोदक सान्निपातिक **रक्तपित्तज्वर** का उन्मूलक होता है।

मोथा, इन्द्रयव, मुलेठी और मैनफल (मदनफल)। इनके साथ मधु और दूध मिलाकर शिशिर पदार्थों का प्रदत्त वमनकारी औषध द्वारा **रक्तपित्त** को नष्ट करता है।

सरिवन, पिठवन, मुगवन आदि वस्तुओं को मिलाकर सिद्ध की हुई पेया रक्तपित्त की अधोगामी अवस्था में लाभदायक होती है। इसमें रक्तातिसार-नाशक प्रयोग भी पूर्णरूप से किये जाने चाहिए। मांसक्षीण तथा बलहीन, बालक, वृद्ध तथा शोष रोगी में वमन-विरेचन कर्म अयोग्य है। उनमें केवल स्तम्भक प्रयोग ही किये जाने चाहिए।

अड़ूसा के पत्तों के निचोड़े हुए रस में मधु और शक्कर मिलाकर पान करने से भीषण रक्तपित्त का भी शमन हो जाता है।

अथवा अड़ूसा का कषाय, गोपीचंदन, नीलकमल, प्रियंगु, लोध, रसोत और कमलकेशर; इनको मधु और शक्कर के साथ पीने से रक्तपित्त का प्रचण्ड वेग अतिशीघ्र रुक जाता है।

'जब तक वासा तब तक जीवन की आसा'—यह एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है। अर्थात् जब तक धरती पर अड़ूसा की वर्तमानता है तब तक रक्तपित्ती, क्षयी और खाँसी से पीड़ित व्यक्ति के लिए चिन्ता की कोई बात नहीं है।

खरल में पेषित अड़ूसा के रस में तालीसपत्र मिलाकर मधु के साथ पान करने से यह रस कफ, पित्त, श्वास, खाँसी, स्वरभंग (गला बैठना) और प्रबल रक्तपित्त को नष्ट कर देता है। अड़ूसा, अंगूर, और हर्रे। इनके क्वाथ में शक्कर और मधु मिलाकर सेवन करना लाभकारी है। इसके द्वारा दमा, खाँसी और रक्तपित्त का विनाशन होता है।

कठूमर फल के रस में मधु मिलाकर पान करने से शीघ्र ही रक्तपित्त का नाश होता है। अंगूर, मुगवन, खिरेंटी, मुलेठी, गोखरू या शतावरी के साथ पकाया हुआ काढ़ा रक्तपित्त का दमनकारी सिद्ध होता है।

परिपक्व गूलर और गंभारी, हर्रे, खजूर और अंगूर। इन पदार्थों के साथ मधु मिलाकर अलग-अलग सेवन करने से रक्तपित्त का निवारण होता है।

इसी भाँति खदिर (खैर), प्रियंगु, कचनार और शाल्मलि (सेमल) के फूलों का चूर्ण भी मधु के साथ प्रयोग करने पर रक्तपित्त का नाश होता है।

अड़ूसा के रस में सात बार भिगोये हुए हरड़ या पीपर का चूर्ण बना मधु के साथ सेवन करने के फलस्वरूप रक्तपित्त का निर्मूलन होता है।

औषधों का कल्क औषध-रस में मिलित होकर पूर्णतया आर्द्र हो जाने पर ही उसका सिद्ध होना समझना चाहिए। चिकित्सकों ने भावना विधि में इसी को प्रामाणिक रूप माना है।

मधुमिश्रित हरड़ दीपक और पाचक हुआ करता है। इससे कफ, रक्तपित्त और तीव्र शूलवेदना दूर होती है।

जिस क्षण रक्तपित्ती का मुखश्वास लौह गंधवत् तथा डकार धूम के समान निकल रही हो उस समय उसे छोटी इलायची में दुगुना शक्कर मिलाकर सेवन करना उपयुक्त होता है।

एलादि गुटिका का निर्माण व लाभ

इलायची, तेजपात, दालचीनी, दाख और पीपर—इन्हें आधा पल लेवें। तदनन्तर शक्कर, मुलेठी, खजूर और अंगूरी दाख—इन्हें २-२ पल ले लें।

इन सब में मधु मिलाकर अक्ष परिमाण की गोली बना लें। इसकी एक-एक गोली प्रतिदिन खानी चाहिए।

इसके सेवन से खाँसी, साँस फूलना, ज्वर, हिचकी आना, वमन, मूर्च्छा,

मद, श्रम, थूक या कफ से रक्त आना, पिपासा, पार्श्वशूल (पसली का दर्द), अरोचकता, क्षयरोग, प्लीहा-संबंधी वायु, स्वरभंग (आवाज में भारीपन), क्षतक्षय (वक्षःस्थल का व्रण) और रक्तपित्त का उन्मूलन होता है। यह गुटिका अप्यायनकारिणी और पुष्टिदायिका होती है।

आँवले के सूक्ष्म चूर्ण को घी में भूनकर शिर पर लेपित करने से नाक से होने वाला रक्तस्राव उसी प्रकार रुक जाता है जिस प्रकार नदी के तटबंध द्वारा जल का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है।

अथवा नासा रक्तस्राव में शीघ्र ही नासिका द्वारा जल, शक्करमिश्रित दुग्ध, दाख का रस, सशर्कर हैयंगवीन घृत या गन्ने का रस डालना लाभकारी सिद्ध होता है।

अनार वृक्ष के पुष्प, दूब, आम की गुठली या परवल के पत्तों के रस का नस्य लेने से छींक के कारण उत्पन्न होने वाले रक्तस्राव को बंद कर देता है।

अथवा प्रियंगु, गोपीचंदन, लोध, रसोत को अड़ूसा के रस और मधु के साथ प्रयोग करना उचित कहा गया है। इस प्रयोग से नासिका, मुख, योनि तथा जननेंद्रिय से स्रवित होता हुआ रक्त भी रुक जाता है।

इसके अतिरिक्त शस्त्राघात से प्रवाहित होने वाला रक्त भी इस चूर्ण के द्वारा अवरुद्ध हो जाता है।

बकरी के दूध में शक्कर और अनार के फूलों का रस मिलाकर पान करने से भी रक्तप्रवाह नष्ट होता है।

जिस समय जननेंद्रिय से अधिक रक्तस्राव हो रहा हो उस समय उत्तरबस्तिकर्म करना आवश्यक बतलाया गया है। अथवा कुश, कास नामक तृण, रामशर, काले रंग का गन्ना तथा धान। इनके द्वारा निर्मित दुग्धपान करना उचित है।

दूर्वाद्य घृत का लाभ

दूर्वा (दूब), कमल पुष्प के साथ कमलकेशर, मंजीठ, शैलवालुक, शक्कर, खस, मोथा, चन्दन और पद्माख (कमलगट्टा)। इन्हें एक कर्ष की मात्रा में लेकर कल्क बना उसे चौगुने बकरी के दूध और चावल की धोवन के साथ बकरी के घी में पका लें।

उक्त घृत के पक जाने पर पान करने से नाक से होने वाला रक्स्राव (नकसीर) नष्ट होता है। कानों या नेत्रों से होने वाले रक्तस्राव में इस घृत को उस स्थान में पूरित कर देना चाहिए। अथवा श्रीखंड चंदन का उन स्थानों पर लेप लगाना भी गुणकारी होता है।

गूलर के पके हुए फल को गुड़ या मधु के साथ प्रयुक्त किये जाने पर नाक से निकलने वाला रक्त बन्द हो जाता है।

वासादि घृत का लाभ

अडूसा के सभी अंगो—फल, फूल, मूल और शाखादि को काट-छाँट कर कषाय का निर्माण करें। उस कषाय में अडूसा के कल्क (जल में पीसा हुआ औषधद्रव्य) को डालकर घी के साथ पका लें। पकने के पश्चात् इस वासादिघृत में मधु मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही **रक्तपित्त** का शमन हो जाता है।

शतावरी घृत का लाभ

शतावरी की जड़ का निकाला हुआ रस २ प्रस्थ, इस रस के बराबर दूध तथा घी १ प्रस्थ। इनकों आग पर रखकर एक साथ पकावें। पकाते समय उसमें जीवक, काकड़ासिंघी, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, अंगूरी दाख, मुलेठी, मुगवन, मषवन, बिदारीकन्द और रक्तचन्दन। इनका कल्क बनाकर उसके सिद्ध हो जाने पर शक्कर और शहद मिलाकर उबालें।

इस भाँति निर्मित किया हुआ यह घृत रक्तपित्त और वातरक्त संबंधी रोगों में लाभकारी होता है। यह एक प्रकार का उत्तम वाजीकरण भी कहा जात्र है। इससे **अंगदाह**, **शिरोदाह**, **पित्तजज्वर**, **योनिशूल**, **योनिदाह** तथा **पित्तोत्पन्न मूत्रकृच्छ्र** रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार वायु के प्रबल झोंके से मेघ समूह तितर-बितर हो जाते हैं। इसके द्वारा शक्ति, तेज और जठराग्नि का वर्धन होता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इस शतावरी घृत में चौथाई शक्कर और मधु की मात्रा मिलानी चाहिए, किन्तु वासाघृत में केवल चौथाई मधु का ही मिश्रण करना उचित है।

खण्डकूष्माण्डक घृत का लाभ

सर्वप्रथम कुम्हड़े के छिलके तथा बीज आदि निकालकर उसे १ तुला (१०० पल) लेकर आग पर पकावें। जब वह पककर स्वेदित हो जाय तब उसे तपाये हुए ताँबे के पात्र में १प्रस्थ घी के साथ उन स्वेदित टुकड़ों को डालकर कलछी से घोंटते हुए पकावें।

पकने पर जब उस पाक का रंग मधु-जैसा दीख पड़े तब उसमें पीपर और अदरक २-२ पल, जीरक २ पल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कालीमिर्च और धनिया आधा-आधा पल मिला दें। तदनन्तर उसे कलछी से घोंटता रहे।

पूर्णरूप से पाक तैयार हो जाने पर किसी स्वच्छ पात्र में रखकर घी से आधा भाग मधु का मिश्रण कर दें।

इस रीति से परिपक्व किया हुआ कूष्मांडघृत रक्तपित्त, क्षतक्षय (वक्षःस्थल में व्रण), खाँसी, साँस फूलना, दुर्बलता, वमन, प्यास तथा ज्वर में बलाबल के अनुसार सेवन करें।

यह अपनी पौष्टिकता के फलस्वरूप मानव को तरुणावस्था में लाकर नवीन उत्साह पैदा करता है। साथ-ही-साथ क्षतक्षय रोगों को दूर कर स्वरभंग को नष्ट करता है।

इस कूष्माण्ड रसायन को स्वयं देवचिकित्सक अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया है। अतः इसे ब्रह्मचारी, अक्रोधी और सत्यभाषी व्यक्ति को प्रयोग में लाना चाहिए।

शतावरी, गुरुच, गोरखमुण्डी, खिरेंटी, मुसली, खदिर, त्रिफला, दालचीनी, भारंगी, पुष्करमूल—ये सब वस्तुएँ ५ पल की मात्रा में लेकर एक द्रोण जल में पकावें।

आठवाँ भाग शेष रह जाने पर त्रिफला या माक्षिक द्वारा मारित उत्तम लौहचूर्ण को उसमें १२ पल मिला दें। पुनः उसमें १६ पल घी डालकर किसी ताँबे के पात्र में गुड़पाक की भाँति आग पर पकावें।

पक जाने पर उसमें आधा पल मधु मिलाकर उसके साथ वंशलोचन, शिलाजीत, दालचीनी, काकड़ासिंघी, वायविडंग (भाभीरंग), पीपर, सोंठ और स्याहजीरा। इन सबको १-१ पल तथा त्रिफला, धनिया, तेजपात, कालीमिर्च और केशर—इनके २-२ पल लेकर चूर्णित कर मिला दें।

इस प्रकार निर्मित द्रव्य को किसी चिकने पात्र में रखकर शीतऋतु में २ तोले की मात्रा में सेवन करें। इसके अनुपानस्वरूप गाय का दूध, मांसरस, पौष्टिक और भारी आहार आदि ग्रहण करें।

इसके प्रयोग द्वारा प्रदूषित रक्तपित्त, क्षयरोग, दुर्बलता, वातपित्त, शीतपित्त (जुलपित्ती), प्रमेह, क्लेद, शोथ, पाण्डु, कोढ़, प्लीहा (तिल्ली), जलोदर, रक्तस्राव, निरोध एवं अम्लपित्त (भोज्य पदार्थ का खट्टा होना) आदि का निवारण होकर **नेत्रज्योति** का वर्धन होता है।

यह पौष्टिक, **प्रीतिवर्धक**, **नीरोगताकारक**, **पुत्रदायक**, **जठराग्निवर्धक**, **कान्तिवर्धक** तथा **स्फूर्तिदायक** कहा गया है।

रक्तपित्त रोगी का पथ्य

बकरी, कबूतर, तीतर, मुरगा, कुलिंग, रुरु मृग आदि जीवों का मांस रक्तपित्त में प्रयोग करना उपयोगी होता है। इसके अतिरिक्त नारियल का पानी, चौपतिया, बथुआ नामक शाक, सूखी मूली, जीवन्ती, परवल, तुम्बीफल या वार्ताकुफल, बैंगन, पक्वान्न, खर्जूर, मीठा, अनार, ककार आदि वाले पदार्थ, क्षतक्षय में गुणकारी पदार्थ, धान, साठी, नीवार आदि धान्य तथा मूँग, मसूर आदि की दालें भी **रक्तपित्त** में लाभदायक होती हैं।

असाध्य रक्तपित्त का निदान

धूप, व्यायाम, शोक, मार्गगमन तथा मैथुन आदि के अतिसेवन, तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार, नमकीन, खट्टा और कड़ुआ रसों के सेवन करने से पित्त प्रकुपित होकर अपने-अपने धातुओं के साथ जलनशील हो उठता है जिसके परिणामस्वरूप ऊर्ध्वद्वार, अधोद्वार अथवा दोनों ही मार्गों से रक्तस्राव का संचरण होने लगता है।

ऊर्ध्वमार्ग में रक्तसंचरण होने से नाक, कान, आँख और मुख तथा निम्नमार्गगामी होने पर जननेंद्रिय, गुदा या योनि से रक्तप्रवाह होने लग जाता है।

इसका असाध्य लक्षण इस प्रकार से कहा गया है—जब रोगी लाल-लाल आँखे किये मुख से रक्तवमन करने के पश्चात् उसे ध्यान से देख रहा हो अथवा रक्तवमन के अनन्तर मैथुन कर्म करने वाले रक्तपित्ती के प्राण नहीं बचते। वह अवश्य ही मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

राजयक्ष्मा-क्षय रोग (टी.बी.) का उपचार

षडङ्गयूष का निर्माण और लाभ

कुम्हड़ा, जौ, कुलथी, सोंठ, अनार और आँवला। इन छह पदार्थों को समाविष्ट करके बकरी के मांसरस का पान करना शोष (सूखा रोग) रोग में लाभप्रद सिद्ध होता है। इस रस के सेवन से पीनस (नकसीर) का रोग निर्मूल हो जाता है।

इसकी निर्माण विधि इस प्रकार बतलायी गयी है—औषध पदार्थों से अठगुना मांस और समस्त मिलित द्रव्यों से अठगुना जल डाल कर अग्नि पर पकावें। पकने पर जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उसे घी में संस्कारित कर लें। इसी को षडंगयूष नाम दिया गया है।

त्रयोदशाङ्ग का योग और लाभ

धनिया, छोटीपीपर, सोंठ और दशमूल। इनके जल का पान करने से पार्श्वशूल (पसली की पीड़ा), ज्वर, श्वास तथा पीनस आदि रोगों से मुक्ति मिलती है।

अश्वगंधा (असगंध), गुरुच, शतावर, दशमूल, बला (खिरैंटी), अड़ूसा, कूड़ा और अतीस। इनके दुग्धरस के पान करने पर क्षयरोग का विनाश होता है।

अथवा दशमूल, खिरेंटी, रास्ना, कूड़ा, देवदारु और सोंठ। इनके साथ पकाया गया काढ़ा पीने से **क्षयरोग** में होने वाले घाव, खाँसी आदि औपद्रविक लक्षणों का शमन होता है।

वायविडंग (भाभीरंग), शिलाजीत, कान्तिसार, गिलोय (गुरुच) और हरड़। इनके सेवन से प्रबलतम क्षयरोग का भी निवारण होता है।

क्षयी रोगी के लिए मक्खन में शक्कर और मधु मिलाकर चाटना उपयोगी होता है।

इसके अतिरिक्त गाय के थन से तुरन्त का निकाला हुआ दूध तथा घी में मधु मिलाकर सेवन करने से भी पुष्टिककरण होता है। शीतावला (कगहिया), वंशलोचन, पीपर, और दालचीनी।

इन्हें एक मास तक मधु-घृत के साथ सेवन करने के पश्चात् इसकी मात्रा बढ़ाकर दुगुनी कर देनी चाहिए।

धान, साठी का चावल (दो मास में पककर तैयार हो जाने वाला चावल), गेहूँ, जौ, मूँग तथा दिव्य औषधियों से निःसृत मदिरा, जांगल प्रदेशीय पक्षी तथा हिरन आदि भी शोषग्रस्त व्यक्तियों के लिए पथ्यस्वरूप हितकारी होते हैं।

दशमूल में दूध डालकर उससे निकाले गये घृत में मधु मिलाकर अथवा मट्ठे के साथ सेवन करने से स्वरभंग का शुद्धिकरण होता है।

इसके अतिरिक्त यह **शिरोवेदना**, **पार्श्वशूल**, **श्वास**, **खाँसी** तथा **ज्वर** को भी नष्ट कर डालता है। इतना ही नहीं, बल्कि यह **शोषरोगी** के लिए परमौषधि के रूप में सिद्ध होता है।

सौंफ, तगर, कूड़ा (कोरैया), मुलेठी और देवदारु। इन्हें पीसकर घी में मिला पीठ, पसली और कंधों में लेप लगाने से उनकी पीड़ा का निवारण होता है। कोह के चूर्ण को कई बार अडूसे के रस में भिंगोकर घी, मधु और मिश्री मिलाकर चाटने से क्षय, खाँसी और रक्तपित्त दूर होता है।

बलादिमन्थ घृत का लाभ

खिरेंटी, अजमोदा, आँवला, हरड़, बहेड़ा, खैर वृक्ष की गोंद, साल (सखुआ) वृक्ष की राख, वायविडंग (भाभीरंग), भिलावाँ, चित्रक, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च) तथा काली मूँग। पहले इन सब को जल में पकाकर काढ़ा बना लें।

पुनः इस क्वाथ में घी मिलाकर दोबारा पका डालें। पक जाने पर आग से नीचे उतारकर इसमें मिश्री ३० पल, वंशलोचन ६ पल मिला दें।

अब उक्त क्वाथ में घी से दुगुना मधु मिलाकर मथनी से मथ डालें। इसे प्रातःकाल नित्यप्रति १ पल की मात्रा में खाकर तत्क्षण ही दुग्धपान कर लें। यह घृत अत्यन्त विशुद्ध, नेत्रज्योतिवर्धक तथा आयुष्यवर्धक होता है।

इसी कारण यह प्रबल **यक्ष्मा**, **पाण्डुरोग** तथा **भगन्दर** (गुदाद्वार का रोगविशेष) रोगनाशक होता है।

इसके पकाने की विधि यह है कि उक्त औषधद्रव्य (खिरेंटी, अजमोदा आदि) २-२ पल तथा उससे अठगुना जल रहे। जब पकाने पर आठवाँ भाग शेष रह जाय तब इसमें १ प्रस्थ घी डालकर पका लेना चाहिए।

गेहूँ, पीपर, वासा (अडूसा) और सिंघाड़ा। इनके चूर्ण में मधु मिलाकर उसे खज से मूर्छित कर लें। तत्पश्चात् गुड़ और घी में भिंगोकर भोजपत्र में लपेट लें।

एक पल की मात्रा में सेवन करने के अनन्तर बाद में दूध या मदिरा का पान करें तो यह सर्पिगुड़ सूखापन, खाँसी, छाती के घाव, काम या स्त्रीभार से खिंचे होने पर, रक्तवमन, ज्वर, पीनस, पसली का दर्द, शिरोव्यथा, स्वरभंग तथा वर्णभेद को दूर करता है।

च्यवनप्राश का निर्माण और लाभ

बेल का गूदा, अरणिकाष्ठ, सोनापाठा, कम्भारी, लालवर्णीय लोध, चारों पर्णी (सरिवन, पिठवन, मुगवन, मषवन), पीपर, गोखरू, दोनों कटेरी (छोटी एवं बड़ी), अतीस, आँवला, दाख, जीवन्ती, कोरैया, अगरु, हर्रै, गुरुच (नीमवृक्ष पर फैलने वाली एक लताविशेष), ऋद्धि, जीवक, काकड़ासिंघी, कचूर, मोथा, पुनर्नवा (गदहपूरना), मेदा, छोटी इलायची, नीलाकमल, चंदन, बिदारीकन्द, अडूसा की जड़, काकोली और काकजंघा।

ये सब वस्तुएँ १-१ पल लेकर एक द्रोण जल में ५०० नग आँवले का फल डालकर आग पर पकावें।

तदनन्तर उसमें ५० पल मिश्री डालकर लेह की भाँति गाढ़ा बना लें। इसके तैयार होकर ठंढा होने पर मधु ६ पल, वंशलोचन ४ पल, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात और केशर १०१ पल लेकर मिश्रित कर दें। इस रीति से यह उत्तम **च्यवनप्राश** निर्मित हो जाता है।

यह रसायन मुख्यतया **कास-श्वासहारक**, **क्षतक्षयविनाशक**, दुर्बल बालकों तथा वृद्धों के शरीर का पुष्टिकारक कहा गया है।

इसके प्रयोग से **स्वरभंग**, **हृद्रोग**, **छाती का व्रण**, **वातरक्त** (जब वायु का प्रवेश रक्त में हो गया हो), **पिपासा**, **मूलरोग** तथा **वीर्यविकार** भी दूर होते हैं।

इसकी उतनी ही मात्रा ग्रहण करनी चाहिए जिससे भोजन में अरुचि न उत्पन्न हो। इसके प्रयोग के परिणामस्वरूप तपस्यारत दीमकों से आच्छादित अतिवृद्ध च्यवन मुनि ने भी नवयौवन को प्राप्त कर लिया था। इसी पौराणिक कथा के आधार पर इसे च्यवनप्राश का नाम दिया गया है।

इस रसायन के सेवन से बुद्धि, स्मरण-शक्ति, तेज, नीरोगता, आयुष्यवर्धन, इंद्रिय-बलवर्धन,, पुंसत्व की प्राप्ति, जठराग्नि की प्रबलता तथा रूप-रंग का निखार होता है, साथ ही वायु की साम्यावस्था भी बनी रहती है।

अगस्त्यहरीतकी का निर्माण और लाभ

दशमूल, क्रौंच के बीज, शंखपुष्पी, कचूर, खिरेंटी, गजपिप्पली, अपामार्ग (चिचिड़ा), पिपरामूल, चित्रक, भारंगी और पुष्करमूल—इन सबको २-२ पल, यव ४ प्रस्थ और हरड़ १०० नग। इन सबको २० प्रस्थ जल में पका लें। यव के भली प्रकार वाष्पित हो जाने पर उस काढ़े को कपड़े से छान लें।

अब उसमें हरड़ १०० नग , गुड़ १०० पल, घृत ३२ तोले और तैल भी ३२ तोले डालकर पिप्पलीचूर्ण के साथ पुनः पाचित करें। पककर ठण्ढा हो जाने पर उस लेह में १६ तोले मधु भी मिला दें। इन हरड़ों में से प्रतिदिन दो हरड़ों को खाकर लेह भी चाटें।

इस रसायन के उपयोग से वलीपलित (असमय में ही केशों की श्वेतता तथा त्वचा पर झुर्री पड़ना) और विरूपता का निवारण होकर तेज, आयु और बल का वर्धन होता है।

इसके साथ ही **क्षय**, **खाँसी**, **श्वास**, **हिचकी**, **विषमज्वर** (टायफाइड), **ग्रहणी**, **अर्श**, **हृद्रोग**, **अरोचकता**, **पीनस** आदि रोग उन्मूलित होते हैं।

यह रसायन अगस्त्य ऋषि द्वारा निर्मित कहा गया है। इसके सेवन-काल में पित्तवृद्धि की प्रतीति होने पर इसकी सायंकालीन मात्रा घटा देनी चाहिए।

जीवन्त्याद्य घृत का लाभ

जीवन्ती, मुलेठी, अंगूर, इन्द्रयव, कचूर, पुष्करमूल, कटेरी, गोखरू, गंधरस, नीलकमल का पुष्प, आँवला, दुरालभा और पीपर। इनको बराबर भाग में लेकर पीस डालें और इसे बकरी के घी में चिकित्सक पका लें।

पक जाने पर इसके सेवन से बढ़े हुए रोगों का प्रशमन होता है। इस घृत के द्वारा **राजयक्ष्मा**, **श्वास**, **खाँसी** आदि ग्यारह प्रकार के औपद्रविक लक्षणों का विनाश होता है।

षडङ्गघृत का लाभ

छोटीपीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, यवक्षार (जवाखार)। इन्हें दूध में पकाकर तैयार किये हुए घृत से नाड़ी तथा इंद्रियों का शोधन होता है। छोटीपीपर तथा गुड़ से साधित और बकरी के दूध से मिलित घृत रोगियों की भूख को बढ़ाता एवं खाँसी को मिटाता है।

छागलाद्य घृत का लाभ

३२ सेर जल में बकरी के मांस का क्वाथ तैयार कर लें। जब क्वाथ का चौथाई भाग शेष रह जाय तब उसमें एक प्रस्थ घी डालकर पाचित करें। तत्पश्चात् ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, काकड़ासिंघी, काकोली और क्षीर- काकोली—

इन्हें अलग-अलग एक-एक पल लेकर कल्क बना लेवें। अब सिद्ध किये गये उक्त घृत को उतारकर शक्कर ८ पल और शहद ३२ तोले के परिमाण में मिला दें।

इसे नित्यप्रति प्रातःकाल १-१ पल की मात्रा में पान करें। यह घृत दुःसाध्य राजयक्ष्मा, क्षतक्षय, कई प्रकार की खाँसी (सूखीखाँसी, कुकुरखाँसी आदि), पसली की पीड़ा, अरोचकता, स्वरभंग, वक्षस्थल के रोग तथा कठिनतम दमा रोग का निवारण कर देता है।

इसके साथ ही मांसक्षीणता से कृशकाय व्यक्ति में मांसवर्धन, क्षुधावर्धन तथा बलवर्धन का कार्य भी निष्पन्न करता है।

मांस घृत निर्माण और लाभ

पहले २ द्रोण जल में १०० पल बकरे का मांस पकावें। पककर आठवाँ भाग शेष रह जाने पर उसमें एक प्रस्थ घी मिलाकर पुनः पका लें। तदनन्तर ३२ तोले जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा ऋद्धि, वृद्धि, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन और जीवन्ती) का कल्क बनाकर पाचित किये हुए मांसघृत में मांसरस मिलाकर पान करने से **पित्तज रोग**, **भीषण खाँसी**, **दमा**, **राजयक्ष्मा**, **पसली की पीड़ा**, **हृत्पीड़ा** तथा **मैथुनक्रिया** अधूरी रहने के फलस्वरूप उत्पन्न शोष (सूखापन, सुखंडी) का भी शमन होता है।

बलागर्भघृत का लाभ

दो प्रस्थ दशमूल के कषाय में, एक प्रस्थ मांसरस में बलागर्म के कल्क को समायोजित कर सिद्ध किया गया तथा एक प्रस्थ दूध में संयुक्त घृत भी सभी प्रकार के आघातों से उत्पन्न यक्ष्माशूल, क्षतक्षय और खाँसी का अपहारक कहा गया है।

बलादिघृत का लाभ

बला (खिरेंटी), गोखरू, कटेरी, पिठवन, धव के फूल, काकोली, नीम, पित्तपापड़ा, पिपरामूल, त्रायमाण और दुरालभा।

इनका कषाय निर्मित कर भुईआँवला (भूमि पर फैलने वाली आँवले की एक प्रजाति जिसमें आँवले के अत्यन्त छोटे-छोटे फल लगते हैं)।

इसी से इसे भूमिआँवला कहा जाता है। इसे पीलिया रोग में अत्यधिक गुणकारी माना जाता है।

कचूर, दाख (मुनक्का), पुष्करमूल, मेदा और आँवला मिला दें। इस कषाय में पकाया हुआ घृत और दुग्ध के प्रयोग से यह **सर्वज्वरनाशक**, **क्षय** तथा **खाँसी** का निवारक एवं **शिरोव्यथा** तथा **पार्श्वशूल** का शामक बन जाता है।

चन्दनादि तैल का प्रयोग और लाभ

चन्दन, सुगन्धवाला, नखी नामक द्रव्य, कूठ, मुलेठी, शिलाजतु, कमलगट्टा,

मंजीठ, देवदारु, छोटीइलायची, रोहिष सोधिया, केशर, तेजपात, तैल, सुरामांसी, शीतलचीनी, प्रियंगु का पुष्प,मोथा, हलदी, दारुहलदी , दोनों सारिवा, कुटकी, लौंग, अगरु, कुंकुम, दालचीनी, रेणुका, मालकंगनी (ज्योतिष्मती)। इसमें चौगुना दही का पानी मिलाकर पकावें। पकने पर जब दही के पानी का रंग लाक्षा (लाह) रस के समान दिखाई दे तो इसे परिपक्व समझना चाहिए।

इस तैल से **भूत-ग्रहादिकों के उपद्रवों की शांति**, **बलवर्धन**, **रंगों का निखार**, **मृगी**, **ज्वर**, **उन्माद**, **जादू-टोना**, **अलक्ष्मी आदि का विनाश**, **आयुवर्धक**, **पुष्टिकारक** तथा एक श्रेष्ठ वशीकरण का कार्य निष्पादित होता है।

खिरेंटी, अश्वगंधा (असगंध), कम्भारी, शतावर और पुनर्नवा (गदहपूरना नामक घास)। इसे प्रतिदिन दूध के साथ सेवन करने से क्षतक्षय रोग का शमन होता है।

अथवा इक्ष्वालिका (गन्ने के समान एक तृणविशेष), मृणाल (कमल का डंठल), भद्रमोथा, कमलकेशर और चंदन। इनका काढ़ा बना दूध और मधु के साथ पान करने से वक्षस्थल में होने वाला व्रण जुड़ जाता है।

खिरेंटी, नागबला (गुलसकरी), कोह और नेत्रवाला। इनके साथ पाचित घृत में चौथाई भाग में मुलेठी के कल्क को मिलाकर सेवन करने पर **हृत्प्रदेश के रोग**, **शूल**, **क्षतक्षय**, **रक्तपित्त**, **खाँसी**, **वातरक्त** आदि रोगों का उन्मूलन होता है। क्षतक्षय रोग में पूर्वकथित कूष्माण्ड रसायन भी विशेष रूप से लाभकारी सिद्ध होता है।

यक्ष्माग्रस्त रोगी के लक्षण

पूर्णरूप से यक्ष्माग्रस्त रोगी में निम्नलिखित छह या तीन प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं जो इस प्रकार से कथित हैं, जैसे—खाँसी, अतिसार, पसली में पीड़ा, स्वरभेद और अरोचकता अथवा खाँसी, श्वास और रक्तविकार।

राजयक्ष्मा के छहों लक्षणों की उपस्थिति में अन्नारुचि, सम्पूर्ण शरीर में ज्वर का प्रकोप, खाँसी, साँस फूलना, रक्त का दिखाई पड़ना और स्वर का परिवर्तन। अर्थात् जब ये सभी लक्षण एक साथ पाये जायँ तो उसे षड्रूप यक्ष्मा कहा जाता है।

यदि कोई युवा पुरुष पूरी तरह से यक्ष्माग्रस्त होकर भी एक हजार दिनों तक जीवित रहने की आकांक्षा करता हो तो उसे श्रेष्ठ चिकित्सकों का आश्रयण कर गुरुभक्ति में संलग्न रहना उचित होता है।

उसे मांगलिक साधनों के द्वारा स्वयं को सदैव ही प्रफुल्लित रखना आवश्यक होता है। मोह-माया का परित्याग कर धैर्य धारण करने से भी वह रोगी दीर्घकाल तक जीवित रह सकता है।

क्षयी रोगी को शोक, स्त्रीप्रसंग, प्राणवियोग का भय, दुष्ट विषम तथा

भयोत्पादक कारणों को मन से निकाल देना ही हितकर है। उसे गुरुजनों, विप्रो तथा देवताओं का पूजन-अर्चन करना एवं विप्रों द्वारा कथित पुण्यमयी कथा का श्रवण करना उचित है।

ऐसा आचरण करने पर भीषण क्षयवाला रोगी चार मास, छह मास, आठ मास, एक वर्ष अथवा ढाई वर्षों तक जीवनधारण करने में समर्थ हो सकता है, किन्तु पूर्णरूपेण रोगमुक्त कदापि नहीं हो सकता।

खाँसी का उपचार

पंचमूल के क्वाथ में पीपर का चूर्ण मिलाकर दही के पानी के साथ पान करने से **वातोत्पन्न खाँसी** दूर होती है। अथवा भारंगी, दाख, कचूर, काकड़ासिंघी, छोटीपीपर और सोंठ। इन्हें गाढ़ा पकाकर गुड़ और तैल के साथ सेवन करने से भी **वातज खाँसी** निर्मूल हो जाती है।

सोंठ, जवासा, काकड़ासिंघी, दाख, कचूर और शक्कर। इनका एक साथ चूर्ण बना तैल मिलाकर गाढ़ा कर लें। इसके उपयोग से कठिन **वातजन्य खाँसी** भी नष्ट होती है।

खिरेंटी, दोनों कटेरी (छोटी-बड़ी), अड़ूसा और दाख। इनका काढ़ा बना जल, शक्कर मधु मिलाकर चाटने से **पित्तज खाँसी** दूर हो जाती है।

पंचमूल (रामशर, कुश, कास, डाभ और गन्ना), छोटी पीपर तथा दाख। इनके कषाय द्वारा निर्मित दूध में शक्कर और मधु मिलाकर पान करें। अथवा दाख, आँवला, खजूर, छोटी पीपर तथा कालीमिर्च।

इन्हें गाढ़ा लेह के समान बनाकर मधु और घृत के साथ प्रयोग करने से पित्तज खाँसी नष्ट हो जाती है।

खजूर, छोटीपीपर, मुनक्का, शक्कर, लावा और जटामांसी। इनका लेह मधु-घृत के साथ चाटने पर पित्तजनित कास का उन्मूलन होता है।

अथवा मूँग, आँवला, जौ, अनार, छोटी बेर (झड़बेरी), सूखा अदरक, सोंठ, पीपर और कुलथी। इन नव पदार्थों से निर्मित यूष कफज रोगों का विनाश करता है।

कूठ, कट्फल, (कायफल), भारंगी, सोंठ और पीपल। इनका क्वाथ बनाकर कफाधिक्य, खाँसी, श्वास तथा हृद्ग्रह में पान करना लाभप्रद रहता है। खरल में पीसकर निकाले हुए अदरक के रस में मधु मिलाकर पीने से श्वास, खाँसी, पीनस तथा शीतज्वर नष्ट होते हैं।

छोटीपीपर का चूर्ण दशमूल के रस में मिश्रित कर पीने से ज्वर, पसली की पीड़ा, श्वास तथा कफोत्पन्न खाँसी का उन्मूलन होता है।

कट्फल (कायफल), पिठवन, भारंगी, मोथा,धनिया, वच (कुलंजन), हर्रे, सोंठ, पित्तपापड़ा, काकड़ासिंघी और देवदारु। इनका काढ़ा जल में पकाकर हींग और मधु के साथ पान करने से वातज-कफज खाँसी, कंठरोग, मुख की पीड़ा, श्वास, ज्वर और हिचकी में लाभ मिलता है।

वात-कफोत्पन्न खाँसी में तालीसादि मोदक का उपयोग करें, किन्तु पित्तज कास में वंशलोचन के साथ सेवनीय होता है।

तालीसाद्य मोदक का प्रयोग

तालीसपत्र १ भाग, कालीमरिच २ भाग, सोंठ ३ भाग, छोटी पीपर ४ भाग, वंशलोचन ५ भाग और दालचीनी तथा इलायची आधा-आधा भाग एवं पिप्पली से अठगुना शक्कर का भाग। इन सबको एक साथ कूट-पीसकर चूर्ण बना लें।

इसके सेवन से **खाँसी, श्वास** तथा **अरोचकता** दूर होती है। यह चूर्ण अग्नि-प्रज्वालक होने के फलस्वरूप हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणी, प्लीहा (बरवट), सूखापन, ज्वर, वमन, अतिसार,, शूल आदि का नष्टीकरण करता है और अचेतन वायु को चेतनशील बनाता है।

इसे सितोपलादि चूर्ण के नाम से भी जाना जाता है, किन्तु इसे अग्नि में पाचित कर गुटिका का रूप देने से तालीसादिमोदक बन जाता है। अग्निसंसर्ग के परिणामस्वरूप इसमें चूर्ण से भी अधिक हलकापन आ जाता है।

पित्तज-कफज खाँसी में, विशेषतया रक्तपित्त की अवस्था में कुचलकर अड़ूसा की पत्तियों से निकाले हुए रस में मधु या शक्कर डालकर पीना उपयोगी सिद्ध होता है। क्षतज कास में बल्य तथा पौष्टिक पदार्थों (कूष्माण्डक रसायन आदि) का तथा पित्तजनित खाँसी में मधुर औषधियों का सेवन सफलताकारक होता है।

धनिया, सेंधा नमक, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च), वायविडंग (भाभीरंग), कूड़ा और हींग। इन्हें लेह की भाँति पककार उस समय प्रयुक्त करना चाहिए जिस समय खाँसी, श्वास और हिचकी की प्रबलता हो।

मुलेठी, छोटीपीपर, दाख, लावा, काकड़ासिंघी और शतावर—इनसे दुगुना वंशलोचन तथा चौगुनी मात्रा में शक्कर लेकर चूर्ण बना लें। क्षतज कास से मुक्ति पाने हेतु इस चूर्ण का उपयोग मधु और घृत के साथ करना उचित है।

पीपर, मुलेठी, मुनक्का तथा पके हुए कंटकारी के फल। इनका लेह बनाकर मधु-घृत के साथ चाटने से **क्षतज कास** का निवारण होता है। अथवा समस्त प्रकार

के श्वास-कास रोगों में हरड़, सोंठ, मोथा में गुड़ मिलाकर गोली बना मुख में धारण करने से रोगमुक्ति मिलती है। यदि केवल बहेड़े को मुख में रखकर चूसा जाय तो भी उक्त फल मिलता है।

मैनसिल, हरताल, कालीमिर्च, जटामांसी, मोथा , गुड़ तथा शिलारस के पानोपरान्त गुड़ के साथ गुनगुना दूध पीना उपयोगी कहा गया है।

उक्त प्रकार के प्रयोग द्वारा वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज तथा सन्निपातज— ये पाँचों प्रकार के **कास** निर्मूल हो जाते हैं चाहे वे कितने ही असाध्य क्यों न हों।

बेर वृक्ष की पत्तियों को मैनसिल से लेपित कर सुखा डालें। पुन: उसे खाकर दूध के साथ शिलारस के पान करने से कष्टकारी खाँसी भी दूर हो जाती है।

कालीमरिच १ कर्ष, छोटी पीपर १ कर्ष अनार आधा पल, गुड़ २ पल, जवाखार आधा पल। असाध्य खाँसी में भी इसका चूर्ण लाभप्रद होता है। अथवा खाँसी से बलगम या पीब निकलने पर भी यह उपयोगी सिद्ध होता है।

अर्क (मदार) की छाल और शक्कर, इनके अर्ध भाग में त्रिकटु का चूर्ण बनाकर अग्नि में डाल दें तथा नलिका के द्वारा इनका धूम्रपान करें। इसके पश्चात् पान या दूध का प्रयोग करे।

इस प्रक्रिया के द्वारा पंच प्रकार के कास शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है।

पीपरमिश्रित कंटकारी का क्वाथ पीने से सभी प्रकार की खाँसी दूर होती है। अथवा लौंग, जायफल और छोटी पीपर—इनके अक्ष प्रमाण की मात्रा में आधा मरिच और ४ पल सोंठ मिलाकर सेवन करना भी गुणकारी होता है।

उक्त वस्तुओं को समान भाग में लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के प्रयोग से खाँसी, ज्वर, भूख का अभाव, प्रमेह, प्लीहा, श्वास, मन्दाग्नि तथा ग्रहणी रोग नष्ट हो जाते हैं।

अथवा दशमूल के काढ़ा में भारंगी का कल्क डालकर घी में पकावें। पुन: इसे मुरगा या तीतर पक्षी के मांसरस में पका लेने पर यह वातजन्य कास को दूर करता है।

दशमूल का रस ८ सेर, घी १ प्रस्थ तथा पुष्करमूल, कचूर, बोल, मोचरस, त्रिकटु और हींग १-१ अक्ष लेकर इनके कल्क को पका लें। इस घृतपान के अनन्तर दूध पीने से वातज-कफज खाँसी नहीं रह जाती।

मूल, पत्र और टहनी से निकाला हुआ कंटकारी (भटकटैया) का रस ८ सेर लेकर एक प्रस्थ घी में निम्न वस्तुओं को डालकर पकावें।

वे वस्तुएँ इस प्रकार हैं—खिरेंटी, त्रिकटु, वायविडंग, कचूर, चीता, सोंचर नमक, जवाखार, बोल, अड़ूसा, कूठ, बिछुआ नामक घास, बृहती, हरैं, अजवायन, अनार, ऋद्धि, मुनक्का, पुनर्नवा (गदहपूरना), दुरालभा, अम्लबेंत, काकड़ासिंघी, आँवला, भारंगी, रास्ना और गोखरू। इनका कल्क डालकर घी में पकावें।

यह घृत पाँच प्रकार की खाँसी, श्वास तथा हिचकी में उत्तम फलदायक होता है। अच्छी प्रकार से पकाया हुआ यह घृत सभी **कफजनित रोगों** को दूर करता है।

रास्ना, दशमूल और शतावर—इन्हें १-१ पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। इसमें कुलथी, बेर और जौ १ सेर लेकर मिला दें तथा उसमें ५० पल बकरी का मांस भी डाल दें। पक कर चौथाई भाग रह जाने पर उसमें ८ सेर घी और ८ सेर दूध डालकर १-१ पल जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलेठी, मुगवन, मषवन तथा जीवन्ती) का कल्क मिलाकर पकावें। इसे वातरोगों में अवस्थानुसार नस्य, पान तथा बस्तिकर्म द्वारा प्रयुक्त करें।

रास्ना, खिरेंटी, त्रिकटु और गोखरू। इनके कल्क के साथ पाचित घृत कंटकारी रस के साथ पान करने से पाँचों प्रकार की खाँसी का निर्मूलन होता है।

एक प्रस्थ दशमूल के रस में ४ प्रस्थ घी डालकर उसमें जवाखार, सज्जीखार तथा पंचकोल का कल्क मिलाकर पकावें। इस घृत के प्रयोग से खाँसी, हृत्शूल, पार्श्वशूल, हिचकी और श्वास के रोगों का निवारण होता है।

तालीसपत्र, चित्रक, केशर, अजवायन, सुगंधवाला, चव्य, अम्लबेंत, त्रिकटु, दालचीनी, इलायची और तेजपात। इन्हें बराबर-बराबर लेकर चूर्णित कर गुड़ में वटी बना लें।

इस वटी के सेवन से खाँसी, दमा, अरुचि, पीनस (नकसीर), हृद्रोग, कंठावरोध, वाक्रोध, ग्रहणी, बवासीर तथा अग्निमांद्य रोग नष्ट होते हैं।

हिचकी एवं श्वास का उपचार

शीतलचीनी, बहेड़ा, रसांजन, लाख (लाह), कटुकी, कचनार, गेरू, पीपर, आँवला, सोंठ, कसीस और शक्कर। इन्हें समान भाग में और इनके साथ ही कैथ (फलविशेष), पाटला के फल तथा फूल, दाख, खजूर और मोथा—इन्हें चौथाई भाग में लेकर मधु डालकर लेह के समान गाढ़ा बनाकर उपयोग करें। यह मधुमिश्रित होने के फलस्वरूप हिचकी को दूर करता है।

पीपर और शक्कर में मुलेठी को मधु के साथ तथा सोंठ और गुड़ को एक साथ मिलाकर उपयोग करना हिचकी निवारक कहा गया है।

यदि हिचकी से पीड़ित व्यक्ति दूध में मक्खी का बीट, अलक्तक (महावर)

के रस को जल के साथ या चंदनमिश्रित दुग्धपान करे तो वह हिचकी से मुक्त हो
जाता है।
मधु में सोंचर नमक मिला बिजौरा नीबू के रस का पान करना श्रेष्ठ है।
अथवा आँवला और पीपर, आँवला और सोंठ—इनका चूर्ण बना मधु और शक्कर
के साथ हिचकी और श्वास रोग में बराबर प्रयोग करना उचित है।
श्वासावरोध में शीतल जल के सेवन करने एवं हिचकी में कषायों के प्रयोग
करने अथवा मन में भय उत्पन्न करने से हिचकी बन्द हो जाती है।
हिचकी तथा श्वासाकुल व्यक्ति को तैल से सिक्त कर स्वेदित करें। उक्त प्रकार
के बलवान रोगी में वमन-विरेचन देकर शोधन करें तथा निर्बल में उसके शमन का
उपाय करना उचित है।
सोंठ के साथ भारंगी को गरम जल के साथ हिचकी और श्वास रोगी में प्रयुक्त
करें। अथवा भारंगी, शक्कर, कालानमक—सोंठ के साथ गरम जल से पान करें।
हरड़ और सोंठ के कल्क या कूठ और जवाखार के कल्क अथवा कालीमरिच और
छोटीपीपर के कल्क को गरम जल के साथ सेवन करायें।
हिक्कापीड़ित और श्वासाकुल व्यक्ति में प्यास और घबराहट बढ़ने पर
दशमूल या देवदारु का क्वाथ अथवा मद्यपान कराना लाभप्रद होता है। अथवा
दुरालभा, रोहिणी, दाख, काकड़ासिंघी और हरड़। इनके चूर्ण का लेह बना कर मधु
तथा घी के साथ सेवन करने पर खाँसी, हिचकी और निद्रा की जड़ता दूर होती है।
गुड़, पीपर, हलदी, रास्ना, दाख और जूही। इन्हें बराबर भाग में लेकर तैल
के साथ लेहवत् बनाकर देने से श्वास का निवारण होता है। अथवा काकड़ासिंघी,
त्रिकटु, त्रिफला, कटेरी (भटकटैया), भारंगी, कूठ, जटामांसी और पाँच प्रकार के
नमक।
इनके चूर्ण का पान गरम जल के साथ करने पर **हिचकी**, **श्वास**, **ऊर्ध्वश्वास**,
खाँसी, **अरोचता** तथा **पीनस** आदि नष्ट हो जाते हैं।
कचूर, असवण, जीवन्ती, दालचीनी, मोथा , पुष्करमूल, सुरस, भुईआँवला,
इलायची, पीपर, अगर, सोंठ और सुगन्धवाला। इनको सम भाग में लेकर चूर्णित कर
उसमें अठगुना शक्कर मिला सेवन करने से समस्त प्रकार के वातजन्य श्वास और
हिचकी में लाभ होता है।

परवल के पत्ते, सहिजन या सूखा मूली मिलाकर पकाया हुआ यूष हिचकी
और श्वास को नियंत्रित करता है। जिन औषधों या पेय पदार्थों द्वारा कफ-वात नाशन
हो अथवा उष्ण प्रकृति या वायुनियंत्रक हों उन्हीं का प्रयोग श्वास तथा हिचकी में भी
प्रयोक्तव्य होता है।

कुलथी, सोंठ, कटेरी, अड़ूसा और पुष्करमूल। इनका क्वाथ बनाकर पान करने से हिचकी और श्वासरोग का शमन होता है। सरसों के तैल में गुड़ को मिलाकर लगातार इक्कीस दिनों तक सेवन करने से श्वास का उन्मूलन होता है।

दाख, हर्रें, पीपर, कटुकी और दुरालभा। इन्हें घी और मधु मिलाकर प्रयोग करने पर भीषण श्वास रोग भी निर्मूल हो जाता है।

बालछड़, वायविडंग (भाभीरंग), काँटा करंज, त्रिफला, त्रिकटु, चीता, जवाखार तथा सज्जीखार। इनमें चौगुना जल मिलाकर एक प्रस्थ घी में पका लें। पकने पर इस घृत का सेवन १ तोले की मात्रा में करें। इससे श्वास, कास, अर्श, अरुचि, प्लीहा (तिल्ली), मल का रंग परिवर्तन तथा क्षतक्षय रोगों का निर्मूलन होता है।

भारंगी, दशमूल और हरड़—प्रत्येक को १०० पल लेकर चौगुने जल में पाक करें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे कपड़े से छानकर उसमें १०० पल गुड़ और १०० नग हर्रें को डालकर मंथन करें।

पुन: उस रस को गाढ़ा होने तक मंद आग पर पका लें। तत्पश्चात् उसे नीचे उतार ले और ठण्ढा हो जाने पर उसमें मधु ६ पल, सोंठ, कालीमरिच, पीपर, दालचीनी, इलायची, तेजपात—इन्हें १-१ पल तथा जवाखार का २ पल चूर्ण मिला देवें।

तदनन्तर नित्यप्रति एक हरड़ खाने के अनन्तर आधा पल की मात्रा में लेह को चाटने से भयंकर श्वास तथा पाँच प्रकार की खाँसी का निवारण होता है। इसके सेवन से स्वर का शोधन, रंग का निखार, तेज का वर्धन तथा क्षुधाग्नि का प्रज्वलन होता है। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि बाद में जो १०० हरड़ मिलाये गये हैं उनके लिए एक प्रस्थ जल अधिक लें।

कुलथी, दशमूल, और तुम्बुरु—इनके एक-एक सौ पल लेकर एक द्रोण जल में परिपाक करें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें ६० पल गुड़ डालकर पकावें। ठण्ढा होने पर ८ पल मधु, ६ पल वंशलोचन, छोटी पीपर २ पल, दालचीनी, इलायची और तेजपात २-२ पल मिलाकर जठराग्नि के अनुसार सेवन करें।

यह कुलत्थ गुड़ खाँसी, श्वास और हिक्का का शीघ्र ही नाश कर डालता है। परन्तु यहाँ औषध-समूह की मात्रा अधिक होने के कारण जल का परिमाण चौगुना रखना चाहिए, किन्तु इसमें मात्र १ द्रोण ही बतलाया गया है। ऊपर के श्लोक में त्रिसुगंध का परिमाण भी अव्यक्त है। इसकी मात्रा भी अनुमानत: २ पल की ही उचित प्रतीत होती है।

स्वरविकृति का उपचार

इसके लिए सर्वप्रथम चावल में गुड़-घृत मिलाकर पकाये हुए भात को खाने के पश्चात् किञ्चित् गरम जल का पान कर लेना उचित कहा गया है।

अथवा स्वर की विकृति में त्रिफला, त्रिकटु और जवाखार के चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए। इस चूर्ण के सेवन से श्वास-कास आदि रोगोत्पन्न स्वरभंग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

पित्तजन्य स्वरभेद में निरालस्य भाव से घृतपान करने के अनन्तर हरड़, शक्कर तथा काकड़ासिंघी का मोदक बनाकर खावें।

कफोत्पन्न स्वर के बदलाव में छोटीपीपर, पीपरामूल, कालीमरिच तथा सोंठ के चूर्ण को गोमूत्र के संग पान करना गुणकारी है।

मेदोत्पन्न स्वरभंग के लिए कफज स्वरभंग की विधि अपनाएँ। समस्त दोषों या क्षयोत्पन्न स्वरभेद में उक्त कथित क्रियाओं को दोषानुसार प्रयोग करें।

अथवा चव्य, अम्लबेंत, त्रिकटु, इमली, तालीसपत्र, जीरा , असगंध, भिलावाँ—इन्हें बराबर भाग में लेकर गुड़ मिला चूर्ण बना डालें। तत्पश्चात् दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण बना इसके साथ मिश्रित कर दें। इस चूर्ण से **स्वर की विकृति**, **पीनस**, **कफ** तथा **अरोचकता** दूर होती है।

अजमोदा और तेजपात का कल्क बना सेंधा नमक और घृत के संग भूनकर खाने से स्वरभंग, खाँसी और निर्बलता में उपयोगी सिद्ध होता है।

पूर्वकथित पदार्थों में शक्कर और मधु मिलाकर दाख, गम्भारी फल तथा खजूर के साथ खाने के अनन्तर दुग्धपान करना लाभकारी होता है। उच्च स्वर से बोलने के फलस्वरूप जिनके स्वर में विकृति उत्पन्न हो गयी हो उनके लिए,।

कटेरी (भटकटैया नामक पौधा) के रस में रास्ना, खिरेंटी, गोखरू और त्रिकटु मिलाकर पकाया हुआ घृत भी लाभप्रद कहा गया है। इसके साथ ही यह घृत पंच प्रकार की खाँसी को भी मिटा देता है। सूखी हुई औषधियों को खरल में पीसकर अठगुने जल में पकाने पर जब चौथाई भाग शेष रह जाय तो वही स्वरस कहलाता है।

वायविडंग (भाभीरंग), सेंधा नमक, हींग, गूगुल, मैनसिल और वचा। इनके चूर्ण का सेवन करना पीनसयुक्त (नकसीर के साथ) स्वर की विकृति को नष्ट करता है।

कटेरी १०० पल, गठिवन ५० पल तथा चित्रक २५ पल। इन तीनों को एक द्रोण जल में पका लें। पकाने के अनन्तर आठवाँ भाग बच रहने पर उसे कपड़े से छानकर ५० पल पुराना गुड़ भी उसमें मिला दें। पुनः छोटीपीपर ६४ तोले, त्रिसुगंध (दालचीनी, इलायची, तेजपात) २ पल और कालीमरिच १ पल डालकर

चूर्ण बना उसमें ३२ तोले मधु मिलाकर जठराग्नि बलाबल के अनुसार सेवन करें। इसके प्रयोग से सर्वदोषोत्पन्न स्वरभंग तथा अग्निमांद्य रोग (भूख का अभाव) शीघ्र दूर हो जाता है।

आम रोचकता का उपचार

वायु के द्वारा आमाशयिक दोषोत्पन्न अरुचि हेतु वचा के द्वारा विधिपूर्वक वमन कर्म कराने के पश्चात् स्निग्ध होकर पीपर, वायविडंग, जवाखार, रेणुका, भारंगी, रास्ना, इलायची, हींग, सेंधा नमक एवं सोंठ। इनका चूर्ण बना किसी श्रेष्ठ प्रकार की मदिरा के संग पान करें।

पित्तोत्पन्न आमारोचक में गुड़, जल और मधु के साथ वामनिक क्रिया सम्पन्न कर सेंधा नमक, शक्कर मधु तथा घी के साथ लेह का प्रयोग करना उत्तम फलदायक होता है।

कफोत्पन्न आमारोचक में नीम के रस से वमन कराने के उपरान्त अमलतास का रस मधु मिलाकर देना दीपन और उष्णताकारक होता है।

वातज में सेवनीय चूर्ण कफज में भी लाभप्रद होता है। त्रिदोषज आमारोचक में तीनों ही विधियों का समावेश करना आवश्यक है। इस प्रक्रिया के द्वारा समस्त प्रकार के आमारोचक से मुक्ति मिलती है।

कुछेक विद्वानों का ऐसा अभिमत है कि वातज में बस्तिकर्म, पित्तज में विरेचन तथा कफज में वमन कराना श्रेष्ठ है। मानसिक संघात हेतु मनोनुकूल तथा अनिद्रादायक प्रयोग से लाभ मिलता है।

अनिच्छा की उत्पत्ति तथा भयोत्पादक रोगों में कल्याणकारी उत्तमोत्तम वस्तुओं को देवें। आमारोचक के परिणामस्वरूप अर्शोत्पत्ति में उनका पुनराक्रमण रोकने के लिए प्राचीन संहिताओं के द्वारा प्रायोगिक अनुमान का आश्रय ग्रहण करें।

सात्म्यता के कारणवश स्वदेश में निर्मित विविध भाँति के भक्ष्य पदार्थ, आनन्ददायक पेय, लेह्य तथा अन्यान्य रसों का सेवन अनेक प्रयोगों द्वारा करना हितकर है। अथवा हलके, रूखे एवं मानसिक तुष्टिकारक वस्तुओं का सेवन करना लाभप्रद होता है।

जिस रोगी में चावल के बने भात खाने की अनिच्छा हो उसे इमली और गुड़ के रस में दालचीनी, इलायची तथा कलीमरिच को मुख में धारण करने से लाभ होता है।

यहाँ निम्नलिखत चार प्रकार के कवलग्रह क्रमशः बतलाये गये हैं जो इस प्रकार है—

१. कूड़ा, काला नमक, स्याहजीरा, शक्कर, कालीमिरिच तथा विड् नमक।
२. आँवला, इलायची, कमलगट्टा, खस, छोटीपीपर, चन्दन और कमल।
३. लोध, तेजबल, हर्रे, त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर) तथा अजवायन।
४. स्याहजीरा एवं शर्क्करमिश्रित गीले अनार का क्वाथ।

उक्त चारों प्रकार के कवलग्रह तैल और मधु मिलाकर सेवन किये जाने पर वातज, पित्तज, कफज एवं त्रिदोषज अरोचकता का विनष्टीकरण होता है।

त्रिऱ्यूषण (सोंठ, कालीमरिच, पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता), त्रिफला, हलदी, दारुहलदी। इनका चूर्ण बना उसमें जवाखार मिला मधु के साथ सेवन करने दो विलुप्त हुए स्वाद का जागरण होता है। इसके साथ ही तीते और कडुए औषध भी उपयोगी माने जाते हैं।

अरोचकता हेतु यहाँ क्रमशः तीन औषध-समूहों का वर्णन किया जा रहा है जो इस प्रकार से हैं—

१. अजवायन, स्याहजीरा तथा कालीमरिच।
२. दाख, इमली और अनार।
३. काला नमक, गुड़ एवं मधु।

उक्त औषधों से भी अरोचकता का निवारण सम्भव होता है।

अजवायन, इमली, सोंठ, अम्लबेंत, अनार, बेर नामक फल और अम्ल— इन सबको १-१ कर्ष तथा धनिया, काला नमक, स्याहजीरा, दालचीनी, तेजपात। इन सबको आधा-आधा कर्ष की मात्रा में ले लेवें।

तदनन्तर छोटीपीपर १०० नग, कालीमरिच २०० नग तथा शर्करा ४ पल मिलाकर चूर्ण बना डालें।

इस चूर्ण के द्वारा जिह्वा-स्वाद का विशोधन, भात खाने में रुचिवर्धन, हृत्शूल, पार्श्वशूल, कब्जियत, आनाह, खाँसी, श्वास, ग्रहणी तथा अर्शविकार नष्ट हो जाता है।

उबकाई एवं वमन का उपचार

सभी प्रकार के वमन आमाशयिक विशृंखलता के कारण ही उत्पन्न होते हैं। वातज वमन को छोड़कर शेष सभी वमनावस्था में लंघन कराना उपयोगी होता है।

अथवा कफ-पित्तहारक संशोधन करना उचित है। हरड़ को जल में रगड़कर पान करने से उबकाई तथा वमन की संभावना नहीं रहती है। घृत में सेंधा नमक मिलाकर पान करने से वातज छर्दि दूर होती है।

मूँग और आमलक के यूष में घी और सेंधा नमक मिलाकर खाने या पंचमूल

द्वारा निर्मित यवागू में मधु मिलाकर पीने से भी छर्दि का निवारण होता है। पित्तजनित छर्दि में दाख, बिदारीकंद और निशोथ को गन्ने के रस में मिलाकर पान कराने से वमन द्वारा पित्त का शमन होता है।

कफ की अधिकता से उत्पन्न वर्धित पित्त को स्वादु पदार्थों (दाख, जीवक आदि) से ऊर्ध्व मार्ग का संशमन करें।

विधिपूर्वक संशोधित रोगी को उपयुक्त समय पर मधु, शक्कर और लाजा (लावा) के साथ मन्थ का पान कराना उचित कहा गया है।

अथवा मूँग या जांगलदेशीय मृगमांस के रस में शालिधान्य का भात पकाकर देना श्रेष्ठ है। चन्दन के २ तोले रस में आँवले का २ तोला रस मिला मधु डालकर पिलाने से छर्दि का विनाश होता है।

मूँग के भुने हुए कषाय में लाजा, मधु और शक्कर डालकर पान करना भी लाभदायक होता है। इससे छर्दि, पिपासा, जलन तथा ज्वर का विनष्टीकरण होता है।

हरड़ के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से आमाशयिक दोष निचले भाग में आ जाते तथा छर्दि रुक जाती है।

पित्तपापड़ा के काढ़ा में मधु मिलाकर पान करने से छर्दि का नाश होता है। गुरुच, त्रिफला, नीम और परवल—इनका काढ़ा बना शहद मिलाकर पीने से अम्लपित्तोत्पन्न छर्दि की रुकावट शीघ्र हो जाती है।

कफोत्पन्न छर्दि में कफाशय तथा आमाशय के शोधनार्थ छोटी पीपर, पीसी हुई सरसों और नीम के मिश्रण को गरम जल और सेंधा नमक के साथ मैनफल को मिलाकर वमनकर्म कराना उत्तम है।

कफोत्पन्न छर्दि में वायविडंग, त्रिफला और शुण्ठी (सोंठ) चूर्ण को मधु के संग अथवा वायविडंग, केवटीमोथा और सोंठ का चूर्ण प्रयोग करना हितकारी है।

कफोत्पन्न छर्दि के दमनार्थ मुलेठी के चूर्ण को जामुन के रस के साथ या मोथा के साथ काकड़ासिंघी अथवा दुरालभा को शहद के संग चाटना लाभकारी है।

अथवा वातज, पित्तज तथा कफज छर्दि में मधुमिश्रित तर्पण भी उपयोगी है। विधानानुसार गुरुच का साधित 'हिमनामा' कषाय मधु के साथ सेवन करना तीनों प्रकार की छर्दियों में उपयोगी पथ्यस्वरूप है।

तीनों प्रकार की छर्दियों (वातज, पित्तज, कफज) में बेल या गुरुच का कषाय बना मधु अथवा चावल की धोवन के साथ मरोड़फली का प्रयोग करना लाभदायक है।

अथवा जामुन और आम के पत्ते, गवेधुक, धनिया, खस और सुगंधवाला—इन्हें जल में पकाकर थोड़ा-थोड़ा पीने से वमन दूर होता है।

इसी भाँति इलायची, दालचीनी, तेजपात और दुरालभा को समान परिमाण में लेकर मधु के साथ सेवन करना छर्दिनाशक होता है।

बेल, कैथ फल, पीपर और कालीमरिच—इन्हें गाढ़ा लेह के समान बना मधु के साथ सेवन करना छर्दि में उपयोगी कहा गया है। अथवा काला नमक, स्याहजीरा, कालीमरिच और शक्कर। इनके चूर्ण में मधु मिलाकर सेवन करने से छर्दि का नाश हो जाता है।

बेर की गुठली, पीपर, आँवला, लावा, सोंठ, फलत्रिक् (फालसा, कंभारी और दाख), प्रियंगु, रसोत, मोथा, बेर की मज्जा, मक्षिकाबीट या छोटी पीपर, कालीमरिच, कैथ फल, सुगंधवाला, दालचीनी, इलायची और तेजपात। इन्हें सम भाग में लेकर चूर्ण बना उसमें चौथाई भाग मधु मिलाकर लेह के रूप में बना लें। इसके चाटने से छर्दि का निवारण होता है।

यहाँ तीन प्रकार के अवलेह तीनों छर्दियों के लिए क्रमश: नीचे दिये जा रहे हैं जो इस प्रकार से हैं—

१. लावा, कैथफल, मधु, जूही और पीपर।

२. हरड़, त्रिकटु, धनिया और जीरा।

३. हरड़, कालीमरिच, मधु और पीपर।

उक्त औषध-द्रव्यों से अलग-अलग तीन प्रकार के अवलेह बना लें। इनके प्रयोग से तीनों छर्दि और अरोचकता का शमन होता है।

इलायची, लौंग, नागकेशर, बेर की मज्जा, लज्जावती (एक प्रकार की ऐसी घास जो छूने से सिकुड़ जाया करती है, छुईमुई), प्रियंगु, कचूर, चन्दन और पीपर। इनके चूर्ण में मधु और शक्कर मिलाकर सेवन करना तीनों प्रकार की छर्दि का उन्मूलक होता है।

अथवा जामुन और आम्रपल्लव से निकाले गये रस में शीतल जल और मधु के साथ लावा को उबालकर पीना **छर्दि** तथा **अतिसारनाशक** है। यह काढ़ा इस रोग के निवारणार्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है।

दीर्घकालिक छर्दियों में वायुविनाशक प्रयोग किये जाने चाहिए, क्योंकि छर्दि के फलस्वरूप धातुक्षय होने से वायु अपना प्रचण्ड रूप धारण कर लेता है।

अत: इसके लिए पौष्टिक तथा स्तंभक प्रयोग करने चाहिए जिससे वायु शमित होकर अनुकूलावस्था में पहुँच सके।

इसी प्रकार पूर्वकथित सर्पिगुड़, क्षीरविधि-कल्याणक त्र्यूषणादि, जीवन नामसंज्ञक घृत, पौष्टिकता से पूर्ण मांसरस तथा अवलेहादि दीर्घकालीन छर्दि को दबाने में समर्थ होते हैं।

मानसिक घृणा के फलस्वरूप उत्पन्न दौर्हृदी नामक छर्दि को अत्यन्त रुचिकर तथा अभीष्ट फलों से शमित करें एवं सात्म्यता से उत्पन्न छर्दि को सात्म्यताकारी लंघन तथा वमनकारी विधियों से दमित करें।

इसी भाँति के प्रयोग कृमि, हृद्रोग तथा मलोत्पन्न छर्दि में भी करने चाहिए। अथवा कमलगट्टा, नीम, धनिया, गुरुच और चन्दन के कल्क का काढ़ा बना उसमें एक प्रस्थ घी मिलाकर पकावें। इस घृत के सेवन से वमन, पिपासा, अरुचि तथा जलनयुक्त ज्वर का निवारण होता है।

तृष्णा या पिपासा का उपचार

वातोत्पन्न प्यास में गुड़ के साथ दही और ठण्ढा जल तथा पौष्टिक पदार्थों के रस एवं गुरुच का रस पिलाने से पिपासा दूर होती है। पंचगण योग में कथित पंचाग्निक पदार्थों या प्रथमगणोक्त वस्तुओं में पकाये हुए गुनगुने जल का अल्प मात्रा में प्रयोग करना लाभप्रद रहता है। पिपासातुर व्यक्ति की प्यास को रोकना किसी भी अवस्था में उचित नहीं है। ऐसा शास्त्रों का वचन है।

प्रयोगवेत्ता प्रबुद्ध व्यक्ति के लिए आगे वर्णित पित्तनाशक द्रव्यों के साथ पकाये गये जल को अथवा केवल जल को ही पित्तोत्पन्न तृष्णा में पान करना चाहिए।

पित्तज प्यास से प्यासे व्यक्ति को कम्भारी और शक्कर या दाख और मुलेठी अथवा दाख और कर्करा के साथ चंदन, खस, कमलगट्टा को जल में पकाकर पीना उचित होता है।

सारिवादिगण के साथ तृणसंज्ञक पंचमूल, उत्पलादिगण या मधुरगण में कथित पदार्थों का कषाय तथा महुआ के फूलों आदि का कल्क निर्मित कर उसे बेल,शमी धान्य, धव, पंचकोल और डाभ में पकाकर सेवन करने से **कफोत्पन्न प्यास** मिट जाती है।

यदि प्यास के साथ-साथ छर्दि की वर्तमानता भी रहे तो नीम के फूलों के सहित पकाये हुए जल का पान करना लाभकारी होता है।

अर्धभाग वाले जल में जीरा को उबाल कर कच्चा अदरक और काला नमक का मिलाकर पान करें।

अथवा सुगंधित और रुचिकारक मदिरापान करने से भी प्यास का निवारण होता है। सद्योत्पन्न पिपासा में तृषानिवारक पदार्थों या केशरमिश्रित दुग्धादि रसों का पान करने से लाभ होता है।

क्षयोत्पन्न तृष्णा में दूध, जल, मांसरस या जल में मधु घोलकर पीने से प्यास मिट जाती है।

मधुमिश्रित लावा के जल का पान करने या शक्कर के साथ पुष्करमूल (पोहकरमूल) के रस को पीने से भी तृषा का शमन होता है।

ठण्ढे जल में शहद घोलकर गले तक पिला दें तो वमन के द्वारा पिपासा शान्त हो जाती है।

अत्यन्त रूखे-सूखे और कृशकाय व्यक्ति की तृषा दुग्धपान से शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

अथवा घी में बकरी के दूध को पकाकर ठण्ढा होने पर उसे पीने से भी पिपासा दूर हो जाती है।

स्निग्ध व्यक्ति में भोजनोपरान्त लगने वाली प्यास गुड़ और जल के पान से मिट जाती है।

बरगद, पिलखन (पाकड़), शक्कर, लोध, अनार, मुलेठी और मधु—इनको चावल की धोवन के साथ पान करने पर छर्दि और प्यास नष्ट होती है।

मूर्च्छा, जलन, पिपासा, छर्दि, स्त्रीप्रसंग तथा मदिरापान—इनके फलस्वरूप परिपीड़ित शुष्क तालुवाले व्यक्ति को घृत या घृतमण्ड का पान करना लाभदायक होता है।

रक्तपित्त तथा मदात्यय रोगोत्पन्न प्यास में ठण्ढा जल पीना उपयोगी है। कांजी का प्रयोग भी मुख की स्वादहीनता तथा मल की दुर्गन्धि को मिटाता है।

नमकरहित कांजी को ठण्ढा करके पीने से मुख की शुष्कता दूर होती है। अथवा कोल, अनार, अम्लबेंत, चूका नामक शाक और चांगेरी रस—इन पंचाम्लों को मुख पर लेपित करने से शीघ्र ही प्यास का निर्मूलन होता है।

बरगद वृक्ष के अंकुर, मधु, कूठ (कूड़ा), कमलपुष्प और लावा का चूर्ण—इनसे बनायी गयी गोली मुख में धारण करने से प्यास नहीं रह जाती। अथवा लाल चावल का भात बनाकर ठण्ढा होने पर उसमें मधु डालकर आहार लेने से दीर्घकालीन छर्दि और पिपासा का निवारण होता है।

रोगों से दुर्बलांग व्यक्ति प्यास लगने पर यदि तत्काल ही जल न पीवे तो उसके प्राणान्त हो जाते या वह दीर्घकालिक रोगों की चपेट में आ जाता है। ऐसी अवस्था में सात्म्यतावाले अनुपान और औषध का प्रयोग उचित होता है। पिपासा के दब जाने पर अन्यान्य रोग भी चिकित्स्य हो जाते हैं।

पिपासातुर व्यक्ति अचेतन तथा मोहग्रस्त होकर अपने प्राण गवाँ बैठता है। अत: किसी भी अवस्था में जलग्रहण करना वर्जित नहीं है।

मूर्च्छा या अचैतन्यता का उपचार

किसी भी प्रकार की अचेतनता में जल का छिड़काव, स्नान, मणिमंडित गलहार, शीतल वस्तुओं का लेपन, पंखे की हवा, सुवासित तथा पानादि कार्य का वर्जन नहीं किया गया है।

अर्थात् ये सभी लाभकारी होते हैं। मधुर पदार्थों के मिश्रण से पकाये गये दूध, अनार, जांगलदेशीय मृगमांसरस तथा लाल चावल सदैव ही लाभप्रद माने जाते हैं।

जिस किसी दोषानुसार मूर्छा उत्पन्न हुई हो उसी के दोषानुसार ज्वरशामक कषायों का उपयोग करें।

रक्तोत्पन्न मूर्छा में शीतल उपचार से लाभ होता है। मदिरापान के कारण आयी हुई बेहोशी में शीघ्र ही वमन कराकर शमन कराना हितकर है। विषोत्पन्न अचेतना में विषघ्न औषधियों को काम में लाएँ।

कोलमज्जा, पीपर, खस और केशर—इनका चूर्ण बना शीतल जल से पान करना मूर्छा को दूर करता है। इसी भाँति पीपर और मधु का प्रयोग भी उत्तम फलदायक होता है।

अथवा सोंठ, गुरुच, चम्पा, पुष्करमूल और गठिवन। इन्हें मिलाकर पकाया गया क्वाथ या दुरालभा को घृत के साथ पान करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

त्रिफला, दूध, कटुकी या घृत का प्रयोग मूर्छा में हितकारी होता है। अचेत व्यक्ति के नेत्रों में अंजन लगाना, नाक में धुआँ देना, शरीर का मर्दन करना, कान ओर मूर्धा पर मुख से फूँक मारना, अंग-प्रत्यंग में सूई चुभोना, किसी मर्मस्थल को अग्नि द्वारा दागना तथा नाखूनों के मध्य भाग को पीड़ित करने से भी चेतनता लौट जाती है।

मूर्छित व्यक्ति को सचेत बनाने हेतु शिर के केश तथा शरीर के रोमों को खींचना, दाँतों से काटना, कौंछ का स्पर्शन करना एवं प्रफुल्लकारी बातों का कथन करना भी सहायक होता है।

मद्यपानजनित रोग का उपचार

मन्थ, खर्जूर, दाख (मुनक्का), अम्लबेंत, अनार, आमलक और फालसा। इनके साथ पकाया हुआ यूष पान करने से मद्यजन्य रोग दूर होता है।

मटर और मूँग, अनार और आमलक, दाख, आमलक, खर्जूर और फालसा मिश्रित रसयुक्त अलग-अलग तर्पक यूषों तथा अन्यान्य रसों से मदात्यय

रोग का निवारण होता है। अथवा हरड़ के क्वाथ या आँवले के रस में पाचित घृत को या मदमूर्च्छाविनाशक कल्याणघृत का प्रयोग करना लाभकारी सिद्ध होता है।

जल में सुपारी भिंगोकर उसके शीतल जल के पान करने पर वमन, मूर्छा तथा मदात्यय रोग में होने वाले अतिसार रोग का भी शमन होता है।

अथवा वनप्रदेशीय शुष्क गोबर को सूँघने, जल का पान करने, नमक के सेवन तथा सुपारी के चूर्ण में शक्कर मिलाकर खाने से भी मदात्यय रोग दूर होता है।

वातोत्पन्न मदात्यय में पुराने मदिरासेवी व्यक्ति के लिए काला नमक और त्रिकटु (सोंठ, कालीमरिच, पीपर) को अल्प जल में मिलाकर सेवन करना उपयोगी होता है।

पित्तोत्पन्न मदात्यय में शक्करमिश्रित मूँग का यूष या सुस्वादु मांसरस प्रयोग करें। इसके साथ ही चतुर्दिक् शीतल जल का उपचार भी करें।

कफोत्पन्न मदात्यय में पहले शक्त्यानुसार लंघनकर्म प्रयोग में लायें। पुनः दीपनीयगण की औषधियों (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ और अजवायन) को मद्य में मिलाकर पीवें।

त्रिदोषज मदात्यय में पूर्वकथित तीनों औषधियों के मिश्रण का प्रयोग करें। ऐसा करने से सभी प्रकार के मदात्मय रोग नष्ट हो जाते हैं।

यदि उक्त प्रयोग के द्वारा भी इस रोग का शमन न हो, कफ का क्षय हो गया हो तथा निर्बलता के फलस्वरूप शरीर में हलकेपन की अनुभूति हो रही हो तो ऐसी दशा में मदिरापान से विदग्ध हुए तथा वात-पित्त की प्रबलता वाले रोगी हेतु केवल दूध ही एकमात्र ऐसा सहारा रह जाता है जैसे गरमी से तपे हुए वृक्ष के लिए बरसात।

मद्यपान से निर्बल शरीर को दूध शीघ्र ही पुष्टि प्रदान करता है। अपने समस्त गुणों से भरपूर होने के कारण दूध अत्यन्त ओजस्वी और मदिरा का विरोधी होता है।

यहाँ यह बात ध्यातव्य है कि रोगनिवारण के पश्चात् भी पृथक्-पृथक् रूप में क्रमशः दूध और मदिरा को अल्प परिमाण में ग्रहण करते रहना आवश्यक है।

मुलेठी के कल्क में पकाया हुआ पुनर्नवा (गदहपूरना) का काढ़ा, दूध तथा घृत के सेवन से दुर्बल मद्यप में पुष्टिकरण होता है।

काला नमक, कालीजीरी, इमली, अम्लबेंत, दालचीनी, इलायची और शक्कर—इन सबको समान भाग तथा इसके अर्धभाग में कालीमरिच मिला देने से 'अष्टाङ्गलवण' बन जाता है।

यह लवण जठराग्निवर्धक तथा शरीरस्थ स्रोतों का संशोधक माना गया है।

अतएव कफ की प्रधानता वाले मदात्यय रोगी में इसका प्रयोग अवश्य ही करना चाहिए।

नखी नामक द्रव्य, काला नमक, हींग, बिजौरा नीबू का रस, सोंठ और अजवायन। उक्त वस्तुओं का चूर्ण बनाकर मदिरा के साथ पान करने से मदात्यय रोग दूर हो जाता है।

मदात्यय रोग के निर्मूलाकांक्षी रोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह स्नानोपरान्त शरीर को चंदन से लेपित कर गृहमण्डप में सुखपूर्वक बैठ जाय। चारों ओर से रमणियाँ उसे आच्छादित कर उपचारपूर्वक मदिरापान करायें।

इसके अतिरिक्त उस स्थान में शरत्कालीन चंद्रमा के समान उज्ज्वल मुखड़े वाली नारियाँ मधुर रागवाली वीणा बजाकर नृत्य-वादन भी करती रहें तो शीघ्र ही मदात्यय का निवारण होता है।

दाह या जलनशीलता का उपचार

इसके लिए सुयोग्य चिकित्सक को आवश्यक है कि वह दाह-पीड़ित रोगी को शतधौत (१०० बार धोया हुआ) घृत से अभ्यक्त कर जौ के सत्तू या बेर तथा आमले से युक्त किसी अन्यान्य अम्लीय पदार्थों से लेपित कर दे।

तत्पश्चात् दाहपीड़ित रोगी के सम्पूर्ण शरीर में कांजी लगाकर किसी कपड़े से ढँककर चंदन का लेप कर दें। पुनः रोगी को कमल या केले के पत्तो से निर्मित बिस्तर पर लिटा दें। तदनन्तर उसे चंदन के जलकणों को टपकाने वाले ताड़ के पंखे द्वारा हवा करें।

परिसेक, स्नान तथा पंखे द्वारा दी जाने वाली हवा के प्रयोग में जलन के शमनार्थ शीतल जल का ग्रहण करना उचित है।

अन्तर्दाह के शान्तिकरण हेतु चंदनमिश्रित ठण्ढा दूध, दुग्धनिर्मित कषाय एवं अन्यान्य प्रकार के शीतल पदार्थों का प्रयोग प्रबुद्ध चिकित्सक को करना उचित है।

इसके अतिरिक्त कुशादि पंचतृण, शालपर्णी (सरिवन) तथा जीवकादि पदार्थों द्वारा पकाया गया घी या तैल भी जलनशामक और वात-पित्तनाशक होता है।

पित्तशामक वस्तुएँ दाहरोग में भी गुणकारी होती हैं। अथवा प्रियंगु, लोध, खस, सुगंधवाला, सनाय और सोनापाठा। इनके चूर्ण में दारुहलदी का रस मिलाकर लेपित करने से जलन शान्त होती है।

किन्तु ध्यान रहे के इसका लेप रोचक, बारीक और गाढ़ा होने पर ही दाह का निवारण करता है।

सुगंधवाला, कमलगट्टा, खस, चंदन और मोथा। इन सब चीजों को जलपूरित बावड़ी में डालकर स्नान करना दाहयुक्त रोगी के लिए उचित है।

उन्माद रोग का उपचार

वातोत्पन्न उन्माद में पहले स्नेहन, पित्तोत्पन्न में विरेचन, कफोत्पन्न में वमन तथा अन्यान्य दोषोत्पन्न में बस्तिकर्म कराना श्रेयस्कर है। जिन वस्तुओं के प्रयोग मृगीरोग में करणीय होते हैं वे ही प्रयोग उन्माद में भी किये जाने चाहिए।

ब्राह्मी, कूष्माण्डी फल, वचा, शंखाहुली। इनके अलग-अलग रस, कूड़ा और मधु के साथ मिलाने से उन्मादनाशक बन जाते हैं।

दशमूलीय जल को घी के साथ, मांसरस के साथ, सरसों के चूर्ण के साथ या केवल नवीन घृत के साथ प्रयोग करना उपयोगी रहता है। अथवा सुगंधवाला के रस को उन्माद रोग में प्रयुक्त करें। इसके साथ ही सरसों के तेल का नस्य और मालिश भी आवश्यक है।

सरसों, वचा, हींग, करंज, देवदारु, मंजीठ, त्रिफला, कंटकारी (भटकटैया), मालकंगनी (ज्योतिष्मती), दालचीनी, त्रिकटु, प्रियंगु, शिरीष और दोनों हलदी (हलदी एवं दारुहलदी)। इनको बकरी के मूत्र में एक साथ पीसकर पान करें।

त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च), हींग, लवण, वचा, कटुकी, शिरीष (सीसम), करंज के बीज और श्वेत सर्षप (पीली सरसों)। इन्हें गोमूत्र में पीसकर नेत्रों में अंजन लगाने पर चातुर्थिक (चौथिया) ज्वर, मृगी और उन्माद का उन्मूलन होता है।

भयाकुलता तथा शोकाकुलता की अधिकता वाले उन्माद में धर्म-अर्थ-काम की साधना से उत्पन्न मैत्रीवाक्यों का प्रयोग करें।

हर्षोत्पन्न उन्माद में अर्थनाश की बात कहकर विस्मयकारी दृश्यों का अवलोकन करायें।

अथवा रोगी को रज्जु से आबद्ध कर सरसों के तैल की मालिश कर धूप में पीठ के बल लिटा दें।

तदनन्तर क्रौंछ, तप्त लौह या तैलीय जल से घर्षण करें। अथवा सुनसान घर में बाँधकर उसे कोड़ा से ताड़ित करें। ऐसा करने से उसका भ्रमित चित्त स्थिर हो जाता है।

दाढ़विहीन साँप से, प्रचण्ड सिंह-हाथियों से, शस्त्रधारी शत्रु से तथा चोरों के द्वारा भी ऐसे रोगी को भयभीत करें। अथवा कोई राज्य कर्मचारी इसे बाँधकर बलात् बाहर ले जाय और राजाज्ञा द्वारा इसे त्रस्त करें।

शारीरिक कष्ट के भय से प्राणभय अधिक कष्टकारी होता है। अत: प्राणभय दिखाने से इस रोगी का भ्रमित चित्त शान्त हो जाता है।

अभीष्ट वस्तु के नष्ट होने से खिन्न हुआ मन उसके समतुल्य वस्तुओं की प्राप्ति का आश्वासन देकर रोगी का मन स्थिर करना आवश्यक है।

काम-क्रोध, लोभ-मोह, ईर्ष्या-द्वेष आदि के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले उन्माद रोग प्रतिपक्षी भाव के द्वारा ही शान्त होते हैं।

वातादि दोषों तथा भूतबाधाओं से उत्पन्न उन्माद में देशकाल के बलाबल तथा विकारावस्था की साम्यता का विचार कर ही चिकित्सा करना उपयुक्त होता है।

देवता, ऋषि, पितृगण तथा गन्धर्वादि से आवेशित उन्माद में अंजन, तर्जन और ताड़नादि क्रूरकर्मों का परित्याग कर देना उचित होता है।

इसके लिए देवार्चन, बल्योपहार, यज्ञ, हवन तथा मन्त्रजाप का आश्रय लेना चाहिए।

अथवा चित्त को प्रफुल्लित करने वाले 'चैतस' घृत, 'कल्याण' घृत, 'नारायण' तैल या 'महानारायण' तैल का प्रयोग करें।

जटामांसी, गंधमांसी, हर्रे, भूतकेशी, स्थलकमलिनी, वचा, क्रौंच, त्रायमाण, जया, काकोली, गठिवन, कटुकी, क्षीरकाकोली, विधायरा, धनिया, सौंफ, लाख (लाह), शतावरी, आँवला, सर्पाक्षि, सर्पगन्धा, खींप, छोटी मेढ़ासिंघी, और सरिवन।

इनके साथ पकाया हुआ घृत चौथिया ज्वर, उन्माद, भूतबाधा तथा अर्शनाशक है। इसे महापैशाचिक घृत के नाम से जाना जाता है।

यह घृत बुद्धि, मेधा तथा स्मरणशक्तिवर्धक है। यह शिशुओं के अंग-विकास में सहायक होने के फलस्वरूप अमृत सदृश कहा गया है।

लघु पंचमूल, कम्भारी, रास्ना, एरण्ड (रेंड़), निशोथ, बला (खिरेंटी), मरोड़फली और शतावर। इसे २-२ पल की समान मात्रा में लेकर क्वाथ बना ले। क्वाथ निर्माणकाल में ही उसमें चौथाई भाग में कल्याण घृत भी मिल दें।

इस प्रक्रिया के द्वारा यह चैतस घृत के नाम से प्रसिद्ध हो उठता है। इस घृत के द्वारा सम्पूर्ण मानसिक दोषों का शमन होता है।

हिंगु (हींग), काला नमक और त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमिर्च)। इन्हें २-२ पल की मात्रा में आठ सेर घी और उससे चौगुना गोमूत्र डालकर पाचित कर सेवन करने से उन्माद रोग का उन्मूलन होता है।

अपस्मार या मृगीरोग का उपचार

वातोत्पन्न मृगीरोग में बस्तिकर्म, पित्तोत्पन्न में विरेचन तथा कफोत्पन्न में

वमन कराकर सुयोग्य चिकित्सक को रोगी का उपचार करना चाहिए। तत्पश्चात् तीक्ष्ण पदार्थों का उपयोग करें।

ऐसा करने पर शरीर का शुद्धिकरण होकर शीघ्र ही मृगी का उन्मूलन होता है।

कबूतर की बीट का विधिवत् निर्मित अंजन मृगी तथा मुख्यत: उन्मादनाशक होता है।

अथवा मुलेठी, हींग, वचा, तगर, शिरीष (सीसम वृक्ष), लहसुन, कूड़ा—इनको बकरी के मूत्र में पेषित कर बनाया हुआ अंजन मृगी और उन्माद में लाभकारी होता है।

कपित्थ (कैथ नामक फलविशेष जो बेल के आकार का होता है), ब्राह्मी, मूँग, मोथा, खस, जौ और त्रिकटु—इन्हें बकरी के मूत्र में बारीक पीसकर बत्ती के समान बना लें। इसका लेप वर्तिका के प्रयोग से उन्माद, मृगी, सर्पदंश तथा विषपान दूर होता है।

कुत्ते के पित्त को लेकर अंजन बना लें। इस अंजन से मृगीरोग का निवारण होता है। यदि इसी श्वानपित्त को घी में मिलाकर धूप दें तो भी मृगी में लाभदायक सिद्ध होता है।

जिस रोगी में मृगी के दौरे के समय छाती में कम्पन, हाथ-पाँव में ठण्ढापन, नेत्रों में विकृति तथा मूत्रस्राव हो उसे दशमूल का जल पिलाने से लाभ मिलता है।

वचा के चूर्ण का मधु के साथ सेवन करते हुए दूध-भात का आहारी व्यक्ति दीर्घकालीन भयंकर मृगी को दूर करने में भी सफल हो जाता है।

शण (सन), निशोथ, अंडी, दशमूली, शतावर, रास्ना, जूही और सहिजन। इनके २-२ पल लेकर काढ़ा बना लें। तदनन्तर इसमें बिदारीकन्द, मुलेठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, शक्कर, खजूर, मुनक्का, भीरु नामक गन्ने की मज्जा और गोखरू।

इन सबको चैतस नामक घृत के साथ उत्तम घृत का मिश्रण करके पकाने से यह महाचैतस नाम का घृत तैयार हो जाता है।

यह घृत समस्त प्रकार की **मृगी**, **विष**, **उन्माद**, **पीनस** (नकसीर), **तिजारी-चौथिया ज्वर**, **अलक्ष्मी**, **भूतबाधा** का निवारण करता है। साथ ही **श्वास**, **खाँसी** तथा **धातुविकार** को मिटाकार शुक्र (वीर्य) का संशोधन भी करता है।

वचा, कूठ और शंखाहुली—इन्हें ब्राह्मीरस में पुराने घी के साथ पकाकर उपयोग करने से उन्माद, मृगी तथा ग्रहबाधा दूर होती है। कुम्हड़े के अट्ठारहगुने रस में मुलेठी के कल्क को घी में पकाकर सेवन करने से मृगीरोग का नाश होता है।

गोबर का रस, गाय का दही-दूध-मट्ठा और गोमूत्र—इनको सम भाग लेकर गोघृत में पका लें। इस घृत के प्रयोग से चौथिया ज्वर, उन्माद (उन्मत्तता), ग्रहपीड़ा तथा मृगीरोग का निर्मूलन होता है।

वातरोग का उपचार

अभ्यंगीय स्नान, स्वेदन (पसीना निकालना), नस्य, स्नेहन (तैल) द्वारा शौच लाना तथा स्निग्ध, अम्ल, नमकीन, स्वादिष्ट तथा पौष्टिक पदार्थ भी **वातनाशन** में सहायक होते हैं।

परवल का पकाया हुआ यूष हलका तथा वातनाशक होता है। इसके अतिरिक्त खिरेंटी का यूष भी वातविनाशक कहा गया है।

राजबला, असगंध, क्रौंच, शतावर, खिरेंटी, दूब, केतकी का अंकुर। इन्हें समान परिमाण में लेकर क्वाथ बना पान करने से अनेक प्रकार के वातज रोगों का विनष्टीकरण होता है।

शीतोष्ण, स्निग्ध (चिकना), रूखा तथा अम्लीय पदार्थों के प्रयोग से यदि वातविकार का शमन न हो तो उसे रक्तविकार या अन्य प्रकार के विकारों का अनुमान किया जाना चाहिए।

अथवा असगंध, तीनों प्रकार की खिरेंटी, दशमूल, सोंठ, कुलिक, दोनों कौलिक तथा रास्ना का योग लाभकारी होता है।

जलप्रदेशीय जीवों तथा मछलियों के मांसरस तथा गरम वेशन से निर्मित लेप लगाना वातनाशक होता है। इसके अतिरिक्त चार प्रकार के स्नेहों को दशमूल में पकाकर उन्हें चिकनी औषधियों के साथ मिश्रित कर लेप लगाने से वातरोग नष्ट होते हैं।

विशेष वातनाशक औषध

सभी प्रकार के अम्लीय पदार्थ, तैल, आठ प्रकार के लवण, जलप्रदेशीय जीवों के मांस में स्वेदित कर सुखोष्णरूपा काकोल्यादिगण को मरिच आदि के साथ समायोजित करने पर वे वातनाशक बन जाते हैं। यह सभी अवस्थाओं में वातरोगियों के लिए प्रयोक्तव्य है।

काकोल्यादिगण का तात्पर्य अष्टवर्ग की औषधियों से है। इसी काकोल्यादिगण के समान ही भद्रद्रार्वादि तथा दाडिमादिगण भी वायुनाश में गुणकारी होता है।

'स्नेह' शब्द चार प्रकार के स्नेहों का बोधक होता है।

अष्टलवण शब्द से सेंधा नमक ग्राह्य होता है। काकोल्यादि तीन गणों को पूर्वकथित तीन समूहों से संशोधित करना उचित कहा गया है।

वायुनाशक षट्चरण योग

आमाशयगत वायु के रोगी को विधिपूर्वक वमन कराकर सात रात्रि तक क्रमानुसार वक्ष्यमाण षट्चरण नामक योग का उपयोग गुनगुना जल के साथ करना आवश्यक होता है।

अथवा चित्रक, इन्द्रयव, पाठा, कटुकी, अतीस, हरड़ और घृतकुमारी (घीकुआर नामक पौधाविशेष)—इन सात प्रकार के औषधसमूह को ही षट्चरण नामक योग कहा जाता है। अत: उक्त सात वस्तुओं को सात दिनों तक प्रयोग कराना उचित होता है।

जिस समय वायु का प्रवेश पक्वाशय में हो गया हो उस समय भी षट्चरण की औषधि खाने के अनन्तर नमक की फंकी फाँक लेनी चाहिए, किन्तु औषधि सेवन से पूर्व तैल के द्वारा विरेचन लेना और बस्तिकर्म करना आवश्यक होता है।

वायुनाशक विशेष उपाय

जब गुह्यस्थल से ऊर्ध्वभाग में वायु प्रविष्ट हो तब बस्तिशोधन करना अनिवार्य है। वायु के कर्णादिक अवयवों में प्रवेशित होने पर वायुविनाशक विधि अपनानी चाहिए।

अर्थात् स्नेहन कर्म द्वारा अभ्यंग, व्रणों में पुलटिस बंधन, मर्दन और लेपन कर्म किये जाने चाहिए। वायु के चमड़ा, मांस, रक्त तथा नाड़ियों में प्रवेशित होने पर सिंघी के द्वारा दूषित रक्त का निष्कासन कर देना आवश्यक होता है।

जब वायुवाहिनी नलिका (प्रत्येक अंग के जोड़ को बाँधने वाली नाड़ी), सन्धिस्थल और अस्थिगत वायु हो तब स्नेहन कर्म, पुलटिस, अग्निदग्धन, बंधन तथा मर्दन की क्रिया करनी चाहिए। शुक्रगत वायु में शुक्रशोधनार्थ पुष्टिकारक, बलवर्धक धातुशोधक बृंहणस्वरूप चिकित्सा सुयोग्य चिकित्सक के लिए श्रेयस्कर मानी गयी है।

वायुनाशक शिलाजीत का प्रयोग

वायु के यत्र-तत्र विस्तरित होने पर विधिवत् शिलाजीत का प्रयोग करना चाहिए। जगत् में ऐसा कोई साध्य रोग नहीं है जिसे शिलाजीत के द्वारा दूर न किया जा सके।

सर्वांगी वातशामक औषध

प्रात:काल सज्जीखार के क्वाथ को अग्निबल के अनुरूप पान कराने पर वक्ष:स्थल, नितम्ब और कंधों में प्रविष्ट वायु का निवारण होता है। इस क्वाथ की एक मात्रा नित्यप्रति पिलानी चाहिए।

किन्तु कुछेक लोगों का ऐसा अभिमत है कि इसे उबालकर भोजनोपरान्त देना उचित होता है।

इस क्वाथ से अर्दित (लकवा) और अपतंत्रिक नामक वातरोग नष्ट होता है। यह क्वाथ एकांगीवात (एक ओर का) तथा सर्वांगवात में भी गुणकारी होता है।

इसके अतिरिक्त यह ऊरुस्तम्भ (जाँघों की जकड़न), गृध्रसी (सायेटिका) नामक वातरोग और मुख्यत: कृमिरोगों में उपयोगी है। इसके साथ ही यह कटिप्रदेश का रोग, पीठ का रोग एवं उदर रोग में भी लाभकारी सिद्ध होता है।

स्नेहन द्वारा अभ्यंगीकरण, शिर:क्रिया, बस्तिकर्म, नस्य तथा धूम सेवित रोगी को भात खाने से पूर्व घृतपान करने पर अर्दित रोग (पक्षाघात, लकवा) का विनष्टीकरण होता है।

इसी प्रकार विसूचिका (कॉलरा) और अपबाहुक नामक वातरोग में दशमूल, खिरेंटी तथा उड़द के क्वाथ को माषतैल (उड़द का वह तैल जो आठ पदार्थों द्वारा निर्मित होता है।) में घोलकर सायंकाल भोजनोपरान्त नासिका द्वारा पान करना लाभदायक होता है।

खिरेंटी की जड़, नीम और क्रौंच। इन्हें खरल में पीस रस निचोड़ कर पान करें। इसके साथ ही अपबाहुक का रोगी उड़द के रस का नाक से नस्य लेकर एक मास में ही कठोर बाहुवाला बन जाता है। पंचमूल या दशमूल का क्वाथ-बनाकर नाक में डालने से रूखे, पसीना वाले तथा मन्यास्तम्भ (गरदन की पिछली नाड़ी में जकड़न) के रोगी में लाभकारी होता है।

बाहुशोष का निदान

बाहुशोष (भुजा की शुष्कता) में भोजनोपरान्त बृहत् कल्याणघृत का पान लाभप्रद है। कुब्जवात (ऐसी अवस्था जब वायु प्रकोप के फलस्वरूप छाती और पीठ का मध्यवर्ती स्थान उत्थित होकर विकृति कर देता है तो उसे कुब्जवात कहते हैं) की आरंभिक अवस्था में दशमूल आदि वातशामक औषधियों द्वारा उपचार करणीय होता है, किन्तु उसकी वर्धित अवस्था में स्नेहन या मांसरस का प्रयोग किया जाना चाहिए।

उदावर्त वात की औषध

कुब्जवात वाले रोगी को घी के साथ स्नेहलवण का पीना लाभकारी होता है। पेट में अफरा (प्रकुपित वायु का पक्वाश्य में पहुँचना, इसी को आध्मान भी कहते हैं) होने पर खार और हींग का लेप लगाना चाहिए।

अथवा हींग, मधु और सेधा नमक के साथ तमाड़ के फलों की बत्ती बनाकर उसे घी में उलट-पलट कर पका लें। तदनन्तर घृताक्त गुदा में उन बत्तियों को प्रविष्ट

कराये तो उदावर्त रोग (मल-मूत्र के वेग को अवरुद्ध कर वायु का ऊर्ध्वगमन) नष्ट हो जाता है।

सर्ववातनाशक औषधि

लहसुन १०० पल, कालातिल ३२ तोला तथा हींग, त्रिकटु, जवाखार, सज्जीखार, पंचलवण, सौंफ या कूठ, पिपरामूल, चीता, अजवायन, अजमोदा और धनिया—इनको २-२ पल एकीकृत करके बारीक चूर्ण बना लें। तदनंतर इसे सोलह दिनों तक किसी घृतपात्र में रख छोड़े।

तत्पश्चात् इसमें आधा-आधा पल तेल और कांजी को मिलाकर १-१ कर्ष की मात्रा में सेवन करे। इसके बाद मदिरा या जल का पान करें।

इसका प्रयोग **आमवात**, **एकांगवात**, **सर्वांगवात**, **अपस्मार**, **अग्निमांद्य**, **साँस**, **खाँसी**, **विषनाश**, **उन्माद**, **भग्नवात**, **पीड़ा** तथा **कृमिरोग** में करने से भी लाभ होता है।

प्रत्याध्मान वातनाश औषध

देवदारु, हर्रें; कूड़ा, सौंफ, हींग और सेंधा नमक—इन्हें मट्ठे में पीसकर पेट पर गुनगुना लेप लगायें। यह लेप दीपक, पाचक तथा बस्तिशोधक है। प्रत्याध्मान नामक वायु में वमन, लंघन और दीपन ओषधियों का प्रयोग करना गुणकारी कहा गया है।

प्रत्यष्ठीला आदि वातशामक उपाय

प्रत्यष्ठीला और अष्ठीलिका नामक वायुविनाश में विद्रधि रोग में कथित क्रियाओं का उपयोग लाभकारी होता है।

इस प्रकार के वायु में हिंग्वादि चूर्ण भी प्रभावशाली होता है। मुख्यतया यह चूर्ण विसूचिका (कॉलरा), खंजवात, पंगुवात, दाह, पादहर्ष (पैरों में रोमांच), कोष्ठगत विकार, शिरोरोग तथा वातकंटक में उपकारी कहा गया है।

शिरगत वात के उपाय

शिरोग्रह नामक वायु में शिरोगत वायुनाशक शास्त्रीय क्रिया का अवलंबन करें। जिह्वास्तम्भ (जीभ की जकड़न, मूकवात) आदि रोगों में वक्ष्यमाण क्रिया को अपनायें।

कल्याणक लेह का लाभ

हलदी, वचा, कूठ, छोटी पीपर, सोंठ, कालाजीरा, अजमोदा, मुलेठी और सेंधा नमक। इनको समभाग में लेकर चूर्ण बनायें और उस चूर्ण को घी में उबालकर नित्यप्रति सेवन करें।

इसे इक्कीस दिनों तक निरन्तर सेवन करने के फलस्वरूप मानव श्रुतिधर

(किसी के द्वारा सुनी हुई बातों को स्मरण रखने वाला), मेघगर्जन तथा नगाड़े के समान घोर शब्द करने वाला तथा मतवाली कोयल के समान मधुर स्वरवाला बन जाता है।

क्रोष्टुशीर्ष (घुटनों के मध्यवर्ती स्थान में वायुप्रकोप से होने वाला शोथ) नामक वायु में गूगुल को, या त्रिफला के रस में गुरुच को अथवा दूध के साथ रेंड़ी का तेल या विधायरे का प्रयोग किया जाना चाहिए।

अथवा श्यामा लता, गोभी और गोरखमुंडी—इनके योग से वातरक्तनाशक प्रयोग करने चाहिए, क्योंकि प्रदूषित रक्त के नष्टीकरण के पश्चात् ही वातनाशक विधियों का प्रयोग सफलताकारक होता है।

विविध वात शामकोपाय

दशमूल, खिरेंटी, रास्ना, गुरुच और सोंठ। इनके चूर्ण में अण्डी का तेल मिलाकर सेवन करने से गृध्रसीवात, खंजवात तथा पंगुवात नष्ट होते हैं। अण्डी के बीजों को शोधित कर पीठी के रूप में बना दूध में खीर बना डालें। इस क्षीरपान से पीड़ायुक्त गृध्रसी वात का दमन अविलंब होता है।

अथवा पंचमूल का कषाय रुचुतैल और निशोथ के साथ या केवल निशोथ से मिलित होने के फलस्वरूप गृध्रसीशूल और गुल्म का विनाश करता है। घी, तैल या अदरक और बिजौरे नीबू के रस को प्रतिदिन चुक्र के साथ पीने से कटिवात, ऊरुवात (जाँघों का वात), तीनों प्रकार के गुल्म, शूल, गृध्रसीवात तथा उदावर्त का विनष्टीकरण होता है।

रास्ना १ पल तथा गुग्गुलु १० तोले (५ कर्ष) लेकर घी में मिला गोली बनाकर खाने से **गृध्रसीवात** दूर होता है।

गृध्रसीवातग्रस्त व्यक्ति को पहले जाँघों को स्नेहन कर्म द्वारा ठीक प्रकार से पसीनायुक्त कर लेने के अनन्तर पैरों से उस जाँघ को मर्दित कर सूक्ष्माग्र से गृध्रसी को धीरे-धीरे जाँघों से कनिष्ठा में उतार लें। तत्पश्चात् पीसी हुई सोंठ को रेंड़ के बीजों के साथ खीर बनाकर खाने से कमर की पीड़ा और गृध्रसीवात में निश्चय ही लाभ होता है।

वातरोगी के ऊर्ध्वभाग का शुद्धिकरण न होने तक अनुवासन-बस्तिकर्म का प्रयोग करना उचित नहीं होता। प्रथमत: अनुवासनबस्ति में प्रयुक्त किया हुआ तैल उसी प्रकार जलकर भस्म हो जाता है जिस प्रकार अग्नि में डाली गयी हवन-सागग्री। अर्थात् इस प्रकार का किया गया प्रयोग निष्फल हो जाता है।

जाँघों की कंडरा (महानाड़ी) में आविर्भूत मूँगा-सदृश ग्रंथि को शस्त्र द्वारा

विदारित कर वहाँ के विकार का निर्मूलन कर दें। तदनन्तर उस स्थान को आग से दागकर मुलेठी और चंदन का चूरा लगा दें। प्रभावित बस्ति से चार अंगुल नीचे की ओर शिराभेदन कर्म प्रासंगिक बतलाया गया है।

ऐसी अवस्था में रोग का शमन न होने पर पैर की कनिष्ठा अँगुली को दग्ध कर दे या गोमूत्र में रेंड़ी का तेल मिलाकर पान करें। गृध्रसी और ऊरुग्रह नामक इस वात के विनाशनार्थ एक मास तक इस योग का व्यवहार करना आवश्यक कहा गया है। वातकंटक नामसंज्ञक वातरोग में लगातार रक्तावसेचन कर्म करना उपयोगी है। अथवा शतावर के साथ चौथाई मात्रा में अण्डी के तेल का पान करना चाहिए।

जब कटिप्रदेश में साम या निराम वायु प्रविष्ट होकर पीड़ोत्पादन करता है तब उसे 'कटिग्रह' कहा जाता है। दोनों जाँघों में अवस्थित वायु पंगुसंज्ञक होता है। समस्त प्रकार की कटिवेदना में अण्डी का तैल या दशमूल का कषाय पान करना वैद्यों द्वारा लाभकारी माना गया है।

आदित्यपाकगुग्गुलु वटक के लाभ

त्रिफला और छोटी पीपर १-१ पल, तथा दालचीनी, इलायची आधा-आधा पल तथा गुग्गुलु ५ पल। इन सबको चूर्णित कर दशमूल के रस में भिंगो दें।

तत्पश्चात् इन पदार्थों का वटक बना लें। इस वटक का सेवन मांसरस के साथ करने पर रक्तवात, संधिवात, अस्थिवात तथा मज्जागत वात उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार इन्द्र के वज्रप्रहार से वृक्ष नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। इस चूर्ण को भावनाविधि भी कहा जाता है।

दशमूल के दुगुने रस में इसे लेहवत् बना उसमें गूगुल की अधिकता वाले चूर्ण को बार-बार विलोड़ित कर सूर्यताप में सात बार सुखा लेने से यह वातविनाशक योग सिद्ध और भावित होता है।

बबूल, असगंध, हाऊबेर, गुरुच, शतावरी, गोखरू, रास्ना, श्यामा, कचूर, घोष (तरोईविशेष), अजवायन और सोंठ। इन द्वादश औषध-समूहों को सम भाग में लेकर चूर्णित कर लें।

उक्त चूर्ण के समान में शुद्ध गूगुल लेना चाहिए। इसमें आधा घृत मिलाकर आधा अक्ष (१ तोला) की मात्रा में इसे प्रयुक्त करें। तदनन्तर एकांगीरस, मुद्गादि क्वाथ, मद्य, गुनगुना जल, दूध या मांसरस का पान करें।

इस योग के द्वारा कटिग्रह, गृध्रसी, बाहुग्रह (भुजस्तम्भ), पृष्ठग्रह, हनुग्रह, जानुवात, पादवात, संधिवात, अस्थिवात, मज्जागत वात, स्नायुवात तथा कोष्ठगत वात में लाभ मिलता है। इसके साथ ही यह वात-कफवर्धित रोगों तथा वातोत्पन्न

हृदयग्रह और योनिविकारों को नष्ट करने में भी समर्थ होता है। इसके अतिरिक्त इस त्रयोदशांग गूगुल को भग्नवात, अस्थिविद्धवात तथा खंजवात में भी परमोपयोगी माना गया है।

दशमूलघृत का लाभ

जीवनीयगण की औषधियों (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती और मुलेठी) को अलग-अलग १-१ पल लेकर एक-एक कल्कों के द्वारा दूध के साथ दशमूल के काढ़ा में पकाया हुआ घी तर्पक तथा वातपीड़ा का शामक होता है।

अश्वगन्धादि घृत का लाभ

असगंध के कषाय और उसके कल्क के साथ चौगुना दूध मिलाकर पकाया गया घृत पुष्टिकर होने के फलस्वरूप मांस को बढ़ाता तथा वातरोग का विनाश करता है।

छागलादि घृत का प्रयोग

चमड़ा, सींग तथा खुरादि को निकालकर बकरे के मांस को दशमूल के साथ एक द्रोण जल में पाचित करें। चौथाई भाग शेष रह जाने पर उसमें एक प्रस्थ घी डालकर पुनः पकावें तथा उसके साथ ही मुलेठी, जीवनीयगण की औषधि और शतावरी के कल्क को दूध के संग पका लें।

पूर्णरूप से परिपक्व होने पर छागलादि नामक घृत तैयार हो जाता है। इसके द्वारा लकवा (पक्षाघात), कर्णपीड़ा, बहिरापन, गूँगापन, जड़वात, पंगुवात, गद्गदवात, लूलापन, गृध्रसीवात, कुबड़ापन, अपतानकवात तथा अपतंत्रक वात का विनाश हो जाता है।

इसके निर्माण हेतु पूर्वकथित दशमूल की मात्रा ३२ पल तथा घृत के संग पकाने वाली औषधियों का परिमाण दुगुना होना चाहिए।

ऐलादि तैल का प्रयोग व लाभ

इलायची, कपूरकचरी, देवदारु, पत्थरफूल, धूपसरल, रेणुका, वनहर, कचूर, खस, चम्पक, जवाकुसुम, थुनेर, वोर, सोमराजी, कमलदण्ड, सफेद चन्दन, कन्दूर, नखी नामक द्रव्य, सुगंधवाला, दालचीनी, तेजपात, कूठ, काला चन्दन, मोथा, गठिवन, लालचंदन, लौंग, जायफल, मंजीठ, कुंकुमचंदन और काला अगरु। इनका कल्क बना खिरेंटी के क्वाथ में दही के पानी के साथ तैल को पकाने पर एलादितैल निर्मित होता है।

यह तैल बलवर्धक होने से शरीर के रंग में निखार लाकर शरीर को पुष्ट बनाता है। इसी हेतु यह तैल वातरोगनाशक भी होता है।

बलातैल का प्रयोग व लाभ

बला (खिरेंटी) के क्वाथ और कल्क के साथ दूध डालकर पकाया हुआ तैल समस्त वातरोगों का निवारण कर बल, आयु तथा तेज का वर्धन करता है।

बृहद् बलातैल का प्रयोग व लाभ

खिरेंटी का मूल, दशमूल, इन्द्रयव, कोल और कुलथी—इनके क्वाथ के अलग-अलग आठ तथा दूध आठ भाग लें। एक भाग तैल में एक भाग के परिमाण से सेंधा नमक और मधुरगण मिला लें तथा अगरु, सालवृक्ष की राल, धूपसरल, देवदारु, मंजीठ, चन्दन, कूठ, इलायची, शीतली लता, मांसी, पत्थरफूल (पत्थर फोड़कर निकलने वाला पुष्प), तेजपात, तगर, सारिवा, वच (कुलंजन), शताव, असगंध, सौंफ और पुनर्नवा (गदहपूरना)।

उक्त वस्तुओं का कल्क बनाकर पका लें। पूरी तरह से पक जाने पर इस तैल को सोने, चाँदी या मिट्टी के पात्र में रख छोड़े। यह तैल सभी प्रकार के वातरोगों का विनाशक है।

इसकी मात्रा अग्निबलानुसार निर्धारित कर इसे प्रसूता स्त्री, गर्भाकांक्षिणी नारी तथा धातुक्षीणता वाले व्यक्ति में प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त निस्तेज, मर्मपीड़ित, मथितांग, भग्नगात्र तथा अतिपरिश्रम से क्लान्त होने वाले व्यक्ति में भी यह परमोपयोगी कहा गया है। यह वर्णाक्षेपक नामक वातरोग को भी नष्ट कर डालता है।

इतना ही नहीं, बल्कि इस तैल के छह मास सेवन करने से हिचकी, खाँसी, तेजविहीनता, प्लीहा (तिल्ली), श्वास और आँतों की वृद्धि आदि रोगों का उन्मूलन हो जाता है। इसका सेवन कर निर्बल व्यक्ति नवीन धातुयुक्त हो यौवनावस्था को प्राप्त हो जाता है। यह विशेषतः कोमलांगों राजा-महाराजाओं तथा धनाढ्यों के लिए अत्यन्त सुखकारी सिद्ध होता है।

नारायण तैल का प्रयोग व लाभ

बेल का गूदा, अरणी नामक काष्ठ, सोनापाठा, लाल रंग का लोध, फरहद, पसरन (प्रसारिणी नामक लता), असगन्ध, कटेरी (भटकटैया), कंटकारी, खिरेंटी, सहदेई (एक प्रकार की घास), गोखरू और पुनर्नवा—इन्हें १०-१० पल लेकर चार द्रोण जल में पकावें। पककर चौथाई भाग शेष रह जाने पर उसमें ८ सेर तैल मिला दें और साथ-ही-साथ सौंफ, देवदारु, मांसी, पत्थरफूल, वच, चंदन, तगर, कूठ, इलायची, चारों पर्णी, रास्ना, असगंध, सेंधा नमक और पुनर्नवा—इन्हें २-२ पल पीसकर उसमें मिला दें। पुनः तैल के बराबर शतावरी के रस को डाल दें। तदनन्तर बकरी या गोदुग्ध को चौगुनी मात्रा में मिलाकर पकावें। इसे खान-पान, स्नान, बस्तिकर्म तथा नस्य लेने में भी प्रयोग करें।

इस तैल के द्वारा वातपीड़ित हाथी-घोड़ा या व्यक्ति, लूला-लंगड़ा तथा मंदगामी भी तीव्र गति वाला बन जाता है। शरीर के निम्नस्थ और ऊर्ध्वस्थ वातदोषों में तथा मन्यास्तंभ, हनुस्तंभ (जबड़े की जकड़न), गलग्रह, दन्तग्रह नामक वायुविकार में अथवा जिनका एकांग सूख गया हो, लड़खड़ाते हुए चलते हों, जो क्षीणवीर्य तथा दुर्बलेंद्रिय हों, ज्वर से कृशकाय, जो कान से कम सुनते हों, जिनकी जीभ स्तंभित हो गयी हो, मंदबुद्धि वाले व्यक्तियों में अथवा जिन स्त्रियों को अल्प संताने हों, जो गर्भधारण में अक्षम हों, जिनके अण्डकोष वायुग्रस्त हों तथा आँते बढ़ गयी हों उनके लिए यह तैल परम लाभदायक है। इसी कारण इसे 'नारायण तैल' कहा जाता है।

महानारायण तैल का प्रयोग व लाभ

शतावरी, सरिवन, मूषाकर्णी, कचूर, खिरेंटी, रेंड़ की जड़, कटेरी, कंटकारी तथा पूतिकरंज की जड़, गवेधुका और कटसरैया की जड़—इन्हें १०-१० पल लेकर एक द्रोण जल में आग पर पकावें।

चौथाई भाग शेष रहने पर उसे छानकर उसमें पुनर्नवा, वच, देवदारु, सौंफ, चंदन, अगरु, पत्थरफूल, तगर, कूठ, इलायची, मांसी, काकोली, खिरेंटी, असगंध, सेंधा नमक, और रास्ना।

इनको १-१ पल लेकर पीस डालें और मिला दें। अब उसमें गाय और बकरी के दूध २-२ प्रस्थ तथा शतावरी का रस और तैल भी १-१ प्रस्थ डालकर पका लें।

इस परिपक्व तैल के प्रयोग से सभी प्रकार के वातरोग नष्ट हो जाते हैं। यहाँ तक कि इससे वातग्रस्त हाथी-घोड़े भी रोगमुक्त हो जाते हैं।

इसके पान करने से मानव दीर्घजीवी होता है। गर्भधारण कराने में यह इतना समर्थ है कि खच्चरी भी गर्भधारण कर सकती है तो मानवी नारियों की बात ही क्या है?

इसके द्वारा **हृत्शूल**, **पार्श्वशूल**, **अर्धांगवात**, **कामला**, **पाण्डु**, **वातरक्त**, **जबड़े की जकड़न** तथा **पथरी** रोग का निवारण होता है। इस वातनाशक शुभकारी तैल का वर्णन भगवान विष्णु ने किया था। अतः इसका नाम भी नारायण तैल से अभिहित किया गया।

अश्वगन्धादि तैल का प्रयोग व लाभ

एक द्रोण जल में १०० पल असगंध को डालकर आग पर पकावें। पककर चौथाई भाग शेष रहने पर उसे छान लें। अब उसमें चौगुना दूध मिलाकर तैल को भी पकावें।

पाक करते समय ही इसमें कमलनाल, कमलकंद, कमलकेशर, मालती पुष्प, हाऊबेर, मुलेठी, सारिवा, कमल, केशर, मेदा, पुनर्नवा, मुनक्का, मंजीठ, कटेरी, कंटकारी, इलायची, एलुवा (मुसव्वर), त्रिफला, मोथा, चंदन और कमलगट्टा। इनका कल्क बना मिला दें और पकावें।

इस प्रकार के तैल परिपाक के फलस्वरूप यह रक्तवात, रक्तपित्त तथा कोढ़ रोग को मिटाकर शारीरिक पुष्टि प्रदान करता और मांस का वर्धन करता है। यह तैल धातुविकार, योनिदोष, व्रणदोष तथा नपुंसकता का नाशक होता है। इस प्रकार की फलोपलब्धि के निमित्त इससे पान, अभ्यंग, नस्य तथा बस्तिकर्म किये जाने चाहिए।

विविध माषतैल बनाने की विधि

यहाँ कई प्रकार के माषतैल (उड़द का तैल) निर्माण की विधियाँ दी गयी हैं जो इस प्रकार से हैं—

१. उड़द, क्रौंच, मुलेठी, अण्डी, रास्ना, सौंफ और लवण (सेंधा नमक)—इन सब को पीसकर कल्क बना उड़द तथा खिरेंटी के चौगुने क्वाथ में तैल का पाक करें। यह तैल अर्धांगवात (पक्षाघात) को नष्ट करता है।

(२) पहले ४ प्रस्थ जल में १ प्रस्थ उड़द डालकर पका लें। चौथाई रस शेष रहने पर उसमें चौगुना दूध और १ प्रस्थ तिलतैल भी मिला दें। इसके साथ ही पूर्वकथित जीवनीयगण की अष्ट औषधियाँ—सौंफ, सेंधा नमक, रास्ना, क्रौंच, मुलेठी, खिरेंटी, त्रिकटु तथा गोखरू के कल्क डालकर अच्छी प्रकार से पकावें।

इस तैल के प्रयोग से अर्धांगवात, अर्दितवात (लकवा), कर्णशूल, बधिरता, त्रिदोषज तिमिरांध रोग, हस्त-कम्पन, शिर:कम्पन, विसूचिका, अवबाहुकवात कलाय खंजवात (नाभि के नीचे होने वाल कंपन) आदि सभी दूर हो जाते हैं। इनके प्रयोगकाल में पान, अभ्यंग और अनुवासन कर्म से उत्तम लाभ मिलता है। इस श्रेष्ठ तैल के प्रयोग से मूर्धजन्तु (निनाई) नामक रोग भी दूर हो जाता है।

(३) उड़द, अलसी (तीसी), जौ, पीली कटसरैया, कंटकारी, गोखरू, टेटुक, बालछड़ (छड़ीला), क्रौंच, सुगंधवाला—इनका कल्क बना सिद्ध किये गये बिनौला (कपास बीज), शणबीज (सनई का बीज), कुलथी और कोल के काढ़े में अथवा बकरी के मांसरस में सोंठ, रेंड़ की जड़, पुनर्नवा, पसरन (प्रसारिणी लता), रास्ना, खिरेंटी, गुरुच तथा त्रिकटु।

इनके समान भाग में पकाया हुआ तैल अवबाहुकवात को नाश करता है। यदि इसका प्रयोग नस्यकर्म, बस्तिकर्म तथा परिषेचन की रीति से किया जाय तो यह

तेल अंगशोथ, अपतानकवात, लकवा, आक्षेपकवात, भुजकम्पवात, शिर:कम्पवात तथा कमर, जाँघ और घुटने के लिए रुग्णकारी वातों का भी उन्मूलन कर डालता है।

बृहन्माष तैल का योग व लाभ

उड़द, खिरेंटी, रास्ना, दशमूल, जौ, कोल, कुलथी। इनके अलग-अलग क्वाथों में तथा बकरी के मांसरस में १ प्रस्थ तिलतैल तथा चौगुना दूध डालकर, रास्ना, क्रौंच, सेंधा नमक, सौंफ, अण्डी की जड़, मोथा, जीवनीयागण के पदार्थ, खिरेंटी और त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमरिच)।

इन्हें २-२ तोले परिमाण में लेकर पकावें। इसे पक जाने पर बस्तिकर्म, पान और अभ्यंग विधि से प्रयुक्त किये जाने पर हाथों का काँपना, शिर का काँपना, बाहुशोष, अवबाहुक, बहिरापन, कर्णपीड़ा, कर्णनाद, विसूचिका, लकवा, गृध्रसीवात (सायेटिका) तथा अपतानकवात में लाभप्रद होता है। यह तैल मुख्यतया मुख्य जन्तु नामक रोग के लिए गुणकारी होता है।

महामाषतैल का योग व लाभ

उड़द २ प्रस्थ, दशमूल ५१ पल और बकरे का मांस ३० पल—इन तीनों को एक द्रोण जल में पकायें। पककर चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ तिलतैल और ४ प्रस्थ दूध भी मिला लें। इसके साथ ही सौंफ, मंजीठ, जीवनीयगण के पदार्थ, खिरेंटी, त्रिकटु, कालावासाऊँ, चव्य, चित्रक, हर्रे, अण्डी, आँवला, कौंछ, असगंध, वचा, कूठ, रास्ना, गोखरू और देवदारु—इन सबको अक्ष परिमाण में लेकर अलग-अलग अथवा एकीकृत किये गये कल्क के साथ पका लें।

केतकीतैल का लाभ

केवड़े का मूल, खिरेंटी और सहदेई के अधिक रस में पकाया गया यह तैल कांजी में सिद्ध करने पर अस्थिगत (हड्डी में प्रविष्ट वायु) वात का उन्मूलक बन जाता है।

अश्वगन्धादितैल का लाभ

असगंध, खिरेंटी, अतीस और दशमूल—इनके रस तथा कल्क में पकाया हुआ यह तैल गृध्रसीवात में अभ्यंग, पान और बस्तिकर्म के द्वारा प्रयुक्त होने पर लाभप्रद सिद्ध होता है।

रसोनतैल का लाभ

लहसुन के कल्क-रस में तैल को पकाकर वातग्रस्त रोगी द्वारा पान किये जाने पर दुर्दमनीय वातरोग का भी विनष्टीकरण हो जाता है।

प्रसारिणीतैल का लाभ

प्रसारिणी नाम्नी लता १०० पल, असगंध १०० पल तथा दशमूल १००

पल। इन्हें पृथक्-पृथक् रूप से १ द्रोण जल के साथ पका लेवें। चौथाई भाग शेष रहने पर,।

उसमें ४ प्रस्थ तैल, उससे चौगुना दूध और ४ प्रस्थ दही और उससे दुगुनी कांजी के साथ, २-२ पल गठिवन, खार, पसरन की जड़, सेंधा नमक, मंजीठ, चीता और मुलेठी। पुनः १-१ पल परिमाण में जीवनीयगण के पदार्थ, ५ पल सोंठ और निशोथ डालकर भल्लातक (भिलावाँ) के साथ पका डालें। पककर तैयार हो जाने पर यह तैल पक्षाघात, संधिगतवात (आर्थ्राइटिस), शिरोगतवात तथा अस्थिगतवात को विनष्ट कर पौरुष, उत्साह, स्मरणशक्ति, बुद्धि, बल, वर्ण तथा क्षुधाग्नि का वर्धन करता है।

महाश्वगन्धादि तैल का लाभ

सुंदर भूमि में उगी हुई असगंध की जड़ १०० पल ओखली में कूटकर एक द्रोण जल में पका लें। तदनन्तर रस के चौथाई भाग रहने पर निकाल लें और उसमें बकरे का मांस २०० पल, घी १ प्रस्थ तथा घी से चौगुना गाय का दूध तथा वक्ष्यमाण द्रव्यों के २-२ तोले कल्क को उसमें मिला दें।

वक्ष्यमाण द्रव्य इस प्रकार कहे गये हैं, जैसे—वृद्धि, ऋद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, क्रौंच, ऋषभक, इलायची, मुलेठी, मुनक्का, मूसाकानी, जीवन्ती, मुगवन, खिरेंटी, बिदारीकंद, शतावर और असगंध।

इन सब वस्तुओं को मिलाने के पश्चात् घृत को अच्छी प्रकार से पकावें। पकने के बाद शीतल हो जाने पर उसमें ३२ तोले मधु और शक्कर मिलाकर किसी चिकने पात्र में रख दें। तत्पश्चात् इसे हथेली-भर की मात्रा में चाटकर यथेष्ट परिमाण में आहार ग्रहण करें।

इसके सेवन के परिमाणस्वरूप क्षीणकाय तथा क्षतक्षय रोगी, बालक तथा वृद्ध में होने वाला इंद्रिय-शैथिल्य, निस्तेजता आदि का निवारण होकर नीरोगता प्राप्त होती है।

इसके द्वारा सत्तरवर्षीय वृद्ध पुरुष अनेक रमणियों के साथ रमण करने पर भी धातुक्षीणता को प्राप्त नहीं होता।

इस घृत के प्रयोग से वन्ध्या नारी भी सन्तानोत्पत्ति में सक्षम हो जाती है। पूर्वकाल में अश्विनीकुमारों ने भी इस घृत को उत्तम वाजीकरण के रूप में स्वीकार किया है।

कुब्जप्रसारिणीतैल का लाभ

प्रसारिणी लता को १०० पल कूटकर एक द्रोण जल में पकावें। चौथाई

भाग शेष रह जाने पर उसमें ४ प्रस्थ तैल, दही तथा तैल से द्विगुणित मात्रा में दूध डालकर चित्रक, पिपरामूल, मुलेठी, सेंधा नमक, वचा, सौंफ, देवदारु, रास्ना, गजपीपर, प्रसारिणी की जड़ और मांसी भी मिला दें।

उक्त वस्तुओं के २-२ पल भाग को लेकर कल्क बना धीमी आँच पर पकावें। यह तैल-वात-कफनाशक होने के कारण वृद्धों के वात को भी दूर करता है। इसके साथ ही यह कुबड़ापन, निश्चेष्टता, लंगड़ापन, गृध्रसी, आक्षेपक, लकवा तथा जबड़ा, पीठ, शिर और गरदन की जकड़न में भी गुणकारी होता है।

प्रसारिणी लता को शरत्कालीन कोजागरी (आश्विनी पूर्णिमा) के पश्चात् पत्तोंसहित उत्पाटित कर लें। तदनन्तर कटसरैया १०० पल, शतावरी १०० पल, खिरेंटी १०० पल, क्रौंच १०० पल, असगंध १०० पल और केतकी १०० पल। इन्हें चौगुना जल डालकर पकावें। जब चौथाई भाग रह जाय तब इसमें ८ सेर तैल और मधु, मांसरस, चूक और ८ सेर दूध मिलाकर धीमी आग पर पकावें।

अब इसमें तगर, मैनफल, कूठ (कूड़ा), केशर, मोथा, दालचीनी, रास्ना, सेंधा नमक, पीपर, मांसी, मंजीठ, मुलेठा, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, सौंफ, नखी नामक द्रव्य, सोंठ, देवदारु काकोली, क्षीरकाकोली, वचा और भिलावाँ—इन सबको आधा-आधा पल पीसकर पहले से रखी हुई प्रसारिणी के साथ पाक करें।

यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि तैलपाक के समय यह तैल अधिक परिपक्व न हो और न ही अधपका रहे। उत्तम रीति से तैयार कर इसे किसी स्वच्छ पात्र में रख दें।

इस तैल के प्रयोग से कुब्जता, पंगुता, खर्वता (बौनापन), एकांग शुष्कता, अस्थि और संधिभग्नता, वातरक्त की दूषिता, वातवेदना से मानसिक उद्विग्नता तथा स्त्री-संसर्ग के फलस्वरूप शुक्र की कर्षिता आदि सभी रोगों में यह तैल वाजीकरण का कार्य करता है।

इसका उपयोग बस्ति, पान, अभ्यंग और भोजन के साथ करना लाभप्रद सिद्ध होता है। इसका नाम सप्तशतिकाप्रसारिणी तैल के नाम से विख्यात है।

महाप्रसारिणी तैल का लाभ

मूल, टहनी और पत्तोंसहित प्रसारिणी ३०० पल, पीली कटसरैया २०० पल, रेंड़ की जड़ २०० पल, रास्ना और सैनी १०० पल, देवदारु और केतकी १००-१०० पल। इनको १०० घट (१०० द्रोण) जल में काढ़ा बनाकर चौथाई रहने पर उसमें १-१ घट तैल और कांजी तथा ४ प्रस्थ दही का पानी मिला दें।

तत्पश्चात् शुक्त नामक अन्य प्रकार की कांजी, बकरे का मांस, गन्ने का रस और गाय का दूध भी ४-४ प्रस्थ परिमाण से मिलावें।

तदनन्तर इस मिश्रित तैल को असबरग, काकड़ासिंघी, अष्टवर्ग के द्रव्य (जीवक, ऋषभक आदि), मंजीठ, काकोली, काकजंघा, गोखरू, छोटी इलायची, कपूर, गुग्गुलु, धूपसरल, केशर, नखी नामक द्रव्य, काला चंदन, नीलकमल, कमलगट्टा, हलदी, शीतलचीनी, गठिवन, नागकेशर, खस, तज, सुपारी कटुकी, जायफल, सफेद चंदन, देवदारु, लाल चंदन, वचा, पत्थरफूल, सेंधा नमक, शिलारस, नागरमोथा, पसरन की जड़, नली (मूँगे के आकार वाली सुगंधित वस्तु), श्वेत विषखपरा, कपूर, हलदी, विशुद्ध कस्तूरी, दशमूल, केतकी की जड़, तगर, गठिवन, असगंध, सुगंधवाला, रेणुका, रसौत, सेमल की जड़, कायफल, अगरु, प्रियंगु, सौंफ, कूठ, भिलावाँ, त्रिफला, कमलकेशर, कालीशर, लौंग और त्रिकटु— इनके ३-३ पल के साथ किसी बड़े पात्र में भरकर मंद अग्नि पर पकावें।

पक जाने पर इसका प्रयोग पान, अभ्यंग, बस्तिकर्म तथा नस्य के द्वारा करें। इसके उपयोग से सर्वांगवात, एकांगवात, नेत्र, संधिस्थल, हड्डी और मज्जागत वात का विनाश होता है।

यह **पित्त-कफोत्पन्न** रोगों को दूर कर धातु का पुष्टिकरण करता, यौवन को चिरस्थायी रखता, बूढ़े को युवा बनाता तथा वन्ध्या नारियों में गर्भधारण की क्षमता उत्पन्न करता है।

इस तैल के पान करने से गर्भिणी नारी धीर-वीर स्वस्थ तथा दीर्घजीवी पुत्र को जन्म देती है। इतना ही नहीं, बल्कि इससे सूखे वृक्ष भी हरे-भरे हो जाते हैं।

कस्तूरी की पहचान

जिस कस्तूरी में केतकी पुष्प की-सी गंध, हरताल के समान वर्ण, स्वाद में तीखी और कडुई, भार में हलकी, मसलने पर चिकनी, आग में डालने पर 'छितिछम' शब्द करने वाली, जलने पर चमड़े की-सी गन्ध देने वाली हो वही कस्तूरी मृगनाभि से निकलने वाली और उत्तम मानी जाती है। ऐसी कस्तूरी राजाओं के उपभोग की वस्तु होती है।

किन्तु इसके विपरीत हथेली में जल लेकर उसमें कस्तूरी मिला दो घड़ी तक अवलोकन करने पर यदि वह लालिमायुक्त पीले रंग की दीख पड़े तो वह बनावटी और नकली कस्तूरी होती है।

वातरक्त का उपचार

प्रकुपित वात का रक्त में संचरण होना ही वातरक्त कहा जाता है। यह

वातरक्त उत्तान और गम्भीर नाम से दो प्रकार का होता है। चर्म और मांस में प्रविष्ट हुआ वायु उत्तान तथा अन्तरायाम में संस्थित रहने वाला वायु गम्भीर कहा जाता है। उत्तान नामक वातरक्त में लेप, अभ्यंग, परिसेक तथा स्नानादि कर्म करने चाहिए।

किन्तु गम्भीर नामक वातरक्त विरेचन, आस्थापन, बस्ति तथा स्नेहपान के द्वारा चिकित्सनीय माना जाता है।

वक्ष्यमाण पिण्डतैलादि से अभ्यंग, तिक्तादि घृत का सेवन, सेंक, लेप तथा संयन्त्रादि द्वारा रक्त निष्कासन और शोधनकर्म द्विविध वातरक्तों में लाभकारी होता है।

विशेषतया गंभीर नामक वातरक्त हेतु शास्त्रोक्त घृतपान, शोधनकर्म, शिरोभेदन, पथ्य एवं हलका भोजन शास्त्रवेत्ताओं ने उचित कहा है।

गेहूँ का आटा और बकरी का दूध या बकरी के दूध में रेंड़ के बीजों का कल्क मिलाकर लेपन करना गुणकारी है।

अथवा सौ बार का धोया हुआ घृत और केवल बकरी के दूध से सेंकाई करना उत्तम है। गुरुच, सोंठ और धनिया—इन्हें ३-३ कर्ष लेकर पाचन सिद्ध करें।

इसके प्रयोग से रक्तवात, आमवात तथा सभी प्रकार के कुष्ठरोग निर्मूल हो जाते हैं।

गूगुल के साथ गुरुच का काढ़ा पीने से वातरक्त नष्ट होता है। अड़ूसा, गुरुच और अमलतास का काढ़ा अण्डी के तैल के साथ पान करना सम्पूर्ण शरीरोत्पन्न वातरक्त में लाभदायक होता है।

पुराना गुड़ के साथ सोंठ और हर्रें खाने के अनन्तर गुरुच का काढ़ा पान करने से प्रचण्ड वातरक्त भी दूर हो जाता है।

गुरुच का प्रयोग घी के साथ करना वातरोग, गुड़ के साथ अफरा, शक्कर के साथ पित्त, शहद के साथ कफ, अण्डी के तेल के साथ भीषण वातरक्त एवं सोंठ के संग करने पर आमवात रोग का शमन होता है।

गिलोय (गुरुच) कफ-वातनाशक, कफयुक्त मेदशोषक, वात-रक्तशामक, कच्छू नामक कुष्ठनिवारक तथा विसर्प (कुष्ठ रोग का एक भेद) रोग विनाशक होता है।

अतएव इसके स्वरस, कल्क, चूर्ण या क्वाथ का सेवन दीर्घकाल तक किये जाने से वातरक्त का शमन होता है।

दशमूल के साथ पकाया हुआ दूध पीने से तत्क्षण ही शूल का नाश हो जाता है। वाताधिक्य शूल में गुनगुना गरम घी से सेंक करने से शूल दूर होता है। परवल, कटुकी, भीरु (गन्ने की एक प्रजाति विशेष), त्रिफला और गुरुच। इनके साथ पकाया गया क्वाथ जलनयुक्त वातरक्त में लाभकारी होता है।

कफाधिक्य वाले वातरक्त में आँवला, मोथा और हलदी का काढ़ा पीना अथवा तालमखाना तथा गिलोय के क्वाथ को पीपर के साथ पान करना लाभप्रद है।

गुड़घृत नामक योग को कफरक्तशामक, कच्छू नामक कुष्ठरोग निवारक विसर्प तथा वातरक्त शांतिकारक और रुचिकारक कहा गया है।

समस्त प्रकार के वातरक्त में गुड़ के साथ हरड़ या गिलोय का क्वाथ अथवा छोटी पीपर के साथ अण्डी का प्रयोग सावधानीपूर्वक करते रहना चाहिए।

लांगली (कलिहारी) के कन्द को उत्पाटित कर त्रिफला, मंडूर और त्रिकटु के साथ मिलाकर लाल सहिजन और गिलोय या बिजौरा नीबू के रस में घोंटकर त्रिफला के रस में भिंगो दें।

तत्पश्चात् १-१ तोले की मात्रा में गोली बना दही के पानी में घोलकर पान करें। इसके सेवन से भीषण बिवाई रोग (पैर की एड़ियों का फटना) तथा सम्पूर्ण शरीर में विस्फोटस्वरूप प्रसारित होने वाले असाध्य वातरक्त का निर्मूलन होता है।

नवकार्षिक का लाभ

त्रिफला, नीम, मंजीठ, वचा, कटुकी, गुरुच और दारुहलदी। इन्हें १-१ कर्ष की मात्रा में लेकर पकाया गया कषाय वातरक्त, कुष्ठ, खुजली, रक्तविकार के कारण निकलने वाले शरीर पर चकते तथा गम्भीर कापालिक नामक कोढ़ का पान करने मात्र से ही अपकर्षण करता है। क्वाथ निर्माण हेतु द्रव्यसमूहों से अठगुना जल डालकर पकाना चाहिए।

गुडूची घृत का लाभ

गुडूची (गुरुच) के क्वाथ या कल्क में समान भाग घृत मिलाकर पाक करना आवश्यक है। यह घृत प्रदूषित रक्त, कुष्ठ और कठिन वायु का निवारक होता है।

सहस्रशतपाक तैल का लाभ

खिरेंटी के क्वाथ या कल्क में बराबर-बराबर तैल और दूध मिलाकर एक हजार या एक सौ बार पका लें। इस तैल से वातरक्त तथा वातरोग नष्ट होते हैं। साथ ही, यह एक श्रेष्ठ रसायनस्वरूप, इंद्रियों के लिए प्रसन्नताकारक, धातुवर्धक, स्वरसाधक, शुक्रदोष तथा रक्तदोष उन्मूलक है। किसी-किसी के मतानुसार इस तैल को केवल दश बार ही पकाना उपयुक्त माना गया है।

पिण्ड तैल का लाभ

सरिवन, पियासाल, मंजीठ और मुलेठी—इनके क्वाथों के साथ दूध डालकर पकाया गया पिण्ड नामक तैल वातरक्त में प्रयोक्तव्य है।

नागबलादि तैल का लाभ

एक सौ पल शुद्ध नागबला (गंगेरन) को एक द्रोण जल में पकावें। पकने

पर जब चौथाई रस शेष रह जाय तभी उसमें ४ प्रस्थ तैल और दूध को मिला दें। तदनन्तर तैल के साथ तगर और मुलेठी को ५-५ पल अलग-अलग लेकर पुनः पकावें। इस रीति से पक्वित यह तैल बस्तिकर्म के साथ प्रयुक्त किये जाने पर सात रात्रि में ही प्रबल वातरक्त का शमन संभव कर देता है।

पिण्ड तैल का लाभ

चार प्रस्थ कांजी में १-१ प्रस्थ तैल और राल के साथ अधिक मात्रा में जल मिलाकर करछुल से घोंटते हुए पका लें। पकने के पश्चात् इस तैल से ज्वर, शारीरिक जलन और वेदना दूर होती है। इसी तैल में मोम, मंजीठ, राल और शालपर्णी (सरिवन) मिला देने से यह एक अलग प्रकार का तैल निर्मित हो जाता हैं। इस तैल के द्वारा अभ्यंग करने पर वातरक्त रोग का विनाश होता है।

शतावरीघृत का लाभ

शतावरी के चौगुने कल्क और रस के साथ समान भाग में घृत तथा दूध मिलाकर पकावें। पकने के अनन्तर यह तैल वातरक्त को दूर करने वाला हो जाता है।

योगसारामृत का लाभ

जंगली भैंसे की आँख के आंतरिक अंश के सदृश चमकीला गूगुल और त्रिफला २-२ सेर, गिलोय ३२ पल। इन्हें ३२ सेर जल में करछुल से चलाते हुए आग पर पकावें। आधा भाग जल जाने पर नीचे उतार कर कपड़े से छानकर उसे पुनः पकावें। पकने के पश्चात् उसके ओले के समान श्वेत होकर गाढ़ा हो जाने पर द्रव्यसिद्धि हेतु वक्ष्यमाण चूर्ण को मिला दें।

वक्ष्यमाण चूर्ण इस प्रकार से है—शतावरी, गंगेरन, विधायरा, क्रौंच, विषखपरा, गुरुच, पीपर, असगंध और गोखरू। इन सब को १०-१० पल परिमाण में लेकर चूर्णित कर लें। इस चूर्ण में आधा शक्कर डालकर हाथों से खूब मर्दन कर लें। तदनन्तर इस चूर्ण में २ प्रस्थ मधु मिलाकर किसी पात्र में भर दें। इसके साथ ही उसमें १ प्रस्थ घी और १ प्रस्थ त्रिसुगंधि द्रव्य (इलायची, दालचीनी और तेजपात) का भी मिश्रण कर दें।

इस योगसारामृत का सेवन पथ्याहार ग्रहण करने के पश्चात् अग्निबलानुसार करना चाहिए। उक्त योग के प्रयोग से वात, पित्त, क्षय, कुष्ठ, पित्तोत्पन्न खाँसी, त्रिदोषज रोगों से मनुष्य रहित हो जाता है। कुछ ही दिनों के सेवनोपरान्त यह वलीपलित रोग (असमय में ही केशों की श्वेतता तथा चमड़े की सिकुड़न) से मुक्ति दिलाकर मानव को शक्तिशाली बना देता है। इतना ही नहीं, बल्कि यह योग दैहिक लक्ष्मी और कान्तिविवर्धक भी होता है।

वातरक्त रोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह दिन में शयन, अग्निसेवन, व्यायाम, स्त्रीसंसर्ग, कटु, भारी, विलम्ब से पचने वाला तथा नमकीन पदार्थों का उपयोग न करे।

महामञ्जिष्ठादि का लाभ

मंजिष्ठा, कूठ, गुरुच, वनवचा, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, मुनक्का, नीम, पटोलपत्र (परवल का पत्ता), कटुकी, भारंगी, वायविडंग (भाभीरंग), चीता, मरोड़फली, देवदारु, कैथ, कमल, हर्रें, पूतिकरंज, अखरोट, खैर, त्रिफला, चिरायता, बकायन नामक नीम, जीवक, रक्तचंदन, प्रियंगु, अमलतास, श्वेतचंदन, बरुना, पाठा, सौंफ, जवाखार, सज्जीखार, वासा (अड़ूसा) पित्तपापड़ा, सारिवा, अतीस, धमासा, इन्द्रायण और रसोत। उक्त वस्तुओं को मंजिष्ठादिगण कहा जाता है।

इनके द्वारा निर्मित कषाय से सभी प्रकार के चर्मरोग (छीपी आदि) तथा अट्ठारह प्रकार के कुष्ठ अल्पावधि में निर्मूल हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह प्रसुप्त (दबा हुआ) वातरक्त, विद्रधि, प्रमेह तथा सम्पूर्ण रक्तविकारों को दूर करने में सहायक होता है।

ऊरुस्तम्भ रोग का उपचार

प्रदूषित वायु जब जाँघों को जकड़कर भारी बना चलने-फिरने में असमर्थ कर देता है तब उसे ऊरुस्तंभ के नाम से जाना जाता है। इस वातरोग में स्नेहन और संशोधन कर्म से किसी तरह का लाभ नहीं होता। इसमें कफ, आमवात तथा मेदाधिक्य होने के फलस्वरूप इनके विनाशक औषधों का प्रयोग करना लाभप्रद सिद्ध होता है।

अथवा रूक्ष पदार्थों का सेवन करना उचित है, जैसे—जौ, श्यामाक और मडुआ (एक प्रकार का लाल धान, कोंदों नामक धान) आदि। ये पदार्थ किंचित् तैल या जल में पकाये हुए नमकविहीन शाकों के साथ, जल में पकाये हुए घृतरहित जांगल प्रदेशीय मृगमांसो के साथ मधु तथा अरिष्टपानक व्यक्तियों के लिए गुणकारी कहे गये हैं।

आमवात निवारण के लिए वत्सकादिगण, हरिद्रादिगण तथा वचादिगण के औषध अथवा पूर्वकथित षट्चरण नामक योग के साथ सेंधा नमक मिलाकर गुनगुने जल के साथ उपयोग करें। अथवा मेदा, चव्य, कटुकी, पीपर और मोथा को शहद के साथ चाटें।

अथवा चव्य, हर्रें, चीता और देवदारु के कल्क को मधु के साथ, पर्वतोत्पन्न गूगुल और हरड़ को गोमूत्र के संग या त्रिकटु, चीता, मोथा, त्रिफला और वायविडंग—

इनके साथ समान भाग में गूगुल मिलाकर नित्यप्रति सेवन करें। इसके द्वारा मेद, कफ तथा आमवातोत्पन्न रोगों का उन्मूलन होता है।

इस प्रकार की विधि को अपनाने, खार तथा गोमूत्रमिश्रित स्वेदन, सेंक और उबटनों से भी कफाक्रान्त वायु मेदसहित शमित हो जाता हैं। रूखे उपचारों से निद्रानाश का वेदनासूचक वायु का प्रकोप रहने पर स्नेहन और स्वेदन कर्म (पसीना लाना) के द्वारा वायु को अनुकूल बनाना चाहिए।

गुरुच १ प्रस्थ, गूगुल आधा प्रस्थ, हरड़ और बहेड़ा आधा-आधा पल लेकर अच्छी प्रकार से कूटकर ३२ सेर जल में पकावें। चौथाई भाग शेष रहने पर नीचे उतारकर उसका रस निकाल लें। पुनः उसे तब तक पकावें जब तक वह गाढ़ा न हो जाय। पक जाने पर दन्ती, त्रिकटु, वायविडंग, गुरुच, त्रिफला और दालचीनी—इनके चूर्ण को अथवा केवल त्रिफला के चूर्ण को ही २ कर्ष परिमाण में मिलाकर प्रतिदिन आधा-आधा पल की मात्रा में या अग्निबलानुसार सेवन करें।

पुराकाल में अश्विनीकुमारों द्वारा, निर्मित अमृतगुग्गुलु वातरक्त, कोढ़, बवासीर, मंदाग्नि, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर (गुदाद्वार का एक जटिल रोग) तथा वातोत्पन्न सूजन में लाभदायक होता है।

अमृतागुग्गुलु निर्माण व लाभ

गिलोय २ प्रस्थ, गूगुल १ प्रस्थ, हरड़, बहेड़ा, आँवला और पुनर्नवा १-१ प्रस्थ। इन सबको एकत्रित कूटकर ३२ सेर जल में पका लें। चौथाई भाग रहने पर उसे तब तक दोबारा पकाते रहे जब तक वह पककर गाढ़ा न हो जाय।

तत्पश्चात् उसमें दन्ती, चित्रकमूल, पीपर, सोंठ, त्रिफला, गिलोय, दालचीनी और वायविडंग—इन्हें आधा-आधा पल तथा निशोथ एक कर्ष लेकर चूर्ण बना उसे अल्प उष्ण क्वाथ में मिला दें। इस प्रकार यह अमृतगुग्गुलु तैयार हो जाता है।

यह मुख्यतया अम्लपित्त के रोगी में विशेष प्रभावशाली है। इसके अतिरिक्त यह वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, मन्दाग्नि, दुष्टप्रण (जो सहज में ठीक न हो सके), प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाड़ीवात, आढ्यवात (ऊरुस्तम्भ), शोथ तथा अन्यान्य प्रकार के वातरोगों का नाश करता है। इसे पूर्वकाल में देववैद्य अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था।

इस रोग में सुयोग्य चिकित्सक को वातविनाशक प्रयोग रोगी द्वारा कराये जाने चाहिए। अर्थात् रोगी को समय-समय पर व्यायाम, नदी के शीतल जल में तैराना, स्वच्छ सरोवर में डुबकी लगाना, उन्नत तथा परिपुष्ट स्तनवाली प्रौढ़ा नारियों का संशीलन, आकर्षक स्थानों में परिभ्रमण आदि कराना।

इस प्रकार के प्रयोग द्वारा कफ और मेद के विनाश होने पर स्नेहनकर्म भी कराना उचित है।

शिलाजीत, गूगुल, पीपर और सोंठ। इनके चूर्ण को दशमूल के रस या गोमूत्र के साथ पान करें।

अथवा भिलावाँ, गुरुच, सोंठ, देवदारु, हरड़ और विषखपरा। इन सबको दशमूल के साथ प्रयोग करने से जाँघों की जकड़न समाप्त हो जाती है।

छोटी पीपर, पिपरामूल और गिलोय के फल का कल्क बना मधु के साथ सेवन करना ऊरुस्तंभ में लाभकारी होता है।

अथवा त्रिफला, चव्य, त्रिकटु और मेथी का चूर्ण बनाकर शहद के साथ चाटना चाहिए। गोमूत्र के संग गूगुल का पान करना ऊरुस्तंभ में गुणकारक होता है।

कटुकी और त्रिफला का चूर्ण मधु के साथ चाटने से भी उत्तम फल मिलता है। अथवा षट्चरण द्रव्यसमूहों का चूर्ण गुनगुना जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है। छोटी पीपर या अण्डी के तेल के साथ मधु अथवा गुड़ के साथ सेवन करें। ऊरुस्तंभ में शुण्डिया नामक शाक का अरिष्ट भी लाभकारी सिद्ध होता है।

अष्टषट्चर तैल का लाभ

कालीमरिच, छोटीपीपर, पिपरामूल तथा सोंठ ८-८ पल। इनमें १-१ प्रस्थ तैल और दही मिलाकर पकाने से यह षट्चर तैल बन जाता है। इसके सेवन से गृध्रसीवात तथा ऊरुस्तम्भ में लाभ मिलता है। तैल एवं दही के संयोग से निर्मित होने के फलस्वरूप इसे 'षट्चरतैल' कहा जाता है।

आमवात का उपचार

आमवात (प्रकुपित वायु का त्रिकास्थि तथा संधिस्थल में प्रवेश करके शरीर को स्तंभित करना) के रोगी के लिए वंधन, स्वेदन (पसीना निकालना), तिक्त, दीपन तथा कटु पदार्थ का सेवन, विरेचन, स्नेहन एवं बस्तिकर्म उपयोगी सिद्ध होता है।

रास्नादिक्वाथ का प्रयोग व लाभ

रास्ना, रेंड़ की जड़, शतावरी, कटसरैया, जवासा, वासा (अड़ूसा), गुरुच, देवदारु, अतीस, त्रिफला, मोथा, कचूर और सोंठ। इनके मिश्रण से पकाया हुआ कषाय अण्डी के तैल के साथ प्रयुक्त किये जाने पर आमवात शूलवात, कटिवात, जाँघ, त्रिकसंधिस्थल, पसली, पीठ, पेट तथा वक्षःस्थल के वात नष्ट हो जाते हैं। अथवा सोंठ, कचूर, अजवायन, हरड़, देवदारु, अतीस और गुरुच। इनके द्वारा निर्मित कषाय का पान तथा रूखा आहार भी आमवात में पाचन का कार्य निष्पन्न करता है।

कचूर और सोंठ का कल्क पुनर्नवा (गदहपूरना) के काढ़ा में मिलाकर सात दिनों तक पीने से आमवात समाप्त हो जाता है। अथवा दशमूल, गुरुच, रेंड़ की जड़, रास्ना, सोंठ और देवदारु। इनके संमिश्रण से पकाया हुआ क्वाथ अण्डी के तेल के साथ सेवन करना आमवात तथा गुरुवात को मिटा देता है।

दशमूल के कषाय या शुण्ठीजल के साथ अण्डी के तेल का पान करने से कुक्षि (कोख), बस्ति तथा कटिशूल का निवारण होता है। अथवा रास्ना, गिलोय, रेंड़ की जड़, देवदारु और सोंठ—इनके कषाय-पान से आमवात, संधिवात, अस्थिगत, मज्जागत तथा सर्वांगवात का उन्मूलन होता है।

रास्ना, गुरुच, अमलतास, देवदारु, गोखरू, एरंडमूल और विषखपरा—इनका क्वाथ बना सोंठ चूर्ण के साथ पीने से जाँघ, पीठ, त्रिकसंधि और पार्श्वशूल नष्ट होता है। अथवा सोंठ और गोखरू का पाचक क्वाथ प्रतिदिन पान करने से आमवात तथा कमर की पीड़ा से छुटकारा मिलता है।

उक्त क्वाथों में जवाखार का समायोजन कर देने से मूत्रकृच्छ्र (जलनयुक्त पेशाब का कष्ट के साथ थोड़ा-थोड़ा आना) रोग का निर्मूलन होता है। आमवात, सूजन तथा कटिशूल में सोंठ और गुरुच का काढ़ा बना छोटी पीपर का चूर्ण डालकर पीना उचित है।

हरड़ को अण्डीतैल के साथ प्रतिदिन सेवन करना आमवात तथा गृध्रसीवात में लाभदायक सिद्ध होता है। सोंठ के चूर्ण को कांजी के साथ २ तोले की मात्रा में सेवन करने से आमवात तथा कफवात दूर होता है।

पंचकोल के चूर्ण को उष्ण जल के साथ पान करना अग्निमांद्य, शूल, गुल्म, प्लीहा (तिल्ली), आमवात, कफवात तथा अरुचिनाशक है। अथवा गिलोय, सोंठ, गोखरू, गोरखमुंडी और बरुना का चूर्ण दही के पानी या कांजी के साथ उपयोग करने से आमवात का विनष्टीकरण होता है।

वैश्वानरचूर्ण का लाभ

सैंधव और अजवायन २-२ भाग, अजमोदा ३ भाग, सोंठ ५ भाग और हरड़ १२ भाग। इन सबको एकीकृत करके बारीक चूर्ण बना कांजी, छाँछ, घी या गरम जल के साथ सेवन करने के परिणामस्वरूप आमवात, बस्तिगत रोग, प्लीहा, गठिया का शूल, बवासीर, अफरा, मलावरोध, औदरिक रोग तथा हाथ-पैर में होने वाले रोगों का निवारण होता है। इससे विपरीत वायु अपने स्वाभाविक अवस्था में आ जाता है।

अलम्बुषादि चूर्ण का लाभ

गोरखमुंडी, गोखरू, गुरुच, विधायरा, छोटी पीपर, त्रिवृता, मोथा, वरुणा,

पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ। इन सबका चूर्ण दही के पानी, कांजी, मट्ठा या मांसरस के साथ प्रयोग करने पर आमवात तथा संधिगत शोथ (जोड़ों की सूजन) का नाश हो जाता है।

सौंफ, वायविडंग, सेंधा नमक और कालीमरिच। इनके समान भाग का चूर्ण बनाकर दही के पानी के साथ उपयोग करना क्षुधाग्निवर्धक होता है। अथवा हींग, चव्य, सौवर्चल (सोंचर) नमक, सोंठ, पीपर, कालीजीरी और पुष्करमूल। इनकी मात्रा को क्रमश: बढ़ाकर चूर्ण बना लें। पूर्ववर्ती चूर्ण के समान यह भी आमवात में लाभप्रद सिद्ध होता है।

चित्रक, पिपरामूल, अजवायन, सौंफ, वायविडंग, अजमोदा, जीरा, देवदारु, चव्य, इलायची, सेंधा नमक, कूड़ा (कूठ), रास्ना, गोखरू, धनिया, त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, दालचीनी, खस नामक तृण, इन्द्रयव, तालीसपत्र और तेजपात। इनका चूर्ण बना लें। चूर्ण के बराबर गूगुल को घी में कूट-पीसकर चूर्णित कर लें। इसे भोजनोपरान्त सेवन करें।

इसका नाम योगराज गुग्गुलु है। यह अमृत सदृश गुणकारी होने से आमवात, आमोत्पन्न कृमिरोग, दुष्टव्रण, प्लीहा, मलद्वार, औदरिक रोग, अफरा, बवासीर आदि को दूर कर क्षुधाग्नि, बल तथा तेजस्विता लाता है। इसके साथ ही इससे संधिगत, मज्जागत वातरोग भी निर्मूल हो जाते हैं।

प्रकारान्तर से अलम्बुसादि चूर्ण प्रयोग

गोरखमुंडी, गोखरू, त्रिफला, सोंठ और गुरुच। इनकी मात्रा क्रमश: बढ़ाते हुए इनके समान भाग में श्यामा लेकर चूर्ण तैयार कर लें। इस चूर्ण को दही के पानी, मदिरा, मट्ठा, कांजी या जल के साथ पान करने से आमवात, सूजनयुक्त वातरक्त, त्रिकसंधि, जानुसंधि, ऊरुसंधि, अस्थिगत ज्वर एवं अरोचकता का निवारण होता है।

त्रिफला, अमलतास, गठिवन, कटुकी, रास्ना और गिलोय। इनका कषाय आमवात तथा शिर के कम्पन का उन्मूलक होता है।

अजमोदा, कालीमरिच, छोटीपीपर, वायविडंग, देवदारु, चीता, सौंफ, सेंधा नमक, पिपरीमूल—इन सबके ९-९ पल, सोंठ १० पल, विधायरा १० पल, हर्रें ५ पल—इनको एकीकृत करके चूर्ण बना लें।

तत्पश्चात् इस निर्मित चूर्ण के बराबर गुड़ मिलाकर वटी बना लें। इस वटी का सेवन गुनगुना जल के साथ किये जाने पर आमोत्पन्न कठिन रोग, विश्वा, विसर्प आदि दुष्ट रोग, गृध्रसीवात, कटिप्रदेश तथा बस्तिभाग में विकृति आने के कारण होने वाली फूटन, हड्डी तथा जाँघ की हड़फूटन, संधिस्थानों की सूजन तथा आमवातोत्पन्न

सभी प्रकार के रोग उसी प्रकार विनष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्य-रश्मियों से अंधकार का लोप हो जाता है।

शुण्ठीघृत का लाभ

सोंठ के चौगुने क्वाथ और कल्क के साथ १ प्रस्थ घी को पकावें। अथवा चौगुने जल के साथ सोंठ का कल्क और घी मिलाकर पकाना उचित है। यह शुंठीघृत वात-कफशामक, क्षुधाग्निवर्धक तथा आमवातोत्पन्न कटिपीड़ा का नाशक है।

गुडूचीघृत का लाभ

गुरुच के कषाय तथा सोंठ के कल्क के साथ धीमी आँच में पकाया गया घृत वातरक्तापहारक, आमवातादि वातसमूहों का निवारक, वातोत्पन्न कृमि तथा दुष्टव्रणों का संहारक, बवासीर और गुल्म रोगों का उन्मूलक कहा गया है।

हींग, त्रिकटु, चव्य और सेंधा नमक १-१ पल लेकर कल्क बना लें। पुनः इसमें कांजी ४ प्रस्थ और घी १ प्रस्थ डालकर आग पर पकावें। इस घृत के सेवन से औदरिक रोग, शूल, कब्जियत, आध्मान, आमवात, कटिग्रह, ग्रहणी तथा अग्निमांद्य दूर होता है।

इस घृतपाक की एक अन्य विधि इस प्रकार भी बतलायी गयी है कि इसे पौष्टिकता के लिए दूध के साथ, मलावरोध तथा मूत्रावरोध में दही के संग एवं अग्निवर्धन के निमित्त दही का पानी मिलाकर पकाना उचित है।

इस शुण्ठी घृतपाक में घी की मात्रा से चौगुना सौवीरकांजी तथा सोंठ का कल्क मिलाकर पकाया जाता है। यह क्षुधाग्निवर्धक तथा आमवातोपहारक होता है।

रास्ना, एरण्डमूल, वासा (अडूसा), दुरालभा, कचूर, देवदारु, खिरेंटी, मोथा, सोंठ, अतीस, हर्रे, गोखरू, अमलतास, जटामांसी, धनिया, पुनर्नवा, अतीस, गुरुच, छोटी पीपर, विधायरा, शतावरी, वचा, कटसरैया, चव्य, कटेरी और कंटकारी (भटकटैया)।

इन सब वस्तुओं को बराबर-बराबर तथा तिगुना रास्ना मिलाकर कषाय पकावें। आठवाँ भाग शेष रहने पर उसमें सोंठ और त्रिफला का चूर्ण या अलम्बुषादि अथवा अजमोदादि चूर्ण को दोषानुसार मिला दें।

पककर तैयार हो जाने पर यह महारास्नादि क्वाथ संधिगतवात, मज्जागत वात, सभी प्रकार का अफरा, शिरःकम्प, कुबड़ापन, विषमवात, अर्धांगवात, लकवा, जानुपीड़ा, जाँघपीड़ा, अस्थिवेदना, गृध्रसीवात, अवबाहुकवात, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, बवासीर, गुल्म, व्रणविसूची, विद्रधि (कुष्ठविशेष), क्रोष्टुशीर्षकसंज्ञक वात, अंत्रवृद्धि,

श्लीपद (पैर के पंजो पर होने वाला शोथ, फीलपाँव), यौनरोग, शुक्ररोग, लिंगगत वायु तथा स्त्रियों के वन्ध्यात्व दोष को मिटाता है।

गर्भधारण में अशक्त नारियों को गर्भधारण में सक्षम बनाता है। यह क्वाथ समस्त दोषों का पाचक तथा रोगों का संशोधक होता है। इसका निर्माण स्वयं प्रजापति के द्वारा हुआ है।

खण्डशुण्ठी का लाभ

सोंठ ८ पल, घी २० पल, जवाखार, सज्जीखार २ प्रस्थ, खाँड़ ५० पल। अब इसमें सौंफ, जीरा, त्रिकटु, इलायची, दालचीनी, तेजपात, अजवायन, कालीजीरी, वंशलोचन, मोथा, नागकेशर और सुगंधवाला—इन्हें १-१ पल डालकर पकावें। यह योग बलकारक, आयुवर्धक तथा वलीपलित रोग का नाशक होता है।

रसोनपिण्ड का लाभ

लहसुन १०० पल, काला तिल ४ प्रस्थ तथा हींग, त्रिकटु, सज्जीखार, जवाखार, पंचलवण, सौंफ, कूठ (कूड़ा), पिप्पलीमूल, चीता, अजमोदा, अजवायन और धनिया—इन्हें १-१ पल।

उक्त द्रव्यों का चूर्ण बनाकर किसी घी चुपड़े हुए चिकने पात्र में सोलह दिनों तक रख छोड़े। तत्पश्चात् उसमें एक मान तैल तथा आधा प्रस्थ कांजी मिलाकर २ तोले परिमाण में खाने के अनन्तर जल या मदिरापान करें। इसके प्रयोग से आमवात, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार, अग्निमांद्य, खाँसी, श्वास, भगन्दर, उन्माद, वातभीति एवं शूल रोग में लाभ होता है।

आमवाती को निषेध

आमवातग्रस्त व्यक्ति के लिए दही, मछली, गुड़, दूध, पोई नामक शाक, उड़द, पीठी तथा जलप्रदेशीय जीवों के मांस अग्राह्य होते हैं। ऐसे रोगी के लिए मलोत्पादक, भारी तथा मण्डयुक्त पदार्थ भी त्याज्य होते हैं।

सिंहनादगुग्गुलु का निर्माण व लाभ

मर्दित गुग्गुलु १ सेर, सरसों का तैल ८ पल तथा त्रिफला डेढ़ प्रस्थ लेकर १ द्रोण जल में पाक करें। चौथाई भाग रहने पर उसे छानकर पुनः पकावें। पकने के अनन्तर उसमें १-१ पल त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडंग तथा ४-४ तोले गुरुच, चीता, निशोथ, दन्ती, चव्य, जमीकन्द (सूरन), मानकन्द, शोधित पारद, गंधक और एक हजार कचनार की फलियों का चूर्ण बनाकर मिला दें। इसे प्रतिदिन २ माशे की मात्रा में खाकर जल का पान करें।

यह आमवात, शिरोवात, गठियावात, जानुवात, भगन्दर, ऊरुवात,

कटिग्रहवात, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, भग्नवात,कृमिरोग, औदरिक रोग, पाँच प्रकार (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, द्वन्द्वज, सान्निपातिक) की खाँसी, श्वास, क्षय, विषमज्वर (टायफाइड), प्लीहा (तापतिल्ली), श्लीपद (फीलपाँव) गुल्म, पाण्डु, कामला, अम्लपित्त (खाये हुए पदार्थ में उत्पन्न होने वाला खट्टापन) तथा मोटापा का नाश करता है। यह सिंहनाद गुग्गुलु कफरूप हाथी को भयभीत करने हेतु सिंहस्वरूप होता है।

विशेष—गूगुल की पाँच प्रजातियाँ मानी गयी हैं। जैसे—महिषाक्ष, महानील, कुमुद, पद्म तथा हिरण्य। महिषाक्ष गूगुल भ्रमर के समान, महानील स्वभावानुसार नीलवर्ण का, कुमुद गूगुल कुमुद की आभा के सदृश,पद्मनामक गूगुल माणिक्य रत्न के वर्णवाला और हिरण्य स्वर्णाभा के समान होता है। प्रयोग हेतु हिरण्यसंज्ञक गूगुल लेना ही उपयुक्त कहा गया है।

शूलरोग का उपचार

वात-पित्तादि विकारों के शमनार्थ बलाबल के अनुसार वमन, लंघन, स्वेदन, पाचन, तमाल (आबनूस वृक्ष) फल की वर्तिका, क्षार पदार्थ, चूर्ण तथा अनेक प्रकार की उपयोगी वटी शूलरोग में उत्तम फल देती है। वायु अत्यधिक वेगवान होता हैं अतः इसका नियंत्रण अविलम्ब कर लेना आवश्यक कहा गया है।

सर्वप्रथम शूलग्रस्त रोगी में स्वेदनकर्म (पसीना देना) ही लाभकारी सिद्ध होता है।

सेंधा नमक, त्रिकटु, लावा, हींग, काला नमक और दाडिमादिगण मिश्रित कुलथी का चिकना यूष पान करने से वातोत्पन्न शूल की पीड़ा तत्क्षण ही शान्त हो जाती है।

हिंगुपत्री (हींग), अतीस, त्रिकटु, वचा, काला नमक, हर्रै, खिरेंटी, गदहपूरना, अण्डी, कंटकारी, कटेरी, गोखरू, हींग और नमक। इनके चूर्ण का उपयोग गरम जल से करने पर शीघ्र ही वेदना नष्ट होती है।

हींग और पुष्करमूल का अथवा अण्डी की जड़ और इन्द्रयव का क्वाथ हींग तथा काला नमक के साथ पान करने से शीघ्र ही शूल का निवारण होता है।

अथवा अजवायन, हींग, सेंधा नमक, खार, काला नमक और हरड़—इन्हें मद्यमण्ड के साथ पीने से शूल का नाश होता है।

काला नमक, इमली, कालीजीरी तथा कालीमरिच—इन्हें क्रमशः बढ़ा-बढ़ाकर बिजौरा नीबू का रस पान करें तथा बाद में गोली बनाकर भी खावें तो वातशूल नष्ट होता है।

वातशूल की अत्यन्त बढ़ी हुयी अवस्था में हींग, अम्ल, छोटी पीपर,

आँवला, अजवायन, खार, हरड़ और सेंधा नमक। इनको समान भाग में चूर्ण बनाकर मद्यमांड में मिश्रित कर पान करें।

कालातिल के कल्क को उदर पर मर्दन करने से असहनीय वातशूल भी शान्त होता है।

अथवा कांजी मिला हुआ मैनफल के कल्क का नाभि पर लेपन करने से वातशूल का कष्ट दूर होता है।

अथवा जीवन्ती की जड़ का कल्क तैल में मिलाकर लेपित करने पर पसली का दर्द जाता रहता है।

पैत्तिकशूल में गुड़, दूध, चावल, शास्त्रकथित घृत का पान, विरेचन तथा जंगली मृगों के मांस भी प्रयोग में लाये जाते हैं।

पित्तज शूलपीड़ा में उपयुक्त रसों के साथ दूध मिलाकर या परवल और नीम के रस में गन्ने का रस का मिश्रण कर वमनार्थ देना उचित है। अथवा त्रिविध वायु-सम्पन्न बालुकातीर तथा शीतल जल में भिगोये हुए कांस्यपात्र भी उपयोगी माने जाते हैं।

इसमें शीतल उपचार चंदन से लेपित हथेली, मणि, चाँदी एवं जलपूरित ताम्रपात्रों को शूल के ऊपर स्थापित करना भी लाभप्रद होता है।

पैत्तिक शूल में पित्तापहारक विरेचन, खरगोश तथा लवा पक्षियों के मांसरस, धान की खीलें, मधुयुक्त तर्पण तथा मधुमिश्रित अन्य शीतलोपचार भी गुणकारी सिद्ध होते हैं।

पित्तोत्पन्न शूलसहित ज्वर, वमन, दाह और अत्यधिक प्यास लगने पर यवनिर्मित शीतल पेया में मधु डालकर पान करने से लाभ होता है।

आँवला, बिदारीकंद, त्रायमाण या दाख के रस में शक्कर मिलाकर पीना शीघ्र ही पित्तजशूल का नाशक होता है।

अथवा जलन एवं शूल के शान्त्यर्थ शतावरी के रस में मधु मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करना श्रेयस्कर है। शतावरी समस्त प्रकार के पित्तज रोगों में अत्यन्त लाभकारी कही गयी है।

शतावरी, मुलेठी, खिरेंटी, कुश और गोखरू—इनके शीतल जल में गुड़, मधु और शक्कर मिलाकर पीने से पित्तोत्पन्न दाह, शूल और वातज्वर का शीघ्र ही निवारण होता है।

अथवा त्रिफला, नीम, मुलेठी, कटुकी और अमलतास—इनसे निकाले हुए जल में मधु मिलाकर पान करने से शीघ्र ही दाह एवं शूल का शमन हो जाता है।

कटेरी, कंटकारी, गोखरू, एरण्डमूल, कुश-कास (तृणविशेष) और

तालमखाना—इनके रस में शक्कर मिलाकर पान करना भयंकर पित्तज शूल में शान्तिकारक होता है।

अथवा केवल आँवले के चूर्ण को शहद के साथ चाटना भी उपयोगी होता है। पित्तज शूल के शमनार्थ सुविज्ञ चिकित्सक को अन्यान्य उपाय भी करने चाहिए।

कफोत्पन्न शूल में लंघन एवं वमनकर्म हितकर होते हैं। तदनन्तर कफापहारक उष्ण तथा कटु पदार्थों से युक्त उपायों का आश्रय लेना चाहिए। अथवा बेल की जड़, अण्डी की जड़, चीता और सोंठ।

इनके चूर्ण में हींग और सेंधा नमक मिलाकर उपयोग करने पर कफजन्य शूल शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

त्रिकटु, निशोथ, मोथा, त्रिफला और चीता—ये सब सम भाग, इसका आधा पारा और गंधक तथा अभ्रक और वायविडंग दुगुने परिमाण में लेकर त्रिफला के कषाय में २-२ तोले की एक-एक गोली बना लें। इसे प्रतिदिन प्रात:काल एक गोली खा लेने से त्रिदोषज शूल, अम्लपित्त, वमन, हृत्शूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल और गुदशूल का नाश होता है। इसे खाने के अनन्तर भक्तवारि (मंड) का पान करना चाहिए। अत: इसी कारण इसका नाम भक्तवारि कहा जाता है।

अथवा बिजौरा नीबू के रस या सहिजन के क्वाथ में खार मिलाकर मधु के साथ पीने से हृत्शूल, पार्श्वशूल तथा बस्तिशूल नष्ट हो जाता है।

पंचकोल में बिदारीकंद के रस को पकाकर पीने से कफजन्यशूल दूर होता है। इसके अतिरिक्त अनार के रस में त्रिकटु और सेंधा नमक मिला मधु के साथ पान करने से त्रिदोषज शूल का निवारण होता है।

एरण्डद्वादशक का लाभ

अंडी की जड़ और उसके फल, कंटकारी, कटेरी, गोखरू, सालवन, पिठवन, मुगवन, मषवन, सहदेई, चित्रपर्णिका (चितवन) और तालमखाना। इनके सम भाग को जल में निर्मित कर खार मिलाकर पान करें। इससे सर्वदोषोत्पन्न शूल का निवारण होता है।

गोमूत्र में शोधित मंडूर में त्रिफला चूर्ण मिला मधु और घृत के साथ चाटने से सान्निपातिक शूल निर्मूल होता है। अथवा शंखचूर्ण में सेंधा नमक, हींग और त्रिकटु को मिलाकर गरम जल के साथ पान करने से भी उक्त दोष नहीं रह जाता।

आमदोषोत्पन्न शूल में कफजशूलनाशक प्रयोग करने चाहिए, क्योंकि जो-जो पदार्थ अग्निवर्धक होते हैं वे ही आमदोषनाशक भी होते हैं।

अथवा एरण्डमूल, सोंठ, कंटकारी, कटेरी, बिजौरा नीबू, पाषाणभेद,

त्रिकटु की जड़ में जवाखार, हींग, सेंधा नमक तथा अण्डी के तेल को मिलाकर पान करने से **कटिशूल**, **जननेन्द्रियशूल**, **हृत्शूल**, **स्तनशूल** तथा इनसे संलग्न अंगों के रोगों में प्रयुक्त करने चाहिए।

हींग, धनिया, त्रिकटु, अजवायन, चित्रक और हर्रें। इनके चूर्ण में खार और सेंधा नमक डालकर गुनगुना जल के साथ प्रातःकाल पीना लाभकारी होता है। उक्त प्रकार का योग मल-मूत्रशूल तथा वातशूल नाशक है। इसके साथ ही पाचक और क्षुधाग्निवर्धक भी है।

चित्रक, गठिवन, एरण्डमूल, सोंठ और धनिया—इनके जल में पकाये हुए रस को हींग, विड् नमक तथा सेंधा नमक मिलाकर सेवन करने के फलस्वरूप शूल, पेट का अफरा और कब्जियत दूर होती है।

अथवा अजवायन, सेंधा नमक, हरड़ और सोंठ। इन्हें बराबर भाग में बनाया गया चूर्ण शूल को मिटाकर मन्दाग्नि को बढ़ाता है।

वात-पित्तोत्पन्न शूल में बृहत्यादिगण के औषधों के साथ मधु मिलाकर लें। कफ-पित्तोत्पन्न ज्वर,वमन, जलन और शूलपीड़ा के निराकरण हेतु परवल, त्रिफला और नीम को मधु के साथ प्रयोग करें।

पूर्वकथित पित्तज एवं कफज शूलनाशक जो प्रयोग पृथक्-पृथक् रूप से वर्णित हैं उनके संमिश्रण का प्रयोग किया जाना चाहिए। दोषों के बलाबल के अनुरूप कफज-पित्तज में कथित वमन, विरेचन आदि प्रयुक्त करने चाहिए।

कफ-वातोत्पन्न हृत्शूल, पार्श्वशूल, उदरवेदना और विसूचिका में अण्डी, हींग और सोंठ का चूर्ण समान भागों में बनाकर कालीमिर्च तथा सेंधा नमक मिले हुए जल के साथ पीना उपयोगी है।

उक्त कथित एरण्डादि चूर्ण निर्माण हेतु हींग की लघु मात्रा लेनी चाहिए। अपरालिखित समान भाग का अर्थ पदार्थ से संबंधित है, ऐसा वृद्धजनों का कथन है।

सोंठ, अण्डी की जड़, दशमूल और इन्द्रयव। इनके साथ पकायें गये जल में सज्जीखार, जवाखार, हींग, सेंधा नमक, चौहारकोड़ा, बिरियासोंचर नमक तथा कूठ के चूर्ण का सेवन करें।

ऐसा करने से हृत्शूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, बवासीर, पाकाशयिक रोग, ज्वर, गुल्म और शूलरोग नष्ट होते हैं।

हींग, काला नमक, हरड़, विड् नमक और सेंधा नमक—इन सब वस्तुओं के साथ अथवा कूठ के चूर्ण को दशमूल और इन्द्रयव के साथ पकाकर पान करें। इसके प्रयोग से पार्श्वशूल, हृत्शूल, पृष्ठशूल, स्कंधशूल, तन्द्रा (ऐसी

अवस्था जिसमें नींद तो नहीं आती, किन्तु आलस्य बनी रहती है।), अपतानक वात, शोथ, कफज प्रमेह तथा गले के रोगों में अच्छा फल मिलता है।

वात-कफोत्पन्न शूल में क्षुधाग्निवर्धन हेतु लहसुन के साथ मदिरा का पान मद्यपायी व्यक्ति के लिए हितकारी होता है।

हींग, त्रिकटु, कूठ, जवाखार और सेंधा नमक—इनके चूर्ण को बिजौरा नीबू के रस के साथ पान करें।

इसके द्वारा प्लीहा तथा शूल का निवारण होता है। वचा के चूर्ण के साथ त्रिफलाचूर्ण मिलाकर सेवन करने से सभी प्रकार के शूल शान्त होते हैं।

वात-संबंधी शूल के निवारणार्थ गोमूत्र में शोधित मण्डूर के साथ श्वेत बिदारीकंद या गुड़ के साथ हरड़ खायें। निरूहकर्म (बस्तिकर्म विशेष), विरेचन, दुग्ध प्रयोग तथा मधुर पदार्थों के उपयोग करने चाहिए।

पित्तज शूलनाश हेतु तिक्त—कषाय तथा कफज में कटु द्रव्यों के प्रयोग लाभकारी सिद्ध होते हैं।

दाधिक घृत का लाभ

छोटी पीपर, सोंठ, बेल का गूदा, अजवायन, चव्य, चित्रक, हींग, अनार, इमली, वचा, जवाखार, सज्जीखार, अम्लबेंत, विषखपरा, काला नमक, कालीजीरी और बिजौरा नीबू—इन्हें समान भाग, इनसे दुगुना दही और उससे तिगुना घी डालकर एक साथ पका लें। पकने पर इसे दाधिमघृत कहा जाता है। यह घृत गुल्म, अर्श, प्लीहा, हत्शूल, पार्श्वशूल, योनि-संबंधी रोग तथा समस्त दोषों का शान्तिकारक होता है।

कम्बलाच्छादित शूलरोगी के प्राणायामकाल में सरसों के तैल में भिगोई हुई सत्तू की धूप भी शूलनिवारक होती है। शूलरोग में लाक्षणिक उपद्रव इस प्रकार देखे जाते हैं।

जैसे—उदर, पसली आदि में भयंकर वेदना, पिपासा, मूर्च्छा, पेट का फूलना, गुरुता, अरुचि, खाँसी, श्वास और हिचकी आदि।

शूलग्रस्त रोगी को निम्न प्रकार की सावधानी रखनी चाहिए—जैसे—व्यायाम, स्त्रीसंसर्ग, मद्यपान, नमकीन, चटपटे तथा कटु पदार्थ सेवन, मल-मूत्र के वेग का धारण, शोक, क्रोध और द्विदलीय अन्नों का सेवन आदि।

शूली रोगी को द्विदलीय अन्न, कुष्ठी को मांस-भक्षण, क्षयी को मैथुन, अतिसार वाले रोगी को दस्तावर अन्न का परित्याग कर देना आवश्यक है।

इसी प्रकार की सावधानी तरुणज्वर के रोगी के लिए भी आवश्यक होती है।

परिणामशूल का उपचार

लंघन, वमन, विरेचन, अनुवासनबस्ति तथा निरूहबस्ति—ये सभी कर्म परिणामशूल में उपयोगी कहे गये हैं।

अथवा परवल, अनार, मुनक्का, आँवला, कुम्हड़ा, जमीकंद (सूरन), खजूर, भुईआँवला (जमीन पर फैलने वाली आँवले की लताविशेष) और नारंग। इन सब वस्तुओं के प्रयोग से परिणामशूल नष्ट होते हैं।

वायविडंग (भाभीरंग), तंडुल (कगहिया), त्रिकटु, निशोथ, दन्ती और चित्रक। इन सबको एकीकृत कर बारीक चूर्ण बनावें।

तदनन्तर गुड़ डालकर मोदक बनाकर प्रातःकाल सेवन करे। सेवनोपरान्त अग्निवर्धक उष्ण जल पान करें। इससे त्रिदोषजपरिणामशूल दूर होता है।

सोंठ, गुड़ और काले तिल के कल्क को दूध में पकाकर खाने से भीषण परिणामशूल इक्कीस दिनों में ही निर्मूल हो जाता है।

अथवा अण्डी की जड़, चीता, जलसीपी (घोंघा, सुतुही), पुनर्नवा (गदहपूरना) और गोखरू—इनके बराबर भागों को अग्नि में जलाकर शूल निवारण हेतु गरम जल के साथ पीना उचित है।

शम्बूक (घोंघा) का भस्म गरम जल के साथ पीने पर परिणामशूल उसी प्रकार दमित हो जाता है जिस प्रकार विष्णु के द्वारा दानवों का दलन होता है। अथवा जलोत्पन्न सीपी, त्रिकटु और पंचलवण। इनके सम भाग चूर्ण को धाराकदम्ब के रस में मिलाकर वटी बनावें।

इसे प्रातः या भोजनावसर में अग्नि के बलाबल के अनुसार खाने वाला रोगी एकबारगी ही परिणामशूल से विमुक्त हो जाया करता है।

दीर्घकालिक परिणामशूल में रात्रि के समय केवल सत्तुओं का मटरयूष के साथ एक सप्ताह प्रयोग करने से परिणामशूल का नियंत्रण हो जाता है।

खिरेंटी या उसकी जड़ के साथ मंडूर को मधु-घृत के साथ सेवन करने से भीषण परिणामशूल भी तत्क्षण ही शमित हो जाता है।

अथवा छोटी पीपर, हरड़ और मंडूर के चूर्ण को मधु और शक्कर मिलाकर चाटना उपयोगी होता है। इससे कठिन परिणामशूल भी उसी क्षण शान्त हो जाता है।

त्रिदोषोत्पन्न परिणामशूल पर नियंत्रण पाने के लिए हरड़, मण्डूर और सोंठ का चूर्ण बना मधु और घृत के साथ पान करना आवश्यक होता है।

सामुद्री नमक, सेंधा नमक, सज्जीखार, जवाखार, एरण्डमूल, रेहगमो नमक, बेंत की जड़, दन्ती, लौहकिट्ट, निशोथ, जमीकंद। इन्हें बराबर भाग मे लेकर

इसमें दही, दूध और गोमूत्र चौगुना भाग मिला धीमी आग पर पकावें। पक जाने पर इसे अग्निबलानुसार गरम जल के साथ खावें। किन्तु दीर्घकालिक रोग में मांसादिघृत के साथ पकाकर प्रयोग में लाएँ।

उक्त प्रकार के योग से नाभिशूल, यकृतशूल, गुल्म, प्लीहा, विद्रधि, अष्ठीला (नाभिस्थल के निम्न भाग में वायुप्रकोप से होने वाला पाषाणखण्ड के समान कड़ापन) तथा वातज-कफजयुक्त औपद्रविक लक्षण नष्ट होते हैं। समस्त प्रकार के शूलों में इससे श्रेष्ठ कोई अन्य औषधि नहीं होती है।

बिजौरा नीबू की जड़, रेंड़ की जड़, रास्ना, गोखरू, खिरेंटी—इन्हें ५-५ पल तथा घी १ प्रस्थ लेकर ३२ सेर जल में पाचित करें। चौथाई भाग शेष रहने पर २-२ तोला वक्ष्यमाण द्रव्यों का कल्क मिलाकर पुनः पका लें।

वक्ष्यमाण द्रव्य इस प्रकार से हैं—तुम्बुरु के फल, हर्रें, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, कालीमरिच), हींग, काला नमक, विड् नमक, वचा, जवाखार, सज्जीखार और अम्लबेंत। इनमें दो प्रस्थ दही का पानी मिलाकर मन्द आँच पर पकावें।

पाक हो जाने पर इस घृत का उपयोग पित्तशूल, त्रैदोषिकशूल, वातशूल, परिणामशूल, गुल्म, प्लीहा, हृत्शूल, पार्श्वशूल, आमदोषोत्पन्न शूल तथा अम्लपित्त में लाभकारी होता है। यह घृत बलवर्धक तथा हृदय के लिए भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

कोलादि का लाभ

चव्य, गठिवन, अदरख, छोटी पीपर, सज्जीखार, जवाखार। इनके साथ मंडूर का चूर्ण बना अठगुने गोमूत्र में पकाकर गाढ़ा बना लें। पकने के पश्चात् इसे वात-कफ, परिणामशूल तथा अन्यान्य प्रकार के शूलों की शान्ति के लिए भोजन के प्रारम्भ, मध्य या अंत में खायें। भोजनस्वरूप दुग्धमिश्रित अन्न लेना उपयुक्त होता है।

पिप्पलीमण्डूर का लाभ

छोटी पीपर, पिपरामूल (बड़ी पीपर), चव्य, चित्रक, सोंठ, भृङ्गराज (भँगरैया), जवाखार, परवल, रेंड़ की जड़, लाल सहिजन, निशोथ की जड़, त्रिफला तथा लांगली (कलिहारी)। इन सबको १-१ पल की मात्रा में लेकर चूर्णित कर लें।

तदनंतर १ प्रस्थ मण्डूर को चूर्ण के साथ मिलाकर अठगुने भाग गोमूत्र में पकावें। पकने पर इन्हें पिण्डवत् बनाकर काम में लावें। इस योग से मलावरोध, अफरा, परिणामशूल आदि नष्ट होकर क्षुधाग्नि की वृद्धि होती है।

भीमवटकमण्डूर का लाभ

बेर, गठिवन, सोंठ, जूही और जवाखार—इन्हें १-१ पल भाग में चूर्ण बनाकर १ प्रस्थ मण्डूर के साथ अठगुने गोमूत्र में पकाकर पिंडाकार बना डालें। उसमें

से १-१ तोले के परिमाण में वटी बनाकर भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में १-१ गोली रसघृत से युक्त यूष, दूध और मांसरस के साथ सेवन करे तो उसके परिणामशूल, गुल्म, प्लीहा तथा मन्दाग्नि रोगों का उन्मूलन होता है।

क्षीरमण्डूर का लाभ

मंडूर ८ पल, गोमूत्र २ प्रस्थ तथा दूध १ प्रस्थ। इनको पकाकर प्रयोग करने से परिणामशूल का निवारण होता है।

शर्करामण्डूर का लाभ

शतावरी का रस १ प्रस्थ, गोमूत्र १ प्रस्थ, बकरी और गाय का दूध १ प्रस्थ, आवले का रस १ प्रस्थ, मण्डूर ८ पल तथा ८ कुडव (१६ पल) शक्कर। इन सबको एकीकृत करके धीमी आँच पर पकावें।

पकने पर पूरी तरह से गाढ़ा हो जाने पर ठण्ढा करके उसमें लौंग, त्रिफला, त्रिकटु, अजवायन, गजपिप्पली, श्वेत एवं स्याहजीरक और मोथा—इन्हें समान भाग में चूर्णीकृत करके उसमें मिला दें। तत्पश्चात् बलाबल के अनुसार इसे भोजन के पूर्व सेवन करें। इसके द्वारा भयंकर परिणामशूल, हलीमक (तुतलाना), रक्तपित्त, अंगों की जलन, पाण्डुरोग तथा अम्लपित्त आदि का उन्मूलन होता है।

मंडूर को ८ पल लेकर अठगुने गोमूत्र में डालकर पकावें, पककर उसके गाढ़ा हो जाने पर उसमें भंग (भाँग), सोंठ, खार, छोटी पीपर, पिप्पलीमूल—इन्हें १-१ पल चूर्णित कर मिला दें। इसकी वटी बनाकर सेवन करने से परिणामशूल का निवारण होता है।

शतावरीघृतमण्डूर का लाभ

सर्वप्रथम ८ पल मंडूर को शोधित कर चूर्णित कर लें। पुनः शतावरी रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल तथा गोघृत ४ पल डालकर मंडूर के साथ पकाकर उसे गाढ़ा बना लें।

इसे पक जाने के पश्चात् भोजन के पूर्व या मध्य में खायें। यह योग वातज, पित्तज तथा परिणामजशूल का उन्मूलक होता है।

तारामण्डूरगुड का लाभ

वायविडंग, चीता, चव्य, त्रिफला ३, त्रिकटु ३—इन नवों के नौ-भाग तथा मंडूर के नवभाग,' इनसे तिगुना गोमूत्र और गोमूत्र से आधा गुड़ मिलाकर धीमी आग पर पकावें और उसके गाढ़ा हो जाने पर पिंडाकार बना लें।

अब इसे किसी चिकने पात्र में भरकर १ तोले की मात्रा में सेवन करें। इसका प्रयोग भोजन के पूर्व, मध्य और अन्त में किये जाने पर भीषण परिणामशूल, कामला, पाण्डु, शोथ, अग्निमांद्य, अर्श, ग्रहणी, कृमि, गुल्म, औदरिक रोग,

अम्लपित्त तथा मोटापा आदि नष्ट होते हैं। तारा द्वारा कथित इस मंडूरगुड़ के प्रयोगकाल में शुष्क शाक, खट्टे और कड़ुए पदार्थ का सेवन करना वर्जित है।

त्रिफलामण्डूर का लाभ

त्रिफला के स्वरस में पकाया गया मंडूर, गुड़ के साथ सेवन करने पर परिणामशूल तथा त्रैदोषिक शूल का निवारण होता है।

धात्रीलौह का लाभ

आँवले का चूर्ण ८ पल, मंडूर ४ पल, मुलेठी चूर्ण २ पल। इन तीनों को २ पल घी में भून कर गुरुच के रस में एक सप्ताह तक भिंगो रखे। तदनंतर उसे कड़ी धूप में ठीक प्रकार से सुखाकर खरल कर लें और उसे नयी हाँडी में रख दें। उस घृत में मधु का मिश्रण करके वातादि दोषानुसार भोजन के पूर्व, मध्य या अंत में सेवन करें।

भोजन के पूर्व खाने से वात-पित्तोत्पन्न दोष, मध्यकाल में खाने पर विष्टंभी अन्न को पचाता तथा उदरदाह को रोकता है। भोजनान्त में अन्न ग्रहण के फलस्वरूप उत्पादक दोषों को नियंत्रित करता है तथा भयंकर परिणामशूल को शांत कर देता है। यह धात्रीलौह नेत्रों के लिए हितकारक, वलीपलित दोषों का निवारक, कफ-पित्तोत्पन्न दोषों का नियंत्रक, कामला, पाण्डुनाशक तथा रक्तशोधक होता है।

खण्डामलक का लाभ

पचास पल कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) को भली प्रकार से पकाकर आधा प्रस्थ घी में भून डालें, तत्पश्चात् इस घृतपाचित कुम्हड़े में ५० पल आँवलारस मिलाकर अच्छी तरह से धीमी आग पर करछुल से चलाते हुए पकावें।

पकने पर छोटी पीपर २ पल, स्याहजीरा २ पल, सोंठ २ पल, कालीमरिच २ पल, तालीसपत्र १ पल, धनिया १पल, दालचीनी २ तोला इलायची २ तोला, तेजपात २ तोला, नागकेशर २ तोला तथा मोथा २ तोला— इन सबका चूर्ण बनाकर उसमें मिला दें।

पुनः इसमें आधा प्रस्थ मधु का भी मिश्रण कर दें। इस खण्डामलक रसायन के सेवन से परिणामशूल, त्रैदोषिकशूल, वमन, अम्लपित्त, बेहोशी, साँस, खाँसी, अरोचकता, हृत्शूल, रक्तपित्त तथा वातादि दोषों से अलग-अलग उत्पन्न होने वाले समस्त प्रकार के शूलों का विनाश होता है।

परिणामशूल के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले जरत्पित्त और अन्नद्रव शूल की चिकित्सा हेतु बरगद की जटा का चूर्ण २ भाग और मंडूर का चूर्ण १ भाग लेकर करैले के पत्तों के रस में घोंट लें। इसकी १ कर्ष परिमाण में गोली बनाकर खावें और

बाद में मंड का पान करें तो कठिन और दुःसाध्य जरत्पित्त का भी उन्मूलन हो जाता है।

मंडूर या मुलेठी के चूर्ण में त्रिफला का चूर्ण मिलाकर मधु के साथ चाटने से जरत्पित्त का शमन होता है। जरत्पित्त में कथित प्रयोग अन्नद्रवशूल में भी करने चाहिए, विशेषतया ऐसी अवस्था में जब आमाशय और पक्वाशय शुद्ध हो रहे हों।

हर्रें १ पल, गुड़ १ पल, आँवला १ पल तथा मंडूर ३ पल। इनके चूर्ण में मधु और घृत मिलाकर प्रतिदिन भोजन के पूर्व, मध्य या अन्त में खाने से लाभ होता है।

अन्नद्रवशूल के रूप-रंग को संज्ञान में लाना अतिदुष्कर कार्य है, फिर भी इसके शमनार्थ उत्तम उपायों का आश्रय लेना उचित है। अन्नद्रवशूल और जरत्पित्त में मंदाग्नि की अधिकता रहती है।

अतः ऐसी दशा में अन्नपान की मात्रा अत्यल्प कर देनी चाहिए। अन्नद्रव की कथित चिकित्सा ही जरत्पित्त में भी प्रयोक्तव्य होती है। यहाँ संक्षेपतः अन्नद्रव की चिकित्सा वर्णित की गयी है।

उदावर्त एवं आनाह का उपचार

उदावर्त रोग (मल-मूत्र के वेग को रोककर वायु का ऊपर की ओर चढ़ना ही उदावर्त है।) में सुयोग्य चिकित्सकों ने गेहूँ, मूँग, मुलेठी तथा अन्य प्रकार के वातशामक प्रयोग करने का परामर्श दिया है।

हरड़, चुरनहार और निशोत—इनके चूर्ण में जवाखार मिला घृत के साथ सेवन करने से पथ्याहारी रोगी के उदावर्त का शीघ्र ही दमन हो जाता है।

श्यामा, दन्ती, सातला, चोरहुली, पीतदुग्धा, कटेरी, लोध, कबीला, अतीस, गूगुल, अमलतास, मूषाकर्णी और करंज।

इन सब द्रव्यों के क्वाथ, कल्क, चूर्ण, घृत, तैल या मांसरस या अन्य उपयोगी गणों के साथ प्रयुक्त करने पर पेट का फूलना, उदावर्त, गुल्म, औदरिक रोग तथा विषपानोत्पन्न पीड़ा शीघ्र ही दूर होती है।

निशोत २ भाग, छोटी पीपर ४ भाग, हरड़ ५ भाग तथा गुड़ ११ भाग। इनके कल्क से वटी बनाकर खाना उदावर्त रोग का उन्मूलन करता है अथवा हर्रें, जवाखार, गोरखमुंडी और निशोत।

इनके चूर्ण को घी के साथ सेवन करने से उदावर्त रोग नष्ट होता है।

हींग, कूठ (कूड़ा), वचा, सज्जीखार, विड् नमक। इन्हें क्रमशः द्विगुणित परिमाण में लेकर चूर्ण बना मदिरा के साथ प्रयोग करना उदावर्त निवारक कहा गया है।

खाँड़ १ पल, निशोत १ पल और पिप्पलीचूर्ण २ तोला। इसे भोजन से पूर्व २ तोले की मात्रा में खायें, किन्तु इसे मल के गाढ़ापन में तथा पित्त-कफ में प्रयोग करना उचित है।

यह नारायण नामक चूर्ण अत्यन्त सुस्वादु तथा राजाओं के उपभोग की वस्तु है।

हींग, माक्षिक तथा सेंधानमक के योग से निर्मित बत्ती को घी में भिंगोकर मलद्वार में स्थापित कर देने से तत्क्षण ही उदावर्त रोग विनष्ट होता है।

अथवा मैनफल, छोटी पीपर, कूठ, वचा, श्वेत सरसों, गुड़ और जवाखार के मिश्रण से निर्मित फलवर्तिका उदावर्त में लाभकारी बतलायी गयी है।

उदावर्त रोगी के स्वेदित मलद्वार में अगरु का धूप, सेंधानमक और तैलमिलित अम्लबेंत की जड़ या मेउड़ी के पत्तों को मसल कर रख दें।

मूत्राघात (मूत्र की रुकावट) में मदिरा के साथ काला नमक मिलाकर, मदिरा के साथ इलायची अथवा दूध और जल का प्रयोग दोषानुसार करने से लाभ मिलता है।

अथवा क्रौंच के स्वरस, कूड़ा के कषाय, जल के साथ या सेंधा नमक के साथ बड़ी ककड़ी के बीज का मूत्राघात में प्रयोग करना फलदायक होता है।

पंचमूल के साथ पकाये गये दूध या दाख का रस भी मूत्रकृच्छ्र और पथरी रोग में कथित नियमानुसार करना लाभप्रद होता है।

स्नेहन तथा स्वेदन कर्म के द्वारा उदावर्त के विजृम्भ को तथा रक्तोत्पन्न उदावर्त में स्निग्धित और स्वेदित रोगी के रक्त को निकाल देना अच्छा है।

क्षयोत्पन्न उदावर्त में क्षयोपयोगी औषधों से नासिका और मुख के द्वारा छींक को बाहर निकाल दें। डकार के कारण होने वाली उदावर्त में स्नेह का धूपन करें।

उदावर्तीय वमन में दोष बलानुसार नस्य तथा स्नेहन आदि कर्म करें ताकि विविध बस्तियों का भी शोधन हो सके। अथवा दूध में चौगुना जल डालकर पकावें। पकाने पर जब जलीय अंश जलकर केवल दूध रह जाय तो उस दुग्धपान से शुक्रोत्पन्न उदावर्त में लाभ होता है।

तदनन्तर सुंदरी रमणियाँ रोगी को मुग्ध करें। शुक्रोत्पन्न उदावर्त में अभ्यंग, जल से स्नान, सुस्वादु मदिरा, शालिधान्य, दूध, निरूहबस्ति तथा मैथुन-क्रिया भी उपयोगी होती है।

क्षुधा के विघात में स्निग्ध, उष्ण और हलका भोजन, प्यास के विघात में मदिरा या शीतल यवागू, परिश्रम से क्लान्त तथा श्वास से पीड़ित उदावर्त में हलके, अभिष्यंदी, दाहरहित तथा आनन्दोत्पादक पदार्थों का ग्रहण करना लाभप्रद है।

उदावर्तीय निद्रानाश में दुग्धपान के पश्चात् रोचक कथाओं को सुनकर शनैः

शनैः शयन करें। इस उदावर्त रोग में प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया के द्वारा आनाह (पेट का फूलना) रोग भी निर्मूल हो जाता है।

अथवा हींग, वचा, सज्जीखार और वायविडंग—इन्हें क्रमानुसार दुगुनी मात्रा में लेकर चूर्णित करें। इस चूर्ण का उपयोग गुनगुना जल के साथ किये जाने पर विसूचिका, वेदना, हृद्रोग, गुल्म तथा ऊर्ध्ववात आदि रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

वचा, हर्रे, चित्रक, जवाखार, छोटी पीपर, अतीस और कूठ। समभाग में बनाये गये इस चूर्ण को गुनगुना जल से खाकर पथ्याहार लेने वाला व्यक्ति अफरा और विमूढ़वात से मुक्त हो जाता है।

निशोत, हरड़ और श्यामा—इन्हें थूहर (सेंहुड़) के दूध में भिंगो दें। तत्पश्चात् इसकी वटी बनाकर गोमूत्र के साथ सेवन करने से आनाह दूर होता है।

त्रिकटु, सेंधा नमक, सरसों, गृहधूम की कालिख, कूड़ा और मैनफल। इनके द्वारा निर्मित आठ अंगुल की बत्ती को गुड़ में डालकर करछुल से चलाते हुए पकाकर घृत से चुपड़ मलद्वार में धीरे-धीरे प्रविष्ट कराने से उदावर्त, गुल्म तथा औदरिक रोगों का उन्मूलन हो जाता है।

शुष्कमूलाद्यं घृत का लाभ

सूखी और आर्द्र मूली, पुनर्नवा और पंचमूल—इन्हें अथवा अमलतास के फल को जल में पकाकर पुनः घी में पका लें। इस घृत के प्रयोग से आनाह और उदावर्त रोग समूल नष्ट हो जाता है। यह भी परीक्षित प्रयोग है।

गुल्मरोग का उपचार

समस्त प्रकार के गुल्म (प्रतिकूल आहार-विहार के फलस्वरूप वायु के प्रदूषित होने के कारण पेट में उत्पन्न होने वाली गाँठ। इसे वायुगोला भी कहा जाता है।) रोगियों के लिए दीपन, स्निग्ध, अनुलोमन, लंघन एवं बृंहण (पुष्टिकर) पदार्थों का सेवन लाभकारी होता है।

इसमें वातशमन के लिए आवश्यक उपायों का विधिवत् अवलंबन करना चाहिए। वायु पर नियंत्रण पा लेने के अनंतर अन्य दोषों को अल्प प्रयोग द्वारा भी नियंत्रित किया जा सकता है।

गुल्मरोगी के शारीरिक स्रोतों का स्निग्धीकरण से कोमल होने, प्रचण्ड वात को दबाने तथा विबंध को तोड़ने के पश्चात् स्वेदनकर्म लाभप्रद सिद्ध होता है।

सर्वप्रथम वातोत्पन्न गुल्म में रोगी को स्निग्धित, स्वेदित तथा रेचित कर लें। तदनंतर देश-काल और अवस्थानुसार स्नेहन, सेंक, निरूह और अनुवासन बस्ति के द्वारा उपचार करें।

इसके अनंतर मंदोष्ण उपनाहन कर्म करने तथा सान्त्वना देने चाहिए। तत्पश्चात् रक्तमोक्षण तथा भुजा के मध्यवर्ती भाग में शिराभेदन, स्वेदन तथा वायु का अनुलोमन कर्म करने चाहिए। इस प्रक्रिया के अपनाने से सभी प्रकार के गुल्म निर्मूल होते हैं।

बिजौरा नीबू का रस, हींग, अनार, विडनमक तथा सेंधानमक। इन्हें मद्यमंड के साथ अथवा अण्डी के तैल को मदिरामंड या दूध के साथ पान करना वातज गुल्म का उन्मूलक होता है।

सज्जीखार और केतकीखार को कूठ के साथ अंडीतैल में पान करने से वातज गुल्म का नाश होता है।

वातज गुल्म के चिकित्साकाल में कफप्रकोप होने पर उष्ण और उष्ण पदार्थ मिश्रित चूर्णादि के प्रयोग करने चाहिए। पित्त की प्रकोपावस्था में विरेचन का आश्रय लें। गुल्म रोगनाशक पदार्थों के सेवनोपरान्त गुल्म के नष्ट न होने पर रुधिराहार आवश्यक हो जाता है।

काकोल्यादिगण, बकायन (महानिंब) तथा वासादि द्रव्यों से पकाये गये तैलपान से स्निग्धित पैत्तिक गुल्मी में विरेचन के बाद बस्तिकर्म का प्रयोग करना उपयोगी होता है।

जिस समय गुल्म रोगी में जलन, शूल, वेदना, विक्षोभ, निद्रानाश, अरोचकता तथा ज्वरादि लक्षणों की अनुभूति हो उसी समय उसे उपनाहनकर्म के द्वारा परिपक्व बनाना चाहिए।

पक जाने पर व्रणशोथ में कथित क्रिया के अनुरूप भेदन, लेपन आदि कर्म करें। भेदन किये विना ही दोष के ऊर्ध्वगामी या अधोगामी होने पर,। उसका बारह दिनों तक शोधनादि कर्म न करके केवल प्रतीक्षारत रहें। इस अन्तराल में उत्पन्न होने वाले अन्य दोषों का शमन करें।

पैत्तिक गुल्म में लंघन, लेखन और स्वेदनकर्म को पूर्ण करें तथा अग्निवर्धन होने और रोगी के भूखे रहने पर त्रिकटु और जवाखार का कल्क मिला पकाये हुए घृत का पान करें।

अथवा वचा २ भाग, हरड़ ३ भाग, विड् नमक ६ भाग, सोंठ ४ भाग, हींग १ भाग, कूड़ा ८ भाग, चीता ५ भाग तथा अजवायन ५ भाग। इनका चूर्ण मदिरा के साथ प्रयोग करने से गुल्म, अफरा, औदरिक रोग, शूल, बवासीर, साँस, खाँसी और ग्रहणी रोग का विनष्टीकरण होता है।

वातगुल्मोक्त प्रयोगों को कफजन्य गुल्म में भी अपनायें। अथवा पंचमूल में

पकाये गये जल, पुरानी मदिरा या महुए के फूलों से निर्मित मदिरा का सेवन कुछ समय तक करते रहें।

अथवा मट्ठे में अजवायन चूर्ण और विड्नमक मिलाकर पान करें। इस मट्ठे के प्रयोग से क्षुधाग्नि बढ़ती है तथा मल-मूत्र और वायु का अनुलोमन होता है। मिश्रित दोषों में उन-उन दोषों की मिश्रित क्रिया की जानी चाहिए।

त्रिलवणादि चूर्ण का लाभ

तीन प्रकार के नमक (सेंधा, विड् और कालानमक), हाऊबेर, अजमोदा, असगंध, वचा, हींग, कूठ, छोटी इलायची, घीकुआर (ग्वारपाठा), जीरा, स्याहजीरा, धनिया, सज्जीखार, जवाखार, सौंफ, जटामांसी, पुष्करमूल, अनार, इमली, वायविडंग, भारंगी, गुरुच, अम्लबेंत, सोआ नामक शाक, कालीमरिच, गजपीपर, हर्रें, पंचकोल के द्रव्य, दंती, इन्द्रायण, अजवायन, देवदारु—इन सबको चूर्णित कर बिजौरा नीबू के रस में कई बार भावित करें।

इस चूर्ण का सेवन प्रातःकाल या भोजनकाल में एक महीने तक गरम जल, पुरानी मदिरा, मट्ठा, पंचकोलनिर्मित जल, घृत या गुनगुना कुलथी का यूष, क्षारनिर्मित जल, अनार के रस के साथ करते रहने तथा पथ्याहार लेते रहने के परिणामस्वरूप चूर्णसेवी को हृदय, मलद्वार, कमर, पसली, गुदशूल, गुल्म, मलावरोध, बवासीर, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, जलोदर, अफरा, क्षय, अरोचकता, श्वास तथा खाँसी आदि समस्त रोगों से मुक्ति मिलती है।

उसकी जठराग्नि इतनी प्रबल हो जाती है कि पाषाणवत् कठोरतम पदार्थों के खाने पर भी उसे कभी अपचन का सामना नहीं करना पड़ता है।

इस चूर्ण के स्थान पर पूर्वोक्त औषधों से किये गये घृतपाक का भी सेवन किया जा सकता है।

अजवायन, हींग, सेंधा नमक, खार (जवाखार, सज्जीखार), कालानमक और हरड़। इनका चूर्ण मद्यमंड के साथ पान करने से गुल्मशूल का नाश होता है।

हिङ्ग्वादि चूर्ण का लाभ

हींग, त्रिकटु, वचा, अजमोदा, धनिया, असगंध, अनार, इमली, पाठा, चित्रक, चव्य, सेंधानमक, विड्नमक, कालानमक, जवाखार, चोहारबोडा, छोटी पीपर की जड़, अम्लबेंत, कचूर, कूठ, हाऊबेर, स्याहजीरा और हर्रें।

इन सबको एकीकृत कर चूर्ण बनाकर उसे कई बार बिजौरा नीबू के रस में भिगो दें। तदनन्तर इसकी २ तोले की गोली बनाकर वातपीड़ित रोगी प्रातःकाल सेवन करने के पश्चात् पूर्वकथित अनुपान ले।

इसके सेवन से **गुल्म**, **श्वास**, **खाँसी**, **अरुचि**, **हृद्रोग**, **अफरा**, **पार्श्वशूल**, **जाँघशूल**, **बस्तिशूल**, **आनाह**, **मूत्रकृच्छ्र**, **अर्श**, **पसली का प्लीहा**, **जलोदर** तथा **पाण्डुरोग** समूल नष्ट होते हैं। इसके साथ ही यह तूणी-प्रतूणी नामक वातरोगों में भी लाभप्रद होता है।

हींग, पोहकरमूल, तुम्बुरू, हर्रे, निशोत, सेंधानमक, विड्नमक, जवाखार और सोंठ—इन्हें समान परिमाण में लेकर चूर्ण बना घी में भूनकर यव के काढ़े के साथ पान करें। इससे गुल्म और उसके तत्सम्बन्धी सभी उत्पात शमित हो जाते हैं।

वचा, हरड़, हींग, सेधानमक, अम्लबेंत, जवाखार तथा अजवायन। इनके चूर्ण को गरम जल के साथ खाने से एक सप्ताह में ही गुल्म-संबंधी सभी उपद्रव दूर हो जाते तथा गुल्मभेदन के फलस्वरूप जठराग्नि भी तीव्र होती है।

छोटी पीपर, बड़ी पीपर, चीता, स्याहजीरा और सेंधानमक। इनके चूर्ण को मदिरा के साथ पान करने पर शीघ्र ही भीषण गुल्म रोग समाप्त हो जाता है।

अथवा नादेई, कूठ, मदार की जड़, सहिजन, कंटकारी (भटकटैया), कटेरी, पलाश, नीम, जटामांसी, अपामार्ग (चिचिड़ा), आँवला, चीता, वासा (अडूसा)), कठपाढर, और पाढर के पुष्प।

इनमें नमक और हींग मिलाकर अ[illegible] पर पका लें। इनके प्रयोग से गुल्म, उदर तथा प्लीहा (तिल्ली) रोग नष्ट होते हैं।

हींग, वचा, विड्नमक,सोंठ, स्याहजीरा, हर्रे, पुष्करमूल और कूठ। इनकी मात्रा क्रमशः बढ़ाकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के सेवन से गुल्म, उदर, अपच और विसूचिका रोग में लाभ मिलता है।

अथवा, त्रिफला, कचनार, वनककोड़ा, सातला, नलिनी, वचा, त्रायमाण, हाऊबेर, कटुकी, निशोत, सेंधानमक और छोटी पीपर। इनके चूर्ण को गोमूत्र, गरम जल या मांसरस के साथ प्रयुक्त किये जाने पर गुल्म, उदर, प्लीहा, कोढ़, बवासीर तथा सूजन दूर होती है।

सौंफ, करंज की छाल, देवदारु, भारंगी और छोटी पीपर। इनके कल्क का पान तिलक्वाथ के साथ करने पर रक्तोत्पन्न गुल्म नहीं रह जाता। गुड़, त्रिकटु, हींग और भारंगी।

इनके चूर्ण का सेवन तिल क्वाथ के साथ किये जाने पर रक्तज गुल्म के साथ ही स्त्रियों की ऋतुस्त्राव-संबंधी समस्त गड़बड़ियाँ दूर होती हैं।

आँवले के रस को पलाश की खार में भिंगोकर पान करें। अथवा जवाखार और त्रिकटु का मदिरा के संग पान करने से वातगुल्म का निवारण होता है।

हबुषादि घृत का लाभ

हाऊबेर, त्रिकटु, इलायची, चव्य, चित्रक, सेंधा नमक, स्याहजीरा, छोटी पीपर और अजवायन। इन्हें १-१ पल लेकर कल्क बना डालें। तदनंतर बेर का क्वाथ २ सेर, सूखी मूली का क्वाथ २ सेर, दूध २ सेर, दही २ सेर तथा २ सेर अनार का काढ़ा लेकर किसी पात्र में भर लें और पूर्वोक्त कल्क के साथ २ सेर घी मिलाकर पकावें।

इस घृतपाक के सेवन से वातगुल्म, शूल, मलावरोध, योनिसंबधी रोग, अर्श, ग्रहणी, साँस, खाँसी, अरुचि, ज्वर, पार्श्वशूल, हृत्शूल तथा बस्तिशूल निर्मूल हो जाते हैं।

दन्त्यभयाख्य का लाभ

हरड़ २५ नग, दन्ती २५ पल और चित्रक २५ पल। इन तीनों को १ द्रोण जल में पकावें। पककर आठवाँ भाग शेष रहने पर छान लें और उसमें २५ हरड़, तैल ४ पल, निशोत ४ पल तथा १-१ पल छोटी पीपर और सोंठ के चूर्ण तथा २५ पल गुड़ मिलाकर उसके रस में पाक करें।

जब वह लेह की तरह पककर गाढ़ा हो जाय तब उसमें १६ तोला शहद तथा १-१ पल इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर के चूर्ण का संमिश्रण कर दें।

तत्पश्चात् उस लेह को १ पल की मात्रा में चाटकर ऊपर से उन पकी हुई हरें में से एक हरड़ खा लें। इस प्रयोग के द्वारा गुल्म रोगी के दोष (राँध) चिकने होकर निकलने लगते हैं।

ऐसी अवस्था में गुल्मी को रसेदार भात का पथ्य ग्रहण करना उचित है। इससे प्लीहा, (बरवट), सूजन, गुल्म, बवासीर, हृद्रोग, पांडुरोग, ग्रहणी, उत्क्लेश, विषमज्वर, कोढ़ तथा अरुचि आदि रोगों का निवारण होता है।

त्र्यूषणादि घृत का लाभ

त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडंग (भाभीरंग), चव्य और चित्रक। इनके कल्क को दूध में पकाकर इस घृत के सेवन से वातोत्पन्न गुल्म नष्ट हो जाता है।

द्राक्षादि घृत का लाभ

द्राक्षा (अंगूर), मुलेठी, खजूर, बिदारीकंद, शतावरी, फालसा और त्रिफला। इन सबको १-१ पल के परिमाण में लेकर ४ प्रस्थ जल में पकावें। चौथाई भाग बचने पर उस रस को छान लें। उस रस के बराबर आँवले का रस, दूध, घी और गन्ने का रस तथा चौथाई भाग हरड़ के कल्क को मिला उस रस में पुनः पकावें।

पकने के पश्चात् ठण्ढा होने पर उसमें चौथाई भाग मधु और शक्कर मिला दें। इस घृत के सेवन से सभी प्रकार के पित्तजन्य गुल्म और पित्तज रोगों का शमन होता है।

व्योषादि घृत का लाभ

व्योष (सोंठ, पीपर, कालीमरिच) खारा नमक, विड्नमक, हींग, अनार और दशमूल को मिलाकर घी में पकावें। इसके द्वारा कफजनित गुल्म नष्ट होता है।

क्षीरषट्पल घृत का लाभ

छोटी पीपर, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार। इनके १-१ पल भाग का कल्क बना इसमें १-१ प्रस्थ घी और दूध मिलाकर एकत्रित पकावें।

इस घृतपाक से गुल्म, अरोचकता, ग्रहणी, पाण्डु, हृद्रोग, प्लीहा, खाँसी तथा ज्वरादिक रोग दूर होते हैं।

आँवला के ४ सेर रस में १-१ सेर घी और दूध मिला उक्त कथित क्षीरषट्पल घृत के परिमाणानुसार औषध द्रव्यों को साथ पका लें।

पक जाने पर इसमें शक्कर और सेंधानमक डालकर खाने से समस्त प्रकार के गुल्मों का उन्मूलन होता है।

वृश्चीरारिष्ट का निर्माण एवं लाभ

सफेद गदहपूरना, रेंड़ की जड़, लाल गदहपूरना, कटेरी, कंटकारी और चित्रक। इन्हें ८-८ पल लेकर १ द्रोण जल में पकावें। पककर चौथाई भाग रहने पर छान लें। तदनन्तर छोटी पीपर, चीता और मधुलेपित घड़े में इसे रख छोड़ें।

पुनः उसमें १ प्रस्थ मधु और आधा भाग हरड़चूर्ण को मिलाकर दश दिनों तक पूर्ववत् घट में ही रहने दें।

तत्पश्चात् बासी मट्ठे के संग इस अरिष्ट का पान करें। इस योग के द्वारा आमदोष सहित दुरूह गुल्मरोग पर नियंत्रण होता है।

गुल्म रोगी के लिए शुष्क मांस या शूकरमांस, मूली, मछली, सूखे शाक, द्विदलीय अन्न, आलू, शाक तथा मीठे फलों का सेवन करना वर्जित होता है।

हृदयरोग का उपचार

वातादिदोष प्रकुपित होकर शरीरस्थ रस धातु को प्रदूषित कर हृत्प्रदेश में स्थिर रहा करते हैं।

इसे ही हृद्रोग कहा जाता है। वातोत्पन्न हृदयरोग में रोगी को दशमूल के क्वाथ में तैल और नमक डालकर वमन कराना उचित होता है।

छोटी पीपर, इलायची, वचा, हींग, जवाखार, सेंधानमक, कालानमक,

सोंठ, अजमोदा—इनके चूर्ण त्रिफला क्वाथ के साथ कांजी, कुलथी यूष, दही, मदिरा, आसव या किसी अन्य तैलीय पदार्थ के साथ विशुद्ध शरीर के हृद्रोगी में प्रयुक्त किये जाने चाहिए।

अथवा इसका रोगी सोंठ का क्वाथ बना उस गरम काढ़े का पान करे। यह क्वाथ, जठराग्निवर्धक, श्वास, खाँसी, वात, शूल तथा हृदयरोग विनाशक होता है।

पित्तोत्पन्न हृद्रोग में चंदनादि का शीतल प्रलेप, सिंचन तथा विरेचन कर्म करने चाहिए। विरेचन द्वारा शरीरशोधन हो जाने पर अंगूर, शक्कर, मधु तथा फालसे के साथ पित्तशामक अन्नपान किये जाने चाहिए।

हृद्रोगी में रोगशमनार्थ मुलेठी और कटुकी को पीसकर शक्करमिश्रित जल के साथ पान करना उपयोगी सिद्ध होता है।

अथवा अर्जुन वृक्ष की छाल, शक्कर, लघु पंचमूल, खिरेंटी और मुलेठी—इनमें से किसी एक पदार्थ के साथ पकाये हुए दूध का पीना लाभप्रद है।

अर्जुनवृक्ष की छाल का चूर्ण, घी, दूध या गुड़ के शर्बत के साथ पान करने पर हृद्रोग, जीर्णज्वर तथा रक्तपित्त रोग दूर होते हैं।

अनार, काला नमक, सोंठ, हींग और अम्लबेंत—इनका एकीकृत योग अपतानकवात, हृदयरोग, श्वास, खाँसी तथा ज्वरहारक कहा गया है।

कफोत्पन्न हृदयरोग में वचा तथा नीम की छाल का काढ़ा पिलाकर वमन कराना तथा वातोत्पन्न में पिप्पल्यादि चूर्णों का सेवन हितकर है।

त्रिदोषज हृदय रोग में पहले लंघन कराकर दोषानुसार अन्नपानादि दें। वातज हृद्रोग में हीनता, प्रखरता तथा संगत्व के विचार से त्रिदोषों में उचित उपचार करें।

कूठ के चूर्ण में मधु मिलाकर चाटने से श्वास, खाँसी, क्षय तथा हिक्का आदि रोग नष्ट होते हैं।

तैल से अठगुने गुड़ में पकाये गये गेहूँ के चूर्ण को खाकर दुग्धपान करने वाला जीवन-भर स्वस्थ रहता है।

गेहूँ और अर्जुन वृक्ष की छाल को बकरी के दूध और घृत में मिलाकर पकावें। इसमें मधु और शक्कर मिलाकर सेवन करने से प्रचण्ड हृदयरोग भी शमित होता है।

नागबला (गंगरेन) की जड़ अथवा अर्जुन वृक्ष की छाल का चूर्ण दूध के साथ पान करने पर यह हृदयरोग, श्वास और खाँसी को मिटा देता है।

यह मत्स्यनाथनिर्मित अत्यन्त शक्तिदायक रसायन है। इसके एक वर्ष तक निरन्तर प्रयोग करने के फलस्वरूप मानव शतायु बन जाता है।

हींग, वचा, विड् नमक, सोंठ, छोटी पीपर, कूठ, हर्रें, चीता, जवाखार, काला नमक, पुष्करमूल—इन सबके चूर्ण को जौ के काढ़ा के साथ पान करना शूल तथा हृद्रोगनाशक होता है।

दशमूल के कषाय को लवणक्षार के संग मिला देने पर श्वास, खाँसी, हृद्रोग तथा गुल्मपीड़ा का नाशक बन जाता है।

कृमिजनित हृदयरोगी को तीन दिनों तक मांस के साथ पकाये हुए भात को दही के साथ खिलाकर विरेचन कर्म कराना लाभकारी होता है।

उक्त रोगी को उपचार सुगंधित, नमकयुक्त, शक्करमिश्रित, वायविडंग की आत्यंतिक मात्रा वाले योगों तथा अत्यम्ल पदार्थों के आश्रयण में करने चाहिए।

अथवा कृमिज हृद्रोग में भाभीरंग और कूठ के चूर्ण को गोमूत्र के साथ पान करने से हृत्प्रदेश में स्थित कीड़े नीचे आकर मल के द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

कृमिजन्य हृदय रोग में भाभीरंग के साथ यवान्न का प्रयोग कराये। अथवा कच्ची हलदी को पकाकर रात्रि के समय गरम जल के साथ पिलाने से लाभ मिलता है।

श्वदंष्ट्रादि घृत का लाभ

गोखरू, खस नामक तृण, मंजीठ, खिरेंटी, गम्भारी, पिठवन, कुश की जड़, इलायची, सरसों, शालवन—इनके १-१ पल परिमाण का क्वाथ तैयार करें। काढ़ा के पककर चौथाई भाग रहने पर उसे छान लें।

तदनन्तर उस काढ़े से चौथाई दूध, उसके समान ही घृत डालकर उसमें क्रौंच, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीवक, शतावरी, ऋद्धि, अंगूर, शक्कर, गोरखमुंडी और वासा (अड़ूसा)—इनका कल्क बना उस काढ़े को पुन: पकावें।

पकने के अनन्तर यह घृत **वात-पित्त**, **हृद्रोग**, **श्वास**, **शूल**, **मूत्रकृच्छ्र**, **प्रमेह**, **अर्श**, **वातजनित खाँसी** तथा **क्षयादि रोगों** का उन्मूलन करता है। इसके साथ ही बाण प्रक्षेपण, स्त्रीसंसर्ग तथा मद्यपान से निस्तेज व्यक्तियों को सबल बनाकर उन्हें प्रोत्साहित करता है।

बला (खिरेंटी), नागबला (गंगरेन) तथा अर्जुन की छाल के क्वाथ में मुलेठी का कल्क मिलाकर घृतपाक करें।

इस घृत के सेवन से हृद्रोग, पीड़ा, क्षतक्षय, रक्तपित्त, खाँसी तथा वातरक्त आदि रोगों का दमन होता है।

मूत्रकृच्छ्र का उपचार

अत्यन्त व्यायाम, मदिरापान या अतिमैथुन के फलस्वरूप प्रकुपित वातोत्पन्न दोष बस्तिप्रदेश में पहुँचकर मूत्रमार्ग का पीड़न करते हैं। ऐसी अवस्था में रुग्ण व्यक्ति

को अत्यल्प मात्रा में कष्टकर मूत्र का बार-बार परित्याग करना पड़ता है। इसे ही मूत्रकृच्छ्र के नाम से जाना जाता है।

इसके लिए पथरी रोगनाशक जो उपाय बतलाये गये हैं, उन्हें अपनाने के साथ-साथ स्नेहादि कर्म भी दोषानुसार करने चाहिए।

वातज मूत्रकृच्छ्र में शास्त्रकथित तैलादि से अभ्यंग, स्नेहन, बस्ति, निरूहबस्ति, स्वेदन, प्रलेप, उत्तरबस्ति तथा परिषेक आदि कर्म करने आवश्यक कहे गये हैं।

इसके साथ ही शालवन आदि वातशामक पदार्थों से पकाये गये मांसादि रसों का प्रयोग करें।

पित्तज मूत्रकृच्छ्र में शीतल जल से शारीरिक सेचन, ठण्ढे जलराशि में स्नान, ठण्ढे पदार्थों, जैसे—खस, चंदनादि द्रव्यों का लेपन, ग्रीष्मकालीन उपचार, बस्तिकर्म, दुग्धादि द्वारा विरेचन तथा दाख, बिदारीकन्द और गन्ने का रस आदि घृत के साथ पान करना उपयोगी होता है।

कफज मूत्रकृच्छ्र हेतु क्षारपदार्थ, उष्ण पदार्थ, पंचकोलादि तीक्ष्ण औषध, तीक्ष्ण भोजन, स्वेदन, यवान्न, वमन, निरूहबस्ति, तिक्त औषधियों के मिश्रण से पकाये गये तैल का मट्ठे के साथ मर्दन और पानकर्म करना उत्तम फलदायक होता है।

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में पूर्वकथित वातादि दोषों के कथित उपचारों के साथ अवस्थानुसार प्रयुक्त करें। कफाधिक्य वाले त्रिदोष में सर्वप्रथम वमन, पित्ताधिक्य में विरेचन तथा वाताधिक्य में बस्तिकर्म पहले किये जाने चाहिए।

गुरुच, सोंठ, आँवला, असगंध और गोखरू। इनके चूर्ण का प्रयोग वातग्रस्तता तथा मूत्रकृच्छ्रता में गरम जल के साथ करना हितकर है।

कुश, कास, रामशर, डाभ और ईख—इन पंचमूल नामक तृणों की जड़ का शर्बत बनाकर पान करना पित्तज मूत्रकृच्छ्रविनाशक तथा बस्तिप्रदेश का शोधन करने वाला कहा गया है।

पंचतृणों का क्वाथ दूध के साथ पीने से लिंगगत प्रदूषित रक्त का निवारण होता है। शतावरी, कास, कुश, गोखरू, बिदारीकन्द, शालवन, ईख, कसेरूकन्द—इनके क्वाथ के ठण्ढा होने पर मधु और शक्कर मिलाकर पीना पित्तज मूत्रकृच्छ्र का नाशक होता है।

दाहजनित, पीड़ायुक्त तथा मलावरोधक वाले मूत्रकृच्छ्र में हर्रें, गोखरू, अमलतास, पाषाणभेद, दालचीनी और अड़ूसा के क्वाथ में मधु डालकर पीने से लाभ होता है।

गुड़मिश्रित आँवला वृष्य, श्रमविनाशक, तर्पक, रेचक और पित्त-रक्तदाह, शूल एवं मूत्रकृच्छ्रनाशक होता है।

छोटी इलायची को गोखरू, मदिरा या केले के रस में बारीक पीसकर पीने से कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है।

कंटकारी, पिठवन, पाठा, मुलेठी और कूठ—ये योग त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र में लाभकारी होते हैं। गुड़ मिला हुआ गरम दूध पीने से सभी प्रकार के मूत्रकृच्छ्र, शर्करानामक प्रमेह तथा वातरोगों में लाभकारी होता है।

सद्योव्रण में कथित चिकित्सा अभिघातज मूत्रकृच्छ्र में उपयोगी कही गयी है। इसके साथ ही निरन्तर वातशामक उपाय भी किये जाने चाहिए। मलोत्पत्र मूत्रकृच्छ्र में स्वेदन, चूर्णसेवन, अभ्यंग, बस्तिकर्म आदि आवश्यक होते हैं।

गोखरू के बीज का काढ़ा बना जवाखार के साथ पीने से भीषण मूत्रकृच्छ्र भी एक बारगी ही दूर हो जाता है। शर्करा प्रमेह, पथरी तथा मूत्रकृच्छ्र में इलायची और हींग के चूर्ण को दूध के साथ घी मिलाकर पीने से लाभ होता है।

गोखरू, अमलतास, डाभ, कास, दुरालभा, पाषाणभेद और हरड़। इनका चूर्ण मधु के साथ प्रयोग करने पर पथरी और मूत्रकृच्छ्र से मरणासन्न व्यक्ति भी स्वस्थ हो जाता है। इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत और छोटी पीपर। इनके चूर्ण को चावल की धोवन या गुड़ के साथ सेवन करने वाला व्यक्ति मृत्यु के मुख में जाने से बच जाता है।

मंडूर के सूक्ष्म चूर्ण का सेवन तीन बार मधु के साथ कर लेने से मूत्रकृच्छ्र का निश्चय ही विनाश हो जाता है। अथवा जवाखार और शक्कर को समान भाग में खाने पर मूत्रकृच्छ्र का शमन होता है। कंटकारी के रस में मधु मिलाकर पीना भी मूत्रकृच्छ्रनाशक होता है।

शतावरीघृत का लाभ

शतावरी, कास, कुश, गोखरू, बिदारीकंद, ईख और आँवला। इनके मिश्रण से पकाये गये घृत या शक्करमिश्रित दुग्ध से पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। गोखरू, रेंड़ की जड़, कुशादि पंचमूल, शतावरी, तरबूज तथा ईख—इनके रस में पकाये गये घृत से आधा गुड़ मिलाकर पान करने पर मूत्रकृच्छ्र, पथरी तथा मूत्राघात आदि रोगों का विनष्टीकरण होता है।

मूत्राघात का उपचार

मल-मूत्रादि वेगों के अवधारण करने के फलस्वरूप वातादि दोष कुपित होकर तेरह प्रकार के मूत्राघात की उत्पत्ति कर देते हैं जो इस प्रकार से हैं।

जैसे—वातकुंडलिका, अष्ठीला, वातबस्ति, मूत्रातीत, मूत्रोत्संग, मूत्रक्षय, मूत्रशुक्र, उष्णवात, मूत्रसाद, विड्विघात, बस्तिकुंडल और मूत्रग्रंथि।

मूत्राघात रोग में स्नेहपान, स्वेदन, नस्य, स्नेहन के द्वारा विरेचन, शोधनकर्म के पश्चात् उत्तरबस्तिकर्म लाभकारी सिद्ध होते हैं।

पाठा वृक्ष की छाल, जवाखार पारिभद्र (फरहद) और काला तिल। इनका अलग-अलग क्षार बनाकर जल में घोल दें।

तदनन्तर इस क्षारयुक्त जल के साथ इलायची और कालीमरिच का चूर्ण मदिरा के सहित पान करें अथवा उक्त क्षारजल में गुड़ मिलाकर पीना चाहिए।

केशर के कल्क को मधु के साथ मिला कर रातभर जल में भिंगोकर प्रातः पान करें। पाठा की छाल का भस्म बना जल में डालकर उसे सात बार निथार लें।

पुनः उसे तैल के साथ पान करें। अथवा केवल काला नमक मदिरा के साथ सेवन करने पर भी मूत्राघात नहीं रह जाता।

एक तोला ककड़ीबीज का कल्क बना सेंधानमक मिला कांजी के साथ पान करने से मूत्राघात नष्ट होता है।

अथवा वीरतरादिगण के क्वाथ में शिलाजीत मिलाकर पीवें। दुरालभा या अड़ूसे के कषाय को पीने से मूत्राघात का निवारण होता है।

गोखरू, रेंड़ की जड़ और शतावरी—इन्हें दूध में पकाकर या पंचमूल में गुड़, घी अथवा दूध को पकाकर पीना मूत्रकृच्छ्र में लाभप्रद होता है।

रक्तस्राव वाले मूत्राघात में चावल की धोवन आधा तोला चंदन घिसकर बार-बार पीने से लाभ मिलता है।

अतिमैथुन के फलस्वरूप दूषित रक्त की विप्लुति में स्त्रीसंसर्ग से विरत रहना ही एकमात्र पुष्टिकर औषधि होती है।

मुरगे की चरबी का तैल, उत्तरबस्तिकर्म में प्रशस्त होता है। क्रौंच के बीज, त्रिफला, दाख, छोटी पीपर और गोखरू—इनके चूर्ण में समान भाग शक्कर मिला दूध, मधु और घृत के साथ घोंटकर अक्ष परिमाण की मात्रा में खाकर जल का पान करें।

चित्रकादि घृत का निर्माण एवं लाभ

चित्रक की जड़, सरिवन, दाख, छोटी पीपर, त्रिफला, मुलेठी और आँवला। प्रत्येक वस्तुओं के अक्ष परिमाण का कल्क १ द्रोण जल, १ द्रोण दूध और ४ प्रस्थ घी डालकर पकावें।

पककर शीतल होने पर उसे छानकर उसमें १ प्रस्थ शक्कर तथा १ पल वंशलोचन डाल दें।

तत्पश्चात् इस घृत को दोष बलानुसार पान करने से शुक्रगत वात, पित्त, कफ, रक्त, ग्रंथि तथा मूत्र-संबंधी सभी रोगों का विनष्टीकरण होता है।

यह घृत जीवनीय, पुष्टिकारक, रोगनाशक, बुद्धिवर्धक तथा समस्त रोगों का अपहारक है। इसके सेवन से वन्ध्या नारी भी शीघ्र ही गर्भाधान में समर्थ हो जाती है।

इसके साथ ही यह रक्तविकार तथा अनेक प्रकार के योनि-संबंधी रोगों से छुटकारा दिलाता है।

अत: मूत्राघात आदि जैसे दुष्कर रोगों में यह घृत सदैव ही ग्रहणीय होता है।

अश्मरी रोग का उपचार

वात, पित्त, कफ और शुक्र—इन चार प्रकार के विकारों से पथरी रोग की उत्पत्ति होती है।

इन चारों में वातादि तीन दोषों से युक्त अश्मरी कफाश्रित रहती हैं। अत: सभी दृष्टियों से पथरी के ये चारों प्रकार अत्यन्त कष्टकारक होते हैं।

सोंठ, गोखरू तथा वरुण की छाल का काढ़ा जवाखार और गुड़ मिलाकर पका लें। इस क्वाथ-पान से दीर्घकालिक वातज पथरी का निवारण होता है। कुम्हड़े के रस में जवाखार और गुड़ मिलाकर पीना मूत्रावरोध, शर्कराप्रमेह तथा अश्मरीनाशक होता है।

अथवा सहिजन की जड़ का काढ़ा बनाकर गुनगुना पीने से पथरी रोग का उन्मूलन होता है।

खस, अरनी काष्ठ, ईश्वरमल्लिका, अडूसा, गोखरू, दीर्घलोहित-यष्टि, पीली कटसरैया, नीली कटसरैया, कास, अम्लबेल, नल नामक तृण, डाभ, वृन्ततृण, एरका, सोनापाठा, मूर्वा (मरोड़फली), कुरंटक, उत्तम और सूर्यबेल—ये सब वीरतरादिगण कहे जाते हैं।

इनसे वातज रोग, पथरी, शर्कराप्रमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात-जैसे रोगों का निर्मूलन होता है।

शतावरी, गोखरू, कटेरी, कंटकारी, ब्राह्मी, नागबला (गंगेरन), सोनापाठा, खस, कटक फल, अमरबेल, वरुना, शाकफल, यव, कुलथी, कोल और अनार के फल। इनके क्वाथ में उषकादिगण के पदार्थों का प्रतिवाप देकर घृत को पका लें। इस घृतपाक के द्वारा वातोत्पन्न पथरी का शीघ्र ही नाश होता है।

खारी मिट्टी, नीलाथोथा (तूतिया), हींग, दोनों प्रकार के कासीस, सेंधा नमक और शिलाजीत उषकादिगण कहे गये हैं। ये सभी मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, मेदोरोग तथा कफजन्य रोगों के उन्मूलक होते हैं।

कुश, कास, रामशर, गुण्ठ, इत्कट, मरोड़फली, डाभ, बिदारीकंद, वाराहीकंद, चौलाई शाक की जड़, गोखरू, सोनापाठा, पाटला, पतंग, कुरंटा, पुनर्नवा (विषखपरा, गदहपूरना) और शिरीष।

इनके क्वाथ में ककड़ी के बीज, नीलकमल, मुलेठी या शिलाजीत का प्रतिवाप देकर घृतपाक तैयार करें। इस घृतपान के परिणामस्वरूप पित्तज पथरी विखंडित हो जाती है।

गुग्गुलु, इलायची, रेणुका, कूठ, मोथा, कालीमरिच, चीता और देवदारु। इनके साथ वरुणादिगण या उषणादिगण में पाचित बकरी का घृत कफोत्पन्न पथरी का तत्काल ही भेदन कर देता है।

वातज पथरी में वातनाशकगण, पित्तज में पित्तशामकगण तथा कफज में कफविनाशकगण के साथ पकाये हुए क्षार, यवागू, मेदा, कषाय और दूध आदि का आहार ग्राह्य है।

वरुणा, दोनों प्रकार की कटसरैया (नीली और पीली), शतावरी, चीता, मरोड़फली, बेल का गूदा, मेढासिंगी, कटेरी, कंटकारी (भटकटैया), दोनों प्रकार के करंज, अरनी, हर्रे, सहिजन, डाभ और हिंताल—ये वरुणादिगण कफ, मेद, अग्निमांद्य, अपानवायु, शिरःशूल, गुल्म तथा विद्रधि रोगनाशक होते हैं।

शुक्रदोषोत्पन्न पथरी रोग में पेठे (कुम्हड़े) के रस में गुड़ और जवाखार मिलाकर पीने से उत्तम फल मिलता है।

सोंठ, वरुणा की छाल, गोखरू और ब्राह्मी। इनके क्वाथ में गुड़ और जवाखार मिलाकर पीने से पथरी निकल जाती है।

वरुणा की छाल, पाषाणभेद, सोंठ और गोखरू—इनके कषाय में जवाखार मिलाकर पीने से पथरी गिर जाती है।

अथवा केवल वरुणा की छाल के कषाय में गुड़ मिलाकर पीना पथरी तथा बस्तिशूल निवारक होता है।

वरुणा के काढ़ा में कूठ, पेठा तथा गोखरू का कल्क मिला घृतपाक करें। इस घृतपान से समस्त प्रकार की पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राभिघात तथा मूत्रावरोध दूर होते हैं।

कुश, कास, रामशर आदि पंचमूल के कषाय में गोखरू का कल्क मिलाकर १ प्रस्थ घी में पकावें। पकने के पश्चात् उसमें शक्कर मिलाकर खायें। इससे पथरी, मूत्रकृच्छ्र तथा जननेंद्रिय के रोगों का निर्मूलन होता है।

वरुणादि घृत का निर्माण एवं लाभ

वरुणे की १०० पल छाल को पीसकर १ द्रोण जल में पका लें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे निथारकर १ प्रस्थ घी में पुनः पकावें। पूरी तरह से पक जाने पर इसे १ अक्ष की मात्रा में पान करें। इसके जीर्ण होने पर अगरु मिलाकर बासी दही

के पानी के साथ पीना पथरी, शर्कराप्रमेह (बीस प्रकार के प्रमेहों में से एक) तथा मूत्रकृच्छ्र का उन्मूलक सिद्ध होता है।

सैंधवादि तैल में दुगुना दूध मिलाकर पूर्वकथित वीरतरादिगण के द्रव्य-समूहों का कल्क बनाकर पकावें। यह तैल पथरी के विनष्टीकरण हेतु सर्वोत्तम कहा गया है। इसे मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र के साथ ही रगड़े या मसले हुए अंगों, टूटे-फूटे अवयवों या प्रस्तरादि से गिरकर आघातित हुए व्यक्तियों पर भी सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया जा सकता है।

प्रमेहमधुमेहपिडिका रोग का उपचार

वातादि दोष के भिन्न-भिन्न रूप या सान्निपातिक रूप के बस्तिगह्वर में पहुँचकर शरीरस्थ (धातुओं—रस, रक्त, मांस, मेद आदि) के कर्षण से स्थानभेदानुसार विविध भाँति के प्रमेह की उत्पत्ति होती है।

इस रोग में श्यामाक (साँवाँ नामक धान्य), कोदो, वनकोदो, गेहूँ, चना, अरहर तथा पुरानी कुलथी ग्राह्य मानी जाती है। इसके विपरीत गुड़, खाँड़, भारी आहार (मत्स्य-मांसादि) आदि पदार्थ अग्राह्य होते हैं।

कटु शाक, जंगलप्रदेशीय मृगों, कुक्कुटों या तीतर आदि पक्षियों के मांसरस, यवान्न के विकार, मूँग, शालिधान्य, साठी का चावल—ये सभी पदार्थ प्रमेह रोग में लाभदायक होते हैं।

दूध, कसेरू, पूतिकरंज, नागकेशर, केवटीमोथा और सिवार। इन्हें जल में पकाकर पीने से शुक्रप्रमेह का निवारण होता है।

त्रिफला, अमलतास और अंगूर। इनके कषाय के ठण्ढा होने पर मधु के साथ पान करने से फेनप्रमेह नष्ट होता है।

पित्तज प्रमेह निदान

यहाँ पित्तजप्रमेह के नाशार्थ चार प्रकार के प्रयोग पृथक्-पृथक् रूप में दिये जा रहे हैं जो इस प्रकार से हैं—

१. लोध, हर्रें, कट्फल (कायफल) और मोथा।

२. वायविडंग, अर्जुन वृक्ष की छाल, पाठा और धामिन।

३. कदम्ब, शाल (सखुआ वृक्ष), अर्जुन की छाल और मोरशिखा।

४. वायविडंग, दारुहलदी, धव के फूल, सोनापाठा, नीलकमल, इलायची, पेठा (कुम्हड़ा) और अर्जुन की छाल।

उक्त चार प्रकार के कषायों में से किसी एक के प्रयोग से पित्तज प्रमेह उसी

प्रकार खंडित हो जाता है जिस प्रकार इन्द्रदेव के वज्रप्रहार द्वारा पर्वत छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

अमलतास, पीपर, न्यग्रोध (गूलर) आदि गण के द्रव्यसमूह, त्रिफला तथा रक्तचंदन के साथ मंजीठ।

इन पाँच प्रकार के क्वाथ में मधु डालकर सेवन करने से नीलमेह, हरिद्राप्रमेह, शुक्रप्रमेह तथा रक्तप्रमेह नष्ट होते हैं।

खजूर, कम्भारी, तेंदुक और गुरुच। इनके अलग-अलग क्वाथों को चित्रक के कषाय में पका लें।

तदनन्तर इसमें चीता, कूठ, हींग और कटुकी चूर्ण को मिलाकर पान करना घृतप्रमेह में लाभकारी होता है।

चन्द्रप्रभा वटि का लाभ

भटेउर, चित्रक, त्रिकटु, त्रिफला, देवदारु, चिरायता, पिपरामूल, मोथा, कचूर, वचा, सोनामाखी, नमक, खार, हलदी, दारुहलदी, धनिया, गजपीपर और अतीस—१-१ कर्ष, शिलाजीत ८ पल, शुद्ध गूगुल २ पल, मंडूर २ पल, शक्कर ४ पल, वंशलोचन १ पल, निशोत तथा दन्ती १-१ पल एवं त्रिसुगंध (इलायची, तेजपात, दालचीनी) १ पल लेकर कूट-पीस लें।

तत्पश्चात् इसे गोघृत में मिलाकर वटी बना लें। इसका नाम चंद्रप्रभा वटी है। भोजन के पूर्व इस वटी को मधु के साथ खाकर रोगानुसार मट्ठा, दही का पानी, बकरे का मांसरस, जंगली हिरनों का मांसरस, दूध या ठण्ढा पानी पीना चाहिए।

इससे अग्निमांद्य, वात-पित्तोत्पन्न पुराना बुखार, नाड़ीव्रण, मर्मव्रण, राजयक्ष्मा, गृध्रसीवात (सायेटिका) एवं अन्यान्य प्रकार के राजरोगों (दुःसाध्य रोगों) का विनाश संभव हो जाता है।

उक्त रोगों के अतिरिक्त यह स्त्रियों के प्रदर, शुक्रक्षीणता, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रवाह, औदरिक रोग तथा सम्पूर्ण प्रकार के वातज रोगों में भी प्रयोक्तव्य होता है।

इसके सेवनकाल में खान-पान, गली-सड़ी, वात और मैथुनादि में भी ग्राह्याग्राह्य का विचार नहीं किया जाता।

इसका सेवन करने वाला हाथी के समान बलवान, घोड़े के समान वेगवान, गरुड़ पक्षी के समान दूर दृष्टि वाला तथा श्रवण में शूकर के सदृश हो जाता है। इसके प्रयोग द्वारा वातादि विकारों, बीस प्रकार के प्रमेह रोगों तथा वलीपलितादि से विमुक्त होकर वृद्ध व्यक्ति भी तरुणावस्था को प्राप्त कर लेता है।

पपरिया कत्था, खैर और सुपारी का क्वाथ पीना मधुमेह (डायबिटीज) रोग में लाभदायक है।

वसाप्रमेह (मूत्र के साथ चरबी का निकलना) में अरनी के कषाय तथा हस्तिमेह (हाथी के समान धीरे-धीरे मूत्र का त्याग) में पाठा, शिरीष (सीसम), क्रौंच, मरोड़फली, पलाश, तेंदू तथा कैथ का कषायपान लाभकारी होता है।

कबीला, सतौना, शाल, (सखुआ), बहेड़ा, रोहिड़ा, कूठ और कैथ के फलों को चूर्णित कर मधु के साथ सेवन करने से कफ-पित्त संबंधी प्रमेह नष्ट होता है।

प्रमेह रोग में दोषानुसार स्नेहन, वमन, विरेचन, निरूहबस्ति कर्म होने के अनन्तर उसे सभी प्रकार के प्रमेह हेतु हलदी और आँवले के रस में मधु मिलाकर पीने चाहिए।

अथवा देवदारु, त्रिफला और मोथे का काढ़ा या त्रिफला, देवदारु, दारुहलदी और मोथे के काढ़े में मधु मिलाकर पीने से सर्वप्रमेह निर्मूल होते हैं।

अथवा कूठ, विजयसार, हलदी, मोथा और त्रिफला—इनके क्वाथ को या गुरुच के स्वरस को शहद के साथ अथवा शाल, कठपाठा, कबीला—इनके कल्क को एक अक्ष की मात्रा में मधु तथा आँवले के रस के साथ पान करने चाहिए।

त्रिफला, दारुहलदी, इन्द्रायण और मोथा—इनकों हलदी के कल्क के साथ पकाकर पीने से सभी प्रमेह दूर होते हैं।

अथवा त्रिफला, शिलाजीत, मंडूर और हरड़—इनमें से किसी एक चूर्ण को मधु के साथ चाटने से सभी प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

न्यग्रोधादि चूर्ण का लाभ

बरगद की छाल, गूलर की छाल, पीपल की छाल, सोनापाठा की छाल, अमलतास, विजयसार, आम्रपाठी, कैथ, जामुन, चिरौंजी, अर्जुन वृक्ष की छाल, धव, महुआ, मुलेठी, लोध, वरुना, फरहद, परवल, मेढ़ासिंगी,दन्ती, चीता, डूम्बरिफल, पूतिकरंज, त्रिफला, इन्द्रयव और भिलावाँ नामक फल—इन्हें समान भाग में लेकर चूर्ण कर लें।

इस चूर्ण का नाम न्यग्रोधादि चूर्ण है। इस चूर्ण को ८ माशे मधु के साथ खाकर १ पल त्रिफला का रस पीने से मूत्रविकार दूर होते तथा मूत्र का शोधन होता है।

इसके द्वारा बीस प्रकार के प्रमेहों का उन्मूलन होकर मूत्रकृच्छ्र से निवृत्ति होती है। इससे पिडिका (प्रमेह के कारण शरीर पर होने वाले फोड़ा-फुंसी का विस्फोट) की उत्पत्ति भी नहीं होती।

त्रिकण्टकादि घृत का लाभ

गोखरू, हलदी, लोध, सफेद कत्था, वचा, अर्जुन, कमलगट्टा, आंवुटा (दीपाधाराच्छादन नामक वृक्षविशेष), नीम, चंदन, अगरु, अजमोदा, परवल, मोथा, मंजीठ, काला अतीस तथा भिलावाँ फल।

इन सबको समान भाग में घृत और तैल के साथ अलग-अलग पका लें। वातज-कफज दोष में तैल, पित्तज में घृत तथा मिश्रित दोषयुक्त प्रमेह में घृत और तैल, दोनों का प्रयोग करने से लाभ मिलता है।

त्रिकटु और त्रिफला के समान भाग चूर्ण में बराबर का गूगुल मिलाकर गोखरू के काढ़ा में घोंटकर वटी बना लें। इस गोली का सेवन बलाबल के अनुसार करें। इससे वातादि दोषों का उपशम होता है।

इसके सेवनकाल में पथ्यापथ्य का कोई निषेध नहीं है। वह इच्छानुसार सभी चीजें खा-पी सकता है। इसके प्रयोग से समस्त प्रकार के प्रमेह, वातज रोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रविकार तथा पथरी रोग का भी निवारण होता है।

कफज प्रमेहनाशक क्वाथ में पकाया गया घृत कफदोष में तथा पित्तज प्रमेहनाशक क्वाथ में पाचित घृत पित्तजनित प्रमेह में लाभकारी होते हैं।

धान्वन्तरघृत का लाभ

दशमूल, दोनों प्रकार का करंज, देवदारु, हर्रे, लाल पुनर्नवा, वरुणा, दन्ती, चित्रक, श्वेत पुनर्नवा, थूहर (सेंहुड़ का पौधा), छोटी कदम्ब, बड़ी कदम्ब, बेल का गूदा, भिलावाँ फल, कचूर, पुष्करमूल और छोटी पीपर।

इन सबके अलग-अलग १०-१० पल, यव, बेर तथा कुलथी को १६-१६ पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। (इसे कुछे विद्वानों ने जल से अठगुना भाग में क्वाथ को माना है।) पकाने पर चौथाई भाग शेषांश में उसे छानकर एक प्रस्थ घी मिलाकर पुनः पाक करें।

दोबारा पकाने के समय उसमें हिज्जल, त्रिफला, भारंगी, सुगंधि तृण (रोहिष तृण), गजपीपर, अदरक, भाभीरंग, वचा और कबीला—इनका कल्क बनाकर मिला दें और अग्निबलानुसार सेवन करें।

इस धान्वन्तर नामक प्रसिद्ध घृत से कोढ़, गुल्म, प्रमेह, सूजन, वातरक्त, पेट का बरवट, बवासीर, विद्रधि, पित्तज रोग, अपस्मार, उन्माद आदि सभी रोगों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

वमन, विरेचनादि कर्मों के द्वारा शरीरशोधन के पश्चात् शुद्ध शिलाजीत को शालसारादिगणों के द्रव्यरस में भिंगोकर उसी रस में खरल कर बलाबल के अनुसार सेवन करें।

सेवनोपरान्त जंगलदेशीय हिरनों का मांसरस पी लें। प्रयुक्त औषधि का परिपाक होने पर पथ्याहार ग्रहण करें।

इस प्रकार १०० पल शिलाजीत सेवन करने वाला मनुष्य मधुमेह, शर्करामेह तथा पथरी आदि दुष्कर रोगों को नियंत्रित कर १०० वर्षों तक स्वस्थ जीवन जीने का सौभाग्य प्राप्त करता है।

इसी भाँति सोनामाखी का प्रयोग करके भी उक्त फल की उपलब्धि कर सकता है।

मेह संबंधी पिडिका (फोड़ा-फुंसी) की अपरिपक्वावस्था में शोथ की चिकित्सा पद्धति अपनायें। पकने के अनंतर व्रणरोग की भाँति तथा पूर्वावस्था में क्षीरीवृक्षों का जल, अजामूत्र तथा तीक्ष्ण औषधों के द्वारा शोधन कर्म हितकर होता है, क्योंकि मल की विषमता से मेही विरेचन के अयोग्य माना जाता है।

एलादिगणसमूहों से पकाया हुआ तैल व्रणरोपक होता है। इसी प्रकार आरग्वधादिगणीय पदार्थों के क्वाथ और उबटन से भी व्रण का पूरण होता है।

असनादिगण के द्रव्यों से परिषेक तथा वत्सगणादि द्रव्यों के पाचित अन्नपान भी रोगविमुक्ति न होने तक किये जाने चाहिए।

प्रमेह रोगी को गरिष्ठ पदार्थ, सौवीर कांजी, मदिरा, तैल, दुग्ध, गुड़, घृत, अत्यम्ल पदार्थ, गन्ने का रस तथा जलीय देशों के जीवों के मांस नहीं खाने चाहिए।

प्रमेही व्यक्ति में स्वच्छ, श्वेत, निरुपद्रवविहीन, कुछ तिक्त और कड़ुए मूत्र का निकलना आदि आरोग्यतासूचक लक्षण माने जाते हैं।

आधा पल पारद और एक पल गंधक की कज्जली बनाकर पत्थर के खरल में घोंट लें। पुनः त्रिफला, त्रिकटु, नागरमोथा, भाभारंग और चीता—इन सबके ३-३ पल और इनके समान लौहकिट्ट।

इनको एकीकृत रूप से खरल करें। तत्पश्चात् १ तोले की मात्रा में इस चूर्ण का सेवन मधु एवं शक्कर के साथ करें।

इस चूर्ण के सेवन से मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, मधुमेह, लिंगज रक्त, शुक्रसंबंधी अष्टदोष तथा बीस प्रकार के प्रमेह रोगों के उन्मूलन होते है। इतना ही नहीं, वरन् वृद्ध पुरुष भी वलीपलितादि रोगों से मुक्ति पाकर यौवनावस्था में आ जाता है।

मोटापा रोग का उपचार

शारीरिक स्थूलता के निवारणार्थ निम्न प्रकार की सावधानियाँ अपेक्षित होती हैं, जैसे—आहार में पुराने चावल, मूँग, कुलथी, वनकोदों तथा कोदों आदि अन्नों

का प्रयोग, बस्तिकर्म, चिन्ता, क्रोध, धूम्रपान, व्यायाम, यन्त्रादि उपकरणों द्वारा रक्त का निष्कासन, उपवास, उपकरणरहित शैय्या में शयन, सत्त्वगुण और उदारता का भाव, तमोगुण का त्याग तथा निद्रानाश आदि निद्रा के विनाशक हैं।

आहार-विहार में संयम, एक बार के किये गये भोजन पचने के अनन्तर दोबारा आहार-ग्रहण, प्रतिदिन व्यायाम सेवन, वाणी पर नियंत्रण तथा यव, गेहूँ आदि खाद्य पदार्थों के सेवन से स्थूलता घटती है।

परिश्रम, चिन्ता, स्त्रीप्रसंग, मार्गगमन, मधुसेवन, जागरण, यवान्न तथा साँवाँ नामक धान्य का आहार लेना भी स्थूलता को मिटाते हैं। प्रात:काल जल में मधु मिलाकर पीने से भी मोटापा दूर होता है।

अथवा वायविडंग, सोंठ, जवाखार, काले लौह की मंडूर और मधु के सेवन तथा आँवला और यवचूर्ण से स्थूलता घटती है।

प्रतिदिन अन्न की गरम-गरम माँड पीने से भी मोटापा दूर होकर कृशता आ जाती है।

अथवा चव्य, जीरा, त्रिकटु, हींग, कालानमक और चित्रक—इनके चूर्ण को सत्तू में मिलाकर दही के पानी के साथ प्रयोग करने से चरबी नष्ट होती तथा जठराग्नि बढ़ती है।

व्योष (सोंठ, कालीमरिच, पीपर), सहिजन की जड़, त्रिफला, कटुकी, कटेरी, कंटकारी, हलदी, दारुहलदी, पाठा, अतीस, शालवन, केतकी की जड़, अजवायन, चीता, कालानमक, कालीजीरी, हाऊबेर—इन सब पदार्थों का चूर्ण १ भाग, घृत १ भाग, मधु १ भाग तथा १६ भाग यवनिर्मित सत्तू।

इन सबका एकीकरण करके किसी रुचिकार और शीतल पेय के साथ पान करें।

इसके प्रयोग से प्रमेह, मूढ़वात, कुष्ठ, अर्श, कामला, पाण्डु, प्लीहा, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरोचकता, हृदय-संबंधी रोग, क्षयरोग, खाँसी, श्वास, गलग्रह, कृमि, ग्रहणी, शैत्य (शीत का प्रकोप) तथा मोटापा आदि कठिन रोगों का शीघ्र ही उन्मूलन होता है।

इसके साथ ही क्षुधाग्नि, शक्ति, बुद्धि तथा स्मरणशक्ति भी बढ़ती है।

त्रिफलादि तैल का लाभ

त्रिफला, अतीस, मरोड़फली, निशोत, चित्रक, अडूसा, नीम, अमलतास, वचा, सतवन, हलदी, गुरुच, अर्जुन की छाल, छोटी पीपर, कूठ, सरसों, सोंठ। इनके मिश्रण से पकाये गये तैल को सुरसादिगण के द्रव्यों के क्वाथ में उबाल लें।

पुनः इसे पान, मर्दन, गंडूषधारण, नस्य तथा बस्तिकर्म के रूप में प्रयुक्त करने पर स्थूलता, आलस्य, कफजनित कम्पन आदि रोग दूर होते हैं।

शिरीष, लामज्जक तृण (सुगंधित तृणविशेष), लोध, नागकेशर—इन्हें पीस कर लेप लगाने से त्वचा के विकार नष्ट होते हैं।

तेजपात, सुगंधवाला, अगरु,खस और चंदन—इनका लेप शरीर की दुर्गन्धि को मिटाता है।

अथवा बेलपत्र के रस में अड़ूसा के पत्तों का रस मिला शंखचूर के साथ प्रयोग किये जाने पर समस्त प्रकार की शारीरिक दुर्गन्धि का नाश होता है।

हर्रें, लोध, नीम की पत्ती, आम की छाल तथा अनार के छिलके का उबटन तथा काकजंघानिर्मित क्वाथ से शरीरांग का सौन्दर्यवर्धन होता है। यह राजरमणियों हेतु एक श्रेष्ठ अंगराग होता है।

अथवा त्रिकटु, चीता, मोथा, त्रिफला, वायविडंग—इनके चूर्ण के साथ समान भाग गूगुल का सेवन करने से मोटापा, कफ तथा आमवातोत्पन्न रोगों का निवारण होता है।

उदररोग का उपचार

वातादि दोषों की प्रकुपितावस्था में शरीरस्थ स्वेदवाहिनी तथा जलवाहिनी नाड़ियाँ अवरुद्ध होकर आठ प्रकार के उदररोगों को उत्पन्न कर देती हैं जिनके नाम इस प्रकार से बतलाये गये हैं—

वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, यकृदाल्युदर, बद्धगुदोदर तथा क्षतोदर।

ऐसी स्थिति में प्राणवायु, अपानवायु तथा जठराग्नि भी दूषित हो उठती है।

इन सब में अत्यन्त दु:साध्य अवस्था जलोदर की मानी जाती है। ऐसी दशा आने पर रोगी के उदर में अत्यधिक जल का संचयन हो जाता है जो असाध्य कहा जाता है।

समस्त प्रकार के उदर रोगों में लालवर्णीय धान्य, यव, मूँग, जंगली मृगमांस का रस, विरेचन, आस्थापन, बस्तिकर्म आदि प्रयोग अवश्य किये जाने चाहिए।

वातोदर में शक्तिशाली रोगी के लिए स्नेहन और स्वेदन कर्म आवश्यक होते हैं। रोगी के स्निग्धित और स्वेदित होने के पश्चात् उसे स्नेहपान के द्वारा विरेचन कराना उचित हैं।

रेचक पदार्थों के प्रयोगोपरान्त भी पेट में अफरा होने पर स्निग्ध, अम्ल तथा लवणयुक्त पदार्थों से एवं निरूहबस्ति के द्वारा रोगी के उपचार किये जाने चाहिए।

सामुद्रादि चूर्ण का लाभ

समुद्रीनमक, काला नमक, सेंधा नमक, विड् नमक, जवाखार, अजमोदा, छोटी पीपर, चीता, अदरक, हींग और कूठ—इनको समान भाग में लेकर चूर्ण बना उसमें घी डालकर भोजनोपरान्त सेवन करें।

इस चूर्ण के उपयोग से वातोदर, गुल्म, अपच, वातदोष, ग्रहणीदोष, अर्श, पाण्डु तथा भगन्दर रोग (गुदाद्वार का रोगविशेष, फिस्चुला) शीघ्र ही निर्मूल हो जाते हैं।

वातोदर में मट्ठे के साथ छोटी पीपर और नमक मिलाकर पीना उचित है। पित्तोदर में शक्कर और कालीमरिच मिलाकर तक्रपान, कफोदर में अजवायन, सेंधा नमक, कालीजीरी तथा त्रिकटु चूर्ण के साथ मट्ठा तथा सन्निपातोदर में त्रिकटु, जवाखार और सेंधा नमक के चूर्ण को मट्ठे साथ पान करना लाभकारी होता है।

एक हजार नग छोटी पीपर को सेंहुड़ के दूध में भिगोंकर भोजन के पूर्व शत्त्यानुसार उदररोग में खाने से लाभ मिलता है। अथवा शिलाजीत, गोमूत्र, गूगुल, त्रिफलाचूर्ण और सेंहुड़ का क्षार—इनके अलग-अलग प्रयोग से उदररोग का शमन होता है।

चावल के कणों को थूहर (सेंहुड़) में दूध में भिंगोकर बनाये गये चूर्ण को पकाकर उसके कषाय को मात्र सात दिन पीने से ही औदरिक नष्ट होते हैं।

अथवा औदरिक रोग को नियंत्रित करने हेतु छोटी पीपर के कल्क का अण्डीतैल के साथ प्रयुक्त करना सर्वश्रेष्ठ औषध है। इससे बढ़कर अन्य कोई प्रयोग लाभप्रद नहीं होता।

दशमूल, दारुहलदी, सोंठ, गुरुच, पुनर्नवा और हर्रे—इनके क्वाथ का पान करना जलोदर, सूजन, श्लीपद (फीलपाँव, हाथीपाँव), गलगंड और वातज रोगों का उन्मूलक होता है।

पटोलादि चूर्ण का लाभ

परवल की जड़, त्रिफला, हलदी और वायविडंग—इन सबका १-१ कर्ष भाग, कबीला २ भाग (२ तोला), नीली ३ भाग (३ तोला) और निशोत ४ भाग (४ तोला)।

इनके चूर्ण को गोमूत्र के साथ पान करें। तदनन्तर जांगल मृग-मांस रस का पेया भी पी लें। इस प्रयोग से विरेचित होने के पश्चात् त्रिकटु चूर्ण दूध में पकाकर छह दिनों तक पान करें।

इस प्रकार पटोलादि चूर्ण का अनेक बार उपयोग करने से जलसंचित असाध्य औदरिक रोग भी निर्मूल हो जाते हैं।

नारायणचूर्ण का लाभ

अजवायन, हाऊबेर, धनिया, सौंफ, कलौंजी या अजमोदा, पिप्पलीमूल, तुलसी, कचूर, वचा, चित्रक, कालीजीरी, सोंठ, कालीमरिच, पीपर, व्योष, त्रिफला, सज्जीखार, जवाखार, पुष्करमूल, कूठ, पाँच प्रकार के नमक और वायविडंग—इनके १-१ भाग, दन्ती ३ भाग, निशोत और इंद्रायण २-२ भाग और सातला ४ भाग।

उक्त रीति से इस नारायण चूर्ण को निर्मित कर लें। जिस प्रकार नारायण (विष्णु) के समक्ष कोई दैत्य अग्रसर नहीं हो पाते उसी प्रकार इसके सेवन से किसी रोग की बढ़ोत्तरी नहीं हो पाती।

इसे उदर रोगियों को मट्ठे के साथ, गुल्म में बड़बेरी (बड़े आकार वाले बेर के फल) के जल, आनाहवात में मद्य, वातज रोगों में प्रसन्ना नामक मदिरा, विड्विबंध में दधिजल, अर्श में अनार के जल, परिकर्त रोग में कांजी, अपच में उष्ण जल तथा भगंदर, पाण्डु, खाँसी, श्वास, गलग्रह, हृदयरोग, ग्रहणीरोग, कोढ़, अग्निमांद्य, ज्वर, श्वानविष, मूलविष एवं कृत्रिमविष में यथायोग्य अनुपान के साथ प्रयोग करने चाहिए।

दशमूलषट्पलिक घृत का लाभ

दशमूल के ५० पल रस में छोटी पीपर, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार के १-१ पल कल्क को मिला लें। तदनन्तर ४ पल दही का पानी और २ प्रस्थ घी डालकर पकावें।

इस घृत के सेवन से औदरिक रोग, सूजन, वातविष्टंभ, गुल्म और अर्शरोग का निवारण होता है।

चित्रक घृत का प्रयोग व लाभ

जल ४ प्रस्थ, गोमूत्र २ प्रस्थ, चीते का कल्क १ प्रस्थ तथां घी १ प्रस्थ। इन्हें घी में पकाकर जवाखार के साथ पीने से औदरिक रोग नष्ट होता है।

वृद्धबिन्दु घृत का लाभ

मदार का दूध २ पल, सेंहुड़ का दूध ६ पल, (आवश्यकतानुसार जल), कबीला, श्यामा, अमलतास, सफेद किणही, नीली, निशोत, दन्ती, चोरहुली और चित्रक—इनके १-१ प्रस्थ कल्क को १ प्रस्थ घी डालकर पाक करें।

पकने के पश्चात् इस घृत की एक बूँद बद्धकोष्ठ वाले रोगी को पिलाने से सुगमतापूर्वक मल बाहर आ जाता है। इसकी जितनी बूँदें प्रयुक्त की जायेंगी उतनी ही बार मल का नि:सरण भी तेजी से होगा।

इस घृत से गुल्म (गाँठ), कुष्ठ, उदावर्त, सूजन, भगन्दर तथा आठ प्रकार

के औदरिक रोग उसी प्रकार समूल नष्ट हो जाते हैं जैसे इन्द्र के वज्राघात से पेड़-पौधे। इसे बिन्दुघृत के नाम से जाना जाता है।

इस घृत के शरीर पर मालिश करने मात्र से ही कब्जियत दूर हो जाती है।

उदर कृत प्लीहा रोग का उपचार

अजवायन, चीता, जवाखार, छोटी पीपर, दन्ती और ममचा—इनका चूर्ण बना गरमजल, दधिजल या मदिरा के साथ पीने से प्लीहा रोग निर्मूल होता है।

पलाशक्षार के जल में भिंगोकर पकायी गयी छोटी पीपर के प्रयोग से प्लीहा की वेदना का शमन तथा क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

अथवा भाभीरंग, चीता, सेंधा नमक और यवनिर्मित सत्तू में वचा का चूर्ण दूध में उबालकर पीना गुल्म, प्लीहा और उदररोगनाशक होता है।

मदार के पत्ते को नमक के साथ अन्तर्धूमविधि से पकाकर दूध या जल के साथ पिप्पलियों का प्रयोग करें।

अथवा प्रयोगविधानानुसार दूध या दही के साथ जवाखार का पान करें। भिलावाँ, कालीजीरी और गुड़ के कल्क को मिलाकर मोदक बना लें। इस मोदक के प्रयोग द्वारा एक सप्ताह में ही प्लीहा रोग निर्मूल हो जाता है।

सहिजन के क्वाथ में सेंधा नमक, चित्रक और छोटी पीपर को मिलाकर पान करें। अथवा जवाखार के साथ पलाशक्षार का मिश्रण प्रयुक्त करें।

यकृत रोग में नमकयुक्त तिलों का, षट्पलिक घृत तथा प्लीहा रोग में कथित प्रयोगों का उपयोग करें।

अथवा यकृत् (लीवर) और प्लीहा रोग से त्राण पाने के लिए लहसुन, छोटी पीपर और हर्रें को खाकर एक चुल्लू गोमूत्र का पान करना लाभप्रद कहा गया है।

शरपुंखा (झुंझरू) के कल्क को मट्ठे के साथ पीने से यकृत् और प्लीहा रोग निश्चय ही निर्मूल हो जाता है।

रोहड़ा, हरड़ और मधु—इन्हें गोमूत्र में भिंगोकर जल के साथ पान करने से प्लीहा, प्रमेह,बवासीर, कृमि तथा गुल्म रोग नष्ट होते हैं।

चिकित्सक को चाहिए कि वह प्लीह रोगी को दही के साथ कूठ खिलाकर उसकी दाहिनी भुजा के मध्य भाग में शिरोच्छेदन करे तथा साथ-ही-साथ शिराव्रण के मार्ग से सम्पूर्ण दूषित रक्त के निष्कासन हो जाने पर रोगमुक्ति संभव होती है।

दन्ती घृत का लाभ

दन्ती के ४ प्रस्थ क्वाथ में दन्ती का कल्क मिला १ प्रस्थ घी में पका लें। इस घृतपान से **प्लीहा, कामला और पाण्डुरोग** विनष्ट होते हैं।

चित्रक घृत का लाभ

१०८ पल चित्रक क्वाथ में १ प्रस्थ घृत, १ प्रस्थ कांजी और ४ प्रस्थ दही का पानी डालकर पकावें। पकाने के समय उसमें पंचकोल, तालीशपत्र, जवाखार, लौंग, श्वेत जीरा, स्याहजीरा, हलदी, दारुहलदी और कालीमरिच—इनके १-१ पल कल्क को भी मिला दें।

उक्त घृतपाक के सेवन से प्लीहा, गुल्म, औदरिक रोग, अफरा, पाण्डु, अरोचकता, ज्वर, वस्तिशूल, हृत्शूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, उदावर्त, पीनस (नकसीर), सूजन, मंदाग्नि तथा भस्मक रोग (एक रोगविशेष जिसमें भोजन के बाद भी भूख लगी रहती है।) का नियंत्रण होकर बल-वर्ण की वृद्धि होती है।

पिप्पली घृत का लाभ

घृत में छोटी पीपर के कल्क को डालकर घी से चौगुना दूध मिलाकर आग पर पकावें। यह घृत प्लीहा, अग्निमांद्य तथा हृदय के रोगों को नियंत्रित करता है।

रोहितक घृत का लाभ

२ प्रस्थ बड़बेर के कषाय में २५ पल रोहिड़ा की छाल को पकावें। पककर चौथाई भाग रह जाने पर ५ पल पंचकोल तथा ५ पल रोहिड़ा की छाल को चूर्णित कर मिला दे। तत्पश्चात् उसे १ प्रस्थ घी में पाचित करें।

इसके प्रयोग से प्लीहा की पीड़ा, गुल्म, उदर, श्वास, कृमि, पाण्डु और कामला रोग नष्ट होते हैं।

महारोहितक घृत का लाभ

रोहिड़ा की छाल १०० पल और ४ प्रस्थ बेर को कूट-पीसकर १ द्रोण जल में पाक करें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ घी, ४ प्रस्थ बकरी का दूध तथा १-१ अक्ष की मात्रा में त्रिकटु, त्रिफला, हींग, जवाखार, पुष्करमूल, अजवायन, धनिया, विड् नमक, स्याहजीरा, काला नमक, अनार, देवदारु, पुंडरिया, इन्द्रायण, वायविडंग, हाऊबेर, चविका और वचा। उक्त वस्तुओं का कल्क बनाकर उस क्वाथ में मिलाकर पकावें।

भली प्रकार से घी के पक जाने पर किसी स्वच्छ पात्र में रख लें। अब मलशोधन के निमित्त रोगी को पहले त्रिफला क्वाथ को मांसरस, यूष या दूध के संग पीकर अपने कोष्ठ की शुद्धि कर लेनी चाहिए।

तदनंतर इस घृतपान से यकृत्, प्लीहा, औदरिक रोग, यकृत्प्लीहा-संबंधी पीड़ा, हृत्शूल, कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, मलावरोधकशूल, कामला, पाण्डु, सभी प्रकार के अतिसार (डायरिया), आलस्य तथा ज्वरादि रोग निर्मूल होते हैं। यह महारोहितक नामक घी प्लीहा रोग की सर्वश्रेष्ठ औषधि कही गयी है।

शोथोदर रोग का उपचार

हर्रै, सोंठ, देवदारु, पुंडरिया और गुरुच। इनका कषाय बनाकर गोमूत्र और गूगुल के साथ पीने से पेट की सूजन दूर होती है।

अथवा दशमूल के क्वाथ में अण्डीतैल, गोमूत्र में त्रिफला क्वाथ मिलाकर पान करना वातोदर, शोथ और शूल का विनाशक होता है।

पुनर्नवा, नीम, परवल, सोंठ, कटुकी, गुरुच, दारुहलदी और हर्रै। इन सबका कषाय बनाकर पीने से खाँसी, पीड़ायुक्त शोथोदर तथा श्वासयुक्त पाण्डुरोग का विनष्टीकरण होता है।

गदहपूरना, दारुहलदी, हर्रै और गिलोय। इनके कषाय का पान गोमूत्र या महिषाक्ष प्रजाति के गूगुल के साथ करने से त्वक्दोष, शोथोदर, पाण्डु, मोटापा, प्रसेकार्द्र, कफ आदि रोगों का उन्मूलन होता है।

अथवा शोथोदर रोग में भैंस के दूध में गोमूत्र या त्रिफला चूर्ण के साथ गोदुग्ध का पान करें या क्षीरान्नभोजी रहकर केवल गोमूत्र का पान करें।

पुरातन मानकंद का कल्क १ भाग, चावल २ भाग, कच्चा यव १ भाग तथा दूध ८ भाग। इन सबको पकाकर खीर बना लें।

इसके प्रयोग से **वातोदर**, **सूजन**, **ग्रहणी** तथा **पाण्डुरोग** विनष्ट होते हैं। इस प्रयोग को चिकित्सकों ने सर्वोत्तम कहा है।

पुनर्नवा, देवदारु, गुरुच, पाठा, बेल, गोखरू, कटेरी, कंटकारी, हलदी, दारुहलदी, छोटी पीपर, चीता और अड़ूसा।

इनके बराबर भागों का चूर्ण बनाकर गोमूत्र के साथ पीने से प्रत्येक प्रकार की शारीरिक सूजन, अष्ट प्रकार के औदरिक रोग तथा उग्ररूप वाले व्रण विनष्ट होते हैं।

पूर्वोक्त रोगियों को अधिक मात्रा में जल का पान, दिन में शयन, भारी तथा जलनकारी वस्तुओं का भोजन, व्यायाम तथा वाहनारोहण करना अपथ्यरूप होता है। अतः इनका परित्याग कर देना आवश्यक है।

शोथ रोग का उपचार

शुष्क मांसभक्षण, विषम भोजन, उपवास, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग आदि के फलस्वरूप दूषित वायु, पित्त, रक्त और कफ को प्रदूषित करके बाह्य नाड़ियों में समायोजित कर देता है जिसके कारण गतिरोध होने से वह त्वचा तथा मांसस्थ उन्नत और सघन रूप में सूजन की उत्पत्ति करता है।

इसी हेतु शोथ को सन्निपातज भी कहा जाता है; किन्तु विशेष कारणों से

उत्पन्न होने वाले शोथ नव प्रकार के होते हैं, जैसे—वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, सन्निपातज, विषज, और अभिघातज।

सोंठ, पुनर्नवा, रेंड़ की जड़ और लघुपंचमूल—इनके पकाये हुए जल को वातज शोथ में पान करना लाभकारी होता है।

पित्तज शोथ में दुग्धाहार ग्रहण करते हुए निशोत, गुरुच और त्रिफला कषाय या अक्ष परिमाण में त्रिफलाचूर्ण, कफज शोथ में पुनर्नवा, सोंठ, निशोत, गुरुच, अमलतास, हर्रें, देवदारु के कल्क अथवा गूगुल के साथ गोमूत्र का पान करना लाभप्रद होता है।

स्याहजीरा, पाठा, मोथा, पंचकोल, कटेरी और हलदी। इनके चूर्ण का सेवन गुनगुना जल के साथ करने से दीर्घकालिक त्रिदोषज शोथ का उन्मूलन होता है।

इस रोग में चरक में वर्णित पिप्पलीविरजक नामक योग में प्रयुक्त होने वाली हर्रें के स्थान में गजपीपर का प्रयोग करना उचित है।

अदरक के रस में पुराना गुड़ मिलाकर बकरी के दूध के साथ पीने से सभी प्रकार के शोथ दूर होते हैं।

पुनर्नवा, देवदारु और सोंठ—इनका क्वाथ अथवा केवल गोमूत्र या दशमूल के क्वाथ में गूगुल मिलाकर पान करने से शोथ का विनष्टीकरण होता है।

बेलपत्र के रस में कालीमरिच का चूर्ण मिलाकर पीना त्रिदोषज शोथ, बवासीर, पाण्डु और कामला रोग का नाशक होता है।

इसके अतिरिक्त गुड़, छोटी पीपर और सोंठचूर्ण के सेवन से शोथ, आमारोचक शूलनाशक तथा बस्तिस्थान का शोथ नष्ट होता है।

शोथ रोग में गोमूत्र के साथ गूगुल, दूध के साथ छोटी पीपर, गुड़ के समान भाग में हरड़ या गुड़ के साथ सोंठ का प्रयोग करना भी लाभदायक होता है।

गुड़-अदरक, गुड़-सोंठ, गुड़-हरड़, गुड़-पीपर या गुड़-त्रिफला—इनमें से किसी एक का पन्द्रह दिन या एक मास प्रयोग करने पर शोथ, प्रतिश्याय (सर्दी-जुकाम), मलसंबंधी रोग, मुखरोग, साँस, खाँसी, अरुचि, पीनस, पुराना बुखार, अर्श, ग्रहणी तथा वातज-कफजनित सम्पूर्ण रोग विनष्ट हो जाते हैं।

पुष्करमूल के कल्क को दूध में उबालकर पीने से प्लीहा और सर्वांगशोथ का नाश होता है। देवदारु, पुनर्नवा और सोंठ—इनका पाचित जल या चित्रक, त्रिकटु, निशोत और देवदारु।

इन्हें दूध में पकाकर पीने से शोथ रोग का निवारण होता है।

अडूसा, गुरुच और कटेरी—इनके काढ़ा में मधु डालकर पीने से कुष्ठ, सूजन, खाँसी, साँस, ज्वर तथा वमन आदि रोग नष्ट होते हैं।

मदार और पुनर्नवानिर्मित क्वाथ से शोथ स्थान को सेंकने से भी लाभ होता है।

अथवा मुलेठी, दूध, काला तिल और नवनीत—इनके साथ तथा शालपत्र के वृन्तों से भिलावाँ कल्क का लेप भी शोथघ्न होता है।

विषोत्पन्न सूजन में पूर्वकथित विषाधिकार प्रकरण में दी गयी क्रियाओं का अवलंबन करना उचित होता है।

पुनर्नवा, चीता, देवदारु, पंचोषण (सोंठ, कालीमरिच, पीपर, पिपरामूल और चीता), सरल वृक्ष का गोंद और हर्रे—इनके कल्क को दशमूल के काढ़ा में घी डालकर पका लें। इस घृत को भी शोथनिवारक कहा गया है।

अथवा पंचकोल और कुलथी के काढ़े में पुनर्नवा-कल्क मिला घृत के साथ पकावें। यह घृत भी शोथघ्न होता है।

दशमूल के काढ़ा में सोंठ का कल्क मिलाकर घी के साथ पाक कर लें। यह घृत शोथ तथा आमदोषज ग्रहणी रोग को भी दूर करने में सक्षम होता है।

चित्रकादि घृत का प्रयोग

चीता, धनिया, पाठा, अजवायन, अजमोदा, त्रिकटु, अम्लबेंत,बेल का गूदा, अनार, छोटी पीपर और चव्य। इन सबको एक-एक अक्ष की मात्रा में लेकर पीस डालें और ४ प्रस्थ जल में पकावें।

चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ घी मिलाकर पुन: पाक करें। इस घृत के सेवन से क्षुधाग्निवर्धन होकर बवासीर, गुल्म और शोथ रोग का निर्मूलन होता है।

चित्रक कल्क से लेपित मृत्तिका कलश में दधिमिश्रित दूध को डालकर भलीभाँति मथित तक्र में चीता की जड़ का कल्क मिलाकर बकरी के घी में पका लें। इस घृत के प्रयोग से सूजन, अर्श, अतिसार, वातगुल्म और प्रमेह का निर्मूलन होकर क्षुधाग्निवर्धन भी होता है।

मानक घृत का लाभ

मानकंद के काढ़ा में मानकंद का कल्क मिलाकर १ प्रस्थ घी में पकावें। पकने पर इस घृत से एक दोषज, द्विदोषज और त्रिदोषज शोथ का विनाश होता है।

शैलेयादि तैल का प्रयोग

भूरिछड़ीला, कूठ, अगरु, देवदारु, रेणुका, दालचीनी, इलायची, कमलगट्टा, सुगंधवाला, पलाश के बीज, प्रियंगु पुष्प, थुनेर, नागकेशर, बालछड़, तालीशपत्र, केवटीमोथा, तेजपात और धनिया, गंधाबिरोजा, सुंगंध तृण, छोटी पीपर और नखी नामक द्रव्य।

इनके कल्क को तैल में पकावें। इस तैल के मालिश करने तथा उक्त द्रव्यों को पीसकर लेपन करने से वातजनित शोथ दूर होते हैं।

शुष्कमूलादि तैल का लाभ

सूखी मूली, पुनर्नवा, देवदारु, मोथा और सोंठ। इनके कल्क को तैल में पकाकर शिलारस के साथ अंगों पर मालिश करने से शोथ का नाश हो जाता है।

कंसहरीतकी का लाभ

चार प्रस्थ (कंस) दशमूल के कषाय में १०० नग हरड़ और १०० पल गुड़ मिलाकर पकावें। पककर लेह की भाँति गाढ़ा और ठण्ढा होने पर उसमें २-२ तोले की मात्रा में त्रिकटु, त्रिसुगंध, जवाखार तथा आधा प्रस्थ मधु भी डाल दें।

इससे श्वास, **ज्वर**, **अरुचि**, **प्रमेह**, **गुल्म**, **प्लीहा**, **त्रिदोष**, **औदरिक रोग**, **पाण्डुरोग**, **दुर्बलता**, **आमवात**, **रक्तपित्त**, **अम्लपित्त**, **वर्णाविरूपता**, **मूत्रदोष**, **वातदोष** तथा **वीर्यदोष** का निवारण होता है।

पुनर्नवालेह का प्रयोग

पुनर्नवा, गुरुच, देवदारु और दशमूल। इनके ४ प्रस्थ काढ़ा में १ प्रस्थ अदरक के रस को डालकर १०० पल गूगुल को पका लें। पकने के पश्चात् ठण्ढा होने पर त्रिकटु, तेजपात, इलायची, दालचीनी—इनके २-२ तोले चूर्ण तथा ३२ तोले शहद का मिश्रण कर चाटें।

इस पुनर्नवा लेह से सूजन, पीड़ा, खाँसी, साँस, अरुचि आदि विनष्ट होते तथा जठराग्नि का वर्धन होता है।

शोथ रोगी को पीसे हुए अन्न, अम्ल और नमकीन खाद्य, मदिरा, मृत्तिका, दिन में शयन, जांगलप्रदेशीय मृगमांस के अतिरिक्त भारी पदार्थ के सेवन से बचने चाहिए।

वृद्धिब्रध्न रोग का उपचार

दीर्घकालिक वातवृद्धि में गूगुल या अंडीतैल को दूध में मिलाकर पान करने से रोगमुक्ति होती है।

अथवा एक मास तक अंडीतैल में दूध डालकर पीना चाहिए।

इसके अतिरिक्त नारायण तैल का प्रयोग पान करने, अभ्यंग करने या बस्तिकर्म में प्रयुक्त किये जाने पर भी आशातीत सफलता मिलती है।

चन्दन, मुलेठी कमलगट्टा, खस और नीलकमल—इनको दूध में पीसकर शरीर पर लेप लगाने से वातज जलन दूर होकर शोथरोग निर्मूल होते हैं।

पित्तवृद्धि में बरगद, गूलर, पीपर, पाखर और बेंत—इन पाँच वृक्षों की छाल का कल्क घी में मिलाकर लेपन करना उपयोगी होता है।

रक्तवृद्धि में संयंत्र से रक्त का निष्कासन कराने से लाभ होता है। कफवृद्धि में उष्ण पदार्थों (सोंठ आदि वस्तुएँ) को गोमूत्र में पेषित कर प्रलेपित करें।

अथवा धूपसरल के क्वाथ का पान गोमूत्र के साथ करना लाभप्रद होता है।

मेदोत्पन्न वृद्धिरोग में पहले स्वेदन देकर सुरसादिगण के द्रव्यों से या शिर को विरेचित करने वाले द्रव्यों को गोमूत्र में हलका गरम करके प्रलेपित करें।

मूत्रोत्पन्न वृद्धिरोग में स्निग्ध पदार्थों द्वारा स्वेदन करके वस्त्राच्छादित कर दें और सीवन के निचले भाग को शस्त्र या प्राणिमुख से वेधित कर दें।

इसके लिए मुख्यतया बद्ध व्रण का आरोपण करना चाहिए। आँतों के द्वारा उत्पन्न वृद्धिरोग यदि अंडकोश में प्रविष्ट न हुआ हो तो उसके लिए वातवृद्धि के समान उपचार करना आवश्यक है।

रास्ना, मुलेठी, गुरुच, एरण्डमूल, खिरेंटी और गोखरू—इनके क्वाथ में अंडीतैल मिलाकर पान करने से अंत्रवृद्धि (आँतों का बढ़ना) रोग का विनष्टीकरण होता है।

अथवा अंडी के तैल में खिरेंटी को पकाकर पीने से अफरा तथा पीड़ायुक्त आँतवृद्धि का निवारण होता है।

हर्रें को गोमूत्र में पकाकर प्रतिदिन प्रातःकाल तैल और नमक के साथ सेवन करने पर कफवातजनित अंडरोग दूर होते हैं।

गोमूत्र में हरड़ को पकाकर उसे अंडीतैल तथा सेंधानमक के साथ पुनः पकाकर खायें और उसके बाद गरम जल का पान करें। इसके द्वारा वात-कफोत्पन्न वृद्धि नष्ट होती है।

नित्यप्रति प्रातःकाल त्रिफला क्वाथ को गोमूत्र के साथ पीने से यौवनावस्था में कफ-वातोत्पन्न अंडकोश की सूजन नहीं रह जाती।

धूपसरल, अगरु, कूठ, देवदारु और सोंठ—इन्हें गोमूत्र और कांजी में पीसकर पीने से कफ-वातजनित शोथ नष्ट होते हैं।

हर्रें के कल्क को छोटी पीपर और सेंधानमक के साथ अंडीतैल में मिलाकर पीने से वृद्धिरोग दूर हो जाते हैं।

गोधृत में सेंधानमक को मिलाकर चुक्रभाण्ड में एक सप्ताह तक स्थापित कर उसे सूर्यकिरणों के ताप में पकावें।

इसके सेवन से अंडवृद्धि दूर होती है। अथवा वचा और सरसों का कल्क बनाकर शोथ स्थान पर लेप लगाने से सूजन नहीं रह जाती।

दोष की वृद्धि होने से बस्ति (पेड़ू) के नीचे जाँघ और जननेंद्रिय की भीतरी संधि में गाँठ की तरह का शोथ उत्पन्न कर देता है।

इसी को ब्रघ्नरोग कहा जाता है। ऐसी अवस्था अत्यन्त गरिष्ठ, अभिष्यंदी तथा अपरिपक्व पदार्थों के सेवन करने से आती है।

इसकी उत्पत्ति होने पर ज्वर, शूल और शारीरिक जलन रहती है।

ऐसा मानना है कि जिस किसी व्यक्ति में पहले उपदंश रोग (सिफिलिस) होकर दब गया हो उसी में इस रोग की उत्पत्ति देखी जाती है।

बेल, कैथ, सोनापाठा, चीता, कटेरी, कंटकारी, श्यामा, पूतिकरंज और सहिजन की जड़ को लेकर उसमें सोंठ, भिलावाँ, पीपर, गठिवन, चव्य, पंचलवण, जवाखार और अजमोदा मिला चूर्ण बना लें।

इस चूर्ण को गरम जल या मट्ठे के साथ पीने से ब्रध्नरोग समाप्त हो जाता है।

गेहूँ और कुन्दरू के कल्क को भेंड़ी के दूध में किंचित् गरम लेप लगाने से ब्रध्नरोग में लाभकारी होता है।

बृहत्सैन्धवादि तैल का प्रयोग

सेंधानमक, मदनफल (मैनफल), कूठ, सोया, समुद्रफल, वचा, सुगंधवाला, मुलेठी, भारंगी, देवदारु, सोंठ, कायफल,पुष्करमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, वायविडंग, अतीस, अनन्तमूल, रेणुका, नील, सरिवन, बेल का गूदा, अजमोदा, पीपर, दन्ती और रास्ना।

इनके कल्क को अंडी या तिलतैल में पका लें। इस तैल की मालिश करने से कफ-वात, ब्रध्न, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह तथा आढ्यवात रोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

गलगंड, गण्डमाला, ग्रंथि अर्बुद और अपची आदि रोगों का उपचार

किसी व्यक्ति के गले में लघु या बृहदाकार शोथ जब स्थिरभाव से अंडकोश के समान नीचे की ओर लटकता रहता है तब उसे गलगंड रोग के नाम से जाना जाता है।

इसके शमनार्थ रोगी को यव, मूँग, परवल, कटु और अम्ल पदार्थों का भोजन, वमन तथा रक्तमोक्षण के प्रयोग करने चाहिए।

समुद्रफल, सहिजन के बीज या दशमूल के कल्क को वातज रोग में थोड़ा गुनगुना प्रलेप लगाये।

अथवा रेंड़ और पलाश की जड़ को चावल की धोवन में पीसकर गलगंड में प्रयुक्त करें। सरसों, सहिजन के बीज, सन के बीज, तीसी, यव तथा मूली के बीजों

को खट्टे मट्ठे में पीसकर लेपित करने से गलगंड, गंडमाला, तथा गलग्रंथिरोग अल्पकाल में ही नष्ट हो जाते हैं।

पुराने तरबूज के रस में विड् नमक और सेंधा नमक मिलाकर नाक से सूँघने पर नवीन गलगंड रोग निश्चय ही दूर हो जाता है।

लौहकिट्ट को भैंस के मूत्र में कुछ समय तक भिंगोकर अंतर्धूम की विधि से भस्म बनाकर उसे शहद के साथ चाटें तो गलगंड का निवारण होता है।

जिह्वा के पार्श्व के नीचे बारह नाड़ियाँ अवस्थित होती हैं जिनमें दो नाड़ियाँ स्थूल होती हैं।

इन दोनों को सँड़सी के द्वारा धीरे-धीरे दबाकर कुशपत्र नामक संयंत्र से छेदित कर रक्त को बाहर निकाल दें।

रक्तमोक्षण के अनन्तर घाव पर गुड़ और अदरक को पीसकर लगा दें।

ऐसी स्थिति में कफनिवारक पदार्थों का भोजन और कुलथी का यूष सेवन करना उत्तम है।

दोनों कानों के बाहरी संधिस्थल के बीच ऊपर की तीन नाड़ियों को गलगंड रोग में छिद्रित कर देना लाभप्रद होता है।

भाभीरंग, जवाखार, सेंधानमक, रास्ना, चित्रक, त्रिकटु और देवदारु—इनके कल्क को कड़ुई तुम्बी के रस में मिलाकर कड़ुए तैल में पकावें।

इस तैल का नस्य लेने से दीर्घकालीन गलगंड रोग भी समाप्त हो जाता है।

गोरखमुंडी के पत्तों का निचोड़ा हुआ रस आधा-आधा पल पीने से अपची, गंडमाला तथा कामला रोग का निर्मूलन होता है।

वनकपास की जड़ को चावल के साथ पीसकर उसकी पूरी बनाकर खाने से भीषण अपची भी दूर हो जाती है।

विशेष—जब गंडमाला पककर फूट न रहा हो, उसके अधपका रहने पर ही उसमें से पीब निकल रहा हो, कोई-कोई नष्ट होकर नये निकल भी रहे हों तो इसे अपची नाम से संबोधित किया जाता है।

सहिजन की जड़ और देवदारु को कांजी के साथ पीसकर गरम लेप लगाने से उग्रतम अपची भी नष्ट हो जाती है। तोरई या तुम्बी के रस में छोटी पीपर मिलाकर नस्य लें।

अथवा अरिष्टादि तैल या वचा और छोटी पीपर के चूर्ण में मधु मिलाकर नस्य लेने से भी अपची समाप्त हो जाती है।

वातादि दोष के प्रकोप से मांस, रक्त, मेद तथा नाड़ियाँ भी प्रदूषित हो जाती है जिनके फलस्वरूप बड़ी-बड़ी गाँठों के रूप में शरीर पर सूजन उत्पन्न हो जाती है।

ऐसी अवस्था को ग्रंथिरोग कहा जाता है। अपक्व ग्रंथिरोग में शोथ की चिकित्सा विधि का प्रयोग करना चाहिए। पक जाने पर उसे खरोंचकर उसमें से मवाद को निकाल दें।

तदनंतर व्रणरोगोक्त औषध उपचार से व्रण का रोपण करे। ग्रंथिरोग में कटेरी, कटुकी, गुरुच, भारंगी, सोनापाठा, बेल के गूदा का रस, सहिजन की छाल और सोंठ—इनको गोमूत्र में पीसकर लेप लगाने से रोगमुक्ति संभव होती है।

पित्तज, ग्रंथिरोग में जोंक के द्वारा रक्तनिष्कासन, क्षारजल से सिंचन तथा काकोल्यादिगण के पदार्थों से निर्मित क्वाथ में शक्कर मिलाकर पान करना लाभकारी होता है।

कफज ग्रंथि में महुआ, जामुन, अर्जुन और बेंत। इनकी छाल को पीसकर लेप लगायें।

उसमें से पीब का बहाव हो जाने के पश्चात् दन्ती की जड़, चित्रक की जड़, सेहुड़ की जड़, मदार का दूध,पुराना गुड़, भिलाँवे की गुठली और हीराकसीस— इनको लेपित करने से गाँठ ही नहीं बल्कि पत्थर का भी भेदन हो जाता है।

मर्मस्थलों में उत्पन्न न होने वाली अपक्व गाँठों को खुरच कर अग्नि से जला दें या उनका क्षार द्वारा प्रतिसारण करें।

शास्त्रोक्त विधि से सुपरिचित चिकित्सक को अर्बुद रोग (ग्रंथि के समान ही शरीर में मांस की गाँठें उभरना) में भी मुख्यत: ग्रंथिरोगोक्त विधि से चिकित्सा करनी चाहिए।

वातज अर्बुद में चिकने मांस का वेशन बना कर लेपन, स्वेदन, सिंगी के द्वारा नाभि-प्रदेश से रक्त निष्कासन आदि कर्म करने चाहिए।

पित्तज अर्बुद में मृदु स्वेद, मृदु प्रलेप, पित्तशामक पथ्य, विरेचनादि के कर्म प्रशस्त होते हैं।

गूलर और गोजिया के पत्तों में मधु मिलाकर लेप लगाने से अर्बुद नष्ट होता है।

अथवा राल, प्रियंगुपुष्प, जलमहुआ, लोध, रसौत और मुलेठी। इनको बारीक पीसकर लेपित कर रुग्ण स्थान में पोई का रस लगाकर उसके पत्तों को लपेट देने से भी अर्बुद रोग जाता रहता है।

शंख का चूरा और सूखी मूली का भस्म बनाकर लेप लगाना कफज अर्बुद का विनाशक होता है।

इसे प्राय: गंधादि में प्रयुक्त करने से विशेष लाभ मिलता है।

लोबिया, खली, कुलथी और मांस। इन्हें दही के साथ खूब घोंटकर लेप लगायें। इसके लपेनकाल में व्रण को कृमियों तथा मक्खियों के संक्रमण से बचायें।

घाव में कुछ दोष की वर्तमानता रहने और कृमिपातन की दशा में उसे शस्त्र द्वारा खुरचकर उसकी जड़ में काँच, ताँबे या लोहे की शलाका से अग्निदग्ध कर दें।

इस प्रकार रोगी की शक्ति के अनुसार बारम्बार क्षारप्रयोग, अग्निप्रयोग तथा शस्त्रप्रयोग करते रहना आवश्यक है।

स्वयं पक्वित होने वाले अर्बुद विनाश के लिए व्रणपाकोक्त की विधि अपनानी चाहिए।

किसी-किसी का ऐसा अभिमत है कि मर्मस्थलोत्पन्न अर्बुद के शमनार्थ प्रतिदिन कांजी और मट्ठे के साथ पीसी हुई पोई शाक के कल्क में नमक डालकर लेप लगायें।

थूहर (सेंहुँड़) और गंडारिका अथवा नमक और सीसे के द्वारा विधिवत् स्वेदन कर्म किये जाने पर भी अर्बुद का निर्मूलन होता है।

हलदी, लोध, मुलेठी, गृहधूम और मैनसिल। इनके चूर्ण में अधिकाधिक मात्रा में मधु मिलाकर लेप लगाने से मेदोत्पन्न अर्बुद का उन्मूलन होता हैं।

यही प्रयोग शर्करार्बुद में भी उपयोगी माना जाता है। सरसों, नीम के पत्ते तथा भिलावाँ फल को अन्तर्धूम की रीति से भस्म करके बकरी के मूत्र में मिलाकर लेपित करने से अपची के साथ-ही-साथ अर्बुद रोग भी निर्मूल हो जाता है।

एड़ी से एक बालिश्त (१२ अंगुल) स्थान छोड़कर इन्द्रबस्ति के पशवाड़ों को विदीर्ण करने के पश्चात् वहाँ से मछली के अंडों के समान जालरूपी दोषों को निकालकर अग्निकर्म करना उचित है।

अथवा मणिबंध (कलाई) के ऊपर एक अंगुल का स्थान छोड़कर पूर्वकथित प्रक्रियाओं के द्वारा सभी प्रकार की अपची का निवारण होता है।

शाखोटक तैल की मालिश करने अथवा नीम, बाँस, सम्भालू—इनके मिश्रण से पकाये गये तैल की मालिश करने से भयंकर गंडमाला दूर होती हैं।

अथवा छुदुन्दरी के साथ पकाये हुए तैल की मालिश से भी गंडमाला में तत्क्षण ही लाभ होता है।

चंदन, हरड़, वचा, लाजा और कटुकी—इनके क्वाथ द्वारा पक्वित तैल मालिश से अपची का समूल विनाश हो जाता है।

श्लीपद रोग का उपचार

श्लीपद रोग (फीलपाँव) केवल पैरों में ही न होकर हाथ, नाक, ओष्ठ और कानों में भी उत्पन्न होता है। यह रोग आनूपदेशों में मुख्यतया देखने में आता है।

इसमें चंदन आदि पदार्थों का लेप, स्वेदन कर्म, रक्तनिष्कासन तथा कफनिवारक रूक्ष द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करने से लाभ होता है।

धतूरा, रेंड़ की जड़, निर्गुण्डी (सम्भालू), पुनर्नवा, सहिजन और सरसों। इन्हें पीसकर लेप लगाने से दीर्घकालीन श्लीपद भी निर्मूल हो जाता हैं।

श्वेत मदार की जड़ और दालचीनी को कांजी में पीसकर लेपित करने से बद्धमूल तथा दृढ़ीभूत श्लीपद का विनाश होता है।

चित्रक और देवदारु अथवा सरसों और सहिजन के कल्क को गोमूत्र में पीसकर लेप लगाने से उत्तम फल मिलता है।

वातजनित श्लीपद में स्नेहन, स्वेदन और लेपन कर्म के पश्चात् एड़ी के ऊपर चार अंगुल स्थान के अन्तर पर शिराभेदन से लाभ मिलता है।

पित्तजनित श्लीपद में एड़ी के नीचे शिराभेदन करके पित्तज अर्बुद तथा विसर्प रोग की भाँति पित्तविनाशक प्रक्रिया ट। अवलम्बन करना उचित है।

मंजीठ, मुलेठी, रास्ना, बालछड़— इनको कांजी में पीसकर लेप लगाने से पित्तज श्लीपद का निर्मूलन होता है।

कफज श्लीपद में पैर के अंगूठे की नाड़ी का बेधन करके मधुमिश्रित तीक्ष्ण क्वाथों का पान करना लाभदायक होता है।

हरड़ के कल्क को गोमूत्र या इसी के समकक्ष किसी अन्य वस्तु के साथ पान करें।

अथवा इसी प्रकार गुरुच, सोंठ और देवदारु का उपयोग करें।

जवाखार के रस के साथ पूतिकरंज को सरसों के तेल के साथ पान करने से श्लीपद का विनष्टीकरण होता है।

सरसों के तैल में पलाशमूल के रस को तैल के बराबर मिलाकर पान करना चाहिए। अथवा, हरड़, देवदारु, सोंठ और गूगुल। इन्हें गोमूत्र के साथ पीने से **श्लीपद रोग** नष्ट होता है।

विधायरा के चूर्ण को कांजी के साथ तथा हलदी और गुड़ को गोमूत्र के साथ प्रयोग करने से अच्छा लाभ मिलता है।

गंधर्व तैल में भुनी हुई हर्रें को केवटी मोथा या गोमूत्र के साथ पीने से एक सप्ताह में ही श्लीपद का उन्मूलन हो जाता है।

कांजी में तैल मिलाकर पीना **कफजवात, वातजदोष, प्रमेह, श्लीपद** रोगनाशक तथा दीपनकारक साबित होता है।

समवृद्धदारक चूर्ण का लाभ

त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, दारुहलदी, वरुना, गोखरू, गोरखमुंडी। इन सबका समान भाग में चूर्ण बनाकर इस चूर्ण के बराबर उसमें विधायरा का चूर्ण मिश्रित कर कांजी के साथ अक्ष परिमाण की मात्रा में पान करें।

रोग की जीर्णावस्था में अभीष्ट भोजन करें या पथ्य का अनुपालन करें। इस चूर्ण के द्वारा श्लीपद, मोटापा, आमवात, गुल्म, कुष्ठ, अरोचकता तथा वात-कफजनित समस्त रोग निर्मूल होते हैं।

पिप्पल्यादि चूर्ण का प्रयोग

छोटी पीपर, त्रिफला, देवदारु, सोंठ और पुनर्नवा—इन्हें २-२ पल और विधायरा १४ पल लेकर चूर्ण बना लें।

इस चूर्ण को कांजी के साथ एक कर्ष की मात्रा में सेवन करें। रोग की जीर्णावस्था में पथ्यापथ्य का विचार आवश्यक नहीं है।

किन्तु कुछ लोगों का अभिमत है कि चूर्ण सेवनोपरान्त भरपेट भोजन करें अथवा पथ्य के अनुसार आचरण करें।

इस चूर्ण के प्रयोग से श्लीपद, वातरोग, प्लीहा तथा भस्मक रोग (भोजनोपरान्त पुन: भोजन करने की इच्छा) नष्ट होकर क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

कृष्णादि मोदक का लाभ

छोटी पीपर आधा कर्ष, चित्रक आधा पल, दन्ती १ पल, हरड़ २० नग और गुड़ २ पल। इनका मोदक बनाकर मधु के साथ सेवन करने पर श्लीपद रोग से मुक्ति मिलती है।

शौरेश्वर घृत का प्रयोग

दशमूल के एक प्रस्थ रस में कांजी १ प्रस्थ, दही का पानी १ प्रस्थ मिला लें। तदनंतर उसमें १-१ कर्ष तुलसी, गठिवन, त्रिकटु, वायविडंग, चित्रक, वचा, कचूर, पाठा, इलायची, हाऊबेर, प्रियंगु का फूल, वचा, देवदारु, पंचलवण और जवाखार—इनका कल्क बनाकर १ प्रस्थ घी डालकर पकावें।

इस घृत के तीन दिन तक सेवन करने के फलस्वरूप भयंकर श्लीपद, अंडकोशवृद्धि, अर्श, ग्रहणी, गलगंड, अर्बुद, अपची, कृमि और कुष्ठादि रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। इसे शौरेश्वर घृत कहा जाता है।

विडङ्गादि तैल का प्रयोग

भाभीरंग, कालीमरिच, मदार, सोंठ, चीता, देवदारु, इलायची, स्याहजीरा,

पंचलवण—इनके कल्क को तैल में पाचित कर पान करने से श्लीपद का निर्मूलन होता है।

विद्रधि रोग का उपचार

वातादि दोष उत्पन्न होने से त्वचा, मांस तथा रक्त आदि धातुएँ भी दूषित हो जाती हैं जिसके परिणामस्वरूप वे पीड़ायुक्त गोलाकार या लंबोतरा शोथ उत्पन्न कर देते हैं।

इसी को शास्त्रों में विद्रधि रोग कहा जाता है। यह बाहरी और भीतरी दो प्रकार का होता है।

बाह्य विद्रधि की उत्पत्ति शरीर के बाहरी भागों में तथा अन्तर्विद्रधि शरीर के भीतरी अंगों—जैसे गुदा, बस्ति आदि स्थानों में होते हैं।

सभी प्रकार के विद्रधि रोगों में जोंक के द्वारा दूषित रक्त का निष्कासन, हलका रेचक पदार्थों का सेवन और हलका भोजन करना उत्तम होता है।

पित्तज विद्रधि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के विद्रधि में स्वेदन कर्म लाभकारी होता है।

वातज विद्रधि में वातनाशक औषध मूल का कल्क बना चरबी, घी या तैल के साथ गुनगुना और गाढ़ा लेप लगाना चाहिए।

सहिजन की जड़ को पीसकर लेपित करना तथा स्वेद देना अथवा गेहूँ, यव और मूँग को काले धतूरे के साथ पीसकर लेप लगाने से शीघ्र ही अपरिपक्व विद्रधि रोग नष्ट होता है।

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, दशमूल और हरड़—इनके क्वाथ में गूगुल या अंडी के तैल को मिलाकर पान करने से विद्रधि निर्मूल होता है।

पित्तज विद्रधि में शक्कर, लाजा, मुलेठी और सारिवा—इन्हें दूध में पीसकर या खस और चंदन को दूध में पीसकर लेप लगाना लाभप्रद है।

त्रिफला के क्वाथ में निशोत का कल्क बनाकर पीना भी हितकर कहा गया है। कफज विद्रधि में ईंट, बालू, लोहा, गोबर का चूरा—गोमूत्र में पीसकर स्वेद देने से लाभ मिलता है।

स्नेह और नमकयुक्त दशमूल के काढ़ा को गुनगुना बनाकर पीड़ायुक्त शोथ और व्रण में परिषेक करना उचित है।

पित्तज विद्रधि में कथित प्रयोग ही रक्तज तथा आगन्तुक विद्रधि में भी करने चाहिए।

सहिजन के काढ़ा में हींग और सेंधानमक मिलाकर प्रातःकाल प्रतिदिन पीने से विद्रधि रोग का निवारण होता है।

सहिजन की जड़ को पानी से धोकर दरदरा कूटकर उसका रस निकाल लें। उस रस को मधु के साथ पीने पर भीतरी भागों के विद्रधि में लाभदायक होता है।

श्वेत पुनर्नवा की जड़ और वरुना की छाल का काढ़ा पीना अपक्व विद्रधिविनाशक होता है। पाठा की जड़ को मधु मिलाकर चावल की धोवन के साथ पीने से प्रचण्ड अन्तर्विद्रधि का उन्मूलन होता है।

ये सब क्रियाएँ अपक्व विद्रधि में उपयोगी हैं, किन्तु परिपक्व विद्रधि में व्रणशोथ की प्रक्रिया अपनानी चाहिए। प्रियंगु, धव, लोध, कायफल और तिरिच्छा की छाल का कल्क तैल में पका लें। इस तैल के प्रयोग से शीघ्र ही घाव भर जाते हैं।

व्रणशोथ रोग का उपचार

शरीर के किसी स्थान में सूजन होंकर घाव के रूप में परिवर्तित हो जाना ही व्रणशोथ कहलाता है।

इसके सात भेद कहे गये हैं। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, सन्निपातज, रक्तज तथा आगन्तुक।

सर्वप्रथम इस रोग में विग्लापन, अवसेचन, प्रलेप, व्रणोच्छेदन, शोधन, रोपण तथा वैकृतनाशन कर्म करने चाहिए।

बिजौरा नीबू, अरणी, देवदारु, सोंठ, काकादनी, और रास्ना। इनका लेप वातज व्रणशोथ में लाभकारी होता है।

दूब, नील की जड़, मुलेठी, चंदन तथा उत्पलादिगणीय पदार्थों का लेपन पित्तज व्रणशोथ में लाभप्रद है।

बरगद, गूलर, पीपर, पाकड़ और बेंत की छाल को पीसकर लेप लगाने से भी पित्तज और रक्तज व्रणशोथ दूर होता है। तिलवन, असगंध, पलंकष और धूपसरल—इनका लेप कफज व्रणशोथ को विनष्ट करता है। इसी भाँति काकड़ासिंगी का लेप लगाना भी फलदायक होता है।

कफ-वातोत्पन्न व्रणशोथ में पुनर्नवा, देवदारु, सहिजन, दशमूल और सोंठ। इनके कल्क को गरमा कर गुनगुना लेप लगाने से लाभ मिलता है।

व्रणशुष्कता की स्थिति दिखाई पड़ने पर उसकी यकायक चिकित्सा न करके केवल वेदना शान्ति के लिए लेप लगाते रहें।

व्रण के मुख पर लेप न लगाकर उसे खुला रखें, क्योंकि मुख बंद हो जाने से दूषित पीब आदि बाहर न आ सकेंगे।

सिहोरा की छाल का कल्क बना कांजी में पीसकर लेप करने से वातजशोथ उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे गरुड़ को देखकर सर्प पलायित हो जाते हैं।

वेगपूर्वक उभरने वाले पीड़ायुक्त शोथ में रक्तावसेचन कर देने से उसकी उभार नियंत्रित हो जाती है।

ऐसे शोथ जो स्वेद, प्रसेक, लेप तथा अवतर्पणों से भी दमित न होते हों वे एकमात्र दूषित रक्तमोक्षण होने पर किसी भी रोग की उत्पत्ति होने की संभावना नहीं रह जाती। अत: यह सभी प्रयोगों में श्रेष्ठ होता है।

व्रणशोथ का दमन प्रलेपादि से न होने पर उसे पकाने वाली औषधियों के द्वारा उपचारित करें। तिल, तीसी के बीज, दही और मट्ठा—इन्हें सत्तू की पिण्डी की भाँति बनाकर व्रणशोथ पर लेपित करें।

अथवा हाथी दाँत को नील के साथ घिसकर कठिन शोथ पर लेप लगाने से शीघ्र ही व्रण पककर फूट जाता है।

पिच्छिल पदार्थों के छिलके तथा मूल को गेहूँ और उड़द के कणों को पीसकर व्रण की सूजन पर लेप लगायें।

रात्रि में लेपन न करें। जो लेप छूटे, सूखे या बासी हो गये हों उन्हें हटाकर दोबारा नये लेप लगा देने चाहिए।

करंज, भिलावाँ, दन्ती और चित्रक—यह व्रणशोथ का अपसारक है। कबूतर, कौए और चील का बीट—यह व्रणपाक करने तथा विदीर्ण करने वाला योग है।

अम्ल और क्षार पदार्थ या केवल जवाखार भी व्रणशोधक और विदारक होता है।

अथवा परवल और नीम की पत्तियों का काढ़ा भी व्रणशोधक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

इसके अतिरिक्त न्यग्रोधादिगणीय पदार्थों का क्वाथ भी सभी व्रणशोथ में उपयुक्त होते हैं।

वातज व्रणशोथ में दशमूल, पित्तज में न्यग्रोधादिगण के द्रव्य तथा कफज में आरग्वधादिगणीय पदार्थों के लेप तथा प्रसेक आदि से लाभ होता है।

घाव में से उसके मवाद आदि के निकलने, सूजन के घटने से दुर्गन्धिरहित व्रण के हो जाने पर मुलेठी और तिल का कल्क बनाकर लगाने से घाव का पूरण होता है।

नीम की पत्ती और मुलेठी का कल्क भी व्रणशोधक होता है। मरोड़फली के कल्क में घी मिलाकर लगाने से व्रण का आरोपण होता है।

तदुपरान्त नीम की पत्तियों और तिलों का कल्क बना मधु के साथ लगाने से व्रणशोधन होता है।

तत्पश्चात् यव का कल्क घी के साथ क्रमानुसार प्रयुक्त व्रण का आरोपक होता है।

नीम की पत्ती, घी, मधु, दारुहलदी, मुलेठी और तिल—इनके कल्क की बत्ती व्रण का संशोधन कर घाव को भर देती है।

अथवा मुलेठी और नीम की पत्ती का लेप लगाने से भी घाव का पूरण होता है।

त्रिफला, खैर, दारुहलदी, न्यग्रोधादिगणीय द्रव्य, खिरेंटी, पंचमूल, नीम की जड़ और उसकी पत्ती—इनका कषाय भी घाव का संशोधन करता है।

मुलेठी और तिलाष्टक द्रव्यों का घृत के साथ लेपन करने से घाव शीघ्र ही भर जाता है।

अड़ूसा और नीम की जड़ का लेप व्रणशोधन हेतु सर्वोत्कृष्ट प्रयोग कहा जाता है।

सतौना के दूध का लेप करने से दुष्टव्रण का शमन होता है। मधु के साथ तुलसी का लेप लगाने से घाव का पूरण होता हैं। बरगद, गूलर, पीपर आदि पंचवृक्षों की छाल का चूर्ण अथवा शंखचूर्ण के साथ धव और लोध का चूर्ण भी घाव भरने में सहायक सिद्ध होता है।

वातोत्पन्न पीड़ायुक्त व्रण में तिलों को भूनकर दूध में पका उसी दूध में पीसकर लेप लगायें। करंज, नीम और निर्गुण्डी के रस से घाव के कीड़े नष्ट होकर उनका पूरण होता है।

नीम, कलायधान और निशोत के पत्ते तथा कोशाम्र फल की गुठली के चूर्ण से घाव भरता है।

सुरसादिगण के रस से सेंक, लहसुन का लेप तथा नीम, अमलतास, चमेली, मदार और सतौना (सतिवन)—ये सभी मारक द्रव्य हैं।

अर्थात् गोमूत्र के साथ इनका सेंक और लेप करने से घाव के कीड़े मर जाते हैं। अथवा मांसपेशियों से व्रण को आच्छादित करने पर सभी कीड़े एक साथ खिंच आया करते हैं।

जो व्रण बृहदाकार, पीबयुक्त, दुर्गंधित, पीड़ा तथा सूजनयुक्त हों वे सभी गूगुल के साथ त्रिफला रस के प्रयोग से ठीक हो जाते हैं।

त्रिफला चूर्ण और गूगुल की गोली बनाकर खाने से तिर्यग् व्रण का विबंध

दूर होकर व्रण का शोधन और रोपण होता है। अमृतागुग्गुलु और वज्रक तैल भी व्रणशोथ में गुणकारी होता है।

अथवा वायविडंग, त्रिफला, त्रिकटु और गूगुल—इनको घी के साथ वटी बनाकर सेवन करके पथ्याहार लेने से दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह तथा विभिन्न प्रकार के कुष्ठ का परिशोधन होता है।

गुरुच, परवल की जड़, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिरिच, पीपर, भाभीरंग—इनके अलग-अलग १-१ पल को २ पल गूगुल के साथ १-१ अक्ष की वटी बना लें।

प्रतिदिन १-१ गोली सेवन करने से व्रणशोथ, वातोदर, गुल्म, सूजन और पांडुरोग का उन्मूलन होता है।

मैनसिल, मंजीठ, लाख (लाह) और दोनों हलदी (हलदी, दारुहलदी)—इन्हें पीसकर घी और शहद के साथ लेप लगाने से व्रणशोथ के स्थानीय चर्म का शुद्धिकरण होता है।

सद्योव्रण का उपचार

किसी कारणवश ठोकर लगने या टकराने से उत्पन्न होने वाले घाव को सद्योव्रण कहा जाता है। वाग्भटादि संहिताओं में इसके आठ भेद बतलाये गये हैं। इसके उपचारार्थ मुलेठी और घृत से परिसेक करना लाभदायक है।

बड़े आकार वाले सद्योव्रण को जुड़ाने के लिए मधु-घृत देकर पित्तशामक शीतल पदार्थों का उपयोग करें। घाव की बढ़ी हुई अवस्था में ठण्ढे और मधुर रसवाले कषाय, स्निग्धरूप सेंक तथा लेप करने चाहिए।

यदि भीषण टक्कर से आमाशय में रक्त आ गया हो तो वमन कार्य उपयुक्त होता है। पक्वाशय में रक्त के आ जाने पर विरेचन देने से लाभ होता है।

साल वृक्ष की छाल, दालचीनी, रेंड़ की जड़, गोखरू और पाषाणभेद—इनके क्वाथ में हींग और सेंधा नमक मिला कर पान करने से पक्वाशय में जमा हुआ रक्त फट जाता है।

अथवा यव, बड़बेर, कुलथी—इनके स्नेहरहित रसों में पकाय गये अन्न या सेंधा नमक के साथ यवागू का प्रयोग करें। घाव से अधिक रक्त निःसृत होने पर वायु प्रकोप के फलस्वरूप अत्यन्त पीड़ा होने पर स्नेहपान, परिषेक, लेप, स्वेद, स्नेहबस्ति तथा वातविनाशक औषधों का उपयोग लाभकारी होता है।

सद्योव्रण की आरंभिक अवस्था में इस विधान को एक सप्ताह तक ही अपनाना चाहिए। तदनन्तर सद्योव्रण में व्रणशोथ में कथित चिकित्सा करनी चाहिए।

गौरादि तैल का प्रयोग

सफेद सरसों, हलदी, मंजीठ, मांसी, मुलेठी, पुनर्नवा, हाऊबेर, भद्र-मोथा, चंदन, जाती, नीम, परवल, करंज, कटुकी, मोम और मषवन।

उक्त पदार्थों के कल्क को पंचवल्कल क्वाथ में मिलाकर एक प्रस्थ तैल में पकावें। पकने पर यह गौरादि तैल कहलाता है। इस तैल से सभी प्रकार के व्रणों का शुद्धिकरण होता है।

इसके अतिरिक्त टकराने के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले आगन्तुक घाव, वातादि दोषों से उत्पन्न होने वाले निज घाव, दीर्घकालिक विषम घाव तथा नाड़ीव्रण आदि का भी इस तैल के द्वारा शोधन होता है।

करञ्जादि तैल का प्रयोग

करंज के पत्ते, घीकुआर, त्रिफला, चमेली के पत्ते, परवल के पत्ते, नीम की पत्ती, हलदी, दारुहलदी, मोम, मुलेठी, कटुकी, मंजीठ, चंदन, खस, नीलकमल, सारिवा और निशोत।

इनके १-१ कर्ष कल्क को १ प्रस्थ तैल में पाचित कर लें। पक जाने पर इस तैल के प्रयोग से सभी प्रकार के दुष्टव्रण एवं नाड़ीव्रण का संशोधन होता है।

जातीकादि घृत का प्रयोग

जाती (चमेली), नीम तथा परवल के पत्ते, कटुकी, हलदी, दारुहलदी, अनंतमूल, मंजीठ, कालावाला, शिरीष के बीज, तूतिया (नीलाथोथा), मुलेठी और करंज के बीज—इनके साथ पकाये गये घृत के प्रयोग से सूक्ष्ममुखी, मर्माश्रित, क्लेदित, गंभीर तथा फूटकर प्रवाहित होने वाले शूलयुक्त व्रण तत्क्षण ही शुद्ध होकर भर जाते हैं।

मोम, मुलेठी, लोध, राल, मंजीठ, चंदन और मरोड़फली। इनके कल्क को घृत में पका लें। इस घृत से आग से जले हुए घाव शीघ्र ही सूखकर भर जाते हैं।

पुनर्नवा, मंजीठ, मुलेठी, खस, कमलगट्टा और हलदी। इनके कल्क में दूध डालकर घी में पकावें। इससे घाव का शीघ्र ही पूरण होता है।

पाटली के कषाय में पाटली का ही कल्क मिलाकर सरसों के तैल में पकावें। इस तैल से दग्धव्रण की वेदना, स्राव, शूल, जलन और विस्फोट का नाश होता है।

चंदन, बरगद की छाल, गुंजा (घुँघुची), मंजीठ और मुलेठी—इनके कल्क के साथ दुग्धयुक्त घृत को पकाकर प्रयोग करने के फलस्वरूप अग्निदग्ध व्रण शीघ्र ही भर जाता है।

कुटेरकादि तैल का प्रयोग

तुलसी की पत्तियों को १०० पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। जब चौथाई भाग रह जाय तब उसमें चिरचिरा, तुलसी, प्रोष्ठिका तथा निर्गुण्डी (सम्भालू)

का कल्क डालकर एक प्रस्थ तैल में पाचित कर लेने पर यह तैल व्रणशोधक तथा व्रणपूरक हो जाता है। इसके साथ ही आगन्तुक या निजत्वरूप नाड़ीव्रण में भी मालिश करने से लाभप्रद होता है।

दूर्वादि तैल का प्रयोग

दूर्वा को निचोड़कर निकाले गये रस में कबीला और दारुहलदी की छाल का कल्क मिलाकर तैल में पका लें। यह तैल भी घाव भरने में सहायक सिद्ध होता है।

शस्त्रादि भग्ना का उपचार

शस्त्राघात से प्रहारित होने या प्रस्तरादि से पतित होने के परिणामस्वरूप जहाँ-तहाँ की शरीरस्थ हड्डियाँ टूट जाया करती हैं। इसी को भग्न होना कहा जाता है।

ऐसी दशा में सुश्रुत संहिता के मतानुसार उन टूटी हड्डियों को बाँधकर उन्हें अपने स्थान पर बैठा देने चाहिए। नीचे की ओर लटकी हुई हड्डियों को ऊपर उठायें तथा ऊपर उठी हुई हड्डियों को नीचे की ओर ले आवें।

जो हड्डियाँ क्षत-विक्षत होकर नीचे की ओर आ गयी हों उन्हें ऊपर की ओर ले जायें। इसके अतिरिक्त कुश के द्वारा पट्टी बाँधकर हड्डियों को यथास्थान जमाने का प्रयत्न करें।

उन बँधी हुई हड्डियों को ग्रीष्मकाल में ३ दिन, शीतकाल में ७ दिन तथा शरद्, वसंतादि सामान्य दिनों में ५-५ दिनों के अंतराल से उन पट्टियों को बदलता रहे।

तदनन्तर न्यग्रोधादिगणीय द्रव्यों से निर्मित शीतल क्वाथ से उन्हें सिंचित करते रहें। पीड़ा की अधिकता में दूध को पंचमूल क्वाथ में पकाकर सिंचन करें।

अथवा वातनाशक औषधों के कल्क और क्वाथ में पाचित तैल को गुनगुना प्रयोग करें। ऐसे रोगी को मांस, मांसरस, दूध, घृत, यूष तथा पौष्टिक आहार देने चाहिए।

घृतमिश्रित मधुर औषधों से साधित तथा लाक्षामिश्रित एक बार की व्यायी हुई गाय के शीतल दूध को प्रातःकाल सेवन करें।

संधिस्थान या मांसस्थान से हड्डी के पृथक् हो जाने पर मधु, घृत, शक्कर और लहसुन को दही के पानी के साथ खाने पर अस्थिसंधान होता है।

इसी प्रकार कौड़ीचूर्ण को २-३ रत्ती की मात्रा में अपक्व दूध के साथ पीने से भग्न हड्डियाँ जुड़ जाती हैं।

लाक्षागुग्गुलु प्रयोग

लाख, हड़जोड़, कोह, असगंध और गंगेरन। इनके समान भाग चूर्ण में

समान भाग गूगुल मिलाकर प्रयोग करने से अस्थिपीड़ा दूर होकर प्रत्येक अवयव वज्र के समान कठोर हो जाते हैं।

अभागुग्गुलु प्रयोग

बबूल, त्रिफला और त्रिकटु। इनके समान भाग चूर्ण में सम भाग गूगुल मिलाकर उपयोग किये जाने पर भग्नास्थि पुनः अपने स्थान पर आ जाते हैं।

हड्डी टूटने के फलस्वरूप घाव के विदीर्ण हो जाने की स्थिति में पूर्वकथित सद्योव्रण में कथित घी और मधु के साथ प्रतिकारक कषायों का उपयोग करते हुए शेष प्रक्रियाएँ की जानी चाहिए।

यथासंभव घाव को पकने से बचाना ही चिकित्सक का कर्तव्य है। इसके लिए वातरोगविनाशक तैलों का प्रयोग भी किया जा सकता है।

भग्नरोगी को पूर्णरूप से स्वस्थ हो जाने तक नमकीन, कड़ुए, खारे तथा अम्ल पदार्थों के सेवन से दूर रहना उचित है। उसके लिए स्त्री-संसर्ग, धूपसेवन, व्यायाम तथा रूक्ष अन्नों का आहार भी वर्जित किया गया है।

नाड़ीव्रण का उपचार

कुशल चिकित्सक के लिए यह आवश्यक है कि वह नाड़ियों की गति को भली प्रकार से खोजकर उन्हें शस्त्रों द्वारा विदीर्ण करें। तदनंतर व्रणरोगोक्त शोधन, रोपणादि क्रियाओं को अपनाये।

वातोत्पन्न नाड़ी को विदारित कर चिरचिरा के बीज, तिल और सेंधा नमक को पीसकर उस स्थान में लेपित कर दें।

पित्तजनित नाड़ी को तिल, मंजीठ, हाथीशुंडा और हलदी—इन सबका लेप लगाये तथा कफजनित नाड़ी पर मुलेठी, दन्ती, नीम और सेंधा नमक का लेप करें।

शल्य द्वारा उत्पन्न नाड़ी को विदीर्ण करने और शोधन करने के पश्चात् तिल, मधु और घी का लेप लगायें। मेषिण्या नाड़ी पर शोधन कर्म करना उचित है।

इसके अतिरिक्त अन्य गति का खोज करके क्षारपीत सूत्र से कई बार विदीर्ण कर दें।

दुष्टव्रण, सूक्ष्ममुखी तथा गंभीर व्रणों में कथित बत्ती और तैलादि के प्रयोग नाड़ीव्रण में भी करने चाहिए। चंचुफल को पीसकर लेपित करने से नाड़ीव्रण नहीं रह जाता।

सुपारी के पेड़ की छाल, सेंधा नमक, लाह, रेंड़ का पत्ता, नारीस्तन का

दूध, सेंहुड़ का दूध तथा मदार का दूध—इनके कल्क की वर्तिका के प्रयोग द्वारा अल्पकाल में ही नाड़ीव्रण दूर हो जाता है।

सेंधानमक की बत्ती का प्रयोग शहद के साथ करने पर नाड़ीव्रण का निवारण होता है।

इसके साथ दुष्टव्रणनाशक तैल भी इसमें लाभदायक होता है। अथवा चमेली, मदार, अमलतास, करंज, दन्ती, सेंधा नमक, काला नमक, जवाखार और चीता—इन्हें सेंहुड़ के दूध में पीसकर बत्ती बना प्रयोग करने से शीघ्र ही नाड़ीव्रण नष्ट होता है।

कृशकाय, निर्बल और कायर व्यक्ति की नाड़ी तथा मर्मस्थल पर रहने वाली नाड़ी को भी क्षारपीत सूत्र के द्वारा ही विदारित करना चाहिए। इसके लिए शल्यकर्म करना अनुपयोगी होता है।

सप्ताङ्गगुग्गुलु का प्रयोग

गूगुल, त्रिफला, त्रिकटु और मांस। इनको घी के साथ प्रयोग करने पर नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, शूल और भगंदर—जैसे कठिन रोग भी नष्ट हो जाते हैं।

स्वर्जिकादि तैल का प्रयोग

सज्जीखार, चित्रक, सफेद सुहागा, दन्ती, सफेद मदार, नरसल, नीली और चिरचिरा के बीज। इनके कल्क को गोमूत्र मिलाकर तैल में परिपाक करें। इस तैल से दुष्टव्रण और कफजनित नाड़ीव्रण निर्मूल होता है।

कुम्भीकाय तैल का प्रयोग

जलकुंभी, खजूर, कैथ और बेल नामक फल, पिपरिया बेल तथा अष्टवर्गान्तर्गत औषध—इनका एकीकृत क्वाथ तैयार कर लें।

क्वाथ के पककर चौथाई भाग रहने पर उसमें धूपसरल, प्रियंगु, कमल, मोचरस और अहिपुष्प—इनके १-१ पल कल्क के साथ तैल पका लें।

इस तैल के प्रयोग से शल्यकर्मोद्भव नाड़ी तथा अन्यान्य प्रकार के घाव भी शीघ्र ही भर जाते हैं।

भल्लातकादि तैल का प्रयोग

भिलावाँ, मदार, सेंधानमक, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी और चित्रक—इनके कल्क को प्रियंगु पुष्प और मदार के काढ़ा में मिश्रित कर तैल के साथ पाचित करें। इस तैल से कफ-वातोत्पन्न नाड़ी, अपची तथा व्रणादि रोगों का विनष्टीकरण होता है।

भगन्दर रोग का उपचार

योनि या लिंग के नीचे मलद्वार से ऊपर वातादि दोषों के फलस्वरूप उन्हीं के रंग वाली पिड़िकाएँ उत्पन्न होकर पक जाती हैं।

पाकावस्था में ये पिड़िकाएँ मलद्वार से लेकर योनि या लिंग तक की बस्ति को चीर डालती हैं, जिसे भगन्दर के नाम से जाना जाता है।

जिस समय गुदा के दो अंगुल ऊपरी भाग में सूजन दिखाई पड़े, उसी समय से लंघन, वमन, विरेचन तथा शोधन कर्मोपरान्त उस पिड़िका का रक्त जोंक के द्वारा निष्कासित करा दें ताकि वह पकने न पाये।

भगन्दर की उस पिड़िका पर बरगद वृक्ष का पत्ता, ईंट का चूरा, सोंठ, गुरुच और पुनर्नवा—इनको पीसकर लेप लगा दें।

पिड़िका के परिपाक न होने तक अवसंतर्पण आदि विरेकान्त कर्म करते रहने चाहिए। पकने पर उनके भिन्न-भिन्न रूप और मुख हो जाने पर उसके उपचार कहे जा रहे हैं।

बवासीर की भाँति ही भगंदर की पिड़िका भी बहुमुखी हुआ करती है। सर्वप्रथम उन मुखों को चून कर वातादि दोषानुसार उनको विदीर्ण करना, क्षार का प्रयोग करना तथा अग्नि से दग्ध कर देना आदि कर्म के पश्चात् व्रणशोथ में कथित चिकित्सा का अवलम्बन करना उचित है।

निशोथ, तिल, हाथीशुंडा, मंजीठ, घृत, सेंधा नमक और मधु—इनका लेप करना भगंदरनाशक होता है।

रसोत, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, नीम की पत्ती, निशोथ, तेजबल और दन्ती—इनका कल्क लगाने से भगंदर नष्ट होता है।

अथवा सेंहुड़ का दूध, मदार का दूध और दारुहलदी। इनकी बत्ती का प्रयोग भगंदर की गति के अनुसार करें।

इस वर्तिका के द्वारा सम्पूर्ण शरीरस्थ नाड़ियों का विनाश संभव होता है।

तिल, हरड़, लोध, नीम की पत्ती, हलदी, दारुहलदी, वचा, कूठ, गृहधूम की कालिख—इनको पीसकर लेप लगाने से भगंदर, नाड़ीव्रण, उपदंश (गरमी नामक रोग, फिरंग) तथा दुष्टव्रणों का शोधन होकर व्रणों का पूरण होता है।

अथवा केंचुए को गधी के दूध में पकाकर लेप करने या हाथीशुंडा, चीता और अतीस—इनको पीसकर लेप करने से भगंदर का नाश होता है।

अथवा कुत्ते की हड्डी को त्रिफला के रस में घिसकर लेपित करने पर भी भगंदर और दुष्टव्रणों का उन्मूलन होता है। त्रिफला ३ भाग, गूगुल ५ भाग ओर छोटी

पीपर १ भाग—इन्हें पीसकर वटी बना लें। इस वटी के द्वारा नाड़ीव्रण तथा भगंदर पिड़िका का शुद्धिकरण होता है।

सप्तविंशतिक योग का प्रयोग

त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, वायविडंग, गुरुच, चित्रक, निशोथ, पिप्पलीमूल, हाऊबेर, देवदारु, कूठ, चव्य, इन्द्रायण, हलदी, दारुहलदी, विड्नमक, कालानमक, सेंधानमक, जवाखार और गजपीपर।

इनका सम भाग चूर्ण बना तिगुना गूगुल मिलाकर एक तोले की गोली बनाकर शहद के साथ सेवन करें।

इस गोली के सेवन से खाँसी, श्वास, सूखापन, अर्श, भगंदर, हृत्शूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, गुदाशूल, अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र, आँतों की वृद्धि, कृमिरोग, पुराना बुखार, अफरा, उन्माद, कोढ़, जलोदर, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह, श्लीपद (फीलपाँव) आदि अनेक रोगों का उन्मूलन होता है।

यथार्थ में इस सप्तविंशतिक योग से एकबारगी ही रोग-समूहों का निर्मूलन हो जाता है।

पंचतिक्तमिलित गुग्गुलु योग भी भगंदर में गुणकारी होता है। न्यग्रोधादिगणीय द्रव्य भगंदर के शोधन और रोपण में काम आते हैं।

अथवा पूर्वकथित पदार्थों में पाचित तैल और घृत भी इसके लिए लाभकारी होते हैं।

विष्यन्द तैल का प्रयोग

चित्रक की जड़, मदार की जड़, निशोथ, पाठा, कठूमार, कनेर की जड़, मदार का दूध, वचा, कलिहारी, हरताल, सज्जीखार और मालकंगनी—इनका कल्क बनाकर तैल पका लें। यह विष्यन्दन तैल है। इससे भगंदर का शुद्धिकरण होकर रोग का निर्मूलन होता है।

करवीरादि तैल का प्रयोग

कनेर, हलदी, दन्ती, लांगली (कलिहारी), सेंधा नमक, बिजौरा नीबू की जड़, मदार की जड़ और कूड़ा—इनके कल्क का तैल पकाकर भगंदर में उपयोग करने से लाभ मिलता है।

निशादि तैल का प्रयोग

हलदी, मदार का दूध, सेंधा नमक, गूगुल, चीता और कूड़े की छाल—इनके कल्क से पकाया हुआ तेल भगंदर का नाशक होता है।

भगंदर से मुक्त होने वाले रोगी को एक वर्ष तक व्यायाम, स्त्रीसंसर्ग, युद्ध, मधुर पदार्थ, गरिष्ठ आहार तथा मद्यपान से परहेज रखना आवश्यक है।

उपदंश रोग का उपचार

दूषित यौन-संबंध में आने, हाथ में चोट लगने या अन्य प्रकार के विष द्वारा गुह्यस्थल में उपदंश (आतशक, सिफिलिस) रोग की उत्पत्ति होती है।

इसके लिए पहले रुग्ण व्यक्ति को स्निग्धित और स्वेदित करके जननेन्द्रिय के मध्य भाग में शिराभेदन करें अथवा जोंक लगाकर दूषित रक्तमोक्षण या वमन–विरेचन द्वारा शुद्धिकरण करें।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि निकली हुई फुंसियाँ पकने न पायें। पकने की दशा में लिंगक्षय होने की आशंका बनी रहती है। इसके लिए प्रलेप, प्रक्षालन तथा गुंडन आदि की प्रक्रिया से चिकित्सा करें।

परवल के पत्ते, नीम, त्रिफला और गुरुच—इनके क्वाथ या खैर या शालवृक्ष के क्वाथ में गूगुल और त्रिफला मिलाकर पान करें। इससे सभी प्रकार के उपदंश का विनाश होता है।

पुनर्नवा, मुलेठी, रास्ना, कूठ, धूपसरल, अगरु और मोथा—इनको पीसकर लेप लगाना और सेंक करना वातज उपदंश में लाभप्रद होता है।

गेरू, रसोत, मंजीठ, महुआ, खस, कमलगट्टा, चन्दन और नीलकमल–इनका लेप पित्तज उपदंश में लाभकारी सिद्ध होता है।

पित्तोत्पन्न तथा रक्तोत्पन्न उपदंश में नीम, अर्जुन, पीपर, कदम्ब, शाल, जामुन, बरगद, गूलर और बेंत—इनके द्वारा क्षालन, लेपन, घृत और चूर्ण के रूप में प्रयुक्त करना चाहिए।

कफोत्पन्न उपदंश रोग में शाल, विजयसार, लताशाल तथा धव—इनकी छालों को मदिरा में पीसकर गरम लेप लगायें।

त्रिफला के काढ़ा या भँगरैया के रस से घाव धो देने से भी रोग का शमन होता है।

समान परिमाण में त्रिफला को लोहे की कड़ाही में भूनकर मधु के साथ घाव पर लेपित करने से घाव शीघ्र ही भर जाता है।

अथवा जयन्ती, चमेली, कनेर, मदार और अमलतास—इनके पत्तो द्वारा निर्मित क्वाथ से उपदंश के घाव को धोने से रोगमुक्ति होती है।

करञ्जादि घृत का प्रयोग

करंज, नीम, अर्जुन, शाल, जामुन और बरगद—इन सबकी छाल के कल्क तथा इन्हीं के कषाय से पाचित घृत द्वारा पके तथा पीब निकलने वाले उपदंश के घाव नष्ट होते हैं।

रसोत और शिरीष चूर्ण के साथ अथवा हरड़ के साथ मधु मिला कर लेप लगाने से सभी प्रकार के जननेंद्रिय रोग दूर होते हैं। बबूल के पत्तों का चूर्ण या अनार की छाल का चूर्ण अथवा मानवास्थि का चूर्ण उपदंश पर लेपित करने से रोग का उन्मूलन होता है।

भूनिम्बादि घृत का प्रयोग

चिरायता, नीम की छाल, त्रिफला, पटोलपत्र, करंज, चमेली, खदिर, विजयसार—इनके कल्क और क्वाथ के द्वारा घृतपाक कर लें। यह घृत सभी प्रकार के उपदंश को निर्मूल कर देता है।

अगारधूमादि तैल का प्रयोग

गृहधूम का चूरा, हलदी और मदिरा—इनकी मात्रा को क्रमानुसार बढ़ाकर तैल में पाक करें। इस तैल के प्रयोग से खाज-खुजली, सूजन आदि का निवारण, व्रणशोधन तथा रोपण होता है।

इसके अतिरिक्त छिन्नदग्ध बवासीर में जो क्रियाएँ की जाती हैं वे ही क्रियाएँ उपदंश में भी करणीय होती हैं।

उपंदश रोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह रोगमुक्त न होने तक यवान्न के अतिरिक्त किसी अन्न या कुएँ के जल के अतिरिक्त किसी जल का प्रयोग न करें। उसके लिए नमकीन तथा जलनकारक पदार्थ भी त्याज्य होते हैं।

शूकदोष रोग का उपचार

सर्वप्रथम यहाँ शूकदोष की उत्पत्ति का कारण जान लेना अति-आवश्यक है। इस रोग की उत्पत्ति उन विलासी व्यक्तियों में हुआ करती है जो लिंगस्थूलीकरण या उनका वर्धन करने हेतु विषाक्त औषधों का प्रयोग करते हैं।

ऐसे ही मनुष्यों में सर्षपिका, अष्ठीला आदि भेदानुसार अट्ठारह प्रकार के शूकदोष पाये जाते हैं। इसमें समस्त प्रकार के शूकदोषों हेतु विषनिवारक उपचार करने चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें घृतपान, विरेचन, रक्तनिष्कासन तथा हलका भोजन भी आवश्यक होता है।

सम्रणिका नामक शूकदोष में जोंक द्वारा रक्त निकलवाकर बरगद, मंजीठ आदि के कषाय चूर्णों को घाव में लगाने चाहिए।

यही प्रयोग अवमंथ नामक शूकदोष में भी लाभप्रद होता है।

अष्ठीला नामक शूकदोष के निमित्त प्रदूषित रक्त का निष्कासन कराने के पश्चात् कफज ग्रंथिरोग के समान उपचार करें।

कुंभिका नामक शूकदोष में रक्तमोक्षण तथा पकने पर पीब निकालकर शोधन करें।

तदनंतर तेंदू, त्रिफला और लोध का लेप तथा व्रणशोधक तैल का प्रयोग लाभकारी होता है।

इसी प्रकार अलजी रोग में भी उपचार करें। ग्रंथित नामक शूकदोष में नाड़ीस्वेद के क्रमानुसार बार-बार स्वेदित कर स्निग्ध और गुनगुना लेप लगायें।

उत्तमा नामक शूकदोष की पिड़िका को सँड़सी से खींचकर व्रणशोधक कल्क, चूर्ण तथा कषायों का प्रयोग मधु के साथ करें।

पुष्करी और संमूढ़ शूकदोष में पित्तज विसर्प रोग के समान चिकित्सा करने से रोगोन्मूलन होता है।

त्वक्‌पाक, स्पर्शहानि तथा मृदित नामक शूकदोषों के नाशार्थ बला नामक तैल को गरम करके घाव पर चुपड़ दें तथा मधुर पदार्थों का लेप लगायें।

शतपोनक नाम के शूकदोष में रक्तमोक्षण के बाद रसक्रिया और पिठवन आदि द्रव्यों से तैलपाक करके प्रयोग करें।

रक्तज अर्बुद में रक्तज विद्रधि के समकक्ष चिकित्सा करने से लाभ मिलता है।

समस्त प्रकार के शूकदोषों में व्रणशोधक कषाय, कल्क, घृत, तैल, चूर्ण, रसक्रिया, शोधन और रोपण कर्म करने चाहिए।

कुष्ठ रोग का उपचार

असंयमित आहार-विहार, दिवास्वाप तथा प्रचंड पाप के परिणामस्वरूप शरीरस्थ धातुएँ विकृतावस्था में आकर कुष्ठरोग की उत्पत्ति कर देती हैं।

ऐसे रोगियों में बार-बार वमन, विरेचन, रक्तनिष्कासन आदि के द्वारा शोधन कर्म करने चाहिए। दोषों के मिट जाने पर तत्काल ही वायुबल को घटाना आवश्यक होता है।

पित्ताधिक्य वाले कुष्ठियों के दूषित रक्त को विरेचन द्वारा दूर कर दें। सभी प्रकार के कुष्ठ में शिराभेदन करना परमावश्यक है।

वचा, मांसरोहिणी, परवल, नीम और प्रियंगु की छाल—इनके कषाय में मैनफल मिलाकर पीने से कुष्ठशोषक वमन आते हैं।

निशोथ, दंती, त्रिफला—इनके द्वारा विरेचन दें। वमन-विरेचन द्वारा शुद्धिकरण के पश्चात् लेपादि के प्रयोग करने चाहिए।

मैनसिल, इलायची, कालीमरिच, मदार का दूध और तैल—इनके लेप लगाने से कुष्ठ का निर्मूलन होता है।

करंज के बीज, चकवँड़ और कूठ—इनको गोमूत्र में पीसकर लेप लगाने से कुष्ठ मिट जाता है।

अमलतास और मकोय का लेप लगाने पर कुष्ठ का विनाश होता है।
चक्रमर्द (चकवँड़), कूठ, सेंधा नमक, सौवीर, कांजी, सरसों और वायविडंग।
इनको पीसकर लेप लगाने से दाद-खाज, किट्टिभ, कुष्ठ तथा किलास रोग
विनष्ट होते हैं। अथवा अमलतास के पत्तों को कांजी के साथ पीसकर लेपित करने
से कुष्ठ दूर होता है।

थुनेर, कूठ, हलदी और दूब—इनको धतूरे के रस में पीसकर सात बार लेप
लगाने से खुजली, किलास और कुष्ठ नष्ट होते हैं।

कसौदी की जड़ को सौवीर कांजी में पीसकर लेपित करने पर दाद, किट्टिभ
और कोढ़ नहीं रह जाते।

सरसों और मूली के बीज, लज्जालु, हलदी, चकवँड़ के बीज, धूपसरल,
त्रिकटु, भाभीरंग और कूठ—इनको गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सभी प्रकार के
कुष्ठरोगों का उन्मूलन होता है।

भाभीरंग, चकवँड़, कूठ, हलदी, सेंधा नमक और सरसों—इन्हें कांजी में
पीसकर लेप लगाने से दाद-खाज और कुष्ठ दूर होते हैं।

दूर्वा, हरड़, सेंधा नमक, चकवँड़ और तुन—इनको कांजी में पीसकर लेप
लगाने से तीन बार में ही पुरानी खुजली और दाद से छुटकारा मिलता है।

साल वृक्ष की छाल १ भाग, चकवँड़ १ भाग, हरड़ १ भाग, सोमराजी १
भाग और गंध रस ४ भाग।
इन सबको पीसकर लेप लगाने से दादरूपी हाथी को वश में लाने के लिए
यह सिंह के समान प्रतीत होती है। चिरचिरा के रस या हलदीयुक्त कदलीक्षार में मूली
के बीजों को पीसकर लेपित करने से किलास रोग नष्ट हो जाता है।
कसौंदी और मूली के बीजों को गंधक में पीसकर लेप लगाने से किलास
रोग का निवारण होता है। आँवले का रस, राल और खिरेंटी—इनको कांजी में
पीसकर उबटन करने पर पुनः किलास की उत्पत्ति होने की संभावना नहीं रह जाती।
तेजपात, कालीमरिच, कसीस, तैल और मैनसिल—इन सबको एक साथ
पीसकर एक सप्ताह तक कांस्यपात्र में रख छोड़ें।
इसके बासी लेप का प्रयोग करने से किलास और सफेद कोढ़ दूर हो जाते
हैं। त्रिफला, वायविडंग, चित्रक, भिलावाँ, सोमराजी, अगरु और भँगरैया—इनको
क्रमशः एक-एक भाग की मात्रा में बढ़ाकर तिलतैल में पका गाढ़ा लेह बनाकर प्रयुक्त
करने से सभी प्रकार के कोढ़ रोग का निर्मूलन होता है।
गुरुच या सोमराजी की लता, भाभीरंग का सार, छोटी पीपर, चित्रकमूल,

मंडूर और आँवला को तैल में लेह की भाँति बनाकर लेपित करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ का उन्मूलन होता है।

कौआडोंड़ी, चकवँड़, कूठ और छोटी पीपर—इन्हें पीसकर गोली बना लें। गोली के सूख जाने पर गोमूत्र में पीसकर लगाने से खुजली नहीं रह जाती। चकवँड़ क बीज को सेंहुड़ के दूध में भिंगोकर गोमूत्र मिला थोड़ी देर तक धूप में रख दें।

तदुपरान्त उसके लेपित करने से किट्टिभ नामक कुष्ठ नष्ट होता है। नीम की पत्ती और आँवला चूर्ण का प्रतिदिन प्रात:काल सेवन करने पर कुष्ठ का विनष्टीकरण होता है।

हाथी की लीद (मल) की राख ३२ सेर लेकर हाथी के मूत्र में इक्कीस बार निथारकर छान लें। इस क्षारजल को ६४ सेर परिमाण में लेकर उसमें ६ सेर बाकुची के बीज मिलाकर पका लें।

पक कर गाढ़ा और नरम होने पर नीचे उतारकर गोलियाँ बना लें। इन गोलियों को जल में घिसकर लगाने से श्वित्र कुष्ठ (सफेद कोढ़) नष्ट होकर चमड़े का रंग उज्ज्वल हो जाता है।

मानकन्द के क्षारजल में धतूरे के बीज का कल्क मिला सरसों के तैल में पाचित करें। इस तैल के द्वारा विपादिका (विमची) नामक कुष्ठ नष्ट हो जाता है।

नारियल के जल में चावलों को भिंगो दें। जब उसमें से दुर्गन्धि आने लगे तब उन चावलों को पीसकर लेप लगाने पर दीर्घकालिक विपादिका कुष्ठ विनष्ट होता है।

बाकुची के बीज, कसौंदी, चकवँड़, हलदी और सेंधा नमक। इनके बराबर भाग को दही के पानी और कांजी में पीसकर लेप लगाने से कच्छू, कुष्ठ तथा दाद-खाज आदि निर्मूल होते हैं।

अड़ूसा के कोमल पत्ते और हलदी को तुलसीदल के रस में घोंट कर लगाने से तीन दिनों में ही खुजली बन्द हो जाती है।

महाभल्लातक गुड का लाभ

नीम की छाल, अनन्तमूल, अतीस, कुटकी, त्रायमाण, त्रिफला, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, बाकुची, गौरीसर, वचा, खदिर, लालाचंदन, पाठा, सोंठ, कचूर, भारंगी, अड़ूसा की जड़, चिरायता, कूड़े की छाल, निशोथ, इन्द्रायण, मूर्वा, भाभीरंग, इन्द्रयव, विष, चित्रक, एरण्डककूल, गुरुच, बकायन नीम, परवल के पत्ते, हलदी, दारुहलदी, छोटी पीपर, अमलतास, सोया, कालाबेंत, घुँघुची, सूरन, सुगंधितृण, मंजीठ, पवाँर के बीज, मुसली, प्रियंगुपुष्प, नीम, सरफोंका और क्षीरकंचुकी; इन्हें अलग-अलग २-२ पल लेकर एक द्रोण जल में पका लें।

पकाकर ४ सेर रह जाने पर इस काढ़े को छान लें। तत्पश्चात् तीन हजार की संख्या में भिलावाँ फलों को काट-छाँटकर एक द्रोण जल में पकावें। चौथाई भाग रहने पर उतारकर छान लें।

तदनंतर दोनों क्वाथों को छानकर एकीकरण कर लें। इस एकीकृत क्वाथ में १०० पल गुड़ तथा एक सहस्त्र भिलावाँ फलों को मिलाकर पुन: पकावें।

परिपाक होने के समय ही उसमें त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, सेंधा नमक और अजवायन—इन्हें १-१ पल तथा दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर—इन्हें १-१ तोले और ४ पल सूरन के चूर्ण को डाल दें।

यह शिवनिर्मित महाभल्लातक नामक गुड़ है। यह विश्वकल्याणकारी गुड़ श्वेत कुष्ठ, औदुम्बर कुष्ठ, दाद, ऋक्षजिह्व, काकण, पुंडरीक, चर्मकुष्ठ, विस्फोट, मंडल, कंडू, कपालकुष्ठ, खुजली, विमची आदि प्रजाति वाले कुष्ठों तथा वातरक्त, पाण्डुरोग, व्रण, कृमि, छह प्रकार के अर्श रोग, खाँसी, श्वास, भगंदर, आमवात तथा वलीपलित रोगों का उन्मूलक होता है।

इसके साथ गुरुच का काढ़ा या दूध का सेवन अनुपान के रूप में करना चाहिए। इस गुड़ के सेवनकाल में प्रतिदिन गरम पदार्थ और गरम भोजन ही लेने चाहिए।

हलदी का कल्क बनाकर २ पल गोमूत्र के साथ पान करने से कोढ़ छूट जाता है।

वचा के कल्क को गोमूत्र के साथ प्रयोग करने पर सूजन, पाण्डु, गुल्म, प्रमेह, कफज रोग तथा कुष्ठ रोग से मुक्ति मिलती है।

गंधक चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर धूप में गरम कर आधा पल की मात्रा में पान करने तथा शरीर पर मर्दन करने से पामा रोग दूर होता है तथा शरीर का रंग स्वर्ण के समान चमकीला बन जाता है।

किन्तु इसके प्रयोग काल में केवल दुग्धाहार लेना ही आवश्यक होता है।

हलदी, गुरुच, अमलतास, मकोय, चिरचिरा के बीज, दारुहलदी और चकवँड़ के बीज। इनकी छाल को पीसकर सरसों का तेल डाल शरीर पर उबटन लगाने से पामा और कुष्ठ का विनष्टीकरण होता है।

जटामांसी, लालचंदन, अमलतास, करंज, नीम, सरसों, कचूर, कूड़ा, दारुहलदी और मोथा—ये सभी पदार्थ **कुष्ठविनाशक** कहे गये हैं।

सरसों के तैल में जल मिलाकर बाकुची को पका लें। तदनन्तर धर्मनिष्ठ

भाव से दुग्धाहार ग्रहण करते हुए इसके इक्कीस दिन प्रयोग मात्र से ही कुष्ठ रोग का उन्मूलन हो जाता है।

चकवँड़, काला तिल, सरसों, कूठ, जूही, हलदी, दारुहलदी और मोथा—इनको जल में पीसकर तीन दिनों तक रख छोड़ें।

इसके अनन्तर इस बासी लेप का प्रयोग करने पर कुष्ठ, विचर्चिका (शरीर पर पीबयुक्त फुंसियों का निकलना) तथा दाद-खाज आदि रोग निर्मूल होते हैं।

भिलावाँ, चित्रक, गुरुच, मदार की जड़, घुँघुची, त्रिकटु, शंखचूर्ण, कूठ, पंचलवण, जवाखार, सज्जीखार और पिठवन—इनके कल्क को लौहपात्र में रखकर सेंहुड़ और मदार के दूध के साथ पकावें।

पक जाने पर सलाई द्वारा शरीर पर प्रलेपित करने से कुष्ठ, किलास, कापालिक कुष्ठ तथा समस्त प्रकार के अर्श रोग का उन्मूलन हो जाता है।

विष, वरुना, हलदी, चित्रकमूल, गृहधूम की धूलि, मैनफल, कालीमरिच, दूब, मदार और सेंहुड़ का दूध—इनका एकीकृत लेप करने के फलस्वरूप सभी प्रकार के कुष्ठरोग उसी प्रकार भस्मीभूत हो जाते हैं जिस प्रकार इन्द्रदेव के वज्राघात से वृक्ष।

त्रिफला, पटोलपत्र, हलदी, मंजीठ, मांसरोहिणी, वचा और नीम—इनके कषाय के सेवन से कफ-पित्तोत्पन्न कुष्ठ दूर होते हैं।

महाकषाय का लाभ

नीम, चिरायता, पाठा, मोथा, परवल, त्रिफला, तगर, प्रियंगु पुष्प, गंधेज घास, खदिर, भारंगी, अडूसा, लालचंदन, वचा, गुरुच, छोटी पीपर, सोंठ, कटुकी, फणिजूक, हलदी, कूड़े की छाल, इन्द्रयव, गौरीसर, मरोड़फली, त्रायमाण, पित्तपापड़ा, इंद्रायण, कटेरी, चकवँड़, अतीस, भाभीरंग और कृष्णचंदन—इन सबके द्वारा साधित इस महाकषाय को गोमूत्र के साथ प्रयुक्त किये जाने पर समस्त प्रकार के कुष्ठ उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अंधकार नहीं रह जाता।

महाकषाय की अन्य विधि और प्रयोग

नीम, एरंडमूल, वायविडंग, सोंठ, वचा, मरोड़फली, हलदी, नागर, दारुहलदी, त्रायमाण, परवल के पत्ते, चित्रक, बकायन नीम, गुरुच, भारंगी, देवदारु, गूलर, करंज, खैर, सिहोरा, सतौना, कटेरी, मोथा, शिरीष, बेल, छोटी पीपर, चिरायता, इन्द्रयव, चकवँड़, बाकुची, कुश, जटामांसी, हस्तिकर्ण, समुद्रफल, पाठा, पित्तपापड़ा, इन्द्रवारुणी, अतीस, दन्ती, निशोथ, रक्तचंदन, मंजीठ, कूठ, कूड़ा की छाल, कटुकी, अमलतास और गठिवन—इनको सम भाग में लेकर कषाय बनाकर रख छोड़े।

तदनन्तर वमन-विरेचन द्वारा कोष्ठ का शुद्धिकरण कर गोमूत्र के साथ इस महाकषाय का पान कर पथ्याहार लेते रहें।

इसके द्वारा दाद, उदुम्बर, पुंडरीक, किट्टिभ तथा पामा आदि सभी कुष्ठ नष्ट होकर शरीर का वर्ण तपे हुए स्वर्ण के समान हो जाता है।

गुरुच को कूटकर निकाले हुए रस को अग्निबल के अनुसार पीवें। उसके पच जाने पर घी के साथ अल्पाहार लें।

इस प्रकार के नियम का निरन्तर कुछ दिनों तक अनुपालन के फलस्वरूप दुर्गन्धित कोढ़युक्त शरीर भी निर्मल और स्वच्छ हो जाता है।

परवल के पत्तो, नीम, त्रिफला और काला बेंत—इनका काढ़ा बनाकर सेवन करें तथा प्रयोगकाल में तिक्त पदार्थों का अधिकाधिक सेवन करने से कुष्ठ रोग से मुक्ति मिलती है।

वायविडंग, त्रिफला, छोटी पीपर—इनका चूर्ण बना मधु के साथ चाटने से कोढ़, कृमि, प्रमेह, नाड़ीव्रण तथा भगन्दर आदि रोगों का निवारण होता है।

किसी शुभ मुहूर्त्त और शुभ घड़ी में घुँघुची का पौधा उत्पाटित कर उसका चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को घी और मधु के साथ सेवन करें। सेवनकाल में दूध-घृत का ही आहार लें।

इसके साथ ही अभयारिष्ट और आँवले का सेवन बार-बार करते रहने पर सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों का शमन हो जाता है तथा उसके आयुकाल की सीमा भी तीन सौ वर्ष तक हो जाती है।

पञ्चाङ्गनिम्बादि का प्रयोग और लाभ

नीम के पल्लवित-पुष्पित होने के समय में उसके पंचांग (फूल, फल, पत्ता, छाल और जड़) को ग्रहण कर प्रत्येक का २-२ पल चूर्ण बना लें। पुनः त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, गोखरू, चीता, आँवला, बाकुची, अमलतास, दारुहलदी, कूठ, इन्द्रयव, पाठा—इन सबको समान भाग में लेकर चूर्णित कर लें।

तदनंतर पूर्वोक्त पंचांग चूर्ण में इसे भी एकीकृत कर दें। इसके बाद खदिर, विजयसार और नीम के गाढ़े क्वाथ तथा भँगरैया के रस में अलग-अलग सात बार भिंगो दें।

तत्पश्चात् कोष्ठ को स्निग्ध और शुद्ध करके शुभ मुहूर्त में इस चूर्ण को सेवन करायें।

तत्पश्चात् मधु, तिक्तघृत, खैर तथा विजयसार का क्वाथ एवं गरमजल—इनमें से किसी एक के साथ १ तोले की मात्रा में सेवन करें। इसकी मात्रा को क्रमशः

बढ़ाते हुए तब तक सेवन करते रहें जब तक उसकी मात्रा १ पल तक पूरी न हो जाय।

चूर्ण खाने के अनन्तर उसके पच जाने पर हलका और स्निग्ध भोजन करें। इसके सेवन-काल में रोगी को शान्तचित्त से धर्मनिष्ठ भाव में रहना चाहिए।

इस प्रकार चूर्ण का उपयोग करने के फलस्वरूप विचर्चिका, औदुम्बर, पुंडरीक, कापालिक, द्रद्रु, किट्टिभ, अलसक, पामा, विस्फोटक, विसर्प, कुष्ठ, कफप्रकोप, विविध भाँति का किलास रोग, भगन्दर, फीलपाँव, वातरक्त, नाड़ीव्रण, शिरोरोग, प्रमेह, प्रदर, सर्पविष तथा स्थावर विष निर्मूल होते हैं।

इसके सेवन से स्थूलोदर व्यक्ति पेट के पिचक जाने से कृशोदर बन जाता है तथा विश्लिष्ट संधिवाला मनुष्य सुश्लिष्ट संधिवाला हो जाता है।

इसके द्वारा वृद्धत्व का निवारण होकर समस्त आधि-व्याधि से मुक्ति मिलती है।

एकविंशतिक गुग्गुलु का प्रयोग

चित्रकमूल, त्रिफला, सोंठ, कालीमरिच, छोटी पीपर, स्याहजीरा, अजवायन, वचा, सेंधा नमक, अतीस, कूठ, चव्य, इलायची, जवाखार, भाभीरंग, अजमोदा, मोथा, देवदारु और भद्रमुस्तक।

इनको बराबर की मात्रा में लेकर चूर्ण बनावें। चूर्ण के समान भाग में गूगुल मिलाकर घी के साथ घोंटकर वटिका बना लें। इस गोली को भोजन के समय खायें।

इस वटी के सेवन से अट्ठारह प्रकार के कुष्ठ, कृमिरोग, दुष्टव्रण, ग्रहणी, अर्श, मुखदोष, गलग्रह, गृध्रसीवात (सायेटिका), भग्न, गुल्मरोग, सूजन तथा समस्त प्रकार के कोष्ठगत रोग वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे विष्णु के शस्त्रप्रहार से दानव-समूह।

तिक्तषट्पल घृत का प्रयोग

नीम, परवल, दारुहलदी, दुरालभा, कटुकी और त्रिफला—इन सबको आधा-आधा पल एवं पित्तपापड़ा, त्रायमाण, ऋद्धि, आँवला और वचा—इनको १-१ पल लेकर काढ़ा बना लें। पकने पर आधा क्वाथ शेष रह जाने पर उसे छान लें। पुनः उसमें चंदन, चिरायता, मागधी, त्रायमाण, मोथा और इन्द्रयव। इनके आधा-आधा पल लेकर कल्क बना उसमें मिला दें।

तदनन्तर उसमें ६ पल नवीन घृत डालकर पुनः पका लें। इस घृत के पान से कुष्ठ, रक्तविकार, बवासीर, गलग्रह, सूजन, पामा, विसर्प, पिड़िका, कण्डू तथा अन्य प्रकार के रोग भी निर्मूल हो जाते हैं।

पञ्चतिक्तं घृत का प्रयोग

नीम, परवल, कटेरी, गुरुच और अड़ूसा। इनको १०-१० पल की मात्रा में कूटकर एक द्रोण जल के साथ पाचित करें। पककर चौथाई भाग शेष बचने पर उसमें त्रिफला का कल्क मिला १ प्रस्थ घी में पकावें।

भली-भाँति पकने पर इसको पंचतिक्त घृत कहा जाता है। इस घृत के प्रयोग से समस्त प्रकार के कुष्ठ, अस्सी प्रकार के वातरोग, ४० प्रकार के पित्तरोग, २० प्रकार के कफज रोग, दुष्टव्रण, कृमिजन्य रोग, अर्श तथा पाँच प्रकार की खाँसी का शीघ्र ही उन्मूलन हो जाता है।

तिक्तक घृत का प्रयोग

त्रिफला, हलदी, दारुहलदी, अड़ूसा, जवासा, पित्तपापड़ा की जड़, त्रायमाण, कूठ और नीम—इनके २-२ पल भाग को १ द्रोण जल में पका लें। पककर चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें छोटी पीपर, मोथा, चन्दन, त्रायमाण, कूड़ा और चिरायता—इन्हें २-२ अक्ष परिमाण में लेकर कल्क बना १ प्रस्थ घृत में पाक करें।

इस तिक्तक घृत के पान करने से कोढ़, ज्वर, अर्श, ग्रहणी, सूजन और पाण्डुरोग की समाप्ति हो जाती है।

महातिक्तक घृत का प्रयोग

सतौना, अतीस, अमलतास, कटुकी, पाठा, मोथा, खस, त्रिफला, परवल, नीम, पित्तपापड़ा, कोह, जवासा, लाल चंदन, छोटी पीपर, कमलागट्टा, हलदी, दारुहल्दी, कचूर, कूड़ा, शतावरी, दोनों सारिवा, वचा, इन्द्रयव, अड़ूसा, मरोड़फली, चिरायता, मुलेठी और त्रायमाण।

इनके सम भाग कल्क के चार भागों को ३२ भाग जल में पकावें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ घी तथा २ प्रस्थ आँवलें को डालकर पुन: पका लें।

परिपक्व होने पर इस महातिक्तक घृत के सेवन से सभी प्रकार के कोढ़, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, गठिया (गाँठों की पीड़ा, गाउट), विस्फोटक, पामा, उन्माद, ज्वर, कंडू, कामला, पांडु, हृदय के रोग, गुल्म (गाँठ), पिडिका, असृग्दर, गंडमाला (गलरोग) आदि अविलम्ब ही नष्ट हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक दुरूह रोग जो किसी प्रकार भी नहीं जाते वे भी इस महातिक्तक घृत के पान से सहज ही दूर हो जाते हैं।

महाखदिर घृत का प्रयोग

खदिर (खैर) ५०० पल, शीशम १०० पल, विजयसार १०० पल, करंज ५० पल, नीम ५० पल, बेंत ५० पल, पित्तपापड़ा ५० पल, कूजा ५० पल, विष ५०० पल, वायविडंग ५० पल, हलदी एवं दारुहलदी ५०-५० पल,

अमलतास ५० पल, गुरुच ५० पल, त्रिफला १५० पल, निशोथ ५० पल और सतौना ५० पल।

इन सबको कूट-पीसकर १० द्रोण जल डालकर पकावें। आठवाँ भाग शेष रहने पर उसमें ४ प्रस्थ घी तथा ४ प्रस्थ आँवले का रस और महातिक्तक घृत में कथित औषधियों का १-१ पल कल्क मिलाकर विधिवत् पाक करें।

इस महाखदिर घृत के पीने तथा शरीर पर मालिश करने से सभी प्रकार के कुष्ठों का उन्मूलन होता है।

गुग्गुलुपञ्चतिक्तक घृत का प्रयोग

नीम, गुरुच, अडूसा, कटेरी तथा पटोलपत्र—इन सबको १०-१० पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। पक कर आधा भाग शेष रहने पर उसमें गूगुल १० पल तथा १-१ पल पाठा, वायविडंग, देवदारु, गजपीपर, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हलदी, चव्य, कूठ, मालकंगनी, मरिच, अजवायन, अजमोदा, चित्रक, कटुकी, भिलावाँ, वचा, छोटी पीपर और मंजीठ के कल्क को मिलाकर एक प्रस्थ घी में पाचित करें।

इस घृत से सम्पूर्ण प्रकार के कुष्ठ, गुल्म, अर्श, प्रमेह, क्षय, अरोचकता, श्वास, पीनस (नकसीर), खाँसी, शुष्कता, हृद्रोग, पाण्डुरोग, मदात्यय (मद्यपान के फलस्वरूप उत्पन्न रोग), विद्रधि तथा वातरक्तादि रोगों का शमन होता है।

वज्रक घृत का प्रयोग

अडूसा, गुरुच, त्रिफला, परवल, करंज, नीम, कोह, काला बेंत। इनके क्वाथ और कल्क द्वारा परिपक्व घृत को वज्रक घृत कहा जाता है।

इस घृत के सेवन से कुष्ठग्रस्त व्यक्ति के कान, हाथ-पैर, कंठ तथा अँगुलियों के विदीर्ण हो जाने पर वे अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाते हैं और कुष्ठी सौ वर्षों तक जीवन धारण करने में समर्थ होता है।

तृणक तैल का प्रयोग

मंजीठ, कूठ, हलदी, चकवँड़ और अमलतास के पत्ते—इनके कल्क को सुगंधितृण के क्वाथ में सरसों के तैल में पकाकर प्रयोग करने से कुष्ठ का निवारण होता है।

वज्रक तैल का प्रयोग

सतिवन, करंज, मदार, मालती, कनेर, सुगंधितृण, शिरीष और चित्रक। इन सबकी जड़ तथा करंज के बीज, त्रिफला, त्रिकटु, हलदी, दारुहलदी, सरसों, भाभीरंग और चकवँड़—इन सबको गोमूत्र में पीसकर कल्क बना लें।

इस कल्क को तैल में डालकर आग पर पकाने से वज्रक तैल का निर्माण होता है। इस तैल की मालिश करने से कुष्ठ, नाड़ीव्रण तथा दुष्टव्रण का विनष्टीकरण होता है।

महामरिचादि तैल का प्रयोग

कालीमरिच, निशोथ, दन्ती, मदार का दूध, गोबर, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, मांसी, कूठ, चन्दन, इन्द्रायण, कनेर, हरिताल, मैनसिल, चित्रक, पिठवन, भाभीरंग, चकवँड़, शिरीष, कूड़ा, नीम, सतौना, सेंहुड़, गुरुच, अमलतास, करंज, मोथा, खैर, छोटी पीपर, वचा और मालकंगनी—इन सबके १-१ पल और २ पल विष का कल्क बनाकर एक द्रोण गोमूत्र में ४ प्रस्थ सरसों के तैल को डालकर मिट्टी या लोहे के बरतन में धीमी आँच पर पका लें। पकने के अनन्तर इसे कुष्टग्रस्त रोगी के घावों पर लगायें।

इस तैल की मालिश करने के फलस्वरूप पामा, विचर्चिका, दाद, विस्फोटक, कंडू, वलीपलित, केश झड़ना, मुख पर झाई पड़ना, बुढ़ापा आना, नीली तथा व्यंग आदि रोगों का उन्मूलन हो जाता है।

इससे शरीर में कोमलता आती तथा मुख की कान्ति बढ़ती है। युवती नारियों द्वारा इस तैल के नस्य लेने से उनके स्तन सदैव ही कठोर बने रहते हैं।

इसके अतिरिक्त वातव्याधि से ग्रस्त वृषभ, हाथी-घोड़े आदि पशु भी रोगमुक्त होकर गतिशील बने रहते हैं।

विषतैल का प्रयोग

करंज, हलदी, दारुहलदी, मदार, तगर, कनेर, वचा, कूठ, सरिवन, लालचंदन, मालती, सतौना, मंजीठ और मेउड़ी। इन सबको आधा-आधा पल तथा १ पल विष को मिलाकर कल्क बना डाले।

इस निर्मित कल्क के साथ १ प्रस्थ तैल को ४ प्रस्थ गोमूत्र मिलाकर पका लें। इस तैल के शरीर पर मालिश करने पर श्वेत कुष्ठ, विचर्चिका, लूता, विस्फोटक, कण्डू, कपिकच्छू आदि सभी प्रकार के रक्तदोष का निवारण तथा व्रणों का शोधन होता है।

करवीरादि तैल का प्रयोग

सफेद कनेर की जड़ को विष के साथ गोमूत्र में मिलाकर पीस लें। तदनंतर उसमें तैल डालकर आग पर पका लें। पक जाने पर इसे छानकर मालिश करने से चर्मदल, सिध्म (सेहुआँ), कुष्ठ, पामा, विस्फोटक आदि कुष्ठ के सभी भेद दूर होते हैं।

अन्य प्रकार

सफेद कनेर का रस, गोमूत्र, चित्रक, विड्नमक और तैल। इन्हें एकीकृत पकाकर मालिश करने से कुष्ठ का नाश होता है। सभी चिकित्सकों का यही अभिमत है।

सिन्दूरादि तैल का प्रयोग

आधा पल सिन्दूर और एक पल जीरे को पीसकर कल्क बना लें। इस कल्क में ८ पल सरसों का तैल मिलाकर आग पर पका लें। इस तैल के द्वारा पामा रोग का शीघ्र ही विनाश होता है।

महासिन्दूरादि तैल का प्रयोग

सिन्दूर, चंदन, मांसी, भाभीरंग, हलदी, दारुहलदी, प्रियंगु का पुष्प, कमलगट्टा, कूठ, मंजीठ, खदिर, वचा, चमेली का फूल, मदार, निशोथ, नीम, करंज, विष, छोटी पीपर, चित्रक लोध और चकवँड़—इन सबको एकीकृत कर लें।

तत्पश्चात इसे महीन पीसकर तैल में पकावें। इस तैल की मालिश शरीर पर करने से समस्त प्रकार के कुष्ठ, पामा, विचर्चिका (सोरायसिस), कच्छू और विसर्प आदि अनेक प्रकार के रक्तविकार का उन्मूलन होता है।

सिन्दूरा तैल की अन्य विधि

सिन्दूर, गूगुल, रसोत, मोम और तूतिया—इनका कल्क बना सरसों के तैल में पकाकर मालिश करने से कच्छू, पिड़िका तथा कुष्ठादि रोगों का निवारण एक बार में ही हो जाया करता है।

आदित्यपाक तैल प्रयोग

मंजीठ, त्रिफला, लाख (लाह) हलदी, पत्थरफूल और गंधक—इनके चूर्ण को तैल में मिलाकर धूप में रख दें। सूर्यताप से पका हुआ यह आदित्यतैल पामा का विनाशक होता है।

दूर्वादि तैल प्रयोग

दूब के रस में चौगुना तैल मिलाकर उसे आग पर पका लें और उसकी मालिश करें तो कच्छू, विचर्चिका और पामा आदि रोगों का विनष्टीकरण होता है।

अर्क तैल प्रयोग

मदार के पत्तों के रस में हलदी का कल्क तैयार करके सरसों के तैल में पका लें। इस तैल की मालिश करने से पामा, कच्छू, विचर्चिका आदि रोगों का निर्मूलन होता है।

गण्डीरिका तैल का प्रयोग

सेंहुड़, चित्रक, भँगरैया, मदार, कूठ की छाल और सेंधा नमक। इनका कल्क गोमूत्र में मिला कर तैल में पाचित कर लें।

इसके उपयोग से मंडल कुष्ठ, दाद, दुष्टव्रण, और किट्टिभ नामक कुष्ठ (लिप्रोसी) भी दूर हो जाता है।

कुष्ठग्रस्त व्यक्ति के लिए पुराने शालि चावल, कोदो, गेहूँ, यव, मूँग, तिक्त शाक तथा जंगली जानवरों के मांस ग्राह्य होते हैं।

कुष्ठी को कुष्ठ मिटाने के निमित्त समय-समय पर केश एवं नखों का कर्तन, नित्य औषध सेवन में तत्पर रहना आवश्यक होता है, किन्तु उसे मैथुन, मद्यपान एवं मांसभक्षण का परित्याग करना भी अनिवार्य कहा गया है।

उदर्द कोठशीतपित्त का उपचार

सर्वप्रथम यहाँ इन रोगों के लक्षण बतलाये जा रहे हैं। कफाधिक्य वाले शीतपित्त विकार को उदर्द तथा वाताधिक्य वाले शीतपित्त को शीतपित्तरोग कहा जाता है।

पित्तविकारों के फलस्वरूप वमन द्वारा निकलने वाले दूषित पदार्थ के अवरोध से उत्पन्न होने वाले रोग कोढ़ कहलाते हैं।

उदर्द रोग में सरसों के तैल की मालिश, गरम जल का सेंक तथा परवल और नीम के जल से वमन कराना गुणकारी होता है।

इसके निवारणार्थ त्रिफला, गूगुल और छोटी पीपर द्वारा विरेचन कर्म भी लाभप्रद होता है। इसके लिए ९ कर्ष परिमाण में त्रिफलाचूर्ण को शहद के साथ चाटना भी हितकर कहलाता है।

इसके अतिरिक्त विसर्प रोग में कथित प्रयोग भी इसमें अपनाना उचित होता है।

अथवा छोटी पीपर और रेंड़ का या लहसुन का उपयोग भी लाभकारी है।

गुड़ के साथ अजवायन का सेवन करने वाले व्यक्ति का व्यापक उदर्द भी नष्ट होता है।

सरसों, हलदी, चकवँड़ और काला तिल—इनके कल्क में सरसों का तैल मिलाकर शरीर पर मलना लाभकारी सिद्ध होता है।

दूर्वा और हलदी को एक साथ पीसकर बार-बार लेपित करने से पामा, कृमि, दाद और शीतपित्त का उन्मूलन होता है।

इस रोग के नष्टीकरण हेतु कुष्ठविनाशक तथा अम्लपित्तनिवारक प्रयोग भी करने चाहिए।

अथवा आँवलाचूर्ण के साथ नीम की पत्तियों को पीसकर प्रतिदिन घी मिलाकर चाटने से विस्फोटक, कुष्ठ, सद्योव्रण, शीतपित्त, कण्डू, अम्लपित्त तथा छर्दि आदि रोगों का शमन होता है।

प्रतिदिन प्रात:काल १ कर्ष गोघृत में आधा कर्ष कालीमरिच मिलाकर सेवन करने से शीतपित्त नष्ट हो जाता है।

कूठ, हलदी, दारुहलदी, सफेद पनिलर, परवल, नीम, असगंध, देवदारु, सहिजन, तुम्बुरु और धनिया—इन्हें समान भाग लेकर चूर्णित कर लें।

तदनन्तर उक्त चूर्ण को मट्ठे में मिलाकर तैल प्रलिप्त शरीर पर उबटन की भाँति मर्दन करें। इस प्रयोग से कंडू, पिड़िका, कुष्ठ, कोट, शोथ आदि निर्मूल होते हैं।

एलादि चूर्ण को तैल में मिलाकर उबटन लगाना भी गुणकारी है। ऐसे रोगियों को सदैव ही लवा और तीतर पक्षी के मांसरस के साथ पथ्याहार लेने चाहिए।

शीतपित्त रोग में बलाबल के विचार से शीतोष्ण पदार्थों का प्रयोग करना आवश्यक होता है।

अम्लपित्त का उपचार

वर्षाऋतु में विरुद्ध आहार-विहार के करने, गरिष्ठ भोजन, खट्टे और जलनकारी पदार्थों के सेवन से पित्तप्रकोप के कारण अम्लरोग की उत्पत्ति हुआ करती है।

इस रोग में कड़ुई और खट्टी डकार, हाथ-पाँव में जलन और भूख की कमी आदि लक्षण पाये जाते हैं।

इसके शमनार्थ पहले वमन तथा बाद में हलके दस्तावर प्रयोग करने चाहिए। वमन-विरेचन के पश्चात् रोगी को स्निग्धित करके स्नेहबस्ति कर्म करें।

इस रोग में वात और कफ का भी मिश्रण रहता है। अत: दोषानुसार ही औषध और पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए।

इसके ऊर्ध्वगामी होने पर वमन तथा निम्नगामी होने की अवस्था में विरेचन कर्म करना उपयुक्त होता है। इसमें कटु पदार्थों के सेवन से अधिक लाभ होता है।

इसके लिए गेहूँ, शक्कर तथा मधुमिश्रित लावा का उपयोग करना अच्छा होता है। ऐसा करने से विष विकार साम्यावस्था में आ जाते हैं।

अम्लपित्त में सोंठ और परवल का काढ़ा बना कर पीने से पाचन और दीपन होता है।

इसके द्वारा वात-कफ, वमन, कण्डू, पामा, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, विस्फोटक और जलन का निवारण होता है।

अथवा परवल, सोंठ और धनिया—इनके क्वाथ का पान करने से कण्डू, पामा तथा मंदाग्नि का नाश होता है।

इंद्रयव, परवल, छोटी पीपर—इनके काढ़ा में मधु मिलाकर पीने से अम्लपित्त, अरोचकता तथा वमन आदि दूर होते हैं।

अड़ूसा, गुरुच, पित्तपापड़ा, नीम, चिरायता, भँगरैया, त्रिफला और परवल। इनके क्वाथ में शहद डालकर पीने से अम्लपित्त का उन्मूलन होता है।

अथवा त्रिफला, परवल और कुटकी—इनके क्वाथ में शक्कर, मधु और मुलेठी मिलाकर पान करने से ज्वर, वमन और अम्लपित्त नियंत्रित होते हैं।

अड़ूसा, नीम, परवल, त्रिफला, विजयसार और जवासा—इनके क्वाथ के साथ क्रमशः गूगुल का प्रयोग करना कफाधिक्य वाले अम्लपित्त में लाभकारी होता है।

परवल, त्रिफला और नीम— इनका काढ़ा मधु मिलाकर पीने से कफ, वमन, जलन और शूल आदि रोगों का शमन होता है।

गुड़, छोटी पीपर और हरड़—इनको समान भाग में मोदक बनाकर खाने से पित्त-कफ का विनाश और क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

नीम का पंचांग (फल, फूल, पत्ती, छिलका और जड़) १ भाग, विधायरा २ भाग और शक्करमिश्रित सत्तू १० भाग।

इनके चूर्ण का सेवन शीतल जल के साथ करने पर वात, कफ और शूल का विनष्टीकरण होता है तथा मधु के साथ चाटने से भीषण अम्लपित्त पर नियंत्रण होता है।

कालाजीरा और धनिया के कल्क को १ प्रस्थ घी में पकाकर खाने से कफ-पित्त, अरोचकता, वमन, मिचली तथा अग्निमांद्य का उन्मूलन होता है।

परवल और सोंठ का कल्क अथवा केवल परवल के कल्क को १ प्रस्थ घी में पाचित कर लें।

इस घृत के सेवन से कफ-पित्त का निवारण होता है। छोटी पीपर का कल्क या क्वाथ को घी में पका लें।

प्रतिदिन प्रातःकाल इसमें मधु मिलाकर पान करने से अम्लपित्त का दमन होता है।

मुनक्का, गुरुच, इन्द्रयव, परवल, सौवीर, आँवला, सरल वृक्ष का गोंद, लालचंदन, त्रायमाण, कमलगट्टा, चिरायता और धनिया।

इनके कल्क को घृत में पकाकर भोजनकाल में मात्रा के अनुसार सेवन करने के फलस्वरूप बलास, पित्त, ग्रहणी, खाँसी, मंदाग्नि, ज्वर तथा अम्लपित्त आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं।

शतावरी के कल्क के साथ १ प्रस्थ घी, १ प्रस्थ जल और ४ प्रस्थ दूध मिलाकर धीमी आग पर पका लें।

इसके सेवन से अम्लपित्त, वातज-पित्तज रोग, रक्तपित्त, पिपासा, मूर्छा, श्वास तथा संताप आदि सभी निर्मूल होते हैं।

इसके अतिरिक्त कफ-पित्तनिवारक उपाय, गुडकूष्माण्डकयोग तथा खंडामलक योग के प्रयोग भी किये जाने चाहिए। इससे रक्तपित्त में अधिक लाभ होता है।

गुड़ और दूध में छोटी पीपर डालकर घी में पकाकर सेवन करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

अम्लपित्त का रोगी स्वयं को अग्नि में दग्ध होता हुआ-सा अनुभव करता है। अम्लपित्त रोग में पित्त का संशोधन होना परमावश्यक है। शोधन के अभाव में कभी शान्ति नहीं मिलती।

अतएव रोग की नवीनता और जीर्णता आदि सभी अवस्थाओं में वमनकर्म अत्यंत आवश्यक कहा गया है।

क्षीर पिप्पली

छोटी पीपर का चूर्ण ३२ तोला, घी ६ पल, शतावरी का रस ८ पल, खाँड़ २ प्रस्थ तथा दूध २ प्रस्थ। इन सबको किसी पात्र में एकीकृत करके पका लें।

पक जाने पर इसमें इलायची, दालचीनी, तेजपात, मोथा, धनिया, सोंठ, जटामांसी, श्वेतजीरा, स्याहजीरा, हरड़, आँवला, कालीमरिच, नागकेशर और खदिर का गोंद। इन सबको चूर्णित कर १९ माशा परिमाण में मिला लें।

इस क्षीरपिप्पली के उपयोग से पीड़ा, अरुचि, हृद्दाह, वमन, पित्त तथा अम्लपित्त आदि सभी रोग नष्ट होते तथा क्षुधाग्नि का वर्धन होता है।

विसर्पविस्फोटक का उपचार

इस रोग में आग से जलने के समान शरीर पर फफोले निकलते हैं और उनमें सर्पदंश के समान जलन की अनुभूति होती है। इसी को विसर्प रोग के नाम से जाना जाता है।

इसके लिए दोषानुसार वमन, विरेचन,सिंचन, लेपन, रक्तनिष्कासन तथा शीतल उपचार करना उचित है। इसमें परवल, नीम, छोटी पीपर, मैनफल और इन्द्रयव—इनके द्वारा वमन कराना उत्तम है।

निशोथ और त्रिफला रसमिश्रित घृत का प्रयोग विरेचन हेतु करें।

अथवा आँवला रस में घृत मिलाकर देने से विसर्प की शांति होती है।

पंचमूल की पंच औषधियों में से तृण के अतिरिक्त शेष चार औषधियों का प्रयोग करने से भी लाभ होता है।

वातज विसर्प में सौंफ, मोथा, वाराहीकन्द, अड़ूसा, नीली कटसरैया, धनिया, हलदुआ, सहिजन और कूठ का लेप शरीर पर करें।

पित्तज विसर्प में चकवँड़, मंजीठ, खस, चंदन, कमलगट्टा, मुलेठी और नीलकमल—इनकों दूध में पीसकर लेपित करें।

पंचकल्क द्वारा लेप और सेंक करना लाभदायक होता है। अथवा कमलगट्टा, खस, जलसीपी और चंदन का लेप लगाना भी उत्तम फल देता है।

अथवा कमलिनी का शीतल कीचड़ मोती-मूँगा, शंख या सीपी का चूर्ण और गेरू—इनमें से किसी एक के चूर्ण को घी में मिलाकर लेप लगाने से विसर्प रोग का शमन होता है।

अथवा बरगद की जटा, भद्रमोथा, केले की भीतरी नलिका, कमलनाल की गाँठ—इनके कल्क को शतधौत घृत में मिलाकर लेप लगाना लाभप्रद सिद्ध होता है।

रेणुका, यव, मसूर, मूँग और शालिधान्य—इनमें से किसी एक या सभी के मिश्रित कल्क में घी मिलाकर लेपित करें।

मुनक्का, अमलतास, गंभारी, त्रिफला, खाँड़, पीलु या निशोथ और हर्रें।

इनके द्वारा विरेचन देने से पित्तज विसर्प में शोधन का कार्य होता है।

खदिर, सतौना, मोथा, अडूसा, अमलतास, देवदारु और केवटीमोथा का लेप कफज विसर्प में लाभकारी सिद्ध होता है।

सोनामाखी, असगंध, विधायरा या मंजीठ, शतावर या मेढ़ासिंगी को गोमूत्र में पीसकर लेप लगाने से कफज विसर्प नष्ट होता है। मैनफल, मुलेठी, नीम, इन्द्रयव—इनके योग से वमन कराना कफज विसर्प में लाभकारी है।

त्रिफला, कमलगट्टा, खस, मंजीठ, कनेर, नरसल की जड़ और दूब—इन्हें पीसकर लेप लगाना विसर्प रोगनाशक होता है।

अमलतास के पत्ते, लिसोड़ा की छाल, शिरीष के फूल और कौआडोंडी। इनके कल्क का लेप लगाना विसर्प में गुणकारी है।

मोथा, नीम और परवल अथवा आँवला, परवल के पत्ते और मूँग का काढ़ा घी के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के विसर्प का उन्मूलन होता है।

गुरुच, अडूसा, पटोलपत्र, नीम की पत्ती, त्रिफला, खैर का गोंद और अमलतास—इन्हें बराबर की मात्रा में लेकर काढ़ा बना उसमें गूगुल मिलाकर पीने से विष, विसर्प और अट्ठारह प्रकार के सभी कुष्ठ निर्मूल होते हैं।

गुरुच, अडूसा, परवल के पत्ते, मोथा, सतौना, खैर, नील और नीम की पत्ती और हलदी। इनका काढ़ा बनाकर पीने से अनेक प्रकार के विष, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोटक, कण्डू, मसूरी रोग तथा शीतपित्तज्वर में लाभ होता है।

परवल के पत्ते, गुरुच, चिरायता, अडूसा, नीम, पित्तपापड़ा, खदिर और

मोथा। इनका क्वाथ पीना विस्फोटक की वेदना और ज्वरविनाशक सिद्ध होता है।

परवल के पत्ते, त्रिफला, नीम, गुरुच, मोथा, चंदन, मरोड़फली, कटुकी, पाठा, हलदी और दुरालभा—इनके कषायपान से कफ-पित्तज्वर, कण्डू (खुजली के दाने), चर्मदोष, विस्फोटक, विष और विसर्प का अपकर्षण होता है।

चिरायता, अडूसा, कटुकी, परवल, त्रिफला, चंदन और नीम। इनका कषाय पीने से विसर्प, जलन, ज्वर, मुख का सूखापन, विस्फोटक, पिपासा तथा वमन का निवारण होता है।

कफपित्तोत्पन्न विसर्प में गूगुल के साथ त्रिफला अथवा दुरालभा, पित्तपापड़ा, परवल और कटुकी—इनका गुनगुना क्वाथ या खदिराष्टक क्वाथ में गूगुल मिलाकर पीना रोगापकर्षक होता है।

गुरुच, नीम, खदिर और इन्द्रयव—इनके कषायपान से विस्फोटक उसी प्रकार दूर हो जाता है।

जिस प्रकार प्रबल झंझावात से मेघसमूह तितर-बितर हो जाया करते हैं। रोगी व्यक्ति नीरोग होकर इससे उसी प्रकार शोभित हो उठता है जिस प्रकार दीपक के प्रकाश से गृह की शोभा बढ़ती है।

शिरीष, रेंड, तगर, जटामाँसी, हलदी और कमल—इन्हें बराबर भाग में लेकर जल में पीस डाले और लेप लगायें तो सभी प्रकार के विस्फोटक दूर होते हैं।

शिरीष वृक्ष की जड़, मंजीठ, चव्य, आँवला, मुलेठी, चमेली के पत्ते और मधु का कवल धारण करना विस्फोटक में लाभप्रद होता है।

शिरीष, गूलर, जामुन या लिसोड़ा की छाल के द्वारा लेपन और सेचन करना उपयोगी सिद्ध होता है।

शिरीष, मुलेठी, तगर, चंदन, इलायची, जटामांसी, इन्द्रयव, कूठ और सुगन्धवाला—इन दश पदार्थों को पीसकर घृत के साथ लेप लगाने से विसर्प, ज्वर, कण्डू तथा विस्फोटक आदि दूर होते हैं।

शिरीष, खस, नागकेशर, और बालछड़। इनको लेपित करने से शीघ्र ही विसर्प, विष और विस्फोटक नष्ट होते हैं।

अडूसा, खैर, परवल के पत्ते, नीम की छाल, गुरुच और आँवला—इनके कषाय में इनका कल्क डालकर गाय के ताजा घृत में पका लें।

इस घृत के सेवन से विसर्प, विस्फोटक, कुष्ठ और गुल्म रोग का निवारण होता है। परवल के पत्ते, सतौना, नीम, अडूसा, त्रिफला और गुरुच—इनके साथ पकाया हुआ घृत पंचतिक्त कहा जाता है।

इस घृत के द्वारा तत्क्षण ही त्रिदोषज विस्फोट, विसर्प तथा कण्डू आदि रोग निर्मूल होते हैं।

विशेष सूचना—इन दिनों भारत सरकार का स्वास्थ्य मंत्रालय भी कुष्ठ उन्मूलन के क्षेत्र में तत्परतापूर्वक कार्य कर रहा है जिसके अंतर्गत सभी सरकारी स्वास्थ्य केन्द्रों से कुष्ठविनाशक एम.डी.टी. की टिकिया निःशुल्क उपलब्ध करायी जाती है।

मसूरिका (चेचक) रोग का उपचार

वातज कोप से रक्त प्रदूषित होकर जब शरीर के अवयवों पर मसूर के समान अगणित फुंसियों की उत्पत्ति कर देता है तब उसी को मसूरिका कहा जाता है।

इस रोग में परवल, नीम, अड़ूसा के कषाय में वचा, कूड़ा, मुलेठी और मैनफल—इनके कल्क को मिलाकर वमन कर्म कराना चाहिए। अथवा ब्राह्मीरस में हुलहुल के पौधे का रस डालकर मधु के साथ पिलावें। वमनोपरांत रेचन करके ही चिकित्सा में तत्पर हैं।

करेला के पत्तों का काढ़ा बनाकर उसमें हलदी का चूर्ण मिलाकर पान करें। अथवा रोहन्ती का काढ़ा पीवें।

ऐसा करने से ज्वर, विस्फोटक, : सूरिका आदि रोगों का शमन होता है।

वमन-विरेचन से संस्कारित मसू्.का रोगी में वेदना कम होती है और उसकी फुंसियाँ भी शीघ्र पक्वावस्था में आ जाती हैं।

कुछ मसूरिकाएँ ऐसी होती है जो विना किसी प्रकार की चिकित्सा किये ही ठीक हो जाती हैं, किन्तु कुछेक अनेक उपायों से भी ठीक नहीं होती।

इसकी कुछ फुंसियाँ काली होती हैं और कुछ पीछे की ओर काली घनी हुआ करती हैं। ऐसी फुंसियों का दमन होना संदेहजनक होता है, किन्तु कुछ तो लाखों यत्न करने के बाद भी ठीक नहीं हो पातीं।

हलदी, दारुहलदी, खस, शिरीष, नागरमोथा, नीम, चंदन और नागकेशर—इनका लेप लगाने से पसीना, विस्फोटक, विसर्प, कुष्ठ, दुर्गन्धि तथा रोमहर्षण आदि औपद्रविक लक्षण विलुप्त हो जाते हैं।

नीम, तिरिच्छ, सालसा, इमली और बेंत—इनके छिलके से निकाले हुए जल को ठण्ढा करके फुंसियों का प्रक्षालन करें।

तंडुली, मोथा, अड़ूसा, धनिया, जवासा, चिरायता, नीम, कटुकी और पित्तपापड़ा। इनके जल का पान करने से मसूरिका, विस्फोटक तथा ज्वर का विनाश होता है। मसूरिका के पकने पर उसे सुखा लेना आवश्यक है।

क्षुद्ररोग का उपचार

अनेक प्रकार के छोटे-छोटे रोगों में एक अजगल्लिका रोग (बच्चों के शरीर पर निकलने वाली गाँठ के समान चिकनी फुँसी) भी होता है।

इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में जोंक लगाकर प्रदूषित रक्त का निष्कासन कर देना आवश्यक होता है। तदनन्तर सीप और सौराष्ट्र मिट्टी को दूध में पीसकर बार-बार उन पर लेपन करें।

अनुशयी रोग (पैरों में निकलकर भीतर-ही-भीतर पक जाने वाली पिडिका) में कफज विद्रधि में प्रयुक्त होने वाली औषधियों को काम में लायें।

इसके अतिरिक्त विवृता (पके हुए गूलर के समान मंडलाकार फुंसी), इन्द्रगर्भा (कमलाकृति वाली फुंसी), गर्दभिका (मंडलाकार रूप में फुंसियों से युक्त फोड़ा), जालगर्दभ (विसर्प के सदृश विस्तरित होने वाली पाकरहित सूजन), इरिवेल्लिका (चमड़े में उत्पन्न होने वाली एक प्रकार की बड़ी फुंसी)—इन सब रोगों की चिकित्सा पित्तजन्य विसर्प की भाँति की जानी चाहिए।

उनके व्रणों को शमन मधुर औषधियों के मिश्रण से पाचित घृत के द्वारा करें।

विदारिका (जाँघ वंक्षण की संधि में बिदारीकंद के समान उत्पन्न होने वाला गोलाकार फोड़ा) में रक्तमोक्षण, रक्तावसेचन, स्वेदन, अवतर्पण आदि कर्मों के अनन्तर सहिजन और देवदारु का लेप लगाकर उन्हें नियंत्रित करना चाहिए।

इस प्रकार पनसिका नामक कर्णरोग और कच्छपिका नामक गाँठदार फुंसियों की भी चिकित्सा करणीय होती है।

इसी भाँति वातादि दोषोत्पन्न अन्यान्य रोगों की भी चिकित्सा करनी चाहिए। अंधालजी नामक फुंसी तथा कच्छपिका और पाषाणगर्दभ (ठोड़ी की संधि में होने वाली फुंसी) नामक रोग को स्वेदित करके देवदारु, मैनसिल और कूठ का लेप लगाया अथवा पूर्वोक्त कफवातजन्य शोथ में कथित औषधों का प्रयोग इस रोग में भी करें।

वल्मीक रोग (गरदन, कंधा, कोख और गले में निकलने वाली सर्पविवर की भाँति गाँठ) में शस्त्रोच्छेदन कर अग्नि द्वारा दग्ध करें।

मैनसिल, भिलावाँ, छोटी इलायची, अगरु, लालचंदन तथा चमेली की पत्तियों का कल्क बना उसमें नीम का तैल डालकर पका लें।

उक्त तैल के उपयोग करने से अनेक छिद्रों वाले औपद्रविक वल्मीक रोग का निवारण होता है। पाददारी नामक रोग (पैर के तलुओं का फटना) मेंपादतलों के शोधक शिरा का भेदन करें।

तदनन्तर पैरों को स्निग्धित और स्वेदित करके मोम, चरबी, मज्जा, घी और जवाखार का लेप लगायें।

नागकेशर और सेंधा नमक के चूर्ण को मधु, घी और सरसों का तैल मिलाकर पैरों को धोये। पोई शाक के पत्ते,नीम के पत्ते, सफेद सरसों, केले का मोचा, पेठा और ककड़ी को जलाकर उसके क्षारजल के साथ नमक तथा तैल को पकाकर लगाने से पैर के तलुओं का फटना बंद हो जाता है।

अलस रोग (पैर की उँगलियों के नीचे कीचड़ में सने होने के कारण खुजली होना) में दोनों पैरों को कुछ देर तक कांजी में भिंगोकर रखने के अनन्तर परवल के पत्ते, नीम की पत्ती, कसीस और त्रिफला को पीसकर लेपित कर दें।

करंज के बीज, कसीस, हलदी, मुलेठी, मधु, रोचना और हरिताल— इनका लेप लगाने से अलस रोग नष्ट होता है।

कदर रोग (पैरों में काँटे आदि के चुभने से उनमें होने वाली कील के समान उभार) में संयंत्र द्वारा विदीर्ण कर गरम तैल या आग से दग्ध कर दें।

चिप्प नामक नाखून के रोग में गरम जल से स्वेदित कर उस स्थान को छेद डाले तथा तैल से तर करके उस पर राल व चूर्ण भुरभुरा दें एवं व्रणशोथ के समान उपचार करें।

विचारपूर्वक कार्य करने पर ही कार्यों में सफलता मिलती है। किसी लौहपात्र में हलदी के रस में हरड़ को घिसकर बार-बार चिप्प पर लेप लगाना लाभदायक होता है।

पाद्मिनी कंटक रोग (कमल के काँटों के समान परिव्याप्त गोल मंडलाकार पीतवर्णीय फोड़ा) में नीम के जल से वमन तथा उसके काढ़े में पाचित घृतपान करना लाभकारी है।

अथवा नीम और अमलतास को पीसकर उबटन मलना भी गुणकारी होता है।

अहिपूतनक रोग (बच्चों के अस्वच्छ मलद्वार पर निकलने वाली छत्राकार फुंसी) में पहले घाव को शुद्ध करने के बाद त्रिफला और खदिर के काढ़ा से प्रतिदिन धुलाई करते रहें तथा करंज और त्रिफला को पीसकर घृत में पका लें एवं बालकों पर प्रयुक्त करें।

अहिपूतनक रोग में मुख्यतः रसोत का पान और लेप उत्तम फलदायी होता है।

गुदभ्रंश रोग (गुदा का बाहर आ जाना, काँच रोग) में तैल लगाकर पहले गुदा को अन्दर प्रविष्ट करायें।

गुदा के अंदर जाने पर उसे कौपीन से रोककर स्वेदित करे।

कमलिनी की कोमल नाल में शक्कर मिलाकर खाने से कभी गुदभ्रंश होने की संभावना नहीं रहती तथा क्षुधाग्नि भी बढ़ती है।

अम्लबेंत, चित्रक, अम्ललोन, सोंठ, पाठा और यवाग्रज। इन्हें मट्ठे के साथ पीने से गुदभ्रंशी की क्षुधाग्नि बढ़ जाती है।

गाय की चरबी को मलद्वार पर रगड़ने से बाहर निकली हुई गुदा अपने स्थान पर जाकर स्थिर हो जाती है।

अथवा चूहे की चरबी द्वारा गुदाद्वार पर लेप लगाना या पके हुए मूषकमांस द्वारा स्वेदन करना चाहिए।

अम्ललोना, बेर, कांजी, सोंठ और जवाखार—इनके कल्क में घी को पकाकर लगाने से गुदभ्रंश का निवारण होता है।

बृहत्पंचमूल और आँतरहित चूहे को दूध में डालकर उसे वातविनाशक औषधियों के साथ तैल में पका लें।

इस तैल के मालिश करने और पीने से गुदभ्रंश विनष्टीकरण होकर रोगी में बलवर्धन होता है।

अवपाटिका नामक रोग (शिश्नमुंड के आच्छादक चमड़े का फटना) से स्नेहन और स्वेदन कर्म द्वारा किया जाने वाला उपचार लाभकारी होता है।

इसके अतिरिक्त चर्मकील और जन्तुमणि रोग (शरीर पर पड़ने वाला स्वाभाविक चिह्नविशेष, लच्छन), मस्से और तिलकालक (तिल का दाग) रोग में संयंत्र से विदीर्ण का क्षार तथा अग्नि प्रयोग द्वारा दग्ध कर दें।

तरुणपिडिका न्यच्छ, नीली, व्यंग (झाई।), शर्करा आदि रोगों में शिरोभेद, अभ्यंग तथा लेप आदि के द्वारा चिकित्सा करें।

लोध, धनिया और वचा को पीसकर लेपित करने से तरुणपिड़िका रोग दूर होता है।

सरसों, वचा,लोध और सेंधा नमक—इनको पीसकर मुख पर लेप लगाने तथा वमन लेने से युवावस्था की पिड़िकाएँ (मुहाँसा) नष्ट होती है।

व्यंग रोग में अर्जुन की छाल या मंजीठ को शहद के साथ, और सफेद घोड़े के खुर का भस्म बना मक्खन से निकाले गये ताजा घी में मिलाकर लेप लगाना उचित कहा गया है।

लाल चंदन, मंजीठ, कूठ, लोध, प्रियंगु का पुष्प, बरगद का अंकुर और मसूर—इनको पीसकर मुख पर मलने से मुख का सौन्दर्य बढ़ता है।

व्यंग रोग पर खरगोश के रक्त का अथवा सेमल वृक्ष के काँटों को मुख पर लेपित करना लाभदायक है।

इस लेप को तीन दिनों तक गर्भिणी नारी के मुख पर मलने से मुख की छाहीं मिट जाती है।

मसूर के कल्क को दूध में मिलाकर घी में भून कर सात दिन मुख पर लेप लगाने से मुख कमलवत् हो उठता है।

काली अगरु, नीलकमल, कच्चे दही की मलाई, बेर की गुठली, प्रियंगु का फूल—इनको पीसकर एक सप्ताह मुख पर मलने से चेहरे में निखार आ जाती है।

सफेद सरसों, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, गेरू और बकरी का दूध। इन्हें पीसकर मुख पर लेपित करने से मुख की शोभा बढ़ती है।

परिपक्व दही की मलाई, नीलकमल के पत्ते, कूठ, चंदन और खस। इनके लेप से मुख की कान्ति बढ़ती तथा भौंहों के तिल नष्ट होते हैं। हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, काला अगरु, कटुचंदन, चकवँड़, मंजीठ, कमल, कमलगट्टा, कुंकुभ, कैथ फल, तेंदू, पकड़ी और बरगद।

इनके पत्तों को पीसकर लेप लगाने और मलने से विप्लव, नीलिका, व्यंग तथा तिल आदि चिह्नों का विनष्टीकरण होता है तथा मुख का सौन्दर्यवर्धन होता है।

प्रियंगु का फूल, मंजीठ, चंदन, कमल और केशर—इनका कल्क बना मुलेठी के काढ़ा में ३२ तोले तैल मिलाकर पकावें। पकने पर इसे कनकतैल कहा जाता है।

इसके मालिश से विक्लेद, नीलिका, व्यंग आदि रोग नष्ट होते हैं और चेहरे पर निखार आ जाता है।

मंजीठ, मुलेठी, लाह और बिजौरा नीबू—इन सबके कल्क १-१ कर्ष, तैल ३२ तोले और बकरी के दूध को ६४ तोले डालकर धीमी आँच पर पका लें। इस तैल के मर्दन से नीली, तरुणपिडिका तथा व्यंग आदि दूर होते हैं।

इस तैल के एक सप्ताह मालिश करने के फलस्वरूप वलीपलित तथा विरूपता आदि का निवारण होकर मुख की चमक बढ़ जाती है।

कुंकुम, लालचंदन, लाख, मंजीठ और मुलेठी—इनके अलग-अलग २-२ कर्ष कल्क के साथ ३२ तोले तैल और ६४ तोले बकरी के दूध को मिलाकर मंद अग्नि पर पाचित कर लें।

भलीभाँति पाक हो जाने पर इसका मर्दन मुख पर करें। इसे कुंकुमादि तैल के नाम से जाना जाता है।

इसके द्वारा नीलिका, पिड़िका तथा व्यंग आदि सभी प्रकार के मुख रोग दूर होते तथा मुख पूर्णतया निर्मल हो जाता है। इसका निर्माण पूर्वकाल में देववैद्य अश्विनीकुमारों ने किया था।

द्विनिशाद्य तैल का प्रयोग

हलदी, दारुहलदी, गोरोचन, कमल, नीलकमल, मैनसिल, काकोल्यादिगण—इनके अक्ष परिमाण कल्क को लाह के रस में दूध मिलाकर एक प्रस्थ तैल में पका लें।

इस द्विनिशादि तैल को मुख पर मलने से मुख की कांति स्वर्ण के समान हो उठती है जिसे देखने वाले बरबस ही आकृष्ट हो जाया करते हैं।

सचमुच ही यह तैल एक वशीकरण की भूमिका निभाता है। अरुंषिका रोग (शिर की खोपड़ी में अनेक छोटी-छोटी फुंसियों का निकलना) में सबसे पहले शिराभेदन करके जोंक द्वारा रक्त का निष्कासन करा दें।

तदनंतर नीम के काढ़े से शिर को धोकर घोड़े की लीद और सेंधा नमक मिलाकर शिर पर लेप कर दें।

अथवा पुराने सरसों की खली और मुरगे की बीट को गोमूत्र में पीसकर लेप लगायें। ऐसा करने से शीघ्र ही अरुंषिका का निवारण होता है।

हलदी, दारुहलदी, चिरायता, त्रिफला, नीम और चंदन—इन्हें तैल में मिलाकर पका लें और शिर पर मालिश करें।

दारुण रोग में शिराओं को स्निग्धित और स्वेदित करके उनका भेदन करें। इसके साथ ही अवपीड़, शिरोबस्ति तथा अभ्यंग आदि का भी प्रयोग करने से लाभ होता है।

कोदो नामक अन्न की पत्ती के क्षार को जल में मिलाकर शिर को धो डालें और शहद के साथ शिर पर लेपित करें। इस प्रयोग से दारुण रोग में लाभ मिलता है।

मालती, कनेर, चित्रक और करंज—इनको तैल में पकाकर मालिश करने से इंद्रलुप्त नामक रोग (शिर पर बालों का न उगना) नष्ट हो जाता है।

सेंहुड़ और मदार का दूध, भँगरैया, पिठवन, विष, बकरी तथा गाय का मूत्र, राई और इन्द्रायण। इनके कल्क को सरसों के तैल में धीमी आँच पर उसके गाढ़ा होने तक पका लें।

इस तैल का लेप लगाने से कछुए की पीठ के समान खुरदुरी और रूखी रोमतस्करी (बालों को चोरने वाली कूरी) रोग तथा अत्यन्त रोमावलीयुक्त ऋक्षशावा रोग भी दूर होना है।

त्रिफला, मंडूर, जटामांसी, भँगरैया, कमल, सारिवा और सेंधा नमक—इन्हें तैल में पकाकर शिर में लगाने से झड़े हुए बाल पुन: आने लगते हैं।

चित्रक, दन्ती की जड़ और तोरई—इनके कल्क द्वारा पकाया गया तैल केश-संबंधी रोगों को नष्ट करता है।

अथवा भँगरैया के रस में गुंजाफल (घुघुँची) का कल्क मिलाकर तैल पकावें। यह तैल, कंडू, दारुण रोग, कोढ़ तथा कपाल रोगों का उन्मूलक होता है।

भँगरैया का चूर्ण, त्रिफला, नीलकमल,सारिवा, मंडूर और जल—इन्हें तैल में पकाकर लगाने से दारुण रोग नष्ट होता तथा शिर के विरल केश भी सघन हो जाते हैं।

पुंडरिया, मुलेठी, छोटी पीपर, लालचंदन और नीलकमल—इनके १-१ कर्ष भाग को ३२ तोले तैल तथा ६४ तोले आँवले के रस में मिलाकर पका लें और मालिश करें तो समस्त प्रकार के शिरोरोग का निवारण होकर वलीपलित रोग भी नष्ट होता है।

मुलेठी, नीलकमल, मरोड़फली, काला तिल, घृत, गाय का दूध, और भँगरैया—इनको पीसकर लेप लगाने से शिर के केश अल्पावधि में ही घनीभूत और कोमल हो जाते हैं।

चंदन, मुलेठी, मरोड़फली, त्रिफला, नीलकमल, प्रियंगु का फूल, बरगद के अंकुर, गुरुच, मीठा विष, मंडूर, भूतकेश और दोनों सारिवा—इनके कल्क को भँगरैया के रस में तैल मिलाकर मंद अग्नि पर पका शिर पर मालिश करने से शिर के विरल बाल पुन: उत्पन्न होकर घने और भौंरे के समान काले बन जाते हैं।

मुलेठी और आँवले के रस में दूध को पकाकर नस्य लेने पर शिर तथा दाढ़ी के बाल उग आते हैं।

हाथी दाँत के भस्म को दारुहलदी के रस में भिंगोकर लेप लगाना हाथ-पैर के तलुओं में भी रोमोत्पादक होता है।

अथवा त्रिफला, कमलिनी के पत्ते, मंडूर और भृंगराज—इन्हे बकरी के मूत्र में पीसकर लेप लगाने पर केश श्यामवर्ण के हो जाते हैं।

त्रिफलाचूर्ण, मंडूर और भँगरैया को अधपके नारियल के अंदर एक महीने तक रख छोड़े। तत्पश्चात् उसे बाहर निकाल शिर के बालों को छीलकर उसका लेप लगा दें और उसके ऊपर से केले का पत्ता लपेट दें। एक सप्ताह के अनंतर उसे खोलकर त्रिफला क्वाथ से धो डालें। इसके प्रयोगकाल में प्रयोक्ता को दूध और मांसरस का आहार लेना आवश्यक है। केशों को काला बनाने के लिए यह एक सर्वोत्तम उपाय कहा गया है।

नीलकमल को दूध में मिलाकर एक महीने तक भूमि में स्थापित कर रखें। तदनंतर उसे शिर में प्रयोग करने से बाल काले और चिकने हो जाते हैं। इससे बेहतर अन्य कोई प्रयोग नही है।

लौहकिट्ट, आँवले तथा जया पुष्प के कल्क को लगाकर प्रतिदिन नहाने वाला व्यक्ति पलित रोग (केशों की श्वेतता) से विमुक्त हो जाता है।

अथवा नीम के तैल का एक महीने तक नस्य लेने से पलित रोग का विनाश होता है। इसके प्रयोगकाल में दुग्धाहार लेना चाहिए।

भँगरैया का रस १ प्रस्थ तथा दूध १ प्रस्थ लेकर उसमें मुलेठी और नीलकमल का कल्क ३२ तोले मिला कर तैल पका लें। इस तैल के नस्य से भी उक्त फल की प्राप्ति होती है।

कसीस, गोरोचन, हरिताल और रसोत—इन्हें सम भाग में लेकर लेप लगाने से वृषकंडू तथा अहिपूतन रोग निर्मूल होते हैं।

परवल के पत्ते, त्रिफला और रसोत—इनके साथ घी को पकाकर उस घृत का पान करने से भी अहिपूतन रोग का विनष्टीकरण होता है।

मुखरोग का उपचार

वातोत्पन्न प्रकोप से होंठ फटने पर राल से लेप लगाना लाभप्रद होता है। इसके साथ ही वातविनाशक पदार्थों से पाचित तैल का नस्य लेना तथा मस्तिष्क पर मालिश करना उचित होता है।

इस रोग में स्वेद, मर्दन, स्नेहपान तथा रासायनिक योग भी लाभकारी सिद्ध होते हैं।

सभी रोगों में देशकालादि का विचार अतिआवश्यक होता है।

धूपसरल, साल की राल, गूगुल, देवदारु और मुलेठी—इनके चूर्ण से प्रतिसारण कर्म करने चाहिए।

पित्तोत्पन्न ओष्ठप्रकोप में शिराभेदन, वमन, विरेचन, तिक्त औषधों का पान, रसयुक्त भोज्य पदार्थ, शीतल प्रलेप, शीतल परिषेक आदि कर्म भी लाभदायक होते हैं।

रक्तपित्त तथा चोट आदि लगने से उत्पन्न ओष्ठ रोगों में जोंक द्वारा रक्तमोक्षण कराने के अनंतर पित्तविद्रधि रोग की चिकित्सा अपनानी चाहिए।

इसी प्रकार कफोत्पन्न ओष्ठरोग में जोंक द्वारा रक्त निष्कासित कराकर शिरोविरेचन, धूम, स्वेद और कवलग्रह धारण आदि कर्म उपयोगी होते हैं।

त्रिकटु, सज्जीखार और जवाखार—इनके साथ मधु मिलाकर प्रतिसारण करने से लाभ मिलता है।

मेदोत्पन्न ओष्ठरोग में शोधन और स्वेदन के पश्चात् अग्नि से दग्ध करना हितकर होता है।

प्रियंगु का पुष्प, त्रिफला और लोध—इनको मधु में मिलाकर प्रतिसारण कर्म करें। इसके साथ ही त्रिफलाचूर्ण का मधु के साथ लेप लगाना उपयोगी होता है।

शीताद रोग (दाँतों की जड़ से रक्त प्रवाह होना तथा मसूड़ों का पकना) में रक्तशोधन के पश्चात् सोंठ, सरसों और त्रिफला के काढ़ा से कुल्ला करें तथा प्रियंगुपुष्प, मोथा और त्रिफला का लेप लगायें।

कूठ, दारुहलदी, लोध, मोथा, मंजीठ, कटुकी, चुरनहार और नीलिका। इनका मंजन बनाकर दाँतों पर मलने से दाँतों से रक्त निकलना, खुजली तथा वेदना आदि रोग शांत होते हैं।

दाँतों के हिलने और उनमें पीड़ा होने पर भद्रमोथा, हर्रें, त्रिकटु, भाभीरंग और नीम की पत्ती—इन सबको गोमूत्र में पीसकर वटी बना छाया में सुखा लें। तदनन्तर इसकी एक गोली मुख में रखकर सो जाये तो हिलते हुए दाँत भी दृढ़ हो जाते हैं।

दन्तपुप्पुट रोग (दो या तीन दाँतों में बड़ा शोथ उत्पन्न होना) में पहले रक्तमोक्षण करायें तथा पुनः पंचलवण क्षार के द्वारा मधु के साथ प्रतिसारण कर्म करने से रोग दूर होता है।

छोटी पीपर मिश्रित घी में मधु मिलाकर मुख में धारण करने से दन्तवेदना दूर होती है।

दन्तवेष्ट रोग (दाँतों से रक्त या पीब आना तथा दाँतों का हिलना) में मवाद निकाल कर लोध, पतंग, मुलेठी और लाह—इनके चूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण कर्म करें तथा दुग्धस्रावी वनस्पतियों द्वारा कुल्ला भी करायें।

शैशिर रोग (दन्तमूल में पीड़ायुक्त सूजन और लार टपकना) में रक्तशोधनोपरांत लोध, मोथा, रसोत—इनमें शहद मिलाकर लेप लगाये तथा दुग्धवाही वनस्पतियों से कुल्ला भी करायें।

परिदर नामक रोग (दाँतों के मूलमांस की गलन तथा थूकने के समय रक्तप्रवाह) में शीताद रोग के औषधों का अवलम्बन करने से रोगमुक्ति होती है।

उपकुश रोग (मसूड़ों पर जलनयुक्त सूजन) में वमन, विरेचन और नस्य के द्वारा शिर और शरीर को संशोधित करके गूलर और गोजिया के पत्तों को मसूड़े पर रगड़कर वहाँ का रक्त निकाल दें तथा पंचलवण और त्रिकटु में शहद को मिश्रित कर प्रतिसारण करें।

अथवा छोटी पीपर, सफेद सरसों, सोंठ और समुद्रफल—इन्हें किंचित उष्ण जल में डालकर कवलग्रह धारण करने से उपकुश रोग नष्ट हो जाता है।

दन्तवैदर्भ रोग (किसी प्रकार की चोट आदि के लगने से मसूड़े में सूजन होकर दाँतों का हिलना) में दंतमूल को संयंत्र द्वारा शोधित कर क्षारीय द्रव्य तथा शीतल उपचारों को प्रयुक्त करें।

हिलते हुए दाँतों को उखाड़कर अग्निकर्म के पश्चात् कृमिदन्त रोग के समान उपचार करें।

अधिमांस रोग (पिछली दाढ़ के नीचे वेदनायुक्त अत्यंत शोथ हो जाने से लार टपकना) में वहाँ के स्थान को खरोंचकर तेजबल, वचा, पाठा, सज्जीखार और जवाखार—इनके चूर्ण को मधु के साथ घाव पर लेपित कर दें। इसके साथ ही छोटी पीपर में शहद मिलाकर मुख में कवलग्रह धारण करें

तदनंतर परवल के पत्ते,नीम और त्रिफला के कषाय से कुल्ला करें। इसके अतिरिक्त रेचक पदार्थों के धुएँ का नस्य लें।

दन्तसंबंधी नासूर (नाड़ीव्रण) में पूर्वकथित नाड़ीव्रण की चिकित्सा-विधि अपनायें। चमेली की पत्ती, मैनफल, कटुकी, कटाई, लोध, खदिर, मंजीठ और मुलेठी—इनके कल्क और क्वाथ में पकाया हुआ तैल दंतनाड़ीव्रण का निवारण करता है।

दन्तहर्ष रोग (दाँतों के ठण्ढे, वात और रूक्ष पदार्थों का सहन न होना) में चोरहुली, असबरग, मालती, कनेर और असगंध—इनको स्निग्ध और गुनगुना करके कवल धारण करें या त्रैवृत घृत का कवल भी प्रयोग कर सकते हैं।

इसके साथ ही वातविनाशक पदार्थों के क्वाथ का उपयोग भी दंतहर्ष में लाभकारी होता है। इस रोग में स्नेहित धूमपान या स्नेहयुक्त नस्य लेना भी हितकर कहा गया है।

दन्तशर्करारोग (वात-पित्त के मिश्रण से दाँतों की मैल का सूखकर रेत के समान खरखरा होना) में मसूड़ों को सुरक्षित रखते हुए उस रेत को उत्पाटित कर लाक्षाचूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करें तथा दंतहर्ष में वर्णित क्रियाओं को भी करते रहे।

कपालिका रोग (दाँतों पर मैल जमने के कारण उनका टूटना और फटना) में दन्तशर्करा के प्रयोगों का ही आश्रय लेना चाहिए। यह रोग कठिनता से ठीक होता है।

कृमिदंत रोग में दाँतों पर स्वेद निकलता है। इसके लिए वातनिवारक

अवपीड़, स्नेहन, गंडूष तथा पुनर्नवा, देवदारु आदि का प्रलेप, स्निग्धाहार आदि के प्रयोग करने चाहिए।

अथवा हींग को गरमाकर कृमिदंत पर दबाने से भी उसके कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

कटेरी, सूरन और कंटकारी के पंचांग का काढ़ा बना तैल मिलाकर कुल्ला करने से भी कृमिदंत में लाभ होता है।

नील और काकजंघा की जड़ को दाँतों में दबाये रखने से उनके कीड़े शीघ्र ही बाहर आ जाते हैं।

सुषिर रोग (दाँतों का छिद्र) में हिलते हुए दाँतों को खींचकर उस स्थान को जला दे। तदनंतर बिदारीकंद, मुलेठी, सिंघाड़ा और कसेरू—इनके कल्क को दशगुने दूध में तैल डालकर पका लें और उसका नस्य लें।

हनुमोक्ष रोग (वात के कारण ठुड्डी की संधियों में चोट आदि के लगने से दाँतों का हिलना) में लकवा में कथित उपचारों को करना लाभदायक होता है।

दंतरोगी के लिए यह आवश्यक है कि वह खट्टे फल, शीतल जल, रूखे अन्न का भोजन, दतुअन तथा कड़े पदार्थों का आहार न ले।

जो चिकित्सा **वातज ओष्ठरोग** में कही गयी है वही चिकित्सा वातज कंठरोगों में भी की जानी चाहिए।

पित्तज कंठरोग में दूषित रक्त का निष्कासन, मधुर औषधों द्वारा घर्षण, कुल्ला और नस्य का प्रयोग करना उत्तम है।

कफज कंठरोग में रक्तमोक्षण छोटी पीपर के चूर्ण में मधु मिलाकर घर्षण, सेंधा नमक और सफेद सरसों द्वारा मुख में कवलधारण तथा परवल, नीम, बैगन तथा क्षार पदार्थों के यूष का भोजन आदि प्रयोग ग्राह्य होते हैं।

जीभ में जकड़न होने पर मानकंद के भस्म, नमक तथा तैल को मिलाकर जीभ पर रगड़ने से लाभ होता है।

अथवा सेंहुड़ के दूध के साथ जंबीरी नीबू आदि के चवाने से जीभ की जड़ता दूर होती है।

केकड़े के दोनों पैरों को पीसकर दूध में पका लें और सोते समय पैरों पर लेपित करने या दाँतों के बीच में स्थापित करने से दाँतों की कड़मड़ी दूर होती है।

उपजिह्वा रोग (जीभ के नीचे एक दूसरी जीभ का निकलना) में उसे संयंत्र की सहायता से खरोंच कर क्षार द्वारा घर्षित करें। इसके साथ ही शिरोविरेचन, नस्य, कुल्ला, धूम आदि का भी प्रयोग करें। तत्पश्चात् त्रिकटु, जवाखार, हर्रें और चित्रकमूल

आदि औषधियों का घर्षण करें। अथवा इन औषधों द्वारा तैल को पकाकर उससे उपजिह्वा की मालिश करनी चाहिए।

कफ तथा रक्तविकार से तालुमूल में उत्पन्न होने वाले गलशुंभिका (कंठशुंडी) रोग में उसे संयंत्र की सहायता से विदीर्ण कर उस पर त्रिकटु, सेंधा नमक, वचा और मधु मिलाकर घाव पर घर्षण करें।

बकरी के दूध में मालती को पीसकर गलशुंभी पर लेप लगायें तथा कूठ, सोंठ, वचा, पाठा, छोटी पीपर, सेंधा नमक और केवटीमोथा—इन्हें मधु के साथ गलशुंभी पर घर्षित करें। ऐसा करने से गलशुंभी का निवारण होता है।

वचा, अतीस, पाठा, रास्ना, कटुकी और नीम—इनका काढ़ा बनाकर कवल धारण करें। तालुपाक में पित्तशामक चिकित्सा का प्रयोग करना उचित है।

तालुशोष में स्नेहन, स्वेदन और वातविनाशन की क्रिया उपयुक्त होती है। साध्य रोहिणी रोग (गले में मांसांकुर निकलना) में रक्त निष्कासन, वमन, गंडूषधारण, धूमपान और नस्य का अवलंबन लें।

वातज रोहिणी में रक्तमोक्षण के पश्चात् पंचलवण द्वारा घर्षण करें तथा गुनगुना तैल का कवल बारम्बार धारण करे।

पित्तज रोहिणी में पतंग, शक्कर और मधु मिलाकर घर्षण करें। इसके साथ ही अंगूर और फालसे का काढ़ा बनाकर मुख में धारण करना भी लाभप्रद सिद्ध होता है।

कफज रोहिणी में गृहधूम की कालिख में त्रिकटु चूर्ण को मिलाकर घर्षण करना उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त चोरहुली, भाभीरंग और दन्ती—इन्हें तैल में पकाकर सेंधा नमक मिला नस्य प्रयोग और कवल धारण की क्रिया भी करें।

रक्तज रोहिणी में पित्तज रोहिणी के समान चिकित्सा करें। कंठशालूक रोग (कंठ में बेर की गुठली के समान काँटेदार गुठली की उत्पत्ति) में दूषित रक्त निष्कासन के अनंतर तुंडिकेरी रोग के सदृश उपचार करना लाभकारी होता है। इसमें एक बार यवान्न का भोजन करना आवश्यक है।

इरिवेल्लिका रोग में उपजिह्वा के समान प्रयोग काम में लायें।

अधिजिह्वा रोग में जीभ के ऊपरी भाग को बडिश नामक संयंत्र से खींचकर मंडलाग्र यंत्र से रुग्णस्थान को छिद्रित कर दें तथा तीक्ष्ण और उष्ण औषधों से घर्षण करके अल्प मात्रा में रक्त निकाल कर विशोधन की क्रिया करनी चाहिए।

कर्णरोगों में रक्तनिष्कासन तथा तीक्ष्ण पदार्थों का नस्य लेना उपयोगी है। दारुहलदी की छाल, गुरुच, बहेड़ा और इन्द्रयव का काढ़ा पीना भी लाभकारी है।

अथवा हरड़ के कषाय में शहद डालकर पान करे। कटुकी, अतीस, पाठा, देवदारु, मोथा और इन्द्रयव—इन्हें गोमूत्र में पकाकर पीने से कंठरोग, पुराना बुखार, रक्तविकार तथा कुष्ठादि रोगों का उन्मूलन होता है।

कालक नामक चूर्ण का लाभ

गृहधूम की कालिख, जवाखार, पाठा, त्रिकटु, रसोत, तेजबल, त्रिफला, लौह और चीता—इनके चूर्ण में मधु मिलाकर मुख में धारण करने से गलरोग का नाश होता है। इस कालक नामक चूर्ण के प्रयोग से दंतरोग, मुखरोग तथा गलरोग का निर्मूलन होता है।

मैनसिल, जवाखार, हरिताल, सेंधा नमक, दारुहलदी और दालचीनी—इनके चूर्ण में मधु मिलाकर नवीन घृत के झाग से मूर्छित कर कंठरोग तथा मुखरोग में इसे मुख में रखे रहें। इसे पीतक चूर्ण कहा जाता है।

मुखसंबंधी रोगों में दोषानुसार दूध, गन्ने का रस, गोमूत्र, दही, दही का पानी, छाँछ, कांजी या शास्त्रोक्त विधिनिर्मित तैल या घृत का कवल धारण करने से लाभ मिलता है।

पंचकोल, तालीसपत्र, इलायची, कालीमरिच, दालचीनी, पलाश, मुलेठी, दूध और जवाखार—इनके चूर्ण में पुराने गुड़ की दुगुनी मात्रा डालकर मधु मिला गोली बना मुख में रखें। यह कंठरोगों में अमृत के समान गुणकारी कहा गया है।

वातज, सर्वसर रोग (वातादि दोषों से मुख के अन्दर चारों ओर फैलने वाला घाव) में पंचलवण के चूर्ण से घर्षण करें तथा वातनाशक पदार्थों के साथ पाचित तैल को नाक से सूँघे और मुख में कवल धारण करे।

पित्तज सर्वसर रोग में विरेचनादि से परिशोधित रोगी में मधुर तथा पित्तशामक शीतल पदार्थों के प्रयोग किये जाने चाहिए।

कफज सर्वसर में घर्षण, कुल्ला, वमन तथा नस्य आदि की प्रक्रिया अपनाएँ। मुखपाक में परवल, नीम, जामुन, आम और मालती—इन पंचवृक्षों के नवीन पत्तों का कषाय निर्मित कर मुख का प्रक्षालन करें अर्थात् कुल्ला करें। अथवा पंचवल्कल के कषाय या त्रिफला के काढ़े से मुख को धोना चाहिए।

मुखपाक रोग में शिराभेदन, सम्पूर्ण शरीर और शिर का शोधन तथा बार-बार जायपत्री का घर्षण करना लाभकारी होता है।

जायपत्री, गुरुच, मुनक्का, जवासा, दारुहलदी तथा त्रिफला—इनके क्वाथ को ठंढा करके मधु मिलाकर कुल्ला करने से मुखपाक नष्ट होता है।

सतौना, खस, परवल का पत्ता, मोथा, हर्रे, कटुकी, मुलेठी, अमलतास और चन्दन। इनका काढ़ा पीने से मुखपाक का निवारण होता है।

परवल, सोंठ, त्रिफला, विशाला, त्रायमाण, नीम, हलदी, दारुहलदी और गुरुच। इनके कषाय में शहद डालकर पीने से सभी प्रकार के मुखरोग निर्मूल होते हैं।

त्रिफला, पाठा, दाख और इलायची—इन्हें पकाकर पान करें। अथवा केवल त्रिफला के सेवन से ही मुखपाक रोग जाता रहता है।

काला तिल, नीलकमल, घी, शक्कर और दूध—इनके साथ मधु मिलाकर कुल्ला करने से अग्निदग्धित मुखदाह और मुखपाक का विनष्टीकरण होता है।

मोथा, कूठ, इलायची, धनिया, मुलेठी और एलुआ (मुसव्वर)—इनका कवल धारण करने से रोगग्रस्तता तथा लहसुन या मद्यपान से आने वाली मुख की दुर्गन्ध का निवारण होता है।

महासहचरादितैल का प्रयोग

नीली कटसरैया को १०० पल लेकर एक द्रोण जल में पकावें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे छान लें और उसमें गौरीसर, खैर, दुर्गन्धि खैर, जामुन, आम, मुलेठी और नीलकमल—इनके आधा-आधा पल कल्क को तैल में पाचित कर लें। पकने पर इसे मुख में लिये रहने से हिलते हुए दाँत दृढ़ हो जाते हैं।

दुर्गन्धखैर की नयी छाल को कूट-पीसकर १०० पल एक द्रोण जल में पका लें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें मंजीठ, लोध, मुलेठी, दुर्गन्धखैर, कायफल, लाह, बरगद की छाल, छोटी इलायची, कपूर, अगरु, कमलगट्टा, लौंग, शीतलचीनी, जायफल, त्रिफला, पतंग, गेरू, दालचीनी, नागकेशर और धव के फूल—इनके २-२ पल कल्क के साथ २ प्रस्थ तैल में पकावें। यह तैल सभी प्रकार के मुखरोगों में लाभदायक है।

इससे कृमिदन्त, दाँतों का टूटना और हिलना, मुखस्थ मांस की जलन और मुख की दुर्गन्धि आदि में लाभ मिलता है। यह अरिमेदादि नामक तैल अत्यन्त गुणकारी है।

तैल १ प्रस्थ, लाह का रस १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ तथा लोध्र, कायफल, मंजीठ, कमलकेशर, कमलगट्टा, लाल चंदन, नीलकमल, मुलेठी एवं इनका चौगुना क्वाथ और इन्हीं पदार्थों का आधा सेर कल्क मिलाकर तैल पका लें।

इस तैल का गंडूष मुख में रखने से दंतचालन, रालन, दन्तमोक्ष, कापालिका, शीताद, मुख दौर्गन्ध्य, अरोचकता, मुख का फीकापन आदि रोगों का विनाश होकर दाँतों में दृढ़ता आती है। इसके उपयोग से मुख-संबंधी सभी रोग नष्ट होते हैं।

मौलसिरी के फल, लोध, इडसंधारी, नीली कटसरैया, अमलतास के पत्ते, बबूल की छाल, साल वृक्ष की छाल और खैर—इनके कल्क और क्वाथ में तैल मिलाकर पकावें। इसे मुख में रखने या दाँतों को धोने से चलित दाँत जम जाते हैं। एक सौ पल खैर को एक द्रोण जल में पूरी तरह से पका लें। आठवाँ भाग शेष रहने पर उसे निथार लें और उसमें चमेली, कचूर, सुपारी और शीतलचीनी के फल—इनके कल्क को मिलाकर गाढ़ा बना गोली बना लें। इसे खदिर गुटिका कहा जाता है।

इसका प्रयोग मुख-सौन्दर्य, दन्तरोग, ओष्ठरोग, जिह्वा रोग, मुखरोग तथा तालुरोग में लाभकारी सिद्ध होता है।

खैर और पंचवल्कल को २००-२०० पल लेकर ४ द्रोण जल में पाक करें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे कपड़े से छान लें और पुनः धीमी आँच पर पकावें।

पककर गाढ़ा हो जाने पर उसमें कवलग्रह में कथित द्रव्यों के साथ ही इलायची, कमल का डंठल, सफेद चंदन, लालचंदन, सुगंधवाला, श्यामा, तमाल (आबनूस), मंजीठ, मोथा, लौह, मुलेठी, लाह, त्रिफला, रसोत, धव, लौंग, गेरू, दारुहलदी, कायफल, कमलगट्टा, लोध, बरगद वृक्ष की जटा, जवासा, मांसी, हलदी, बड़ी इलायची, शीतलचीनी, जायफल और चव्य—इनके १-१ पल बारीक चूर्ण को मिलाकर आग से उतार लें। ठण्ढा होने पर उसमें ४ पल कपूर का भी मिश्रण कर दें।

तदनन्तर उसे मटर के दाने के समान गोलाकार बना सुखा लें। इस महाखदिरादि वटी को मुख में रखे रहने पर कंठ रोग, ओष्ठ रोग, जिह्वा रोग, दंतरोग, तथा तालुरोगों का उन्मूलन होकर दाँतों का दृढ़ीकरण होता है।

कर्णरोग का उपचार

कैथ, बिजौरा नीबू, अदरख और कांजी—इनके रस को गरम करके कान में डालने से कानों की पीड़ा दूर होती है।

अदरख का रस, मुलेठी, सेंधा नमक और सरसों का तेल—इनको कानों में गुनगुना भर देने से कर्णपीड़ा का निवारण होता है।

अथवा लहसुन, अदरख, सहिजन, मूली, केला और तुलसी—इनके रस को गरमाकर कान में डालना कर्णपीड़ा का विनाशक होता है।

आठ प्रकार के मूत्रों (बकरी, भेंड़, गाय, नारी, घोड़ी, ऊँटनी, हथिनी और भैंस) में से किसी एक मूत्र को कान में गुनगुना भर देने से वेदना शांत होती है। बृहद् पंचमूल की आठ अंगुल लंबी लकड़ी लेकर पट्टवस्त्र से लपेट उसे तैल में भिंगोकर

दीपक पर जलायें। उस दीपक की आँच से गिरने वाली तैल की बूंदें कान में डालने पर शीघ्र ही पीड़ा दूर हो जाती है।

अथवा देवदारु, कूठ और सरलकाष्ठ का समायोजन करके दीपक तैल को कान में डालना गुणकारी है।

मदार के पके हुए पत्तों को पुटपाक की रीति से पकाकर उसका रस कान में डालने से तत्काल ही पीड़ा का शमन होता है।

तीव्र कर्णवेदना में रक्तस्राव होने पर सेंधा नमक में बकरी के मूत्र को गरम-गरम पीने से कर्णशूल नष्ट होता है।

बाँस की छाल का कल्क मिला बकरी के मूत्र में तैल डालकर पकावें। इस तैल को कानों मे भर देने से पीड़ा का शमन होता है।

अथवा हींग, तुम्बुरु और सोंठ—इनके कल्क को तैल में पकाकर कान में डालने से पीड़ा दूर होती है।

सूखी मूली और सोंठ का खार, हींग, सोंठ, सौंफ, वचा, कूठ, देवदारु, सहिजन, रसौत, काला नमक, जवाखार, सज्जीखार, विड् नमक, सेंधा नमक, भोजपत्र, गठिवन, सामुद्री नमक और मोथा—इनके सम भाग वाले कल्क में मधु, कांजी, बिजौरा नीबू तथा केले का रस मिलाकर चौगुना परिमाण में तैल के साथ पका लें। इस तैल के प्रयोग से कर्णशूल नहीं रह जाता।

इसके साथ ही बधिरता, कर्णनाद तथा कानों से पीब का स्राव होना आदि भी शिवादेशानुसार नष्ट हो जाते हैं।

दही के पानी डालकर शोधित पात्र में मधु, गुड़ और कांजी को एक साथ मिलाकर तीन दिन तक उसमें रख छोड़े। इस रीति से इसे बासी बनाने से यह शुक्त नामक कांजी होती है।

कर्णक्ष्वेड और कर्णनाद में सरसों तैल के प्रयोग से अच्छा फल मिलता है। बहिरापन और कर्णनाद रोग में वातविनाशक औषधों का प्रयोग करना लाभकारी होता है।

चिरचिरा के क्षारजल में चिरचिरा का ही कल्क मिलाकर तैलपाक कर लें। इस तैल को कानों में पूरित कर देने से कर्णनाद तथा बधिरता का नाश होता है।

सज्जीखार, सूखी मूली का खार, हींग, छोटी पीपर, सोंठ और सौंफ—इनके कल्क को चौगुनी कांजी में मिलाकर तैलपाक कर लें। इस तैल को कान में डालने से कर्णनाद, बहिरापन तथा कर्णस्राव आदि रोग जाते रहते हैं।

दशमूल के कषाय में दशमूल का कल्क मिला कर १ प्रस्थ तैल में पाचित कर लें। इससे बहिरापन मिट जाता है।

रेंड़, सहिजन, वरुना और मूली—इनके चौगुने रस में अठगुना दूध डालकर मुलेठी और क्षीरकाकोली का कल्क संयुक्त कर तैल को पका लें। इस तैल के नस्य, मालिश और कर्णचूरण से कर्णनाद, कर्णपीड़ा, बधिरता आदि रोगों का उन्मूलन होता है।

लहसुन, मानकंद, हरिताल—इनके सम परिमाण के कल्क से चौगुना तिलतैल तथा तेल से चौगुना तेल डालकर एक साथ पकावें। पकने पर तैलमात्र के शेष रहने पर प्रयुक्त करें। इसे कानों में भर देने से बधिरता का निवारण होता है, किन्तु वृद्ध और बालक के बहिरापन की चिकित्सा नहीं करनी चाहिए।

पूतीक और कृमिकर्ण रोग में कर्णस्राव की चिकित्सा के समान ही चिकित्सा करनी चाहिए। कर्णविद्रधि रोग में वमन कराने के पश्चात् विद्रधि रोग की भाँति चिकित्सा-विधि अपनाएँ।

पालीशोष (कानों की लोर का क्षीण होना) रोग में वातज कर्णशूल में कथित नस्य, प्रलेप तथा स्वेदनकर्म करें। स्वेदन के अनंतर तिलों को पीसकर उबटन लगायें तथा चिरौंजी, मुलेठी, असगंध और यव—इनके कल्क से समायोजित पुष्टिदायक तैलों द्वारा मर्दन करें।

जीवनीयगण के कल्क को आनूपदेशीय मांस के क्वाथ और दूध में तैल को पकाकर प्रयोग करने के फलस्वरूप सूखती हुई कर्णपाली भी बढ़ जाती है।

पूर्णतया सूखी हुई कर्णपाली को छेदित करके शेष अंशों को युक्त कर पोषण दें। इसी भाँति तंत्रिका रोग और परिपोट रोग की भी चिकित्सा करनी चाहिए।

उत्पात नामक कर्णरोग में जोंक द्वारा रक्तमोक्षण करें। तदनंतर शीतल औषधों का लेप करें। अथवा जामुन, आम के पत्ते, खिरेंटी, मुलेठी, लोध, तिल, नीलकमल, कांजी, मंजीठ, कदम्ब और अनन्तमूल—इनके कल्क को तैल में पकाकर मालिश करना लाभप्रद है। विसर्प रोग में कथित घृत भी इसमें ग्राह्य होता है।

कर्णछेदन की प्रक्रिया तथा उपचार

संशोधित रक्त वाले रोगी के छिद्रित कान के यौगिक बंधनों का विचार करके संधान करना चाहिए। जुड़े हुए कान तथा सद्यः छेदित कान के लिए शोधन कर्म करना अति आवश्यक है। केशों को ग्रथित कर छेदन और लेखन कर्म करना उचित है।

तत्पश्चात् संधिस्थल को समान रूप से स्थापित करके वहाँ मधु और घृत का लेप लगा दें। तदनंतर रूई के फाहे से संधि का अवगुंठन कर सूत्र द्वारा ढीला बाँध दें। पुनः रक्तस्थापनकारक चूर्ण उस स्थान पर छिड़क दें। इसके अनन्तर व्रणशोधक क्रिया करनी चाहिए।

एक सप्ताह बीत जाने पर रूई के उस फाहे को कच्चे तैल में भिगोकर शनैः शनैः हटाये। घाव का पूरण होने, जोड़ों के जुड़ जाने तथा वहाँ रोमों के निकल आने पर उसे धीरे-धीरे खींचकर बढ़ाये।

नाक के रोग का उपचार

पीनस रोग (नासिका द्वारा दूषित कफ का निःसरण) के शमनार्थ पंचमूल के साथ पाचित दूध, चित्रकहरीतकी का योग, सर्पिगुड़योग तथा षडंजयोग को काम में लाना चाहिए।

त्रिकटु, चित्रकमूल, तालीसपत्र, इमली, अम्लबेंत, चव्य और स्याहजीरा—इन्हें १-१ तोला और इलायची, दालचीनी, तेजपात—इन्हें २-२ माशा तथा ८ तोला ६ माशे पुराने गुड़ के साथ चूर्णित कर सेवन करने से पीनस, श्वास, कास आदि का निवारण होकर रुचि बढ़ती तथा स्वर तीव्र होते हैं।

कटेरी, दन्ती, वचा, सहिजन, तुलसी, त्रिकटु और सेंधा नमक—इनके कल्क को तैल में पकाकर नस्य लेने से पूति रोग (नाक की दुर्गन्धि) नहीं रह जाता।

त्रिकटु, वायविडंग, सेंधा नमक, कटेरी, मैनफल, सहिजन, तुलसी और दंती—इनके कल्क में दूध मिलाकर तैल में पकाकर नाक से नस्य लेने पर पूतिरोग नष्ट होता है।

इन्द्रयव, हींग, कालीमरिच, लाह, तुलसी, कायफल, कूठ, वचा, सहिजन और भाभीरंग—इनका रस निचोड़कर नाक में डालने या इनके कल्क में गोमूत्र मिला तैल में पकाकर उस तैल के नस्य प्रयोग से पीनस और पूतिरोग का शमन होता है।

नासापाक (नाक का पकना) रोग में रोगी को केवल पित्तशामक औषधों के प्रयोग बाह्य तथा आंतरिक रूप में करने चाहिए।

नासापाक में रक्तशोधन के पश्चात् बरगद आदि दुग्धस्त्रावी वृक्षों की छाल पीसकर परिषेक तथा घृत से लेपन करना उचित है।

सोंठ, कूठ, छोटी पीपर, बेल का गूदा और दाख—इनके कल्क और कषाय में पकाये गये तैल या घृत का नस्य लेने से क्षवधु रोग (वात-पित्त के फलस्वरूप बारम्बार छींक आना) नष्ट हो जाता है।

पित्तोत्पन्न दीप्त रोग (जलनयुक्त नाक से धुएँ के समान वायु का निःसरण) में पित्तशामक शीतल तथा मधुर उपचार किये जाने चाहिए।

नाक में जलन होने पर स्नेहपान, धूम और शिराबस्ति आदि कर्म करने आवश्यक होते हैं।

वातज प्रतिश्याय (एक प्रकार का पीनस) में पंचलवण या प्रथमगणीय पदार्थों के साथ घी को पकाकर पान करने से लाभ मिलता है।

पित्तज या रक्तज प्रतिश्याय में शीतल परिषेक तथा शीतल प्रलेपादि की क्रिया करें। कफज प्रतिश्याय में तिल और उड़द के साथ पकायी गयी यवागू या घृतस्निग्ध कफविनाशक चिकित्सा करना लाभकारी सिद्ध होता है।

नूतन प्रतिश्याय में इमली के यूष से लाभ मिलता है। शिर का विरेचन करने से पका हुआ कफ निकल जाता है।

रात्रि में सोते समय चारपाई पर बैठकर शीतल जल पीने से भी पीनस से छुटकारा होता है।

कमल और जयंती के पत्र में सुहागा और तैल मिलाकर प्रयोग करने से सभी प्रकार के प्रतिश्याय दूर होते हैं।

इसके साथ ही शिर पर कफविनाशक तैलों के लगाने, स्वेदन करने, कटु तथा अम्लाहार को लेने, वमन एवं घृतपानादि से समस्त प्रकार के प्रतिश्याय से मुक्ति मिलती है।

दधिमिश्रित स्निग्धरूप भोजन में छोटी पीपर और गुड़ मिलाकर खाने से नवीनोत्पन्न प्रतिश्याय नष्ट होता है तथा कफ का परिपाक भी शीघ्र ही हो जाता है।

उबाले हुए उड़द में नमक डालकर भोजन के पश्चात् गरम-गरम खाने पर दीर्घकालिक प्रतिश्याय भी जाता रहता है।

छोटी पीपर, सहिजन के बीज, भाभीरंग और कालीमरिच—इनका रस निकालकर नस्य लेने से प्रतिश्याय का उन्मूलन होता है।

नासिका के कृमियों के निवारणार्थ कृमिनाशक पदार्थों को गोमूत्र में पीसकर प्रयोग करने से लाभ होता है।

कृमिस्थान की धुलाई करने हेतु कृमिविनाशक चिकित्सा की आपश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त अन्य नासा रोगों में शास्त्रानुसार विधि का प्रयोग करें।

करवीरादि तैल का प्रयोग

लाल कनेर के पुष्प, चमेली के पुष्प, विजयसार और मोतिया के फूल—इनके कल्क को सम भाग तैल में पकाकर नास लेने पर नासार्श (नाक का बवासीर) रोग निर्मूल होता है।

चित्रकहरीतकी योग के लाभ

चित्रकमूल का रस १०० पल, आँवले का रस १०० पल, गिलोय का रस १०० पल, दशमूल का काढ़ा १०० पल, गुड़ १०० पल और हर्रे का चूर्ण ४

प्रस्थ। इन सबको एकीकृत पकाकर गाढ़ा बना लें। तदनन्तर उसमें त्रिकटु और त्रिसुगंध को १२ पल तथा जवाखार को २ तोले की मात्रा में मिला दें। दूसरे दिन उसमें आधा प्रस्थ मधु डालकर बलानुसार सेवन करें।

इसके उपयोग से क्षुधाग्निवर्धित होकर क्षय, खाँसी, पीनस, कृमि, गुल्म, उदावर्त, अर्श तथा श्वासादि रोग उन्मूलित होते हैं। रोगियों के कल्याणार्थ संसार में इसकी गुरुगर्जना निरन्तर सुनाई पड़ती रहती है।

गृहधूम की कालिख, छोटी पीपर, देवदारु, जवाखार, हलदी, सेंधा नमक और चिरचिरा के बीज—इनको तैल में पकाकर नाक से सूँघने पर नाशर्श रोग दूर होता है।

नेत्र रोग का उपचार

अभिष्यन्द नामक अक्षिरोग (नेत्रों का कटना तथा उनमें सूजन होकर पीव का नि:स्राव होना) लंघन, लेपन, स्वेदन, शिरावेधन, विरेचन तथा अंजन आदि के प्रयोग से अत्यधिक लाभ होता है।

सभी प्रकार के नेत्ररोग, कुक्षिरोग, प्रतिश्याय, अरुचि तथा ज्वरादि रोग प्राय: पंचरात्रि के लंघन द्वारा ही नष्ट हो जाते हैं।

निरंतर चार दिनों तक स्वेदन, लेपन, स्निग्ध भोजन, परिषेक, लंघन तथा नमक, मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ का वर्जन—इन छह प्रक्रियाओं के द्वारा अभिष्यन्द रोग का परिपाक होता है।

सरलवृक्ष का गोंद, अतीस और लोध। इनके चूर्ण में किंचित् सेंधा नमक मिला कर कपड़े की पोटली बना नेत्रों के बाहरी भाग में गुंडन देना प्रारंभिक अवस्था में लाभप्रद सिद्ध होता है।

नेत्ररोग की अपरिपक्वता की दशा में अंजन लगाना, दारुहलदी आदि के काढ़े से गरम सेंक करना आदि अलाभकर होते हैं, किन्तु पीड़ितावस्था में उपयुक्त पदार्थों से आश्च्योतन (नेत्र विरेचन) कर्म करना उचित माना जाता है।

बेल का गूदा, रेंड़ की जड़, कटेरी, जयंती, मधु और सहिजन। इनके गुनगुना क्वाथ के द्वारा वातज अभिष्यन्द में नेत्रविरेचन करना लाभकारी होता है।

रेंड़ का पत्ता, जड़, छाल और बीज के कल्क को कंटकारी की जड़ के साथ पकाकर मन्दोष्ण दूध का परिषेक करने से वाताभिष्यन्द नष्ट होता है।

दोषों का पूर्णरूप से परिपाक होने के पश्चात् ही अंजन का प्रयोग उपयोगी सिद्ध होता हे। अंजन प्रयोग के निमित्त हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में मध्याह्न का समय उचित होता है।

ग्रीष्म तथा शरत्काल में अंजन का प्रयोग प्रातः-सायं करना लाभदायक है।
वसंत ऋतु में किसी भी समय में अंजन का प्रयोग फलदायक होता है।
वर्षा ऋतु में अंजन का प्रयोग अनुचित है।

रेणुका नामक घास के समान महीन शलाका (सलाई) का प्रयोग अंजन में करना आवश्यक है।

अंजन लगाते समय नेत्र विरेचक चूर्ण को शलाका में पूरी तरह से भरकर पहले बायीं आँख पुनः दायीं आँख में अंजन लगाना चाहिए।

अंजन के प्रयोगकाल में शलाका को अँगूठे और तर्जनी उँगली को मिलाकर पकड़े। अंजन लगाते समय इस बात का भी ध्यान रहे कि उसका स्पर्श नेत्र के आंतरिक भागों में न होने पाये। बड़ी अंडी की जड़ और छाल, सहिजन की जड़ और सेंधा नमक—इन्हें बकरी के दूध में पीसकर अंजन लगाने से सभी नेत्ररोग दूर होते हैं।

हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, दाख और देवदारु—इनको बकरी के दूध में पीसकर आँखों में अंजन लगाने से वाताभिष्यन्द दूर होता है।

पुनर्नवा, मुलेठी, हलदी, आँवला और कमलगट्टा—इनके ठण्ढे कल्क में मधु डालकर सेंकने से पित्तज अभिष्यन्द का निवारण होता है।

मुलेठी, दाख, मंजीठ तथा जीवनीयगण के पदार्थों को दूध में मिलाकर पका लें। प्रातः समय इसे नेत्रों पर चुभोने से शोथ, पीड़ा आदि नेत्ररोगों का उन्मूलन होता है।

कफज अभिष्यन्द में लंघन, स्वेदन, नस्य, कड़ुए पदार्थ का भोजन तथा तीक्ष्ण द्रव्यों से सिंचन और लंघन करना भी प्रशस्त होता है।

शूकड़ि नामक तृण, नेवार, कैथ, बेल का गूदा, शांति नामक शाक, पीलु, मदार और भँगरैया—इनके द्वारा स्वेदन तथा सुगंधवाला, सोंठ, देवदारु और कूठ के द्वारा लेपन करना लाभदायक है।

सोंठ, नीम की पत्ती के कल्क में किंचित् सेंधा नमक डालकर पका लें। पुनः उसकी पिण्डी बनाकर आँखों पर गुनगुना सेंक करने से नेत्ररोग उसी प्रकार विखंडित हो जाते हैं जिस प्रकार वज्राघात से वृक्ष।

लोध की छाल में सेंधा नमक मिलाकर घी में भून लें। तदनन्तर सौवीर कांजी में पीसकर कपड़े की पोटली बना नेत्रों पर चुभोएँ। इस प्रक्रिया के द्वारा नेत्र की खुजली, जलन और वेदना की शान्ति होती है। लोध की छाल को नीम की पत्ती के कल्क से लेपित कर पुटपाक विधि से पका लें।

पुनः उसका चूर्ण या कल्क बना नारीस्तन के दूध को मिला दें और नेत्रों पर आश्च्योतन करें। इससे पित्तदोष, रक्तदोष और दाहजनित नेत्ररोगों का विनष्टीकरण होता है।

वातज अभिष्यन्द में स्निग्ध और उष्ण, पित्तज तथा रक्तज में हलके और मधुर तथा शीतल, कफज में तीक्ष्ण, रूक्ष और उष्ण उपचार करने चाहिए।

त्रिदोषज अभिष्यन्द में मिश्रित उपचार करना उचित है। अभिष्यन्द रोग का वृद्धिकाल रात्रि का प्रथम प्रहर और सम्पूर्ण दिन माना गया है।

कफज, वातज तथा पित्तज—इन तीनों ही अभिष्यन्द में ८ तोले परिमाण में औषधद्रव्य लेकर आश्च्योतन करें।

अथवा जब तक रोगी इस क्रिया का सहन करता रहे तब तक प्रतिदिन एक-दो या तीन वार आश्च्योतन कर्म करते रहे। नेत्रों से औषधियों द्वारा पानी को बाहर निकाल देना ही आश्च्योतन कर्म का मुख्य उद्देश्य होता है।

लेखन कर्म में ७-८, आश्च्योतन में १० बूँदें तथा रोग की परिसमाप्तिकाल में तैल की १२ बूँदे प्रयोक्तव्य होती हैं।

उचित परिमाणानुसार आश्च्योतन कर्म की सम्पन्नता होने पर नेत्र स्वच्छ होकर पीड़ा दूर होती है तथा नेत्रों में हलकापन का अनुभव होने लगता है।

अनुपयुक्त रीति से आश्च्योतन के फलस्वरूप रोगवर्धन, भारीपन तथा कलुषता का उत्पादन होता है।

दीर्घावधि तक आश्च्योतन कर्म करते रहने पर उदासीनता का विस्तार होता है।

लोध, त्रिफला, मुलेठी, शक्कर और भद्रमोथा—इन्हें शीतल जल में पीसकर सेंक करने से रक्तज अभिष्यन्द निर्मूल होता है।

कसेरू और मुलेठी के चूर्ण की पोटली बनाकर नेत्रों के चारों ओर सेंक लगाने से लाभ मिलता है। रक्तज अभिष्यन्द में तिक्त घृतपान, बारम्बार विरेचन, नेत्रों के चतुर्दिक् जोंक का प्रयोग तथा पित्ताभिष्यन्दनिवारक उपचार लाभप्रद सिद्ध होता है।

पंच पल्लव (आम, जागुन, कैथ, अनार और बेल) के रस का स्वेदन कर्म समस्त नेत्ररोगों में हितकर होता है।

हर्रे, गेरू, सेंधा नमक, दारुहलदी और साल—इनको जल में पीस मधु डालकर नेत्रों पर लेप लगाना भी नेत्र रोगनाशक सिद्ध होता है।

नीम और चमेली के कोमल और स्वच्छ पत्तियों को पीसकर सेंधा नमक मिला गोली बना लें। तत्पश्चात् उस गोली पर लोध की छाल घिसकर लेप लगा दें।

इस प्रकार से निर्मित वटी को कांजी में डुबोई हुई रूई के फाहे में रखकर नेत्रों के चारों ओर फेरने से नेत्ररोग निर्मूल होते हैं।

उक्त औषधियों का २ तोला चूर्ण लेकर मधु मिला लें और चारों ओर नेत्रों पर स्पर्श करायें।

इस प्रक्रिया के द्वारा आँखों की जलन, आँखों से आँसू का निकलना, आँखों की लाली और सूजन मिट जाती है।

अथवा बेलपत्र के रस को छानकर उसमें घी और शहद मिला किसी ताम्रपात्र पर रखकर कौड़ी का घर्षण करें।

तदनन्तर उस रस को गोबर की धुआँ देकर धूपित कर लें। पुन: उसे दूध में उबालकर नेत्रों में पूरित कर देने से पीड़ा और सूजन नष्ट होती है।

यह योग अभिष्यन्द, अधिमंथ तथा नेत्रस्राव आदि रोगों में अत्यन्त प्रशस्त है। इसके प्रयोग से रोगी सुखपूर्वक शयन करता है।

कांजी में सेंधा नमक और सरसों का तैल डालकर उसे किसी काँसे के पात्र में भरकर ऊपर से उपलों को घिस लें। तदनन्तर उस रस को गोबर के धुएँ से धूपित कर बकरी के दूध और घी में उबाल कर नेत्रों के अंदर भर दे।

इससे नेत्रप्रकोप, कफदोष, नेत्रपीड़ा, नेत्रस्राव तथा नेत्रों की सूजन आदि रोग दूर होते हैं।

इसी प्रकार के उपचार अधिमंथादि रोग में भी उपयोगी होते हैं। अधिमंथ रोग का शमन न होने पर भौंहों के ऊपर अग्नि से दग्ध कर देना चाहिए।

त्रिफला, परवल, नीम, अडूसा—इनका काढ़ा बना गूगुल के साथ लेप लगाने से नेत्रशोथ, नेत्रशूल और नेत्रपाक रोग नष्ट होते हैं।

पूर्वकथित योग के द्वारा व्रणयुक्त और व्रणविहीन शुक्ररोग (आँखों की फूली) तथा नेत्रों की लालिमा आदि का निवारण होता है। त्रिफलादि द्रव्यों से पकाया हुआ घृत भी इसमें लाभकारी है।

बसौंटा, हर्रं, नीम, आँवला, मोथा, बहेड़ा और कपूरकचरी—ये वासकादिगण के द्रव्य नेत्रों के लिए लाभकारी तथा रक्तस्राव और कफ के उन्मूलक होते हैं।

अडूसा, नीम, परवल, मोथा, कटुकी, गुरुच, लाल चंदन, कूड़े की छाल, इन्द्रयव, दारुहलदी, चीता, सोंठ, चिरायता, आँवला, हरड़, बहेड़ा और यव—इस वृहद् वासकादिगण के द्रव्यों का काढ़ा बना लें। आठवाँ भाग शेष रहने पर क्वाथ को ठण्ढा करके प्रात:काल पीने से तितिर (नेत्रों के सामने अँधेरा दीखना), अंजना, नेत्रकण्डू, पटल, अर्बुद, सव्रणशुक्र, अव्रणशुक्र, नेत्र की जलन, नेत्रवेदना, नेत्रराग आदि रोग समूल नष्ट होते हैं।

अथवा परवल, अडूसा, नीम, गुरुच, त्रिफला, मोथा, पंचमूल, मुलेठी, लालचंदन, श्वेत चंदन, सोंठ—इन्हें पटोलादिगण कहा जाता है।

यह सभी नेत्ररोगों का उन्मूलक तथा वात-पित्त-कफ और सान्निपातिक रोगों का विनाशक है।

३-३ नग हरड़-बहेड़ा और १२ नग आँवला लेकर काढ़ा पकावें। अष्टमांश शेष रहने पर उतारकर छान लें। इसके पान से आसाव, राग तथा तिमिरांध रोगों का विनष्टीकरण होकर नेत्रों में पारदर्शिता आती है।

स्निग्ध, शीतल और मधुर द्रव्यों का प्रयोग करके नेत्रों को स्वच्छ बनाना चाहिए। इसी प्रकार के उपचार स्वेद, अग्नि, धूम, भय और शोकोत्पन्न नेत्ररोगों में भी किये जाने चाहिए।

नेत्रविकार की अपरिपक्वावस्था रहने तक मुख की भाप से नेत्रों का स्वेदन, नारीदुग्ध से आश्च्योतन तथा कालानुसार अन्य उपचार भी उत्तम फल प्रकट करते हैं।

ग्रहणकालीन सूर्य के दर्शन तथा तीव्राग्नि या विद्युत् अवलोकन के फलस्वरूप नेत्रज्योति की क्षीणता में स्निग्ध, मधुर, शीतल द्रव्यों द्वारा नेत्र का तर्पण तथा सायंकाल त्रिफला का सेवन करने से सफलता मिलती है।

हलदी, मोथा, त्रिफला, दारुहलदी, अथवा इत्कट के अंकुरों के स्वरस में मधु और शक्कर का मिश्रण करके नेत्रों में डालना लाभप्रद है।

बकरी के ८ सेर दूध में मुलेठी, नील कमल, जीवक, ऋषभक आदि द्रव्यों का कल्क मिलाकर बकरी का घृत पका लें।

यह घृत सभी प्रकार के नेत्राभिघात, क्षय तथा दुर्बलता में लाभकारी सिद्ध होता है।

नेत्र के प्रथम पटल में अभिघातज वातादि दोष साध्य माने जाते हैं, किन्तु द्वितीय पटल के कष्टसाध्य तथा तृतीय पटल वाले दोष असाध्य होते हैं।

सेंधा नमक, देवदारु, सोंठ, बिजौरा नीबू का रस और घृत—इन्हें १-१ भाग और दूध १ भाग। सभी को एक साथ पका कर शुष्कपाक में अंजन लगायें। अन्यतोवात नामक नेत्ररोग (घाटी, कान तथा शिर में स्थित वायु के द्वारा नेत्रों तथा भौंहों पर होने वाली वेदना) में वाताभिष्यंद में कथित चिकित्सा विधि को अपनाएँ। इस रोग में भोजन से पूर्व दूध या घी के सेवन से अच्छा लाभ मिलता है।

अथवा बिदारीकंद, कैथ, बृहत्पंचमूल और काकड़ासिंगी के रस में दूध डालकर घी को पका लें और उस घृत का पान करें। अम्लाध्युषित नामक नेत्ररोग (अम्ल पदार्थों के सेवन से नेत्रों के मध्यभाग में नीली तथा किनारे के भाग में लालिमा का होना) के शमनार्थ शीतल प्रलेप तथा पुराने घी का पान करना उचित है।

इस रोग में शिराभेदन के अतिरिक्त शेष उपचार पित्ताभिष्यन्द के समान

करने चाहिए। शिरोत्पात नामक नेत्ररोग (नेत्र की शिराओं का लाल होना) में मधु तथा घृत की बहुलता से युक्त उपचार करने से लाभ मिलत है।

शिरोत्पात रोग में सेंधा नमक और कसीस को दूध में पीसकर अंजन लगाना रोगविनाशक है।

शिराहर्ष नामक नेत्ररोग (शिरोत्पात के बिगड़ जाने से रक्तमिश्रित आँसू का निकलना) में रक्तशोधक अंजन का प्रयोग लाभकारी होता है।

नेत्ररोगों में तर्पणार्थ निम्न प्रयोग किये जाने चाहिए, जैसे—मधु-रसोत, मधु-कसीस, दूध-अम्लबेंत, सेंधा नमक-राब अथवा गाय के दूध से तत्क्षण निकाला हुआ घृत।

उक्त प्रयोगों से नेत्रतर्पण किये जाने पर नेत्रों की स्वच्छता, तिमिरांधता का विनाश, अभिष्यन्द तथा अधिमंथ से ग्रस्त नेत्रपीड़ा का निवारण होता है। पीठ के बल स्थिरभाव से लेटे हुए रोगी पर तर्पण की क्रिया करनी चाहिए।

चंदन, गेरू, लाह तथा मालती पुष्प की कली—इनके अंजन से व्रणशुक्र (फूली) नष्ट होकर रक्तशोधन होता है।

आँवला,नीम, कैथ वृक्ष के पत्ते, मुलेठी, लोध, खैर और तिल—इनके क्वाथ को ठण्ढा करके नेत्रों में सेंक लगाने से समस्त प्रकार के व्रणशुक्र नष्ट होते हैं।

तूतिया को जल में पीसकर नेत्रों में डाल देने पर आँख की फूली कट जाती है।

समुद्रफेन, मुरगी के अंडे का छिलका, सेंधा नमक, शहद और सहिजन के बीज—इन सबको सहिजन के रस में पीसकर अंजन लगाने से आँखों की फूली नष्ट होती है।

अथवा मुरगी के अंडे का छिलका, मैनसिल, शंख, काँच (एक प्रकार की मिट्टी), चन्दन, गेरू—इनका अंजन प्रयुक्त करने से आँखों में फूली नहीं रह जाती। शिरीष के बीज, कालीमरिच, छोटी पीपर और सेंधा नमक अथवा केवल सेंधा नमक को ही फूली पर रगड़ने से फूली निर्मूल हो जाती है।

अथवा करंज फल के चूर्ण करके कुश की जड़ और पलाश के रस में भिंगो दे और उसे आँखों में आँजे तो समस्त नेत्ररोग विनष्ट होते हैं।

सेंधा नमक, त्रिफला, छोटी पीपर, कटुकी, शंखनाभि और ताँबे का चूरा—इन सबको पीसकर अंजन लगाने से व्रणयुक्त फूली कट जाती है।

शंखचूर्ण ४ भाग, मैनसिल २ भाग, कालीमरिच १ भाग और सेंधा नमक आधा भाग। इनके चूर्ण का अंजन लगाने से सव्रण तथा अव्रण शुक्ररोग तथा तिमिरादिक रोग उन्मूलित होते हैं।

सोनामाखी या मँडुआ का सार अथवा बहेड़े का बीज या मधु के साथ सेंधा नमक मिलाकर आँजने से फूली कटकर निकल जाती है।

कपूर के सूक्ष्म चूर्ण में बरगद का दूध मिलाकर आँखों में लगाने से व्रणशुक्र शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।

हरताल, नारियल, मुलेठी, कनीर और बाँस—इनके क्षार को निथार कर रख छोड़े। तत्पश्चात् हस्तिशावक के अस्थिचूर्ण को उस क्षारजल में ७-८ बार भिंगोकर चूर्णित कर लें।

यह चूर्ण साध्य शुक्ररोग का उन्मूलक तथा असाध्य शुक्ररोग को साध्यावस्था में पहुँचाने वाला सिद्ध, होता है।

पटोलादिघृत प्रयोग

परवल, कटुकी, दारुहलदी, नीम, अडूसा, त्रिफला, दुरालभा, पित्तपापड़ा और त्रायमाण—इन सबको १-१ पल, आँवला १ प्रस्थ। इन्हें एक द्रोण जल में डालकर पकावें।

चौथाई भाग शेष रहने पर उसमें १ प्रस्थ घी मिलाकर पुन: पका लें। पकाते समय ही चिरायता, कूठ, कूड़ा, मुलेठी, लालचंदन तथा पिप्पली के कल्क को भी मिला दें।

भलीभाँति पक जाने पर यह घृत नेत्रों के लिए लाभदायक तथा सव्रण और अव्रणशुक्र रोग का उन्मूलक होता है।

इस घृत के प्रयोग से नासिका रोग, कर्णरोग, वर्त्मरोग, चर्मरोग, मुखरोग, व्रण, कामला, विसर्प, गंडमाला आदि रोग विनष्ट होते हैं।

कृष्णाद्य तैल का प्रयोग

छोटी पीपर, भाभीरंग, मुलेठी, सेंधा नमक, सोंठ और काली-मरिच—इनके कल्क को बकरी के दूध में पकावें। पूर्णरूप से पक जाने पर इस तैल के नस्य प्रयोग से तिमिर, शुक्ररोग, शिर:शूल, नेत्रपीड़ा, नेत्रपाक तथा नेत्रात्यय रोग दूर होते हैं।

सेंधा नमक, स्याहजीरा और गोरोचन को लिसोड़े की छाल के रस में मिलाकर नेत्रों में डालने से अजका रोग (नेत्र की कनीनिका में बकरी की मेंगनी के समान वेदनायुक्त लाल रंग की फूली) का निवारण होता है।

खरगोश तथा मृगमांस के कषाय में मुलेठी और पुंडरिया के कल्क को मिलाकर ३२ तोले बकरी के घृत के साथ पकावें। पकने के पश्चात् मधु मिलाकर आँखों में पूरित कर देने से शुक्र, क्षतपाक, अजका, भौंहों की हड्डी में पीड़ा तथा नेत्रदाह आदि नष्ट होते हैं।

नूतन रक्तविकार के परिणामस्वरूप शुक्र, क्षतपाक, अत्यय और अजका आदि रोगों की उत्पत्ति हुआ करती है। इन पर नियंत्रण पाने के लिए जोंक लगाकर प्रदूषित रक्त का निष्कासन करा देना चाहिए।

नेत्रों के विनाश का प्रमुख कारण ऋषियों ने तिमिरांधता को बतलाया है। अतः तिमिर रोग का अविलंब उपचार अत्यंत आवश्यक होता है।

नेत्र के एक भाग में वातादि दोषों की स्थिरता को तिमिर रोग की आंरभिक अवस्था कही जाती है।

ऐसी अवस्था में दोषानुसार रोगी को काला, पीला, लाल आदि रंगो का भान होता है। नेत्र के तीसरे पटल में दोष के प्रविष्ट होने पर क्रौंच नामक और चौथे पटल में नीलिका नामक तिमिर रोग उत्पन्न हो जाता है।

तिमिररोग में लालिमा न आने तक सक्रिय व्यक्ति में यह रोग साध्य माना जाता है। लालिमा के उपस्थित होने तक यह कष्टसाध्य तथा पटल में प्रवेश कर जाने पर असाध्य हो जाता है। इसकी चिकित्सा से पूर्व साध्यासाध्य का विचार कर लेना अतिआवश्यक होता है।

जीवन्ती, बथुआ, चिल्ली, मूली, पोई और जांगलदेशीय शाक—इनकों घी में पकाकर खाना नेत्रों के लिए हितकर होता है।

परवल, ककोड़ा, करैला, बैगन, जयन्ती, बाँस का अँखुआ और नीली कटसरैया—इनका शाक घी में बनाकर खाने से नेत्र रोगों में लाभ होता है।

तिमिर रोग में पहले लालिमा पुनः काच रोग तथा अन्त में नीलिका की उत्पत्ति होने से मानव अंधत्व को प्राप्त हो जाता है। पित्तज तिमिर में त्रिफला के बारीक चूर्ण को मधु के साथ, वातज तिमिर में त्रिफलाचूर्ण को तैल के साथ तथा कफज तिमिर में शहद मिलाकर सेवन करना उपयोगी होता है।

त्रिफला के कल्क, क्वाथ या चूर्ण को मधु के साथ प्रयुक्त करने से सभी प्रकार के तिमिर रोग का विनष्टीकरण होता है।

स्त्री-सहवास से विरत रहकर त्रिफलाचूर्ण को मधु के साथ सायंकाल सेवन करने वाले व्यक्ति के नेत्ररोग उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जिस प्रकार धनहीन राजा के सेवकगण उससे दूर हट जाया करते हैं।

प्रतिदिन प्रात:काल त्रिफला के कषाय से नेत्रों का प्रक्षालन करने से नेत्र रोग दूर होकर पुनरावर्तित नहीं होते।

प्रातःकाल सोकर उठते ही प्रतिदिन मुख में कुल्ला भरकर नेत्रांजन करने से तिमिर रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

अथवा भोजनोपरांत हाथ धोने के पश्चात् दोनों हथेलियों को नेत्रों पर रगड़ने से अल्पावधि में ही तिमिर रोग दूर होते हैं।

कई बार के धोये हुए घृत द्वारा नेत्रांजन करने से एक सप्ताह में ही सैकड़ों वर्ष (दीर्घकालीन) पुराने तिमिर रोग का अंत हो जाता है।

जमालगोटा, शंख, सेंधा नमक, त्रिकटु, शक्कर, समुद्रफेन, रसोत, मधु, भाभीरंग और मैनसिल—इन सबको समान भाग में बकरी के दूध के साथ पीसकर आँखों में आँजने से तिमिर, पटल, काच और मर्मस्थल की फूली भी मिट जाती है।

चन्द्रोदयावर्ति का प्रयोग

हर्रे, वचा, कूठ, छोटी पीपर, कालीमरिच, बहेड़े का गूदा, शंखनाभि और मैनसिल—इनको समान भाग में बकरी के दूध में पीसकर आँखों में अंजन लगाने से तिमिर, कण्डू, पटल, अर्बुद, नेत्र के किनारे का अधिमांस तथा रतौंधी (रात्रि में दिखलाई न पड़ना, नक्तांधता) आदि रोग समूल नष्ट होते हैं।

इसके प्रयोग से दीर्घकालिक फूली भी एक मास में ही कट जाती है। इस योग को चन्द्रोदयावर्ति के नाम से जाना जाता है।

तीक्ष्ण अंजन का प्रयोग दिन में करना अनुचित है। तीक्ष्णांजन के प्रयोग द्वारा नेत्रों से अधिक जलस्राव होने के कारण दृष्टिशक्ति दुर्बल होने के फलस्वरूप सूर्य-किरणों की चकाचौंध से दृष्टि विलुप्त होने की संभावनाएँ बनी रहती हैं।

अत: ऐसे अंजनों का प्रयोग सोते समय रात्रि में करना ही संगत होता है।

हर्रे, हलदी, छोटी पीपर और लवण—इन्हें पीसकर अंजन लगाने से कण्डू, तिमिर आदि रोगों पर नियंत्रण होता है।

त्रिफला, मुरगी के अंडे का छिलका, कसीस, मंडूर, नीलकमल, भाभीरंग और समुद्रफेन—इन सबको बकरी के दूध में पीसकर सात दिनों तक ताँबे के पात्र में भरकर बकरी के दूध में भिंगो दे। पुन: पूर्व की रीति से उसका अंजन लगायें। इस अंजन की वर्तिका नेत्रपीड़ितों तथा अंधों के लिए दृष्टिप्रदायिका का कार्य करती है।

तिल के पुष्प ८० नग, छोटी पीपर ६० नग, चमेली के फूल ५० नग, कालीमरिच के १६ दाने और चावल—इनको एक साथ पीस लेने पर कुसुमवर्तिका तैयार होती है। इस अंजनवर्तिका का प्रयोग नष्ट हुए नेत्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

त्रिकटु, नीला कमल, हर्रे, कूठ और रसोत—इन्हें पीसकर आँखों में लगाने से अर्बुद, पटल, काच, तिमिर तथा नेत्रो से अश्रुस्राव होने वाले औपद्रविक लक्षण समाप्त हो जाते हैं।

कुंकुम, अगरु, कपूर, कूठ, इलायची, तेजपात और केशर—इन सबको बराबर भाग में तथा इनके समान परिमाण में लाल चंदन एवं सबके बराबर सफेद सुरमा का मिश्रण कर चूर्णांजन निर्मित किया जाता है।

इस अंजन के प्रयोग से तिमिरादिक रोगों का नाश होता है। एक भाग छोटी पीपर और दो भाग हर्रे को जल में पीसकर नेत्रों में लगाने पर तिमिर, अर्म, पटल तथा काच आदि रोग निर्मूल हो जाते हैं।

चन्द्रप्रभावर्ति का प्रयोग

अंजन, सफेदमरिच या सहिजन के बीज, छोटी पीपर, मुलेठी, बहेड़े का गूदा, शंखनाभि, और मैनसिल। इनके बराबर भागों को बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बना छाया में सुखा लें।

इस बत्ती के प्रयोग से अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, रक्तराजिका, अधिमांस, अर्क तथा रतौंधी आदि रोग विनष्ट होकर नेत्र स्वच्छ होते हैं।

नागार्जुनवर्ति का प्रयोग

त्रिफला, त्रिकटु, सेंधा नमक, मुलेठी, तूतिया, रसोत, पुंडरिया, भाभीरंग, लोध और ताँबा—इन चतुर्दश पदार्थ-समूहों को वर्षाकालीन जल में पीसकर बत्ती बना लें।

इस वर्तिका के निर्माण का विधान पटना नगर के एक शिलालेख पर नागार्जुन द्वारा किया गया था।

इस वर्तिका का प्रयोग मुख्यत: तिमिर और पटल रोग पर किया जाता है।

इसे नारी-स्तन के दुग्ध के साथ प्रयोग करने पर तात्कालिक नेत्रप्रकोप, पलाश के स्वरस में घिसकर लगाने से पैन्यपुष्प तथा नेत्रों की लालिमा, लोध्र क्वाथ के साथ तिमिर तथा बकरी के मूत्र के साथ प्रयुक्त करने पर नेत्राच्छादित रोग तथा कठिनतापूर्वक नेत्रों का मीचना दूर होता है।

छोटी पीपर, सोंठ, नीलकमल के पत्र, मुलेठी और हलदी—इनकी बत्ती बनाकर प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों में स्वर्ण के समान चमक आ जाती है।

त्रिकटु, मंडूर, सेंधा नमक, त्रिफला। इनके अंजन की निर्मित गुटिका जल में पीसकर आँजने से कोकिला तथा तिमिर रोग नियंत्रित होते हैं।

चन्दन, त्रिफला, सुपारी और पलाश का गोंद—इनको समान भागों में लेकर बत्ती बना आँखों में लगाने से तिमिरादिक रोग नष्ट होते हैं।

त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, सेंधा नमक और मैनसिल—इन्हें बराबर मात्रा

में पीसकर बत्ती बना लें। इनके प्रयोग से क्लेद, उपदेह, कण्डू और कफ आदि नष्ट होते हैं।

अथवा हलदी, नीम की पत्ती, छोटी पीपर, कालीमरिच, भाभीरंग, भद्रमोथा और सोंठ—इनको सम भाग में गोमूत्र के साथ पीसकर बेर की गुठली के बराबर गोली बना छाया में सुखा लें।

इसे जल में घिसकर अंजन लगाने से तिमिर, मधु के साथ पटल रोग, कांजी के साथ नेत्रकण्डू तथा नारीदुग्ध में घिसकर प्रयुक्त करने पर नेत्रपीड़ा नहीं रह जाती।

त्रिकटु, करंज के फल, हलदी, दारुहलदी, सेंधा नमक, बेल की जड़, वरुना की जड़ और वारिचर—इन दश वस्तुओं के योग से निर्मित अंजन से तिमिर, पटल, शुक्र तथा अर्जुन रोग नष्ट होते हैं तथा वृद्धों के नेत्र भी देखने में सक्षम हो जाते हैं।

नीलकमल, भाभीरंग, छोटी पीपर, लालचंदन, अंजन, सेंधा नमक—इनको पीसकर लगाने से तिमिर रोग निर्मूल होता है।

तेजपात, गेरू, कपूर, मुलेठी, नीलकमल, अंजन और नागकेशर—इनको पीसकर आँखों में आँजने से सभी प्रकार के तिमिर दूर होते हैं।

त्रिफला, भगँरैया, सोंठ, मधु, घृत और नागकेशर—इन्हें गोमूत्र में पीसकर सिंचन करने से गरुड़ के समान नेत्र दूरदर्शक बन जाते हैं।

खस के काढ़े में छोटी पीपर और संधा नमक का चूर्ण मिलाकर पका लें। पक जाने पर घी मिलाकर उसे पुन: पकावें। पककर गाढ़ा हो जाने पर आग से नीचे उतार कर ठंढा कर लें।

तत्पश्चात् उसमें मधु मिला दें। यह योग समस्त प्रकार के तिमिर में लाभकारक, सौभाग्यप्रदायक तथा उत्साहकारक सिद्ध होता है।

आँवला, रसोत, मधु और घृत—इनके रसक्रिया के द्वारा वातज-पित्तज तिमिर, पटल आदि रोग नष्ट होते हैं।

अदरख और भँगरैया के चूर्ण में मुलेठी के तैल को मिलाकर नस्य लेने से महापटल नेत्ररोग का विनष्टीकरण होता है। सभ प्रकार के वर्णों और चिह्नों की पहचान दृष्टि द्वारा न रह जाने पर लिंगनाश नामक रोग (बादल सरना) की उत्पत्ति होती है।

कफोत्पन्न लिंगनाश रोग के आवर्तकी आदि छह प्रकार के लक्षणों से रहित होने पर उसे सलाई से वेध देना उचित है, किन्तु अन्य दोषों में इस क्रिया को करना अलाभकारी होता है।

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि कास-श्वासग्रस्त, क्षतक्षया, कर्णशूली, अन्यान्य कर्णशूली, गर्भिणी नारी, निर्बल, कायर, लोलुप, मद्यपानक तथा अतिवृद्ध व्यक्ति के लिंगनाश में शिरावेध कर्म अनुचित कहा गया है।

शिराभेदनोपरांत तत्क्षण ही लाल-पीली वस्तुएँ दिखाई पड़ने पर उसे शलाका द्वारा शनैः शनैः निकाल कर पटोलादि या त्रिफलादि घृत के द्वारा व्रण का उपनाहन करना उत्तम है।

घृताभ्यक्त रोगी के नेत्रों पर कपड़े की पट्टी बाँधकर उसे किसी निर्वात स्थान में सुला देना चाहिए।

नेत्राविद्ध रोगी को एक सप्ताह तक छींकना, खाँसना, डकारना, थूकना, शीतल जल पीना, अधोमुख बैठना, नहाना, दन्तधावन करना तथा कड़े पदार्थों का चर्वण आदि करने से बचना चाहिए।

ऐसे समय में शक्त्यानुसार लंघन तथा नेत्रवेदना रहने पर गरम घी से सेंक करना लाभदायक है।

त्रिकटु, आँवला, और पुष्करमूल---इनके द्रव का सेवन घी के साथ तीन दिनों तक करते रहें।

अथवा विलेपी का प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त तीसरे दिन पट्टी खोलकर वातविनाशक पदार्थों से सेंक करना उचित है।

तदनंतर सातवें दिन नेत्रों की पट्टी पूर्णतया खोल दें। किन्तु जब तक दृष्टि में स्थिरता न आ जाय तब तक पथ्यपूर्वक संयमित जीवन बिताना आवश्यक है।

अयोग्यतापूर्ण रीति से वेधकर्म करने के कारण राग, कोष, अर्बुद, बुद्बुद, केकराक्षिता (तिरछी निगाह से देखना) तथा अधिमंथ आदि नेत्र रोग का जन्म होता है। अपथ्य भोजन के परिणामस्वरूप भी इसी प्रकार के फल देखने में आते हैं।

बिद्धता की दशा में नेत्रों की पीड़ा और राग की उत्पत्ति होने पर निम्न प्रकार से उपचार करना श्रेष्ठ है।

दूध, जौ, गेरू और अनन्तमूल—इनके कल्क को घी में मिलाकर मुख पर लेपित करने से नेत्रपीड़ा तथा नेत्रों के अन्य रोगों का शमन होता है।

दुद्धी (एक प्रकार की घास), अनन्तमूल, धमासा, मंजीठ और मुलेठी—इनके कल्क में बकरी का दूध डालकर गरम लेप लगाने से सुखानुभूति होती है।

वातनाशक पदार्थों में चौगुना दूध मिलाकर पकावें। पुनः उसमें काकोल्यादिगण के द्रव्यों को डालकर घी में पाक करें। सभी प्रकार के कार्यों में इस घृत की श्रेष्ठता है।

उक्त प्रकार के उपचार तथा स्निग्धोष्ण आहार लेने पर भी नेत्रपीड़ा की वर्तमानता रहे तो अधिमंथ की भाँति शिरादाह का अवलंबन करना आवश्यक है।

अब यहाँ नेत्रों के निर्मलीकरण की युक्ति कही जा रही है।

मेढ़ासिंगी (अमृतविषवंग), शिरीष और मालती—समान भाग में इनके फूलों और कायफल को बकरी के दूध में पीसकर ताम्रपात्र में एक सप्ताह तक रख छोड़े। तदनंतर उसकी बत्ती बनाकर नेत्रों में अंजन करें।

काला सुरमा, मूँगा, समुद्रफेन और मैनसिल—इनको समभाग में लेकर इसी के बराबर कालीमरिच को बकरी के दूध में पीसकर बत्ती बना प्रयुक्त करें।

अथवा रसोत, घृत, मधु, तालीसपत्र, नागकेशर और गेरू—इनके साथ गोबर का रस मिलाकर आँखों में लगाने से नेत्रों के पित्तज रोग में लाभ मिलता है।

कमल, नीलकमल और केशर में गोबर का रस मिलाकर गुटिका बना लें। इसका अंजन सदैव ही प्रयोक्तव्य है।

अथवा काला सुरमा, शंख, त्रिकटु, अंजन और मैनसिल, हलदी, दारुहलदी, चन्दन—इन्हें गोबर के रस में पीसकर अंजन लगाना श्रेष्ठकर है।

सेहरी मछली का खार बनाकर अंजन लगाने से रतौंधी का निवारण होता है।

इसी प्रकार का फल हींग और कानों की मैल मिलाकर अंजन लगाने से भी मिलता है।

बकरी के यकृत् (हृदय का दक्षिणवर्ती मांसपिंड, लीवर) में छोटी पीपर पकाकर उसी मांसरस में उसे पीसकर नेत्रांजन करने से रतौंधी नहीं रह जाती।

कालीमरिच में मधु मिलाकर आँखों में लगाने से रतौंधी दूर होती है।

त्रिफलामोदक का प्रयोग

हरड़ १६ तोले, बहेड़ा ८ तोले, आँवला ३२ तोले, शतावरी २ पल, मंडूर १ पल, मुलेठी २ पल, सुहागा २ तोले, सेंधा नमक २ तोले और छोटी पीपर २ तोले। इन सबके बराबर शक्कर मिलाकर मधु और घृत डाल मोदक बना लें।

प्रतिदिन प्रातः-सायं पथ्य सेवन करते हुए इस मोदक के खाने से तिमिर, पटल, काच, पिल्ल, रतौंधी, अर्जुनस्राव, अर्श, रक्तराजी, पीड़ा, क्लेद, सूजन, जलन, राग, परिस्रव, दुःखिका, सव्रणशुक्र तथा वर्त्मरोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

त्रिफलाघृत का प्रयोग

त्रिफला के कल्क और क्वाथ में दूध डालकर घी में पकाकर सायंकाल सेवन करने से तिमिर रोग दूर होता है।

त्रिफला का रस १ प्रस्थ, भँगरैया का रस १ प्रस्थ, बकरी का दूध १ प्रस्थ,

गिलोय तथा आँवले का रस १-१ प्रस्थ। इन सबका एकीकरण कर घी में पका लें। पाक करते समय शक्कर, छोटी पीपर, दाख, त्रिफला, नीलकमल, मुलेठी, क्षीरकाकोली, गुरुच और कटेरी—इनके कल्क को भी उसमें मिला दें।

पूर्णरूप से घृतपाक हो जाने पर उसे विशुद्ध पात्र में रख दें। इस घृत का पान भोजन के पूर्व, मध्य और अंत में करने से सभी प्रकार के नेत्र रोगों का उन्मूलन होता है।

इससे रसयुक्त नेत्ररोग, अतिरक्तयुक्त, दुष्टरक्तयुक्त, अतिस्रुत, रतौंधी, कफ-वातदूषित दृष्टि, नेत्रस्राव, वातज-पित्तज नेत्रकण्डू, नेत्रपाक तथा दूर दृष्टि का अभाव आदि रोग जाते रहते हैं।

इस घृत के प्रयोग से गरुड़सदृश दूरगामी दृष्टि आती तथा बल, वर्ण और क्षुधाग्नि की वृद्धि होती है। यह घृत जगत में चिकित्सकों द्वारा अनुमोदित और पूजित है।

त्रैफलघृत का प्रयोग

त्रिफला, त्रिकटु, मुनक्का, मुलेठी, कटुकी, पुनर्नवा, छोटी इलायची, भाभीरंग, नागकेशर, नीलकमल, दोनों सारिवा, हलदी, दारुहलदी—इन सबको १-१ कर्ष और भाभीरंग को ३ कर्ष की मात्रा में कल्क बनाकर १-१ प्रस्थ दूध और घी मिलाकर पकावें।

इस घृत के सेवन से त्रिदोषज तिमिर, स्राव, कामला, काच, अर्बुद, विसर्प, प्रदर, कण्डू, प्रदूषित रक्त, सूजन, नीलिका, केशों का पकना या टूटकर झड़ना, विषम ज्वर, अर्म, वर्त्म तथा नेत्रों की फूली आदि सभी रोग इस प्रकार मिट जाते हैं जिस प्रकार सूर्योदय के होने पर अंधकार मिट जाता है। इसके समान अन्य कोई भी घृत लाभप्रद नहीं होता।

भँगरैया के १ प्रस्थ रस में मुलेठी का कल्क मिला तैलपाक कर उपयोग करने पर शीघ्र ही नेत्र स्वच्छता को प्राप्त हो जाता है।

गोबर के क्वाथ में पक्वित तैल या घृत का नस्य लेना तिमिराविनाशक होता है।

घृत के नस्य से केवल पित्तजन्य तिमिर का नाश होता है, किन्तु तैल के नास लेने से वातज एवं रक्तज तिमिर भी दूर होते हैं।

जीवक, ऋषभक, मेदा, दाख, मालती, कटेरी, कंटकारी मुलेठी, खिरेंटी, भाभीरंग, मंजीठ, शर्करा, रास्ना, नीलकमल, गोखरू, पुंडरिया, विषखपरा, सेंधा नमक और छोटी पीपर—इन्हें १-१ अक्ष परिमाण में कल्क बना तैल या घी में पकावें।

इनके प्रयोग से मुख तथा नाक की दुर्गन्धि, असमय में केशों की श्वेतता, **जबड़े** की जकड़न, खाँसी, साँस, सूखापन, गरदन की जकड़न तथा नेत्रव्यंग आदि रोग अल्पावधि में ही निर्मूल हो जाते हैं।

छोटी पीपर, त्रिफला, लाह, लौहचूर्ण तथा सेंधा नमक—इन सबको भँगरैया के रस में घोंटकर गुटिका बना लें।

इस गुटिका का अंजन लगाने से भ्रम, तिमिर, काच, अर्बुद, कण्डू, शुक्र, अर्जुन तथा अजका आदि रोग नष्ट होते हैं।

गेरू, सेंधा नमक, हर्रे और पलाश वृक्ष का गोंद—इन सब वस्तुओं का क्रमशः वृद्धि करते हुए चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के अंजन से आँखों की फूली कट जाती हैं।

नागकेशर, रसोत, शक्कर, समुद्रफेन, शंख, सेंधा नमक, गेरू, मैनसिल और कालीमरिच—इन्हें पीसकर मधुरस के द्वारा रसक्रिया करने से अर्म, काच, तिमिर आदि रोगों का विनष्टीकरण होता है।

मूँगा, मोती, वैदूर्यमणि (लहसुनिया नामक रत्न), शंख, स्फटिक (बिल्लौर नामक पत्थर), चन्दन, स्वर्ण, रजत तथा मधु। इनके द्वारा विधिवत् अंजन प्रयोग से नेत्र की फूली कट जाती है।

अर्जुन नामक रोग में दही के पानी से अभिसिंचन, मधु के साथ आश्च्योतन तथा पित्तदोषोक्त उपचार करणीय होता है।

शंखचूर्ण के साथ मधु, सेंधा नमक और निर्मली, शक्कर और समुद्रफेन का प्रयोग अर्जुन रोग में करना लाभकारी है।

गोरोचन, सहिजन के बीज, सोंठ और सेंधा नमक—इनके सम भागों को बिजौरा नीबू के रस में मिलाकर अंजन करना पिडिका रोगनाशक होता है।

कफोत्पन्न उपनाह रोग (नेत्र के संधिस्थान में किंचित् पकने वाली खुजली के साथ गाँठ की उत्पत्ति) में मण्डलाग्र नामक संयंत्र द्वारा भेदन करने के बाद छोटी पीपर, मधु और सेंधा नमक का प्रलेप करें अथवा इसे चारों ओर से खुरच दें।

हरड़ के बीज ३ भाग, बहेड़े के बीज २ भाग तथा आँवले के बीज १ भाग—इन्हें पीसकर बत्ती बना लें। इसके द्वारा रक्त-प्रतिरक्त रोग का शमन करें।

सरलवृक्ष का गोंद, तथा त्रिफला क्वाथ को वातादि दोषानुसार मधु, घृत या पिप्पली अथवा इनके मिश्रण को प्रयुक्त करना उचित है।

कृमिग्रंथि रोग में उसके भेदनोपरांत त्रिफला, गोमूत्र, कसीस, सेंधा नमक और रसोत—इनके द्वारा रसक्रिया करने के परिणामस्वरूप व्रण का प्रतिसारण होता है।

पिल्ल रोगी को पहले स्निग्धित कर वमन करायें। तदनन्तर शिराभेद के द्वारा दूषित रक्त का निष्कासन कर दें। तत्पश्चात् विरेचन करके शुद्धि होने तक वर्त्म को खुरचने रहना चाहिए।

मैनसिल, रसोत, त्रिकटु और गोरोचन का अंजन भी प्रयुक्त करते रहें। अथवा हर्रे के रस में तगर को पीसकर अंजन करने से भी पिल्ल रोग का निवारण होना संभव होता है।

स्नेहयुक्त देवदारु को बकरी के मूत्र में भिंगोकर अंजन करने से भी लाभ मिलता है।

रसोत, राल, चमेली का पुष्प, मैनसिल, समुद्रफेन, लवण, गेरू और कालीमरिच—इनके बराबर भागों को मधु के साथ पीसकर प्रच्छन्नचर्म नामसंज्ञक पिल्ल रोग (पलकों का आपस में चिपकना तथा पलकों के रोमों का टूटना) में अंजन लगाने से क्लेद और कण्डू दूर होकर पलकों पर पुन: बाल उग आते हैं।

सरिवन की जड़, सेंधा नमक, कालीमरिच—इनको कांजी के साथ ताँबें के बरतन पर पीसकर अंजन लगाने से **पित्तजन्य पिल्ल रोग** दूर होता है।

हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, लोध, मुलेठी और लालचंदन—इन्हें भँगरैया के रस में पीसकर एक सप्ताह तक लौहपात्र पर घिसकर पुन: ताम्रपात्र पर भी एक सप्ताह तक घिस डालें।

उसकी बत्ती या चूर्ण बना नेत्रों में लगाने या नस्य लेने से सभी प्रकार के नेत्ररोग दूर होते हैं।

मंजीठ, मुलेठी, नीलकमल, समुद्रफेन, गोरोचन, मांसी, लालचंदन, शंख, गेरू, तेजपात, तालीसपत्र और पुष्पांजन—इनके बराबर परिमाण में सिद्ध किये गये अंजन को लगाने से कंडू, क्लेद, कीचड़, आँसू, रक्त, पीड़ा, पिल्ल, अर्म आदि सभी नेत्रविकार नष्ट होते हैं।

नीलाथोथा (तूतिया) १ पल, सहिजल के बीज २० नग तथा कांजी ३० पल। इन तीनों को पीसकर ताम्रपात्र में रख छोड़े। इसके द्वारा नेत्रों को सेंकने से दीर्घकालिक पिल्ल रोग का उन्मूलन होता है तथा इसका लेप लगाने से कंडू और सूजन का निवारण होता है।

करंज के बीज, बीजाबोल और चमेली की कली—इन्हें कूटकर इन्हीं के क्वाथ में सिद्ध कर लें। इसका अंजन पिल्लरोगनाशक तथा पलकों के बालों का उत्पादक होता है।

हीराकसीस को चूर्णित कर ताँबें के पात्र में मरोड़फली के रस में दश दिनों **तक भिंगोकर** अंजन करने से भी उक्त रोग का निर्मूलन होता है।

पिल्लरोगी के लिए प्रतिदिन वर्त्म का अवलेखन, रक्तनिष्कासन, बारम्बार विरेचन, आश्च्योतन, अंजन, नस्यग्रहण तथा धूमपान करना आवश्यक होता है।

किसी प्रकार से भी पूयालस का शमन न होने पर सूक्ष्म शलाका द्वारा अन्तर्दाह करना लाभदायक सिद्ध होता है। त्रिफला, त्रिकटु और सेंधा नमक—इनके साथ घी को पकाकर पीना हितकर है। यह घृत भेदक, हृदयदीपक और कफविनाशक होता है।

शिरोरोग का उपचार

वातोत्पन्न शिरोरोग में स्नेहन, स्वेदन तथा स्निग्ध वातशामक अन्न, पानादि का नित्यप्रति उपयोग करते रहना आवश्यक होता है।

कूठ और रेंड़ की जड़ को या मुचकुन्द के फूलों को कांजी में पीसकर शिर पर लेप लगाने से तत्काल ही शिरोव्यथा दूर होती है।

पंचमूल को दूध में पकाकर नस्य लेना भी शिरः पीड़ा नाशक होता है।

अथवा शिर के बराबर लम्बाई और आठ अंगुल चौड़ाई वाले एक चर्मखंड को लेकर शिर को आच्छादित कर निचले संधि भाग में उड़द के कल्क से लेपित कर दें। तदनंतर रोगी को स्थिरासन में बैठाकर उसके शिर पर गरम तैल भर दें। रोगी के सहन करने तक उस तैल को धारण कर रखना चाहिए।

अथवा रोग के शमन होने के अनन्तर भी उसे एक प्रहर या आधा प्रहर तक शिर पर रखे रहना उचित कहा गया है।

इस प्रक्रिया को शिरोबस्ति कहा जाता है। इससे वातज शिरोवेदना, जबड़े की जकड़न, नेत्र रोग, कर्ण रोग, पक्षाघात या शिर का काँपना आदि दोष नष्ट होते हैं।

इसी प्रकार तैल के द्वारा नेत्र तथा कर्णपूरण करना भी लाभप्रद है।

पित्तोत्पन्न शिरोरोग में रोगी को पहले स्निग्धित कर विरेचन करायें। विरेचन के निमित्त दाख, त्रिफला, गन्ने का रस, दूध और घृतादि पदार्थ प्रयुक्त करने चाहिए।

शक्कर, दूध और जल के द्वारा शिर का परिषेक या शतधौत घृत का शिर पर अवधारण करना भी प्रशस्त माना गया है।

इसी प्रकार शिर को शीतल जल में डुबोये रखना भी उपयोगी सिद्ध होता है।

कुईं के पुष्प, नीलकमल और कमलों को चंदनजल में आर्द्र करके शिर से स्पर्श कराना, शीतल वायु सेवन आदि कार्य भी दाह और पीड़ा को दबाने में सहायक होते हैं।

चन्दन, खस, मुलेठी, खिरेंटी, कटेरी, नरसल और कमल उक्त वस्तुओं को क्षारजल में पीसकर शिर पर लेपित करें। अथवा केवल क्षारजल से शिर का सिंचन करना भी लाभप्रद है।

कमल का डंठल, विसतन्तु, कमलकंद, चंदन, नीलकमल और केशर— इन्हें स्निग्ध और शीतल करके शिर पर लेप लगायें।

इसी प्रकार आँवला और नीलकमल को पीसकर लेप लगाना गुणकारी है।

मुलेठी, चंदन और गुरुच—इनके कल्क में चौगुना दूध मिलाकर पकाया हुआ घृत भी लाभदायक है।

पित्तज शिरोरोग में शक्कर, दाख और मुलेठी—इनके द्वारा सिद्ध घृत का नस्य लेना भी उपयोगी है।

रक्तज शिरोरोग के लिए पित्तज शिरोरोग के समान भोजन, प्रलेपन, सिंचन आदि की क्रियाएँ की जानी चाहिए। रक्त शिरोरोग में विशेषत: रक्तनिष्कासन से अधिक लाभ मिलता है।

कफज शिरोरोग में स्वेदन, नमकीन, रूक्ष, उष्ण तथा पाचक पदार्थों का सेवन, तीक्ष्णरूप अवपीड़न, धूमयोग तथा कवलग्रह धारण करना श्रेष्ठ है। अथवा शिर को महुआ के सार से स्वेदित करके विरेचन कर्म अपनाएँ।

अथवा छोटी पीपर, अदरख, सोंठ, मुलेठी, सौंफ, नीलकमल और कूठ— इनको जल में पीसकर मस्तक पर लेपित करने से **कफज शिरोवेदना** जाती रहती है।

देवदारु, सुगंधवाला, कूठ, खस और सोंठ—इन्हें कांजी में पीसकर तैल मिला लेप लगाने से कफज **शिर:पीड़ा** का निवारण होता है।

सान्निपातिक शिरोरोग में मिश्रितोपचार अथवा जीर्ण घृत का पान करना लाभदायक है।

त्रिकटु, कमल के बीज, हलदी, रास्ना और असगंध—इनके क्वाथ का नस्य लेने से त्रिदोषज शिर:शूल नष्ट होता है।

सौंफ, रेंड़ की जड़, वचा, तगर, कटेरी और त्रिफला—इनके द्वारा पकाये गये तैल का नास लेने पर कफयुक्त तिमिर तथा शिर के समस्त रोग मिट जाते हैं।

बृहज्जीवकादि तैल का प्रयोग

जीवक, ऋषभक, दाख, महुआ, मुलेठी, खिरेंटी, नीलकमल, चंदन, बिदारीकन्द और शर्करा—इनके आधा सेर कल्क में ३ सेर दूध डालकर १ प्रस्थ तैल को पकाते समय ही जंगली मृगों के ५० पल मांसरस भी उसमें मिला दें।

पकने पर इस तैल का नस्य लेने से अर्धावभेदक (अधकपारी शिरदर्द,

आधासीसी), बहिरापन, कर्णपीड़ा, तिमिर, गलशुंभी, वातज-पित्तज शिरोरोग, दन्तरोग, शिरोव्यथा तथा लकवा आदि रोगों पर नियंत्रण होता है।

षड्बिन्दु तैल का प्रयोग

रेंड़ की जड़, तगर, सोया, जीवन्ती, रास्ना, सेंधा नमक, भँगरैया, भाभीरंग, मुलेठी और सोंठ। काले तिल के तैल में इनके कल्क को मिलाकर चौगुना बकरी के दूध और चौगुन भाँगरा के रस में पकावें। इनकी छह बूँदों को नासिका में डालने से समस्त प्रकार के **शिरोरोग** नष्ट होते हैं।

इसके साथ ही झड़ते हुए केश, हिलते हुए दाँत, गरुड़ के समान दृष्टि तथा शारीरिक बल का वर्धन होता है।

अनंतमूल, कमल, कूठ और मुलेठी—इनको कांजी में पीसकर घी तथा तैल मिलाकर शिर में लेप लगाने से सूर्यावर्त (दिन में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहने वाली शिर:पीड़ा) रोग की परिसमाप्ति हो जाती है। यही प्रक्रिया क्षयज शिरोरोग में भी अपनानी चाहिए।

अथवा शक्करमिश्रित दूध या नारियल के जल का पान करना लाभकारी है। क्षयरोग में प्रयुक्त होने वाले औषधों का प्रयोग इस रोग में भी करने चाहिए।

शिर के रोगों में वातविनाशक मधुर पदार्थों द्वारा पकाये हुए घृत को पीना या नाकों से सूँघना भी उचित है।

कृमिज शिरोरोग में बकरी के मूत्र के साथ नस्य लेना उचित है। गुड़ के साथ सोंठ या सेंधा नमक के साथ छोटी पीपर का प्रयोग भी इसमें लाभप्रद सिद्ध होता है।

बाहुस्तंभ आदि वातरोगों, ऊर्ध्व रोगों तथा सूर्यावर्त आदि रोगों में नस्यादि कर्म परमोपयोगी होते हैं। सूर्यावर्त में मुख्यत: दूध-घृत द्वारा भोज, दूध-घृत का सेवन तथा दूध-घी के साथ विरेचन लेना भी पथ्यस्वरूप माना गया है।

अथवा पेषित कर स्वेदन तथा स्निग्ध-उष्ण-शीतल द्रव्यों का लेपन भी प्रशस्त होता है।

शक्कर, कुंकुम और घृत—इनका नस्य लेने से भौंहों तथा कनपटियों का शूल, कर्णपीड़ा, नेत्रशूल, शिर:शूल तथा सूर्यावर्त रोग निर्मूल होते हैं।

जंगली पशुओं के मांस द्वारा उपनाहन कर्म करने से भीषण सूर्यावर्त का भी निवारण होता है।

सोंठ के रस में वचा और छोटी पीपर मिलाकर अवपीड़न करने से सूर्यावर्त का शमन संभव होता है।

अनंतवाह रोग (त्रिदोष के परिणामस्वरूप गरदन की शिराओं का पीड़ित होना तथा भोंह, कान, नेत्र आदि का व्यथित होना) में भी सूर्यावर्तोक्त क्रिया अपनानी चाहिए तथा शिराभेदन भी आवश्यक होता है।

सूर्यावर्त में वात-पित्तशामक आहार, मधूक, (महुआ), मधु, संयाव (घी, दूध, गुड़ तथा गेहूँ के आँटे से निर्मित विशेष प्रकार का भोज्य) तथा घृतादि से जो क्रिया की जाती है वे ही सूर्यावर्त में लाभकारी होती हैं।

सूर्यावर्त के समान ही शंखक रोग (रक्त-पित्त और वातदोषोत्पन्न कनपटी में विषैली लालरंग की सूजन का उत्पन्न होकर समूचे शिर में फैलना) में भी उपचार करने चाहिए।

इसके लिए स्वेदन विधान अनुपयुक्त होता है। इस रोग में घी-दूध या केवल आधिकाधिक दुग्ध सेवन करना श्रेष्ठ है।

त्रिदोषज शिरोरोग में लंघन करना सदैव ही लाभप्रद कहा गया है। अथवा पिप्पलीचूर्णमिश्रित दशमूल का क्वाथ, शतावरी, कालातिल, मुलेठी, नीलकमल, दूब और पुनर्नवा (गदहपूरना)—इनका लेप लगाना लाभदायक होता है।

शंखक रोग में शीतल अन्नपान, शीतल परिषेक तथा दुग्धस्त्रावी वृक्षों (बरगद आदि) के कल्क द्वारा उत्तम फल मिलता है।

यष्ट्यादि तैल का प्रयोग

मुलेठी, बला (खिरेंटी), रास्ना और दशमूल—मधुर द्रव्यों के कल्क के साथ इनके रस में पकाया हुआ घृत सभी प्रकार के शिरोरोग में लाभकारी होता है।

मयूराद्य तैल का प्रयोग

दशमूल, खिरेंटी, रास्ना, मुलेठी और त्रिफला—इनके कल्क के साथ मोर के मांस को जिसमें उसके डैने, पित्त, मुख, मल, पैर और अँतड़ियाँ न हों, जल में पका लें। चौथाई भाग रस के शेष रहने पर उसमें १-१ प्रस्थ घी और दूध मिलाकर पुनः पकावें। पकाते समय मधुरगणीय द्रव्यों के १-१ कर्ष कल्क को भी मिला दें। इस घृत के द्वारा शिरोरोग, कर्णरोग, नासिका रोग, नेत्ररोग, मुखरोग तथा कंठरोगों का विनष्टीकरण होता है।

प्रपौण्डरीकादि तैल का प्रयोग

पुंडरिया, मुलेठी, छोटी पीपर, चंदन और नीलकमल—इनके कल्क को आँवले के रस के साथ तैल मिलाकर पका लें। इस तैल के मालिश करने तथा नाक से नास लेने पर शिरोरोग तथा केशों का पकना भी रुक जाता है।

प्रदर रोग का उपचार

वातादि दोषों के फलस्वरूप विभिन्न वर्णीय शुक्र का स्रवित होना ही प्रदररोग कहा जाता है। इसे स्त्रीरोग भी कहते हैं।

वातज प्रदरग्रस्तता में काला नमक, स्याहजीरा, मुलेठी और नीलकमल—इनका सेवन दही और मधु के साथ करना उपयोगी होता है।

पित्तज प्रदर में कृष्ण मृग के रक्त को अडूसा के स्वरस में मिलाकर शक्कर और मधु के साथ पान करना उत्तम है। अथवा केवल गुरुच के रस का ही पान करना चाहिए।

पाण्डुप्रदर (कफयुक्त श्वेतवर्णीय प्रदर) में रोहिड़ामूल के कल्क को जल के साथ पीना लाभकारी है। अथवा आँवला बीज के कल्क में मधु-शर्करा मिलाकर पीने से लाभ मिलता है।

धव के फूलों के कल्क या आँवले के कल्क को मधु के साथ उबालकर २ तोले की मात्रा में पीने पर प्रदर रोग से मुक्ति मिल जाती है।

काकजंघा या कपास की जड़ को चावल की धोवन के साथ पीने से प्रदर रोग जाता रहता है।

इसी प्रकार अशोक वृक्ष के छिलके का काढ़ा बना उबले हुए दूध को ठण्ढा करके प्रतिदिन प्रात:काल पीने से उग्ररूप वाला प्रदर अल्पकाल में ही नष्ट हो जाता है तथा स्त्रियाँ बल-वर्ण से युक्त हो उठती हैं।

दारुहलदी, रसोत, अडूसा, मोथा, चिरायता, बेल और भिलावाँ—इनके क्वाथ को मधु के साथ पीने से प्रचंड शूलयुक्त पीला, काला, श्वेत, लाल और नीला रंग वाला प्रदर नष्ट हो जाता है।

अथवा कुशा की जड़ को चावल की धोवन के साथ पीने से तीन दिनों में ही प्रदर रोग से छुटकारा मिल जाता है।

कठूमर के फल का रस निचोड़कर शहद के साथ पीने से प्रदर रोग का उन्मूलन होता है। इसके साथ ही रुग्णा नारी को शक्करमिश्रित दुग्धयुक्त भोजन भी अनिवार्य होता है।

खिरेंटी की जड़ के चूर्ण में मधु मिलाकर दूध के साथ पीने से प्रदर का निवारण होता है।

कुशा और खिरेंटी की जड़ को चावल की धोवन के साथ पीसकर पीना रक्तप्रदर का उन्मूलक होता है।

शास्त्रोक्त औषधियों से निर्मित मदिरा का पान करने से रक्तप्रदर तथा शुक्रप्रदर का विनाश होता है। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए।

चिकित्सक को रक्तपित्त नामक रोग में वर्णित पथ्यानुगामिनी उपचार करने चाहिए।

पुष्यानुग चूर्ण का प्रयोग

पाठा, जामुन, आम की गुठली का गूदा, भूरिछरीला, रसोत, मोचरस, बड़ी खिरेंटी, कमलकेशर, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेल, लोध, गेरू, कायफल, कालीमरिच, सोंठ, दाख, लालचंदन, सोनापाठा, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धव के फूल, मुलेठी और अर्जुन—इन सब औषधों को पुष्य नक्षत्र में उत्पाटित कर समान परिमाण में चूर्णित कर लें।

इस चूर्ण में मधु मिलाकर चावल की धोवन के साथ पान करें।

इस पुष्यानुग नामक चूर्ण के द्वारा बवासीर, रक्तातिसार, रक्तविकार, शिशुओं के आगन्तुज दोष, योनिदोष तथा नारियों के श्वेत, नीले, काले, लाल, पीले वर्णवाले प्रदर रोग का उन्मूलन होता है।

यह चूर्ण महर्षि आत्रेय द्वारा पूजित है। इस चूर्ण के निर्माण में दक्षिण से अन्य देशों में अम्बष्ठा (मोइया) के स्थान में लक्ष्मणा बूटी (सफेद कंटकारी) का प्रयोग किया जाता है।

मुद्गादि घृत का प्रयोग

मूँग और उड़द के काढ़ा में रास्ना, चित्रक, सोंठ, छोटी पीपर और बेल का गूदा—इनके कल्क को घृत में पकाकर सेवन करना प्रदर में परमौषध कहा गया है।

बृहच्छतावरी घृत का प्रयोग

शतावरी के १ प्रस्थ रस में १-१ प्रस्थ दूध और घी डालकर मथानी द्वारा खूब मथ डालें। तदनन्तर कठूमर, जीवनीयमण के पदार्थ, मुलेठी, चंदन, कमलगट्टा, गोखरू, क्रौंच के बीज, खिरेंटी, गंगरेन, सरिवन, पिठवन और शालवन—इन सबके ८ पल कल्क को एकीकृत करके पका लें।

उक्त पाक करते समय समुचित मात्रा में शक्कर, गम्भारी और त्रिफला का भी मिश्रण कर दें। पूर्णरूप से पक जाने पर उसे उतारकर रख लें।

इस घृत के उपयोग से समस्त रक्तपित्त-संबंधी विकार, वातज-पित्तज रोग, दूषित रक्त, क्षय, खाँसी, हिचकी, श्वास, शारीरिक जलन, शिरोदाह, रक्तपित्तोत्पन्न या अन्य दोषोत्पन्न प्रदर, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय से अंधकार, झंझावात से मेघ तथा ज्ञानोदय होने पर माया का विनाश हो जाता है।

शीतकल्याणक घतृ का प्रयोग

कुमुदिनी, कमलगट्टा, खस, गेहूँ, लाल रंग को शालि चावल, भुगंवन, काकोली, कुंभेर, मुलेठी, खिरेंटी की जड़, कंघी की जड़, नीलकमल, ताड़ का मस्तक अर्थात् ऊपरी भाग, बिदारीकन्द, शतावरी, शालपर्णी, जीवक, त्रिफला, खीरे का बीज और केले की कच्ची फल—इनके आधा-आधा पल कल्कों के साथ ४ प्रस्थ दूध, २ प्रस्थ जल तथा १ प्रस्थ घी को मिलाकर पका लेवें।

इस घृत को प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक (हकलाना) विभिन्नस्वरूपी पित्त, कामला, दूषित रक्त, अरोचकता, पुराना बुखार, पांडु, मद तथा भ्रम आदि रोगों में प्रयुक्त करने चाहिए।

अल्प रक्तार्तवा होने के कारण गर्भधारण में अक्षम नारियों के लिए भी यह घृत रसायन स्वरूप है।

योनिव्यापद् का उपचार

योनिव्यापत् अर्थात् प्रजननांग रोगों में मुख्यतः बस्तिकर्म, अभ्यंग, परिषेक, प्रलेप तथा योनि में औषधयुक्त फाहा धारण करने तथा वातनाशक उपचार करने के फलस्वरूप उत्तम लाभ मिलता है।

वचा, जीरा, स्याहजीरा, छोटी पीपर, अडूसा, सेंधा नमक, अजमोदा, जवाखार, चित्रक, शक्कर—इन सबके चूर्ण को घी में भूनकर सुरामंड में उबाल लें।

तत्पश्चात् इसके पान करने से **योनि रोग**, **गुल्म** तथा **बवासीर** आदि रोग नष्ट होते हैं।

गुरुच, त्रिफला और दंती का काढ़ा बनाकर योनि का परिषेक करने से लाभ मिलता है।

इसके अतिरिक्त तगर, कटाई, कूठ, सेंधा नमक और देवदारु—इन्हें तैल में पकाकर उस तैल में रूई का फाहा भिंगोकर योनि में स्थापित करने से योनिरोग दूर होता है।

पित्तज योनिरोग में पित्तशामक सेंक, अभ्यंग और पिचु की क्रिया उपयोगी होती है। पित्तशामक शीतल उपचार तथा स्नेहन के लिए घृत का प्रयोग करना उचित होता है।

बलास रोग से ग्रस्त प्रदूषित योनि में रूक्ष, उष्ण तथा कफविनाशक उपाय करने चाहिए।

कालीमरिच, छोटी पीपर, उड़द, सोया, कूठ और सेंधा नमक। इनको पीसकर बत्ती के रूप में योनि के अंदर प्रविष्ट कराने से योनि का शुद्धिकरण होता है।

पुष्य नक्षत्र आने पर लक्ष्मणा बूटी को जड़सहित उत्पाटित कर कुमारी कन्या के द्वारा पिसवा लें। पुत्र-प्राप्ति के निमित्त गोदुग्ध और गोघृत के साथ इसका सेवन ऋतुस्नाता नारी को करना उचित है।

असंगंध के क्वाथ में पकाये हुए घी और दूध को मिलाकर पीने से ऋतुस्नाता गर्भधारण में समर्थ हो जाती है।

फलघृत का प्रयोग

मंजीठ, मुलेठी, कूठ, त्रिफला, शर्करा, खिरेंटी, मेदा, दूधिया, काकोली की जड़, असगंध की जड़, हलदी, अजमोदा, दारुहलदी, हींग, कटुकी, नील-कमल, कुमुद, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, लालचंदन और श्वेतचन्दन; इन पदार्थों को १-१ कर्ष परिमाण में लेकर १ प्रस्थ घी में पकावें। इस घृत का प्रयोग वन्ध्या या मृतवत्सा नारी अथवा अल्पायु या केवल कन्या सन्तानोत्पादिका नारी में कराने से उत्तम फल मिलता है।

इससे योनिविकार, रजोदोष तथा परिस्राव आदि रोगों में सेवन करना लाभकारी होता है। अश्विनीकुमारों द्वारा निर्मित यह घृत सभी अनिष्टकारी ग्रहों का शमन करता है।

फलघृत निर्माण की अन्य विधि

कूठ (कूड़ा) की जड़, हलदी, दारुहलदी, छोटी पीपर, कटुकी, काकोली, क्षीरकाकोली, विशाला, त्रिफला, नीलकमल, मेदा, रास्ना, भाभीरंग, देवदारु, हींग, दोनों सारिवा, सोया, वचा, मुलेठी, प्रियंगु का पुष्प, अजमोदा, महामेदा, श्वेत चंदन, रक्तचंदन, चमेली का फूल, वंशलोचन, कायफल और मिश्री।

इन पदार्थों को १-१ अक्ष लेकर १ प्रस्थ घी में चौगुना दूध मिलाकर उपलों की आँच पर पका लें। पकने से पूर्व शुभ दिन, शुभ घड़ी तथा पुष्य नक्षत्र के आने पर देवार्चनोपरांत ताँबे के पात्र में पाक करें।

इस घृतपान के द्वारा पुरुष नारियों के मध्य प्रचंड वेगवान वृषभ के समान स्वयं को अनुभव करता है।

इसके सेवन से कन्याजाया, मृतजाया, वन्ध्या, चलितगर्भा, गर्भविहीना तथा दुर्भगा नारी भी दीर्घजीवी, सुंदर, वेद-वेदांगपारग तथा स्वस्थ पुत्र का जनन करती है।

यह फलघृत भरद्वाज मुनि के द्वारा निर्मित किया हुआ है। इस घृत में लक्ष्मणा बूटी की जड़ का ग्रहण नहीं किया गया है तब भी चिकित्सकों ने उक्त बूटी को ग्राह्य माना है।

सोमघृत का प्रयोग

सफेद सरसों, वचा, ब्राह्मीबूटी, शंखाहुलि, काकड़ासिंगी, काकोली, मुलेठी, कूठ, कटुकी, सारिवा, त्रिफला, आसवण, पूतिकरंज, अड़ूसा के पुष्प, मंजीठ, देवदारु, सोंठ, छोटी पीपर, भँगरैया के बीज, हलदी, प्रियंगु के फूल, हुरहुल, दशमूल, हर्रे, भारंगी, असगन्ध और शतावरी।

इन द्रव्यों के २-२ पल भाग को १ द्रोण जल में पका लें। चौथाई भाग शेष रहने पर उसे निथार कर २ प्रस्थ घी के साथ पुनः पका लें। इस घृत को संतानहीना नारी में २ माशे तथा गर्भवती को ८ माशे की मात्रा में सेवन करायें। इस घृत के प्रयोग से वन्ध्या नारी शूरवीर, वेदज्ञ और स्वस्थ पुत्र के प्रजनन में समर्थ हो जाती है।

इसके अतिरिक्त नारियों के योनिविकार तथा पुरुषों के वीर्यविकार का भी शुद्धिकरण हो जाता है। इसके सप्ताह तक प्रयोग कर लेने के पश्चात् व्यक्ति अपनी जड़ता, गद्‌गदता तथा मूकता को मिटाकर स्मृतिवान बन जाता है।

इस सोमघृत का निवास जिनके घर में रहता है उनके यहाँ अग्नि तथा वज्रादिकों की भीति नहीं रह जाती तथा उस स्थान का कोई व्यक्ति अल्पायु भी नहीं होता।

नीलोत्पलादि घृत का प्रयोग

नीलकमल, खस, मुलेठी, महुआ, दाख, बिदारीकंद, कुशादि पंचमूल और जीवनीयगण के पदार्थ—इनके कल्क को शतावरी रस तथा दूध के साथ घी में पका लें। पकने पर इसमें चौथाई भाग में शक्कर मिलाकर पान करें।

इसके उपयोग द्वारा वात-पित्त तथा रक्तोत्पन्न प्रदर, शक्तिक्षय, शुक्रभ्रंश, पित्तज मूत्रकृच्छ्र तथा गुल्मादि रोग विनष्ट होते हैं।

मूषक-मांस में कल्क को तैल में ठीक प्रकार से पका लें। इस तैल में वस्त्र को भिंगोकर प्रसवद्वार में धारण करने से नारियों का योनिकन्द नामक रोग दूर होता है।

सूतिका रोग का उपचार

गर्भवती महिलाओं में अचानक रक्तस्राव और पीड़ा की उत्पत्ति होने पर उसके शमनार्थ क्रमशः निम्न प्रकार के उपचार किये जाने चाहिए—

पहले महीने में—मुलेठी, सागौन के बीज, क्षीरकाकोली और देवदारु।

दूसरे महीने में—कुलथी, कालातिल, मंजीठ और शतावरी।

तीसरे महीने में— गुरुच, क्षीरकाकोली, नीलकमल और सारिवा।

चौथे महीने में—अनंतमूल, कालीसर, रास्ना, भारंगी और मुलेठी।

पाँचवें महीने में—कटाई, कटेरी, गंभारी, बरगद वृक्ष के अंकुर, दालचीनी और घृत।

छठे महीने में—पिठवन, खिरेंटी, सहिजन के बीज, गोखरू और मुलेठी।

सातवें महीने में—सिंघाड़ा, कमल का डंठल, दारुहलदी, कसेरू और शक्कर के क्वाथ में दूध मिलाकर।

आठवे महीने में—कैथ, बेल, कटाई, परवल, ईख और कटेरी की जड़ को दूध में।

नवे महीने में—मुलेठी, अनंतमूल, क्षीरकाकोली, कालीसर—इनको दूध के साथ।

दशवें महीने में—दूध में सोंठ को उबालकर पान करें।

अथवा सोंठ, मुलेठी और देवदारु—इन्हें दूध में पकाकर पान करें। ऐसा करने से चलित गर्भ स्थिर होता तथा वेदना भी शांत होती है।

बरतन बनाते समय कुम्हार के हाथ में लगी हुई मिट्टी और मुलेठी को बकरी के दूध में पीसकर पीने से चलायमान गर्भ भी स्थिर हो जाता है।

कुश, कास, रेंड़ और गोखरू—इनकी जड़ को दूध में उबाल कर शक्कर मिला पीने से गर्भ की पीड़ा नहीं रह जाती।

कसेरू, सिंघाड़ा कमलगट्टा, नीलकमल, मुगवन, मुलेठी और शक्कर—इन्हें दूध में पकाकर पान करें और दूध के साथ आहार भी ग्रहण करें।

पाठा, कलिहारी, अड़ूसा तथा चिरचिटा की जड़—इन सबको जल में पीसकर नाभिस्थल, बस्ति तथा योनिद्वार में लेपित करने पर कष्टरहित प्रसव शीघ्र ही हो जाता है।

फालसे या शालवन की जड़ को पीसकर नाभि, पेड़ू या योनिस्थान में लेप लगाने से मूढ़गर्भा नारी को भी सुगमतापूर्वक प्रसव हो जाता है।

अथवा बिजौरा नीबू की जड़, मुलेठी और मधु—इन्हें पीसकर घी के साथ पीना भी सुखपूर्वक प्रसवकारक होता है।

भोजपत्र, कलिहारी और तुम्बी की जड़, साँप की केंचुल, कूठ और सरसों—इन द्रव्यों से अलग-अलग या एक साथ योनिमंडल में धुआँ देने पर निर्विघ्न रूप से प्रसव होता है।

सौंफ, सरसों, स्याहजीरा, सहिजन, सफेद सरसों, चित्रक, हींग, कूठ और मैनफल—इनके कल्क में गोमूत्र और दूध मिलाकर सरसों के तैल में उसे पका लें। पाक होने पर मलद्वार और योनिप्रदेश में अनुवासन बस्ति करना भी लाभदायक सिद्ध होता है।

सौंफ, वचा, कूठ, छोटी पीपर और सरसों—इनके कल्क द्वारा स्नेहन तथा

नमक के साथ निरूहण बस्तिकर्म करने से खेड़ी (आँवलनाल) तुरन्त ही बाहर आ जाती है।

प्रसवोपरान्त प्राय: हृदय, शिर और पेडू में मल्लक नाम्नी वेदना की उत्पत्ति होती है जिसके निवारणार्थ घृत या गरम जल के साथ जवाखार का पीना उत्तम फलदायक होता है।

अथवा पिप्पल्यादिगण के काढ़ा में सेंधा नमक मिलाकर पीने से प्रसूता की पीड़ा शान्त होती है।

गुरुच, सोंठ, कटसरैया, हलदी, इत्कट, पंचमूल, मोथा और सुगंधवाला—इनके शीतल क्वाथ में मधु मिलाकर पीने से सूतिका रोगोत्पत्ति का भय जाता रहता है।

पंचमूल के काढ़ा में तप्त लौह को डालकर पान करना या वातशामक मद्यपान करना भी सूतिका रोग को नष्ट कर देता है।

छोटी पीपर, बड़ी पीपर, चव्य, सोंठ, अजवायन, स्याहजीरा, श्वेत जीरा, हलदी, दारुहलदी, काला नमक और भाभीरंग—इनके कल्क को कांजी में पकावें। इस कांजी के पीने से आमवात रोग दूर होता है।

साथ ही, कफ का विनाशन, क्षुधाग्निवर्धन और धातु का पुष्टिकरण होता है। इस वज्रक नाम्नी कांजी से प्रदूषित स्तन-दुग्ध का भी परिशोधन होता है।

इसके द्वारा प्रसवोपरांत होने वाले मल्लकशूल का शमन तथा स्तन-दुग्ध का वर्धन होता है।

अथवा वनकपास और गन्ने की जड़ को पीसकर सौवीर कांजी के साथ या बिदारीकन्द को मदिरा के साथ पान करना भी स्तन-दुग्धवर्धक होता है।

खण्डशुण्ठीयोग प्रयोग

सोंठ ८ पल, घृत २० पल, दूध २ प्रस्थ, खाँड़ ५० पल और इलायची, दालचीनी, तेजपात, जीरा और त्रिकटु १-१ पल। इसे एकत्रीकरण करके पका लें और प्रसूता स्त्री को प्रयुक्त करायें।

इस खंडशुंठी योग के सेवन से समस्त वातरोगों का विनाश होकर तेज, बल और दूध की वृद्धि होती है।

प्रदूषित दुग्ध शोधन हेतु हरिद्रादिगण या वचादिगण के काढ़ा का पान करें। वातदूषित दुग्ध में दशमूल का काढ़ा तथा पित्तप्रदूषित दुग्ध में गुरुच, भारंगी, परवल, नीम, चंदन, गौरीसर का क्वाथ बनाकर पान करें।

प्रसूता के स्तनशोथ में विद्रधि रोग में वर्णित प्रलेप आदि का लेप लगायें

तथा स्तनं के परिपक्व या अपक्व सूजन से प्रतिदिन दूध को निचोड़ दें। इन्द्रायण की जड़ को पीसकर लेपित करने से सभी प्रकार के स्तनरोग दूर होते हैं। इसी प्रकार हलदी और धतूरे के फल को पीसकर लेप लगाने से स्तन की सूजन तथा पीड़ा नष्ट होती है।

बालरोग का उपचार

शिशु में वर्ण, आयु तथा कांतिवर्धन के लिए कूठ, वचा, हरड़, ब्राह्मी बूटी और कसौंदी—इनको लेहवत् बनाकर घी और मधु के साथ सेवन करायें।

मातृस्तन में दुग्धाभाव होने पर बालक को बकरी या गाय का दूध पिलाना चाहिए। अथवा बालहितकारक तथा दुग्धशोधक पदार्थों का लेप स्तन के चूचुकों पर लगाकर धात्री शिशु को दुग्धपान कराये।

बालक के नाभिस्थल में शोथ के फलस्वरूप उभार आ जाने पर मृत्तिका-पिंड को आग में तपाकर दूध का छींटा दें। इस क्रिया के द्वारा निकलने वाली भाप से नाभि का स्वेदन करें। इससे सूजन दूर हो जाती है।

नाभिपाक होने की अवस्था में हलदी, लोध, प्रियंगु, का फूल और मुलेठी के साथ पकाये गये तैल की मालिश करें या उक्त द्रव्यों के चूर्ण को ही उस पर लगा दें।

हलदी, दारुहलदी, मुलेठी, कटाई और इन्द्रयव—इनका कषाय शिशु को पिलाने से ज्वरातिसार नष्ट होकर धात्री के दूध का भी संशोधन होता है।

मोथा, छोटी पीपर, अतीस और काकड़ासिंगी के चूर्ण में मधु डालकर प्रयोग करने से बालकों के ज्वरातिसार, खाँसी, श्वास और छर्दि दूर होती है।

धव के फूल, सोंठ, धनिया, लोध, इन्द्रयव और सुगंधवाला। इनके लेह को मधु के साथ प्रयुक्त किये जाने पर बालकों के ज्वरातिसार और छर्दि रोग का निवारण होता है।

हलदी, देवदारु, धूपसरल, हरड़, कटेरी, कंटकारी, पिठवन और सौंफ—इनके समान भाग में बनाये गये लेह को मधु-घृत के साथ सेवन कराने से बालकों की वातवेदना का शमन, क्षुधाग्निवर्धन, मल का संशोधन, ज्वरातिसार तथा पाण्डु का निवारण होने के साथ ही सभी रोगों का उन्मूलन होता है।

अजमोदा, छोटी पीपर, रसोत, खीलें, काकड़ासिंगी, कालीमरिच और मधु का लेह खिलाने से बालक के वमन, खाँसी और ज्वर का नाश होता है।

काकड़ासिंगी, मोथा, अतीस—इनका लेह शहद के साथ चटाने से खाँसी, श्वास और वमन आदि दूर होते हैं। अथवा मधु के साथ केवल अतीस का प्रयोग भी लाभकारी होता है।

दाख और मुलेठी के कल्क को स्तनों पर लगाने तथा चिरायता और गुरुच का क्वाथ पीने से प्रदूषितत दूध का शुद्धिकरण होता है।

कटेरी, कंटकारी के रस तथा पंचकोल को चाटना बालकों के लिए हितकर है।

आम की गुठली, लावा तथा सेंधा नमक में मधु मिलाकर चटाने से बालकों की छर्दि बंद हो जाती है।

शक्कर, मधु, कालातिल और मुलेठी के कल्क को लेहवत् बनाकर प्रयुक्त कराने से रक्तस्राव और प्रवाहिका रोग का निवारण होता है।

बालक में गुदपाक होने पर पित्तशामक उपचार के साथ ही पान और प्रलेप में रसोत का प्रयोग करना अनिवार्य है।

श्वेत जीरा, छोटी पीपर, शक्कर, मधु, छोटी इलायची और सेंधा नमक—इनका लेह बालक के मूत्रग्रह में प्रयोग करना उपयोगी होता है।

सेंधा नमक, सोंठ, इलायची, हींग और भारंगी—इनके लेह को घी या जल के साथ प्रयोग करने से बालकों के वातज अफरा और शूल का शमन होता है।

हर्रें, वचा, कूठ—इनके कल्क में मधु मिलाकर स्तनदुग्ध के साथ पान कराने से शिशुओं के तालुव्रण नष्ट होते हैं।

गृहधूम की कालिख, हलदी, कूठ, राई और इन्द्रयव—इन्हें मट्ठे में पीसकर लेप लगाने से बालक के सिध्म (सेहुआँ), पामा तथा विचर्चिका आदि कुष्ठ-संबंधी रोगों का विनाश होता है।

लघुपंचमूल के क्वाथ में घी और दूध पकाकर उसमें अदरख मिला ठंढा कर पिलाने से बालक की हिचकी दूर होती है।

दाख, जवासा, हर्रें और छोटी पीपर—इनके चूर्ण को मधु के साथ चाटने से बालकों के श्वास, कास और तमक रोग दूर होते हैं।

पुष्करमूल, अतीस, काकड़ासिंगी, छोटी पीपर और जवासा—इनके चूर्ण को शहद में चाटने से बालकों की पंचविध खाँसी का निवारण होता है।

वयस्क रोगियों के ज्वरादि में वर्णित चिकित्सा-विधि अवयस्क में भी अपनानी चाहिए, किन्तु दाहादि की क्रिया वर्जित है। सभी प्रकार के रोगों की उत्पत्ति वातादि दोषों से ही हुआ करती है।

अत: सभी चिकित्सा समान् रूप से करते हुए बालकों की औषध-मात्रा घटा देनी चाहिए।

साँप का केंचुल, लहसुन, मरोड़फली,, सरसों, नीम की पत्ती, बिल्ली का विष्ठा, रोम, मेढ़ासिंगी, वचा और मधु मिलाकर धूपन करने से बालक के ज्वर तथा सभी ग्रहबाधाएँ दूर होती हैं।

बड़ी गोरखमुंडी और गूगुल का काढ़ा पीना भी ग्रहबाधा का निवारक होता है।

इसके अतिरिक्त बालकों की ग्रहशांति हेतु बलिदान और शांतिकर्म भी करने चाहिए।

बलिप्रदान के समय कथित मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए। जैसे—"ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सत्यवस्तुतत्त्वात्मकाय स्वाहा।" ॐ कटं वैनतेयाय नम: ॐ ह्रां ह्रीं क्ष:।"

बलिदान की विधि यह है कि एक हाथ में बालक की लम्बाई के बराबर की माला और दूसरे हाथ में एक मुट्ठी भात लेकर कथित मंत्रोच्चार के साथ बलि प्रदान करें।

विद्वानों ने बलिदान का एक अन्य मंत्र भी इस प्रकार बतलाया है, जैसे—"ॐ कामस्वर्णपक्षिणि शकुनिबालकं रक्ष स्वाहा।

दशमूल, रामशर, नीम, ब्राह्मी, पाठा, त्रिकटु, अंकोल (ढेरा का वृक्ष), वनकपास की जड़, शिरीष, कोयल के फल, भाभीरंग की जड़, अमलतास, शीशम, देवदारु, प्रियंगु का फूल, हींग, मंजीठ, वनतुलसी, चौलाई, जवासा, वचा, कूठ और कंकुष्ठ (एक प्रकार का पाषाणभेद) इनके कल्क में चौगुना दूध मिला कर सरसों के तैल में पका लें।

इस तैल के प्रयोग से उन्माद, अपस्मार, डाकिनी, भूत-वेताल, अकामेयादिग्रह, कृत्या, टोना-टोटका, राक्षस, क्षय, ज्वर, श्वास, खाँसी, प्रमेह और भगन्दर आदि रोगों का उन्मूलन होता है। इस तैल को अपने सम्पूर्ण शरीर में लगाकर शत्रुगृह में भी सुगमतापूर्वक निवास किया जा सकता है। प्राचीन काल में देवराज इन्द्र ने बालकृष्ण के रक्षार्थ नन्दगोप से इस तैलनिर्माण का विधान वर्णित किया था।

अष्टमङ्गलघृत का प्रयोग

वचा, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, सारिवा, सेंधा नमक, छोटी पीपर और घृत—उक्त आठ पदार्थों का एकीकरण करके घी में पका ले। भलीभाँति पाक होने पर इस घृत का पान प्रतिदिन शिशु को करायें।

इसके परिणामस्वरूप बालक धैर्यवान, स्मृतिवान तथा बुद्धिमान बनता है।

इस अष्टमंगल घृत के प्रभाव से बालकों पर भूत-प्रेत, पिशाच तथा मातृकाओं का प्रकोप नहीं होता।

अश्वगन्धादि तैल का प्रयोग

असगंध के ८ भाग कल्क को १० भाग दूध के साथ घी में पका लें। बालकों के पीने योग्य यह घृत पुष्टिदायक और शक्तिदायक सिद्ध होता है।

लाक्षादि तैल का प्रयोग

रास्ना, चंदन, छोटी पीपर, असगंध, हलदी, सौंफ, देवदारु, मुलेठी,

चुरनहार, कटुकी और रेणुका—इनके १ अक्ष कल्क के साथ १ प्रस्थ लाख के रस, ४ प्रस्थ दही का पानी और १ प्रस्थ तैल मिलाकर पकावें।

इस तैल की मालिश से बालकों की ज्वरग्रस्तता तथा भूताविष्टता नष्ट होकर शक्तिवर्धन होता है।

सर्प आदि विष विनाशक उपचार

आषाढ़ मास के किसी शुभ तिथि और शुभ मुहूर्त में शिरस की जड़ को चावल की धोवन के साथ पीसकर पीने से सर्पदंशन का भय नहीं रहता।

कदाचित् ऐसे व्यक्ति को कोई सर्प मोहग्रस्त होकर काट भी ले तो उसका विष शिवाज्ञानुसार शिर से उतरकर मूलस्थान पर जा पहुँचता है।

इसी प्रकार वैशाख के महीने में मसूर और नीम की पत्ती के साथ शिरस की जड़ को पीसकर पी लेने पर उसे साँप काटने की संभावना एक वर्ष तक नहीं रहती।

किसी के हाथ-पाँव आदि अंगों में साँप के काटने पर तत्काल ही उस स्थान से चार अंगुल ऊपर की ओर मुलायम चमड़े के फीते, कपड़े या वृक्ष की छाल द्वारा कसकर बाँध देने से शरीर में विष का विस्तार नहीं होने पाता।

जिन स्थानों में बंधन नहीं लगाया जा सके वहाँ फाड़कर आग से जला दें। घाव को जलाना, चूसकर रक्त निकालना तथा घाव को विदीर्ण करना सर्पदंश में उपयोगी कर्म होते हैं। अपने मुख में कपड़े को डालकर कटे हुए स्थान को चूसने से विष दूर होता है।

कुछेक लोगों का मानना है कि साँप द्वारा काटे जाने पर उसे ही पकड़कर काट लें।

अथवा मिट्टी के ढेले को काट लेने से भी विष का प्रभाव नहीं हो सकता।

कालीमरिच के चूर्ण में गोघृत मिलाकर पीने तथा शून्य का ध्यान करने से सर्पविष भी शून्यवत् हो जाता है।

बाएँ हाथ की अनामिका उँगली से कानों की मैल का उस स्थान पर लेप लगाना विषविनाशक साबित होता है।

परवल मूल को पीसकर सूँघने से सर्पदंशित व्यक्ति भी जीवित हो उठता है।

पुष्य नक्षत्र में तगरपिण्डी की जड़ उत्पाटित कर नेत्रों में लगाने से मृत व्यक्ति भी पुनर्जीवन प्राप्त कर लेता है।

शिरीष के पत्तों के रस में सहिजन के बीजों को एक सप्ताह तक भिंगो दे। तदनंतर उसके नस्य, पान और अंजन प्रयोग से सर्पविष नष्ट होता है।

करंजुए के फल, त्रिकटु, बेल की जड़, दारुहलदी, हलदी, सुरसा का पुष्प—इन्हें बकरी के मूत्र में पीसकर अंजन लगाने पर मूर्छित व्यक्ति चैतन्य हो जाता है।

बांझककोड़े की जड़ को बकरी के दूध में भिंगोकर कांजी के साथ पीसकर सूँघने से विषाकुल व्यक्ति स्वस्थता का अनुभव करता है।

निशोथ इन्द्रायण, बड़ी इन्द्रायण, मुलेठी, हलदी, दारुहलदी, मंजीठ, सभी प्रकार के नमक और त्रिकटु—इन सब वस्तुओं को एकीकृत कर सूक्ष्म चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में मधु मिलाकर गाय के सींग में भर दें।

पुन: इसे पान, अंजन, अभ्यंग तथा नस्य कर्म में प्रयुक्त किये जाने पर घोरविष का वेग भी घट जाता है।

इस **अवार्यशक्तियोग** को **महागद** के नाम से जाना जाता है।

गृहधूम की कालिख, मंजीठ, हलदी और सेंधा नमक—इन्हें पीसकर लेप लगाते ही विष का निवारण होता है। इसके प्रयोग से लूता रोग की कर्णिका भी गिर जाती है।

कसौंदी के पत्ते को चबाकर कान में फूँकने से बिच्छू के डंक का विष नष्ट होता है।

हलदी, सेंधा नमक और मधु—इन्हें उबालकर पीने से मूलविष से व्यथित तथा दग्धाविद्ध भी सुखी हो जाता है। उक्त योग के फलस्वरूप कुत्ते आदि चौपायों तथा गोधा (गोह) आदि दो पैर वाले जन्तुओं के दाँत तथा नखादि के खरोंच से उत्पन्न विष भी दूर होता है। इसी भाँति गोजिया और निशोथ का प्रयोग भी विष-उपविष का विनाशक सिद्ध होता है।

वचा, हींग, भाभीरंग, सेंधा नमक, गजपीपर, पाठा, अतीस, सोंठ, कालीमरिच और पीपर—इस दशांश योग का निर्माण कश्यप मुनि ने किया था।

इसके सेवन से समस्त प्रकार के कीटविष निर्मूल होते हैं। दोपहर के समय छाता लगाकर चलने वाले मनुष्य को गरुड़ समझकर सर्प दूर से ही पलायित हो जाता है। वह उसके निकट आने का साहस किसी प्रकार भी नहीं कर सकता।

विष से विमुक्त प्राणी को कुछ दिनों तक विरुद्धाहार, क्रोध, भूख, भय, परिश्रम, स्त्रीसंसर्ग तथा दिन में शयन आदि कार्यों से विरत रहना आवश्यक है।

कलिहारी और मदार की जड़, गुहधूम तथा धतूरे का फल—इन्हें बकरी के मूत्र में पीसकर लेप लगाने से लूता (मकड़ी) रोग नष्ट हो जाता है।

नीलकमल, चंदन, कूठ, जीवन्ती, सोंठ, पाटल, धतूरा, बेल का गूदा, निर्गुण्डी, मैनफल, ब्रह्मदंडी, नखी नामक द्रव्य, तगर और वरुना की छाल—इनको पानी में पीसकर लेप लगाना वातज लूता का विनाशक होता है।

चंदन, नीलकमल, मोथा, कलिहारी की जड़, सोंठ, रेणुका, पटशरा,

मुलेठी, कुसुम्भ का पुष्प और पंचवल्कल—इनको समभाग लेकर जल में पीसकर लेपित करने से पित्तज लूता का विनाश होता है।

सोंठ, कालीमरिच, छोटी पीपर, सारिवा, चित्रक, वरुना, पान, वचा, पाठा, पाटल, मैनफल और बाँस की छाल—इनके बराबर भाग को जल में पीसकर लेप करने से कफज लूता का निवारण होता है।

त्रिदोषज लूता की उत्पत्ति भौंहों के मध्य, कंठनली, हाथ, कान, गंडस्थल, शिर, हृदय, मर्मस्थान और पीठ में हुआ करती है। ऐसी लूता कष्टसाध्य अथवा असाध्य मानी जाती है।

इसके उपचारार्थ सूझ-बूझ की आवश्यकता पड़ती है। मुरगे का बीट, वाराहीकन्द, हींग, मैनफल, हरताल, बाँस की छाल, कोयल, रेणुका और मैनसिल—इन्हें पीसकर लेप लगाने से त्रिदोषज लूता का शमन होता है।

मालकंगनी और कर्कटी के पत्तों को पीसकर लेप लगाने से एक सप्ताह में ही लूता समाप्त हो जाती है।

मानव-मूत्र में नाकुलीकंद को पीसकर लेप लगा देने पर सप्ताह भर में लूता विलुप्त हो जाती है।

गोजिया या कलिहारी की जड़ को पीसकर लेप लगाने पर लूताविष नहीं रह जाता।

औषध प्रयोग से पूर्व "ॐ नमो भगवते रुद्राय" मंत्र से औषध को अभिमंत्रित कर लेना आवश्यक है।

कुंकुम और चंदन को दूध में पीसकर भोजपत्र पर मंत्रलेखन कर उसे सुतली से बाँध लें। तदनंतर उस पोटली को कंठ या बाहुमूल में बाँध देने पर निःसन्देह रूप से लूता का सफाया हो जाता है।

लूता रोगी के व्रणस्थान का पाक होने, जामुन के समान श्याम वर्ण दीखने, रक्तस्राव होने तथा दाँत और होंठ के रंग भी श्यामवर्णीय हो जाने पर उसके जीवन की आशा नहीं रह जाती।

किन्तु ऐसी स्थिति में भी स्वच्छ उपचार करते रहना चाहिए। कदाचित् कोई रोगी इससे बच भी सकता है।

स्तन-दुग्ध में गेरू को घिसकर भोजपत्र पर मंत्रयुक्त शास्त्रोक्त यंत्र का लेखन कर उसे सन की सुतली में लपेट कर पोटली बना लें। उस पोटली की तीन दिनों तक निरन्तर पूजा करने के अनन्तर उसे रोगी के कंठ पर बाँध देने से लूताविष का निवारण होकर रोगी स्वस्थ होता है। इस योग का कथन भगवान धन्वन्तरि ने स्वयं अपने मुख से किया है।

रसायन का वर्णन

प्रत्येक मानव को दीर्घायुष्य, स्मरणशक्ति, धारणा बुद्धि, स्वस्थता, यौवनावस्था, शारीरिक सौंदर्यता, उदारता, वाक्सिद्धि तथा वीर्यपुष्टि केवल रसायन के सेवन से ही प्राप्त हो सकती है। जीवन के पूर्वावस्था या मध्यावस्था में विजितेंद्रिय होकर जुलाब के द्वारा प्रदूषित रक्त को निष्कासित कर औषधियों का सेवन करना चाहिए।

हरड़, आमला, सेंधा नमक, सोंठ, वच, पीपर, हलदी, भाभीरंग तथा गुड़ को मिला स्निग्ध होकर गरम जल के साथ पीने से उदर बिलकुल स्वच्छ हो जाता है।

जुलाबरहित अशुद्ध शरीर से रसायन ग्रहण करना उसी प्रकार निष्फल होता है जिस प्रकार मलिन वस्त्र पर रंग का चढ़ना। जिस भवन में वायु का विशेष रूप से संचरण न हो, भीतिरहित हो, सभी आवश्यकीय वस्तुएँ जहाँ वर्तमान हों, मुख्यत: भवन की स्थिति उत्तर दिशा में हो तथा उनमें तीन सामान्य खिड़कियाँ भी हों।

जिस स्थान में धूम तथा धूप न हो, कूड़ा-करकट तथा सर्पादि जीवों से रहित हो, जहाँ स्त्रियों तथा अज्ञानियों का आना-जाना न हो—ऐसे एकान्त गृह की लिपाई-पुताई चिकित्सक को करा देनी चाहिए।

तत्पश्चात् मांगलिक कार्यों को सम्पन्न कर पवित्रावस्था में किसी शुभ तिथि में उस कुटिया में प्रविष्ट हो। औषध सेवन के फलस्वरूप नवीन ऊर्जा और शक्तियुक्त होकर वह ब्रह्मचारी, धैर्यवान्, जितेंद्रिय, दानपरायण, दयावान तथा धर्मनिष्ठ जीवन बिताते हुए अपने इष्ट देवता का स्मरण सोने और जागने से पूर्व करता रहे।

औषधि पर श्रद्धा-विश्वास रखते हुए मधुरभाषी बनकर रसायन का सेवन प्रारंभ करे। तदनंतर वह व्यक्ति पेया आदि को धारण कर घृतयुक्त हरड़ को तीन या पाँच दिनों तक खाता रहे। अर्थात् जब तक पुराने मल का नि:सरण न हो जाय तब तक हरड़ का सेवन बराबर करता रहे।

मुलेठी, वंशलोचन, पीपर, सेंधा नमक, लोहा, चाँदी, ताँबा, सीसा, राँगा, सोना, वच, मधु तथा घृत। इन सब वस्तुओं को अलग-अलग मिश्री के साथ त्रिफला मिलाकर मात्रा का निर्धारण कर सेवन करे।

यह रासायनिक प्रयोग समस्त रोगों का विनाशक, बुद्धि, आयु, स्मरणशक्ति तथा कांतिवर्धक होता है।

मंडूकपर्णी के स्वरस या मुलेठी चूर्ण को दूध के साथ पान करें। अथवा गुरुच के रस का प्रयोग करें। शंखपुष्पी की जड़ और उसके फूल का कल्क प्रयोग में लायें।

उक्त सभी योग आयुवर्धक, सर्वरोगनाशक, क्षुधाग्नि, स्वर और बलवर्धक होते हैं। शंखपुष्पी का उपयोग मुख्यत: धारणा-शक्तिवर्धन हेतु किया जाता है।

गोखरू की जड़ को फूलों के सहित छाया में सुखाकर चूर्णित कर ले और उसी के रस में भिंगोकर ८ तोले के परिमाण में गोदुग्ध के साथ पान कर शालिधान्य का भात खायें। इस प्रकार ८०० तोले चूर्ण सेवन के पश्चात् वह वीर्यवान, सौन्दर्यवान, ऐश्वर्यवान तथा शतायु बन जाता है।

जिस प्रकार गायों के समूह में सांड़-कामातुर हो जाता है उसी प्रकार उक्त चूर्णसेवी मानव भी तरुणियों के मध्य बन बैठता है।

कच्ची वाराहीकन्द की जड़ को पीसकर दूध के साथ पान करे। औषध सेवनकाल तक अन्न का परित्याग कर केवल दुग्धाहार ही ग्रहण करें।

निरन्तर एक मास तक ऐसा करने के पश्चात् कुछ दिनों तक दुग्धान्न का भोजन लें। इस प्रक्रिया को अपनाने पर कभी यौवन का क्षय नहीं होता।

अथवा वाराहीकंद के सूक्ष्म चूर्ण को वाराहीकंद के निचोड़े हुए रस में भिंगोकर घी और शहद मिलाकर चाटें या वाराहीकंद की जड़ को घी में पकाकर उस घृत का पान करें। निरन्तर एक वर्ष तक प्रतिदिन ५-७-८ या १० पीपलों को मधु तथा घी के साथ पीना रसायन का कार्य करता है।

शिलाजीत के लक्षण

ग्रीष्मकाल में प्रचंड धूप की उष्णता से तपकर पर्वत लाह के समान सोना आदि छह धातुओं के रस को उगलते हैं जिन्हें शिलाजीत कहा जाता है।

षट् धातुओं के रस से रसान्वित शिलाजीत कटु, अल्प उष्ण, पाककाल में तिक्त तथा छेदक होता है, किन्तु लोहमय शिलाजीत उत्तम प्रजाति का होता है। गोमूत्र के समान सुगंधिवान, गूगुल के समान कृष्ण वर्ण वाला, कंकड़-पत्थर से रहित, मृत्तिकालिप्त, स्निग्ध, कषाय, अम्लतारहित, कोमल तथा भारी शिलाजीत श्रेष्ठ माना जाता है।

शिलाजीत को त्रिफला के क्वाथ, पटोला के यूष अथवा मुलेठी के क्वाथ में तीन-तीन दिनों तक भिंगोकर छान लेने से वह शुद्ध हो जाता है।

शिलाजीत का सेवन हीन, मध्यम और उत्तम योग से पहले एक सप्ताह तक १ तोला, तीन सप्ताह तक २ तोले और अंत में सात सप्ताह तक ४ तोले की मात्रा में देशकालानुसार करें।

रसायन के निमित्त गाय के धारोष्ण दूध तथा वाजीकरण के लिए गोखरू चूर्ण के साथ करना चाहिए।

शिलाजीत का प्रयोग विधिपूर्वक किये जाने पर समस्त रोगों का उन्मूलन होता है। इसके द्वारा सौन्दर्य और पराक्रम की वृद्धि होती है।

भोजन से पूर्व शीतल जल, दूध, शहद या घृत—इनमें से किसी एक-दो-तीन अथवा सभी का मिश्रित प्रयोग करने से सदैव एक-सी ही अवस्था बनी रहती है।

नित्यप्रति २ हर्रै को गुड़ के साथ, शहद के साथा, पीपर के योग से अथवा सोंठ मिलाकर या सेंधा नमक के साथ सेवन करने वाला व्यक्ति स्वस्थ रहकर अपने जीवन के सौ वर्ष पूरे कर लेता है।

घृत में हरड़ों को भूनकर उस घृत का पान करने वाला व्यक्ति दीर्घकाल तक उसी भाँति युवा बना रहता है जिस प्रकार किसी के द्वारा किये गये सत्कर्मों की याद ताजी बनी रहती है।

आँवला, भाभीरंग और असना का सत्त्व—इनके चूर्ण में तैल, घी, मधु तथा लौहचूर्ण मिलाकर सेवन करने वाला व्यक्ति अपने विगत यौवन को पुन: प्राप्त कर लेता है।

वाजीकरण का वर्णन

दुर्बलांगों के प्रेमनिर्वहन तथा उनके शरीर रक्षणार्थ यहाँ वाजीकरण औषधों का कथन किया जा रहा है। वाजीकरण औषधसेवी युवकों की नित्य स्त्रीसहवास करते रहने पर भी कामपिपासा शांत नहीं होती।

स्निग्ध तथा शुद्ध व्यक्ति को सर्वप्रथम घृत, तैल, मांसरस, दूध, शक्कर और मधु से युक्त निरूहबस्ति और अनुवासन का प्रयोग करना उचित है।

किन्तु मांसभक्षियों के लिए दूध और मांसरस को देना चाहिए। तत्पश्चात् वीर्यवर्धक और सन्ततिकारक औषधों का सेवन करना लाभकारी है।

जिस प्रकार छायाविहीन तथा सुगंधित पुष्पों से रहित एक शाखीय वृक्ष शोभायमान नहीं होता वैसे ही नि:संतान व्यक्ति की भी दशा होती है।

चपल गति, तोतली वाणी, धूल-धूसरित शरीर तथा मुख से टपकती हुई लार वाली संतति को देखकर मन आह्लादित हो उठता है।

जब धूल-धूसरित बालक के दर्शन, स्पर्शन आदि से ही पुत्रवत् आनंद की प्राप्ति होती है तब फिर अपने पुत्र से कितना आनंद मिलेगा? इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

बिदारीकंद, पीपर, चौलाई, चिरौंजी, गन्ना, क्रौंच की जड़ और मधु—ये सब १६ तोले शक्कर, २०० तोले और नूतन घृत ३२ तोले—इनके योग की तोले-भर मात्रा सैकड़ों नारियों से रमण करने हेतु पर्याप्त होती है।

क्रौंच के बीजों का चूर्ण और गेहूँ का आटा अथवा उड़द को दूध में पका लें। उसे पहली बार ब्याई हुई गोदुग्ध के साथ सेवन करने वाला व्यक्ति स्त्रियों को मदनयुद्ध में पराजित कर देता है।

बकरे के अंडकोश को दूध में उबाल कर उसमें काले तिलों को भिंगोकर मिश्री के साथ खाने पर शताधिक नारियों का भी मदमर्दन करना संभव होता है।

बिदारीकंद के रस में भिंगोये हुए उसी बिदारीकंद के चूर्ण को शहद और घी मिलाकर चाटने वाला पुरुष सैकड़ों नारियों से संभोग करने में समर्थ होता है।

आँवले के रस में भिंगोये गयी छोटी पीपर और आँवले के चूर्ण को शक्कर, मधु और घृत के साथ खाकर दुग्धपान करने वाला अस्सी वर्ष का बूढ़ा व्यक्ति भी युवा के समान बन जाता है।

मुलेठी के चूर्ण को १ कर्ष की मात्रा में घी-मधु के साथ चाटकर ऊपर से दुग्धपान करने पर कामवासना की वृद्धि होती है।

काकड़ासिंगी के कल्क को दूध में मथकर पान करें। तदनंतर मिश्री, घृत और दूध का आहार लेने वाला व्यक्ति साँड़ के समान बलवान हो जाता है।

क्षीरकाकोली को दूध में पकाकर घृत तथा शहद के साथ खाकर गोदुग्ध पी लें तो उस व्यक्ति की जननेंद्रिय रतिकाल में शिथिल नहीं होती। उक्त पदार्थों के सेवन से मत्त व्यक्ति अपने प्रचंड कामवेग के द्वारा नारियों को संतुष्ट कर देता है।

पुरुष की वृषत्वता के लिए निम्न गुणसम्पन्ना रमणियों की कल्पना की गयी है, जैसे—हृदयोत्सव की नाम वाली, जिसके पुनरावलोकन से संतृप्ति न हो, सम्पूर्ण इंद्रियों को कर्षित करने हेतु फन्दास्वरूप, पति के निकट छन्दानुगामिनी होकर रहने के लिए दीक्षित,, हास-विलास से सम्पन्न, पतिव्रता, लज्जाशीला, मैथुनकाल में प्रगल्भा, मधुरभाषिणी तथा काम-कल्लोल से पूर्ण।

देश, काल, और शक्त्यानुसार शास्त्रोक्त कथित समस्त रतिक्रीडाओं को प्रसन्नतापूर्वक करना चाहिए।

नायिका को कमलयुक्त रतिसुख के तुल्य तथा नायक को मधुरशब्दझंकारिणी प्रिया के सदृश पुष्पित-पल्लवित अग्रभाग वाली लता के समान पुष्प-सज्जित शैय्या, शारीरिक पीड़ा का अभाव, अर्थ-संबंधी चिंता से विमुक्ति तथा वाजीकरण योग का निकटस्थ होना—ये सभी कामदेव के काम को भी पूर्ण कर दिया करते हैं।

॥ इस प्रकार रावणसंहितान्तर्गत रोग चिकित्सा ज्ञान तृतीय परिच्छेद सरल, सुबोध हिन्दी भाषा में मैथिल आचार्य शिवकान्त झा द्वारा सुसम्पन्नता को प्राप्त हुआ॥३॥

॥ शुभमिति ॥

□□□

चतुर्थ परिच्छेद

काल (ज्योतिष) शास्त्र

ज्यौतिषशास्त्र का प्रधान विषय निश्चित रूप से काल है इसलिए उसको काल विधायक शास्त्र भी कहा जाता है। जैसाकि वेदाङ्ग ज्यौतिष में लगधमुनि ने 'कालज्ञानं प्रवक्ष्यामि लगधस्य महात्मना' इस प्रकार कहा भी है। अतएव ज्यौतिषशास्त्र के प्रसङ्ग में 'काल' अति महत्त्वपूर्ण है।

काल शब्द 'कल् संख्याने' सूत्रानुसार कल् धातु से निष्पन्न और गणना के अर्थ में व्यवहारार्ह माना गया है। काल के विना एक तुच्छतम कार्य का भी सम्पादन करना असम्भव है। इस तरह सर्वोपयोगी व सर्वसाधारण काल, जिसे नेत्र से देखा भी नहीं जा सकता और जिसका प्रत्यक्षीकरण मात्र कार्य से ही सम्भव होता है। वस्तुत: संसार के सभी कार्य काल की अपेक्षा रखता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस संसार में क्रिया की अपेक्षा काल निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। वह काल सर्वव्यापक व नित्य है, जिसमें ही अखिल ब्रह्माण्ड स्थित है। वह काल ही इस व्यापक ब्रह्माण्ड का सञ्चालक होने से उसका ईश्वर-परमेश्वर है, यह स्पष्ट हो जाता है। इस काल के प्रसङ्ग को भारतीय वैदिक साहित्य व दर्शन में अनेक स्वरूपों में प्रतिपादित व विवेचित किया गया है। उसमें उसके दो स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। एक सृष्टि सञ्चालक, पालक व संहारक के रूप में और दूसरा गणनात्मक या कलनात्मक रूप में। यहाँ उस काल के दूसरे स्वरूप के व्यावहारिक पक्ष की विशद चर्चा करना उद्देश्य है।

काल के प्रकार

यहाँ काल के दो प्रकार का उल्लेख हुआ है। एक वह, जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के चराचर का सृष्टि, पालन और संहार करने वाला काल या महाकाल है।

दूसरा वह जो गणना करने योग्य है। उस गणना योग्य काल के भी दो भाग है। एक स्थूल काल, जिसमें प्राण से प्रलयान्त (कल्पान्त) तक के कालखण्ड आते है, जिन्हें मूर्त्त काल कहा जाता है।

दूसरा सूक्ष्मकाल, जिसमें त्रुटि से प्राण तक व्यवहार अयोग्य काल आता है, जिसे अमूर्त्त काल कहा जाता है। इस प्रकार काल प्रमुख तीन स्वरूपों में हमारे समक्ष आता है— १. महाकाल, २. व्यावहारिक गणनायोग्य स्थूल काल (मूर्त्तकाल) और ३. व्यवहार अयोग्य सूक्ष्मकाल (अमूर्त्त काल)।

अश्विन्यादि नक्षत्रों के नव चरणों से संयुत व आकाश में चलने वाली व चक्र

में टिकी हुई मेषादिक बारह राशियाँ होती हैं और राशियों में भली-भाँति बँटी हुई क्षेत्र, ऋक्ष, राशि व भवन ये स्थानों के नाम होते हैं।

कालपुरुष शरीर के अङ्ग और राशियाँ

शीश में मेष, मुख में वृष, बाहुओं में मिथुन, हृदय में कर्क, कोखों में सिंह, कमर में कन्या, बस्ति देश में तुला, गुदा में वृश्चिक, ऊरूओं में धनु, जानुओं में मकर, जंघाओं में कुम्भ और पैरों में मीन रहता है। ये अङ्गगत राशियाँ कालपुरुष के शरीरगत अवयव कहे जाते हैं।

राशि स्वरूप ज्ञान

मीन राशि--दो मछलियों में एक के मुख पर दूसरे की पूँछ लगकर गोल बनी हुई है।

कुम्भ–कन्धे पर कलश लिए हुए पुरुष के सदृश है।

तुला–तराजू हथ में लिए हुए पुरुष के समान है।

धनु–धनुष हाथ में लिए हुए कमर के ऊपर मनुष्य नीचे जानुनी जङ्घा आदि घोड़े के समान है।

मकर–मृग के सदृश मुख वाला है।

मिथुन–नारी व पुरुष का युग्म, नारी के हाथ में वीणा और पुरुष के हाथ में गदा धारण किये हुए के समान है।

कन्या–नौका पर बैठी हुई हाथ में धान व अग्नि को लिए हुए है।

शेष (मेष, वृष, कर्क, सिंह व वृश्चिक) राशियों का स्वरूप जाति नाम के समान है। जैसे–मेष भेड़ा के समान, वृष बैल के समान, कर्क केकड़ा के समान, सिंह शेर के समान और वृश्चिक का स्वरूप बिच्छू के समान है।

मेष आदि राशियों का अधिवास

धातु व रत्नों की खान और धरातल में मेष का अधिवास है।

पर्वतों की चोटी सम भूभाग, खेत, गोकुल तथा वन में वृष का अधिवास है।

जुआ, रति और विहार करने की भूमि में मिथुन का अधिवास कहा गया है।

बावली, तालाब, पोखरा और पुलों का किनारा कर्क का वास रहता है।

घने पहाड़ों, गुफाओं और वनों में सिंह का वास रहता है।

हरी घास, रमणियों के रतिस्थान तथा कारीगरी की भूमि में कन्या का अधिवास कहा गया है।

समग्र अर्थसार, पुर, बाजार या दूकानों की भूमि में तुला का अधिवास है।

पत्थर, विष, कीट व बिलप्रदेश में वृश्चिक का वास कहा गया है।

घोड़े, रथ और हाथियों के रहने की भूमि में धनु का वास है।

नदी, जल तथा जंगलों में मकर का वास होता है।

जल, घट, भाण्डगृह में कुम्भ का अधिवास कहा गया है।

मछलियों के रहने की जगह (हदों) नदी, समुद्र और जलराशियों में मीन का अधिवास है।

मेष आदि राशियों की लघुता दीर्घता

मेष, वृष, कुम्भ ये ह्रस्व संज्ञक हैं। मकर, मिथुन, धनु, मीन और कर्क ये समसंज्ञक हैं। वृश्चिक, कन्या, सिंह और तुला ये दीर्घसंज्ञक हैं।

मेषादि राशियाँ पुरुष तथा नारीसंज्ञक भी होती हैं। अर्थात् मेष पुरुष, वृष नारी, मिथुन पुरुष, कर्क नारी, सिंह पुरुष, कन्या नारी, तुला पुरुष, वृश्चिक नारी, धनु पुरुष, मकर नारी, कुम्भ पुरुष, मीन नारी संज्ञक है।

मेष, वृष, मिथुन व कर्क ये चार और इनसे पाँचवीं राशि क्रम से पूर्वादि दिशाओं में रहती हैं। अर्थात् मेष पूर्व में रहता है। दक्षिण में कन्या, तुला पश्चिम में और कर्क उत्तर में रहता है तथा सिंह पूर्व में, कन्या दक्षिण में, तुला पश्चिम में, वृश्चिक उत्तर में बसता है। पूर्व में धनु, दक्षिण में मकर, पश्चिम में कुम्भ, उत्तर में मीन है।

मेषादि बारह राशियाँ क्रूर व सौम्य संज्ञक कही जाती हैं अर्थात् मेष क्रूर, वृष सौम्य, मिथुन क्रूर, कर्क सौम्य, सिंह क्रूर, कन्या सौम्य, तुला क्रूर, वृश्चिक सौम्य, धन क्रूर, मकर सौम्य, कुम्भ क्रूर और मीन सौम्य कहा जाता है।

मेषादि बारह राशियाँ चर, स्थिर व द्विस्वभावसंज्ञक भी कही जाती हैं। अर्थात् मेष चर, वृष स्थिर, मिथुन द्विस्वभाव, कर्क चर, सिंह स्थिर, कन्या द्विस्वभाव, तुला चर, वृश्चिक स्थिर, धनु द्विस्वभाव, मकर चर, कुम्भ स्थिर और मीन द्विस्वभाव संज्ञक कहा गया है।

राशियों के पृष्ठोदयादि संज्ञा

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, धनु और मकर ये राशियाँ रात्रि में बलवान् कही जाती हैं। इनमें मिथुन राशि को छोड़कर अन्य राशियाँ पृष्ठोदयसंज्ञक होती हैं। सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक व कुम्भ ये राशियाँ दिन में बली व श्रेष्ठ तथा मिथुन राशि के सहित शीर्षोदय कही जाती हैं। मीन राशि दिन और रात्रि में बलवान् व दो मछलियों के मुख पुच्छ मिलकर उभयोदयी होती है, जो पृष्ठभाग से उदय लेते हैं, वे पृष्ठोदय और जो शिरभाग से उदय लेते हैं, वे शीर्षोदयी कहलाते हैं।

राशियों की जलचरादि संज्ञा

मीन, वृश्चिक, कर्क और मकर ये जल संज्ञक कहे जाते हैं। कुम्भ, कन्या,

मिथुन और वृष ये जल का आश्रय रखते हैं, अर्थात् जलाश्रयी कहलाते हैं। मेष, धनु, तुला और सिंह ये निर्जल भूतल में विचरते हैं। ऐसा बहुत से सन्त लोग कहते हैं।

चतुष्पदादि संज्ञा

धनु का परार्द्ध, सिंह, वृष, मकर का पूर्वार्ध और मेष ये चतुष्पदसंज्ञक हैं तथा ये दशम भाव में बली होते हैं। कन्या, मिथुन, कुम्भ, तुला और धनु का पूर्वार्ध ये नर रूपधारी द्विपद कहे जाते हैं। यदि लग्न में हों, तो बलवान् होते हैं। मकर का परार्ध, मीन और कर्क ये जलचर कहे जाते हैं। यदि चौथे घर में हों, तो बलवान् होते हैं। वृश्चिक जलाश्रयी कहा जाता है। यदि सातवें घर में हो, तो बलवान् होती है।

राशियों के दिवारात्रि बल

दिन के समय केन्द्र में बैठा हुआ द्विपद बलवान् होता है। रात्रि के समय केन्द्र के चतुष्पद बलवान् होते हैं और समस्त कीटसंज्ञक यदि केन्द्र में हों, तो दोनों सन्धियों सुबह व शाम में बली होते हैं।

राशियों के धातु मूल जीव संज्ञा

विद्वानों ने मेषादि बारह राशियों की धातु, मूल व जीव संज्ञा कहा है। जैसे— मेष, कर्क, तुला व मकर की धातुसंज्ञक: वृष, सिंह, वृश्चिक व कुम्भ की मूल संज्ञा तथा मिथुन, कन्या, धनु व मीन राशियों की जीव संज्ञा है एवं राशियों की सम व विषम संज्ञा भी कही गई है। वहाँ सोने से लेकर मृत्तिकापर्यन्त धातु कहलाती है। वृक्ष से लेकर तिनका पर्यन्त मल कहा जाता है। जो जीव-समुदाय दिखता है, वह जीव कहा जाता है।

मेषादि राशियों की द्विपदादि संज्ञा

मेष में द्विपदों की चिन्ता होती है। वृष में चौपायों की, मिथुन में गर्भ की, कर्क में रोजगार-व्यवसाय की, सिंह में जीवों की, कन्या में नारियों की, तुला में धन की, वृश्चिक में व्याधि की, धनु में धन की, मकर में शत्रु की, कुम्भ में स्थान की और मीन में दैवी चिन्ता करनी चाहिये।

राशियों के वर्ण

मीन, वृश्चिक और कर्क ये ब्राह्मण कहे जाते हैं। धनु, मेष और सिंह ये क्षत्रिय कहे जाते हैं। वृष, मकर और कन्या वैश्यवर्ण कहे जाते हैं और कुम्भ, मिथुन और तुला ये शूद्रवर्ण होते हैं।

राशियों का स्वामी

मेष का स्वामी मङ्गल, वृष का शुक्र, मिथुन का बुध, कर्क का चन्द्रमा, सिंह का सूर्य, कन्या का बुध, तुला का शुक्र, वृश्चिक का मङ्गल, धनु का गुरु, मकर व कुम्भ का शनैश्चर और मीन का बृहस्पति अधिपति व अंशप है।

भाव विचार

ज्योतिषशास्त्र में कुण्डली के अन्तर्गत बारह राशियाँ और बारह ही भाव होते हैं। पृथ्वी अपनी धुरी पर भ्रमण करती रहती है। सूर्य समेत समस्त ग्रह पूरब की ओर जन्म-स्थान से विभिन्न प्रकार के कोण बनाते हैं और इस कोण से कौन-सा ग्रह किस भाव में है यह पता चलता है।

जातकशास्त्र में भाव का क्या प्रयोजन है? उनका प्रयोजन यह है कि प्रत्येक भाव शरीर के किसी अंग का, किसी सम्बन्ध का (पिता, माता, भाई इत्यादि) और जीवन के किसी भाव का द्योतक है।

किसी भी विशेष बात का निर्णय करने के लिए उस भाव के स्वामी या जो ग्रह उस भाव में बैठे हों या उसे देखते हों या उस भाव का कारक हो, इन सबका विचार करना पड़ता है।

ग्रह किस प्रकार दूसरे भावों पर दृष्टि डालता है, इसे आगे बताएगें परन्तु अभी हम यह बताएंगे कि भाव के स्वामी से हमारा क्या तात्पर्य है। यह हम पहले भी बता चुके हैं कि जब अलग-अलग राशियों का पूर्वीय क्षितिज में उदय होता है उस समय एक के बाद दूसरी राशि से एक के बाद दूसरे भावों का ज्ञान होता है।

जिस समय मेष राशि उदित हो तो मेष से चौथे भाव में कर्क राशि में होगी। अब कर्क राशि का स्वामी चन्द्रमा है इसलिए चन्द्रमा को चौथे भाव का स्वामी कहते हैं। मान लीजिए,वृषभ लग्न से उस समय वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह चौथे भाव या चौथे भाव में स्थित सिंह राशि हुई और सूर्य क्योंकि सिंह राशि का स्वामी है इसलिए वह चौथे भाव का स्वामी हुआ।

सूर्य और चन्द्रमा एक-एक भाव के ही स्वामी होंगे; क्योंकि इन दोनों की एक-एक राशि ही है, परन्तु मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि इनमें से प्रत्येक ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी या अधिपति हैं। राहु और केतु किसी भी राशि के स्वामी नहीं होते, इसलिए वे किसी भी भाव के स्वामी नहीं होंगे।

भावों की संज्ञायें—(क) पहला, चौथा, सातवां और दसवां भाव केन्द्र कहलाता है। इनमें बैठे हुए ग्रह बलवान होते हैं।

(ख) दूसरा, पांचवां, आठवां और ग्यारहवां भाव पणफर कहलाता है। आठवें स्थान के अतिरिक्त यहां बैठे हुए ग्रह भी काफी बलवान होते हैं, परन्तु केन्द्र में बैठे हुए ग्रह के समान नहीं।

(ग) तीसरा, छठा, नवां और बारहवां भाव आपोक्लिम कहलाता है। नवम भाव के अलावा इन भावों में ग्रह कमजोर समझे जाते हैं, परन्तु छठे भाव में क्रूर ग्रह

अच्छे समझे जाते हैं। कौन-से ग्रह क्रूर हैं और कौन-से ग्रह शुभ यह आगे बताया जाएगा।

(घ) पांचवें और नवें भावों को त्रिकोण कहते है। त्रिकोण के स्वामी और त्रिकोण में बैठे हुए ग्रह शुभ और बलवान् होते हैं।

(ङ) तीसरा, छठा, दसवां और ग्यारहवां भाव उपचय कहलाता है। 'उपचय' का मतलब है बढ़ाना।

(च) छठे, आठवें और ग्यारहवें भावों को त्रिक कहते हैं, जो ग्रह इनके स्वामी हों या जो ग्रह इनके स्वामी के साथ बैठे या जो ग्रह इनमें बैठें, वे अशुभ होते हैं।

'त्रिक' का मतलब है—तीन खराब भाव।

संसार की प्रत्येक बातें—स्वास्थ्य, धन, बुद्धि, विद्या, प्रसन्नता, दुःख, धर्म, जायदाद, सम्बन्धी, दुकानदारी और व्यापार, वैवाहिक सुख, विवाह, सामाजिक स्थिति, आमदनी, विदेश यात्राएं, बीमारी, विरासत,शत्रु, भोग-विलास इत्यादि ये सब किसी न किसी भाव से ज्ञात होते हैं।

परन्तु प्रत्येक भाव से क्या-क्या बातें पता लगती हैं, यह विस्तार से बताना सम्भव नहीं है। इसलिए संक्षेप में ही किस भाव से क्या विचार होता है, यह बताते हैं। कुछ बातें एक से अधिक भावों से देखी जाती हैं,इसलिए इसके लिए वह सब भाव देखने पड़ेंगे।

पहला भाव—शरीर, शरीर की बनावट, शारीरिक शक्ति, शक्ति, सूरत, रंग, व्यक्तित्व, स्वभाव, झुकाव, स्वास्थ्य, प्रसन्नता और दुःख, आयु, बाल और सिर, यश, सामाजिक स्तर, जन्मस्थान, नाना, दादी इत्यादि।

दूसरा भाव—चेहरा, आंखें (विशेष रूप से दाहिनी आंख), नाक, मुंह, दांत और जीभ, बोलने, बात करने की निपुणता, कठोर या नर्म वाणी (सच या झूठ बोलना) और खाना, भोजन में रुचि, धन और धान्य, सोना, चाँदी और जवाहरात, कंजूसी, वस्तुओं का खरीदना और बेचना, कुटुम्ब, मृत्यु इत्यादि।

तीसरा भाव—गला, आवाज, कान, सुनने की शक्ति, कन्धा, बाजू, छाती का ऊपर का हिस्सा, भाई या बहन (विशेष रूप से अपने से छोटे), साथी, सम्बन्धी, पड़ोसी, नौकर, अपने से नीचे कार्य करने वाले और मददगार, हिम्मत, लड़ना, क्रोध, धर्म, शारीरिक और मानसिक शक्ति, होशियारी, क्षमता, खेल-कद, छोटी यात्राएं, इधर-उधर घूमना, छोटे-छोटे लेख, आयु, धर्म इत्यादि।

चौथा भाव—हृदय और उसके समानन्तर छाती का दहिना हिस्सा, माता,

पिता और माता की ओर के सम्बन्धि, मित्र, रहने का मकान, जमीन, बाग, खेती की भूमि, गीली जमीन और वहां का उत्पादन, पशु, पानी के नीचे का स्थान, तालाब और कुआं, आराम, सोना, प्रसन्नता, सम्मान, मीठी सुगन्ध, सवारी, दक्षिण भारतीय ज्योतिषियों के अनुसार विद्या, धार्मिक स्वभाव, जीवन का अन्तिम समय, जीवन के अच्छे सिद्धान्त।

पांचवां भाव—पेट, बच्चे, बच्चा जनने की शक्ति, यकृत, बच्चे (लड़के और लड़कियां), बुद्धि, विद्या, याददाश्त, मन, ज्ञान, सलाह, पुस्तक लिखने की क्षमता, भगवान् में भक्ति, साधना और प्रार्थना, पिछले जन्म में किए गए अच्छे कार्य, आनन्द, वेश्याओं से सम्बन्ध, सट्टा, जुआ, घुड़दौड़ इत्यादि।

छठा भाव—नाभि के पास शरीर का हिस्सा, नीचे की अंतड़ियां, मामा और मौसी, बीमारी, चोट इत्यादि, मानसिक और शारीरिक रोग, चिन्ता, दुष्मनी, दुश्मन, लड़ना, मेहनत, खतरे, जेल, भाई/बहन से कलह, चोरी, नौकर, नौकरी, कर्जा, गन्दी और बुरी आदतें, क्रूर कर्म, विघ्न और बाधाएं इत्यादि।

सातवां भाव—विवाह, पति-पत्नी, दूसरों से सम्बन्ध, कामेन्द्रियों का सुख, वैवाहिक प्रसन्नता, पति-पत्नी का स्वरूप और उनकी आयु, साझेदारी और साझेदारी में किया गया कार्य,यात्रा, यात्रा में रुकावट, मुकदमें, शत्रु पर विजय,पेशाब का रास्ता, दुकानदारी इत्यादि।

आठवां भाव—जननेन्द्रियों का बाहरी भाग, छूत की बीमारी (गर्मी, सुज़ाक इत्यादि), मधुमेह, भगन्दर, बवासीर, आयु, मानसिक उदासीनता, पाप, दुःख, खतरे, बीमारियां, कृति, पति-पत्नी की परेशानियां, भाई के शत्रु, जमीन के नीचे गड़ा हुआ धन, मृत्यु मृत्यु का स्थान और कारण, युद्ध, समुद्र पार की वस्तुएं, धन की हानि, राजदण्ड, डर, हार, पैतृक सम्पत्ति के अतिरिक्त दूसरा मकान, विरासत में मिला हुआ धन, पति की आर्थिक स्थिति इत्यादि।

नवां भाव—जांघ और कूल्हा, पिता (दक्षिण के ज्योतिषियों के अनुसार) पौत्र, भाई की पत्नी, पति के भाई और बहन, मठ, धर्म, अच्छे कार्य, दान, आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रवृत्ति, ज्ञानप्राप्ति के तरीके, अच्छे व्यक्तियों से सम्बन्ध, समुद्री यात्रा,समृद्धि, भाग्य स्थान कहते है 'भाग्य' में धन, प्रसन्नता, सुख सभी वस्तुएं सम्मिलित हैं।

दसवां भाव—घुटना, पीठ, पिता, सास, गोद लिया पुत्र, उपार्जन करने की क्षमता, कर्म, अच्छे या बुरे कार्य,सफलता,खेती,विदेश में रहना, राजा, राज्य, सरकार,यश,जीवन-स्तर, अपने से बड़े लोग, सन्यास, नौकरी इत्यादि।

ग्यारहवां भाव—पिण्डली, बड़े भाई और बहन, मित्र, दामाद, माता की आयु, लाभ, आय, हानि, ससुर से लाभ, सांसारिक सुख की वस्तुएं, सवारी, शत्रु और उनके कार्य, कपड़े, पैतृक सम्पत्ति, कार्य कुशलता, इच्छाएं, ज्ञान और देवभक्ति इत्यादि।

बारहवां भाव—पांव (पंजे), काका, बुआ, मामी, जननेन्द्रियों के सुख,पत्नी का क्षय, दूसरी पत्नी, मानसिक उदासीनता, शरीर का व्यय, दुःख, जेल जाना, पांव का काटना, हानि, खर्चे, वस्तुओं का खरीदना, उदारता,मातृभूमि से दूर रहना, जीवन में नाम,यश वगैरह की हानि, बायां नेत्र, दांत इत्यादि।

ज्योतिष में जीवन में काम आने वाली समस्त वस्तुएं किसी न किसी भाव में या किसी न किसी ग्रहों से देखी जाती हैं।

विशेष—ग्रहों के बारे में हमारे कुछ पाठक शुरू में यह देखकर कि बहुत-सी वस्तुयें एक से अधिक भाव पर आधारित होती हैं, निष्कर्ष निकालने में कुछ कठिनाई महसूस करते हैं; परन्तु यह जानना चाहिए कि जीवन की प्रत्येक बात किसी न किसी प्रकार दूसरी बातों पर निर्भर करती है।

जैसे एक अच्छे हृदय का होना लम्बी आयु के लिए आवश्यक है, परन्तु उसके लिए पेट और अंतड़ियां ठीक से काम करें, अच्छा रक्तप्रवाह हो, मानसिक तनाव भी साधारण रहे आदि-आदि। इसीलिए यदि कुछ बातें एक से अधिक भाव से निकलें तो उसके लिए तारतम्य से निष्कर्ष निकालना चाहिए।

ग्रहों के आत्मादि विचार

सूर्य काल की आत्मा है। चन्द्रमा काल का चित्त (दिल) है। मङ्गल बल है। बुध वचन है। बृहस्पति सौख्य व विज्ञान का सार है। शुक्र कामदेव है और शनैश्चर दुःखरूप होता है।

ग्रहों के राजादि संज्ञा

सूर्य और चन्द्रमा राजा कहे जाते हैं। बृहस्पति तथा शुक्र मन्त्री कहे जाते हैं। बुध कुमार और मङ्गल नेता कहे जाते हैं। शनैश्चर दास कहलाता है।

ग्रहों का वर्ण ज्ञान

सूर्य श्याम तथा लाल वर्ण वाला होता है। चन्द्रमा सफेद अङ्ग वाला तथा जवान रहता है। बुध दूब के समान श्याम अङ्ग वाला होता है। मङ्गल लाल और गोरा होता है। शुक्र सफेद अङ्ग वाला, शनैश्चर काला, राहु नीला और केतु विचित्र वर्ण वाला कहा जाता है।

ग्रहों का शुभाशुभ ज्ञान

चन्द्रमा और सूर्य प्रकाशक कहे जाते हैं। मङ्गल आदि पाँच ग्रह तारा कहे

जाते हैं। राहु तथा केतु दोनों तमोरूपी कहे जाते हैं। चन्द्र, बुध, बृहस्पति और शुक्र ये शुभग्रह कहे जाते हैं।

क्षीण चन्द्रमा, शनैश्चर, सूर्य, राहु, केतु और मङ्गल ये पापग्रह कहे जाते हैं। पाप ग्रहों से युक्त बुध पापी कहलाता है। उनके बीच में बृहस्पति और शुक्र अत्यन्त शुभदायक हैं। शनैश्चर तथा मङ्गल दोनों क्रूर ग्रह कहलाते हैं।

चन्द्र का बलाबल

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से दशमी तक चन्द्रमा मध्यम वीर्य वाला होता है। दशमी से कृष्णपक्ष की पञ्चमी पर्यन्त, यही चन्द्रमा शुभदायक है। पञ्चमी से लेकर अमावस पर्यन्त चन्द्रमा क्षीण बल वाला कहा जाता है। यदि वह शुभ ग्रहों से दृष्ट तथा संयुक्त हो, तो शुभदायक हो जाता है।

ग्रहों के पृष्ठोदयादि संज्ञा

सूर्य, मङ्गल, राहु और शनैश्चर सदैव पीठ से उदय होते हैं। शुक्र, चन्द्रमा और बुध शीश से और बृहस्पति दोनों से उदय होते हैं।

ग्रहों के विहगादि स्वरूप

सूर्य तथा बुध दोनों पक्षीरूप हैं। चन्द्रमा सरीसृप रूपी होता है। बृहस्पति तथा शुक्र दोनों द्विपद कहे जाते हैं। शनैश्चर और मङ्गल दोनों चतुष्पदसंज्ञक होते हैं।

ग्रहों के बालादि अवस्था

मङ्गल बालक, बुध कुमार, बृहस्पति तीस वर्ष वाला, शुक्र सोलह वर्ष वाला, सूर्य पचास वर्ष वाला, चन्द्रमा सत्तर वर्ष वाला तथा शनैश्चर, राहु और केतु सौ वर्ष वाले होते हैं।

ग्रहों के धातु आदि संज्ञा

बृहस्पति, शुक्र, मङ्गल और बुध शाखाधिप कहे जाते हैं। आकाशचारी मङ्गल व सूर्य धातु रूप कहे जाते हैं। चन्द्रमा और शनैश्चर मूलप्रधान; शुक्र व बृहस्पति जीवरूप और बुध विमिश्ररूप माने जाते हैं।

ग्रहों के ताम्रादि वर्ण

सूर्य ताम्रवर्ण, चन्द्रमा श्वेतवर्ण, मङ्गल रक्तवर्ण, बुध हरित, बृहस्पति पीतवर्ण, शुक्र कर्बुरवर्ण और शनैश्चर कृष्ण वर्ण कहे जाते हैं।

ग्रहों के द्रव्य व अधिदेवता

ताम्र, मणि, काञ्चन, सीपी, रूपा, मोती और लोहा सूर्यादि ग्रहों के द्रव्य कहे जाते हैं। अर्थात् सूर्य का ताम्र, चन्द्रमा का मणि, मङ्गल का सुवर्ण, बुध का सीपी, बृहस्पति का रूपा, शुक्र का मोती और शनैश्चर का लोहा द्रव्य है।

एवं अग्नि, जल, स्वामिकार्त्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, शची और ब्रह्मा सूर्यादि ग्रहों के अधिदेवता हैं।

ग्रहों के माणिक्यादि रत्न

सूर्य का माणिक्य, चन्द्रमा का अमल मोती, मङ्गल का मूँगा या मरकत, बुध का गारुत्मक, बृहस्पति का पुखराज, शुक्र का हीरा, शनैश्चर का नीलम, राहु का गोमेद और केतु का वैडूर्य्य कहा जाता है।

ग्रहों के वस्त्र

सूर्य का मोटा कपड़ा, चन्द्रमा का नया, मङ्गल का सुन्दर, बुध का रेशमी, बृहस्पति का फटा, शुक्र का मजबूत और शनैश्चर का पुराना कपड़ा कहा गया है।

पूर्वादि दिशा स्वामी ज्ञान

पूर्व का सूर्य, आग्नेय का शुक्र, दक्षिण का मङ्गल, नैर्ऋत्य का राहु, पश्चिम का शनि, वायव्य का चन्द्रमा, उत्तर का बुध और ईशान का बृहस्पति स्वामी है।

शुक्र, मङ्गल, चन्द्र, बुध, बृहस्पति और शनैश्चर ये दृगाणों से वसन्तादि ऋतुओं के अधिपति हैं, अर्थात् वसन्त का शुक्र, ग्रीष्म का सूर्य और मङ्गल, वर्षा का चन्द्रमा, शरत् का बुध, हेमन्त का बृहस्पति और शिशिर का अधिपति शनैश्चर कहा गया है।

ग्रहों के विप्र आदि संज्ञा

बृहस्पति और शुक्र ब्राह्मण कहे जाते हैं। सूर्य तथा मङ्गल क्षत्रिय हैं। चन्द्रमा वैश्य है। बुध शूद्रों का स्वामी है। शनैश्चर अन्त्यजों का अधिपति है। सूर्य, गुरु तथा चन्द्रमा सत्त्वगुण वाले कहे जाते हैं। शुक्र और बुध रजोगुणी तथा शनैश्चर और मङ्गल तमोगुणी हैं।

ग्रहों के पुरुषादि संज्ञा व तत्त्व

सूर्य, मङ्गल और बृहस्पति पुरुषसंज्ञक हैं। शुक्र और चन्द्रमा नारीसंज्ञक हैं। बुध तथा शनैश्चर प्रकृति पुरुष होते हुए भी नपुंसक कहे जाते हैं।

आकाश, पृथ्वी, तेज, पवन और जल के अधिपति क्रमशः बृहस्पति, बुध, मङ्गल, शनैश्चर व शुक्र हैं, अर्थात् आकाश के बृहस्पति पृथ्वी के बुध,तेज के मङ्गल, पवन के शनि और जल के अधिपति शुक्र हैं और ये आकाशादि पञ्चतत्त्व माने हैं।

ग्रहों के मज्जा आदि ज्ञान

मज्जा, स्नायु, वसा, अस्थि, शुक्र, रुधिर और त्वचा के स्वामी क्रम से मङ्गल, शनि, गुरु, सूर्य, शुक्र, चन्द्र और बुध कहे जाते हैं।

ग्रहों के लवणादि रस व अयनादि परिज्ञान

लवण, कटु, कषाय, स्वादु, तिक्त, अम्ल और मिश्र इन रसों के चन्द्रमा, सूर्य, शनि, गुरु, मङ्गल, शुक्र और बुध अधिपति हैं।

अयन, दिन, पक्ष, ऋतु, अब्द (वर्ष), मास और क्षण इनके सूर्य, मङ्गल, शुक्र, बुध शनि, गुरु और चन्द्र स्वामी हैं।

उच्चादि परिज्ञान

मेष, वृष, मकर, कन्या, कर्क, मीन, तुला और कुम्भ ये सूर्यादि ग्रहों के उच्च स्थान हैं और ठीक इन स्थानों से सातवाँ स्थान उनके नीचस्थान होते हैं; अर्थात् तुला, वृश्चिक, कर्क, मीन, मकर, कन्या और मेष ये सूर्यादि ग्रहों के नीच स्थान हैं।

१०-३-२८-१५-५-२७-२० उन राशियों के इन अंशों में ग्रह परमोच्च व परमनीच में होते हैं। जैसे—मेष राशि में सूर्य उच्च का और मेष से ठीक सातवाँ तुला राशि में नीच का होता है तथा इन दोनों राशियों के १० अंश का सूर्य क्रम से परमोच्च परमनीच में होता है।

ग्रहों के मूलत्रिकोण राशियाँ

सिंह, वृष, मेष, कन्या, धनु, तुला और कुम्भ ये सूर्यादि ग्रहों के मूलत्रिकोण होते हैं।

शुक्र, शनि, सूर्य और गुरु राशि के बीस अंश आदि में मूल त्रिकोण उसके बाद अपने घर को जाते हैं।

वृष के आदि से तीन अंश चन्द्र का उच्च होता है और उसके बाद शेषांश उसका मूल त्रिकोण होता है। मेष के आदि से बारह अंश मङ्गल का मूलत्रिकोण होता है, शेषांश स्वराशि होता है।

कन्या का आधा बुध का उच्च होता है। दश अंश मूल त्रिकोण होता है। पाँच अंश अपने राशिफल को देता है।

कुम्भ राहु का मूलत्रिकोण, मिथुन उच्च तथा कन्या अपना घर कहा जाता है।

ग्रहों का फल परिमाण

अपने उच्च में बैठा हुआ ग्रह पूर्णफल देता है। अपनी राशि में स्थित आधा फल देता है। अपने मित्र के घर में चौथाई फल देता है। शत्रु के घर में थोड़ा फल देता है। नीच व अस्तङ्गत हुआ ग्रह कुछ फल नहीं देता है। अपने मूलत्रिकाण में बैठा हुआ ग्रह चौथाई फल निश्चय देता है।

ग्रहों का विफल स्थान

सूर्य समेत चन्द्र, बुध लग्न से चौथे में, गुरु पाँचवें घर में, मङ्गल दूसरे में, शुक्र छठे में और शनि सातवें हो, तो विफल होते हैं।

ग्रहों का बालादि अवस्था

विषम राशि में ग्रहों की क्रम से बालादि अवस्थाएँ होती हैं। सम राशियों में वे अवस्थाएँ उलटे क्रम से हो जाती हैं। बाल, कुमार, युवा, वृद्ध और मृत ये अवस्थाएँ छः अंशों से विषम-सम राशियों में क्रम से होती हैं। इसलिये सूर्यादि ग्रह उक्त अवस्थाओं के पाककाल में बालादि अवस्थाओं के अनुरूप (समान) फल देते हैं।

सूर्य स्वरूप

सूर्य प्रतापशाली, चौकोर देह वाला, काला तथा लाल अङ्ग वाला, शहद के रंग के पिङ्गल नयनों वाला, पित्त स्वभावयुक्त, थोड़े बालों वाला और सतोगुण प्रधान होता है।

चन्द्र स्वरूप

चन्द्र सञ्चारशाली, कोमल वाग्विलासी, विवेकी, शोभन दृष्टि वाला, बड़े सुन्दर तथा पुष्ट अङ्ग वाला, सदा बुद्धिमान्, छोटे गोल आकार वाला, कफ व वात प्रकृति वाला होता है।

भौम स्वरूप

मङ्गल क्रूरदृष्टि वाला, तरुणमूर्तिधारी, उदारशील, पित्तप्रकृति वाला, महाचपल, क्षीण कटि वाला, लाल एवं गोरे अङ्गों वाला, कामी तथा प्रतापी और तमोगुण में रत होता है।

बुध स्वरूप

बुध दूर्वादल के समान शरीर वाला, साफ वाणी बोलने वाला, दुबले शरीर वाला, रजोगुण वालों का स्वामी, हँसने में चपल, हानि करने वाला, महाधनी, कफी, वादी, वैभव व प्रतापशाली और विद्वान् होता है।

गुरु स्वरूप

गुरु महोदर शरीर वाला, पीला, कफी, सर्वगुण युक्त, सकलशास्त्राधिकारी, पीली आँखों तथा बालों वाला, अत्यन्त बुद्धिमान, सतोगुणी, अल्पराजचिह्न वाला और शोभायुक्त है।

भृगु स्वरूप

शुक्र श्याम तथा घुँघराले केश वाला, श्यामतनुधारी, सौन्दर्यशाली एवं सुन्दर अङ्गों वाला, शोभन आँखों वाला, कामी, अतिवादी, कफी, रजोगुण की शोभा का निधान, सुख-बल और गुण की खान है।

शनि स्वरूप

शनि कर्कश रोमों तथा अङ्गों वाला, दुबला, काला, कफी, बादी, बड़े दाँतों वाला, सुन्दर पीले नयनों वाला, तमोगुणी और आलसी है।

ग्रह वध क्रम

सूर्य से शनि, शनि से मङ्गल, मङ्गल से गुरु, गुरु से चन्द्रमा, बुध से शुक्र, शुक्र से बुध और बुध से चन्द्र सदैव वध किया जाता है।

ग्रहों के मित्रादि ज्ञान

मङ्गल, चन्द्रमा और गुरु सूर्य के मित्र हैं। शुक्र तथा शनि शत्रु हैं। बुध सम है। सूर्य एवं बुध चन्द्र के मित्र हैं; गुरु, मङ्गल, शुक्र और शनि शत्रु हैं। सूर्य, चन्द्र एवं गुरु मङ्गल के मित्र हैं। बुध शत्रु है।

शुक्र और शनि सम हैं। सूर्य तथा शुक्र बुध के मित्र हैं। शनि, गुरु एवं मङ्गल सम हैं। चन्द्र वैरी है। सूर्य, मङ्गल और चन्द्र गुरु के मित्र हैं।

शुक्र और बुध शत्रु हैं और शनि सम (उदासीन) है। शनि तथा बुध शुक्र के मित्र हैं। चन्द्र तथा सूर्य शत्रु हैं।

गुरु और मङ्गल सम हैं। सूर्य, चन्द्र और मङ्गल शनि के शत्रु हैं। गुरु सम (उदासीन) हैं। शुक्र और बुध मित्र हैं।

तात्कालिक और नैसर्गिक मित्रता से अतिमित्र एवं अतिशत्रु पाँच प्रकार कहना चाहिये।

ग्रहों के स्थिरादि संज्ञा

सूर्य स्थिर, चन्द्र चर, मङ्गल उग्र, बुध मिश्र, गुरु मृदु, शुक्र लघु और शनि तीक्ष्णसंज्ञक हैं।

ग्रहों की दृष्टि

तीसरी एवं दसवीं राशि में समस्त ग्रहों की पाददृष्टि होती है। पाँचवें एवं नवें अर्धदृष्टि होती है। चौथे एवं आठवें पादोनदृष्टि कही जाती है और सातवें घर में सम्पूर्ण दृष्टि होती है।

पापदृष्टि बल के योग में शनि अतिबलशाली होता है। आधीदृष्टि में गुरु शुभदायक है। तीन चरण की दृष्टि से मङ्गल समर्थ होता है। सम्पूर्ण ग्रह सातवें घर में दृष्टिबल से सम्पन्न रहते हैं।

सूर्य एवं मङ्गल दोनों ऊर्ध्व दृष्टिवाले हैं। शुक्र एवं बुध कटाक्ष (नेत्रों की कोर से) दृष्टि रखते हैं। चन्द्र एवं गुरु दोनों सम दृष्टि वाले हैं। राहु एवं शनि की दृष्टि नीचे रहती है।

ग्रहों का कारक

आत्मा एवं पिता का प्रभाव, नैरोग्य, शक्ति और सम्पत्ति या शोभा को सूर्य से विचार करना चाहिए।

मन, बुद्धि, राजा की प्रसन्नता, माता और सम्पदा को चन्द्र से देखना चाहिए।

बल, रोग, गुण, भाई, भूमि, पुत्र और कुटुम्ब को मङ्गल से विचारना चाहिए। विद्या, बन्धु, विवेक, मामा, मित्र और वाक्कर्म को बुध से विचारना योग्य है।

प्रज्ञा, धन, तनुपुष्टि, पुत्र और ज्ञान को गुरु से विचार किया जाता है। पत्नी, वाहन, आभूषण, कामकेलि, रोजगार और सौख्य को शुक्र से देखना योग्य है।

आयु, जीवन, मरणकारण, सम्पत्ति और विपत्ति का दाता शनि है। बाबा का राहु से और नाना का केतु से विचार करना चाहिये।

ग्रहों का स्थिरकारक

सूर्य तनु कारक, गुरु धनकारक, मङ्गल सहजकारक, सोम एवं बुध सुखकारक, गुरु पुत्रकारक, शनि व मङ्गल शत्रुकारक, शुक्र नारीकारक, शनि मृत्युकारक, सूर्य एवं गुरु धर्मकारक, गुरु, सूर्य, बुध एवं शनि राजकारक, गुरु लाभकारक और शनि व्ययकारक है। ये लग्न से स्थिरकारक होते हैं।

ग्रह अरिष्ट ज्ञान

शुक्र, बुध और बृहस्पति क्रम से सातवें, चौथे और पाँचवें स्थान में होकर प्रत्येक जातक में अरिष्टकारक होते हैं।

सूर्य २२ वर्ष में फल देता है। चन्द्रमा २४ में, मङ्गल २८ में, बुध ३२ में, गुरु १६ में, शुक्र २५ में, शनि ३६ में, राहु ४२ में और केतु ४८ वर्ष में फल देता है।

जो ग्रह अपने घर एवं अपने उच्च में बैठा हो और जो ग्रह षड्वर्ग से शुद्ध हो, उसी के वर्ष में मनुष्यों को निश्चय ही सुख और भाग्योदय मिलता है।

ग्रहों से अरिष्ट नाश

बुध राहुदोष को विनाशता है। शनि दोनों के दोषों को हरता है। मङ्गल चारों के दोषों को दूर करता है। गुरु पाँचों के दोषों को विनाशता है। चन्द्र पूर्वोक्त छः ग्रहों के दोषों को हरता है। सूर्य सातों ग्रहों के दोषों को विनाशता है; परन्तु सूर्य उत्तरायण में विशेषतः सातों ग्रहों के दोषों को हरण करता है।

सूर्य कृत दोष

अग्निरोग, ज्वरवृद्धि, ज्वरदीपन, क्षय एवं अतीसार आदि रोगों से तथा राजा, देवता, ब्राह्मण, किंकरों द्वारा सूर्य सदा चित्त में दोष को करता है।

चन्द्र कृत दोष

पाण्डुदोष, जलदोष, कामला, पीनस आदि रोग एवं नारियों द्वारा उत्पन्न रोग कालिका, देवता और सुवासिनीगणों से चन्द्र मनुष्य को व्याकुल करता है।

मङ्गल कृत दोष

स्थूलता, बीजदोष, कफ, हथियार, अग्नि एवं गिलटियों से उपजे रोग, घाव

एवं दरिद्र से पैदा हुए रोग, वीरगण, शैवगण एवं भैरवादिगणों द्वारा मङ्गल भय उत्पन्न करता है।

बुध कृत दोष

गुदा, उदर, दृष्टि, वात, कुष्ठ, मन्दाग्नि, शूल, संग्रहणी, आदि रोग तथा बुधादि विष्णु के प्रियदास प्राणियों से बुध अत्यन्त दुःख को करता है।

गुरु भृगु कृत दोष

आचार्य, देवता, गुरु और ब्राह्मणों द्वारा दिये गये शाप-दोषों से गुरु शोक और गुल्म रोग उत्पन्न करता है तथा नारियों के विकारों से उत्पन्न प्रमेहरोग एवं असुरादिकों व अपनी चाही अङ्गनाओं के दोषों से शुक्र भय उत्पन्न करता है।

शनि केतु कृत दोष

दारिद्र्यदोष, अपने कर्म, पिशाच, चोर और सन्धि रोगों से शनि क्लेश उत्पन्न करता है। खाज, मसूरिका, शत्रू, कृत्रिम कर्मरोग और आचारहीन छोटी जाति वालों द्वारा केतु कष्ट उत्पन्न करता है।

राहु कृत दोष

अपस्मार (मिरगी), मसूरिका, रज्जु, क्षुत् (छींक या क्षुधा), दृष्टि रोग, कीड़े, प्रेत, पिशाच, भूत, उद्‌बन्धन, अरुचि और कुष्ठ रोगों से राहु मनुष्यों को बड़ा भय करता है।

ग्रह भाव योग

जिससे समस्त जन्तुओं के शरीर, धन, भाई, माता, सन्तान, शत्रु, स्त्री इत्यादि पदार्थ के शुभाशुभ फल का ज्ञान करना सम्भव होता है। इसलिये अब आगे भाव और ग्रह से उत्पन्न फलों को विशेषरूप से वर्णन करते हैं।

लग्नस्थ सूर्य फल

जन्मकुण्डली में लग्न में सूर्य हो तो जातक थोड़े केशवाला, कार्य करने में आलसी, क्रोधी, उच्चाकृति, मानी, रुक्षदृष्टि, कठोर देह, शूर, क्षमाहीन, दया से रहित होता है। यदि लग्न में कर्क राशि हो तो फूली नेत्र वाला, मेष हो तो मन्द दृष्टि, सिंह लग्न हो तो रतौंधी वाला और यदि तुला लग्न हो तो दरिद्र और पुत्रहीन होता है।

द्वितीय भाव में स्थित सूर्य फल

यदि जन्मकुण्डली में द्वितीय भाव में सूर्य हो तो नौकर और पशुओं से युक्त, मुख का रोगी, ऐश्वर्य सुख से हीन, राजा या चोर से अपहृत धन वाला होता है।

तृतीय भाव में स्थित सूर्य फल

जन्म कुण्डली में तृतीय भाव में रवि हो तो पराक्रमी, बली, भाईयों रहित, लोक में मान्य, मनोहर और पण्डित तथा शत्रु को जीतने वाला होता है।

चतुर्थ भावस्थ सूर्य फल

यदि कुण्डली में चतुर्थभाव में सूर्य हो तो धन वाहन हीन, दुःखित हृदय, पैतृक घर, धन का नाश करने वाला और दुष्ट राजा का सेवा करने वाला होता है।

पंचम भाव में स्थित सूर्य फल

जन्मकुण्डली में जन्मलग्न से पञ्चम भाव में सूर्य हो तो सुख, पुत्र और मित्र से हीन, खेती करने वाला, पर्वतादि दुर्ग स्थान में रहने वाला, बुद्धिमान्, धनहीन और अल्पायु होता है।

षष्ठ भावस्थ सूर्य

जन्मकुण्डली में षष्ठभाव में रवि हो तो अधिक कामी, प्रबल जठराग्नि वाला, बली, धनवान, राजा या न्यायधीश होता है।

सप्तम भाव में स्थित सूर्य फल

जन्मपत्री में सप्तम भाव में रवि हो तो कान्तिहीन, लोक में अनादृत, रोगी, बन्धनभागी, कुमार्गगामी और स्त्री से शत्रुता करने वाला होता है।

अष्टम भाव में स्थित सूर्य फल

जन्मपत्री में अष्टमभावगत सूर्य हो तो आँख का रोगी, धन और सुख से हीन, अल्पायु, अपने हित जनों के वियोग से दुखी रहता है।

नवम भाव में स्थित सूर्य फल

जन्मपत्री में नवमाव में रवि हो तो धनवान, पुत्रवान्, देव और ब्राह्मण का भक्त, पिता और स्त्री से शत्रुता करने वाला तथा दुःखी है।

दशम भाव में स्थित सूर्य फल

यदि पत्रिका में दशम भाव में रवि हो तो बुद्धि, बल, वाहन और पुत्र से युक्त, कार्य को सम्पन्न करने वाला, अजेय और उत्तम पुरुष होता है।

एकादश भावस्थ सूर्य फल

जन्म पत्रिका में एकादश भाव में रवि हो तो धन संग्रह करनेवाला, बली, लोगों का द्वेषी नौकरहीन, स्वयं प्रेष्य, वचन पालनेवाला, हितजनों से हीन, कार्यसाधक होता है।

द्वादश भाव में स्थित सूर्य फल

जन्मपत्री में द्वादश भावस्थ सूर्य हो तो क्षीणदेह, काना, पतित, वन्ध्या स्त्री का पति, पिता का द्वेषी, बलहीन और नीच होता है।

लग्नस्थ चन्द्र फल

जन्मपत्री में यदि लग्न कर्क, वृष या मेष हो, उसमें चन्द्रमा हो अथवा पूर्ण चन्द्रमा किसी लग्न में हो तो जातक उदारता, रूप, गुण, धन, और भोग से प्रधान होता है।

शेष लग्न में चन्द्रमा हो तो नीच, बहिरा, गूँगा और विकल होता है। यदि क्षीण चन्द्रमा हो तो विशेष रूप से अशुभ फल प्रदान करने वाला होता है।

द्वितीय भाव में स्थित चन्द्र फल

जन्म पत्री में द्वितीय भाव में चन्द्रमा हो तो अनुपम सुख, मित्र और धन से युक्त होता है।

यदि पूर्ण चन्द्रमा हो तो थोड़े बोलने वाला और बहुत बड़े धन का स्वामी होता है।

तृतीय भाव में स्थित चन्द्र फल

कुण्डली में तृतीय भाव में चन्द्रमा हो तो जातक भाइयों का पालन करने वाला, हर्ष से युक्त, शूर, विद्या, वस्त्र, अन्न का संग्रह करने में तत्पर होता है।

चतुर्थ भावस्थ चन्द्र फल

जन्मपत्री में चतुर्थभावगत चन्द्रमा हो तो बन्धु, अन्न, वस्त्र, घर, वाहन से युक्त, नदी या समुद्र में व्यापार करने वाला, अति सुखी होता है।

पंचम भाव में स्थित चन्द्र फल

जन्मपत्री में पञ्चमभाव में चन्द्र हो तो भीरु, विद्या, अन्न, वस्त्र का संग्रह करने वाला, बहुत पुत्र और सुशील मित्र से युक्त, तेजस्वी और बुद्धिमान् होता है।

षष्ठ भावस्थ चन्द्र

जन्मपत्री में छठे भावगत चन्द्र हो तो जातक पेट के रोग से पीड़ित और क्षीण चन्द्रमा हो तो अल्पायु होता है।

सप्तम भाव में स्थित चन्द्र फल

जन्मपत्री में सप्तम स्थान में पूर्ण चन्द्रमा हो तो सौम्य, घर्षणयोग्य (दमनीय), सुखी, सुरूप और कामी होता है। क्षीण चन्द्र हो तो दीन और रोगों से पीड़ित शरीर वाला होता है।

अष्टम भाव में स्थित चन्द्र फल

जन्मकाल में अष्टम स्थान में चन्द्रमा हो तो बुद्धिमान, तेजस्वी रोग से कृश शरीर होता है। यदि क्षीण चन्द्रमा हो तो अल्पायु होता है।

नवम भाव में स्थित चन्द्र फल

जन्मकाल में नवम भाव में चन्द्र हो तो देवता और पितर का भक्त, सुख, बुद्धि और पुत्र से युक्त, स्त्रियों का मन हरने वाला प्रिय कार्यों में उद्योगी होता है।

दशम भाव में स्थित चन्द्र फल

जन्मकाल में दशम भाव में चन्द्रमा हो तो विषाद से युक्त, कार्यों में तत्पर होकर सम्पन्न करने वाला, धनी, पवित्र, बली, शूर और दानी होता है।

एकादश भावस्थ चन्द्र फल

जन्मकाल में एकादश भावगत चन्द्रमा हो तो धनी, अधिक पुत्रवाला, दीर्घायु, उत्तम मित्र और नौकर वाला, मनस्वी, तेजस्वी, शूर, कान्तिमान् होता है।

द्वादश भाव में स्थित चन्द्र फल

जन्मकाल में द्वादश भाव में चन्द्रमा हो तो द्वेषी, नीच, क्षुद्र, आँख का रोगी, आलसी, अशान्त, दूसरे से उत्पन्न और लोक में सदादु:खी होता है।

लग्नस्थ मंगल फल

जन्म पत्रिका में मङ्गल लग्न में हो तो जातक क्रूर, साहसी, मूढ़, अल्पायु, अभिमानी, शूर, क्षतदेह, सुन्दररूप वाला और चञ्चल होता है।

द्वितीय भाव में स्थित मंगल फल

जन्मपत्री में द्वितीय भाव में मङ्गल हो तो निर्धन, कदन्नभोजी, विकृतमुखवाला, नीच लोगों का सङ्ग करने वाला और विद्या से हीन होता है।

तृतीय भाव में स्थित मंगल फल

जन्मपत्री में तृतीय भावगत मङ्गल हो तो शूर, अजेय, भ्रातृहीन, हृष्ट, सभी गुणों का निधान और सुप्रसिद्ध होता है।

चतुर्थ भावस्थ मंगल फल

जन्मकाल में चतुर्भाव में भौम हो तो गृह, अन्न, वस्त्र और बन्धु से हीन, वाहनरहित, दु:खी, दूसरे के घर में रहने वाला होता है।

पंचम भाव में स्थित मंगल फल

जन्मकुण्डली में पञ्चम भावगत भौम हो तो सुख धन और पुत्र से हीन, चञ्चलबुद्धि, चुगुलखोर, दुष्ट, अशान्त और नीच होता है।

षष्ठ भावस्थ मंगल फल

जन्मकुण्डली में षष्ठभाव में मङ्गल हो तो अतिकामी, दीप्तजठराग्नि, सुन्दर और दीर्घदेह वाला बलवान्, बन्धुओं में श्रेष्ठ अर्थात् मुखिया होता है।

सप्तम भाव में स्थित मंगल फल

जन्मकुण्डली में सप्तम भावगत भौम हो तो स्त्री का नाशक रोगी, कुमार्गगामी, दु:खी, पापी, सन्तार युत, निर्धन, निरस (पतला) शरीर वाला होता है।

अष्टम भाव में स्थित मंगल फल

जन्मकुण्डली में अष्टमभाव में मङ्गल हो तो रोगी, अल्पायु, कुरूप, निन्द्यकर्म करने वाला और शोक से दुखी रहता है।

नवम भाव में स्थित मंगल फल

जन्मकुण्डली में नवमभाव में मङ्गल हो तो कार्यों में अक्षम, द्वेष्य, हिंसक, धर्महीन, पापी, राजा से सम्मान पाने वाला होता है।

दशम भाव में स्थित मंगल फल

जन्मकाल में दशम भाव में मङ्गल हो तो कार्य में दक्ष, शूर, अजेय, श्रेष्ठ पुरुष का सेवक, पुत्र सुख से युक्त और अधिक प्रतापी होता है।

एकादश भावस्थ मंगल फल

जन्मकुण्डली में एकादश भाव में मङ्गल हो तो गुणी, सुखी, शूर, धनवान, पुत्रवान् और शोकरहित होता है।

द्वादश भाव में स्थित मंगल फल

जन्मकुण्डली में द्वादश भावगत भौम हो तो आँख से रोगी, पतित, स्त्रीनाशक चुगलखोर, क्रूर, लोक में अनादृत और जेल भोगने वाला होता है।

लग्नस्थ बुध फल

जन्मकुण्डली में लग्न में बुध हो तो जातक सुन्दर देह युक्त, सुबुद्धि, देश, कला, ज्ञान, काव्य और गणित को जानने वाला, चतुर, मधुर वचन बोलने वाला और दीर्घायु होता है।

द्वितीय भाव में स्थित बुध फल

जन्मकुण्डली में द्वितीय भावगत बुध हो तो बुद्धि से धनोपार्जन करनेवाला, अन्न पान का भोक्ता, प्रियभाषी, सुनीति प्रिय होता है।

तृतीय भाव में स्थित बुध फल

जन्मकुण्डली में तृतीय भावगत बुध हो तो परिश्रमी, इष्ट मित्रों से हीन, कार्य में निपुण, सहोदर युक्त, मायावी और चञ्चल होता है।

चतुर्थ भावस्थ बुध फल

जन्मकुण्डली में चतुर्थभाव गत बुध हो तो धन जन और वाहन, सुवस्त्र से युक्त, श्रेष्ठ बन्धु वाला और विद्वान् होता है।

पंचम भाव में स्थित बुध फल

जन्मकुण्डली में पञ्चम भाव में बुध हो तो मन्त्रशास्त्री, मारण मोहन आदि क्रिया में कुशल, अधिक पुत्र, विद्या, सुख, प्रभुत्व और प्रसन्नता से युक्त होता है।

षष्ठ भावस्थ बुध फल

जन्मकुण्डली में षष्ठभाव में बुध हो तो वाद विवाद और युद्ध में विजयी, रोग से युक्त आलसी, कोपहीन, निष्ठुरभाषी और पीड़ित होता है।

सप्तम भाव में स्थित बुध फल

जन्मकुण्डली में सप्तम स्थान में बुध हो तो जातक की स्त्री बुद्धिमती, सुन्दरी, अकुलीना, कलहकारिणी धनवती होती है। स्वयं भी महान् पुरुष होता है।

अष्टम भाव में स्थित बुध फल

यदि जन्मकुण्डली में अष्टम स्थान में बुध हो तो विख्यात यश और बलवाला, दीर्घायु, कुलपोषक, राजा के तुल्य अथवा न्यायाधीश होता है।

नवम भाव में स्थित बुध फल

यदि जन्मकुण्डली में नवम भाव में बुध हो तो अतिधनी, विद्या से सम्पन्न, सदाचारी, वक्ता, कार्य में कुशल और धर्मात्मा होता है।

दशम भाव में स्थित बुध फल

यदि जन्मकुण्डली में दशमभाव में बुध हो तो श्रेष्ठबुद्धि, सत्कर्मी, कार्य को सफल करनेवाला धैर्यशाली, बली, विविध आभूषणों के सुख का भोगी होता है।

एकादश भावस्थ बुध फल

यदि जन्मकुण्डली में एकादश स्थान में बुध हो तो धनी, आज्ञाकारी नौकर वाला, पण्डित, सुखी भोगी, दीर्घायु और प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला होता है।

द्वादश भाव में स्थित बुध फल

यदि जन्मकुण्डली में द्वादशभाव में बुध हो तो वचन पालन करने वाला, आलसी, अपमानित, वक्ता, पण्डित, दीन और कठोर पुरुष होता है।

लग्नस्थ बृहस्पति फल

यदि जन्मकुण्डली में लग्न में गुरु हो तो जातक सुन्दर देह वाला, दीर्घायु विचारकर कार्य करने वाला, पण्डित, धैर्यवान् और श्रेष्ठ होता है।

द्वितीय भाव में स्थित बृहस्पति फल

जन्मकुण्डली में द्वितीय भाव में गुरु हो तो धनी, भोजनार्थी, वक्ता, सुन्दर, सुरूप, सुवचन, सुन्दर वस्त्र वाला और त्यागी होता है।

तृतीय भाव में स्थित बृहस्पति फल

जन्मकुण्डली में तृतीय भाव में बृहस्पति हो तो लोक में अत्यधिक दुःखी, कृपण, सहोदरों में लघु, मन्दाग्नि, स्त्री से पराजित और पाप कर्म करने वाला होता है।

चतुर्थ भावस्थ बृहस्पति फल

जन्मकुण्डली में चतुर्थ भाव में गुरु हो तो परिजन, भवन, वस्त्रवाहन, सुख, सुमति, भोग, धन से युक्त, श्रेष्ठ, शत्रु को जीतने वाला होता है।

पंचम भाव में स्थित बृहस्पति फल

जन्मकुण्डली में पञ्चमभाव में गुरु हो तो पुत्र और मित्रों से सम्पन्न, पण्डित, धीर, स्थिर धन से युक्त और सदा सुखी होता है।

षष्ठ भावस्थ बृहस्पति फल

जन्मकुण्डली में षष्ठ भावगत गुरु हो तो दुषित जठराग्नि और पुंस्त्ववाला, अपमानित, दुर्बल, आलसी, स्त्री द्वारा पराजित, शत्रुजेता और विख्यात होता है।

सप्तम भाव में स्थित बृहस्पति फल

जन्मपत्रिका में सप्तमभाव में गुरु हो तो सुन्दर भाग्यवान्, सुन्दर स्त्री का पति, पिता से गुण में श्रेष्ठ, वक्ता, कवि, गाँव में मुख्य और सुविख्यात पण्डित होता है।

अष्टम भाव में स्थित बृहस्पति फल

जन्मकुण्डली में अष्टम भाव में गुरु हो तो अपमानित, दीर्घायु, नौकरी करनेवाला, दीन और मलिना स्त्री का पति होता है।

नवम भाव में स्थित बृहस्पति फल

जन्मकुण्डली में नवम स्थान में गुरु हो तो देव पितर का भक्त, विद्वान, सुन्दर, राजमन्त्री वा सेनापति और प्रधान होता है।

दशम भाव में स्थित बृहस्पति फल

जन्म पत्रिका में दशम भाव में यदि गुरु हो तो जातक कार्य को सम्पन्न करने वाला, माननीय, सब उपाय और कुशलता से युक्त, सुख, धन, जन, वाहन और सुन्दर यश से युक्त होता है।

एकादश भावस्थ बृहस्पति फल

जन्म पत्रिका में एकादश भाव में गुरु हो तो अत्यधिक लाभ, अधिक वाहन, नौकर से युक्त, साधु, थोड़ी विद्या और अल्प पुत्र वाला होता है।

द्वादश भाव में स्थित बृहस्पति फल

जन्म पत्रिका में द्वादश भाव में गुरु हो तो आलसी, लोगों का द्वेषी, वाग्विहीन, अथवा भाग्यहीन तथा सेवा कार्य में निरत होता है।

लग्नस्थ शुक्र फल

जन्मकुण्डली में लग्न में शुक्र हो तो सर्वाङ्गसुन्दर, सुखी, दीर्घायु, डरपोक स्त्रियों का प्रिय होता है।

द्वितीय भाव में स्थित शुक्र फल

जन्मकुण्डली में द्वितीय भाव में शुक्र हो तो बहुत अन्न, पान, ऐश्वर्य, द्रव्य और उत्तम विलास तथा सुन्दर वचन बोलने वाला और अति धनी होता है।

तृतीय भाव में स्थित शुक्र फल

जन्मपत्री में तृतीय स्थान में शुक्र हो तो सुख धन से युक्त, स्त्री से पराजित, कृपण, अल्प उत्साह वाला, सौभाग्यवान् और वस्त्रों से युत होता है।

चतुर्थ भावस्थ शुक्र फल

जन्मकुण्डली में चतुर्थ भाव में शुक्र हो तो बन्धु मित्र सुख वाहन अन्न वस्त्र गृह से युक्त सुन्दर उदार पुरुष होता है।

पंचम भाव में स्थित शुक्र फल

जन्म पत्रिका में पञ्चम भाव में शुक्र हो तो सुखी, पुत्रवान, मित्रयुत, विलासी, अतिधनी, सब वस्तु से परिपूर्ण, राजमन्त्री या न्यायाधीश होता है।

षष्ठ भावस्थ शुक्र फल

जन्मकुण्डली में षष्ठ भाव में शुक्र हो तो जातक स्त्री का द्वेषी, अधिक शत्रुवाला, ऐश्वर्य से हीन, अत्यन्त विह्वल और अधिक दुष्ट होता है।

सप्तम भाव में स्थित शुक्र फल

सप्तम भाव में शुक्र हो तो अत्यन्त रूपवती स्त्री के सुख और विभव से युक्त, अजातशत्रु और सौभाग्य सम्पन्न होता है।

अष्टम भाव में स्थित शुक्र फल

जन्मकुण्डली में अष्टम स्थान में शुक्र हो तो दीर्घायु, अतुलसुख से युत, धनाढ्य, राजा के तुल्य प्रतिक्षण संतोष प्राप्त करने वाला होता है।

नवम भाव में स्थित शुक्र फल

यदि कुण्डली में नवम भाव में शुक्र हो तो पुष्ट, विशाल शरीर, धनवान, उदार, स्त्री सुख, मित्रों से युक्त, देव, अतिथि और गुरु की सेवा में तल्लीन होता है।

दशम भाव में स्थित शुक्र फल

जन्मकुण्डली में दशम भाव में शुक्र हो तो उत्थान (पौरुष) और विवाद से सुख, रति, मान, धन और कीर्ति उपार्जित करने वाला तथा अत्यधिक बुद्धिमान और विख्यात पुरुष होता है।

एकादश भावस्थ शुक्र फल

जन्मकुण्डली में एकादश भाव में शुक्र हो तो जातक अनुकूल नौकर वाला, अधिक लाभ करने वाला तथा समस्त दु:खों से रहित व्यक्ति होता है।

द्वादश भाव में स्थित शुक्र फल

जन्म पत्रिका में द्वादश भाव में शुक्र हो तो आलसी, सुखी, स्थूलदेह, नीच, शोधित (साफ) अन्न खाने वाला, शय्या के उपचार में चतुर, स्त्री से पराजित होता है।

लग्नस्थ शनि फल

जन्मकुण्डली में लग्न में स्वोच्च या स्वराशिस्थ शनि हो तो जातक राजा के तुल्य, देश या गाँव का अधिपति होता है, यदि अवशिष्ट राशियों में लग्नस्थ शनि लग्न में हो तो बाल्यावस्था में रोगाक्रान्त, दरिद्र, कार्यों के वश में दुषित तथा आलसी होता है।

द्वितीय भाव में स्थित शनि फल

द्वितीय भाव में शनि हो तो विकृत मुख वाला, धन का भोगी, जनहित, न्यायी, पश्चात् परदेश में जाकर धन वाहन आदि का भोग करने वाला होता है।

तृतीय भाव में स्थित शनि फल

जन्मकुण्डली में तृतीय भाव में शनि हो तो संस्कार से युत शरीर वाला, नीच, आलसी परिवार वाला, शूर, दाता और विशाल बुद्धि वाला होता है।

चतुर्थ भावस्थ शनि फल

जन्मकुण्डली में चतुर्थ भाव में शनि हो तो दुःखी हृदय, बन्धु, वाहन, धन, बुद्धि और सुख से हीन, बाल्यावस्था में रोगी, बड़े बड़े नख और रोम धारण करने वाला होता है।

पंचम भाव में स्थित शनि फल

जन्मकुण्डली में पञ्चम भाव में शनि हो तो सुख पुत्र मित्र बुद्धि हृदय से हीन, पागल और गरीब होता है।

षष्ठ भावस्थ शनि फल

जन्मपत्री में षष्ठ भाव में शनि हो तो कामी, सुन्दर, शूर, अधिक खानेवाला, कुटिलस्वभाव, बहुत शत्रुओं को जीतने वाला होता है।

सप्तम भाव में स्थित शनि फल

जन्मकुण्डली में सप्तम भाव में शनि हो तो सदा रोगी, स्त्रीनाशक, धनहीन, खराब वेश–भूषा वाला, पापी और नीच काम को करने वाला होता है।

अष्टम भाव में स्थित शनि फल

जन्म पत्री में अष्टम भाव में शनि हो तो कुष्ठ या भगन्दर रोग से दुःखी, थोड़ी आयु वाला, किसी भी कार्य को नहीं करनेवाला होता है।

नवम भाव में स्थित शनि फल

जन्मकुण्डली में नवम भाव में शनि हो तो धर्महीन, थोड़े धन वाला, सोदर और पुत्र से हीन, सुख रहित और दूसरों को दुःख देनेवाला होता है।

दशम भाव में स्थित शनि फल

जन्मकुण्डली में दशम भाव में शनि हो तो धनी, पण्डित, शूर, राजमन्त्री, या न्यायाधीश, समुदाय तथा नगर और ग्राम का प्रधान होता है।

एकादश भावस्थ शनि फल

जन्मकुण्डली में एकादाशभाव में शनि हो तो जातक दीर्घायु, स्थिर धनवाला, शिल्पज्ञ, नीरोग, तथा धन मनुष्य सम्पत्ति से युत होता है।

द्वादश भाव में स्थित शनि फल

जन्मकुण्डली में द्वादाश भाव में शनि हो तो अशान्त चित्त, पतित, बकवादी, कुटिल दृष्टि, निर्दय, निर्लज्ज, बहुत खर्चीला और पीड़ित होता है।

भावों का शुभाशुभत्व विचार

लग्नादि भावों में शुभग्रह हो तो उस भाव की वृद्धि करते हैं तथा पाप ग्रह हो तो उस भाव के फल का नाश करते हैं।

६,८,१२ भावों में शुभ–अशुभ फल विपरीत होते हैं।

अर्थात् त्रिक में स्थित शुभग्रह अशुभ फल और पाप ग्रह शुभ फल करता है।

शुभग्रह से दृष्ट योग बलवान् होता है तथा उच्चस्थ ग्रहों से दृष्टयोग का फल विपरीत होता है।

केन्द्रस्थ दो ग्रह योग फल

अब केन्द्र अर्थात् १-४-७-१० भावों में स्थित दो-दो ग्रहों के योग से जो फल होते हैं, उन फलों को अब आगे सविस्तारपूर्वक प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं—

केन्द्र में स्थित सूर्य-चन्द्र योग फल

यदि जन्म समय लग्न में रवि चन्द्र हो तो जातक माता और पिता के दुख से पीड़ित, मान पुत्र और धन से हीन तथा दुःखी होता है।

यदि रवि चन्द्रमा दोनों चतुर्थ भाव में हो तो भाई पुत्र और सुख से रहित, दरिद्र, और महामूर्ख स्वभाव वाला होता है।

रवि और चन्द्रमा सप्तम भाव में हो तो मित्र पुत्र और स्त्री से पीड़ित और स्त्री द्वारा अपमानित दीन होता है।

रवि और चन्द्रमा दशम भाव में हो तो सुन्दर देह, सेनापति, राजोगुण, युक्त, निर्दय, कुटिल स्वभाव और शत्रुओं को जितने वाला होता है।

केन्द्रस्थ सूर्य भौम योग फल

रवि और मङ्गल लग्न में हो तो पित्तप्रकृति, रण में विजय प्राप्त करने वाला, क्रोधी, भग्न शरीर वाला, क्रूर, धूर्त और कठोर हृदय होता है।

रवि मङ्गल चतुर्थ भाव में हो तो बन्धुजन, धन और सुख से हीन, क्षुब्ध, सबसे द्वेष करने वाला होता है।

रवि सहित मङ्गल सप्तम स्थान में हो तो स्त्री के वियोग से दुखी, सर्वदा स्त्री के हेतु से अपमानित और परदेश में निवास करने वाला होता है।

सूर्य मङ्गल दशमभाव में हो तो कार्य में विफल, उद्विग्न, प्रसिद्ध राजा का सेवक और सदा अशान्त चित्त होता है।

केन्द्रस्थ सूर्य बुध योग फल

जन्मकाल में सूर्य और बुध दोनों लग्न में हो तो जातक विज्ञ, बहुत बोलने वाला, कठोर देही शूर प्रिय, बुद्धिमान् और दीर्घायु होता है।

सूर्य, बुध चतुर्थ स्थान में हो तो राजा के तुल्य, ख्यात, वचन पालने वाला, महाधनी, स्थूल देह, और टेढ़ी नाकवाला होता है।

सप्तम भाव में दोनों हो तो हिंसा और वचन कर्त्ता मृत्युकाल में सारगर्भिकत वाणी वाला तथा धन का लोभी नहीं होता है, और स्त्रीहीन और चोर होता है।

दोनों अर्थात् सूर्य, बुध यदि दशम (१०) भाव में हो तो समस्त संसार में विख्यात, घोड़े हाथी रखने वाला राजा होता है।

यदि ये दोनों अर्थात् सूर्य, बुध नीच स्थान में नहीं हो तभी यह फल समझना उचित होगा।

केन्द्रस्थ सूर्य गुरु योग फल

सूर्य और बृहस्पति दोनों लग्न में हो तो जातक गुणी, राजमन्त्री, सेनापति, सज्जन, विद्वान्, धनी, भोगी और विख्यात होता है।

सूर्य, गुरु चतुर्थ भाव में हो तो वेद, नीतिशास्त्र काव्य में निपुण, भव्य, परिजनों से युक्त, प्रियवक्ता, सदाचारी होता है।

दोनों सप्तम भाव में हो तो कामी, स्त्री का वश, पिता का द्वेषी, सुवर्णरत्नादियुक्त, सुन्दर शरीराला होता है। दशम भाव में हो तो यश, सुख, मान, ऐश्वर्य से युक्त, नीचकुलोत्पन्न भी राजा होता है।

सूर्य शुक्र योग फल

जन्मकाल में रवि शुक्र दोनों यदि लग्न में हो तो जातक कलहप्रिय, विनयहीन, दुराचारी, दुखी नीच, धन और स्त्री से रहित होता है।

यदि दोनों (रवि, शुक्र) चतुर्थ भाव में हो तो दूसरों की नौकरी करने वाला, शोक से युक्त, लोगों का द्वेषी और दरिद्र होता है।

यदि दोनों अर्थात् रवि, शुक्र सप्तम स्थान में हों तो स्त्री से पराजित, धनहीन, लम्बा देह, धन और पर्वत में रहने वाला होता है।

यदि दोनों रवि, शुक्र दशम स्थान में हो तो लोक व्यवहार का ज्ञाता, राजमन्त्री, शास्त्र और कला में निपुण, धन वाहन और सुख से युक्त होता है।

सूर्य शनि योग फल

जन्मकाल में लग्न में सूर्य और शनि दोनों हो तो जातक निन्द्यमाता का पुत्र, स्वयं दुराचारी, मन्दबुद्धि और पापी होता है।

यदि दोनों अर्थात् रवि, शनि चतुर्थ भाव में हो तो जातक नीच, दरिद्र और बन्धुओं से अपमानित होता है।

यदि सप्तम भाव में हो तो जातक आलसी, भाग्यहीन, स्त्री और धन से रहित, शिकार खेलने वाला एवं महामूर्ख होता है।

यदि दशम भाव में दोनों अर्थात् सूर्य, शनि हो तो विदेश में नौकरी करने वाला, कदाचित् किसी राजादि से धन प्राप्त भी हो तो चोरों द्वारा हरण कर लिया जाता है तथा अच्छे घोड़ों का धनी होता है।

चन्द्र भौम योग फल

यदि जन्मकाल में लग्नस्थ चन्द्र मंगल हो तो जातक खून, अग्नि, पित्त दोष या रोग से पीड़ित एवं उग्र स्वभाव वाला होता है।

यदि चन्द्र, मंगल का योग चतुर्थभाव में हो तो जातक कलह युक्त, दरिद्र, सुख पुत्र धन से रहित अशान्त होता है।

यदि सप्तम में चन्द्र, मंगल हो तो परधन का लोभी, बहुत बोलने वाला, असत्यवादी और ईर्ष्यालु होता है।

यदि दशमभाव में चन्द्र, मंगल हो तो जातक घोड़ा, हाथी, सेना सम्पत्ति से युक्त पराक्रमी होता है।

चन्द्र बुध योग फल

जन्मकाल में यदि चन्द्रमा और बुध दोनों लग्न में हो तो जातक सुखी, बुद्धिमान, बल, और भाग्य से युक्त, सुन्दर, वक्ता और अन्य कार्य में कुशल होता है।

दोनों अर्थात् चन्द्र, बुध यदि चतुर्थ भाव में हो तो बन्धु, मित्र, पुत्र, सुख, प्रताप, धन, सवारी और रत्न से युक्त सुन्दर स्वरूप वाला होता है।

सप्तम भाव में चन्द्र, बुध हो तो प्रतापी, राजा या राजा का प्रिय, विख्यात, सुन्दर कवि होता है।

दशम भाव में चन्द्र, बुध हो तो मानी, धनी, ख्यात, राजा का सचिव, या राजा का प्रिय, अवस्था के अन्त में दुःखी तथा बन्धुओं से रहित होता है।

चन्द्र गुरु योग फल

जन्मकाल में चन्द्रमा यदि गुरु के साथ लग्न में हो तो जातक विशालवक्षःस्थल वाला, बहुत पुत्र, मित्र, स्त्री, बन्धु से युक्त, सुन्दर देह वाला और राजा होता है।

यदि चन्द्र गुरु चतुर्थ भाव में हो तो बहुत शास्त्रों का ज्ञाता, राजमन्त्री या राजा के तुल्य, सुख प्राप्त करने वाला, बन्धु बान्धवों से युत और धनवान होता है।

दोनों अर्थात् चन्द्र गुरु सप्तम भाव में हों तो पण्डित, राजा, कला में कुशल, व्यापारी, या राजा का प्रिय, धनवान होता है।

यदि चन्द्र, गुरु दशम स्थान में हों तो विद्वान्, दाता, धनी, मानी, यशस्वी, सरल स्वभाव, दीर्घ बाहु और सर्वत्र पूज्य होता है।

चन्द्र शुक्र योग फल

यदि जन्मकाल में यदि चन्द्रमा शुक्र दोनों लग्न में हो तो वेश्या में रत सुन्दररूप, गुरुजनों का प्रिय, वस्त्र विभूषण से युक्त होता है।

दोनों चतुर्थ स्थान में हो तो स्त्री सुख से युत, नौका द्वारा धन प्राप्ति करने वाला, लोगों का प्रिय और भोगी होता है।

दोनों यदि सप्तम भाव में हो तो बहुत स्त्री, धन और पुत्र वाला, मेधावी, राजा के तुल्य क्रियावान् होता है।

दशम भाव में दोनों हो तो मान और धन से युक्त, राजा का मन्त्री, सुविख्यात, क्षमावान् और अधिक मनुष्यों से युत होता है।

चन्द्र शनि योग फल

जन्मकाल में लग्न में चन्द्रमा और शनि का योग हो तो जातक नौकरी करने वाला, खल, क्रूर, लोभी, नीच, आलसी और पापी होता है।

चतुर्थ भाव में हो तो जलोत्पन्न मुक्ता आदि तथा नौका या खनिज पदार्थों के व्यापार से अर्थलाभ करने वाला श्रेष्ठ और लोक में मान्य होता।

सप्तम स्थान में दोनों अर्थात् शनि, चन्द्र हो तो नगर या गाँव का मालिक, राजा का प्रिय, और स्त्रीहीन होता है।

दशम भाव में दोनों अर्थात् शनि, चन्द्र हो तो घोड़े आदि सेना द्वारा शत्रु को जीतने वाला, सुविख्यात भ्रष्टा का पुत्र, तथा राजा होता है।

चन्द्रमा शुभग्रह से युत शुभ फल देने वाला तथा शनि मंगल से युत होने पर अशुभ फल दाता और सेनानायक बनाने वाला होता है।

भौम बुध योग फल

जन्मकाल में मङ्गल और बुध दोनों लग्न में हो तो जातक हिंसक, अग्नि कार्य में निपुण, धातु क्रिया में कुशल, दूत और कारागार का स्वामी होता है।

दोनों चतुर्थ स्थान में हो तो बन्धुहीन, किन्तु मित्र, धन, अन्न, भोग, वाहनों से युक्त, अपने जन में अनादृत होता है।

दोनों सप्तम भाव में हो तो जातक की प्रथम स्त्री की मृत्यु हो जाती है, वह देश विदेश में भ्रमण कर नीचों के अधीन कार्य करने वाला और विवादी होता है।

दशम भाव में हो तो सेनापति, शूर, धूर्त, क्रूर, धनी और राजा का प्रिय और धैर्यवान् होता है।

भौम गुरु योग फल

जन्मकाल में मङ्गल गुरु के साथ लग्न में हो तो जातक गुणी, प्रधान सचिव, धर्मकृत्य में कीर्ति पाने वाला उत्साही पुरुष होता है।

यदि दोनों अर्थात् मंगल, गुरु चतुर्थ भाव में हो तो बन्धु मित्र से युत स्थिर चित्त धन और सुख से युक्त राजा का सेवक देवता और गुरुओं का भक्त होता है।

सप्तम भाव में मंगल, गुरु हो तो पर्वत वन जल आदि दुर्ग स्थान में घुमने वाला, अच्छे भाई–बन्धुओं से युत, शूर तथा स्त्री हीन होता है।

दशम स्थान में दोनों अर्थात् मंगल, गुरु हो तो कीर्तिमान् विज्ञजनों में युक्त, कार्य में कुशल और चतुर होता है।

भौम शुक्र योग फल

जन्मकाल में लग्न में मङ्गल और शुक्र दोनों हो तो वेश्यागामी, निन्द्यकला को करने वाला, स्त्री के कारण धन नष्ट करनेवाला तथा अल्पायु होता है।

दोनों अर्थात् मंगल, शुक्र यदि चतुर्थ भाव में हो तो बन्धु पुत्र से हीन, मानसिक पीड़ा और अनेक दु:ख से दु:खी होता है।

दोनों अर्थात् मंगल, शुक्र सप्तम भाव में हो तो स्त्री में आसक्त, उससे कष्ट पाने वाला और आचारहीन होता है।

दशम भाव में मंगल, गुरु हो तो अस्त्रविद्या में कुशल, बुद्धिमान्, विद्या धन वस्त्रादि से युक्त, विख्यात राजा का मंत्री होता है।

भौम शनि योग फल

जन्मकाल में मङ्गल और शनि लग्न में हो तो जातक संग्राम में विजयी, माता का द्वेषी, अल्पायु और भाग्यहीन होता है।

दोनों अर्थात् मंगल, शनि चतुर्थ भाव में हो तो अन्न–पान सुख से हीन, बन्धु और मित्रों से भी रहित होता है।

सप्तम भाव मे मंगल, शनि हो तो स्त्री पुत्र विहीन, गरीब, रोगी, व्यसनी, लोक में अनादृत और कृपण होता है।

दशम भाव में मंगल, शनि हो तो राजमन्त्री होता है, परञ्च अपराधी होकर राजा से दण्डित होता है तथा असत्य बोलने वाला भी होता है।

बुध गुरु योग फल

जन्मकाल में बुध और गुरु दोनों यदि लग्न में हो तो जातक सुरूप, सुशील, विद्वान्, राजमान्य, विषय (ग्राम समूह) का अधिप वाहनादि सुख का भोग कर्त्ता होता है।

चतुर्थ भाव में दोनों अर्थात् बुध, गुरु हो तो बन्धु मित्र स्त्री धन सौभाग्य सुख से युक्त, कार्य कुशल राजमन्त्री होता है।

सप्तम भाव में बुध, गुरु हो तो सुन्दरी पत्नी वाला, शत्रुहीन, परिजनों का प्रिय धन–बल से युक्त, पिता से अधिक यशस्वी होता है।

दशम भाव में बुध, गुरु हो तो राजा अथवा राजमन्त्री, मानी, धनी, विख्यात, वेदार्थ का ज्ञाता और नम्र होता है।

बुध शुक्र योग फल

जन्मकाल में बुध और शुक्र दोनों लग्न में हो तो सुरूप, पण्डित, सौभाग्यवान्, राजमान्य, देव और ब्राह्मण का भक्त होता है।

चतुर्थ भाव में बुध, शुक्र हो तो पुत्र मित्र और वन्धु से युत, भाग्यवान्, राजा या राजमन्त्री तथा कल्याण भागी होता है।

सप्तम भाव में बुध, शुक्र हो तो बहुत स्त्री, भोग, धन, प्रभुत्व से युक्त राजप्रिय और सुखी होता है।

दशम भाव में हो तो नीतिज्ञ, साधु राजा होता है, वह नीचजन को आश्रय नहीं देता है, तथा धन युक्त और कार्य करने में समर्थ्यवान् होता है।

बुध शनि योग फल

बुध शनि दोनों यदि लग्न में हो तो जातक मलिन देह, पापी, विद्या, धन वाहन से हीन, अल्पायु और भाग्यहीन होता है।

चतुर्थ भाव में हो तो अपने जन में अपमानित, अन्न पान बन्धु मित्र से हीन, मूढ़ और पापी होता है।

सप्तम में हो तो राजा का भृत्य, मूर्ख, परोपकारी, खल, मलिन, मिथ्याभाषी होता है।

दशम में हो तो शत्रु को जीतने वाला, परिजन मित्र वाहन धन से सम्पन्न, विप्र, गुरु और देवताओं का पूजक होता है।

गुरु शुक्र योग फल

गुरु और शुक्र दोनों लग्न में हो तो जातक ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी गुरु के उपदेश से न्यायी राजा अथवा राजमन्त्री होता है।

चतुर्थ भाव में हो तो शत्रुओं को जीतने वाला, परिजन मित्र वाहन धन से युक्त, विप्र गुरु और देव का भक्त होता है।

सप्तम में दोनों हो तो सुशीलास्त्री धन रत्न से युक्त, कन्या सन्तान वाला, सुखी, यशस्वी, उत्तम वाहन का भोगी होता है।

दशम में दोनों हो तो मान, प्रभुत्व, धन, नौकरों से युक्त और सुशील राजा होता है।

गुरु शनि योग फल

जन्मकाल में गुरु और शनि दोनों लग्न में हो तो जातक नशे में चूर, आलसी, निष्ठुर, विद्वान्, धनी, खल और अल्पसुखी होता है।

चतुर्थ भाव में गुरु, शनि हो तो राजमन्त्री, नीरोग, विजयी, बन्धु मित्र से युक्त, लोक प्रिय और सुखी होता है।

सातवें भाव में गुरु, शनि हो तो स्त्री के द्वेष से धन नष्टकर्त्ता, शूर, व्यसनी, शठ, कुरूप पिता से धन छीनने वाला मूर्ख होता है।

दशम भाव में गुरु, शनि हो तो राजप्रिय या राजा, थोड़ी सन्तान वाला, स्थिर, गोपालक और अनेक वाहनों को रखने वाला होता है।

शुक्र शनि योग फल

जन्मकाल में शुक्र शनि दोनों जन्म लग्न में हो तो वह मनुष्य स्त्री सुख में लीन, सुन्दर रूप, सुख धन भोग से युक्त, बहुत नौकरों से युक्त होकर अन्त में शोकसन्तप्त होता है।

चतुर्थ भाव में शुक्र, शनि हो तो मित्र से धन और बन्धु से आदर पाता है तथा राजा का विश्वास पात्र होता है।

सप्तम भाव शुक्र, शनि में हो तो स्त्री धन रत्न सुख, समस्त सम्पत्ति और विषयों का भागी होता है।

दशम भाव में हो शुक्र, शनि तो जातक समस्त द्वन्द (सुख, दुःख, राग द्वेष इत्यादि) से रहित विशेष कार्य करने वाला विख्यात राजमन्त्री होता है।

इस प्रकार यहाँ केन्द्रस्थ दो-दो ग्रहों का फल बतलाया गया है। इसे आधार बनाकर तीन, चार, पाँच, छः ग्रहों का केन्द्रस्थ ग्रहयोग फल अपनी बुद्धि से विचार करना चाहिए।

दो तीन आदि ग्रह योग

प्राचीनाचार्यों ने द्विग्रह योग के फल जो कहे हैं, उनको यहाँ अहङ्कार मुक्तभाव से विशेष रूप आगे कहने जा रहे हैं—

सूर्य चन्द्रमा योग फल

जन्माङ्ग में रवि और चन्द्रमा एक स्थान में हों तो जातक स्त्री का वश विनय रहित कूट (सुवर्णादि धातुओं को मिश्रणपरिवर्तन क्रिया) को जानने वाला, अधिक धनवान, मदिरादि बेचने में चतुर होता है।

सूर्य भौम योग फल

कुण्डली में सूर्य मङ्गल एक स्थान में हों तो तेजस्वी, साहसी, मूर्ख, बलवान, मिथ्या- भाषी, पापी, हिंसक और उग्रस्वभाव होता है।

सूर्य बुध योग फल

कुण्डली में रवि बुध का योग हो तो जातक सेवा कार्य में निपुण, चञ्चल धन

वाला, प्रियवक्ता, यशरूप धन वाला, श्रेष्ठ, राजा और सज्जनों का प्रिय, बल, रूप, धन और विद्या से युत होता है।

सूर्य गुरु योग फल

यदि कुण्डली में रवि गुरु का योग हो तो जातक धर्मात्मा, राजमन्त्री, बुद्धिमान् मित्रों के आश्रय से धनलाभ करने वाला, और वेद शास्त्रों का अध्यापक होता है।

सूर्य शुक्र योग फल

यदि कुण्डली में रवि शुक्र का योग हो तो शस्त्र प्रहार विद्या और शक्ति से युक्त वृद्धावस्था में क्षीण दृष्टि, नृत्य नाट्यादि कला को जानने वाला, स्त्री के आश्रय से अधिक धन पाने वाला होता है।

सूर्य शनि योग फल

यदि कुण्डली में रवि, शनि का योग हो तो जातक धातु क्रिया में कुशल, धर्मात्मा, स्वकर्मनिष्ठ, स्त्री एवं पुत्रादि से रहित, अपने कुल के गुणों से प्रसिद्ध और हीनशील होता है।

चन्द्र भौम योग फल

यदि कुण्डली में चन्द्र मङ्गल का योग हो तो वह व्यक्ति शूर, रण में विजयी, योद्धा, रक्तविकार से पीड़ित, मिट्टी, चर्म और धातुओं के वस्तु बनाने वाला, कूट (धातु पर रंग चढ़ाने की क्रिया) को जानने वाला होता है।

चन्द्र बुध योग फल

यदि कुण्डली में चन्द्र बुध का योग हो तो जातक काव्य करने में निपुण, धनवान स्त्री का प्रिय, सुरुपवान, हँसमुख, धर्मात्मा और विशेष गुण वाला होता है।

चन्द्र गुरु योग फल

यदि कुण्डली में चन्द्र गुरु का योग हो तो पुरुष स्थिर मैत्री वाला, विनययुक्त, बन्धुओं का आदर करने वाला धनवान, सुशील और देव ब्राह्मणों का हित चिन्तक होता है।

चन्द्र शुक्र योग फल

यदि कुण्डली में चन्द्र शुक्र का योग हो तो वह व्यक्ति माला सुगन्ध वस्त्रादि से युत कार्य प्रणाली को जानने वाला, अपने कुल का प्रिय, आलसी, क्रय विक्रय में कुशल होता है।

चन्द्र शनि योग फल

यदि कुण्डली में चन्द्र शनि का योग हो तो जातक वृद्धा स्त्री में आसक्त,

हाथी एवं घोड़े आदि का सम्पालक, शीलहीन, दूसरे का अनुकरण करने वाला, निर्धन और विवादादि (झगड़ा) में हारने वाला होता है।

भौम बुध योग फल

यदि कुण्डली में मङ्गल बुध का योग हो तो स्त्रीजनों में तुच्छ (अपमानित), अल्प धन वाला, सोना और लोहा का कार्य करने वाला, कुलटा स्त्री और दुश्चरित्रा विधवा को रखने वाला और औषधि बनाने में निपुण होता है।

भौम गुरु योग फल

यदि जातक की कुण्डली में मङ्गल गुरु का योग हो तो वह पुरुष शिल्प, वेद, शास्त्रों का ज्ञाता, मेधावी, बोलने में चतुर, बुद्धिमान तथा शस्त्र चलाने वालों में प्रधान (श्रेष्ठ) होता है।

भौम शुक्र योग फल

यदि कुण्डली में मङ्गल शुक्र का योग हो तो लोकमें पूज्य, समाज में मुख्य, गणितज्ञ, परस्त्री में आसक्त, धूर्त, जुआ, मिथ्या तथा शठता में रत और विद् (परस्त्रीरत) होता है।

भौम शनि योग फल

यदि जातक की कुण्डली में मङ्गल शनि का योग हो तो वह धातु क्रिया, इन्द्रजाल विद्या में कुशल, वञ्चक, चोर विद्या में निपुण, धर्महीन शस्त्र और विष से आहत और कलह प्रिय होता है।

बुध गुरु योग फल

कुण्डली में बुध गुरु का योग हो तो नृत्य कला को जानने वाला, पण्डित शान और वाद्य में निपुण, बुद्धिमान और सुखी होता है।

बुध शुक्र योग फल

यदि कुण्डली में बुध शुक्र का योग हो तो अति धनवान, नीतिज्ञ, विविधशिल्प कला का ज्ञाता, वेद जानने वाला, प्रियवक्ता, शीतज्ञ, हास्य और सुगन्ध मालादि में रुचि रखने वाला होता है।

बुध शनि योग फल

यदि कुण्डली में बुध शनि का योग हो तो जातक ऋण से युत, घमण्डी, प्रपञ्ची, कवि, घूमने वाला, कार्य में चतुर और प्रियभाषी होता है।

गुरु शुक्र योग फल

यदि कुण्डली में गुरु शुक्र का योग हो तो जातक विद्या, वाद से जिविका वाला सप्रमाण विशेष धर्म में रहने वाला, श्रेष्ठ स्त्री वाला तथा बुद्धिमान होता है।

गुरु शनि योग फल

यदि कुण्डली में गुरु शनि का योग हो तो धनवान, नगराध्यक्ष, यशस्वी, श्रेणी, सभा ग्राम और संस्था का प्रधान होता है।

शुक्र शनि योग फल

यदि कुण्डली में शुक्र शनि का योग हो तो लकड़ी चीरने में चतुर चौर कर्म, चित्ररचना, पत्थर आदि से शिल्प क्रिया को करने में निपुण, योद्धा, भ्रमणशील, और पशुओं को पालन करने वाला होता है।

इस प्रकार यहाँ दो ग्रहों के योग से फल का वर्णन किया गया है। इनमें ग्रह परस्पर वर्ग में हो तो अधमादि विकल्प से फल में न्यूनाधिकता भी होती है। आगे त्रिग्रहों के योग का फल कहते हैं।

सूर्य चन्द्र मंगल योग फल

जन्म कुण्डली में यदि सूर्य, चन्द्र मङ्गल का योग हो तो जातक लज्जारहित, पापी, यन्त्र बनाने वाला, शत्रु को जीतने वाला, सब कार्यों में दक्ष होता है।

सूर्य चन्द्र बुध योग फल

यदि रवि चन्द्र बुध का योग हो अर्थात् एक राशि में तो जातक तेजस्वी, पूर्ण बुद्धिमान शस्त्रकला में निपुण, सभा व पान (मदिरादि) में लीन, राजा का कार्य करने वाला और धैर्यवान् होता है।

सूर्य चन्द्र गुरु योग फल

जन्म कुण्डली में यदि सूर्य, चन्द्रमा, गुरु एक राशि में हो तो जातक क्रोधी मायाचार में चतुर, सेवा कर्म में निपुण, विदेश गमन में लीन अर्थात् परदेश मे रहने वाला, अत्यन्त बुद्धिमान और चञ्चल होता है।

सूर्य चन्द्र शुक्र योग फल

जन्म कुण्डली में सूर्य, चन्द्र और शुक्र एक राशि में हों तो जातक दूसरे के द्रव्य हरण करने पर चतुर, परस्त्री आसक्त रहने वाला और शास्त्र में चतुर होता है।

सूर्य चन्द्र शनि योग फल

जन्म कुण्डली में यदि सूर्य, चन्द्रमा, शनि एक राशि में हों तो जातक काम शास्त्र में चतुर, मूर्ख पराधीन और दरिद्र होता है।

सूर्य मंगल बुध योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, मङ्गल और बुध ये तीनों ग्रह यदि एक ही राशि में बैठे हो तो जातक प्रसिद्ध, कुश्ती लड़ने वाला, साहसी, निठुर, निर्लज्ज और धन पुत्र स्त्री से रहित होता है।

सूर्य मंगल गुरु योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य मङ्गल गुरु की युति हो तो जातक बोलने में चतुर, बड़ा धनवान्, सलाहकार, सत्यवादी और स्वभाव से उदार होता है।

सूर्य भौम शुक्र योग फल

जिस जातक के जन्म काल में यदि सूर्य, मङ्गल, शुक्र एक राशि में हों तो वह जातक नेत्ररोगी, अच्छे कुल में उत्पन्न, भाग्यशाली, कठोर वचन बोलने वाला और सम्पतिशाली होता है।

सूर्य भौम शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, मङ्गल, शनि एक राशि में हों तो जातक अङ्गहीन, धनहीन, रोगी, स्वजन रहित, और अत्यन्त मूर्ख होता है।

सूर्य बुध गुरु योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, बुध, गुरु की युति हो तो जातक नेत्र रोगी, सम्पत्तिशाली, मूर्ख, शास्त्रादि शिल्पविद्या एवं काव्यादि कार्य करने में लीन और सुन्दर लेखक होता है।

सूर्य बुध शुक्र योग फल

जन्म पत्रिका में यदि सूर्य, बुध शुक्र एक राशि में हों तो जातक अत्यन्त दुखी, वाचाल, घुमने में प्रवृत्ति वाला, एवं स्त्री के लिए दुखी होता है।

सूर्य बुध शनि योग फल

जन्म काल में सूर्य, बुध, शनि युति हो तो जातक नपुंसक की तरह आचरण करने वाला, द्वेषि, सबसे पराजित, बन्धु बान्धवों से त्यागा हुआ होता है।

सूर्य गुरु शुक्र योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, गुरु तथा शुक्र एक ही राशि में स्थित हों तो इस प्रकार का जातक कमजोर नेत्रों वाला, वीर, पण्डित, निर्धन, राजा का मन्त्री तथा दूसरे के कार्य में लीन रहने वाला होता है।

सूर्य गुरु शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य गुरु शनि एक राशि में हों तो जातक असमान शरीर वाला पूजनीय, अपने लोगों से अनाहत, सुन्दर स्त्री पुत्र तथा मित्र वाला राजा का प्रिय तथा निर्भय होता है।

सूर्य शुक्र शनि योग फल

जन्मकाल में यदि सूर्य, शुक्र तथा शनि एक राशि में स्थित हों तो वह जातक शत्रु के भय से दुखी, सम्मान, कला एवं काव्य से रहित, दूषित आचरण वाला और कोढ़ी होता है।

चन्द्र भौम बुध योग फल

जन्म काल में यदि चन्द्रमा, भौम, बुध एक राशि में हों तो पाप करने वाला, दुष्ट आचरण में लीन, जीवन पर्यन्त मित्र व अपने बन्धुओं से रहित होता है।

चन्द्र भौम गुरु योग फल

जन्म काल में यदि चन्द्र, भौम, गुरु एक राशि में हों तो जातक नम्र देह (पाठान्तर से घावों से युत) स्त्री लोलुप, चोर, सुन्दर, स्त्रियों का प्रिय व महाक्रोधी होता है।

चन्द्र भौम शुक्र योग फल

जन्म कुण्डली में यदि चन्द्रमा, भौम एवं शुक्र एक राशि में हों तो जातक दु:शीला अर्थात् शील (नम्रता) रहित, पुत्र व पति, घूमने की रुचि वाला और ठण्ड से डरने वाला होता है।

चन्द्र भौम शनि योग फल

यदि जातक की कुण्डली में चन्द्र, भौम तथा शनि एक ही राशि में स्थित हों तो वह जातक बाल्यावस्था में मातृ सुख से रहित, क्षुद्र स्वभाव, विषम बुद्धि व लोक (संसार) द्वेषी होती है।

चन्द्र बुध गुरु योग फल

जन्म काल में यदि चन्द्र, बुध, गुरु एक राशि में हों तो जातक धनी, रोगी, वक्ता, तेजस्वी, विख्यात, विशाल कीर्तिवाला एवं अधिक भाई और पुत्रों से युक्त होता है।

चन्द्र बुध शुक्र योग फल

जन्म काल में यदि चन्द्र, बुध, गुरु एक राशि में हों तो जातक विद्या से सुसंस्कृत बुद्धिमान होकर भी दुष्टाचरण करने वाला सौम्य स्वभाव वाला और धन का लोभी होता है।

चन्द्र बुध शनि योग फल

जन्म काल में यदि चन्द्र, बुध, शनि एक राशि में हों तो जातक रोगी, विकल शरीर वाला, पण्डित, वक्ता, पूजनीय और राजा होता है।

चन्द्र गुरु शुक्र योग फल

जन्म काल में यदि चन्द्र, बुध, शनि एक राशि में हों तो जातक पतिव्रता स्त्री का पुत्र पण्डित, कलाओं को जानने वाला, बहुज्ञ, सज्जन, भाग्यशाली होता है।

चन्द्र गुरु शनि योग फल

जन्म काल में यदि चन्द्र, गुरु तथा शनि एक ही राशि में स्थित हों तो

जातक शास्त्र के तत्व का ज्ञाता, वृद्धा स्त्री का सङ्ग रखने वाला, गतरोग और किसी ग्राम का प्रधान होता है।

चन्द्र शुक्र शनि योग फल

जन्म काल में यदि चन्द्र शुक्र शनि एक राशि में हों तो जातक लेखक, कथा वाचक, पुरोहित, और ज्योतिषी पूर्व जन्म के पुण्य से होता है।

भौम बुध गुरु योग फल

जन्म काल में यदि मङ्गल बुध, गुरु एक राशि में हों तो जातक अच्छा कवि, राजा, सज्जन स्त्री का स्वामी, दूसरों के उपकार करने में लीन एवं गान विद्या में चतुर होता है।

भौम बुध शुक्र योग फल

जन्म काल में यदि कुण्डली में मङ्गल, बुध, शुक्र एक राशि में हों तो जातक कुलहीन विकलाङ्ग, चञ्चल, दुष्ट, वाचाल और प्रतिदिन उत्साह युक्त होता है।

भौम बुध शनि योग फल

जन्म कुण्डली में यदि मङ्गल, बुध, शनि एक राशि में हों तो जातक सेवक या दरिद्र, कृष्ण नेत्र प्रवासी, मुख का रोगी एवं हास्य प्रेमियों के साथ रमण करने वाला होता है।

भौम गुरु शुक्र योग फल

जन्म कुण्डली में यदि मङ्गल, बुध, शुक्र, शनि एक राशि में हों तो जातक राजा का प्रिय पात्र सत्पुत्रों से युत, स्त्रियों से सदा बहुत सुख प्राप्त करने वाला एवं समस्त लोगों का सुख दाता है।

भौम गुरु शनि योग फल

जन्म कुण्डली में यदि मङ्गल, गुरु, शनि एक राशि नें हों तो जातक राजा से संमत, भग्न देह, दुष्ट आचरण करने वाला, मित्रों से निन्दनीय एवं घृणा से रहित होता है।

भौम शुक्र शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में मङ्गल, शुक्र, शनि एक राशि में हों तो जातक चरित्रहीन स्त्री का पुत्र और पति (अर्थात् चरित्रहीन स्त्री का पति भी), सुख--साधनों से रहित और परदेशवासी होता है।

बुध गुरु शुक्र योग फल

जन्म कुण्डली में यदि बुध, गुरु, शुक्र एक साथ हों तो जातक सुन्दर शरीर वाला, शत्रुहीन, राजा, भाग्यवान्, यशस्वी, और सत्यवक्ता होता है।

बुध गुरु शनि योग फल

जन्म कुण्डली में यदि बुध, गुरु, शनि एक राशि में हों तो जातक धन ऐश्वर्य युक्त, पण्डित, बहुत सुखभोगी, अपने स्त्री से प्रेम करने वाला, धैर्ययुत और भाग्यवान् होता है।

बुध शुक्र शनि योग फल

जन्म कुण्डली में बुध, शुक्र, शनि एक साथ हों तो वाचाल, धूर्त, मिथ्यावादी, परस्त्रीगामी, कलाकार और स्वदेश प्रिय होता है।

गुरु शुक्र शनि योग फल

जन्म काल में यदि गुरु, शुक्र, शनि का योग हो तो नीच कुलोत्पन्न जातक भी यशस्वी राजा और सुशील होता है।

माता व पिता के सुख विचार

जन्म के समय चन्द्रमा पापग्रहों से युक्त हो तो जातक मातृसुख से हीन और सूर्य पापयुक्त हो तो जातक पितृसुख से हीन तथा दोनों शुभग्रह से युत हों तो माता और पिता का सुख समझना चाहिए।

मिश्र अर्थात् शुभाशुभ दोनों प्रकार के ग्रह युक्त हों तो मिश्रफल कहना चाहिए।

शुभ ग्रहों के योग फल

जन्म के समय यदि परस्पर ३ ग्रहों की युति हो तो जातक धन, ऐश्वर्य, यश से युत राजा सदृश पृथ्वी के भूषण रूप अति श्रेष्ठ पुरुष का जन्म होता है।

पाप ग्रहों के योग फल

जन्म के समय यदि जन्म काल में तीन पाप ग्रहों की युति हो तो जातक भाग्यहीन दरिद्र, दुखी कुरूप और विनयहीन होता है।

अब आगे चार ग्रहों के योग का फल कहते हैं—

सूर्य चन्द्र मंगल बुध योग फल

यदि जन्म के समय सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध एक साथ हों तो जातक लिपिकर्ता या लेखक, चोर, वाचाल, रोगी व चतुर मायावी होता है।

सूर्य चन्द्र भौम गुरु योग फल

यदि जातक के जन्म के समय सूर्य, चन्द्र, भौम एवं गुरु एक साथ हों तो वह जातक धनी, स्त्री से निन्दित, तेजस्वी, नितिज्ञ, शोक से रहित, कार्य करने में सक्षम व चतुर होता है।

सूर्य चन्द्र भौम शुक्र योग फल

यदि सूर्य, चन्द्र, भौम, शुक्र एक साथ हों तो जातक श्रेष्ठ उचित वाणी व

व्यवहार वाला, (पाठान्तर से उग्र अर्थात् तीक्ष्ण, जठराग्नि वाला) सुखभोगी, चतुर, धन संग्रहकर्ता, विद्या पुत्र व स्त्री से युक्त होता है।

सूर्य चन्द्र भौम शनि योग फल

यदि सूर्य, चन्द्र, भौम, शनि एक साथ हों तो जातक न्यूनाधिक शरीर वाला, वामन (लघु), धन हीन, भिक्षाशी और सर्व विदित मूर्ख होता है।

सूर्य चन्द्र बुध गुरु योग फल

यदि सूर्य, बुध, गुरु, चन्द्रमा एक साथ हों तो जातक सुवर्ण (सोना) का कार्य करने वाला (सुनार), बड़े नेत्र वाला कला का ज्ञाता, बड़ा धनवान, धैर्यधारी, (पाठान्तर से वीर) व रोगहीन, देहधारी, (पाठान्तर से गम्भीर) होता है।

सूर्य चन्द्र बुध शुक्र योग फल

यदि सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र एक साथ हों तो जातक व्यग्र, सुन्दर भाग्य वाला, प्रवक्ता, छोटे कद वाला, पाठान्तर से नेत्र रोगी व पीत नेत्र वाला व राजा का प्यारा होता है।

सूर्य चन्द्र बुध शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, चन्द्र, बुध, शनि एक साथ हों तो जातक माता पिता से हीन, धन सुख से रहित, घूमने वाला, भिक्षाशी व असत्य भाषी होता है।

सूर्य चन्द्र गुरु शुक्र योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, चन्द्रमा, गुरु, शुक्र एक साथ हों तो जातक जल हिरन व जङ्गल का स्वामी, सुख भागी (पाठान्तर से राजा से सम्मानित) व कुशल होता है।

सूर्य चन्द्र गुरु शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, चन्द्रमा, गुरु, शनि एक साथ हों तो जातक लाल नेत्र वाला, क्रोध दृष्टि वाला, उग्र, अधिक पुत्र धन से युक्त और श्रेष्ठ स्त्रियों का प्रिय पात्र होता है।

सूर्य चन्द्र शुक्र शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, चन्द्रमा, गुरु, शनि एक साथ हों तो जातक स्त्री के समान आचरण करने वाला अर्थात् जनखा, आगे चलने वाला, अत्यन्त दुर्बल देहधारी व सब जगह भयभीत होता है।

सूर्य भौम बुध गुरु योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, भौम, बुध, गुरु एक साथ हों तो जातक वीर, सूत बनाने वाला वा चक्की चलाने वाला और (ग्रन्थान्तर से साइकिल वगैरह पर चलने वाला) स्त्री व धन से रहित, दु:खी अथवा घूमने वाला होता है।

सूर्य भौम बुध शुक्र योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, भौम, बुध, शुक्र एक साथ हों तो जातक दूसरों की स्त्री में लीन, चोर, असमान शरीर धारी, दुर्जन व दुर्बल होता है।

सूर्य भौम बुध शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, भौम, बुध, शनि एक राशि हों तो जातक युद्ध करने वाला पण्डित, उग्र, बुरे आचरण करने वाला प्रधान कवि, उत्तम सलाहकार अर्थात् मन्त्री अथवा राजा होता है।

सूर्य भौम गुरु शुक्र योग फल

जन्म काल में सूर्य, भौम, गुरु, शुक्र एक भाव में हों तो जातक सुन्दर भाग्यवाला, संसार में सम्मानित, धनी, राजा से सम्मत, संसार में विख्यात और नीति का ज्ञाता होता है।

सूर्य भौम गुरु शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, भौम, गुरु शनि एक घर में हों तो जातक पागल, जन समुदाय में सम्मानित, प्रयोजन सिद्ध कर्ता, बन्धु व मित्र से युत और राजा का प्रिय होता है।

सूर्य भौम शुक्र शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, भौम, शुक्र, शनि एक राशि में हों तो जातक अशान्त चित्त असत्कार्यकर्त्ता, असमान दृष्टि वाला, बन्धुद्वेषी व सब से पराजित होता है।

सूर्य बुध गुरु शुक्र योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र एक साथ हों तो जातक धनी पूर्ण सुखी, मतलब सिद्ध करने वाला, बन्धुओं से युत व श्रेष्ठ पुरुष होता है।

सूर्य बुध गुरु शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, बुध, गुरु, शनि एक भाव में हों तो उत्पन्न जातक नपुंसक के समान आचरण करने वाला, अभिमानी, क्लेश प्रिय भाई से युक्त व उत्साह से हीन होता है।

सूर्य बुध शुक्र शनि योग फल

जन्म काल में यदि सूर्य, बुध, शुक्र, शनि एक भाव में हों तो जातक वाचाल, सुन्दर भाग्यवाला, पण्डित, सरल, सुखी, सत्त्वगुण व पवित्रता से युक्त, धीर व मित्रों की सहायता की सहायता करने वाला होता है।

सूर्य गुरु शुक्र शनि योग फल

जन्म काल में यदि कुण्डली में सूर्य, गुरु, शुक्र, शनि एक साथ हों तो

जातक लोभी कवि, अध्यक्ष, शिल्पकरों का स्वामी, नीच अर्थात् दुष्टों का मुखिया व राजाओं का प्रिय होता है।

चन्द्र भौम बुध गुरु योग फल

जन्म काल में यदि पत्रिका में चन्द्र, भौम, बुध, शुक्र एक साथ हों तो जातक शास्त्रों में निपुण राजा, सुयोग्य महान् मन्त्री अथवा बड़ी बुद्धि वाला होता है।

चन्द्र भौम बुध शुक्र योग फल

जन्म काल में यदि पत्रिका मे चन्द्र, भौम, बुध, शुक्र एक साथ हों तो जातक कलहप्रिय, अधिक सोने वाला अर्थात् आलसी, दुष्ट, कुलटा का पति, सुन्दर, बन्धु का विरोधी और दुःखी होता है।

चन्द्र भौम बुध शनि योग फल

जन्म काल में यदि जन्मकुण्डली में चन्द्र, भौम, बुध, शनि एक साथ हों तो जातक वीर, माता पिता के सुख से रहित, नीच कुल में उत्पन्न, अधिक स्त्री व मित्र एवं पुत्र से युक्त अच्छे कार्य करने वाला होता है।

चन्द्र भौम गुरु शुक्र योग फल

यदि चन्द्र, भौम, गुरु एवं शुक्र एक साथ हों तो जातक विकलाङ्ग सुन्दरी स्त्री वाला, सबको सहन करने वाला (पाठान्तर से कष्ट सहनकर्त्ता) अत्यन्त सम्मान से युक्त, पण्डित व अधिक मित्रों के सुख को भोगने वाला होता है।

चन्द्र भौम गुरु शनि योग फल

चन्द्र, मङ्गल, गुरु, शनि के योग से जातक बहिर, धनी, धीर, उन्माद रोगी, बोलने में चतुर, स्थिर स्वभाव, बुद्धिमान और उदार हृदय वाला होता है।

चन्द्र भौम शुक्र शनि योग फल

यदि कुण्डली में चन्द्र, मङ्गल, शनि एक साथ हों तो वह पुरुष कुलटा का स्वामी प्रौढ़ सांप के समान नेत्र वाला तथा सर्वदा उद्वेगयुक्त होता है।

चन्द्र बुध गुरु शुक्र योग फल

यदि जन्म चक्र में चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र एक साथ में हों तो जातक विद्वान् माता-पिता से रहित सुरूप धनवान, सौभाग्यवान् तथा शत्रु रहित होता है।

चन्द्र बुध गुरु शनि योग फल

यदि चन्द्र, बुध, गुरु, शनि एक साथ हों तो जातक धर्मात्मा यशस्वी श्रेष्ठ, तेजस्वी, बन्धुओं का प्रिय, बुद्धिमान्, राजमन्त्री और श्रेष्ठ कवि होता है।

चन्द्र बुध शुक्र शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में चन्द्र, बुध, शनि एक राशि में हों तो परस्त्रीगामी, दुःशीला स्त्री का पति, विपत्ति से युक्त बन्धुवाला, पण्डित तथा संसार का द्वेषी होता है।

चन्द्र गुरु शुक्र शनि योग फल

जन्माङ्ग में चन्द्र, गुरु, शुक्र, शनि के योग होने से जातक मातृविहीन, सौभाग्य-शाली, चर्मरोगी, दुःखी, भ्रमणशील, बहुत बोलने वाला और सत्य में रत होता है।

भौम बुध गुरु शुक्र योग फल

यदि जन्माङ्ग में मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र का योग हो तो स्त्री से कलह करने वाला, धनी, लोकमान्य, सुशील एवं नीरोग शरीर वाला होता है।

भौम बुध गुरु शनि योग फल

यदि मङ्गल, बुध, गुरु, शनि का योग हो तो जातक पण्डित, वक्ता, धनहीन, सत्य और शौच से बोलने वाला, कष्ट सहनशील और बुद्धिमान होता है।

भौम बुध शुक्र शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में मङ्गल, बुध, शुक्र, शनि का योग हो तो जातक योद्धा दूसरों से पोषित, कठिन शरीर वाला, युद्ध में स्वाभिमान, रखने वाला विख्यात और कुत्तों से पालने वाला होता है।

भौम गुरु शुक्र शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में मङ्गल, गुरु, शुक्र, शनि के योग से जातक तेजस्वी, धनवान, स्त्रैण, साहसी, चञ्चल और धूर्त होता है।

बुध गुरु शुक्र शनि योग फल

यदि बुध, गुरु, शुक्र, शनि का योग हो तो जातक (जन्म लेने वाला) मेधावी, शास्त्राभ्यासी, स्त्री में आसक्त और (आज्ञाकारी नौकरों वाला) होता है।

अब आगे पञ्चग्रहयोग का फल जैसा महर्षियों ने कहा है, वैसा ही कहते हैं—

सूर्य चन्द्र भौम बुध गुरु योग फल

यादे कुण्डली में सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध एवं गुरु एक भवन में हों तो जातक दुःखी, अधिक प्रपञ्ची व स्त्री के वियोग से तप्त देहधारी होता है।

सूर्य चन्द्र भौम बुध शुक्र योग फल

यदि कुण्डली में सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, शुक्र एक भवन में हो तो जातक दूसरों के कार्य में लीन, बन्धु और मित्रों के बल से हीन अर्थात् बन्धु मित्रों से दुःखी एवं नपुंसकों से मित्रता करने वाला होता है।

सूर्य चन्द्र भौम बुध शनि योग फल

यदि कुण्डली में सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, शनि एक भवन में हो तो जातक थोड़ी आयु वाला कारागार में वृद्ध, दीन, समस्त सुख से हीन एवं स्त्री पुत्र धन से रहित होता है।

सूर्य चन्द्र भौम गुरु शुक्र योग फल

यदि जन्म कुण्डली में सूर्य, चन्द्र, भौम, गुरु, शुक्र एक भवन में हो तो जातक जन्म से अन्ध, अत्यन्त दुःखी, माता-पिता से सदा संत्यक्त अर्थात् माता पिता के सुख का अभाव तथा गान (संगीत) में अभिरुचि रखने वाला होता है।

सूर्य चन्द्र भौम गुरु शनि योग फल

यदि जन्म कुण्डली में सूर्य, चन्द्र, भौम, गुरु, शनि एक भवन में हों तो जातक युद्ध में निपुण, सामर्थ्यवान्, दूसरों के धन का हरण करने वाला, अन्य लोगों को कष्टदायी अथवा चुगलखोर एवं दुष्ट स्वभाव का होता है।

सूर्य चन्द्र भौम शुक्र शनि योग फल

यदि कुण्डली में सूर्य, चन्द्र, भौम, शुक्र तथा शनि एक ही भवन में हों तो जातक सम्मान धन, वैभव से रहित, दुष्ट आचरण कर्ता व दूसरों के स्त्री में लीन होता है।

सूर्य चन्द्र बुध गुरु शुक्र योग फल

यदि जन्म कुण्डली में सूर्य, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र एक भवन में हो तो जातक मशीनरी का ज्ञाता, अधिक धनी, राजा का मन्त्री, न्यायाधीश, विख्यात और अच्छे यशवाला होता है।

सूर्य चन्द्र बुध गुरु शनि योग फल

जन्म पत्री में रवि, चन्द्र, बुध, गुरु तथा शनि एक साथ हों तो वह जातक डरपोक, शुभ चिन्तकों से रहित, उन्मादी, रोग युक्त, कपट में निपुण, उग्र और परान्नभोक्ता होता है।

सूर्य चन्द्र बुध शुक्र शनि योग फल

जन्माङ्ग में रवि, चन्द्र, बुध, शुक्र, शनि के योग से जातक लम्बा कद रोम युक्त शरीर वाला, मरने तक का उत्साह रखने वाला, सुख, धन एवं पुत्र रहित होता है।

सूर्य चन्द्र गुरु शुक्र शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में सूर्य, चन्द्र, गुरु, शुक्र, शनि के योग से वक्ता, इन्द्रजाल जानने वाला, चञ्चलचित्त स्त्री का प्रिय, बुद्धिमान, बहुत शत्रु वाला और निर्भय होता है।

सूर्य भौम बुध गुरु शुक्र योग फल

यदि जन्माङ्ग में सूर्य, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र के योग से जातक कामी, बहुत घोड़ा रखने वाला, पुण्यवान्, सेनापति, शोकरहित राजा का प्रिय और सौभाग्यवान् होता है।

सूर्य मंगल बुध गुरु शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में रवि, मङ्गल, बुध, गुरु, शनि के एक राशि में होने से जातक सदा उद्विग्न, रोगी, घर-घर भीख माँगने वाला, पुराना मैला वस्त्र पहनने वाला होता है।

चन्द्र मंगल बुध शुक्र शनि योग फल

जन्माङ्ग में चन्द्र, मङ्गल, बुध, शुक्र, शनि के योग होने पर जातक मृत्यु, बन्धन और रोग से पीड़ित लोक में मान्य और रोग से व्यथित, विद्वान्, निर्धन और विकल शरीर वाला होता है।

सूर्य मंगल बुध शुक्र शनि योग फल

जन्माङ्ग में रवि, मङ्गल, बुध, शुक्र एवं शनि के योग से जातक रोग और शत्रु से पीड़ित, स्थानहीन, दुःख से युक्त, सदा क्षोभ रहित होकर भ्रमण करने वाला होता है।

चन्द्र भौम गुरु शुक्र शनि योग फल

जन्माङ्ग में चन्द्र, मङ्गल, गुरु, शुक्र, शनि के योग से जातक नपुंसक, नीच आचरण वाला, दुर्भाग्य युक्त, विकल और धनहीन होता है।

सूर्य भौम गुरु शुक्र शनि योग फल

जन्माङ्ग में सूर्य, मङ्गल, गुरु, शुक्र, शनि के योग से जातक जलयन्त्र, धातु, पारा आदि रसायन निर्माण क्रिया में निपुण और इन्हीं कार्यों को प्रसिद्ध कार्य मानने वाला होता है।

सूर्य बुध गुरु शुक्र शनि योग फल

जन्माङ्ग में रवि, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के योग से जातक बहुत शास्त्र जानने में निपुण, मित्र और गुरुजनों का प्रिय, धर्मात्मा और दयालु होता है।

चन्द्र भौम बुध गुरु शुक्र योग फल

जन्माङ्ग में चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र के योग से जातक सज्जन, नीरोगी शरीर, विद्या, धन और सुख से सम्पन्न, बन्धुओं का हित और बहुत मित्र वाला होता है।

चन्द्र भौम बुध गुरु शनि योग फल

जन्माङ्ग में चन्द्र, मङ्गल, बुध, गुरु, शनि के योग से जातक आँख का रोगी, दरिद्र, परान्नभोगी, दीन और अपने बन्धु वर्गो को लज्जित करने वाला होता है।

चन्द्र भौम बुध शुक्र शनि योग फल

यदि कुण्डली में चन्द्र, भौम, बुध, शुक्र, शनि एक भाव में हों तो जातक अधिक शत्रु व मित्रों से युक्त, परोपकारी, विपरीत स्वभाव वाला एवं अधिक अहंकारी होता है।

चन्द्र बुध गुरु शुक्र शनि योग फल

यदि चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र, शनि एक साथ हों तो जातक राज्य सचिव या राजा के समान, समुदाय का स्वामी एवं सर्वमान्य होता है।

भौम बुध गुरु शुक्र शनि योग फल

यदि भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि एक ही भवन में हों तो जातक सुन्दर मन चित्त वाला, उन्मादी, राजा का प्रिय पात्र, शोक से रहित, निद्रालु एवं निर्धन होता है।

अब आगे छः ग्रहों के योग का फल प्रस्तुत किया जा रहा है—

एक राशि में सूर्य चन्द्र भौम बुध गुरु शुक्र योग फल

यदि जन्माङ्ग में सूर्य चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र एक स्थान में हों तो जातक विद्या वित्त धर्म में लीन कृश, देहधारी अधिक भाषी (बहुभाषी) एवं विशिष्ट बुद्धिमान् होता है।

सूर्य चन्द्र भौम बुध गुरु शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में सूर्य चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शनि एक स्थान में हों तो जातक दानी, परोपकारी, अस्थिर स्वभाव वाला, संत एवं गुणी, निर्जन स्थान में रमण करने वाला होता है।

सूर्य चन्द्र भौम बुध शुक्र शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में सूर्य चन्द्र, भौम, बुध, शुक्र, शनि एक स्थान में हों तो जातक चोर, परस्त्रीगामी, कोढ़ी, अपने मनुष्यों से निरादर पाने वाला, मूर्ख, स्थान से च्युत एवं पुत्रहीन होता है।

सूर्य चन्द्र भौम गुरु शुक्र शनि योग फल

यदि सूर्य, चन्द्र, भौम, गुरु, शुक्र, शनि एक स्थान में हों तो जातक दुष्ट, दूसरों के कार्य में लीन वा करने वाला, क्षय रोगी (टी.वी. का रोगी), श्वास व खाँसी से पीड़ित देहधारी और भाई बन्धुओं में निन्दित होता है।

सूर्य चन्द्र बुध गुरु शुक्र शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में सूर्य चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि एक साथ हों तो जातक राजा का मन्त्री, सौभाग्यवान्, क्षमा से युक्त, शोक से पीड़ित एवं स्त्री और धन से रहित होता है।

सूर्य मंगल बुध गुरु शुक्र शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में सूर्य चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि एक साथ हों तो जातक तीर्थ में सदा रमण करने वाला, धन व पुत्र से हीन, वन या पर्वत का सेवन करने वाला होता है।

चन्द्र मंगल बुध गुरु शुक्र शनि योग फल

यदि जन्माङ्ग में सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि एक साथ हों तो जातक सदा पवित्र, प्रतापी, अधिक स्त्रियों में लीन, राजा का प्यारा, राज्य मन्त्री, धन, पुत्र व सौभाग्य से युत होता है।

सृष्टि के समय योग

जिस समय चन्द्रमा सहित कर्कलग्न में बृहस्पति की दृष्टि से युत और शेष सब ग्रह अपने अपने गृह में थे, तो ब्रह्मा ने इस भूमि की रचना की।

अत: इस प्रकार का योग जिस पुरुष के जन्म समय में होता है तो वह अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ त्रैलोक्य का पालन करता है।

स्थावर जङ्गम की अभिव्यक्ति

समय, निमित्त, आकृति और देश भेद से होराशास्त्र स्थावर (वृक्षादि) और जङ्गम (मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट–पतङ्गादि) का जन्म ज्ञान जिस प्रकार अभिव्यक्त करता है, उस शास्त्र को आगे कहते हैं।

मनुष्येतर जन्म ज्ञान

जातक की कुण्डली में सब पापग्रह बलवान् और सब क्रूरग्रह निर्बल हो तथा वियोनि संज्ञक (जलचर चतुष्पद कीट राशि) लग्न हो, बुध शनि केन्द्र में हों या लग्न को देखते हों तो वियोनि (मनुष्येतर) का जन्म समझना चाहिये। आधान या जन्म समय चन्द्रमा या लग्न में जिस राशि के द्वादशांश हो तत्सदृश अर्थात् उस राशि के समान जन्तु का जन्म समझना चाहिए।

वर्णाकृति भेद ज्ञान का विचार

ग्रहों के योग या दृष्टि द्वारा प्राणियों के वर्ण आकार आदि के भेद मुनियों ने जो वर्णन किये हैं, उनके सारांश को यहाँ भी कहते हैं।

पशु शरीर में राशि विभाग का ज्ञान

चतुष्पद पशुओं के मुख में मेष, गले में वृष, दोनों कन्धा सहित पैर में मिथुन और मीन, पीठ के दोनों भाग में कर्क और कुम्भ, सिंह और मकर अगले पैरों में, कन्या और धनु पिछले पैरों में, तुला, वृश्चिक गुद और लिङ्ग में स्थित समझना चाहिए।

इनमें मिथुन से तुला पर्यन्त दहिने भाग में और वृश्चिक से मीन पर्यन्त वामभाग में राशियों को जानना चाहिए।

वियोनि का वर्ण व चिन्ह ज्ञान

लग्न में मेषादि राशि या उसके नवांश में जो बली हो उसके वर्ण के समान ही वियोनि का वर्ण (आकृति) कहना उचित होगा।

यदि लग्न में ग्रह हो तो बली ग्रह के समान वर्ण या व्रणादि कहना चाहिये।

ग्रह यदि अपने गृह या नवांश में हो तो स्पष्ट वर्ण, यदि अन्य राशि नवांश में हो तो रुक्ष (ग्रह और परराशि मिश्रित) वर्ण समझना चाहिए।

लग्न से सप्तम भाव में ग्रह हो या ग्रह की दृष्टि हो तो उस ग्रह के वर्ण-सदृश उस पशु के पृष्ठ पर चिह्न जानना चाहिए।

जितने ग्रह हों उतने वर्ण के चिह्न समझना चाहिए। जो ग्रह सबसे बलवान् है उसी का वर्ण प्रधान रूप से होता है।

ग्रहों के वर्णों का ज्ञान

वियोनि कुण्डली में लग्न में बलवान् बृहस्पति हो तो पीला, चन्द्रमा हो तो श्वेत, शुक्र हो तो चित्र (अनेक वर्ण), रवि या मङ्गल हो तो लाल वर्ण होता है।

शनि हो तो काला और बुध हो तो शबल (दूर्वा श्याम) वर्ण होता है।

यदि ग्रह अपने गृह और अन्य नवांश में अथवा अपने नवांश या अन्य राशि में रह कर लग्न को देखे तो सोने के सामान वर्ण समझना चाहिए।

प्रकारान्तर से वर्ण का ज्ञान

जन्मलग्नस्थ ग्रह यदि परिघ, परिवेष (मण्डल), मेघ, वृक्ष, मृग, वृष, दण्ड (यष्टी), सर्प, इन्द्र धनुष या धूलि आदि जिस वर्ण से आवृत (आच्छादित) हो उसी प्रकार का वर्ण कहना चाहिये।

अन्यथा ग्रह का जैसा स्वाभाविक वर्ण कहा गया है उसी प्रकार का वर्ण जातक का होता है।

पक्षी जन्म ज्ञान

पक्षी द्रेष्काण या चर नवांश, या बुध का नवमांश लग्न में हो वह किसी बली ग्रह से युत हो और उस पर शनि या चन्द्रमा की दृष्टि या योग हो तो क्रम से स्थल या जल के पक्षी का जन्म कहना चाहिए।

अथवा जलचर राशि लग्न हो तथा बली ग्रह से युत दृष्ट हो तो जल का, स्थलराशि लग्न हो और बली ग्रह से युत या दृष्ट हो तो स्थल का पक्षी और उसी ग्रह के सदृश वर्ण कहना चाहिए।

वृक्ष जन्म योग

यदि वियोनि जन्म का लग्न हो, सूर्य गुरु अथवा चन्द्रमा बलहीन हों तथा शेष ग्रह भी पूर्ण बली न हों तो वृक्षादि का जन्म कहना चाहिए।

यदि लग्न में स्थल राशि का नवमांश हो तो वृक्ष का जन्म बताना चाहिए। यदि जलचर राशि का नवांश हो तो जलीय वृक्ष का जन्म कहना चाहिए।

लग्नांश पति से वृक्षों से भेद का ज्ञान

वियोनि लग्न नवांशपति सूर्य हो तो सागरवान् (सँखुआ आदि) वृक्ष, चन्द्रमा हो तो चिकना और दूध वाला, गुरु हो तो फल वाला (आम, केला आदि) का वृक्ष का जन्म समझना चाहिए।

मङ्गल हो तो कडुआ और काँटे वाला, शनि हो तो दुर्भग (फरहद आदि निष्प्रयोजननीय), शुक्र हो तो पुष्प वाला और चिकना तथा यदि बुध हो तो फलहीन वृक्ष समझना चाहिए।

वृक्ष के शुभाशुभ फल का ज्ञान

उक्त लग्नांशपति पापग्रह हो तथा शुभ ग्रह की राशि में हो उत्तम स्थान, खराब वृक्ष, तथा अंशपति शुभ हो और पाप राशि में हो तो खराब भूमि में उत्तम वृक्ष कहना चाहिए।

इसी से सिद्ध है कि शुभग्रह शुभराशि में हो तो सुभूमि में सुवृक्ष और पापग्रह पापराशि में हो तो कुभूमि कुवृक्ष का जन्म कहना चाहिए।

मिश्र से मिश्र (अनेक प्रकार के) वृक्ष समझना चाहिए।

उनमें जो स्थल राशिपति हो उससे स्थलीय वृक्ष, जो जलराशिपति हो उससे जलीय वृक्ष का जन्म समझना चाहिए।

वृक्षों की संख्या का ज्ञान

वियोनि कुण्डली में उक्त अंशपति लग्न राशि से आगे जितनी राशि में हो उतने वृक्ष समझना चाहिए।

अपने नवमांश (जिसमें ग्रह हो उस) से लग्न नवमांश की जितनी संख्या हो उतने वृक्ष की संख्या समझना चाहिए।

वियोनि जन्म ज्ञान

वियोनि कुण्डली में शुभग्रह निर्बल होकर अपने नवांश में बैठे हो, तथा पापग्रह बली होकर अपने राशि या पाप के नवांश में बैठे हों तो वियोनि जन्म कहना चाहिए।

लग्नांश ग्रह यदि निर्बल ग्रह की राशि में हो या अस्त हो तो युद्ध में पराजित, भेदित हो, पाप से युत या दृष्ट हो तो उस समय उत्पन्न वियोनि का शीघ्र ही नाश होता है।

वियोनि ज्ञान में विशेष कथन

उद्भिज्ज, जरायुज, स्वेदज और अण्डज इन चारो प्रकार के जन्तुओं के जन्म ग्रहों के योगादि लक्षणों से पृथक् पृथक् वर्णन करता हूँ।

चतुष्पद जन्म ज्ञान

वियोनि कुण्डली में दुर्बल राशि पें दुर्बल ग्रह हों सूर्य चतुष्पद राशि में हो तथा मेष लग्न हो तो सामान्यतया चार पैर वाले प्राणी का का जन्म होता है।

इस प्रकार पूर्व मैंने संक्षेप नें सामान्य वियोनि-जन्म कहा है।

अब कौतुक-जनक (आश्चर्यजनक) विशेषरूप से वियोनि जन्म ज्ञान का वर्णन करते हैं।

विशेष रीति से वियोनि जन्म ज्ञान

इस ग्रन्थ में पूर्व प्रत्येक राशि में जो जो द्वादशांश कहे गये हैं, वे सबल रवि, चन्द्र और लग्न में हों तो वियोनिसंज्ञक द्वादशांश में वियोनि का जन्म होता है।

जैसे मेष राशि में चन्द्रमा मेष के द्वादशांश में हो तो बकरा, मेढ़ा आदि का जन्म, वृष के द्वादशांश में गाय, भैंस आदि का, मिथुन के अंश मनुष्यरूप (वानर आदि) का, कर्क में, केकड़ा, कछुआ आदि का, सिंह के अंश में सिंह, बाघ आदि का, कन्या के अंश में मनुष्यों का, तुला के अंश में मनुष्य की आकृति वाले का, वृश्चिक के अंश में बिच्छू, साँप आदि का, धनु के अंश में घोड़े, गधे आदि का, मकर के अंश (पूर्वार्ध) में हारेन आदि, उत्तरार्ध में मगर आदि का, कुम्भ के अंश में मनुष्य का, मीन के द्वादशांश में मछली आदि जलजन्तुओं का जन्म कहना चाहिए।

जिस प्रकार मेष के द्वादशांश में नाना प्रकार के जन्तुओं का जन्म कहा गया है; इसी प्रकार शेष राशि के द्वादशांशों में भी कहना चाहिये।

जन्तुओं की आकृति व यमलादि का ज्ञान

लग्न के द्वादश भाग में प्रथम भाग में जो राशि वही दादशांश वियोनि कुण्डली में होता है तो उसी की आकृति वाले प्राणियों का जन्म समझना चाहिए। प्रथम के आधार पर ही आगे के द्वादशांशवश वर्ण आकृति आदि कहना चाहिए।

जैसे पूर्व मनुष्यों में लग्नगत पुरुष ग्रह के नवांश और द्विस्वभाव राशि से यमलादि जन्म कहा गया है उसी प्रकार प्रथम द्वादशांश में पुरुष ग्रह स्त्री ग्रह के अंश को द्विस्वभावादि देखकर एक वा अनेक का जन्म कहना चाहिये।

एक से अधिक वियोनि जन्म ज्ञान

जैसे श्वान (कुत्ता) आदि जन्तुओं का बहुत सन्तान होती है, अतः उसके प्रसव में लग्न में जितनी द्वादशांश संख्या हो उतनी सन्तति पुरुष, या स्त्री की संख्या समझनी चाहिये।

यदि लग्न में बृहस्पति, शनि या चन्द्र हो तो कछुए आदि जन्तु की द्वादशांश संख्या तुल्य सन्तति कहना चाहिये।

शुक्र, मंगल, बुध या चन्द्रमा अथवा शनि बलयुक्त हों तो पूर्ववत् (मनुष्य जातकोक्तवत्) अपने अपने अंश सदृश सत्त्व (प्राणियों) के देह (शरीर) को बनाते हैं।

लोक विपरीत प्रसव ज्ञान

प्रसव काल में ग्रह अपने नवांश से दूसरे ग्रह के नवांश में चला जाय तो संसार के विरुद्ध उत्पन्न होने वाले प्राणी घी आकृति (स्वरूप) निश्चय ही होती है।

वृश्चिक लग्नस्थ द्विपद वा नवम नवांश फल

वियोनि कुण्डली में वृश्चिक लग्न में द्विपद नवमांश हो तो बिल में रहने वाले सर्प, गोह, शाही, चूहा, कीड़ा, न्योला, बिच्छू, गोजर, विना विष के सर्प आदि घोर जन्तुओं का जन्म कहना चाहिए।

धनु लग्न धनु नवांश या धनु द्वादशांश फल

वियोनि जन्म कुण्डली में धनु लग्न या नवमांश या द्वादशांश धनु का हो उस पर गुरु की दृष्टि हो तो घोड़े, खच्चर, गाए, भैंस, ऊँट का जन्म कहना तथा गुरु की राशि या अंश सदृश उस जन्तु के वर्ण आदि पूर्ववत् समझना चाहिए।

मकर लग्नस्थ मकर नवांश या मकर द्वादशांश फल

वियोनि जन्म कुण्डली के मकर लग्न में यदि मकर का नवांश या द्वादशांश हो तो जङ्गली जन्तु का जन्म जैसे हाथी, गैंड़ा, सूकर, भालू, बाघ, गीदड़ आदि मांसभक्षी का जन्म समझना चाहिए।

मीन लग्नस्थ मीन नवांश या मीन द्वादशांश फल

वियोनि जन्म कुण्डली के मीन लग्न में मीन के नवमांश या द्वादशांश हो उस पर गुरु की दृष्टि हो तो अगाध जल में रहने वाले मछली आदि जीव का जन्म समझना चाहिए।

मेष या वृष लग्नस्थ मेष या वृष नवांश फल

वियोनि जन्म कुण्डली के मेष लग्न में मेष का अंश हो उस पर मङ्गल की दृष्टि हो तो मेढ़ा, बकड़ा आदि, तथा वृषलग्न में वृषांश हो उस पर शुक्र की दृष्टि हो तो गाय, भैंस आदि जन्तु का जन्म कहना चाहिए।

पूर्वोक्त जो जो राशियाँ अपने अपने अंश सहित लग्न में हों और अपने अपने स्वामी से दृष्ट हों तो उन–उन राशियों के राशीश के सदृश जन्तु का जन्म निश्चित रूप से कहना चाहिए।

पूर्वोक्त ग्राम्य राशि लग्न हो उसमें यदि सिंह, वृश्चिक, मकर का नवमांश हो तो गांव में पालित जंगली प्राणियों का जन्म कहना चाहिए।

एवं ग्राम्य राशि (मिथुन आदि) लग्न में जैसे स्थल या जल राशि के नवांश हो, उसी प्रकार स्थलचर या जलचर जन्तुओं का जन्म कहना चाहिए।

तुला लग्न में तुला के द्रेष्काण शुक्र से दृष्ट हो तो तोता, मैना, कोयल, चकोर, प्रभावशाली अर्थात् कान्तिमान पक्षी का जन्म कहना चाहिए।

वियोनि जन्म कुण्डली में सिंह लग्न में सिंह के द्वादशांश हो उस पर सूर्य की पूर्ण दृष्टि हो तो मुर्गा, मयूर, तित्तिर, कबूतर, चातक आदि का जन्म कहना चाहिए।

एवं वियोनि जन्म कुण्डली में स्थिर राशि लग्न हो उसमें स्थिर राशि का द्वादशांश शनि से दृष्ट हो तो स्थिर मठ, मन्दिर, मकान आदि की उत्पत्ति अर्थात् प्रारम्भ करना चाहिये। उसके रङ्ग रूप–ग्रहों के रूप रंग अनुसार पूर्ववत् समझना चाहिये। जैसे सूतिका के घर का ज्ञान कहा गया है।

यहाँ समस्त जीवों के कारणभूत आधान या निषेक या गर्भाधान विषय को रावण द्वारा इस प्रकार कहा गया है—

गर्भाधानयोग्य रजोदर्शन

स्त्री की जन्म राशि से चन्द्रमा जब अनुपचय राशि में अर्थात् राशि से १/२/४/५/७/८/९/१२ इन स्थानों में हो और गोचर में स्थित मङ्गल की चन्द्रमा पर पूर्ण दृष्टि हो तो प्रति मास स्त्री को मासिक धर्म होता है। ऐसा बहुत आचार्यों का कथन है तथा सर्वार्थचिन्तामणि आदि ग्रन्थ से भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है।

रजो दर्शन में कारण

स्त्रियों को प्रत्येक मास में योनि से तीन दिन तक रक्त स्राव होता है। उसी को रजोदर्शन कहते हैं। उस रजो दर्शन का कारण मङ्गल और चन्द्रमा हैं। क्योंकि जलमय चन्द्रमा और अग्निमय मङ्गल के शास्त्रकारों ने माना है। इसलिए जल से रुधिर और अग्नि से पित्त की उत्पत्ति होती है। जब पित्त के द्वारा रुधिर (खून) में हलचल होती है तो स्त्रियों को मासिक धर्म होता है।

गर्भाधान में अक्षम रजोदर्शन

इस प्रकार जो प्रत्येक मास स्त्रियों को मासिक धर्म होता है; उस ही विद्वानों ने गर्भ का कारण स्वीकार किया है।

यदि स्त्री की शशि से ३/६/१०/११ वें चन्द्रमा हो तो वह मासिक धर्म निष्फल होता है अर्थात् गर्भधारण की क्षमता उस रजोदर्शन में नहीं होती है।

स्त्री पुरुष संयोग कथन

पुरुष की राशि से उपचय (३/६/१०/११) राशि में चन्द्रमा हो और उस पर गुरु की या अपने मित्र ग्रह की विशेष कर शुक्र की दृष्टि रहने पर यदि स्त्री पुरुष संयोग होता है तो गर्भ धारण होगा।

तीन दिन तक रजोदर्शन गर्भ धारण करने में समर्थ नहीं होता है तथा धर्मशास्त्र में त्याज्य भी है।

इसलिये ५वें दिन से १६वें दिन तक ही निषेक का समय माना गया है। इसी से पुरुष स्त्री की राशि से चन्द्रमा को पूर्वोक्त रीति से जानकर उक्त काल में निषेक करने पर सन्तान अवश्य होती है।

अन्य पुरुष संयोग कथन

यदि उपचय राशि में चन्द्रमा रजोदर्शन के समय मङ्गल से दृष्ट हो तो धूर्त पुरुष से स्त्री का संयोग, सूर्य से दृष्ट हो तो राजपुरुष से तथा शनि से दृष्ट हो तो नौकर से स्त्री का संयोग होता है।

इस प्रकार एक एक पाप ग्रह से दृष्ट हो और अन्य (शुभग्रह) से अदृष्ट होने पर पूर्वोक्त फल समझना चाहिए।

यदि भौमादि सब पापग्रहों की दृष्टि चन्द्रमा पर हो तो वह स्त्री घर का परित्याग करके वेश्या हो जाती है।

संभोग प्रकार का विचार

गर्भाधान कालिक लग्न से अथवा प्रश्नकालिक लग्न से सप्तमभाव स्थित द्विपदादि अर्थात् द्विपद राशि अथवा चतुष्पद राशि जिस रीति से संभोग करता है अभिप्राय यह है कि यदि सप्तम में द्विपद राशि हो तो द्विपद की तरह चतुष्पद हो तो चतुष्पद की तरह स्त्री पुरुष के संभोग को कहना चाहिए।

यदि सप्तमभाव पर पाप ग्रह की दृष्टि या उससे युति हो तो क्रोध व लड़ाई के साथ, यदि शुभ ग्रह से युत दृष्ट सप्तमभाव हो तो कामशास्त्र की रीति से शान्ति पूर्वक हास–विलासादि से युत, यदि शुभ पाप दोनों की दृष्टि या युति हो तो शुक्र (वीर्य) शोणित (रज) संयुक्त गर्भावास (बच्चेदानी) में कर्मानुकूल विषय वृत्ति पतित होती है।

गर्भ सम्भव योग

गर्भाधान के समय यदि रवि, शुक्र समराश्यंश में बली होकर पुरुष के उपचय राशि में हो, अथवा मङ्गल, चन्द्रमा बली होकर स्त्री के उपचय राशि में हो तो गर्भ सम्भव कहना चाहिए।

यदि शुक्र, रवि, मङ्गल चन्द्र अपने नवांश में होकर उपचय स्थान में हो या गुरु (१/५/९) भाव में बली होकर हो तो भी गर्भ सम्भव कहना चाहिए।

गर्भस्थिति का स्वरूप

गर्भाधान समय में स्त्री पुरुष का जिस प्रकार का मनोभाव, जिस प्रकार की

अभिलाषा, कफ पित्तादि जिस प्रकार के दोष से युत हो उसी प्रकार के गुण दोष से **युक्त गर्भ में** पलने वाला बालक होता है।

गर्भ में पुत्रादि का ज्ञान

लग्न, चन्द्र, गुरु, रवि ये विषमराशि और विषम नवांश में बली होकर हो तो पुरुष का जन्म, यदि समराशि, सम नवांश में हो तो स्त्री (कन्या) का जन्म समझना चाहिए।

यदि बलवान् गुरु, रवि विषम राशि में हो तो पुरुष का, यदि शुक्र, चन्द्र, मङ्गल समराशि में हो तो कन्या जन्म कहना चाहिए।

पुत्र जन्म योग

लग्न को छोड़कर अन्य विषम स्थान में शनि हो तो पुत्र जन्मकारक होता है। इस प्रकार आधानकाल में ग्रह के बलानुसार पुत्र या कन्या का जन्म कहना चाहिए।

नपुंसक जन्म योग कथन

प्रश्न कालिक या गर्भाधान कालिक कुण्डली में यदि बलवान् विषम राशि में सूर्य चन्द्रमा परस्पर दृष्ट हों अर्थात् सूर्य चन्द्र को देखता हो और चन्द्र सूर्य को देखता हो तो नपुंसक का जन्म कहना चाहिए यह प्रथम योग है।

यदि विषम राशिगत बली शनि और बुध परस्पर दृष्ट हो तो नपुंसक का जन्म कहना चाहिए। यह द्वितीय योग है।

यदि विषम राशिगत मंगल समराशि में सूर्य को देखता हो तो नपुंसक का जन्म कहना चाहिए। यह तृतीय योग है।

यदि समराशिगत मंगल विषमराशिस्थ लग्न और चन्द्र हो तो नपुंसक का जन्म कहना चाहिए। यह चतुर्थ योग है।

यदि विषम राशिस्थ बुध और समराशिस्थ चन्द्रमा को मंगल देखता हो तो नपुंसक का जन्म कहना चाहिए। यह पंचम योग है।

यदि विषम राशि में या विषम राशि के नवांश में लग्न चन्द्र का और बुध हों तो और उन पर शुक्र शनि की दृष्टि हो तो भी नपुंसक का जन्म कहना चाहिए। यह छठा योग है।

यमल योग विचार

लग्न और चन्द्रमा समराशि में हो उस पर बली ग्रह की दृष्टि हो तो गर्भ में मिथुन (यमल) समझना चाहिए।

चन्द्रमा, शुक्र समराशि में हो और गुरु, शुक्र, बुध, लग्न ये विषम राशि में बली या द्विस्वभाव में हो तो भी यमल स्त्री पुरुष समझना चाहिए।

यदि रवि, गुरु मिथुन या धनु में बुध से दृष्ट हो तो पुरुष का, तथा शुक्र, चन्द्र, मङ्गल यदि कन्या या मीन में हो तो दो कन्या का जन्म कहना चाहिए।

लग्नेश भातृ स्थान में हो या उच्च स्थान में हो तो यमल योग अर्थात् दो सन्तान की उत्पत्ति होती है।

गर्भ में तीन बालकों का योग

आधान काल में या जन्म काल में यदि द्विस्वभाव राशि के नवमांश में ग्रह या लग्न हो और मिथुन राशि के नवांश में स्थित बुध लग्न और ग्रहों को देखता हो तो गर्भ में एक कन्या और दो पुत्र कहना चाहिए।

यदि कन्या राशि के नवांश में स्थित बुध पूर्वोक्त स्थिति में विद्यमान ग्रह और लग्न को देखें तो गर्भ में २ कन्या १ पुत्र कहना चाहिए।

यदि मिथुन या धनु राशि के नवांश में ग्रह और लग्न हों तथा मिथुन राशि के नवांश में स्थित बुध लग्न और ग्रहों को देखता हो तो गर्भ में तीन बालक (पुरुष) कहना चाहिए।

यदि कन्या या मीन राशि के नवांश में लग्न व ग्रह हों और कन्या राशि के नवांश में स्थित बुध देखता हो तो गर्भ में ३ कन्याओं को समझना चाहिए। अर्थात् तीन कन्याओं का जन्म होता है।

प्रत्येक मास में गर्भ की स्थिति विचार

गर्भाधान से ७ मास में क्रम से १ कलल (शुक्र शोणित मिश्रण) २ पिण्ड, ३ शाखा (अवयव), ४ अस्थि, ५ त्वचा, ६ रोम और, ७ चेतन्य होते हैं।

अष्टम मास में प्यास, भूख, ९वें में उद्वेग और १०वें मास में पूर्ण पके फल के समान बाहर निकल आता है।

गर्भ के दस मासों का स्वामी

इन १० मासों के स्वामी क्रम से १ शुक्र, २ मङ्गल, ३ गुरु, ४ रवि, ५ चन्द्र, ६ शनि, ७ बुध, ८ लग्नेश, ९ चन्द्र, १० सूर्य होते हैं। इन मासों के शुभाशुभत्व से गर्भ के शुभाशुभत्व समझना चाहिए।

गर्भपात योग

यदि गर्भाधान समय में जो ग्रह दिव्यान्तरिक्षादि उत्पात से हत या पाप ग्रह से पराजित हो तो उस ग्रह के मास में गर्भपतन होता है अथवा लग्न राशि गर्भपतन का कारण होता है।

अथवा आधान कालिक लग्न में शनि मङ्गल हो अथवा शनि मङ्गल की राशि (१०/११/१/८) में चन्द्रमा हो अथवा शनि मङ्गल से दृष्ट चन्द्रमा हो तो गर्भ का पतन होता है।

गर्भपुष्टि ज्ञान

आधान काल में या प्रश्नकाल में होरा ''होरेतिलग्न'' अर्थात् लग्न में शुभ ग्रह हो या चन्द्र शुभग्रह से युत हो अथवा लग्न या चन्द्र से ९,५,७,२,१०,४ भावों में शुभग्रह हो अथवा ३,११ भाव में पापग्रह हों अथवा लग्न या चन्द्र पर सूर्य की पूर्ण दृष्टि हो तो प्रसव काल तक गर्भ सुखी अर्थात् सुरक्षित रहता है।

गर्भ सहित गर्भवती मरण विचार

प्रश्नकाल या आधान काल में सूर्य या चन्द्रमा यदि दो पाप ग्रह के मध्य में हो उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं हो तो गर्भ सहित स्त्री का मरण होता है।

लग्न और सप्तम में पाप ग्रह हो उन पर शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं हो अथवा लग्न में शनि तथा क्षीण चन्द्र हो उन पर मङ्गल की दृष्टि हो तो गर्भवती का मरण होता है।

रवि या क्षीण चन्द्रमा द्वादश भाव में और मङ्गल चतुर्थ भाव में हो अथवा दो पाप ग्रहों के बीच शुक्र हो तो इन योगो में भी गर्भवती का मरण होता है।

चन्द्रमा से या लग्न से चतुर्थ भाव में पाप ग्रह हो तो गर्भ नष्ट हो तो माता के साथ ही गर्भ नष्ट होता है।

चतुर्थ भाव में मङ्गल १२ में रवि और चन्द्रमा क्षीण हो अथवा मङ्गल लग्न में हो और १२, २ में पाप ग्रह हो उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं हो तब भी मरण होता है।

सप्तम में रवि लग्न में मङ्गल हो तो शस्त्र से सगर्भ स्त्री का मरण होता है।

गर्भ वृद्धि योग

गर्भाधानकालिक लग्न पर बलवान बुध, गुरु, शुक्र और रवि की दृष्टि हो तो गर्भ पुष्ट होता है अर्थात् गर्भ का पतन नहीं होता।

एवं प्रत्येक मास में मासेश्वर के बल के अनुसार मासेश्वर के स्वभाव और गुणों से युक्त होता है।

तीसरे मास में गर्भिणी स्त्री को दोहद (अनेक प्रकार के वस्तु खाने पीने की इच्छा) होती है। वह मास स्वामी (मासेश) के स्वभाव और लग्न, योगादि से भी समझना चाहिए।

गर्भ समय से प्रसव मास का ज्ञान

यदि आधान काल में चरराशि में सूर्य हो तो १० मास में, स्थिर राशि में हो तो ११वें मास में और द्विस्वभाव में हो तो १२वें मास में प्रसव होता है।

मतान्तर से कहते हैं कि चर राशि का चन्द्र हो तो १०वें में; स्थिर का हो तो ११वें में; द्विस्वभाव का हो तो १२वें मास में प्रसव होता है।

सर्वसम्मत से जन्म राशि ज्ञान

गर्भाधान काल में जिस राशि के द्वादशांश में चन्द्रमा हो उससे उतने संख्यक राशि में चन्द्रमा के जाने पर संभव (१० आदि) मास में प्रसव कहना चाहिए।

प्रसव काल का ज्ञान

गर्भाधान कालिक दिनसंज्ञक या रात्रिसंज्ञक लग्न हो तो राशि के जितने अंश उदित हुए हों उतना ही दिन या रात्रि व्यतीत होने पर प्रसव कहना चाहिए।

जैसे ३० अंश में दिनमान, या रात्रिमान हो, तो लग्न के गतांश में क्या? इस प्रकार त्रैराशिक से दिन या रात्रि गत इष्टघटी का ज्ञान होता है। बृहद् पाराशरादि होराशास्त्र के प्रतिष्ठित ग्रन्थों में भी इस विषय को प्रतिपादित किया गया है।

प्रसवकालिक लग्नादि का ज्ञान

पूर्व कथन से दिन रात्रि ज्ञान करके जन्म के समय में होरादि षड्वर्ग में स्थित लग्न का ज्ञान युक्ति से कहना चाहिये।

इस प्रकार उदय (लग्न) समुदाय (षड्वर्गादि) से दिन (वासर) पक्ष मुहूर्त मास संज्ञक राशि में प्रसव होता है।

इस प्रकार आधान समय में प्रथम प्रसव समय का निश्चय करके ज्योतिषी को जातकोक्त फलादेश का विचार करना चाहिए।

नेत्रहीन योग

यदि आधान में सिंह लग्न रवि और चन्द्रमा हो उन पर शनि मङ्गल की दृष्टि हो तो गर्भस्थ शिशु जन्म काल से ही अन्धा होता है।

उन्हीं (रवि, चन्द्र) को यदि मङ्गल और बुध देखते हों तो नेत्र में फूला होता है।

मूक योग

पाप ग्रह राशि सन्धि में हो, वृषस्थ (उच्चस्थ) चन्द्रमा पर मङ्गल शनि और रवि की दृष्टि हो तो अधिक दिन के बाद बोलने की शक्ति होती है। अर्थात् वह बालक कुछ दिनों के बाद बोलता है।

जड एवं सदन्त योग

यदि समस्त पाप ग्रह राशि सन्धि में हो व चन्द्रमा शुभ ग्रहों की दृष्टि से हीन हो तो जातक जड़ (मूर्ख) होता है।

यदि शनि, मङ्गल बुध के नवमांश में हो तो गर्भस्थ बालक सदन्त (दाँत के सहित) जन्म लेता है।

अधिकाङ्ग योग

लग्न से ९/५ में बुध हो और शेष सब ग्रह निर्बल हो तो २ मुख, ४ हाथ, ४ पैर वाला जातक होता है।

वामन एवं कुब्ज योग

मकर के अन्तिम नवांश में लग्न हो और उस पर रवि, चन्द्र, शनि की दृष्टि हो तो गर्भस्थ बालक वामन (बौना) होता है।

यदि कर्क लग्न में चन्द्रमा हो उसे मङ्गल और शनि देखते हो तो गर्भस्थ बालक कुबड़ा होता है।

पङ्गु योग

मीन लग्न हो उस पर मङ्गल, शनि और चन्द्र की दृष्टि हो तो गर्भस्थ बालक पङ्गु होता है। ऊपर कहे हुए योगों में शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो यत्न करते रहने से दोष की निवृत्ति समझना चाहिये।

बिना शिर, पैर, हाथ के जन्म योग

आधान काल में पंचम भावस्थ द्रेष्काण मंगल से युत हो और शनि, चन्द्र, सूर्य से दृष्ट हो तो गर्भ में स्थित बालक को हाथ से रहित कहना चाहिए।

यदि नवम भावस्थ द्रेष्काण मंगल से युत या उक्त ग्रहों से दृष्ट हो तो बिना पैर का अर्थात् पङ्गु का जन्म होगा।

यदि लग्नस्थ द्रेष्काण मंगल से युत या उक्त ग्रहों से दृष्ट हो तो बिना मस्तक का गर्भस्थ बालक को कहना चाहिए।

इस आधानाध्याय में जो योग कहे गये हैं उनमें जो युक्त हो वे जन्म लग्न से भी समझना चाहिये तथा जो आधान में नहीं कहे गये हैं तथा आगे जन्म या सूतिका में कहे गये हैं उनको भी आधान लग्न से विचार करना उचित ही जानना चाहिए।

लग्न काल के निर्णयार्थ आधान काल कहने के पश्चात् जन्म या सूतिका का प्रतिपादन करते हैं—

लग्नादि से जन्मयोग का ज्ञान

जन्मकाल के समय लग्न में शीर्षोदय राशि हो तो मस्तक से, पृष्ठोदय राशि हो तो पैर और उभयोदय राशि हो तो हाथ से प्रसव (जन्म) होता है।

लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो सुख पूर्वक, अशुभ ग्रह की दृष्टि हो तो कष्ट के साथ जन्म समझना चाहिए।

प्रसव स्थान का विचार

लग्न में जो नवमांश हो उस राशि के सदृश स्थान में प्रसव होता है अर्थात् बालक का जन्म होता है।

यदि द्विस्वभाव नवांश हो तो मार्ग में तथा स्थिरनवांश हो तो अपने स्थान में अर्थात् सिद्ध हुआ कि चर नवांश हो तो परदेश में जन्म समझना चाहिए।

लग्न में अपना नवांश हो तो अपने घर में अन्य नवांश हो तो अन्यत्र जन्म समझना चाहिए। पितृसंज्ञक आदि ग्रह के बल से वन में जन्म होता है।

अर्थात् पितृ संज्ञक सूर्य शनि ग्रह बली हो तो पिता के घर में, मातृसंज्ञक ग्रह बली हो तो माता के घर में जन्म कहना चाहिए।

सभी शुभ ग्रह नीच राशि में हो तो प्राकार अर्थात् घर के बाहर चहारदीवारी, वृक्ष के नीचे नदी तट में जन्म कहना चाहिये।

यदि सभी ग्रह एक स्थान में होकर यदि लग्न और चन्द्रमा को न देखे तो महावन (निर्जन स्थान) में जन्म होता है।

जल चर राशि लग्न हो उसको जलचर राशिस्थ पूर्ण चन्द्र देखता हो और चतुर्थ लग्न या दशमभाव में हो तो जल में प्रसव होता है।

लग्न में शुभग्रह हो और पूर्ण चन्द्र स्वराशि या जलचर राशि में हो अथवा शुभ ग्रह चतुर्थ भाव में हो या लग्न और चन्द्रमा जलचर राशि में हो तो जल में प्रसव समझना चाहिए।

वृश्चिक या कर्क लग्न में शनि हो उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो अवट (गड्ढे) में प्रसव होता है।

ऐसा यवन और मगित्थ आचार्यों की सम्मति है।

जलचर राशि लग्नगत शनि को बुध देखता हो तो क्रीडास्थान में, रवि देखता हो तो देवालय में, चन्द्रमा देखता हो तो ऊसर भूमि में प्रसव होता है।

वन चर राशि लग्न हो तो पर्वत, वन, दुर्ग, स्थान में जन्म कहना चाहिए।

एवं द्विपद राशि लग्न में शनि को मङ्गल देखता हो तो शिल्पशाला में, रवि देखता हो तो गोशाला में, राजभवन या देवालय में जन्म हो।

और शुक्र चन्द्रमा देखते हों तो रम्यस्थान में और गुरु देखता हो तो अग्निहोत्र स्थान में जन्म होता है।

सूतिकागृह विचार

जन्मकाल में यदि कर्कराशि गत गुरु दशम भाव में हो तो २, ३ या ४ मंजिल के मकान में जन्म होता है।

शुभग्रह यदि शनि के नवांश में ४, १० वें भाव में हो तो असाल (वरामदा रहित) घर में प्रसव कहना चाहिए।

सूतिका गृह में शयन स्थान ज्ञान

यदि जातक के जन्मकाल में मेष, वृष लग्न हो तो घर के पूर्वभाग में, मिथुन लग्न में अग्निकोण में कर्क, सिंह, लग्न में दक्षिण में, कन्या लग्न में नैर्ऋण्य कोण

में, तुला वृश्चिक में, पश्चिम और धनु में वायव्य कोण में, मकर कुम्भ में उत्तर, मीन में ईशानकोण में सूतिका का शयन स्थान होता है।

सूतिका गृह के स्वरूप ज्ञान

जन्म काल में यदि शुक्र बली हो तो नवीन और चित्रयुत गृह में, गुरु बली हो तो दृढ (मजबूत), मङ्गल बली हो तो जला हुआ, रवि बली हो तो अधिक कष्ट से युक्त, चन्द्र बलवान् हो तो नवीन गृह में और शनि बलवान् हो तो प्राचीन सूतिका गृह में जन्म होता है।

सूतिका की शय्या का विचार

जिस प्रकार गृह में मेषादि राशि की स्थिति कही गई है उसी प्रकार शय्या (खटिया) में भी समझना।

जिस स्थान में जो ग्रह हो उस स्थान में उस ग्रह के वस्त्र से निर्मित शय्या पर गलीचा, उल्लोंच आदि आस्तरण कहना चाहिए।

सिरहाने से पौथान पर्यन्त न्यारा करना तथा ग्रह के सदृशचिन्ह का विचार करना। जहाँ द्विस्वभाव राशि हो वहाँ खटिया में न तत्व (नीचे को दबा हुआ) समझना चाहिए।

खटिये के लग्न से ३, ६, ९, १२ भावों को चारों पाँव और शेष राशि शय्या के अन्य अङ्ग समझना चाहिए।

सूतिका का भूमि शयन एवं उपसूतिका ज्ञान

यदि जन्मकाल में चन्द्रमा अपने नीच में होकर चतुर्थ या लग्न में हो तो भूमि में सूतिका का निवास समझना चाहिए।

चन्द्रमा से लग्न तक जितने ग्रह हो उतनी उपसूतिका सहायक संख्या होती है।

लग्न से आगे सप्तम भाव पर्यन्त जितने ग्रह हो उतनी उप-सूतिका भीतर और सप्तम से आगे लग्न पर्यन्त ग्रह हो उतनी बाहर में उपसूतिकाएँ जानना चाहिए।

उनमें भी जितने शुभ ग्रह हो उतनी सुलक्षणा, सुरूपा, सौभाग्यवती भूषणयुक्ता स्त्री, तथा जितने पाप ग्रह हो उतनी कुरुपा, दुर्भगा और मलिना स्त्री समझना चाहिए।

मिश्र ग्रह बलवान् हो तो मध्यम रूप गुण वाली समझना चाहिए।

इस प्रकार का विचार ग्रह बल के अनुसार करना चाहिए।

दीपक की वर्त्ति व तेल का ज्ञान

पूर्वोक्त विधि से सूतिका गृह में १२ विभागस्थ राशियों में जिस भाग में सूर्य हो उस स्थान पर दीप समझना चाहिए।

यदि चर राशि हो तो दीप को चल तथा स्थिर राशि हो तो स्थिर जानना चाहिए।

लग्न के जितने अंश उदित हो चुके हों उतने ही भाग वत्ती का भी जला हुआ कहना चाहिए।

चन्द्रमा जिस प्रकार पूर्ण या क्षीण हो उसी प्रकार दीप तेल भी पूर्ण या न्यून जानना चाहिए।

अधिक दीप का ज्ञान

यदि जन्म काल में बलवान् सूर्य भौम से दृष्ट हो तो प्रसव काल में अधिक दीप समझना चाहिए।

तथा अन्य ग्रह निर्बल हों तो प्रसव में तृण जलाकर प्रकाश होता है।

प्रसव के समय अन्धकार विचार

यदि जन्म काल में चन्द्रमा शनि के नवांश में या जलचर राशि के नवांश में हो या शनि से युत् चतुर्थ भाव में अथवा शनि से दृष्ट चन्द्र हो तो अन्धकार में जन्म होता है। इसमें सन्देह नहीं।

पिता की अनुपस्थिति में जन्म योग

यदि चन्द्रमा लग्न को नहीं देखता हो तो पिता के परोक्ष में जन्म कहना।

यदि १० वें भाव से आगे होकर सूर्य चर राशि में हो तो परदेशस्थ पिता के परोक्ष में जन्म समझना चाहिए।

दिन में रवि और रात्रि में शनि यदि मङ्गल से दृष्ट हो तो पिता के परोक्ष में जन्म होता है।

यदि उक्त रवि या शनिश्चर राशि में मङ्गल युत दृष्ट हो तो पिता को परदेश में मृत समझना चाहिये।

सूर्य से ५, ९, ७ भाव पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो पिता को जेल में समझना चाहिए।

यहाँ भी चर राशि हो तो परदेश में, स्थिर हो तो स्वदेश में, द्विस्वभाव हो तो मार्ग में समझना चाहिए।

अन्य ग्रन्थों में जैसे लघु जातक एवं लग्न जातक में भी ऐसा ही कहा गया है।

अर्थात् लग्न को चन्द्रमा नहीं देखता हो तो पिता के परोक्ष में बालक का जन्म कहना चाहिए।

और सूर्य मध्यभ्रष्ट अर्थात् नवें आठवें, ग्यारहवें और बारहवें स्थान में चरराशि (मेष कर्क तुला और मकर) का हो तो उत्पन्न शिशु का पिता विदेश में समझना चाहिए।

कष्ट में प्रसव एवं माता के सुख का विचार

जन्मकाल के समय यदि ७, ९, ५ भावों में पाप ग्रह हो तो कष्ट युक्त प्रसव और यदि १०, ४ भाव में शुभ ग्रह हों तो सुख से प्रसव और अधिक सम्पत्ति प्राप्त होती है।

परजात जन्म योग

यदि लग्न और चन्द्रमा को गुरु नहीं देखता हो अथवा चन्द्र सहित सूर्य को या पाप युक्त रवि और चन्द्रमा को गुरु नहीं देखता हो तो परजात अर्थात् दूसरे से उत्पन्न नवजात को समझना चाहिए।

यदि गुरु, चन्द्र, रवि तीनों नीच राशि में हो तथा शनि लग्न में हो और लग्न, चन्द्रमा, शुक्र, इन पर शुभ ग्रह की दृष्टि न हों तो भी परजात (अन्य से उत्पन्न) नवजात को समझना चाहिए।

प्रसव समय में मातृकष्ट का विचार

जन्मकाल के समय चन्द्र सहित पापग्रह चौथे, दशवें भाव में हो तो जातक की माता को क्लेश होता है। चन्द्रमा से सप्तम स्थान में पापग्रहों पर मङ्गल की दृष्टि हो तो मरण होता है।

चन्द्रमा से दशम स्थान में पापयुत रवि हो तो माता का मरण होता है तथा शुक्र से ५वें और ९वें स्थान में शनि सहित रवि हो उस पर मङ्गल की दृष्टि हो तो भी माता का मरण समझना चाहिए।

रात्रि में जन्म हो चन्द्रमा से ५/९ स्थान में शनि यदि पापग्रह से दृष्ट हो अथवा दिन में जन्म हो शुक्र से ५/९ स्थान में मङ्गल, पाप से दृष्ट हो तो माता का मरण होता है।

सर्पवेष्टित जन्म योग

लग्न में मङ्गल या शनि का द्रेष्काण हो उसमें पाप ग्रह व चन्द्रमा हो और २, ११ में शुभ ग्रह हो तो सर्प से वेष्टित बालक का जन्म होता है।

माता पिता का सुख योग

यदि जन्म के समय पञ्चम भाव में परिपूर्ण चन्द्रमा गुरु या शुक्र से युत हो और बुध से दृष्ट हो तो माता के लिए अत्यन्त शुभफल देता है।

इसी प्रकार सूर्य अपनी राशि में या स्वोच्च राशि में शुक्र गुरु से युत पंचम भाव में बुध से दृष्ट हो तो पिता को सुख देने वाला होता है।

आयु ज्ञान के अभाव में कुण्डली फल निष्फल होता है। इसलिए आयु ज्ञान के लिए सर्वप्रथम बालारिष्ट को कहते हैं।

पुरुष-स्त्री ग्रहों के बल का ज्ञान

यदि जातक का जन्म शुक्लपक्ष और दिन में हो तो विषम राशि में पुरुष ग्रह बलवान् होते हैं। इसी प्रकार कृष्णपक्ष रात्रि में जन्म होने पर सम राशि में स्त्री ग्रह बली होते हैं।

तीन प्रकार के अरिष्ट

नियत, अनियत और योगज तीन प्रकार के अरिष्ट शास्त्रकारों ने बतलाया है, उनमें सर्वप्रथम योगज अरिष्ट को कहा जा रहा है। शेष दोनों (नियत और अनियत) को आगे कहेंगे।

तृतीय वर्ष में अरिष्ट योग

जन्मकालावधि में यदि मंगल की राशि (मेष वृश्चिक) में अष्टमभाव में गुरु हो तो जातक की मृत्यु तृतीय वर्ष में होती है।

द्वितीय वर्ष में अरिष्ट योग

शनि यदि वक्री होकर मङ्गल की राशि में स्थित हो तथा चन्द्र ८, ६ या केन्द्र में स्थित हो उस पर बलवान मङ्गल की दृष्टि हो तो उत्पन्न जातक मात्र दो वर्ष तक जीवित रहता है।

नवम वर्ष के बाद अरिष्ट योग

यदि जन्म समय में सूर्य चन्द्रमा के साथ शनि हो तो नवम वर्ष के अनन्तर जातक की मृत्यु होती है। यह वाक्य ब्रह्मशौण्ड का है।

एक मास में अरिष्ट योग

यदि जन्म काल में मङ्गल, रवि, शनि मङ्गल की राशि अर्थात् १, ८ में हो तो जातक यमराज से रक्षित होने पर भी १ मास में अवश्य मर जाता है।

एक वर्ष में अरिष्ट योग

यदि जन्मकाल में शुक्र की राशि २, ७ में अष्टमस्थ अर्थात् अष्टम भाव में २,७ राशियाँ हों और एक भी पापग्रह से दृष्ट हो तो जातक १ वर्ष में मृत्यु को प्राप्त होता है। चाहे उसने अमृत का पान भी किया हो तो भी मृत्यु को प्राप्त होता है।

छठवें वर्ष में अरिष्ट योग

यदि जन्म के काल में शुक्र, सिंह या कर्क राशि में स्थित हो कर बारहवें, षष्ठ या अष्टम भाव में शुभग्रहों से दृष्ट हो तो छठे वर्ष में मरण होता है। इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

चौथे वर्ष में अरिष्ट योग

यदि लग्न से ६, ८, १२ भाव में कर्क राशिस्थ बुध, चन्द्रमा से दृष्ट हो तो ४ वर्ष में जातक की मृत्यु हो जाती है।

दो मास में अरिष्ट योग

केतु का उदय जिस नक्षत्र में हुआ हो, यदि उसी नक्षत्र में किसी का जन्म हो तो जातक २ माह में मरण होता है।

शीघ्र अरिष्ट योग

यदि मङ्गल की राशि १, ८ या शनि की राशि १०, ११ में दशमस्थ सूर्य बली पापग्रहों से दृष्ट हो तो शीघ्र मरण होता है, इसमें संदेह नहीं।

जन्माधिपति के द्वारा शारीरिक पीड़ा का ज्ञान

यदि राशीश पापग्रह हो, या पापग्रह से दृष्ट या युत हो तो शरीर कष्ट देता है। यदि शुभग्रह की दृष्टि हो तो अधिक पीड़ा नहीं देता।

सात वर्ष में अरिष्ट का ज्ञान

यदि लग्न में निगड, सर्प, पक्षी, पाशधर संज्ञक द्रेष्काण पापग्रह से युत हों तो जातक का निधन हो जात है। यदि द्रेष्काणेश की दृष्टि न हो तो सप्तम वर्ष में जातक का निधन हो जाता है।

दश या सोलह वर्ष में अरिष्ट का विचार

यदि जन्म काल में राहु १, ४, ७, १० भाव में पापग्रह से दृष्ट हो तो कुछ आचार्यों के मत से १० वर्ष में और कुछ आचार्यों के मत से १६ वर्ष में मरण होता है।

शीघ्र मरण विचार

यदि सूर्योदय काल में जन्म हो और पापग्रह ५, ९, १, ४, ७, १० में हो तथा शुभग्रह ६, ८, १२ भाव में हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है।

स्वल्पकाल में मरण योग

यदि नवांश पति राशिपति, लग्नपति ये तीनों अस्त हों तो जातक की अल्पकाल में मृत्यु हो जाता है।

एक, चार, आठ वर्ष में अरिष्ट योग

यदि चन्द्रमा लग्न से छठे या आठवें भाव में पापग्रह से दृष्ट हो तो शीघ्र ही १ वर्ष के मध्य में मृत्यु हो जाता है।

यदि शुभग्रह से दृष्ट चन्द्र हो तो अष्टम वर्ष में निधन हो जाता है।

यदि शुभ पाप दोनों से दृष्ट हो तो ४ वर्ष में मरण होता है। ग्रहों की अल्पाधिक दृष्टिवशात् अनुपात द्वारा मरण काल का निश्चय करना चाहिए।

एक, छः, आठ वर्ष में अरिष्ट योग

यदि शुभ ग्रह षष्टाष्टम भाव में वक्रगति वाले पाप ग्रह से दृष्ट तथा शुभ ग्रह से न देखा जाता हो तो १ मास में निधन होता है।

यदि १२, २, ८, ६वें भाव में पाप ग्रह शुभ ग्रह से न देखे जाते हों तो ६ या ८ मास में मरण हो जाता है।

नवम वर्ष में अरिष्ट योग

यदि जन्म काल में चन्द्रमा, मङ्गल या सूर्य से युत या शुभग्रह से न देखे जाते हो या मिथुन अथवा कन्या राशि में स्थित हो तो जातक का नवम वर्ष में मरण होता है। इसमें सन्देह नहीं है।

चतुर्थ मास में अरिष्ट का विचार

यदि लग्नेश अष्टम में समस्त पापग्रहों से दृष्ट हो तो ४ मास में निधन करता है। ऐसा मुनिजनों का कथन है।

माता के साथ अरिष्ट का विचार

यदि जन्म काल के समय चन्द्रग्रहण हो और चन्द्रमा पापग्रह के साथ लग्न में या मङ्गल, अष्टम भवन में हो तो माता के सहित जातक का मरण होता है।

यदि सूर्य ग्रहण काल में जन्म हो या पापग्रह से युत सूर्य लग्न में हो और अष्टम भवन में भौम हो तो भी माता के सहित जातक का निधन शस्त्र से अर्थात् आपरेशनादि से होता है।

शीघ्र निधन अरिष्ट योग

यदि क्षीण चन्द्रमा जातक के लग्न में विराजमान हो, एवं पापग्रह १, ४, ७, ८, १० में शुभ ग्रह से न देखे जाते हों तो शीघ्र ही मृत्यु होती है। ऐसा सत्याचार्य का मत है।

शीघ्र अरिष्ट योग

यदि जन्मकाल में सप्तम भाव में सूर्य या लग्न में शनि और मङ्गल हो तो शीघ्र ही निधन होता है।

अथवा अष्टम भाव में शनि या मङ्गल हो और लग्न में सूर्य हो तो शीघ्र मरण या चन्द्र मङ्गल या शनि से युत एवं पापग्रह दृष्ट हो तो शीघ्र निधन होता है।

यदि लग्न, अष्टम, सप्तम भवन में कोई पाप ग्रह हो तथा क्षीण चन्द्रमा द्वादशस्थ हो तो और केन्द्र में कोई भी शुभ ग्रह न हो तो भी शीघ्र ही मृत्यु होती है।

शीघ्र अरिष्ट का ज्ञान

यदि जन्म समय में १, १२, ९, ८ में चन्द्र, सूर्य, शनि, मङ्गल, क्रमेण युत हो या गुरु से अदृष्ट हो अर्थात् गुरु न देखता हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है।

यदि लग्न में चन्द्रमा या सूर्य हो और बलवान् पापग्रह पञ्चम, नवम, अष्टम भवन में शुभ ग्रहों की दृष्टि या युति से रहित हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है।

नवम वर्ष में अरिष्ट योग

यदि जन्म समय में शुक्र, सूर्य, शनि से युत हो तथा गुरु से दृष्ट हो तो जातक का नवें वर्ष में मरण होता है।

मातृ अरिष्ट योग

यदि जातक की पत्री में किसी भी भाव में चन्द्रमा, मङ्गल, सूर्य, शनि इन तीनों से दृष्ट हो तो माता का शीघ्र निधन होता है।

यदि चन्द्रमा शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो माता का निधन नहीं होता है।

पितृ अरिष्ट योग

जिस जातक का दिन में जन्म हो और सूर्य, मङ्गल, शनि ग्रह से देखे जाते हों, अथवा पाप ग्रह युत हो तो निश्चय पिता का मरण होता है।

यदि जन्म के समय में सूर्य, मङ्गल और शनि युत हो तथा बुध, गुरु, शुक्र से युत न हो तो जातक के पिता या पितामह का मरण होता है।

पिता के अरिष्ट का योग

यदि जातक का जन्म दिन में हो और सूर्य दो पापग्रहों के बीच में हो, अथवा सूर्य पापग्रह से युक्त हो तो अवश्य पिता का मरण होता है।

यदि जन्म काल में सूर्य की राशि से अष्टम राशि में शनि और मङ्गल शुभग्रह से न देखे जाते हो तो पिता का शीघ्र मरण होता है।

यदि जन्मपत्रिका में चरराशि में सूर्य, पापग्रह से युत हो तो अल्पायु में पिता की मृत्यु विष, शस्त्र या जल से (पानी में डूबने से) होती है।

माता के साथ निधन योग

यदि चन्द्रमा से अष्टम राशि में या नवम में या सप्तम में समस्त पाप ग्रह हो या एक भी हो तो माता सहित जातक का मरण होता है।

जन्म के समय पिता का स्थान

यदि जातक का जन्म दिन में हो और चरराशि में सूर्य, मङ्गल से दृष्ट हो तो जन्म के समय पिता को परदेश कहना चाहिए।

यदि जातक का जन्म रात्रि में हो और चरराशिगत शनि को सूर्य देखता हो तो इस योग में भी जातक का पिता परदेश में रहता है ऐसा फलादेश करना चाहिए।

अर्थात् जन्म लग्न को यदि चन्द्रमा नहीं देखता हो तो पिता का परोक्ष में बालक का जन्म कहना चाहिए और सूर्य मध्यमभ्रष्ट अर्थात् नवें ग्यारहवें और बारहवें स्थान में चरराशि का हो तो उत्पन्न जातक का पिता विदेश में समझना चाहिए।

पिता का निधन योग

यदि जातक का जन्म रात्रि में हो और चरराशि में शनि, मङ्गल से युत हो तो पिता का मरण परदेश में होता है। इसमें संदेह नहीं।

यदि जन्माङ्ग में जिस किसी भी राशि में सूर्य, शनि व मङ्गल से युत हो तो जन्म से पूर्व ही पिता का निधन कहना चाहिए।

माता के साथ निधन योग

यदि जन्मकाल में पापग्रह प्रथम, अष्टम, सप्तम, षष्ठ, द्वादश भवन में हो तो निःसंदेह माता के साथ जातक का निधन होता है।

माता एवं जातक में एक के निधन का ज्ञान

यदि जन्म पत्रिका में ६, ८, भवन में सब पापग्रह हो तो माता जीवित रहती है और बालक का निधन हो जाता है।

यदि लग्न अष्टम, सप्तम में पापग्रह हो तो बालक जीवित रहता है और उसकी माता का निधन हो जाता है।

नेत्र हानि योग

मङ्गल या शनि १२वें भाव में हों तो नेत्र नाशक होते हैं, शनि दक्षिण नेत्र को और मङ्गल वामनेत्र को नष्ट करता है।

रवि और चन्द्रमा दोनों साथ ही १२वें भाव में बैठे हों अथवा ६, ८ में पापग्रह हो तो जातक नेत्रहीन होता है।

अथवा इन दोनों में एक भी द्वादश भाव में हो तो नेत्र नाशक होता है, उनमें रवि दक्षिण नेत्र और चन्द्रमा वाम नेत्र को नष्ट करता है।

यदि राहु लग्न में हो और सप्तम स्थान में सूर्य हो तो जातक नेत्रहीन होता है।

पुनः नेत्र हानि योग

यदि द्वितीय भाव में चन्द्र या बारहवें में सूर्य हो तथा अष्टम या षष्ठ भाव में पापग्रह हों तो जातक नेत्रहीन होता है।

यदि षष्ठ भाव में चन्द्र या अष्टम भाव में सूर्य, शनि द्वादश में या मङ्गल द्वितीय भवन में हो तो इस योग में भी जातक नेत्रहीन होता है।

यदि चन्द्रमा मङ्गल या शनि से युत होकर षष्ठ भाव मेंया अष्टम भाव में हों तो पित्त या कफ के विकार से जातक का नेत्र नष्ट हो जाता है।

यदि अष्टम में स्थिति हो तो दक्षिण नेत्र षष्ठ में स्थित चन्द्रमा हो तो वाम नेत्र नष्ट होता है।

यदि शुभग्रह से दृष्ट हो तो जन्म समय में नहीं; कालान्तर में नेत्र हीनता होती है।

शनि के साथ चन्द्रमा यदि ८, १२ में पापग्रह से दृष्ट हो तो वात विकार से नेत्र नष्ट होता है।

उनमें अष्टमस्थ दाहिने और द्वादशस्थ वाम नेत्र का नाश करता है।

यदि शुभग्रहों से दृष्ट हो तो तत्काल नहीं कालान्तर में नेत्र नष्ट होता है।

एवं चन्द्रमा यदि शनि, सूर्य से युत हो तो नाना प्रकार के रोग से नेत्र में विकार उत्पन्न करता है।

नेत्रहीन योग का वर्णन जातकालङ्कार तथा जातक पारिजात में भी दिया गया है। छात्रों को ध्यान से पढ़कर चिन्तन करना चाहिए।

कर्ण रोग का ज्ञान

जन्मकुण्डली में पापाक्रान्त चन्द्रमा यदि ११, ३–९ में हो तो जातक को कर्ण रोग होता है। यदि पापग्रह की दृष्टि भी हो तो जन्म के समय में ही कर्ण रोग होता है।

यदि नवम और पञ्चम भाव दोनों में पापग्रह हों तो और पाप ग्रह से दृष्ट भी हो तो जन्म समय में ही कर्ण रोग होता है।

नवम में पापग्रह हो तो दाहिने कान में और पञ्चम में हो तो वाम कर्ण में रोग होता है।

यदि ९, ५ में शुभ ग्रह की राशि या शुभ ग्रह से दृष्ट भी हो तो शुभ फल कहना चाहिए।

बृहज्जातक में नवम में वाम कर्ण में और पञ्चम में दक्षिण कर्ण में रोग माना गया है।

अत: 'सुतभे दक्षिणकर्णं, वामं नवमे ग्रहो हन्यात' इस प्रकार निर्विरोध पाठ होना उचित है। इसका अर्थ है कि पञ्चम में ग्रह हो तो दाहिने और नवम में हो तो वाम कान में रोगादि कहना चाहिए।

चन्द्र राशि से कर्ण रोग का ज्ञान

यदि जन्म के अतिरिक्त जो व्यक्ति जिस राशि के चन्द्रमा में रोग प्राप्त करता है उसे ही उस रोग का लग्न समझ कर रोग का विचार करना चाहिए और जन्म कालिक चन्द्रमा से भी विचार करना चाहिए।

इस प्रकार योग कारक ग्रहों से दक्षिण वाम भाग में शुभग्रह चिन्ह करते हैं। यदि वे पापग्रह से दृष्ट हो तो शरीर के उस अङ्ग को विरुद्ध करते हैं।

इन तीनों अर्थात् जन्म, लग्न, जन्मराशि रोगोत्पति काल को ज्ञान कर के शुभाशुभ फल कहना चाहिए।

तीन दिन जीवन योग

जिस जातक की पत्री में मीन राशि के सूर्य और चन्द्रमा तृतीय भाव में हो

तो जन्म से ही व्याधि प्राप्त करके ३ दिन में उसका जीवन सामप्त हो जाता है अर्थात् ३ दिन में उस जातक की मृत्यु हो जाती है।

एक दिन का जीवन योग

यदि चन्द्रमा दशम स्थान में हो और चन्द्रमा से तृतीय नक्षत्र में सूर्य पापग्रहों से युत हो या अकेला ही हो तो जातक का जीवन १ दिन का होता है अर्थात् १ दिन के बाद मृत्यु हो जाती है।

सात दिन का जीवन योग

जिस जातक के चन्द्रमा से सप्तम भाव में मङ्गल, सूर्य दोनों हो तो वह जातक सात दिन तक जीवित रहता है।

रोगारम्भ से अरिष्ट का विचार

यदि जन्म के समय ४, ८ भाव में पापग्रह हों और वे पापग्रह १२, २ में हो तो उस समय में यदि जातक रोगी होता है तो वह १० दिन जीवित रहता है।

यदि रोगारम्भ के समय पञ्चम सूर्य और नवम चन्द्रमा ही हो तो १२ दिन तक जीवित रहता है।

पुनः रोगारम्भ से अरिष्ट

रोगारम्भ काल में यदि त्रिकोण के चन्द्रमा हो अर्थात् ९, ५ में चन्द्र हो, और ४, ८ में सूर्य विद्यमान हो तो वह जातक दुर्व्याधि से युक्त होकर ३ दिन में निधन को प्राप्त हो जाता है।

यदि लग्न से चतुर्थ भवन में चन्द्रमा हो तथा षष्ठ भाव में सूर्य हो तो वह जातक १८ दिन रोग से युक्त होकर निधन को प्राप्त करता है।

यदि चन्द्रमा से ९, ५ में सूर्य हो तो वह जातक रोगारम्भ से २० दिन जीवित रहता है। अर्थात् २० दिन के बाद मृत्यु को प्राप्त करता है।

यदि रोग कालिक लग्न से अष्टम भाव में सूर्य, शनि और मङ्गल से दृष्ट हो तो उस व्यक्ति का जीवन न होकर मरण होता है।

पुनः जन्माङ्ग से अरिष्ट योग

यदि १, ४, ७, १० में मङ्गल हो, और गुरु केन्द्र में न हो तो मरे हुए बालक का जन्म होता है। यदि जन्म काल सूर्य लग्न में हो तथा गुरु केन्द्र से अन्य स्थान में हो तो जन्म के साथ मरण होता है।

अथवा अष्टम में कोई पापग्रह हो और गुरु केन्द्र से भिन्न स्थान में हो तो भी जन्म के साथ ही मरण होता है।

यदि लग्न या केन्द्र में चन्द्रमा हो और अष्टम में कोई पापग्रह हो तो जन्म के साथ मरण होता है।

यदि जन्म कालीन लग्नस्थ द्रेष्काण से सप्तम राशि में पापग्रह हो और लग्न में चन्द्रमा हो तो शीघ्र मरण होता है।

एक मास वा सात दिन का आयु योग

जिस जातक के जन्म काल के समय अष्टम भाव में अधिक ग्रह हो तो उसकी आयु एक मास या सात दिन की होती है।

मृत जातक योग

यदि लग्न में शनि हो या अष्टम में भौम हो और गुरु केन्द्र (१/४/७/१०) से अन्य भाव में हो तो मृत बालक का जन्म होता है।

त्रिकोण गत पापग्रह से अरिष्ट योग

जन्म के समय लग्न में जो द्रेष्काण वर्तमान हो अर्थात् जिस राशि का द्रेष्काण हो यदि वह राशि त्रिकोण (५/९) में पाप ग्रह से युक्त हो तो आगे कथित ग्रह अपने समान फल देता है।

यथा—यदि शनि हो तो व्याधि, भौम हो तो मरण, सूर्य हो तो रोग से शरीर में कष्ट होकर मरण होता है। इसमें सन्देह नहीं है।

यदि जन्म काल में भौम हो और शुक्र केन्द्र में हो तो पुनः भौम लग्नगत राशि में आता है। तब बालक (जातक) का मरण होता है।

शीघ्र निधन योग

यदि जन्म समय गुरु त्रिकोण में हो और लग्न स्वामी लग्न में हो तथा गुरु या जन्म लग्न से केन्द्र में भौम हो तो शीघ्र मरण होता है।

१०८ वर्ष की आयु का योग

यदि जन्म के समय अष्टमभाव या लग्न में कोई भी पापग्रह न हो तथा किसी भी केन्द्र राशि (१/४/७/१०) में गुरु हो तो जातक १०८ वर्ष जीता है।

यदि केन्द्र त्रिकोण अथवा अष्टम भाव पापग्रह से रहित हो तथा गुरु, शुक्र केन्द्र में हो तो जातक १०८ वर्ष जीता है।

१२० वर्ष की आयु का योग

यदि लग्न में शुक्र हो और किसी भी केन्द्र में गुरु हो तथा अष्टम भाव में पापग्रह न हों तो १२० वर्ष जातक जीता है।

यदि कर्क लग्न में गुरु शुक्र हो या गुरु चन्द्रमा से युत कर्क लग्न में हो तथा अष्टम में पापग्रह न हों तो भी उपयुक्त फल होता है।

देवतुल्य आयु योग

यदि केन्द्र, त्रिकोण व अष्टम भाव में पापग्रह न हो तो जातक की देवतुल्य आयु निःसंदेह कहनी चाहिये।

गतायु योग

यदि ८/७/१२/१/९/५ इन भावों में क्षीण चन्द्रमा बली पापग्रह से युत हो तथा शुभग्रहों से अदृष्ट हो तो जातक की आयु समाप्त कहना चाहिये अर्थात् जीवन नहींहोता है।

अनुक्तकाल योगों में निधन समय का विचार

जिन योगो में मरण का समय नहीं लिखा है उनमें योग करने वाले ग्रहों में से जो बली ग्रह हो उसकी राशि में जब चन्द्रमा का संचार हो तब अरिष्ट कहना चाहिए।

अथवा चन्द्रमा पुनः अपनी राशि में या लग्न में आये और पापग्रहों से दृष्ट हो तो जातक का मरण होता है। यह विचार एक वर्ष के भीतर होता है।

पाँचवें वर्ष में अरिष्ट योग

यदि जन्म के समय में सूर्य चन्द्र भौम, गुरु एक राशि में हो या भौम, गुरु, शनि, चन्द्र एक राशि में हो अथवा सूर्य शनि भौम चन्द्रमा एक राशि में हों तो पाँच वर्ष में जातक का मरण होता है।

ग्यारहवें वर्ष में अरिष्ट योग

यदि सूर्य से युत बुध (पाठान्तर से सूर्य चन्द्र से युत बुध) पापग्रहों से दृष्ट हो तो देवता से रक्षित भी जातक का ११वें वर्ष में मरण होता है।

सात वर्ष में अरिष्ट योग

यदि जातक की कुण्डली में लग्न में सूर्य, शनि या भौम हो तथा सप्तम भाव में शुक्र की राशि (२/७) में क्षीण चन्द्रमा गुरु से अदृष्ट हो तो सात वर्ष में जातक का मरण कहना चाहिए।

चतुर्थ वर्ष में अरिष्ट योग

यदि क्षीण चन्द्रमा केन्द्र में सूर्य से युत हो तथा भौम या शनि से दृष्ट अथवा युत हो तो ४ वर्ष में जातक का मरण होता है। यहाँ (इस योग में) गणित करने की आवश्यकता नहीं होती है।

तीन वर्ष में अरिष्ट योग

यदि कुण्डली में लग्नेश से अष्टम स्थान में अत्यन्त कृश (क्षीण) चन्द्रमा हो और समस्त पाप ग्रहों से दृष्ट और शुभ ग्रहों से अदृष्ट हो तो तीन वर्ष में जातक का मरण होता है।

नौ वर्ष में अरिष्ट योग

यदि पापग्रह लग्नेश होकर चन्द्रमा के नवमांश में चन्द्रराशि से बारहवें स्थान में हो व पाप ग्रहों से दृष्ट हो तो जातक का ९ वर्ष में मरण होता है।

पाँच वर्ष में अरिष्ट योग

यदि पाप ग्रह लग्नेश होकर चन्द्रमा के नवमांश में चन्द्र राशि से बारहवें स्थान में हो या पापग्रहों से दृष्ट राशि से बारहवें स्थान में हो अथवा पापग्रहों से दृष्ट हो तो जातक का ५ वर्ष में मरण होता है।

बारह वर्ष में अरिष्ट योग

यदि राहु सप्तम भाव में सूर्य व चन्द्रमा से दृष्ट हो एवं शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो १२ वर्ष में जातक का मरण होता है।

सात वर्ष में अरिष्ट योग

यदि कुम्भ वा सिंह वृश्चिक लग्न में राहु पापग्रहों से दृष्ट हो तो निश्चित ही ७ वर्ष में जातक की मृत्यु हो जाती है।

दुर्मुहूर्त में अरिष्ट योग

यदि जातक के जन्म के समय से में प्रथम केतु का उदय हो, पीछे उल्कादि व वायु का निर्घात (आँधी) हो एवं रौद्र व सार्प मुहूर्त में जन्म हो तो भी जातक का मरण होता है।

अल्प समय में अरिष्ट योग

यदि क्षीण चन्द्रमा पापग्रहों से युत हो और राहु से दृष्ट हो तो बिना कारण अल्प समय में जातक का निधन होता है।

प्रत्येक राशि में चन्द्रकृत अरिष्ट योग

यदि जन्म कालीन चन्द्रमा कुम्भराशि के २१वें अंश में हो, या सिंह के ५वें अंश में हो या वृष के नवें अंश में हो तो मरण करता है।

वृश्चिक राशि के २३वें अंश में, मेष के अष्टम अंश में, कर्क राशि के २२वें अंश में चन्द्रमा हो तो निधन कारक होता है।

कन्या राशि के प्रथमांश में, धनु के १८ वें अंश में चन्द्रमा हो तो मरण कारक योग होता है।

कथित अंशों में निधन समय का विचार

जन्मकालीन समय में चन्द्रमा जिस राशि में जितने अंशों में मरण कारक कहा गया है उतने ही वर्षों में यमराज द्वारा रक्षित होने पर भी उस जातक का निधन होता है।

यहाँ जिन अरिष्टों का वर्णन किया गया है। उन अरिष्टों में सब का निधन नहीं होता, किन्तु अरिष्ट भङ्ग योग होने पर इन योगों में भी जातक का जीवन होता है।

प्रत्येक राशि में जिन जिन अंशो में चन्द्रकृत अरिष्ट कहा है; वहाँ अनुपात द्वारा समय का ज्ञान करके ही अरिष्ट कहना चाहिये ।

क्योंकि चन्द्रमा अंश कलादि से युत होता है। यथा—मेष के अष्टम अंश में चन्द्रमा अरिष्टकारक होता है।

कुण्डली में यदि ०/७/१०/२ चन्द्रमा है तो मेष के अष्टम अंश में होने से अष्टम वर्ष में अरिष्ट कारक हुआ।

अष्टम वर्ष में कब मरण होगा यह अनुपात द्वारा जानकर फलादेश कहना चाहिये।

गुरुवश निधन वर्ष का विचार

इस प्रकार प्रयत्न से जातक के राशि स्थान अथवा केन्द्र स्थान का विचार करके अरिष्ट कहना चाहिये।

गुरु जातक का जीवन है इसलिये बृहस्पति की स्थितिवश मृत्यु का विचार करना चाहिये।

यथा—यदि गुरु ३। ४। ५। ७। ९। १०। ११। १ भाव में हो तो क्रम से ५। १०। ४६ २१। १०० (अन्यत्र से ३०) ४०। ६०। ३० (अन्यत्र से ५०) वर्ष तक जातक का जीवन होता है।

राजकुलोत्पन्न राजयोग व निम्नकुलोत्पन्न राजयोग एवं धनवान् योग

यदि जन्म समय में ३ या ४ ग्रह यदि हो तो अपने उच्च या मूल त्रिकोण में बली हो तो राजवंश में उत्पन्न मनुष्य अवश्य राजा होता है।

तथा ५ या ६ ग्रह यदि उच्च अथवा मूल त्रिकोण में हो तो दरिद्र कुलोत्पन्न भी राजा होता है।

यदि २, या एक ग्रह उच्चस्थ हो तो धनवान होता है, परन्तु राजा नहीं होता है।

क्रूरकर्मा व सत्कृत राजयोग

यदि केवल पापग्रह उच्च में हो तो क्रूरकर्मा राजा होता है, ऐसा यवनाचार्य का मत है।

परञ्च पापग्रहों से राजयोग में उत्पन्न पुरुष राजा नहीं होता, किन्तु राजा द्वारा सत्कृत होता है, अर्थात् मन्त्री आदि होता है।

नीचकुल में उत्पन्न होने वाले राजयोग

जिन योगों में दरिद्र कुलोत्पन्न भी राजा होता है। उन राजयोगों को शास्त्रव के अनुसार यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

नीच कुलोत्पन्न राजयोगों के बत्तीस प्रकार

यदि जन्म कुण्डली में रवि, मंगल, शनि और गुरु इनमें चारों अथवा ३ यदि उच्च में हो और उन्हीं में से कोई एक लग्न में हो तो १६ प्रकार के योग होते हैं इनमें

नीच कुलोत्पन्न भी राजा होता है यदि भौमादि दो में से उच्च में हो और एक लग्न में हो तथा चन्द्रमा अपने गृह (कर्क) में हो तब भी सोलह प्रकार के राजयोग होते हैं, ऐसा प्राचीन महर्षियों ने कहा है।

अधमवंशोत्पन्न का राजयोग

लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवमांश में हो तो तथा चन्द्र छोड़ कर अन्य ४, ५ या ६ ग्रहों से दृष्ट हो तो नीच कुलोत्पन्न भी राजा होता है।

अखिलभूमण्डल पालक योग

जन्म कुण्डली में जन्म समय मेष लग्न में चन्द्र, मङ्गल, गुरु हो तो जातक आसमुद्र पृथ्वी का पालक और समस्त शत्रु दल का संहारक राजा होता है।

विज्ञान कुशल राजयोग

एकादश भाव में चन्द्रमा, शुक्र, गुरु हो, मङ्गल मेष में शनि मकर में, कन्या में बुध यदि लग्न में हो तो निश्चय जातक विज्ञानी राजा होता है।

सद्‌भूपाल राजयोग

पूर्ण चन्द्रमा यदि कर्क लग्न में तथा बुध सप्तम भाव में छठे में सूर्य, चौथे में शुक्र, दसवें में गुरु और ३ में शनि मंगल हो तो राजा होता है।

यदि कुण्डली में परिपूर्ण चन्द्रमा कर्क लग्न में हो तथा सप्तम भाव में बुध, छठवे भाव में सूर्य, चौथे में शुक्र, दशम में गुरु, शनि व भौम तृतीय भाव में हो तो जातक चन्द्रमा की किरणों के समान शुभ्र चामर तथा राजलक्ष्मी से युक्त सज्जन (श्रेष्ठ) राजा होता है।

अधिक लक्ष्मी से युत राजयोग

वृष लग्न में पूर्ण चन्द्रमा हो, कुम्भ में शनि, सिंह में सूर्य, और वृश्चिक में गुरु हो तो अधिक सम्पत्ति और वाहन युक्त राजा होता है।

इन्द्र तुल्य राजयोग

यदि कुण्डली में मकर लग्न में शनि, चन्द्रमा मीन राशि में तथा कन्या राशि को छोड़कर बुध के घर में अर्थात् मिथुन में भौम, कन्या में बुध, धनु राशि में गुरु हो तो जातक इन्द्र के समान महिमा पाने वाला होता है।

शत्रु से अजेय राजयोग

यदि कुण्डली में मकर लग्न में मंगल और सप्तम भाव में पूर्ण चन्द्रमा हो तो शत्रुओं से अजेय तथा वेदार्थ का ज्ञाता होता है।

शत्रु को पराजित कर्त्ता राजयोग

यदि अपने उच्च में स्थित सूर्य चन्द्रमा के साथ लग्न में हो तो जातक परमसुन्दर राजा होता है।

. जिसके स्मरण से शत्रुओं की स्त्री की शोकाग्नि नयन जल से सिक्त होने पर भी सर्वदा हृदय में प्रज्वलित ही होती है। अर्थात् वह जातक शत्रु को जीतने वाला होता है।

स्वभुजबल से पृथ्वीपति योग

जन्म कुण्डली में यदि पूर्ण बली बृहस्पति कर्क लग्न में हो, सूर्य दशम भाव (मेष) में हो और वृष में चन्द्र, बुध तथा शुक्र ग्रह हों तो वह जातक अपने भुजबल से पृथ्वीपति होता है।

अधिराजयोग

जन्म कुण्डली में यदि चन्द्रमा से षष्ठ, सप्तम, अष्ठम स्थानों में सब शुभ ग्रह उदित हो और उनपर पापग्रह की दृष्टि नहीं हो तो अधियोग होता है। इस योग में जन्म लेने वाला आसमुद्र पृथ्वी के पालन करने वाला राजा होता है, सर्वदा अपने पराक्रम से युक्त रोगहीन, शत्रु के भय से रहित, धीर, सौभाग्यवान् और सुखी होता है।

अपारकीर्तियुत राजयोग

जन्म पत्रिका में मेष लग्न में सूर्य, धनु में गुरु तुला में शनि और चन्द्र दोनों हो तो अति कीर्तिमान राजा होता है।

प्रसन्न राजयोग

जन्म कुण्डली में यदि वर्गोत्तम नवांश में तीन या चार शुभग्रह केन्द्र में हों, यदि पापग्रह युत नहीं हो तथा अस्त या क्षीण नहीं हो तो राजा होता है।

इन्द्रतुल्य बलशाली राजयोग

जन्म कुण्डली में यदि जन्मराशीश चन्द्रमा से उपचप (३, ६, १०, ११) में हो और शुभ राशि या शुभ नवांश में केन्द्रगत शुभग्रह हो तथा पापग्रह सब निर्बल हो तो परम प्रतापी इन्द्र के समान बलशाली राजा होता है।

अखण्ड भूपतियोग

पत्रिका में यदि चन्द्रमापरमोच्च में हो उस पर शुक्र की दृष्टि हो और सब पापग्रह आपोक्लिम स्थान में हो तो जातक राजा होता है।

यशस्वी व समस्त शत्रुहन्ता राजयोग

जन्म पत्रिका में वृष लग्न में गुरु और चन्द्रमा हो, बली लग्नेश त्रिकोण में हो उस पर बलवान् रवि, शनि, मङ्गल की दृष्टि नहीं हो तो जातक शत्रु रहित यशस्वी राजा होता है।

सार्वभौम राजयोग

जन्म पत्रिका में जन्म समय में सब ग्रह अपनी राशि में मित्र के नवांश या मित्र की राशि में अपने नवांश में हो तो जातक सार्वभौम राजा होता है।

देव-दानवों से वन्दित राजा

पत्रिका में सब ग्रह अपने अपने परमोच्च में हो और बुध अपने उच्च के नवांश में हो तो जातक समस्त सुरासुर से वन्दित त्रिलोकाधिप होता है।

शत्रुरहित राजयोग

पत्रिका में जिस जातक उत्तर (चतुर्थ भाव) में वसिष्ठ (सप्तर्षि गत नक्षत्र), पूर्व (प्रथम लग्न) में बृहस्पति पश्चिम (सप्तम भाव) में शुक, दक्षिण (दशम भाव) में अगस्त्य नक्षत्र हो तो वह शत्रुहीन पृथ्वीपति होता है।

सार्वभौम राजयोग

पत्रिका में यदि पूर्ण चन्द्रमा पर सब ग्रहों की दृष्टि हो तो वह जातक दीर्घजीवी होता है। इस योग में केमद्रुम या अन्य अशुभ फल न होकर जातक दीर्घजीवी राजा होता है।

सगरादि तुल्य राजयोग

जन्म कुण्डली में यदि निर्मल किरण युत सबल होकर अपने नवांशगत ६ ग्रह उच्च में हो तो जातक सगर, वेन, ययाति के समान चक्रवर्ती राजा होता है।

तपस्वी राजयोग

जन्म कुण्डली में यदि सब शुभग्रह परिपूर्ण किरण तथा शुभ राशि और शुभ नवांश में होकर लग्न में हो और पापग्रह अस्त (सूर्य से लुप्त किरण) होकर उनके साथ नहीं हो तो जातक राजा होकर वन, पर्वत में जाकर तपस्या करने वाला होता है।

बृहस्पति की बुद्धितुल्य राजयोग

जन्म कुण्डली में सब शुभ ग्रह शुभराशिगत पणफर स्थान में हो और पापग्रह द्विस्वभाव राशि में हो तो जातक शत्रुजेता और बृहस्पति तुल्य बुद्धिमान होता है।

दुर्वार शत्रुमारक राजयोग

जन्म कुण्डली में लग्नेश यदि लग्न में हो अथवा मित्र की राशि में मित्र से दृष्ट हो तो जातक राजा होता है। यदि शुभ राशि लग्न हो तो निष्कण्टक राज भोग करता है।

यशस्वी राजयोग

जन्म पत्रिका में पूर्ण चन्द्रमा अपने उच्च में हो और सब ग्रहों से दृष्ट हो तो हाथी, घोड़े और पदाति अनेकों सैन्य से युक्त परम यशस्वी राजा का जन्म होता है। जो समस्त पृथ्वी के भार से खिन्न शेष फणिराज के समान प्रजा का पालन करता है। अर्थात् चक्रवर्ती राजा होता है।

अधिक हाथी रखने वाला राजा

जन्म पत्रिका में अति स्वच्छ बिम्ब चन्द्रमार यदिसूर्य के नवमांश में हो और

सब शुभ ग्रह केन्द्र में हो उनको पापग्रहों का योगन नहीं हो तो बहुत हाथी (उपलक्षण से उत्तम उत्तम सवारी) रखने वाला राजा होता है।

स्वकीर्ति से दिशाओं का शुभ्रकर्त्ता राजयोग

यदि चन्द्र, बुध, मंगल ये नीच भिन्न स्थान में अपने अपने नवमांश में हों और १२, ३ भाव में हों तथा अस्त नहीं हो तथा चन्द्रमा सहित गुरु पञ्चम भाव में हो तो संसार में विख्यात कीर्ति राजा होता है।

शत्रुजेता राजयोग

जन्म पत्रिका में नीच और शत्रु के वर्ग से भिन्न स्थान में कोई भी ३ ग्रह अपने नवमांश में पूर्ण बली हो उन पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तथा पूर्ण निर्मल बिम्ब हो तो जातक शत्रु को जीतने वाला राजा होता है।

सार्वभौम राजयोग

कुण्डली में यदि वर्गोत्तम या स्व नवमांश स्थित चन्द्रमा को बलवान् ग्रह देखता हो तथा लग्न में कोई पापग्रह नहीं हो तो जातक सुन्दर शरीर वाला चक्रवर्ती राजा होता है।

अधिक हाथी वाला राजयोग

कुण्डली में चन्द्रमा यदि जलचर राशि नवमांश में हो तथा शुभग्रह अपने वर्ग में होकर लग्न में हो तथाकेन्द्र में पापग्रह नहीं हो तो जातक बहुत हाथी आदि सवारी रखने वाला राजा होता है।

अपूर्व यशस्वी राजयोग

पत्रिका में यदिपूर्ण चन्द्र मा वर्गोत्तम नवमांश में हो तो जातक परम यशस्वी राजा होता है। जिसके हाथी, घोड़े के खुर के आघात के धूलियों से आच्छादित सूर्य भी प्रातः काल के चन्द्रमा सदृश (निष्प्रभ) हो जाते हैं।

जन्म समय में सब ग्रह योगकारक हो तो जातक चक्रवर्ती होता है। एक, या दो ग्रह योग कारक हो तो मण्डल (प्रान्त या जिला) का अधिपति होता है।

निषाद कुलोत्पन्न राजयोग

अपने उच्च, त्रिकोण या स्वराशि में स्थित होकर कोई भी ग्रह चन्द्रमा को देखता है तो नीच कुलोत्पन्न भी जातक राजा होता है।

महाराज योग

यदि चन्द्रमा अपनी राशि या द्रेष्काण में हो तो जातक राजा होता है। यदि इसी योग में शुभ ग्रह पूर्ण बली हो तो महाराजा होता है।

ग्रामीण राजयोग

जन्म कुण्डली में लग्न में शनि और सप्तम भाव में नवोदित बृहस्पति हो, उन पर शुक्र की दृष्टि हो तो गाँव में जन्म लेने वाला भी राजा (मुखिया) होता है।

अधिक यशस्वी राजयोग

जन्म कुण्डली में शुक्र बुध मंगल तीनों लग्न में और चन्द्रमा से युत गुरु सप्तम भाव में हों उस पर शनि की दृष्टि हो तो महायशस्वी राजा होता है।

नीच कुलोत्पन्न राजयोग

जन्म कुण्डली में यदि पूर्ण बली बृहस्पति मंगल के नवमांश में हो उस पर मंगल की दृष्टि हो तथा मेष स्थित सूर्य दशम भाव में हो तो नीच कुलोत्पन्न जातक भी राजा होता है।

जन्म कुण्डली में यदि शुक्र, चन्द्र, सूर्य ये तृतीय भाव में हो मंगल सप्तम में, गुरु नवम में और लग्न में वर्गोत्तम नवमांश हो तो नीच कुलोत्पन्न भी राजा होता है।

देवतुल्य राजयोग

कुण्डली में यदि जन्म समय में देदीप्यमान किरण बृहस्पति, बुध, शुक्र, या चन्द्रमा ये सब या एक भी बली होकर नवम भाव में हो और अपने मित्र से दृष्ट हो तो जातक देव तुल्य राजा होता है।

नीच कुलोत्पन्न राजयोग

यदि कुण्डली में पञ्चम भाव में चन्द्रमा और बृहस्पति हो उन पर पञ्चमेश की दृष्टि हो और मीन में शुक्र हो तो नीच कुलोत्पन्न भी राजा होता है।

लक्ष्मीयुत राजयोग

यदि जन्म कुण्डली में चन्द्रमा तृतीय या दशम भाव में हो और गुरु अपने उच्च में हो तो लक्ष्मी युक्त समस्त पृथिवी का राजा होता है।

प्रसिद्ध राजयोग

यदि कुण्डली में अपने उच्च का गुरु किसी केन्द्र में हो और शुक्र दशम भाव में हो तो जातक समस्त पृथिवी का सुप्रसिद्ध राजा होता है।

ब्राह्मणकुलोत्पन्न का राजयोग

यदि जन्म कुण्डली में पूर्ण चन्द्रमा कर्क में हो तथा बली बुध, गुरु, शुक्र, ये अपने नवमांश में होकर चतुर्थ भाव में हो उन पर सूर्य की दृष्टि हो तो द्विज कुलोत्पन्न मनुष्य राजा होता है।

गौपालक राजयोग

जन्म कुण्डली में अपने मूलत्रिकोणस्थिति सूर्य दशम भाव में हो, शुक्र, गुरु, चन्द्र ये अपने- अपने राशि स्थित होकर ३, ६, ११ वें स्थान में हो तो गायों का पालन करने वाला अर्थात् ग्वाला भी राजा होता है।

सकलनृप पालक राजयोग

पत्रिका में अपने मित्र के नवमांशगत शुभग्रह सप्तमभाव में अपने मित्र से दृष्ट हो और मंगल अपने उच्च में हो तो समस्त भूमि का पालक राजा होता है।

यशस्वी राजयोग

जन्म पत्रिका में अपने नवमांश में बली होकर नवम भाव में हो, लग्न में शुभ वर्ग या शुभ ग्रह हो उस पर बुध की दृष्टि हो तो परम कीर्तिमान राजा होता है।

कुत्सित राजयोग

जन्म पत्रिका में यदि मंगल अपने उच्च में हो उस पर रवि चन्द्र और गुरु की दृष्टि हो तो नीच कुलोत्पन्न भी समस्त पृथिवी का रक्षक राजा होता है।

नीचकुलोत्पन्न राजयोग

उक्त राजयोगों में अभिजित् (नक्षत्र या मुहूर्त) में जन्म हो तो नीच कुलोत्पन्न भी परमबलशाली राजा होता है, इसमें सन्देह नहीं।

शत्रुजेता राजयोग

जन्म पत्रिका में कृत्तिका नक्षत्रस्थित चन्द्रमा यदि लग्न में हो तथा गण्डान्त, भद्रा, परिघ या व्यतिपात योग हो तो जातक शत्रुओं को नाश करने वाला होता है।

निराकुल राजयोग

जन्म पत्रिका में लग्न में बुध, सप्तम बृहस्पति कर्कराशिस्थ चन्द्रमा चतुर्थ भाव में और शुक्र दशमभाव में हो तो जातक शासक होता है।

चक्र व समुद्र राजयोग

यदि जन्म पत्रिका में एक राशि अन्तर करके ६ राशि में सब ग्रह हों तो चक्र योग होता है इसमें जन्म लेने वाला राजा होता है।

यदि इसी योग में एक शुभ ग्रह लग्न में हो तो सम्पूर्ण भूमण्डल का राजा होता है।

उक्त योग में ही यदि दो ग्रह लग्न में हो तो समुद्र योग होता है, इसमें जातक राजा होता है।

यदि सब शुभग्रह केन्द्र में हो तो भी जातक राजा होता है।

अधिक सम्पत्तिवान् राजयोग

यदि सब ग्रह ५, ४, ३, १ भाव में हो तो धन पुत्र बन्धु और वाहनों से तथा बहुत नौकरों से युक्त राजा होता है ऐसा यवनादि आचार्यों का मत है।

नगर नामक राजयोग

जन्म पत्रिका में यदि १०, ७, ४, १ इन सब ग्रह हों तो नगर नामक योग होता है। इस योग में उत्पन्न मनुष्य पृथ्वीपति होता है।

प्रशान्त राजयोग

जन्म पत्रिका में यदि सब ग्रह चतुर्थ, लग्न और सप्तम भाव में तथा मंगल,

रवि एवं शनि ये तृतीय, षष्ठ और एकादश भाव में हों तो जातक न्यायप्रिय राजा होता है। यह राजयोग यवनाचार्यों ने कहा है।

कलश संज्ञित राजयोग

जन्म कुण्डली में यदि सब शुभ ग्रह ११, ९ भाव में हो तथा सभी पापग्रह दशमभाव में हों तो कलश नामक राजयोग कहा गया है।

पूर्ण कुम्भ नामक राजयोग

जन्म कुण्डली में यदि ३, ५, ११, भाव में ३ ग्रह, षष्ठाभाव में २ ग्रह और शेष २ ग्रह सप्तम भाव में हो तो यह कुम्भ नामक राज योग होता है।

इस प्रकार जन्म कुण्डली में ऊपर प्रायः नीच कुलोत्पन्न जातक के लिए भी अनेक प्रकार के राजयोग कहे हैं, इसके आगे केवल राजवंशियों के राजा होने वाला योग मुनियों द्वारा कहा गया है।

सर्ववन्दित राजयोग

जन्म कुण्डली में सिंह लग्न में सूर्य, मेष में चन्द्रमा, कुम्भ में शनि, मकर में मंगल हो तो जातक सबका वन्दनीय होता है।

स्थिर लक्ष्मीवान् राजयोग

जन्म कुण्डली में एक बलवान् शुभग्रह लग्न में और अन्य शुभग्रह ९, १, २ भाव में तथा शेष ग्रह ३, ११, ६, १० भाव में हो तो जातक स्थिर लक्ष्मी वाला राजा होता है।

जिसकी विजय यात्रा में हाथियों का समूह अपने मद जल वृष्टि से लोक में मेघ का भ्रम उत्पन्न कर देता है।

अति लक्ष्मीवान् राजयोग

जन्म काल में स्वराशिस्थ बृहस्पति चतुर्थ भाव में और पूर्ण चन्द्रमा नवें भाव में तथा शेष ग्रह १, ३ भाव में हो तो जातक बुद्धिमान्, सब सम्पत्ति और वाहनों से युक्त राजा होता है।

चन्द्रांशतुल्य यशस्वी राजयोग

जन्म काल में अपने उच्च में स्थित चन्द्रमा यदि लग्न में हो, धन भाव में बृहस्पति हो, तुला में शुक्र, कन्या में बुध, मेष में मंगल तथा सिंह में सूर्य हो तो जातक अति यशस्वी राजा होता है।

स्वगुण प्रख्यात राजयोग

जन्म कुण्डली में चन्द्रमा और रवि दशम भाव में, लग्न में शनि, चतुर्थ में गुरु, शुक्र, बुध, मंगल, ये एकादश भाव में हो तो गुणों से सुप्रसिद्ध राजा होता है।

यशस्वी राजयोग

जन्म पत्रिका में लग्न में मंगल दशम में शनि और रवि, ७ में गुरु, ९ में शुक्र, ११ वें में बुध और चतुर्थ भाव में चन्द्रमा हो तो इस योग में जन्म लेने वाला यशस्वी राजा होता है।

पराक्रम धन वाहन से युक्त राजयोग

पत्रिका में यदि पूर्ण चन्द्रमा लग्न से भिन्न केन्द्र में हो तो जातक धन, वाहन और पराक्रम से युक्त राजा होता है।

सर्पराज के तुल्य प्रतापी राजयोग

जन्म समय में यदि शुक्र को बृहस्पति देखता हो तो जातक बहुत वाहनों से युक्त प्रतापी राजा होता है।

राजराजेश्वर राजयोग

यदि जातक के जन्मपत्रिका में जन्म समय में बुध को गुरु देखता हो तो वह जातक राजाओं से वन्दनीय होता है।

शत्रुजित राजयोग

जन्म कुण्डली में यदि लग्नेश स्वोच्चगत होकर चन्द्रमा को देखता हो तो धन, वाहनों अर्थात् हाथी घोड़ा से युत से शत्रुओं को जितने वाला राजा होता है।

लक्ष्मीपति राजयोग

जन्म कुण्डली में अपने अधिमित्र के नवमांशस्थ चन्द्रमा को यदि शुक्र देखता है तो सदा धन–धान्यसम्पन्न लक्ष्मी का पति राजा का जन्म होता है।

ब्राह्मणकुलोत्पन्न राजयोग

पत्रिका में जन्मराशि का स्वामी बली होकर केन्द्र में हो तो ब्राह्मण कुलोत्पन्न भी राजा होता है। फिर राजकुलोत्पन्न की तो बात ही क्या?।

अंग देशाधिप राजयोग

जन्म कुण्डली में यदि सूर्य अपने अधिमित्र की राशि में हो, उस पर चन्द्रमा की दृष्टि हो तो जातक अङ्ग देश का राजा धन, धर्म से युक्त होता है।

मगधाधिप राजयोग

जन्म पत्रिका में चन्द्रमा के साथ बुध अपने उच्च में हो तो जातक मगध देश का राजा होता है। जिसके हाथियों के मदगन्ध से सब दिशा सुगन्धित होती है।

शत्रुदमन राजयोग

जन्म पत्रिका में एक भी पूर्णिमा का चन्द्रमा यदि प्रधान (उच्च) बल से युक्त हो तो शत्रु को जीतने वाला राजा होता है।

गोप कुलोत्पन्न राजयोग

जन्म पत्रिका में एक भी लग्नेश पूर्ण बली होकर केन्द्र में हो तो गोपकुलोत्पन्न भी राजा होता है। राजवंशियों की फिर क्या बात है?।

समस्त भूमण्डल का स्वामी राजयोग

जन्म पत्रिका में यदि चन्द्रमा से दशवें भाव में कर्क का बृहस्पति हो तो जातक समस्त पृथ्वी का स्वामी होता है।

कश्मीरमण्डलीय राजयोग

जन्म पत्रिका में यदि चन्द्रमा के साथ बृहस्पति कर्क राशि में हो तो जातक कश्मीर देश का राजा होता है।

तीन ओर समुद्र से वेष्टित भूमि का राजयोग

रवि से द्वितीयस्थान में यदि बुध, गुरु, शुक्र हो उन पर पापग्रह की दृष्टि या योग नहीं हो तथा अस्त नहीं हो तो जातक ३ दिशाओं से आवृत्त समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी होता है।

प्रसिद्ध कीर्तिमान् राजयोग

स्वच्छकिरण पूर्णिमा का चन्द्रमा यदि राशीश और बली शुभग्रह से दृष्ट हो तो अति सुन्दर स्वरूप, प्रख्यात यश वाला राजा होता है।

शत्रुजित राजयोग

गुरु और शुक्र दोनों यदि धन स्थान में हो तो शत्रुजेता राजा होता है।

द्वीपाधिप राजयोग

जन्म पत्रिका में कर्कलग्न में गुरु और चन्द्रमा हो मीन में शुक्र, तुला में शनि, मेष का सूर्य और मङ्गल अपने वर्ग में हो तो जातक राजा होता है।

त्रिभुवनाधिप राजयोग

जन्म पत्रिका में सब पाप ग्रह अपने नीच या शत्रुराशि में होकर ३, ६ स्थान में हो और बली शुभ ग्रह परमोच्च में होकर केन्द्र में हो, कर्कस्थ चन्द्रमा दशमभाव में हो और रात्रि में जन्म हो तो चक्रवर्ती राजा होता है।

शत्रुजित राजयोग

जन्म पत्रिका में मेष लग्न में रवि, चन्द्र, मंगल हो, वृष में शुक्र शनि, बुध हों; धनुराशिस्थ स्वनवांश में गुरु हो अथवा केवल रवि पूर्ण बली होकर अपने परमोच्च में हो तो शत्रु को जीतने वाला और विद्वान् राजा होता है।

विमल कीर्तिमान् राजयोग

जन्म पत्रिका में शुक्र बुध गुरु पञ्चम भाव में, षष्ठ भाव में सूर्य, अपने उच्च में मंगल, नवमभाव में शनि हो तो धर्मात्मा, यशस्वी और प्रतापी राजा होता है।

प्रसिद्ध यशस्वी राजयोग

जन्म पत्रिका में गुरु से दृष्ट रवि, चन्द्रमा से दृष्ट शुक्र, मंगल से दृष्ट शनि, यदि चरराशि लग्न में हो तो शत्रुजेता यशस्वी राजा होता है।

स्वभुज विजयी राजयोग

जन्म पत्रिका में यदि जातक के जन्मपत्रिका में कन्या लग्न में बुध हो, मीन लग्न में बलवान् बृहस्पति हो, मेष लग्न में मंगल हो, शनि षष्ठ भाव में और शुक्र चतुर्थ स्थान में स्थित हो तो वह जातक अपने बाहुबल से सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने वाला राजा होता है।

अस्थिर स्वभावी राजयोग

जन्म पत्रिका में यदि बली मंगल मकर लग्न में हो, नवम में शनि, सप्तम भाव में चन्द्रमा सहित सूर्य हो तो जातक अति चञ्चल स्वभाव का राजा होता है।

अजेय राजयोग

जन्म पत्रिका में मकर लग्न में शनि, सप्तम भाव में चन्द्र और बृहस्पति हो, कन्या में बुध यदिशुक्र से दृष्ट हो तो जातक दुर्धर्ष (अजेय) राजा होता है।

द्विज देवभक्त राजयोग

यदि कुण्डली में मित्र से दृष्ट गुरु धनु में हो, लग्न में शुक्र, कर्क में चन्द्रमा हो तो जातक तालाब, देवमन्दिर बनाने वाला ब्राह्मणों का परम भक्त राजा होता है।

सर्ववन्दित राजयोग

जन्म पत्रिका में एक भी स्वच्छरशिम शुभग्रह उच्च में होकर केन्द्र में हो अथवा केवल पूर्ण बली सूर्य केन्द्र में हो उस पर पञ्चम भावस्थ गुरु की दृष्टि हो तो जातक वन्दनीय भूपति होता है।

स्वबाहुबल से शत्रु को जीतने वाले राजा का राजयोग

जन्म कुण्डली में मंगल शनि रवि षष्ठ या तृतीय भाव में हो, सिंह का गुरु एकादश भाव में हो उन पर शुभग्रह की दृष्टि हो और रवि चन्द्र की दृष्टि नहीं हो तो शत्रु पक्ष को पराजित करने वाला राजा होता है।

कीर्तिमान् राजयोग

जन्म पत्रिका में चन्द्र बुध मंगल ये अपने नवमांशस्थ होकर १२, ३ भाव में हो और नीच राशि में वा अस्त नहीं हों, गुरु और चन्द्र पञ्चम भाव में हो तो परम यशस्वी राजा होता है।

पुष्कल नामक राजयोग एवं फल

जन्म पत्रिका में पूर्ण बली जन्मराशिपति और लग्नेश अधिमित्र की राशि में स्थित केन्द्र में होकर लग्न को देखता हो तो पुष्कलयोग होता है। पुष्कलयोग में जन्म लेने वाला शत्रुजेता यशस्वी राजा होता है।

शतयोजन भूमि का स्वामी

रेवती, पू. फा. उ. फा. मूल या पुष्य में स्थित सूर्य लग्न में हो तो जातक सौ योजन भूमि अथवा देश का राजा होता है।

सार्वभौम राजयोग

यदि कुण्डली में लग्न के नवमांश का स्वामी अपने उच्च में होकर केन्द्र में हो तो जातक राजा होता है। जन्म राशीश या जन्म लग्नेश यदि केन्द्र में हो तो जातक धन सम्पन्न होता है।

वर्धितश्री राजयोग

यदि जन्म कुण्डली में चन्द्रमा के साथ शनि केन्द्र में हो तो जातक परजात होकर भी धन वाहनों से परिपूर्ण राजा होता है।

शत्रुजेता राजयोग

यदि जन्म कुण्डली में शुक्र बृहस्पति बुध ये द्वितीय भाव में, चन्द्र रवि मंगल ये सप्तम भाव में हो तो जातक शत्रुहन्ता राजा होता है।

विश्व का कल्याण करने वाला राजा

यदि कुण्डली में कुम्भ के अष्टम अंश पर त्रिकोण (५, ९) में चन्द्रमा हो तो समस्त प्रजा का हित साधक राजा होता है।

वीर राजयोग

जन्म पत्रिका में किसी राशि के १५वें अंश पर एक राशि के ५ वर्ग में चन्द्रमा हो तो अपने भुजबल से पृथ्वी को जीतने वाला वीर राजा होता है।

सार्वभौम राजयोग

यदि कुण्डली में उक्त राजयोगो में यदि पूर्णचन्द्रमा पुष्य वर्गोत्तम नवांश, कृत्तिका या अश्विनी में हो वा त्रिपुष्करयोग हो तो चक्रवर्ती राजा होता है।

अतुल्य बलवान् राजयोग

यदि जन्म कुण्डली में पूर्ण रश्मि चन्द्रमा दशम भाव में, बली शुक्र नवम में, शेष ग्रह एकादश भाव में हो तो सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी राजा होता है।

अहंकारी राजयोग

जन्म पत्रिका में सब ग्रह यदि चन्द्रमा से उपचय (३, ६, १०, ११) में हो तो मानी समस्त भूमण्डल का राजा होता है।

कुबेर के समान धनी राजयोग

जन्म पत्रिका में यदि मंगल से गुरु, चन्द्र, सूर्य क्रम से ५, ९, ३ स्थान में हो तो धन में कुबेर तुल्य धन से सम्पन्न राजा होता है।

त्रिसमुद्रपारग राजयोग

पत्री में बुध से यदि तृतीय भाव में सूर्य, चतुर्थ में शुक्र तथा अन्य ग्रह पञ्चम भाव में हो और कोई भी नीच शत्रु राशि में नहीं हो तो तीन समुद्र पर्यन्त पृथ्वीपति होता है।

सिंहासनाधिशायी राजयोग

जन्म कुण्डली में शनि से यदि शुक्र और बुध केन्द्र में हो, शेष ग्रह उच्चस्थ हों तो सिंहासन पर सोने वाला राजा होता है।

अपने बाहुबल से पृथ्वी को जीतने वाला राजा

जन्म पत्रिका में पूर्ण रश्मि लग्नेश से यदि पापग्रह एकादश स्थान में और शुभ ग्रह केन्द्र में हो तो अपने भुजबल से पृथ्वी के जीतने वाला पृथ्वी का राजा होता है।

समस्त नृपों से वन्दित राजा

जन्म पत्रिका में जन्म राशिपति से ११, ३, ६ में सब पापग्रह हो उन पर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो सर्वश्रेष्ठ वन्दनीय राजा होता है।

सुनफादि योग में भी राजयोग का विचार

जन्म कुण्डली में चन्द्रमा से अगले पिछले तथा दोनों केन्द्र में सूर्य से भिन्न ग्रह हों तो क्रम से सुनफा, अनफा, दुरधरा योग होते हैं। इन योगों में राजकुल में जन्म लेने वाला अवश्य राजा होता है।

अतुल कीर्तिमान् राजयोग

जन्म पत्रिका में यदि चन्द्र और बृहस्पति केन्द्र में शुक्र से देखे जाते हो और कोई ग्रह नीच में नहीं हो तो कीर्तिमान राजा होता है।

सार्वभौम राजयोग

यदि जन्म पत्रिका में बली शुक्र अपने नवमांश में होकर लग्न में हो उन पर बुध शनि की दृष्टि हो तो तथा गुरु ५वें हो तो अपने बाहुबल से शत्रुओं को मारने वाला हाथियों से युक्त सार्वभौम राजा होता है।

जातक भङ्ग योग

चाण्डाल सदृशी योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि गुरु, केतु अथवा राहु के साथ पापग्रह से देखा जाता हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य निश्चकर चाण्डाल सदृश होता है।

कुण्डली में यदि गुरु अपनी नीचराशि अथवा नीचराशि के नवांशगत हो, तो इस योग में मनुष्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भी चाण्डाल सदृश हो जाता है।

ब्राह्मण सदृशी योग

जिस-किसी की कुण्डली में केतु, राहु और शनि से युक्त गुरु यदि शुक्र

अथवा बुध से देखा जाता हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य सभी प्रकार के ज्ञान को प्राप्त कर शूद्र कुल में उत्पन्न होकर भी ब्राह्मण सदृश होता है।

भिक्षाटन-धनरहित-नित्य लुब्ध योग

जिस-किसी की कुण्डली में मेष राशिस्थ चन्द्र यदि शनि से देखा जाता हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य भिक्षाटन करने वाला होता है।

यदि वह चन्द्र मंगल से देखा जाता हो तो इस योग में मनुष्य धनहीन होता है।

लग्न और चन्द्र यदि शनि से देखा जाता हो, तो इस योग में मनुष्य सदा लुब्ध अर्थात् धन की अपेक्षा वाला होता है।

दास और भिक्षाटन योग

जिस-किसी की कुण्डली में उपरोक्त योग तभी होता है, जब उस पर शुभग्रहों की दृष्टि नहीं होता, केवल पापग्रह की दृष्टि होती है।

कुण्डली में तात्कालिक लग्न का स्वामी मंगल केन्द्र में और शनि यदि लग्न में हो तथा उसको शुभग्रह नहीं देखता हो, तो इस प्रकार के योग में उत्पन्न मनुष्य दूसरे का दास हुआ करता है तथा भिक्षाटन कर जीवन रक्षा कर पाता है।

श्वास क्षयप्लीहगुल्मविद्रधि रोग योग

जिस-किसी की कुण्डली में पापग्रहों के मध्य में चन्द्र स्थित हो और शनि सप्तमभाव में हो, तो इस योग में मनुष्य श्वास रोग, क्षयरोग, प्लीहा रोग, गुल्म रोग और विद्रधि रोग आदि से पीड़ित होता है।

अङ्ग वैकल्य व तनु शोषण योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि सूर्य से वेशिस्थान अर्थात् द्वितीय भाव में शनि और दशम भाव में चन्द्र तथा सप्तम भाव में मंगल स्थित हो, तो इस योग में मनुष्य का कोई अङ्ग विकल होता है।

कुण्डली में यदि चन्द्र और सूर्य नवांश चक्र में परस्पर एक-दूसरे की राशि में स्थित हो, तो इस योग के रहने पर मनुष्य का शरीर क्लेश युक्त होता है।

सूखा रोग-अंधापन-विक्षिप्तता योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि सूर्य और चन्द्र सिंह राशि या कर्क राशि में एक साथ हों, तो इस ग्रह स्थिति में मनुष्य को सूखारोग से शरीर पीड़ित होता है।

कुण्डली में यदि सूर्य अष्टम भाव में, चन्द्र षष्ठभाव में, मंगल द्वितीय भाव में और शनि द्वादश भाव में क्रम से स्थित हों, तो इस प्रकार की ग्रहस्थिति के रहने पर मनुष्य उनमें से बलवान् ग्रह के धातु कोप से नेत्रों से हीन होता है।

कुण्डली में यदि लग्नभाव में गुरु और सप्तम भाव में मंगल स्थित हो, तो मनुष्य, इस योग के रहने पर उन्माद (विक्षिप्तता) से ग्रस्त होता है।

उन्माद व स्मृति भ्रंश योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि शनि लग्न में, मंगल सप्तमभाव में अथवा त्रिकोण भाव में शनि और मंगल स्थित हों , तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य उन्माद रोग से ग्रस्त, बुद्धि-स्मृति भ्रंश से युक्त होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि लग्न में शनि, व्ययभाव में सूर्य अथवा त्रिकोण भाव में चन्द्र और मंगल स्थित हो, तो इसे आगे में कहा गया है।

पुनः उन्माद बुद्धि योग

पूर्वोक्तानुसार इस योग में उत्पन्न मनुष्य उन्मादी बुद्धि अथवा जड़ बुद्धि (बेवकूफ) वाला अथवा चञ्चल बुद्धि वाला होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में लग्नभाव अथवा त्रिकोण भाव में सूर्य और चन्द्र अथवा शनि और गुरु केन्द्रभाव में हो तथा जन्म के समय शनिवार अथवा मंगलवार हो, तो मनुष्य उन्माद बुद्धि से युक्त होता है।

अथवा कुण्डली में केन्द्र भाव में बुध और चन्द्र शुभनवांश में न होकर पापनवांश में हो, तो इस योग में भी उत्पन्न मनुष्य बुद्धि भ्रम से युक्त होता है।

अन्य वसु (धन) स्त्री भोग करने वाला योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि शनि, चन्द्र और सूर्य केन्द्र भाव में स्थित हो, तो इस प्रकार की ग्रहस्थिति में उत्पन्न मनुष्य मूर्ख और दूसरे के धन का भोग करने वाला होता है।

कुण्डली में भाग्येश (नवमेश) द्वादश स्थान में और व्ययेश द्वितीय (धन) स्थान में और तृतीय स्थान में पापग्रह स्थित हों, तो इस प्रकार 'केमद्रुम योग' में उत्पन्न मनुष्य कुभोजन (अखाद्य) करने वाला, दुष्कर्मरत और परायी स्त्री में गमन करने वाला होता है।

कुलनाशक-अल्पायु-भिक्षुक योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि लग्नेश, अपनी नीच राशि में अथवा नीच राशि के नवांश में तथा पापग्रह षष्ठ और अष्टम भाव में एवं मान्दि (गुलिक) लग्न में स्थित हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में उत्पन्न मनुष्य अपने कुल का नाशक होता है।

यदि उपरोक्त ग्रहों पर शुभग्रह की दृष्टि का भी अभाव हो, तो मनुष्य अल्पायु होता है।

यदि सभी ग्रह अपनी-अपनी नीच राशि या शत्रु राशि में होकर दशमभाव को छोड़कर अन्य भावों में स्थित हों, तो इस प्रकार की ग्रहस्थिति में मनुष्य निश्चयकर भिक्षुक जीवन व्यतीत करने वाला होता है।

भिक्षाशनी-दुःखित देहभोग योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि द्वादशभाव में लग्नेश और दशमभाव में चन्द्रमा, मंगल और अन्य पापग्रहों के साथ स्थित हो, तो इस ग्रह योग में उत्पन्न मनुष्य अभिशप्त व परदेश में रहने वाला, भिक्षा से जीवन-यापन करने वाला और पीड़ित शरीर वाला होता है।

अपस्मार (मृगी) रोग योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि षष्ठभाव अथवा अष्टमभाव शनि और मंगल से युक्त हो, तो इस योग में मनुष्य अपस्मार (मृगी) रोग से युक्त होता है।

कुण्डली में यदि षष्ठभाव, द्वादशभाव और अष्टम भाव, इन भावों में पापग्रह स्थित हों अथवा गुरु केन्द्रभाव में परिधि संज्ञक अप्रकाशक ग्रह से युक्त होकर स्थित हो, तो भी इस योग के रहने पर मनुष्य अपस्मार (मृगी) रोग का शिकार होता है।

'गदा' नामक योग अपस्मार रोग योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि सभी पापग्रह अष्टमभाव में और चन्द्र व शुक्र केन्द्र भाव में स्थित हों, तो इस प्रकार के 'गदा' नामक ग्रहयोगों में उत्पन्न मनुष्य अपस्मार (मृगी) रोग से सन्तप्त होता है।

यहाँ 'गदाख्य योग' को आश्रय योग कथित गदायोग नहीं समझना चाहिए।

चाण्डाल योग-कुलाचार-सत्कर्महीन योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि बुध, चन्द्र और शुक्र एक साथ केन्द्रभाव में और लग्नभाव में राहु की स्थिति हो, तो यह चाण्डाल योग होता है। इस प्रकार के ग्रहयोगों में उत्पन्न मनुष्य अपने कुल के आचार-विचार या मर्यादा से रहित और असत् या बुरा कर्म करने वाला होता है।

वाग्दोष-परिभ्रंश योग

जिस-किसी की कुण्डली में दशमभाव अथवा द्वितीय भाव में यदि पापग्रह स्थित हो और वह शुभग्रह की युति और दृष्टि से रहित तथा गुरु बलहीन और नीचादि में स्थित हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य की वाणी दोषयुक्त और वह धर्मादि से हीन होता है।

कुलघ्न आदि योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि नवमेश पापग्रह के साथ अन्त्य (व्यय) भाव में तथा लग्नेश सूर्य के साथ स्थित हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में उत्पन्न मनुष्य कुलघ्न अर्थात् कुल का नाशक होता है।

इस प्रकार उपरोक्त योग में शुभग्रह की दृष्टि अथवा युति का भी यदि अभाव हो, तो इस स्थिति में मनुष्य अपने पुत्र, स्त्री, धन आदि का भी नाश करने वाला होता है।

कुलध्वंस-विदार योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि केन्द्र भाव में शुभ और पाप अर्थात् मित्र ग्रहों की स्थिति-प्रभाव हो तथा चन्द्र लग्नेश से भी दृष्ट हो और वह शनि के नवांशगत अथवा शनि से युक्त हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में उत्पन्न मनुष्य अपने कुल का नाश करने वाला और भार्याहीन जीवन जीने वाला होता है।

गृह से बहिष्कृत-स्त्री-पुत्रहीन-मूर्ख योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि केन्द्रभाव में शनि और लग्न भाव में चन्द्र, तथा व्ययभाव में गुरु की स्थिति हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य भीख माँगने वाला, घर से बहिष्कृत और स्त्री-पुत्र के साथ गुणों से हीन अथवा होता है।

अति हीन वृत्ति योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चन्द्रमा से पञ्चम स्थान अथवा द्वितीय स्थान में लग्नेश स्थित हो अथवा अष्टम भाव में पापग्रह और दशमभाव में चन्द्र स्थित हो, तो इस ग्रह योग में मनुष्य अतिनीच-हीन अथवा निन्द्य वृत्ति से जीवन यापन करने वाला होता है।

जन्मभूमि भ्रष्ट-भाग्यहीन योग

जिस-किसी की कुण्डली में लग्नेश स्थित स्थान से अष्टमस्थान, द्वादश स्थान और षष्ठ स्थान; इन स्थानों में पापग्रह स्थित हों, तो इस प्रकार की ग्रहस्थिति से युक्त मनुष्य अपने जन्मस्थान से बहिष्कृत जीवन जीने वाला होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि गुरु अपनी नीच राशि अथवा शत्रुराशि के नवांश में और शनि गुरु के नवांश में स्थित हो, तो इस प्रकार की ग्रहस्थिति में मनुष्य निश्चयकर स्त्री-पुत्रहीन और अति दुःखी तथा रोग से ग्रस्त भाग्यहीन होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि अपनी उच्चराशि में होकर भी अपनी नीच राशि के नवांश में सूर्य स्थित हो, तो इस ग्रह स्थिति में उत्पन्न मनुष्य राजपुत्र होकर भी नीचता को प्राप्त होता है। इस योग में यदि वह सूर्य यदि पापग्रह से दृष्ट लग्न में स्थित हो, तो उपरोक्त फल अर्थात् मनुष्य राजपुत्र अर्थात् राजुकमार होकर भी निश्चय ही नीच जैसा व्यव्रहार कर्म वाला होता है।

राज योग भङ्गार्थ योग

जिस-किसी की कुण्डली में सूर्य यदि अपनी नीचराशि तुला के दस (१०) अंश में स्थित हो, तो इस स्थिति के प्राप्त रहने पर मनुष्य सहस्र या हजार राजयोगों के रहने पर भी हीनता को प्राप्त हो जाता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि शुक्र भी नीच राशिगत हो, तो मनुष्य के

राजयोग का विनाश हो जाता है तथा जन्म के समय उल्का, पात आदि अप्रकाश ग्रह लग्न में स्थित होकर राजयोग को नष्ट करते हैं।

परप्रैष्य (दूत) योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि शुक्र अपनी नीच राशि अथवा शनि के नवांश का होकर व्ययभाव में स्थित हो और सूर्य व चन्द्र सप्तम भाव में शनि से देखा जाता भी हो, तो इस ग्रह स्थिति को प्राप्त रहते उत्पन्न मनुष्य निश्चय ही दूसरे की आज्ञा पालन करने वाला 'दूत' होता है।

फटे-चिथड़े वस्त्र और बन्धन योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चन्द्रमा क्षीण अवस्था में हो, शुक्र सप्तमभाव में और शनि लग्न भाव में स्थित हो, तो इस ग्रहस्थित को प्राप्त रहते उत्पन्न मनुष्य भ्रष्टावस्था अर्थात् फटे-पुराने चीथड़ा वस्त्र पहनने वाला होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि लग्न में शनि और दशमभाव में चन्द्रमा हो तथा शुक्र से देखा जाता हो,तो मनुष्य, इस योग में बन्धन भोगने वाला अर्थात् कैदखाना (जेल, कारागार) की यात्रा करने वाला होता है।

मन्द-अक्षि रोगी योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि व्ययभाव में चन्द्र अथवा सूर्य हो अथवा शनि त्रिकोण भाव में और सूर्य सप्तमभाव अथवा अष्टमभाव में हो, तो मनुष्य इन ग्रहयोगों में उत्पन्न होकर मन्दाक्षि रोगी अर्थात् मन्द दृष्टि युक्त रोग वाला होता है।

कुण्डली में यदि ये सभी ग्रह अपनी नीचराशि या शत्रुराशि के नवांश में हों, तो भी नेत्र रोग, मन्ददृष्टि रोग वाला मनुष्य होता है।

अन्धा योग

जिस-किसी की कुण्डली में पञ्चमभाव और चतुर्थ भाव में पापग्रह स्थित हों, विशेष रूप से चन्द्र अष्टम अथवा द्वादश भाव में हो, तो इस योग की प्राप्ति से मनुष्य अन्धा होता है। यदि ये ग्रह पापग्रहों द्वारा देखा भी जाता हो, तो अन्ध और यदि शुभग्रहों से देखा जाता हो,तो किसी भी प्रकार की दृष्टि दोष नहीं होता है।

विकलाङ्गता-जाति भ्रष्टता योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चन्द्र दशम भाव में और सप्तमभाव में बुध तथा द्वितीय भाव में शनि स्थित हो, तो मनुष्य विकलाङ्ग होता है।

कुण्डली में उपरोक्त ग्रह अपनी नीच या शत्रु राशि के नवांश गत हों तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य निश्चय कर अपनी जाति से भी भ्रष्ट-पतित होता है।

कुष्ठ रोगी योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चन्द्रमा धनु राशि में होकर उसके मध्य नवांश (सिंह) में स्थित हो अथवा चन्द्र अन्य किसी भी राशि में होकर मकर, कर्क या वृष राशि के नवांश में स्थित हो और शनि और मंगल से युक्त अथवा दृष्ट हो, तो इन योगों में मनुष्य निश्चय कर कुष्ठ रोगी होता है। लेकिन चन्द्र यदि शुभग्रह से युक्त अथवा दृष्ट भी हो, तो मनुष्य उक्त योगों में कुष्ठ रोगी नहीं होता है।

गुल्म और कण्ठ रोगी योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चन्द्र कर्क, कुम्भ, वृश्चिक आदि राशि में से किसी के नवांश में मान्दि के साथ स्थित हो, तो मनुष्य इस योग में गुल्म (वायु-गोला) रोग का शिकार होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चन्द्र चतुर्थ भावस्थ होकर कर्क राशि या कुम्भ राशि या वृश्चिक राशि के नवांश में पापग्रह से युक्त हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोगों में उत्पन्न मनुष्य दाँत और कण्ठ का रोगी होता है।

उन्माद (बाबलापन) क्रोधी-कलहप्रिय योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि व्ययभाव में चन्द्र राहु सहित पापग्रह के साथ तथा शुभग्रह अष्टमभाव में स्थित हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग की स्थिति प्राप्त रहने पर उत्पन्न मनुष्य सदा कलह करने वाला, क्रोधी और बावलापन से युक्त होता है।

हृदयशूल-भाग्यहीनता योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चन्द्र पापग्रह से युक्त अथवा उसके विपरीत शुभग्रह से युक्त वृष या कर्क राशि में स्थित हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य नित्य हृदय-शूल (दर्द) से युक्त होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि उन्मण्डल में अर्थात् लग्न अथवा सप्तमभाव में चन्द्र और मंगल पापग्रह से युक्त तथा शुभग्रह की दृष्टि से रहित हो, तो इस योग में भी मनुष्य नित्य हृदयशूल से ग्रस्त होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि सप्तम भाव में चन्द्र और मंगल स्थित हो, तो मनुष्य नित्य हृदयशूल से पीड़ित रहता है।

जिस-किसी की कुण्डली में केन्द्रभाव में स्थित शनि, जिससे लग्नभावस्थ गुरु अथवा चन्द्र अथवा सूर्य देखा जाता हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग की प्राप्ति की स्थिति में उत्पन्न मनुष्य निश्चयकर भाग्हीन होता है तथा उसके द्वारा स्वोपार्तिल धन का भी चोर होता है , ऐसा ज्योतिषजन कहते हैं।

ज्ञान धनादि हीन-परान्नभुक्-रुग्णदेह-कलहप्रिय योग

जिस-किसी की कुण्डली में व्ययभाव में नवमेश और केन्द्र भाव में पापग्रह

स्थित हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में मनुष्य निश्चयकर ज्ञान, धन, बुद्धि आदि से रहित होता है। यदि वे शुभग्रह की दृष्टि से रहित हो, तो मनुष्य दूसरों के अन्न को खाने वाला, रोगी शरीर वाला और कलह करने वाला होता है।

संस्कारहानि योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि गुरु केन्द्र में स्थित हो, तो इस योग के रहने पर यह मानना चाहिए कि मनुष्य के पिता ने उसके जन्म के समय जातकादि संस्कार नहीं किया है अथवा केन्द्र भावस्थ गुरु यदि शुभग्रह की दृष्टि अथवा युति से रहित हो, तो इस योग के रहने पर यह जानना चाहिए कि मनुष्य ने पिता के मरने के समय, उसके ऊर्ध्व कर्मादि संस्कार नहीं किया है।

वाहन से भयप्रद योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि मंगल के साथ चन्द्र केन्द्रभाव में अथवा अष्टम भाव में स्थित हो अथवा चतुर्थ भाव में क्षीण चन्द्र तथा अष्टम भाव में कोई भी ग्रह स्थित हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोगों के रहने पर उत्पन्न मनुष्य को वाहन आदि से भय होता है, ऐसा ज्योतिषजन कहते हैं।

शारीरिक उष्णता और जल में पिता मृत्यु योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चतुर्थ भावस्थ सूर्य पापग्रहों से युक्त और देखा जाता हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य का शरीर प्राय: गरम अनुभव होता रहता है तथा वह स्वस्थ और सुखी होता है, ऐसा श्रेष्ठ ज्योतिषजन कहते हैं।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि सूर्य स्थित स्थान से नवमभाव मे चन्द्र स्थित हो, तो इस प्रकार इस ग्रहयोग में मनुष्य के पिता की मृत्यु जल में कहना चाहिए।

पिता की जल में मृत्यु योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि मीन राशि में सूर्य और चन्द्र स्थित होकर पापग्रह से देखा जाता हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में मनुष्य के पिता की मृत्यु जल में जाननी चाहिए।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि मंगल और राहु से युक्त शनि अथवा चतुर्थ भाव में स्थित शनि हो, तो भी इन दोनों योगों में मनुष्य के उत्पन्न होने से उसे जल का भय कहना चाहिए।

द्विज (ब्राह्मणादि) प्रहर्ता-कर्ण रहित-शिशुघ्न योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि अपनी नीच (कन्या) राशि में होकर शुक्र भाग्य (धर्म, नवम) भाव में पापग्रह से युक्त और दृष्ट हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में मनुष्य द्विज जाति (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य) को मारने वाला होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि अपनी नीच राशि में स्थित शुक्र राहु के साथ स्थित हो तो इस स्थिति में मनुष्य कर्ण (कान) से रहित होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि शुक्र दशम भाव में स्थित होकर मंगल से युक्त हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में उत्पन्न मनुष्य निश्चय कर शिशुओं को मारने वाला होता है।

शिशुघ्न और गोमृग जाति हन्ता योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि अपनी नीच राशि में स्थित गुरु अथवा सूर्य केन्द्रभाव में होकर पापग्रहों से युक्त हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में मनुष्य शिशु को मारने वाला होता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि केन्द्रभाव में पापग्रह से युक्त और शुभग्रह से दृष्ट अथवा अष्टमभाव में शुक्र स्थित हो, तो इस प्रकार के ग्रह योग के रहते उत्पन्न मनुष्य गाय, मृग, आदि को मारने वाला होता है।

नित्य पक्षिहन्ता योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि दशमभाव में स्थित चन्द्र और बुध पापग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट हो अथवा नीच राशि के नवांशों में शुभग्रह की दृष्ि से रहित हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोगों में मनुष्य निश्चय कर नित्य (सदा) ही पक्षियों का शिकार करने वाला होता है।

गलान्तमृत्यु और वामनयनहीन योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि अपनी नीच (मकर) राशि का गुरु अष्टम स्थान में स्थित हो, तो इस प्रकार के ग्रहयोग में उत्पन्न मनुष्य का गला दबाकर या घोंट कर मरण होता है, ऐसा ज्योतिषजन कहते हैं।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चन्द्रमा, शुक्र के साथ व्ययभाव अथवा सप्तम भाव में स्थित हो, तो इस प्रकार की ग्रह स्थिति के रहते उत्पन्न मनुष्य अपने वाम नेत्र से रहित होता है।

शिथिली भय-कृकलास भय योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि अष्टम अथवा त्रिकोण भाव में सूर्य स्थित हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य के घर में शिथिली (कुचलैड़, एक प्रकार का जहरीला कीट) का भय रहता है।

जिस-किसी की कुण्डली में यदि अष्टम अथवा त्रिकोण भाव में शनि अथवा केतु अथवा शनि के साथ केतु स्थित हो, तो इस प्रकार के ग्रह योग में मनुष्य के घर में कृकलास (छिपकली) का भय कहना चाहिए।

कौल्यादि पातित्य-कूर्म भय-दंशभय-स्त्रियों के निद्रा से भय योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि पूर्वोक्त स्थान अष्टम या त्रिकोण भाव में राहु स्थित हो, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य के घर में कुत्ता, सुअर आदि से अपवित्रता का होना, श्रेष्ठ ज्योतिषजन कहते हैं।

यदि उन (अष्टम भाव अथवा त्रिकोण) भावों में से किसी में मंगल हो, तो घर में कछुए का भय, बुध हो तो दंश (काटने वाले कीटों) का भय, शुक्र हो, तो घर में स्त्रियों के शयनादि से उत्पन्न अव्यवस्था से भय और यदि उन स्थानों (अष्टम या त्रिकोण) भावों में से किसी में शनि हो, तो मनुष्य के घर में अन्य लोगों के शयन आदि करने से उत्पन्न अव्यवस्था से भय कहना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त स्थितियों में ग्रहों के बलाबल को विचार कर अपने बुद्धि और अनुभव के अनुसार कम या अधिक भय, अपवित्रता आदि के विषय में ज्योतिषजनों को कहना चाहिए।

स्त्री गमन योग

जिस-किसी की कुण्डली में लग्न से सप्तम भाव में यदि सूर्य स्थित हो, तो मनुष्य बन्ध्या स्त्री का गमन करने वाला होता है। सप्तम भाव में यदि चन्द्र या चन्द्र की राशि हो, तो समान स्त्री से सम्भोग कहना चाहिए। मंगल वहाँ हो, तो रजस्वला स्त्री और बन्ध्या स्त्री दोनों में सम्भोग करने वाला मनुष्य होता है।

वहाँ बुध के होने पर मनुष्य वेश्या, हीन जातियों की स्त्री या वणिक् स्त्री आदि से सम्भोग करने वाला हो। यदि वहाँ गुरु हो, तो ब्राह्मणी स्त्री से; शुक्र के होने से गर्भवती स्त्री से, शनि और केतु आदि के होने से रजस्वला या जाति हीन स्त्री से गमन कहना चाहिए। यदि उस सप्तमभाव में राहु हो, तो गर्भिणी स्त्री से सम्भोग और चन्द्र के होने पर काली और कुबरी स्त्री से सम्भोग कहना चाहिए।

इस प्रकार उपरोक्त फल ज्योतिषों को ग्रहों की नीचादि स्थिति और बलाबल का विचार कर कहना चाहिए। इस तरह का फल प्रायः नीचादि में स्थित या बलहीन ग्रह के रहने पर ही घटित होते देखा गया है।

सम्भोग और सम्भोग स्थान योग

जिस-किसी की कुण्डली में उपरोक्त प्रकार जो स्त्रियों में गमन करना कहा गया है, उसी प्रकार चतुर्थभाव में स्थित ग्रह से भी कहना चाहिए। लेकिन चतुर्थभावस्थ ग्रह के अनुसार मनुष्य के द्वारा गमन करने का स्थान विशेष रूप से कहना चाहिए।

इस प्रकार सूर्य आदि ग्रह जिस-किसी की कुण्डली में यदि चतुर्थभाव में हो,

तो उस स्थित ग्रह के अग्रकथितानुसार संगम या गमन या सम्भोग का स्थान या घर कहना चाहिए। यथा चतुर्थ भाव में सूर्य हो, तो वन में, चन्द्र से घर में, मंगल से एकान्त प्रान्त स्थित घर में, बुध से विहार स्थान में, गुरु से देवालय, मन्दिर आदि और जलाशय योग्य भूमि में, शुक्र से विष्णु या शिव स्थान में और शनि से दुर्ग या जीती गई जलप्राय भूमि में मनुष्य द्वारा सम्भोग कहना उचित है।

पशुसङ्ग या समान सम्भोग योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि प्रथमभाव, चतुर्थभाव, सप्तमभाव और दशमभाव, इन चारों केन्द्र संज्ञक भावों में पापग्रह स्थित हों तो मनुष्य पशुओं के साथ मैथुन करने वाला होता है। यदि तीन उक्त भावों में पापग्रहों की स्थिति हो, तो मनुष्य पशु की तरह से सम्भोग करने वाला होता है।

स्त्रियों के स्तन आदि स्वरूप योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि सप्तम भाव में मंगल हो, तो स्त्री कृश (दुबली) स्तन वाली सम्भोगार्थ प्राप्त होती है। यदि सप्तमभाव में शनि, राहु या केतु हो, तो लम्बे स्तनों वाली स्त्री सम्भोगार्थ प्राप्त रहती है। यदि सप्तम भाव में सूर्य हो, तो कड़े या कठोर या ऊँचे स्तनों वाली स्त्री सम्भोगार्थ प्रस्तुत रहती है। यदि चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र में से कोई ग्रह सप्तम भाव में हो, तो मनुष्य से सम्भोगार्थ कोमलाङ्गी उत्तम या सुन्दर दर्शनीय स्तनादि अङ्गों वाली स्त्री होती है।

ग्रह स्थिति योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि चन्द्र क्षीण अर्थात् अमावस्या के पास का हो, तो घर पुराना व जीर्ण और चन्द्र यदि बलयुक्त अर्थात् पूर्णिमा के समीप का हो, तो घर दृढ़ और नवीन कहना चाहिए। यदि शनि राहु या केतु दुःस्थानों (६-८-१२) में हो, तो उस घर में गर्मी अधिक अनुभव होती है आदि नियमपूर्वक कहना चाहिए।

द्विज-देवतार्थ धन योग

जिस-किसी की कुण्डली में यदि द्वितीयेश और एकादशेश ये दोनों ही लग्नेश के मित्र हों, तो इस योग में उत्पन्न मनुष्य के धन निश्चय पूर्वक देवता, ब्राह्मण के उपयोग में व्यय होता है, ऐसा कहना चाहिए।

विंशोत्तरी महादशा जन्मनक्षत्र से दशेश ज्ञान प्रकार

जन्म नक्षत्र की संख्या में से २ घटाकर शेष में ९ से भाग दें, एकादि शेष से सूर्यादि दशेश जानना चाहिए। यथा १ शेष से सूर्य, २ शेष से चन्द्र, ३ शेष से मंगल, ४ शेष से राहु, ५ शेष से गुरु, ६ शेष से शनि, ७ शेष से बुध, ८ शेष से केतु ९ या ० शेष से शुक्र की दशा समझनी चाहिए।

विंशोत्तरी दशा ज्ञानार्थ महादशान्तर्दशा चक्र

सूर्य महादशा वर्ष ६
कृत्तिका उत्तरा फा. उत्तराषा. भरणी
अन्तर्दशा

नाम	वर्ष	मास	दिन
रवि	०	३	१८
चन्द्र	०	६	०
भौम	०	४	६
राहु	०	१०	२४
गुरु	०	९	१८
शनि	०	११	१२
बुध	०	१०	६
केतु	०	४	६
शुक्र	१	०	०

चन्द्र महादशा वर्ष १०
रोहिणी हस्त श्रवण
अन्तर्दशा

नाम	वर्ष	मास	दिन
चन्द्र	०	१०	०
भौम	०	७	०
राहु	१	६	०
गुरु	१	४	०
शनि	१	७	०
बुध	१	५	०
केतु	०	७	०
शुक्र	१	८	०
रवि	०	६	०

भौम महादशा वर्ष ७
मृगशिर चित्रा धनिष्ठा
अन्तर्दशा

नाम	वर्ष	मास	दिन
भौम	०	४	२७
राहु	१	०	१८
गुरु	०	११	६
शनि	१	१	९
बुध	०	११	२७
केतु	०	४	२७
शुक्र	१	२	०
रवि	०	४	६
चन्द्र	०	७	०

राहु महादशा वर्ष १८
आर्द्रा स्वाती शततारका
अन्तर्दशा

नाम	वर्ष	मास	दिन
राहु	२	८	१२
गुरु	२	४	२४
शनि	२	१०	६
बुध	२	६	१८
केतु	१	०	१८
शुक्र	३	०	०
रवि	०	१०	२४
चन्द्र	१	६	०
भौम	१	०	१८

गुरु महादशा वर्ष १६
पुनर्वसु विशाखा पूर्वाभाद्रपदा
अन्तर्दशा

नाम	वर्ष	मास	दिन
गुरु	२	१	१८
शनि	२	६	१२
बुध	२	३	६
केतु	०	११	६
शुक्र	२	८	०
रवि	०	९	१८
चन्द्र	१	४	०
भौम	०	११	६
राहु	२	४	२४

शनि महादशा वर्ष १९
उत्तराभाद्रपदा पुष्य अनुराधा
अन्तर्दशा

नाम	वर्ष	मास	दिन
शनि	३	०	३
बुध	२	८	९
केतु	१	१	९
शुक्र	३	२	०
रवि	०	११	१२
चन्द्र	१	७	०
भौम	१	१	९
राहु	२	१०	६
गुरु	२	६	१२

बुध महादशा वर्ष १७
आश्लेषा ज्येष्ठा रेवती
अन्तर्दशा

नाम	वर्ष	मास	दिन
बुध	२	४	२७
केतु	०	११	२७
शुक्र	२	१०	०
सूर्य	०	१०	६
चन्द्र	१	५	०
भौम	०	११	२७
राहु	२	६	१८
गुरु	२	३	६
शनि	२	८	९

केतु महादशा वर्ष ७
मघा मूल अश्विनी
अन्तर्दशा

नाम	वर्ष	मास	दिन
केतु	०	४	२७
शुक्र	१	२	०
सूर्य	०	४	६
चन्द्र	०	७	०
भौम	०	४	२७
राहु	१	०	१८
गुरु	०	११	६
शनि	१	१	९
बुध	०	११	२७

शुक्र महादशा वर्ष २०
पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढ़ा भरणी
अन्तर्दशा

नाम	वर्ष	मास	दिन
शुक्र	३	४	०
सूर्य	१	०	०
चन्द्र	१	८	०
भौम	१	२	०
राहु	३	०	०
गुरु	२	८	०
शनि	३	२	०
बुध	२	१०	०
केतु	१	२	०

ग्रहदशा वर्ष और भुक्त भोग्य वर्ष ज्ञान प्रकार

विंशोत्तरी दशा क्रम में सूर्य की दशा वर्ष ६, चन्द्र की १० मंगल की ७, राहु १८, गुरु १६, शनि की १९, बुध की १७, केतु की ७ और शुक्र की २० वर्ष की होती है।

अब जन्म नक्षत्र वश भयात व भभोग की गणना कर भयात में जन्म नक्षत्र वश ज्ञात दशेश ग्रह की दशा वर्ष से गुणा कर भभोग से भाग देने पर जो लब्धि होती है, उसे दशा वर्ष और शेष में १२ से गुणा कर भभोग से भाग देने पर लब्धि मास; इसी तरह पूर्वोक्तानुसार वर्ष, मास, दिन, घटि और पल प्राप्त वर्षादि को दशा वर्ष से घटाने पर भोग्य वर्षादि हो जाता है।

विंशोत्तरी दशा क्रम जानने का प्रकार

विंशोत्तरी दशा क्रम में कृत्तिकादि भरणी पर्यन्त २७ नक्षत्र (अभिजित् को छोड़कर) तीन आवृत्तियों में क्रम से सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, शुक्र आदि ९ ग्रहों के कहे गए हैं। दशा अथवा अन्तर्दशा और उसके स्वामियों का नाम और वर्षादि संख्या का क्रम पूर्वोक्तानुसार जानना चाहिए।

पुनः अन्तर्दशा ज्ञान प्रकार

अपनी प्राप्त दशा वर्ष को ३ से गुणा कर प्राप्त फल में जिस ग्रह की अन्तर्दशा लानी हो, उसकी दशा वर्ष से पुनः गुणा करके ३० से भाग देने से अन्तर्दशा वर्ष, मास, दिन आदि में प्राप्त होता है।

सूर्यान्तर्दशा फल

देशान्तरवास, बन्धु वियोग, दुःख, मनोद्वेग, रोग, भय, चोर पीड़ा, सञ्चित धन का नाश होना आदि सूर्य दशा का फल कहा गया है।

चन्द्रान्तर्दशाफल

चन्द्र की अन्तर्दशा के समय सुवर्ण आदि ऐश्वर्य, अश्व, गज, पालकी आदि श्रेष्ठ वाहन का लाभ, शत्रु पराजय, बल में वृद्धि, नाना प्रकार के सुरस अन्न, दान, शयन, उत्तम आसन और भोजन की प्राप्ति होती है।

भौमान्तर्दशा फल

राजा और चोर के कारण भय, अग्नि कृत् पीड़ा, सर्वाङ्ग रोग, सदा दुःखी, नाना प्रकार की चिन्ता, ज्वर, कष्ट आदि भौम की दशा में सम्भव होते हैं।

राह्वन्तर्दशा फल

राहु की अन्तर्दशा के समय मनुष्य बुद्धिहीन, दीन, चिन्तायुक्त, सर्वांग-पीड़ित, भयभीत, दुःखी, बन्धन, कष्ट और दरिद्रता के कारण क्लेश में रहता है।

गुर्वन्तर्दशा फल

राज्याधिकार, उत्कृष्ट चित्तवृत्ति, धर्म में निष्ठा, आरोग्यता, निश्चय ही धन धान्य वृद्धि आदि गुरु की अन्तर्दशा में सम्भव होता है।

शन्यन्तर्दशा फल

मिथ्यापवाद, हिंसक वृत्ति, बन्धन, द्रव्य नाश, मित्रों व बान्धवों से कलह करने की प्रवृत्ति, कार्य हानि आदि शनि अन्तर्दशा के समय सम्भव होता है।

बुधान्तर्दशा फल

अति सुन्दर स्त्रियों का भोग, सब प्रकार के भोग विलास, स्वर्ण-रत्न आदि की प्राप्ति, धनार्जन, ईश्वर स्मरण इत्यादि बुध की दशा के समय सम्भव होते हैं।

केत्वन्तर्दशा फल

स्त्री वियोग से शरीर क्लान्त, धन नाश, कष्ट, रोग, बन्धु कलह और देशान्तर गमन आदि केतु दशा में सम्भव होता है।

शुक्रान्तर्दशा फल

बाग-बगीचा आदि स्थान की प्राप्ति, शरीर स्वस्थ व पुष्ट, श्वेत छत्र की प्राप्ति, धन-धान्य वृद्धि, आयु वृद्धि, पुत्र-पौत्र की प्राप्ति आदि शुक्र दशा के समय सम्भव होते हैं।

योगिनी दशा के स्वामी कथन

योगिनी दशा क्रम में मंगला, पिङ्गला आदि दशा के स्वामी क्रम से चन्द्र, सूर्य, गुरु, मंगल, बुध, शनि, शुक्र और राहु-केतु सङ्कटा दशा के अर्थात् राहु पूर्वार्द्ध का स्वामी और केतु परार्द्ध का स्वामी जानना चाहिए।

जन्मनक्षत्र वश योगिनी दशा ज्ञान

जन्म नक्षत्र में ३ को मिला करके ८ का भाग देने से शेषांक मङ्गलादिक दशा क्रम से जाननी चाहिए। विशेष कोष्ठक से स्पष्ट हो जाएगा।

योगिनी दशा के नाम

मङ्गला, पिङ्गला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा, सङ्कटा, ये आठ योगिनी दशा के नाम कहे गए हैं।

योगिनी दशा वर्ष

मंगलादि योगिनी दशाओं के वर्ष क्रम से १, २, ३, ४, ५, ६, ७ और ८ कहे गए हैं, उनमें अन्तर्दशा लाने की विधि यह है कि प्रथम दशा वर्ष १ अर्थात् ३६० दिन में ३६ से भाग देने पर लब्धि अन्तर्दशा निकल आती है। आगे भी इसी तरह निकालना चाहिए।

अन्तर्दशा लाने में विशेष

प्राप्त दशा में जिस दशा का अन्तर्दशा लाना हो, उसके वर्ष संख्या से प्राप्त दशा को गुणा कर, उसमें ३६ से भाग देने पर अन्तर्दशा आ जाती है। अधोलिखित चक्र से अन्तर्दशा स्पष्ट हो जाएगा।

योगिनी दशान्तर्दशा चक्र

मङ्गला दशा वर्ष १ दिन ३६०		पिङ्गला दशा वर्ष २ दिन ७२०		धान्या दशा वर्ष३ दिन १०८०		भ्रामरी दशा वर्ष ४ दिन १४४०		भद्रिका दशा वर्ष ५ दिन १८००		उल्का दशा वर्ष ६ दिन २१६०		सिद्धा दशा वर्ष ७ दिन २५२०		सङ्कटा दशा वर्ष ८ दिन २८८०	
आ. चि श्र.		पुन. स्वा. ध.		पु. वि. शत.		अ.श्ले. अ.पूर्वाभा.		भ.म. ज्ये.उभा.		कृ. पूफा. मू.रे.		रो.उफा. पूषा.		मृ.ह. उषा.	
मङ्गला	१०	पि०	४०	धा०	९०	भ्रा०	१६०	भ०	२५०	उ०	३६०	सि०	४९०	सं०	६४०
पिङ्गला	२०	धा०	६०	भ्रा०	१२०	भ०	२००	उ०	३००	सि०	४२०	सं०	५६०	मं०	८०
धान्या	३०	भ्रा०	८०	भ०	१५०	उ०	२४०	सि०	३५०	सं०	४८०	मं०	७०	पिं०	१६०
भ्रामरी	४०	भ०	१००	उ०	१८०	सि०	२८०	सं०	४००	म०	६०	पिं०	१४०	धा०	२४०
भद्रिका	५०	उ०	१२०	सि०	२१०	सं०	३२०	म०	५०	पिं०	१२०	धा०	२१०	भ्रा०	३२०
उल्का	६०	सि०	१४०	सं०	२४०	मं०	४०	पिं०	१००	धा०	१८०	भ्रा०	२८०	भ०	४००
सिद्धा	७०	सं०	१६०	मं०	३०	पिं०	८०	धा०	१५०	भ्रा०	२४०	भ०	३५०	उ०	४८०
सङ्कटा	८०	मं०	२०	पिं०	६०	धा०	१२०	भ्रा०	२००	भ०	३००	उ०	४२०	सि०	५६०
योग	३६०	०	७२०	०	१०८०	०	१४४०	०	१८००	०	२१६०	०	२५२०	०	२८८०

योगिनी दशा फल

मंगला दशा में शत्रु के उपद्रव का नाश, हाथी-घोड़ा-स्वर्ण-रत्न आदि का लाभ, स्त्री-पुत्र-गृहादि का लाभ और मंगलादि कार्य का होना सम्भव होता है।

पिङ्गला दशा का प्रारम्भ सुख से होता है, तदनन्तर दुःख, शोक, कुल रोग की वृद्धि, चित्त में व्याकुलता और बन्धुओं में वैरभाव होता है।

धान्या दशा में धन वृद्धि, धान्य वृद्धि, राजपूजित, युद्ध में सदा विजय, धैर्य्य प्राप्ति, स्त्री-पुत्र का सुख प्राप्ति, चित्र वस्त्र लाभ आदि सम्भव होता है।

भ्रामरी दशा में विदेश भ्रमण, युद्ध में हानि, स्त्री को पीड़ा, सुख हीन होना, ऋण बोझ का भारी होना, रोग वृद्धि होना, स्वजनों का प्रकोप होना, देश-देश भटकते फिरना आदि सम्भव होता है।

भद्रिका दशा में धन की प्राप्ति, आनन्द में वृद्धि, गुण का प्रकाशन, उत्तम वस्त्र प्राप्ति, राजमान्य, भूषण प्राप्ति, स्त्री भोग आदि का सुख, कल्याण मार्ग का प्रशस्त होना आदि सम्भव है।

उल्का दशा में भ्रमण, रोग, दुःख, ज्वरकोप, धनवियोग, देशवियोग, स्त्री वियोग, गोत्र कलह, बन्धु व मित्र से वैर, नाना प्रकार के अनर्थ आदि सम्भव होते है।

सिद्धा दशा में राज्याभिमान, मित्र-बन्धु का सुख, धान्य लाभ, गुणों की सिद्धि, कीर्ति प्राप्ति, राज्यादि प्राप्ति, पुत्रादि सुख, सर्वकार्य सिद्धि आदि सम्भव होता है।

सङ्कटा की दशा में जनों में कलह, ज्वर पीड़ा, स्त्री आदि कष्ट,पशुओं का नाश, गृह अल्पवास, प्रवास की अभिलाषा, राजपक्ष से सङ्कट आदि होते हैं।

पुनः मंगलादिदशा फल

१. मङ्गलादशा में शुभ कार्य, आनन्द, यश और द्रव्य की प्राप्ति होती है।

२.पिङ्गला में शरीर पीड़ा, मन में दुःख, भ्रमित होना आदि सम्भव है।

३. धान्या में धन प्राप्ति, मित्र-बन्धु मिलन, आरोग्यता, सुन्दरता आदि होते हैं।

४. भ्रामरी में स्थान नाश, दिक् भ्रमण होते हैं।

५. भद्रिका में सुख, सम्पत्ति, विलास, यश आदि मिलते हैं।

६. उल्का में राज से भय, धन-नाश, रोग ग्रस्तता, पीड़ा आदि होते हैं।

७. सिद्धा में कार्य सिद्धि, सुख प्राप्ति आदि सम्भव होता है।

८. सङ्कटा में व्याधि, मरण, क्लेश आदि मिलते हैं।

वर्ष दशा क्रम प्रकार

वर्ष दशा का क्रमारम्भ जन्म राशि से माना जाता है। इस तरह जिस मास में जन्म राशि का सूर्य हो, उस राशि से द्वादश (१२) मास में वर्ष दशा का क्रम पूरा होता है। यहीं से सूर्यादि नवग्रहों की दशा का क्रम अधोलिखित काल क्रम से भुक्त होता है।

२० दिन सूर्य की दशा जन्म राशि वाले स्थान से होती है, इसका फल भ्रमण है। ५० दिन चन्द्र की दशा, जो तीसरे स्थान के १० दिन रवि भोगते हैं, इसका फल नाना प्रकार के उत्तम भोग की प्राप्ति है।

२८ दिन मंगल की दशा, जो चौथे स्थान के ८ दिन रवि भोगते हैं, इसका फल रोग व सन्ताप है। ५६ दिन बुध की दशा, जो छठें स्थान के ४ दिन रवि भोगते हैं, इसका फल सुखकारक है।

३६ दिन शनि की दशा, जो सप्तम स्थान के रवि १० दिन भोगते हैं, इसका फल पीड़ादायक है। ५८ दिन गुरु की दशा, जो नवमस्थ सूर्य ८ दिन में भोगते हैं। इसका फल धन प्राप्ति है।

४२ दिन राहु की दशा, जो दशम स्थान को २७ दिन भोगते हैं, इसका फल नाना प्रकार का सोच के उत्पन्न होने हैं। ७० दिन शुक्र की दशा, जो द्वादश स्थान को रवि सम्पूर्ण भोगते हैं, इसका फल सर्व सुखकारक है।

ग्रहों की नित्यानित्य दशाओं का प्रकार

गत तिथि, वार, नक्षत्र तथा नामाक्षर, इन सबके योगफल में ९ का भाग देना चाहिए। शेष १ से सूर्य की दशा, २ से चन्द्र की दशा, ३ से मंगल की दशा, ४ से राहु की दशा, ५ से गुरु की दशा, ६ से शनि की, ७ से बुध की, ८ से केतु की, ९ या ० से शुक्र की दशा जाननी चाहिए। इस प्रकार नित्य दशाक्रम जानना चाहिए और फल वर्ष दशा क्रम के समान समझें।

नित्यदशाज्ञानार्थ अन्य प्रकार

जन्मकालिक नक्षत्र की संख्या को ४ से गुणा करके गुणन फल में गत तिथि और वार की संख्या मिला करके ९ का भाग देने पर शेष १ से एक दिन की रवि की दशा जाननी चाहिए। जिसका फल है, शोक सन्ताप देने वाला। २ शेष से चन्द्र की दशा, फल कल्याण व लाभकारक। शेष ३ से मंगल की दशा मृत्यु कारक, शेष ४ से बुध की दशा, बुद्धि वृद्धिकारक। शेष ५ से गुरु की दशा धन देने वाली, शेष ६ से शुक्र की दशा सुख कारक, शेष ७ से शनि की दशा पीड़ा कारक, शेष ८ से राहु की दशा घातक, शेष शून्य से केतु की दशा मृत्यु देने वाली जाननी चाहिए।

पञ्चमहापुरुष-भूत विचार

पञ्चमहापुरुष लक्षण कथन

अब यहाँ पञ्चमहापुरुष लक्षणों को पहले कहा जा रहा है। भौमादि ग्रह बली होकर स्वोच्च या स्वराशि का केन्द्र में स्थित हों, तो क्रमश: रुचक, भद्र, हंस, मालव्य और शश नामक पंचमहापुरुष योग पूर्वाचार्यों ने बतलाया है।

रूचक लक्षण

रुचक योगोत्पन्न जातक का मुख लम्बा, अति उत्साही, निर्मलकान्ति, बलवान्, सुन्दर भ्रू युक्त, कृष्ण केश, सुरुचिवाला, युद्धप्रिय, रक्तश्यामवर्ण, शत्रुहन्ता, विवेकी, चोरों का स्वामी, क्रूर, राजा,मन्त्रज्ञ, दुर्बल जङ्घा, ब्राह्मण भक्त, हाथ में वीणा-वज्र-धनुष-पाश-वृषभ और चक्र रेखा से युक्त तथा अभिचार (मारणमोहन) कर्म में निपुण होता है। सौ अङ्गुल लम्बा, मुख व मध्य (कटिभाग) में तुल्य तथा वजन में एकहजार तुल्य होता है। विन्ध्य और सह्याचल पर्वतीय प्रदेश का शासक होता है। अन्त में ७० वर्ष की आयु में शस्त्र या अग्नि के द्वारा स्वर्ग जाता है।

भद्र लक्षण

भद्रयोग में उत्पन्न पुरुष सिंह सदृश, उच्च वक्ष:स्थल युक्त, हाथी सदृश धीर गति, लम्बी भुजावाला, पण्डित, चतुरस्र, योगक्रिया का ज्ञाता, सत्त्वगुणी, सुन्दर पैर व दाढ़ी-मूँछ, भोगी, शङ्ख-चक्र-गदा-शूल-हाथी-ध्वजा-हल रेखाओं से चिह्नित हाथ-

पैरवाला, सुन्दर नासिकायुक्त, शास्त्रज्ञ, काले बालों से शोभित, सब कार्यों में स्वतन्त्र तथा अपने परिवार का पालक होता है।

मित्र लोग भी उसका धनभोग करते हैं। वह तौल में पूर्णभारयुक्त होता है। स्त्री-पुत्रादि से संयुक्त, सकुशलराजा, वह मध्यदेश का रक्षक होकर सौ वर्ष तक जीवन जीता है।

हंस लक्षण

हंस योग में उत्पन्न पुरुष-हंस समान ध्वनि, सुमुख और उन्नत नासिका युक्त, कफप्रकृति, पिङ्गल नेत्र, रक्तनख, तीक्ष्णबुद्धि, पुष्ट कपोल, गोलमस्तक, सुन्दर पैर युक्त, उसके हाथ व पैर में मत्स्य-अङ्कुश-धनुष-शङ्ख-कमल-खाट सदृश रेखाचिह्न होते हैं। वह कामुक होता है, उसे स्त्री भोग से तृप्ति नहीं होती। उसके कद की लम्बाई ९६ अङ्गुल, वह जलक्रीड़ा प्रेमी, सुखी, गङ्गा-यमुना के मध्यवर्ती देश का पालक होकर सर्व सुख भोगते हुए सौ वर्ष जीता है।

मालव्य लक्षण

मालव्य योग में उत्पन्न पुरुष पतली कमर वाला, चन्द्र के समान कान्ति, सुगन्ध युक्त शरीर वाला, हल्का रक्तवर्ण, मध्यम कद, सुन्दर व स्वच्छ दाँत, हाथी के जैसा गम्भीर स्वर, घुटने तक लम्बी बाहु, उसके मुख की लम्बाई १३ अंगुल और चौड़ाई १० अंगुल होती है। वह ७० वर्ष तक सिन्धु और मालवक्षेत्र का सुखपूर्वक पालन करने के बाद सुरलोक को जाता है।

शश लक्षण

शश योग में उत्पन्न पुरुष छोटे दाँत और छोटे मुख वाला, शरीर मध्यम, पतली कमर, सुन्दर जाँध, बुद्धिमान्, वन और पर्वत आदि में विहार करने वाला, शत्रु के भेद का ज्ञाता, सेनानायक, ऊँचे दाँतों से युक्त, चञ्चल, धातुज्ञाता, स्त्री प्रेमी, परधन पाने वाला होता है। हाथ पैर में माला-वीणा-मृदङ्ग और शस्त्र चिह्न से युक्त वह सत्तर वर्ष तक सुखपूर्वक राज्य करते हुए अन्त में सुरधाम को जाता है।

पञ्चमहाभूत का प्रयोजन

अब पाँच प्रकार के महापुरुष योग कहने के अनन्तर अब आकाशादि पञ्चमहाभूत को प्रस्तुत करने की चेष्टा करते हैं। जिसके द्वारा अज्ञात जन्म लग्न वालों के लिए ग्रहों की वर्तमान दशा का ज्ञान किया जाता है।

अग्नि, भूमि, आकाश, जल और वायु के स्वामी क्रमशः भौमादि पाँचों ग्रह होते हैं। ग्रहों के बलानुसार ही उस ग्रहसम्बन्धी पञ्चमहाभूत का फल जानना चाहिये।

जातक प्रकृति

जिसके जन्मसमय में भौम बलवान हो वह अग्निप्रकृति का, बुध बलवान हो तो भूमि प्रकृति का, गुरु बली हो तो आकाश प्रकृति का, शुक्र बली हो तो जल प्रकृति का और शनि बलवान हो तो वातप्रकृति का होता है। यदि अधिक ग्रह बलवान रहें तो मिश्रित प्रकृति का होता है।

पंचभूत स्वभाव लक्षण

सूर्य बली हो तो अग्निस्वभाव और चन्द्र बली हो तो जलस्वभाव होता है। सभीग्रह अपनी-अपनी दशा में अपने महाभूत सम्बन्धि छाया (स्वभाव) का बोध कराते हैं।

अग्निस्वभाव का मनुष्य क्षुधार्त, चञ्चल, वीर, दुर्बल, विद्वान्, अधिक भोजन करने वाला, तीक्ष्ण, गौरवर्ण और स्वाभिमानी होता है।

भूमिस्वभाव का मनुष्य कपूर व कमल के समान गन्ध वाला, भोगी, स्थिरसुख से युक्त, बलयुक्त, क्षमाशील और सिंह की तरह गम्भीर स्वर वाला होता है।

आकाशतत्त्व स्वभाव का मनुष्य शब्दार्थ का ज्ञानी, नीतिनिपुण, प्रतिभयुक्त, ज्ञानी, खुले मुख और लम्बा कद वाला होता है।

जलतत्त्व स्वभाव का मनुष्य कान्तियुक्त, भारवाही, मधुरभाषी, राजा, बहु मित्र वर्ग युक्त और विद्वान् होता है।

वायुतत्त्व स्वभाव का पुरुष दानी, क्रोधी, गौरवर्ण, भ्रमणप्रिय, राजा, शत्रुजेता और दुर्बल शरीर वाला होता है।

पंचतत्त्वों की छाया

अग्नितत्त्व स्वभाव पुरुष का शरीर सुवर्णकान्ति का, शुभ्रदृष्टि, सब कार्य सिद्धि, शत्रुविजय और धनलाभ करने वाला होता है।

भूमितत्त्व स्वभाव का पुरुष (बुध की प्रबलता) सुन्दर सुगन्धि युक्त शरीर वाला तथा नख-केश-दन्त सब स्वच्छ, एवं धर्म-धन-सुख से युक्त होता है।

आकाश तत्त्व स्वभाव का पुरुष (बृहस्पति प्राबल्य) रहे तो बोलने में चतुर तथा गीत-वाद्यादि के श्रवण से सुख प्राप्त करने वाला होता है।

जलतत्त्व स्वभाव का पुरुष (शुक्र या चन्द्र की प्रबलता) शरीर से कोमल तथा स्वस्थ और विविध सुस्वाद भोजन से सुखी होता है।

वायुतत्त्व स्वभाव का पुरुष (शनि की प्राबलता) रहे तो मलिन शरीर, मूढ, दरिद्र, वातरोगी और शोक-सन्ताप से युक्त होता है।

इस प्रकार पञ्चतत्त्वों के जो फल होते हैं वे भौमादि ग्रहों के बली रहने पर ही पूर्णरूप से होते हैं, बलहीन रहें तो फलों में बलानुसार अल्पता समझना चाहिए।

ग्रह यदि नीच में, शत्रु या दुष्टराशि में रहे तो विपरीत फल समझें। ग्रह यदि बलहीन रहे तो उसका फल स्वप्न अथवा मन में प्राप्त होता है।

जिसका जन्मकाल अज्ञात हो उसका वर्तमान लक्षण से वर्तमान ग्रह की दशा समझें और दुष्टफल शान्त्यर्थ शान्तिग्रह की आराधना करें और करावें।

प्रयोजन

जिस समय जिस ग्रहतत्त्व का उदय हो, तदनुकूल कार्य से लाभ, अन्यथा हानि होती है। इसीलिए मुनियों ने ग्रहों के तत्त्वादिफल कहे हैं।

तत्त्व के उदय (ग्रह की दशा) अनुसार कार्य करें। अशुभ ग्रहों के लक्षण (अशुभ फल) में उनकी शान्ति करावें।

जैसे—अग्नितत्त्व (भौम की दशा) में जो फल कहे गये हैं वह लक्षित हो तो समझें कि इस समय भौम का समय है। तत्तद फलों की प्राप्ति से ग्रह की प्रसन्नता और फलहानि से क्रूरता समझकर उनकी शान्ति और तदनुकूल कार्य करना चाहिए।

जिस ग्रह की दशा में धन या सुखादि जो फल उक्त हैं—वह ग्रह यदि जन्मसमय या दशासमय में बलवान रहे तो जाग्रत् में प्रत्यक्ष फल, यदि निर्बल रहे तो स्वप्न में अथवा मानसिक चिन्ता में वह फल प्राप्त होता है।

सत्त्वादिगुणफल

अब सत्त्व, रज और तम; इन तीनों गुणों के अनुसार फल को बतलाते हैं—

जब सत्त्वगुण ग्रह की प्रबलता रहे उससमय उत्पन्न हुआ जातक सत्त्वगुणी और विद्वान होता है।

रजोगुण ग्रह के समय में रजोगुणी व बुद्धिमान् तथा तमोगुण ग्रह के समय में तमोगुणी व मूर्ख होता है।

गुण-साम्य हो अर्थात् तीनों गुणवाले ग्रहों का गुण रहे उससमय में उत्पन्न जातक मिश्रगुणी व मध्यम बुद्धि का होता है।

गुण के प्रकार

उत्तम-मध्यम-अधम और उदासीन चार प्रकार के गुण होते हैं। अत: चार तरह के प्राणी होते हैं। इनके गुणों को यहाँ प्रकट करने जा रहे हैं, जिसे प्राचीन (नारदादि) मुनियों ने कहा है।

उत्तम-मध्यम-अधम के लक्षण

सत्वगुण में इन्द्रिय और मन का संयमी, तपस्या, शौच, क्षमा, सरलता, सत्यवादिता, अलोभी व तपस्वी ये स्वभाव होते हैं।

रजोगुण में शूर, प्रतापी, धीर, चतुर, युद्ध में पीछे न हटने वाला तथा सज्जनों का रक्षक ये स्वभाव होते हैं।

तमोगुण में लोभी, मिथ्याभाषण, मूर्ख-आलसी और सेवाकार्य में पटु ये स्वभाव होते हैं।

उदासीन के लक्षण

गुणसाम्य में कृषिकार्य-वाणिज्य-पशुओं की सेवा में पटु तथा सत्य या असत्य भाषण करना ये स्वभाव होते हैं।

इस प्रकार लक्षणों देखकर ही उत्तम-मध्यम-अधम और उदासीन प्रवृत्ति के अनुसार समझना चाहिए तथा तदनुसार उसी कार्य में संलग्न करना चाहिये।

त्रिगुणों में से दो गुण प्रबल रहें तो उसकी प्रबलता अन्यथा (बल दो से अधिक नहीं रहे तो) गुणसाम्य होता है।

गुण प्रयोजन

स्वामी-सेवक एवं स्त्री पुरुष में यदि समान गुण (स्वभाव स्वरूप आदि) हों तो प्रेम-स्नेह होता है।

पूर्वोक्त चार प्रकार के मनुष्यों में यदि अधम-उदासीन, उदासीन-मध्यम और मध्यम-उत्तम का सम्बन्ध रहे तब भी परस्पर प्रेम एवं स्नेह होता है।

मेलापन विचार

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि यदि वर से कन्या और स्वामी से सेवक गुणों में कम रहें तो परस्पर प्रेम व स्नेह होता है। अन्यथा वर से कन्या और स्वामी से सेवक गुणों में अधिक रहें तो प्रेम व सौहार्द्र की हानि होती है।

गुणों से जातक भेद विचार—माता-पिता-जन्मसमय और सङ्गति (संसर्ग) ये उत्तम मध्यम आदि चार गुणों के कारण होते हैं, इनमें उत्तरोत्तर कारण बलवान् होता है।

अत: इससे यह सिद्ध होता है कि पिता के गुण बल १ माता में २, जन्मसमय में ३ और संसर्ग में ४ गुण बल होते हैं।

जन्मसमय में जिस गुण की प्राबलता रहती है, वही गुण जातक में होता है, अत: जन्म का समय परीक्षण करके ही फलादेश करना चाहिये।

त्रैलोक्य का ईश्वर अविनाशी-व्यापक-भगवान्स्वरूप काल ही समस्त चराच का उत्पादक, पालक और संहारक होता है।

कालस्वरूप भगवान् की त्रिगुणात्मिका शक्ति ही प्रकृति होती है। उस त्रिगुणात्मक शक्ति से विभाजित अव्यक्तकाल भी व्यक्त रूप में होते हैं।

भगवान् काल के गुणों के अनुसार क्रमशः उत्तम-मध्यम-उदासीन औ अधम ये चार अङ्ग होते हैं।

काल स्वरूप भगवान् के उत्तम अङ्ग से उत्तम जन्तु (चर वा अचर), मध्यम से मध्यम, उदासीन से उदासीन और अधमाङ्ग से अधम की सृष्टि होती है।

उत्तम अङ्ग कालभगवान् का शिर, मध्यम हाथ व वक्ष, उदासीन दोनों जङ्घ और अधम अङ्ग दोनों पैर होते हैं।

इस प्रकार गुणभेदानुसार काल के भेद और चर-अचर में जातिगत भेद होता है

।। इस प्रकार रावणसंहितान्तर्गत काल (ज्योतिष)शास्त्र चतुर्थ परिच्छेद सरल, सुबोध हिन्दी भाषा में मैथिल आचार्य शिवकान्त झा द्वारा सुसम्पन्नता को प्राप्त हुआ।।४।।

।। शुभमिति ।।

□□□

पञ्चम परिच्छेद

रावणमेघनाद सम्वादात्मक

सदाशिव उपासना

शिव और ॐकार

मेघनाद के जिज्ञासावश रावण ने शिव उपासना की जिन पद्धतियों को बतलाया उन्हें उसी प्रकार यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

शिवजी ने कहा—इसकी सर्वप्रथम उत्पत्ति मेरे मुख से हुई, यह मेरा ही स्वरूप है। यह वाचक है और मैं वाच्य हूँ, यह मन्त्र मेरी मात्रा है। इसका प्रतिदिन स्मरण करना मेरे ही स्मरण करने के समान है। उत्तर की ओर वाले मुख से आकार, पश्चिम की ओर वाले मुख से इकार, दक्षिण की ओर वाले मुख से मकार, पूर्व की ओर मुख वाले विन्दु और मध्य के मुख से नाद उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार यह ओंकार पाँच प्रकार से प्रकट हुआ। ये सब एकत्रित होकर ॐ इस आकार से परिवर्तित हो गया। यह सब नामरूपात्मक वेदस्वरूप दोनों कुल (स्त्री-पुरुष भेद) से शिव-शक्ति का बोधक है। इसी से पंचाक्षरात्मक ॐकार की उत्पत्ति हुई है, जो सम्पूर्ण संसार का बोध कराने वाला है। अकार से नकार, उकार से मकार, मकार से 'शि', विन्दु से 'वा', नाद से 'य' प्रकट हुआ है।

इसी पंचाक्षर से पाँच भेद वाली मातृकाएँ (स्वर) प्रकट हुई। उसी से शिरोमन्त्र तथा चार मुखों से त्रिपदा, गायत्री प्रकट हुई। उससे सभी वेद प्रकट हुए, तदनन्तर करोड़ों मन्त्र प्रकट हुए। उस मन्त्र से सिद्धि होती है, परन्तु पंचाक्षर मन्त्र से सब प्रकार की सिद्धियाँ होती है। इस मूल से भुक्ति तथा मुक्ति दोनों की सिद्ध हो जाती है। सभी प्रकार के मंत्रराज साक्षात् सुखभोगों को देने वाले होते हैं।

ॐ मंत्र का उपदेश

नन्दीकेश्वर ने कहा—तब उन दोनों के गुरु भगवान् शिवजी ने मन्त्र को गुप्त रखने के लिये एक वस्त्र को उनके सिर पर डालकर और उनके सिर पर अपना करकमल रखकर, पार्वती के साथ उत्तर की ओर मुख कर उन्हें उत्तम मन्त्र का उपदेश दिया। यन्त्र और तन्त्र की विधि के अनुसार तीन बार उस मन्त्र का उच्चारण करके उन्होंने उस परम मन्त्र को ग्रहण किया।

तदनन्तर उन दोनों शिष्यों ने दक्षिणा के निमित्त शिवजी के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया। और हाथ जोड़कर उन दोनों (ब्रह्मा और विष्णु) ने उनके सामने देवों के देव संसार के गुरु महादेव से ये वचन कहे।

ब्रह्मा और विष्णु ने कहा—हे निराकार रूप वाले और निराकार होने पर भी परम तेजस्वी आप के लिये नमस्कार है। समस्त संसार के स्वामी तथा सगुण रूप को धारण करने वाले आप के लिये नमस्कार है। ॐकार वाच्य तथा ओंकारात्मक लिङ्ग वाले आपके लिये नमस्कार है। सृष्टि के सर्वप्रथम कर्ता एवं पाँच मुख वाले आपको नमस्कार है।

पंच ब्रह्मस्वरूप, पंचकृत्य, आत्मास्वरूप, ब्रह्म, अनन्त गुण वाले तथा अनन्त शक्तियों से सम्पन्न आपके लिये नमस्कार है। सगुण तथा निर्गुण रूपों को धारण करने वाले शिव नामक परम गुरु के लिये नमस्कार है। इस प्रकार उक्त पदों द्वारा परम गुरु की स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णु ने उन्हें प्रणाम किया।

शिवजी ने कहा—हे पुत्रों ! मैंने तुम्हारे उपकार के लिये सभी तत्त्वों का तुम दोनों को उपदेश दिया। और उनका मार्गदर्शन भी कराया। अतः तुम अलौकिक प्रणव (ॐ) मन्त्र का जप करो, यह साक्षात् मेरा स्वरूप कहा गया।

ॐकार मंत्र जप का काल

इस मन्त्र का जप करने से ज्ञान और भाग्य सुस्थिर होता है और भी कामनाएँ चिर स्थिर हो जाती हैं। अतः इसका जप आर्द्रा नक्षत्र से युक्त चतुर्दशी के दिन करना चाहिए। इससे उस जप का फल अक्षय हो जाता है। आर्द्रा में जब सूर्य हो उस समय इस मन्त्र का जप करने से एक करोड़ गुना फल होता है।

मृगशिरा तथा पुनर्वसु नक्षत्र आदि का भाग भी सदैव आर्द्रा नक्षत्र के समान ही पूजा, होम, तर्पण आदि में समझना चाहिए। प्रातःकाल तथा प्रातःकाल की सन्धि में इसके दर्शन का महाफल है। अर्धरात्रि में रहने वाली चतुर्दशी का ग्रहण करना चाहिए।

कुछ आचार्य प्रदोष-व्यापिनी चतुर्दशी का ग्रहण करते हैं और कोई आचार्य पर-तिथि से युक्त चतुर्दशी का ग्रहण करते हैं तथा बेर पूजन मेरे पूजन के समान ही है, किन्तु पूजन करने वालों के लिये बेर का पूजन से भी लिङ्ग का पूजन उत्तम है, विशेषकर मोक्षार्थी को लिङ्ग पूजन ही करना चाहिए।

लिङ्ग की पूजा ॐकार मन्त्र से और बेर की पूजा पंचाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) से करनी चाहिए। पूजोपयोगी द्रव्यों से उसकी प्रतिष्ठा स्वयं या पुरोहित आदि से करानी चाहिए। विविध उपचारों से उस लिङ्ग की पूजा करने से भक्त को मेरा पद सुलभ हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु को उपदेश देकर शिवजी वही अन्तर्धान हो गये।

लिङ्ग पूजन की विशेषता वर्णन

ऋषियों ने कहा—लिङ्ग की प्रतिष्ठा किस प्रकार करनी चाहिए, उस लिङ्ग का क्या लक्षण है और उसका किस देश-काल में कैसे पूजा करनी चाहिए?

रावण ने कहा—मैं तुम्हारे लिये उसके विधान को कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो, ग्रह-नक्षत्र आदि से अनुकूल शुभ समय में पुण्यदायक किसी तीर्थ के तट पर अपनी इच्छा के अनुसार मृत्तिकामय, पाषाणमय अथवा धातुमय लिङ्ग की ऐसे स्थान पर स्थापना करें, जहाँ उसका प्रतिदिन पूजन हो सके।

कल्प लक्षण (शिव-पूजाविधान) से युक्त होकर लिङ्ग की पूजा करने से उसका पूर्ण फल प्राप्त होता है, क्योंकि सभी लक्षणों से युक्त की गयी पूजा का फल तत्काल मिलता है।

चर लिङ्ग को आकार में छोटा और स्थिर लिङ्ग को आकार में बड़ा बनवाना चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के लिङ्ग श्रेष्ठ होते हैं। ये सभी लक्षणों तथा सिंहासनों से युक्त हो, इस प्रकार शिवलिङ्ग की स्थापना करें।

चरलिङ्ग की स्थापना करने के लिय मंडलाकार अथवा त्रिकोणाकार पीठ को बनवाकर खट्वांग (डंडे पर पहनाये हुये शिर:कपाल स्वरूप ध्वजा) के समान बीच में सूक्ष्म लिङ्ग की पीठ (चौकी) महाफल को देने वाली होती है।

पहले मिट्टी, पत्थर तथा लोहा आदि धातु का शिवलिङ्ग बनवाये, जिस वस्तु का लिङ्ग हो उसी की पीठ (चौकी) बनवानी चाहिये। यह स्थावर लिङ्ग के निर्माण की विशेषता है। केवल बाण-लिङ्ग को छोड़कर शेष सभी लिङ्गों का निर्माण पीठ के साथ ही कराना चाहिए।

लिङ्ग की ऊचाँई उसके रचयिता से बारह अंगुल होना उत्तम कहा जाता है। यदि बारह अंगुल से कम ऊँचाई होती है, तो उसका फल भी कम होता है, बारह अंगुल से अधिक हो जाने से कोई दोष नहीं होता। कर्ता की अंगुली से एक अंगुल कम (ग्यारह अंगुल) हो, तो कोई हानि नहीं होती। यही विधान चर लिङ्ग का भी है।

सबसे पहले शिल्प विद्या में निपुण कारीगरों से देवगणों सहित विमान का निर्माण करना चाहिए। उसके भीतरी भाग में जो सुदृढ़ तथा दर्पण जैसा साफ-सुथरा हो, उसे नवरत्नों से अलंकृत करे, पूर्व और पश्चिम दिशा की ओर दो दरवाजे बनवायें।

नीलम, वैदूर्य (लहसुनियाँ), श्याम तथा मरकत मणि, मुक्ता, प्रवाल, गोमेद, हीरा ये नवरत्न हैं। जहाँ लिङ्ग की स्थापना करनी हो उसके बीच में इन रत्नों को रखें।

फिर 'सद्योजातं' आदि वैदिक मन्त्रों से लिङ्ग के पाँचों स्थानों (चारों ओर तथा बीच) में क्रमशः पूजन करके अग्नि में अनेक प्रकार से घी की आहुति देकर पुनः सगुण स्वरूप मेरी, गुरु तथा आचार्य की द्रव्य आदि से पूजा करके और भोजन आदि से बन्धु-बान्धवों का सम्मान करके याचकों के लिये जड़ (मकान, बगीचा आदि) और अजड़ (गाय, घोड़ा आदि) का दान देना चाहिये।

तदनन्तर प्रयत्न पूर्वक स्थावर, जंगम आदि सभी जीवों को सन्तुष्ट करके सुवर्ण तथा नवरत्नों से भरे हुए उस गर्त में 'सद्योजातं' इत्यादि वेद-मन्त्रों का उच्चारण करके परम शुभकारक महादेव का ध्यान करके और महामन्त्र ॐकार तथा नाद की घोषणा कर उसमें लिङ्ग को रखकर उसे उसके आसन के साथ मिला दें।

उसके बाद लिङ्ग के साथ उस पीठ को जोड़ने वाले द्रव्य से दृढ़ता पूर्वक जोड़ दें। इसी प्रकार बेर लिङ्ग की भी वहाँ स्थापना करनी चाहिये। पंचाक्षर मन्त्र से उत्सव के लिये उस बेर को बाहर रखें। बेर को गुरुओं तथा महात्माओं से ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार लिङ्ग अथवा बेर की पूजा शिवजी के पद को देने वाली है; फिर भी स्थावर एवं जंगम भेद से ये दो प्रकार के कहे गये हैं।

तरु, गुल्म आदि के लिङ्ग को स्थावर कहते हैं। कृमि, कीट आदि को जंगम लिङ्ग कहते हैं। स्थावर की सेवा पानी से सींचना आदि है और उसका तर्पण अन्न आदि से तृप्त करना है। उस सुख की प्राप्ति इस शिव पूजा से होती है, ऐसा विद्वानों को समझना चाहिए।

सभी पीठ प्रकृतिमय होते हैं और सभी लिङ्ग ज्ञान स्वरूप होते हैं, जिस प्रकार शिवजी सदैव पार्वती को अपनी गोद में लेकर स्थिर रहते हैं, उसी प्रकार यह लिङ्ग सदैव पीठ को धारण किये धारण रहता है।

इस प्रकार लिङ्ग की विधिवत् स्थापना करके विविध प्रकार के उपचारों से उसकी यथाशक्ति नित्य पूजा करें और उसके ऊपर ध्वजा आदि उपहारों को भी समर्पित करें। साक्षात् शिवजी के पद को देने वाली लिङ्ग की इस प्रकार स्थापना करें, अथवा शिवलिङ्ग की स्थापना कर उसकी षोडश उपचारों से यथाविधि पूजा करें। इससे शिवपद की प्राप्ति हो जाती है।

शिवलिङ्ग पूजन विधान

पूजा का क्रम इस प्रकार है—आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आवाहन सम्बन्धी आचमन, स्नान, अभ्यंग (उद्वर्तन), वस्त्र, गन्ध, धूप, दीप आदि को अर्पित करें।

निराजन, ताम्बूल, नमस्कार, विसर्जन अथवा अर्घ्य आदि को समर्पित करके नैवेद्य समर्पण करने तक यथाविधि कर्म करें। तदनन्तर अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण इन्हें यथाशक्ति प्रतिदिन करें; ये शिवपद को प्रदान करते हैं।

मनुष्य द्वारा स्थापित, कृषियों द्वारा स्थापित, स्वयं प्रकट हुए अथवा नये स्थापित लिङ्गों को यथोचित्त उपचारों द्वारा यथायोग्य पूजा-सामग्री समर्पित करने से भी कुछ ना कुछ फल की प्राप्ति होती ही है।

प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करने से भी शिवपद की प्राप्ति होती है। प्रतिदिन नियम से शिव-दर्शन करने मात्र से भी शिव पद की प्राप्ति होती है।

पीसी हुई मिट्टी में मिलाये गये गाय के गोबर से, कनेर के फूल से, अनेक प्रकार के फलों से, गुड़ से, मकवन से, भस्म से, विविध अन्नों से अपनी इच्छा के अनुसार यत्नपूर्वक लिङ्ग का निर्माण करके अन्त में उसकी पूजा करें।

कुछ विद्वान अंगूठे में ही शिव जी की पूजा करते हैं, क्योंकि लिङ्ग पूजा जहाँ भी करें इसका कोई निषेध नहीं है।

शिप प्राप्ति के उपाय

भगवान् शिव अपने भक्त के प्रयत्न के अनुसार सर्वत्र फल देते हैं, अथवा लिङ्ग का दान या उसका मूल्य श्रद्धा पूर्वक शिवभक्त को देने से शिवपद की प्राप्ति हो जाती है।

अथवा प्रतिदिन दस हजार ॐकार का जाप करें। अथवा दोनों सन्ध्या कालों में एक-एक हजार ॐकार का जप करने से शिव पद की प्राप्ति होती है। जप के समय मकारान्त 'ओम्' मन को शुद्ध करता है। समाधिकाल में मानसिक जप तथा सभी समय उपांशु (जो दूसरे को सुनायी न पड़े) जप करना चाहिये।

विन्दु नाद युक्त प्रणव (ॐ) मन्त्र सभी जपों में समान होता है। अथवा श्रद्धा-भक्ति से प्रतिदिन दस हजार पंचाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) का जप करें। अथवा दोनों सन्ध्या कालों में एक-एक हजार पंचाक्षर मन्त्र का जप करें। इससे शिव पद की प्राप्ति हो जाती है।

ब्राह्मणों को पंचाक्षर मन्त्र के आदि में ॐ लगाना चाहिए। और फल प्राप्ति के लिये इस मन्त्र को विधिपूर्वक गुरु से ग्रहण करना चाहिए। गुरु को घटनास्थल तथा मातृकान्यास करने वाला, मन्त्र दीक्षा को जानने वाला, सत्यवक्ता एवं आत्मज्ञानी होना चाहिए।

ब्राह्मणों को जप करते समय नमः शब्द पहले लगाना चाहिये और दूसरे अधिकार प्राप्त वर्णो को नमः अन्त में लगाना चाहिए। यथा—ॐ नमः शिवाय और ॐ नमः शिवाय।

कुछ विद्वान् स्त्रियों को भी नमः का प्रयोग अन्त में करना चाहिए; ऐसा कहते हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ब्राह्मणों की स्त्रियाँ भी नमः शब्द का प्रयोग पहले ही करें।

इस प्रकार पाँच करोड़ जप करके मनुष्य सदाशिव के समान हो जाता है। एक, दो, तीन, चार करोड़ जप करके भक्त ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के पद को प्राप्त हो जाता है अथवा एक-एक अक्षर का अलग अलग एक-एक लाख जप करें।

अथवा मन्त्र के जितने अक्षर हों उतने लाख जप करने से भक्त को शिवपद की प्राप्ति होती है। अथवा हजार दिन में दस लाख करे। प्रतिदिन मन्त्र का जप करके ब्राह्मण-भोजन कराने से इष्टकाल की सिद्धि होती है। प्रतिदिन प्रातःकाल ही एक हजार आठ गायत्री का जप करे।

ब्राह्मण को चाहिए कि वह शिव पद को प्रदान करने वाले वेद मन्त्रों को तथा सूक्तों का प्रतिदिन नियमपूर्वक जप करें। एक दशार्णमन्त्र को सौ से अधिक जितना हो सके उतना जप करें, सौ से कम ना जपे; भले ही वह हजार तथा दस हजार हो, किन्तु सौ से कम ना हो।

वेद का पारायण करने से भी शिव पद की प्राप्ति होती है, अन्य अनेक मन्त्रों को उनकी अक्षर-संख्या के अनुसार उतने लाख बार जपे। एकाक्षर मन्त्रों का एक करोड़ जप करें, उसके बाद भक्तिपूर्वक होकर एक हजार परम मन्त्र ॐकार का जप करें।

इस प्रकार यथाशक्ति जप करने से क्रमशः शिवपद की प्राप्ति होती है, अपने मन को प्रिय लगने वाले एक मन्त्र का जप मरण-पर्यन्त करते रहना चाहिये। ॐकार मन्त्र का एक हजार जप करने से शिवजी की आज्ञा से सभी प्रकार के मनोरथ की प्राप्ति हो जाती है।

फूल लगाना, बगीचा लगाना, उनके मन्दिर को साफ करना आदि कार्य शिवजी के लिये अथवा शिवजी के उपयोग के लिये करने वाला व्यक्ति शिवपद को प्राप्त करता है। प्रतिदिन भक्तिपूर्वक शिवालय में निवास करें। शिवभक्ति जड़ तथा चेतन सभी को सुख भोग तथा मुक्ति प्रदान करती है।

इसलिये शिव क्षेत्र में मृत्यु-पर्यन्त निवास करना चाहिए। मनुष्य द्वारा स्थापित शिव लिङ्ग के चारों ओर सौ हाथ तक का क्षेत्र पूर्णदायक होता है। ऋषियों द्वारा स्थापित शिवलिङ्ग के चारों ओर हजार हाथ तक का क्षेत्र पूर्णतादायक होता है।

देवताओं द्वारा स्थापित लिङ्ग के चारों ओर हजार अरत्नि (बद्धमुष्टि हाथ) स्थान पवित्र होता है। जिस भूमि पर शिवलिङ्ग की स्वयं उत्पत्ति हुई हो वहाँ हजार

धनुष (चार हजार हाथ) तक का स्थान पवित्र होता है। इस प्रकार के पूर्णक्षेत्रों में स्थित बावड़ी, कुआँ, पुष्कर (सरोवर) आदि जलाशयों को शिवगङ्गा समझना चाहिए। ऐसा शिवजी का वचन होता है।

उस क्षेत्र में स्नान, दान तथा जप करने से पावन को शिवलोक की प्रप्ति होती है। मनुष्य को शिव-क्षेत्र में ही मृत्यु पर्यन्त निवास करना चाहिए। मरने के बाद क्षेत्र पिण्डदाह, दशाह, सपिण्डीकरण श्राद्ध, द्वादशा, मासिक कर्म, सांवत्सरिक कर्म (वार्षिक श्राद्ध) जो कुछ शिव क्षेत्र में किया जाता है। उससे वह मानव सभी पापों से मुक्त होकर शीघ्र ही शिव पद को प्राप्त कर लेता है।

अथवा सात या पाँच रात्रि, तीन रात्रि, एक रात्रि शिव क्षेत्र में निवास करने से शिवपद की प्राप्ति होती है। ब्राह्मण आदि वर्ण अपने कर्तव्य एवं आचरण के अनुसार फल को प्राप्त करते हैं। वर्णोद्धार तथा भक्ति से उस फल की वृद्धि होती है।

अत: मानव जो भी अपनी इच्छा से कार्य करता है, उसका शीघ्र ही फल प्राप्त कर लेता है। यदि मानव निष्काम भावना से शिवभक्ति करता है, तो वह साक्षात् शिवपद को प्राप्त कर लेता है।

प्रात:, मध्याह्न, सांयकाल जो भक्त प्रतिदिन शिव की आराधना करता है उसमें प्रात:काल की उपासना नित्य विधि का अंग है। मध्याह्न काल की उपासना कामनाओं की सिद्धि के लिये होती है। और सन्ध्याकाल की उपासना शक्तिदायिनी होती है।

इसी प्रकार रात्रि की पूजा का भी होता है। रात के दोपहर बीत जाने पर निषिद्ध काल (आधी रात) होती है, उस समय की शिवपूजा विशेष फल को देने वाली होती है।

इस प्रकार शिव पूजा करने वाला पुरुष विशेष फल का भागी होता है, विशेषकर के कलियुग में फलसिद्धि कर्म से होती है। उपर वर्णन किये गये किसी भी अधिकार भेद से उपासना करता हुआ सदाचारी तथा पापभीरु पुरुष जैसा कहा है, उस प्रकार के फल को प्राप्त कर लेता है।

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! अब आप हमसे भूलोक के पुण्य क्षेत्रों का वर्णन कीजिये, जिनका आश्रय लेकर सभी स्त्री तथा पुरुष शिवपद को प्राप्त कर सके। हे सूत! आप उत्तम योगियों में श्रेष्ठ हैं, शिवक्षेत्रों तथा शैवागमों (शिव प्रतिपादक शास्त्रों) के ज्ञाता हैं।

सूतजी ने कहा—आप श्रद्धा से सभी शिव क्षेत्रों तथा शैवागमों के सम्बन्ध में सुनिये, जिसका वर्णन हम आगे के उचित स्थलों पर करेंगे।

शिव की वैदिक पूजन विधि

सूतजी ने आगे कहा—अब हम वेद के ज्ञाता शिव भक्तों की पार्थिव पूजा का वर्णन करते हैं जो वैदिक मार्ग से ही मुक्ति तथा भुक्ति को प्रदान करती है।

पूर्वोक्त सूत्र द्वारा कही गयी विधि से स्नान करके पहले विधिपूर्वक सन्ध्या वन्दन तथा ब्रह्म यज्ञ करके उसके बाद देव, ऋषि, एवं पितरों का तपर्ण करें।

भलीभाँति अपने नित्य कर्म को समाप्त करके वह भक्त शिवजी का स्मरण कर भस्म एवं रुद्राक्ष को धारण कर सम्पूर्ण फल की सिद्धि के लिये वेद में कही गयी विधि द्वारा परम भक्ति युक्त होकर सर्वश्रेष्ठ पार्थिव लिङ्ग की पूजा करें।

नदी या तालाब के तट पर पर्वत में, वन में, शिव मन्दिर में अथवा किसी भी पवित्र स्थान पर पार्थिव लिङ्ग की पूजा की जाती है। हे ब्राह्मणों ! शुद्ध स्थान से यत्नपूर्वक मिट्टी को लाकर सावधान होकर पार्थिव लिङ्ग की रचना करें।

ब्राह्मणों के लिये सफेद मिट्टी, क्षत्रियों के लिये लाल मिट्टी, वैश्यों के लिये पीली मिट्टी शूद्रों के लिये काली मिट्टी या जो मिल जाये यत्न से उस-उस वर्ण की मिट्टी को लेकर लिङ्ग का निर्माण करे। फिर उसे अत्यन्त पवित्र स्थान में रखें। जल से उसे शुद्ध करके धीरे-धीरे उसकी पिण्डी बनायें। तदनन्तर वेद विधि से उससे पार्थिव लिङ्ग बनायें।

उसके बाद भक्तिपूर्वक भक्ति तथा मुक्ति प्राप्त करने के लिये उस लिङ्ग की स्थापना करें। उसके पूजा की विधि को मैं कहता हूँ—आप लोग विधिवत् सुनों! उसमें 'नमः शिवाय' इस मन्त्र से पूजा के द्रव्यों का प्रोक्षण करें और 'भूरसि' इस मन्त्र से क्षेत्र की सिद्ध करें।

'आपोऽस्मान्' इस मन्त्र से जल को शुद्ध करें। 'नमस्ते रुद्र' इस मन्त्र से फाटिका बन्द करें। 'नमः शम्भवाय' इस मन्त्र से क्षेत्र शुद्धि करें। 'नमः शिवाय' मन्त्र से पंचामृत का भी प्रोक्षण करें। 'नमो नीलग्रीवाय' मन्त्र से भक्तिमान पुरुष शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा करें। भक्तिपूर्वक 'एतत्ते रुद्राय' इस वैदिक मन्त्र को पढ़कर शिवजी को रमणीय आसन अर्पण करें।

'मानो महान्त' इस मन्त्र से उस लिङ्ग पर शिव का आवाहन करें। 'यातेरुद्र' इस मन्त्र से शिवलिङ्ग को आसन पर रखें। 'यामिषुम्' इस मन्त्र से शिवजी का न्यास करे, फिर 'अध्यवोचत्' इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक अधिवासन करे। 'असौ जीव' इस मन्त्र से देवता का न्यास करे और 'असौ योवसर्पति' इस मन्त्र से उपसर्पण करे। 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय' इस मन्त्र से पाद्य जल चढ़ायें।

रुद्रगायत्री से अर्घ्य दें और 'त्र्यम्बकम्' इस मन्त्र से आचमन करायें।

'पयः पृथिव्याम्' इस मन्त्र से शिवजी को दूध से स्नान कराये तथा 'दधिक्राव्ण' इससे दधिस्नान कराये। 'घृतंयाव' इस मन्त्र से घृतस्नान और 'मधुव्वाता', 'मधुनक्तम्', 'मधुमान्त्र' इन तीन मन्त्रों से मधु और खाँड से स्नान कराये, यह सब मिलाकर पञ्चामृत होता है।

अथवा पाद्यमन्त्रों तथा पंचामृत से स्नान कराये। 'मानस्तोके' इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक कटिबन्धन करे। 'नमो धृष्णवे' इस मन्त्र से उत्तरीय वस्त्र को धारण कराये। 'यातेहेति' इन चार मन्त्रों से भक्तिपूर्वक शिवजी के लिये शिवभक्त वस्त्र समर्पण करे।

'नमः श्वभ्यः' इस ऋचा से भक्त भक्तिपूर्व गंध चढ़ाये और 'नमस्तक्षभ्यः' इस मन्त्र से अक्षत चढ़ाये। 'नमः पार्याय' इस मन्त्र से फूल चढ़ाये। 'नमः पर्णाय' इस मन्त्र से बिल्वपत्र चढ़ाना चाहिये।

'नमः कपर्दिने' इस मन्त्र से धूप देना चाहिये। 'नम आशवे' इस मन्त्र से दीप अर्पण करे।

'नमो ज्येष्ठाय' मन्त्र से उत्तम नैवेद्य का अर्पण करे। 'त्र्यम्बकम्' इस मन्त्र से पुनः आचमन कराये। 'इमा रुद्राय' इस मन्त्र से शिवजी को फल चढ़ाये।

'नमो व्रज्याय' इस मन्त्र से सभी पदार्थ शिव को अर्पित कर दे। 'मनो महान्त' तथा 'मानस्तोके' इन दो मन्त्रों से रुद्रदेवों की अक्षत चढ़ाकर पूजा करे। 'हिरण्यगर्भ' इस ऋचा से दक्षिणा चढ़ाये।

'देवस्यत्वा' इस मन्त्र से पण्डित अभिषेक करे। दीपमन्त्र द्वारा शिव कां नीराजन करे। 'इमा रुद्राय' आदि तीन ऋचाओं से शिवजी को पुष्पांजलि समर्पित करे। 'मानो महान्त' मन्त्र से विद्वान् प्रदक्षिणा करे।

'मानस्तोके' इस मन्त्र से साष्टाङ्ग प्रणाम करे। 'एष ते' इस मन्त्र से शिवमुद्रा का प्रदर्शन करे। 'यतो यतः' मन्त्र से अभयमुद्रा और 'त्र्यम्बकम्' मन्त्र से ज्ञानमुद्रा का प्रदर्शन करे।

'नमः सेनान्ये' इस मन्त्र से महामुद्रा का प्रदर्शन करे। 'नमो गोभ्यः' मन्त्र से 'धेनुमुद्रा' को दिखलाये। शिवभक्त को चाहिये कि वह पाँच मुद्राओं का प्रदर्शन कर शिवमन्त्र का जप करे और वेदविद् शतरुद्रिय मन्त्र का जप करे।

उसके बाद वेदविद् पंचांग का पाठ करे, तदनन्तर 'देवागातु' मन्त्र से शिवजी का विसर्जन मरे। इस प्रकार विस्तार से शिवपूजा की वैदिक विधि कह दी गयी है।

अब उसी विधि को संक्षेप में सुनो—'सद्योजातम्' इस मन्त्र से मिट्टी का ग्रहण करें, 'वामदेवाय' इस शिवमन्त्र से उसमें जल डाले। 'अघोर' इस मन्त्र से पार्थिवलिङ्ग का निर्माण करे।

'तत्पुरुषाय' मन्त्र से विधिपूर्वक आवाहन करे। 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' मन्त्र से वेदी में शिवलिङ्ग को स्थापित करें और सभी विधि को विद्वान् संक्षेप से करे।

पंचाक्षर मन्त्र से अथवा गुरु द्वारा प्राप्त मन्त्र से विद्वान् षोडशोपचार से विधिवत् पूजन करे। संसारस्वरूप तथा संसार के नाशक महादेव का हम ध्यान करते हैं। उग्र स्वरूप तथा उग्र स्वभाव वालों के नाशक चन्द्रशेखर शिव के लिये नमस्कार है।

सुधी पुरुष इस मन्त्र से भी भक्तिपूर्वक शिव का पूजन करे। भक्ति से तथा भ्रम को छोड़कर जो भक्त शिवजी की पूजा करता है, उसे शिवजी फल को देते हैं। इस प्रकार आदरपूर्वक वैदिक विधि से पूजा का वर्णन कर दिया है।

हे ब्राह्मणों! अब साधारण रूप से दूसरी विधि का भी वर्णन किया जा रहा है। शिवनामों के द्वारा पार्थिवलिङ्ग की जो समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली पूजा कही गयी है।

हे मुनिवरो! उसे आप लोग मुझसे सुनिये। हर, महेश्वर, शंभु, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति तथा महादेव इस क्रम से मिट्टी का संग्रह कर तदंतर उसमें जल मिलाये, फिर उससे पार्थिवलिङ्ग तैयार कर प्रतिष्ठा, आहवान, स्नान, पूजा, क्षमा, प्रार्थना तथा विसर्जन करें। ॐकार पूर्वक चतुर्थ्यन्त शिवजी के नामों द्वारा क्रम से भक्तिपूर्वक पूजन की सभी क्रियाओं को करना चाहिए।

भलीभाँति षडङ्ग विधि से स्नान करके तब षडक्षर मन्त्र से शिवजी का ध्यान करे। कैलाश रूपी सिंहासन के ऊपर विराजमान भक्तों द्वारा आनन्द पूर्वक पूजे जाते हुये, भक्तों के अनन्त दुःखों को दूर करने के लिये दावानल के समान, पार्वती द्वारा आलिङ्गन किये गये विश्वभूषण शिवजी का मैं ध्यान करता हूँ।

मैं उस महेश का प्रतिदिन ध्यान करता हूँ जो चाँदी के पर्वत के सदृश सुन्दर, चन्द्रमा को मुकुट के रूप में धारण किये हुये, रत्नों के समान उज्ज्वल शरीर वाले, परशु (फरसा) मृग, वरदान तथा अभय को हाथ में लिये, प्रसन्न मुख वाले पद्मासन पर बैठे हुए, चारों ओर देवगणों से सेवित, व्याघ्र चर्म को धारण किये, संसार के आदि देव, संसार के उत्पत्ति कारण, संसार के समस्त भयों का विनाश करने वाले, पाँच मुखों तथा तीन नेत्र वाले हैं।

इस प्रकार ध्यान करके उत्तम पार्थिव लिङ्ग का पूजन कर, गुरु द्वारा प्राप्त पंचाक्षर मन्त्र का यथाविधि जप करना चाहिए। अनेक प्रकार की स्तुतियों से देवेश को प्रणाम करता हुआ उनकी स्तुति करे। हे ब्राह्मणों ! अनेक प्रकार से शतरुद्री का पाठ करे। तदंतर हाथ में अक्षत एवं फूल लेकर भक्तिपूर्वक इन मन्त्रों से शिवजी की प्रार्थना करे।

हे शिवजी! मैं आपका हूँ, आपका गुणगान ही मेरे जीवन का आधार है, मेरा मन सदा आप पर लगा रहता है। हे कृपानिधे! हे भूतनाथ! ऐसा जानकर मुझ पर प्रसन्न हो। ज्ञान से अथवा अज्ञान से जो मैंने जप, पूजा आदि की है, हे शंकर! वह सब आपकी कृपा से सफल हो। मैं आज महापापी हूँ और आप सबकों पवित्र करने वालों में महान् हैं।

हे गौरीश! ऐसा जानकर जैसा आप चाहे वैसा करे। वेदों, पुराणों, सिद्धान्तों तथा अनेक ऋषियों ने भी ठीक से नहीं जाना। हे सदाशिव! महादेव! मैं आपको कैसे जान सकता हूँ।

हे महेश्वर! जैसे तैसे सब प्रकार से मैं आपका हूँ। हे महेश्वर! आप मेरी रक्षा कीजिये। इस प्रकार शिवजी के ऊपर अक्षत और फूलों को चढ़ा करके मुनिवर! विधिपूर्वक शिवजी को साष्टांग प्रणाम करे।

पार्थिव पूजन पद्धतिः

प्रात:काल अर्थात् ब्राह्ममुहूर्त अर्थात् **उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका। अधमा अरुणोपेता प्राप्ता सन्धिप्रकीर्तिता।।** में शौच, मुखमार्जनादि से निवृत्त होकर स्वच्छ जल से नहाकर पवित्र वस्त्र को धारण करें तथा प्रात: सन्ध्योपासनादि के पश्चात् उत्तर दिशा में निम्नलिखित श्लोक के द्वारा पृथ्वी की पाद वन्दना कर उपर्युक्त कार्य के लिये अतीव शुद्ध मृत्तिका को ग्रहण करे।

ॐ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
मृत्तिके त्वां प्रगृह्णामि प्रजया च धनेन च।।

मृदाहरणमन्त्रः—**ॐ हौं ह्रीं जूं सः हराय नमः।।**

हे पृथ्वी! वराह, कृष्ण, शतबाहु आदि अवतरणों के द्वारा तुम उद्धारित की गई, इसलिए धन, पुत्रादि की कामना से मैं तुम्हारे रज को ग्रहण करता हूँ।

'ॐ हौं ह्रीं जूं सः हराय नमः' इस मन्त्र को मन में पढ़ते हुए मिट्टी लाकर पवित्र स्थान में रखे तथा नीचे लिखे मन्त्र के द्वारा उसमें से कुछ मिट्टी चारों तरफ छिड़क दे तथा उत्तराभिमुख अपना आसन बिछावे।

ॐ पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्।।

हे पृथ्वी! समस्त जीव तुम्हारे द्वारा ही धारण किये गये हैं और महाविष्णु ने तुमको कूर्म वराहादिरूपों से धारण किया है। तस्मात् हे देवि ! मेरे आसन की संशुद्धि करो। बाद हाथ में तिल्ली (काल) और जीव लेकर अधोलिखित मन्त्र पढ़ता हुआ अपनी रक्षा के लिए अपने चारों ओर फेंक दे।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिता:।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।

भगवान् शंकर की आज्ञा से पृथ्वी पर रहने वाले सभी अनिष्टकारी जीव यहाँ से दूर हट जायँ। इसके बाद स्वस्थ चित्त से नीचे लिखे मन्त्र से मृत्तिका विचूर्ण करे।

सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः।। ॐ ह्रौं ह्रीं जूं सः महेश्वराय नमः।

मैं यह जानता हूँ कि आप क्षण में ही उत्पन्न (प्रकट) हो सकते हो। इसलिये सद्योजात हर क्षण पैदा होनेवाल आपको नमस्कार है। हे भवोद्भव, आपको अनेकानेक नमस्कार है।

'ॐ ह्रौं ह्रीं जूं सः महेश्वराय नमः' इस मन्त्र से मृत्तिका को चूर्ण कर अधोलिखित मन्त्र द्वारा उसे भींगोये।

ॐ वामदेवाय नमः ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय: रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमः बलविकरणाय नमः बलाय नमः बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।

अखिल विश्व में सबसे बड़े तथा श्रेष्ठ होने के कारण वामदेव तथा ब्रह्माण्ड में रुद्ररूप (भयंकर) आप ही का है। आप ही काल के भी काल महाकाल तथा सभी प्रकार की कला तथा बल का विकरण करने वाले हैं, इसलिये आपको ही हे रुद्र ! सदा नमस्कार है। अत्रत् का सम्पूर्ण बल आप ही में अवस्थित है या संसार की सभी शक्तियों का प्रमथन आप ही के द्वारा हुआ करता है एवं समस्त प्राणियों के दमन (नवाने) तथा मनोन्मन (मानसिक विकास) की शक्ति आप ही के द्वारा प्राप्त हुआ करती है, अर्थात् प्राणी के उत्थान-अध:पतन का होना आप ही की कृपा पर अवलम्बित है। इसलिये हे सर्वशक्तिमान् शिव ! आपको सर्वदा नमस्कार है।

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्य:। सर्वेभ्य: सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते ऽअस्तु रुद्ररूपेभ्य:।। इति संयोजनम्।

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् इति पिण्डीकरणम्।

उग्र (भयंकर), उग्रतर तथा उग्रतम आदि विश्व के सभी के सभी रूप आपके रुद्ररूप से उत्पन्न हुए हैं, इसलिये सबके आदि कारण आपके रुद्ररूप को मेरा अनेकों बार नमस्कार है इस मन्त्र से मृत्तिका को साने।

उसी एकमात्र पुरुष को सब कुछ जानकर देवों के देव महादेव में अपनी बुद्धि अवस्थित कर केवल भगवान् रुद्र को ही मैं प्रेरित करता हूँ। इस मन्त्र से मृत्तिका को पिण्डीकरण (गोला) करे। अब नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर सुन्दर, शिवलिंग का निर्माण करे।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्। ब्रह्माऽधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्।

विश्व के सभी विद्याओं के स्वामी तथा चराचर सभी जीवों के एक मात्र अधीश्वर तथा ब्रह्मादि देवताओं के प्रभु तथा उनके एकमात्र आराध्य दैवत् पूर्ण ब्रह्म रूप आप ही हैं, इसलिए सदा (सर्वदा) मेरा (शिव) कल्याण करते रहें। शिवलिंग बनाकर बायें हाथ, वेदी, ताँबे के बर्तन अथवा बिल्व पत्र पर ही अक्षत पुष्पयुक्त शिवलिंग की स्थापना इस मन्त्र से करें—

ॐ ह्रौं ह्रीं जूं सः शूलपाणये नमः। इति स्थापनम्।

लिंग की स्थापना करने के पश्चात् अधोलिखित संकल्प करे।

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुरित्यादि देशकालादिकं स्मृत्वा, अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहं शुभपुण्यफलप्राप्तिकामनया पुरुषार्थचतुष्टयप्राप्त्यर्थं सर्वारिष्टशान्त्यर्थं तथा च सदाशिवप्रीत्यर्थे पार्थिवपूजनमहं करिष्ये।

ॐ ह्रौं ह्रीं जूं सः पिनाकपाणये नमः।

इसके बाद '**ॐ ह्रौं ह्रीं जूं सः पिनाकपाणये नमः**' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए अधोलिखित श्लोकों द्वारा आवाहन (स्थापन) करे।

कैलासशिखराद्रम्यात्समागच्छ मम प्रभो। पूजां जपं गृहीत्वा च यथोक्तफलदो भव।। देवदेवं महादेवं सर्वलोकहितेरतम्। यथोक्तरूपिणं देवं शम्भुमावाहयाम्यहम्। सदाशिवेह स्थितो भव।

हे प्रभो ! अति रमणीक कैलास शिखर से शीघ्र यहाँ पधार कर मेरे द्वारा किये हुए जप तथा पूजा को स्वीकार करके अभीष्ट फलों की संसिद्धि के लिए वर देने का अनुग्रह करो। हे देवों के देव महादेव ! सम्पूर्ण जीव मात्र के कल्याण में सदैव तल्लीन रहने वाले भगवान् शंकर के तथाकथित स्वरूप का मैं हृदय से आवाहन करता हूँ इसलिए यहाँ पधार कर यहीं निवास कीजिए।

आवाहन करने के पश्चात् प्राणप्रतिष्ठापन के लिए हाथ में जल लेकर अधोलिखित मन्त्र से विनियोग करे।

प्राणप्रतिष्ठा-मन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्राऋषयः ऋग्यजुः सामच्छन्दांसि

प्राणाख्यदेवता, ॐ बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्रौं कीलकं पार्थिवलिङ्गप्राणप्रतिष्ठापनार्थे जपे विनियोगः।

प्राण-प्रतिष्ठा मन्त्र के ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र ये तीन ऋषि तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद ये तीन ही छन्द हैं, उसका ॐ बीज, ह्रीं शक्ति एवं क्रौं कीलक है, ऐसे महामन्त्र को पार्थिव लिंग के प्राणप्रतिष्ठापन के लिए विनियोजित करता हूँ।

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः शिवस्य प्राणाः शिवस्य जीवाः शिवस्य सर्वेन्द्रियाणि इहागत्य सुखेन चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, शिव इहागच्छेह तिष्ठ मम पूजां गृहाण।

अब हाथ में अक्षत लेकर नीचे लिखे मन्त्र को कहते हुए पार्थिव लिंग के पर छिड़कता रहे। **'ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः।'**

इन ग्यारह बीज मन्त्रों की शक्ति से शिव का जीव, शिव का प्राण तथा शिव की समस्त ज्ञान-इन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ इस पार्थिव लिंग में प्रविष्ट होकर सुखपूर्वक चिरकाल तक अधिष्ठित (अधिवासित) रहें। हे शिव ! यहाँ आकर तथा इस लिंग में निवास कर मेरी पूजा ग्रहण करो। फिर हाथ में पुष्प लेकर इस मन्त्र से प्राण संस्थापन करे।

अस्मिन् सर्वजगन्नाथ यावत्पूजां करोम्यहम्।
तावत्त्वं प्रीतिभावेन लिङ्गेऽस्मिन् संस्थितिं कुरु।।

हे जगत् के स्वामी सदाशिव, जब तक मैं आपका पूजन करता हूँ, तब तक अतीव प्रेम से इस पार्थिव लिंग में ही आप निवास करो। इसके बाद हाथ में अक्षत, फूल ग्रहण कर एकाग्र चित्त से भगवान् रुद्र का इस तरह ध्यान करे।

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पो-ज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्यालयज्ञोपवीतं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।

चाँदी के पहाड़ की कान्ति के सदृश सुन्दर देह धारण करने के साथ ही जिसने अपने मस्तक पर अतिरम्य चन्द्रखण्ड को भी धारण किये हैं एवं जिसका समस्त शरीर रत्नादिकों की कान्ति से प्रज्वलित हो रहे हैं तथा जिसने फरसा, मृग, वरद व अभय सुन्दर मुद्रा से पद्मासीन होकर चतुर्दिक देववृन्दों द्वारा प्रशंसित हो रहे हैं ऐसे विश्व के आदि कारण तथा समस्त भयों से दूर करने वाले, तीन नेत्रधारी, पाँच मुख वाले सदाशिवा अकाण्ड ब्रह्माण्ड द्वारा अहर्निश वन्द्य हो रहे हैं ऐसे

माहेश्वर रूप का शुद्ध हृदय से मैं ध्यान करता हूँ। तत्पश्चात् पार्थिवलिंग का पूजन अधोलिखित मन्त्रों से करे।

ॐ शिवाय नमः, इति पाद्यं समर्पयामि।

इस मन्त्र से पादप्रक्षालनार्थ जल समर्पित करता हूँ।

ॐ महेश्वराय नमः, अर्घ्यं समर्पयामि।

इस मन्त्र से अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

ॐ शम्भवेः नमः, अर्घ्यान्ते आचमनीयं समर्पयामि।

इस मन्त्र से अर्घ्योपरान्त आचमन के लिए जल समर्पित करता हूँ।

अब आगे लिखे मन्त्र के द्वारा पञ्चामृत स्नान करावे।

पञ्चामृतं मयानीतं पयो दधि घृतां मधु।

शर्करा च समायुक्तं स्नानार्थे प्रतिगृह्यताम्।।

मेरे द्वारा पञ्चामृत (दूध, दही, घी, मधु, शर्करा) स्नान के निमित्त लाया गया है, हे हर ! इसे ग्रहण करें।

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।। इति शुद्धोदकस्नानम्।

शम्भु तथा मयोभव ऐसे अमोघ कल्याणकारी शिवपदों में मेरा नमस्कार है। तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों द्वारा वस्त्र, यज्ञोपवीतादि को समर्पित करे।

१–ॐ ज्येष्ठाय नमः वस्त्रं समर्पयामि।

२–ॐ श्रेष्ठाय नमः, यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

३–ॐ कपर्दिने नमः, पुनराचमनीयम्।

४–ॐ कालाय नमः, गन्धं समर्पयामि।

५–ॐ कलविकरणाय नमः, अक्षतान् समर्पयामि।

६–ॐ बलविकरणाय नमः, विल्वपत्र-धत्तूरादि-पुष्पाणि समर्पयामि।

७–ॐ बलाय नमः, धूपमाघ्रापयामि।

८–ॐ बलप्रमथनाय नमः, दीपं दर्शयामि।

९–ॐ नीलकण्ठाय नमः, नैवेद्यं निवेदयामि।

१०–ॐ भवाय नमः, ऋतुकालोद्भूतफलानि समर्पयामि।

११–ॐ मनोन्मनाय नमः, आचमनं समर्पयामि।

१२–ॐ शम्भवे नमः, ताम्बूलं समर्पयामि।

१३–ॐ त्रिलोकेशाय नमः, अभिषेकं समर्पयामि।

१४–ॐ शितिकठाय नमः, नीराजनं समर्पयामि।

१५–ॐ शिवप्रियाय नमः, षाड्गुण्यार्थे द्रव्य-दक्षिणा समर्पयामि।

१६–ॐ शम्भवे नमः, अन्ते नमस्करोमि।

पूजन करने के पश्चात् पुष्पाञ्जलि समर्पण करे।

हर विश्वाऽखिलाधार निराधार निराश्रय।
पुष्पाञ्जलिमिमां शम्भो गृहाण वरदो भव।।
ॐ पार्थिवेश्वराय नमः, पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

अखिल विश्व के आधार आप ही हैं, किन्तु स्वयं बिना किसी आधार तथा आश्रय के सर्वत्र व्याप्त हो इसलिये हे हर ! पुष्पांजलि ग्रहण कर वरदान दीजिये। **'ॐ पार्थिवेश्वराय नमः'** इस मन्त्र से पुष्पांजलि पार्थिवलिंग के ऊपर चढ़ावे।

प्रार्थना

रूपं देहि जयं देहि भाग्यं देहि महेश्वर।
पुत्रान्देहि धनं देहि सर्वान्कामांश्च देहित मे।।

हे माहेश्वर ! रूप, विजय, सौभाग्य, पुत्र, पौत्र, धन, धान्यादि सभी इच्छाओं को सफलीभूत करते रहो ऐसी प्रार्थना शम्भु शिव से हाथ जोड़कर विनय भाव से करने के पश्चात् यथाशक्ति अधोलिखित मूल मन्त्र का जप करे।

ॐ नमः शिवाय। अथवा **ॐ ह्रौं ह्रीं जूं सः शिवाय नमः, प्रपन्नपारिजाताय स्वाहा। इदं मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतं सहस्त्रमधिकं जपेत्।**

उपरोक्त किसी एक महामन्त्र को कम-से-कम १०८ बार जप कर दे।

गुह्यातिगुह्यगोप्यत्वं गृहाणाऽस्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव! त्वत्प्रसादान्महेश्वर।।

आप गुप्त से गुप्त परम गोपनीय हैं। मेरे द्वारा किये जप को अंगीकृत करें। हे महेश्वर ! आपकी कृपा से मेरे सभी अभीष्ट सिद्ध हो जायें।

अथ शिवलिङ्गस्याष्टदिक् आवरणपूजाप्रकारः–

ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, पूर्वस्याम्।
ॐ भवाय जलमूर्तये नमः, ईशान्याम्।
ॐ रुद्राय तेजोमूर्तये नमः, उत्तरस्याम्।
ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः, पश्चिमायाम्।
ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः, नैर्ऋत्याम्।
ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः, दक्षिणस्याम्।
ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः, आग्नेय्याम्।
ॐ नमः ओङ्काररूपाय वेदरूपाय ते नमः।।

अलिङ्गलिङ्गरूपाय विश्वरूपाय ते नमः।
नमो मोक्षपदे नित्यं तुभ्यं नादात्मने तथा।
नमः शब्दस्वरूपाय रूपातीताय ते नमः।।
त्वं त्राता सर्वलोकानां त्वमेव जगतां पिता।
त्वं भ्राता त्वं सुहृन्मित्रं त्वं प्रियः प्रियरूपधृक्।।
त्वं गुरुस्त्वं गतिः साक्षात् त्वं देवं च पितामहः।
नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे।।
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर शिवाऽव्यय।
अनेन पूजनेन त्वं वाञ्छितार्थप्रदो भव।।
दण्डवत्प्रणतो भूत्वा स्तुत्वा चैव विशेषतः।
एकाग्रः प्रणतो भूत्वा मन्त्रमेतदुदीरयेत्।।
अङ्गहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं महेश्वर।
पूजितोऽसि महादेव तत्क्षमस्वाऽम्बिकापते।।
अन्यथासक्तचित्तेन क्रियाहीनेन वा प्रभो।
मनोवाक्कायदुष्टेन पूजितोऽसि त्रिलोचन।।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव दासे कृत्वा दयां मयि।
शरणागत-दीनार्त-परित्राण-परायण ।।

इति प्रार्थनां कृत्वा रुद्रीभिः ऋग्यजुःसामाऽथर्वभिश्च स्तोत्रैः स्तुत्वा यथाशक्ति-पञ्चाक्षरमन्त्रस्य जपं कुर्यात्।

शिवलिंग का अभिषिञ्चन मन्त्र

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसामभिषिञ्चामि।

उपरोक्त मन्त्र द्वारा शिवलिंग को अभिसिक्त करें। तदुपरान्त तिलक धारण कर अधोलिखित मन्त्र से शिवलिंग की परिक्रमा करें।

वृषश्चण्डं वृषश्चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम्।
चण्डश्च सोमसूत्रश्च पुनश्चण्डं पुनर्वृषम्।।
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे।।

इन श्लोकों के द्वारा क्षमा-याचना करे।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं महेश्वर।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे।।

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजनं नैव जानामि तत्क्षमस्व सदा हर।।

बिना मन्त्र, बिना क्रिया व बिना भक्तिभाव के हे महेश्वर ! जो कुछ पूजा मैंने आपकी की है उसे दया कर हे मेरे देव ! पूर्ण संगता प्रदान करो।

इसके साथ ही आवाहन, पूजन, विसर्जन आदि मैं कुछ भी नहीं जानता इसलिये हे हर ! उसे कृपा कर क्षमा करें। इसके उपरान्त हाथ में फूल लेकर शिवलिंग का इन श्लोकों से विसर्जन करे।

उग्रो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्।
शिवः पशुपतिश्चैव महादेव विसर्जनम्।।
ईशानः सर्वविद्यानामोङ्कारो भुवनेश्वर।
कैलासं गच्छ देवेश पुनरागमनाय च।।

अनेन पार्थिववेश्वरपूजनेन श्रीसदाशिवो देवता प्रसन्नोऽस्तु।

शिवताण्डवस्तोत्रम्

।।श्रीगणेशाय नमः।।

जटाकटाहसम्भ्रमभ्रमन्निलिंपनिर्झरी विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्धनि।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाट पट्टपावके किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम।।
धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुर स्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे।
कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धुर्द्धरापदि क्वचिच्चिदम्बरेमनो विनोदमेतु वस्तुनि।।
जटाभुजङ्गपिङ्गलस्फुरत्फणामणिप्रभा कदम्बकुंकुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे।
मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे मनो विनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि।।
सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर प्रसूनधूलिधोरणीविधूसरांघ्रिपीठभूः।
भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः।।
ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभा निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम्।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं महाकपालिसम्पदे शिरो जटालमस्तु नः।।
करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वल द्धनञ्जयाधरीकृतप्रचण्डपञ्चसायके।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक प्रकल्पनैकशिल्पिनि त्रिलोचने मतिर्मम।।
नवीनमेघमण्डलीनिरुद्धदुर्धरस्फुरत्कुहू निशीथिनीतमः प्रबन्धबन्धुकन्धरः।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः।।
प्रफुल्लनीलपङ्कजप्रपञ्चकालिमच्छटा विडम्बिकण्ठकन्धरा रुचिप्रबन्धकन्धरम्।
स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे।।

अगर्वसर्वमङ्गलाकलाकदम्बमञ्जरी रसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम्।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं गजान्तकान्धकान्तकं तमंतकान्तकं भजे।।
जयत्वदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजङ्गमस्फुर द्धगद्धगद्विनिर्गमत्करालभालहव्यवाट्।
धिमिद्धिमिद्धिमिध्वनन्मृदङ्गतुङ्गमङ्गल ध्वनिक्रमप्रवर्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः।।
दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजोर्गरिष्ठ रत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामही महेन्द्रयोः समं प्रवर्तयन्मनः कदा सदाशिवं भजे।।
कदा निलिंपनिर्झरीनिकुञ्जकोटरे वस न्विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन्।
विमुक्तलोललोचनाललामभाललग्नकः शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम्।।
इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं पठन्स्मरन्ब्रुवन्नरो विशुद्धिमेति सन्ततम्।
हरे गुरौ स भक्तिमाशु याति नान्यथा गतिं विमोहनं हि देहिनां तु शङ्करस्य चिन्तनम्।।
पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं यः शम्भुपूजनमिदं पठति प्रदोषे।
तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरङ्गयुक्तां लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः।।

।।इति श्रीरावणविरचितं शिवताण्डवस्तोत्रं।।

शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

।।श्रीगणेशाय नमः।।

नागेंद्रहाराय त्रिलोचनाय भस्मांगरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगंबराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय।।
मंदाकिनीसलिलचंदनचर्चिताय नंदीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै मकाराय नमः शिवाय।।
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।
श्रीनीलकंठाय वृषध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शिवाय।।
वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनींद्रदेवार्चितशेखराय।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै वकाराय नमः शिवाय।।
यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय।
दिव्याय देवाय दिगंबराय तस्मै यकाराय नमः शिवाय।।
पंचाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसंनिधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते।।

।।इति शिवपंचाक्षरस्तोत्रं।।

शिवषडक्षरस्तोत्रम्

।।श्रीगेणशाय नमः।।

ॐकारं बिंदुसंयुक्तं नित्यं ध्यायंति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः।।

नमंति ऋषयो देवा नमंत्यप्सरसां गणाः।
नरा नमंति देवेशं नकाराय नमो नमः।।
महादेवं महात्मानं महाध्यानं परायणम्।
महापापहरं देवं मकाराय नमो नमः।।
शिवं शान्तं जगन्नाथं लोकानुग्रहकारकम्।
शिवमेकपदं नित्यं शिकाराय नमो नमः।।
वाहनं वृषभो यस्य वासुकिः कंठभूषणम्।
वामे शक्तिधरं देवं वकाराय नमो नमः।।
यत्र यत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः।
यो गुरुः सर्वदेवानां यकाराय नमो नमः।।
षडक्षरमिदं स्तोत्रं यःपठेच्छिवसंनिधौ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते।।

।।इति शिवषडक्षरस्तोत्रं।।

ॐकार का स्वरूप निरूपण

एक बार कैलास पर स्थित शिवजी ने मात पार्वती के प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार देते हैं—हे देवी! जो तुम मुझसे पूछ रही हो, उसे मैं कहता हूँ। उसके सुनने मात्र से जीव साक्षात् शिव हो जाता है। प्रणव के अर्थ का वास्तविक ज्ञान ही मेरा ज्ञान है। वही मन्त्र सभी विद्याओं का बीज (मूल कारण) है। वह वट बीज की भाँति अतिसूक्ष्म है और महत्त्वपूर्ण अर्थ वाला है। वही वेदों का आदि है। वही वेदों का सार है तथा वही विशेषकर मेरा स्वरूप है।

मैं तीनों गुणों से परे रहने वाला सर्वज्ञ, सर्वकृत प्रभु हूँ। सर्वत्र गमन करने वाला होने पर भी ॐ इस एक अक्षर वाले मन्त्र में स्थित शिव हूँ। यह जो कुछ वस्तु है, वह सब गुण मेरे और प्रधान के संयोग से समष्टि (संक्षेप), व्यष्टि (विराट्) रूप से प्रणव का अर्थ ही है। इसलिये वह एक अक्षर ब्रह्म ही सभी अर्थों का साधक है।

इसलिये शिवजी ॐ से ही सम्पूर्ण संसार की रचना करते हैं। शिव या प्रणव, या शिव एक ही हैं; क्योंकि वाच्य और वाचक में कुछ भेद नहीं होता है। इसलिये मुझे ब्रह्मर्षि एकाक्षर देव कहते हैं, क्योंकि विद्वान् वाच्य-वाचक में एकता स्वीकार करते हैं। इसलिये प्रणव को ही सबका कारण जानो। मुमुक्षु (मोक्ष को चाहने वाले योगी) मुझे निर्विकारी, निर्गुण, परमेश्वर समझते हैं।

हे देवेशी! सभी मन्त्रों में श्रेष्ठ इस प्रणव को काशी में प्राणियों को मुक्ति देने

के लिये सुनता हूँ। हे अम्बिका! अब मैं पहले प्रणवोद्धार का वर्णन करता हूँ। जिसको जानने से परम सिद्धि प्राप्त होती है।

पहले अकार के आश्रित निवृत कला का उद्धार करे। उकार में इन्धन कला का, मकार में काल कला का, नाद में दण्ड और बिन्दु में ईश्वर कला का उद्धार करे।

इस प्रकार पाँच वर्ण रूप प्रणव का उद्धार होता है। यह तीन मात्रा तथा बिन्दु नादात्मा जपने वाले को मुक्ति प्रदान करता है। ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी प्राणियों का यह प्राण है। अतएव इसे प्रणव कहते हैं। इसका आदिवर्ण अकार है, उकार, अन्त में मकार तथा नाद है। इसके संयोग से ॐ बनता है।

हे मुनिवर! यह जल की भाँति दक्षिण-उत्तर में स्थित है। मध्य में मकार है, इस प्रकार ॐकार की स्थिति है। अकार, उकार, मकार—एक क्रम से तीन मात्रा है। उसके बाद आधी मात्रा और है।

हे महेशानी! यह आधी मात्रा बिन्दु नाद स्वरूप वाली है। इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसे ज्ञानी लोग जानते हैं। हे प्रिया! 'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इस प्रकार वेद ने कहा है। ये वेद मुझसे उत्पन्न होते हैं, यह 'वेदों ने सत्य कहा है।

इसलिये मैं वेदों का आदि हूँ और प्रणव मेरा वाचक है। मेरा वाचक होने के कारण यह प्रणव भी वेदों का आदि कहा गया है। अकार इसका महान् बीज है। इसी के रजोगुण से ब्रह्मा जी की उत्पत्ति होती है।

उकार इसकी प्रकृति (योनि) है। सत्वगुण वाले हरि (विष्णु) पालयिता है। मकार पुरुष बीज है, तमोगुण युक्त हर (शिवजी) इसके संहारक हैं। इस प्रकार बिन्दु साक्षात् महेश्वर देव हैं, जो तीरोभाव के कर्ता कहे गये हैं। नाद सदाशिव कहे गये हैं, जो सब पर दया करते हैं। नादरूप पर से भी परशिव का ध्यान मस्तिष्क में करना चाहिए।

वे ही सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश, निर्मल, अव्यय (अविनाशी), अनिदृश्य, परब्रह्म तथा सत्-असत् से परे हैं। अकार आदि सभी स्वरों तथा व्यञ्जनों में क्रम से उत्तरोत्तर अधिक व्याप्त है। ऊपर से निचला वर्ण अधिक व्याप्य है। ऐसा सर्वत्र विचार करे।

पञ्चकलात्मक ॐकार

अकारादि पाँच वर्णों में सद्यस् से ईशान पर्यन्त जो पाँच ब्रह्म हैं, वे क्रम से मेरी ही मूर्तियाँ हैं। सद्यस् से उत्पन्न अकार रूप शिव में आठ कलायें हैं। उकार में वामदेव रूप से तेरह कलायें कही गयी हैं।

अघोर रूपीणि आठ कलायें मकार में स्थित हैं। बिन्दु में पुरुषों के देखने

योग्य चार कलायें हैं। नाद में ईशान रूप पाँच कलायें हैं। इन छः पदार्थों की एकता के अनुसन्धान से प्रणव की पंचात्मकता कही गयी है।

मन्त्र, यन्त्र, देवता, प्रपञ्च, गुरु, शिष्य—इन छः पदार्थों के अर्थों को हे प्रिया! तुम सुनो! पहले कहा गया है कि प्रणव मन्त्र पाँच वर्णों का समूह है, वही यन्त्र रूप धारण करता है।

अब उसके मण्डल का क्रम कहते हैं। यन्त्र देवता रूप हैं, देवता विश्व रूप हैं, गुरु विश्व रूप हैं और शिष्य गुरु का ही शरीर है। यह सब ॐकार रूप ही है और सब ब्रह्म ही हैं, वेद ऐसा कहता है।

वाच्य-वाचक सम्बन्ध से यही अर्थ निकलता है। आधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धि चक्र, आज्ञाचक्र, शक्ति, शान्ति इस क्रम से ये स्थान कहे हैं।

हे देवेशी! शान्ति से अतीत को ही परमात्मा कहते हैं। इसका अधिकारी वही है, जिसे दृढ वैराग्य हो। हे देवि! मैं ही इसका विषय हूँ, उपासक जीव-ब्रह्म की एक भावना करे। इसका विषय तो कह दिया है, अब इसका सम्बन्ध सुनो।

जीवात्मा और प्रणव को मेरे (परमब्रह्म के) साथ एकता होती है। वाच्य-वाचक (जीव-ब्रह्म) की एकता का बोधक प्रणव है, यही सम्बन्ध है।

पतितोद्धारक ॐकार

रावण ने कहा—ब्राह्मण वध करने वाला, मद्य पीने वाला, चोरी करने वाला, गुरु स्त्री के साथ गमन करने वाला, माता, पिता, वीर अथवा भ्रूण को मारने वाला, विना मन्त्र के भक्ति से परम कारण शिव की पूजा करके उक्त सभी पापों से बारह वर्षों में क्रमशः मुक्त हो जाता है।

इसलिये सब प्रयत्नों से पतित भी भक्ति से शिवपूजन करे। भक्त ही मुक्त होता है, दूसरा नहीं। भले ही वह जितेन्द्रिय, भिक्षाहारी क्यों न हो। महापाप करने पर भी भक्ति से पंचाक्षर मन्त्र द्वारा यदि वह देवेश की पूजा करता है, तो पाप से मुक्त हो जाता है।

हवा तथा पानी का सेवन कर जो व्रत से शरीर को कृष कर देते हैं, वे इन व्रतों से शिवलोक नहीं पहुँचते। भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्र से जो एक बार भी शिवपूजन करता है, वह भी शिवमन्त्र के प्रभाव से शिव स्थान को जाता है।

इसलिये सभी तप, यज्ञ, सर्वस्वदक्षिणा—ये शिवमूर्ति पूजन की करोड़वें अंश के बराबर भी नहीं है। बद्ध हो या मुक्त हो, पंचाक्षर मंत्र से पूजा करने वाला भक्त मुक्त हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

अरुद्र या सरुद्र सूक्त से जो शिवपूजन करता है वह मनुष्य मूर्ख हो या पतित हो, एक ही बार में मुक्त हो जाता है।

शिवभक्ति महिमा

षड्अक्षर मन्त्र से या सूक्त मन्त्र से जो भक्त क्रोध को जीतकर शिवपूजन करता है उसने यदि गुरु मन्त्र नहीं लिया है, तो भी वह गुरु मन्त्र लिये के समान है। हलाँकि इनमें गुरु मन्त्र प्राप्त व्यक्ति ही श्रेष्ठ है। वह ब्रह्माङ्ग के अथवा हंस के साथ मुक्त हो जाता है।

इसलिये प्रतिदिन भक्तिपूर्वक शिव का पूजन सूक्त मन्त्र से एक समय, दो समय या तीन समय अथवा प्रतिदिन करे। जो महादेव का पूजन करते हैं, उन्हें महेश्वर समझना चाहिए।

आत्म सहायक ज्ञान से जिन्होंने भगवान् शिव की पूजा नहीं की वह इस दु:ख सागर संसार में घूमते रहते हैं। जो दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर शिव की पूजा नहीं करता, वह मोक्ष का अधिकारी नहीं होता।

अत: उसका जन्म व्यर्थ है। दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर जो शिवपूजन करते हैं, उन्हीं का जन्म सफल है। वे नरोत्तम कृतार्थ हैं, जो शिवभक्ति के लिये तत्पर हैं और सदाशिव को प्रणाम करते हैं।

जो सदा शिव स्मरण करते हैं, वे दु:ख के भागी नहीं होते। उनके मनोहर भवन होते हैं तथा उनकी उत्तम आभूषणों वाली स्त्रियाँ होती हैं। शिव पूजन के फल से तृप्ति पर्यन्त धन मिलता है।

जो स्वर्ग के भोगों और वहाँ का राज्य चाहते हैं, वे सदा शिव के चरण कमल की भक्ति चाहते हैं। सौभाग्य, मनोहर रूप, सत्व, त्याग, दयालु स्वभाव, शूरता, संसार में प्रसिद्धि शिव पूजक को मिलती है।

अत: सब कुछ छोड़कर शिव में मन लगाये, जो अपना भला चाहे, वह नित्य शिव पूजन करे। यौवन तथा जीवन शीघ्र चला जाता है। शीघ्र रोग आता है। अत: शिव का पूजन करें। जब तक बुढ़ापा तथा मृत्यु नहीं आती, जब तक इन्द्रियों में विकलता नहीं आती, तब तक शिव पूजन करे।

तीनों लोकों में शिव पूजन से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। ऐसा जानकर प्रयत्न से सदा शिव की पूजा करनी चाहिए। द्वारयाग, बगीचा लगाना, बच्चों को भोजन कराना, घर में पूजन करने पर प्रतिदिन उत्सव करे।

हविष्य का निवेदन करने के बाद स्वयं या सेवक महल में रहने वाले परिजनों को प्रसाद बाँटे और बाजों के साथ शिव मन्दिर में जाय। जल, फूल, धूप, दीप चढ़ायें। महापीठ में उत्तर मुख करके बलिदान करे।

जो अन्न आदि शिव को अर्पित किया है उसका शेष अंश शिव के गढ़ चण्ड को अर्पित करें। विधिवत् हवन करके पूजा को समाप्त करे। इस प्रयोग को करके यथा सम्भव मंत्र का जप करे।

शिव शासन के अनुसार प्रतिदिन उत्सव करे। लाल कमल से शोभित बड़े धातुपात्र में दिव्य पशुपत अस्त्र को मिलाकर उसमें आवाहन करके उसकी पूजा करे। फिर उस पात्र को सुशोभित कर ब्राह्मण के सिर पर रखकर चमकती हुई लाठी धारण करने वाले, अस्त्रन्यासयुक्त शरीर से भवन के परिजनों के सामने मंगल ध्वनि तथा नाच गाना, दीप जलाना, ध्वजा फहराना आदि करें।

धैर्यपूर्वक तीन प्रदक्षिणा करे। महापीठ के चारों ओर तीन प्रदक्षिणा करके फिर यजमान हाथ जोड़कर द्वार पर स्थित होकर पूर्वोक्त आठ फूलों को भीतर ले जाकर अस्त्र का विसर्जन करे। पहले कहे गये क्रम से प्रदक्षिणा आदि करके आठ फूलों को लेकर पूजा को समाप्त करे।

नाम मन्त्र का उपेदश

रावण ने कहा—अब मैं नाममन्त्र, शिवसाधक मन्त्र तथा संस्कार मन्त्र के माहात्म्य को कहता हूँ, जैसा मैंने पहले कहा था मण्डल में महादेव जी की पूजा कर, कलश स्थापना कर और हवन कर पगड़ी रहित शिष्य को वहाँ मण्डल में बैठाये।

पहले की भाँति सब विधान करके सौ आहुति देकर पूर्णाहुति होम करके कलश जल से मूल मन्त्र द्वारा उत्तम गुरु शिष्य का अभिषेक करके पहले की भाँति अग्नि प्रज्वलित कर, अभिषेक करके उसे उत्तम मन्त्र की दीक्षा दे।

उसमें विद्या की उपदेश पर्यन्त सब विस्तार से करके उस उपयुक्त जल से शिष्य के हाथ में शिव सम्बन्धी विद्या को समर्पित करे और उससे कहे—तुम्हारे इस लोक तथा परलोक में यह विद्या सभी प्रकार की सिद्धियों को देगी और यही शिवजी की कृपा से महामन्त्र होगा।

यह कहकर महादेव की पूजा करके गुरु शिव से आज्ञा पाकर साधन तथा शिवयोग का उपदेश साधक को करे। गुरु के इस सन्देश को सुनकर मन्त्र साधक विनियोग के साथ मन्त्र साधन करे। मूल मन्त्र के इस साधन को सामने करने के कारण इस विनियोग कर्म को पुरश्चरण कहते हैं।

मोक्ष की इच्छा करने वाले को अधिक मन्त्र साधन करना चाहिए। यदि करे तो उसे इस लोक तथा परलोक में सुख मिलता है।

अच्छे दिन, शुभ देश, दोषरहित कला में दाँतों, नाखूनों को साफ कर, स्नान करके प्रात:कृत्स करके गन्ध, माला, आभूषण आदि से अपने को अलंकृत

करके, सफेद पगड़ी, दुपट्टा को धारण कर, मन्दिर में, घर में या और किसी मनोहर स्थान में सुखपूर्वक आसन लगाकर शिवशास्त्र में कथित मार्ग में अपने शरीर को शिवमय करके नकुलीश्वर देव-देवेश की पूजा कर उन्हें खीर चढ़ाकर आराधना को समाप्त कर, महादेव जी को प्रणाम कर, उनसे आज्ञा पाकर करोड़ बार, उसके आधी, फिर उसके आधी बार शिव का बीस लाख या दस लाख जप करे।

फिर हिंसा रहित, क्षमायुक्त, शान्त तथा सदा दानी हो, खीर या नमक रहित अल्प भोजन करे। खीर के न मिलने पर फल मूल का भोजन करे। शिवजी ने इन पदार्थों को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहा है। चरु, सत्तु या यावक का भोजन करे।

शाक, दूध, दही, घी, मूल, फल, जल इन भक्ष्य भोज्यों को मन्त्र से अभिमंत्रित करके इस साधन में विशेष करके मौन होकर भोजन करे आठ सौ मन्त्र पढ़कर नदी या नद पवित्र जल से व्रती स्नान या प्रोक्षण करे।

प्रतिदिन तर्पण करे। शिवाग्नि में सात, पाँच, तीन बार घी की आहुति देकर हवन करे।

इस प्रकार जो शैवसाधक भक्ति से शिव की पूजा करता है, उसे इस लोक, परलोक में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। अथवा प्रतिदिन एकाग्र मन से मन्त्र जपे। हजार मन्त्र पढ़े बिना भोजन नहीं करे। तभी मन्त्र की सिद्धि होती है। उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं, कोई अशुभ नहीं।

इस लोक में विद्या, लक्ष्मी, सुख पाकर वह मुक्ति भी पाता है। नित्य, नैमित्तिक साधन तथा विनियोग में जल, मन्त्र तथा भस्म स्नान करे और मन्त्र का जप करे। पवित्र होकर शिखा बाँधकर हाथ में पवित्री लेकर त्रिपुण्ड्र लगाकर तथा रुद्राक्ष धारण कर पंचाक्षरी विद्या का जप करे।

शिवलिङ्ग पूजार्थ विधान

रावण ने कहा—शिवशास्त्र में शिवजी ने विद्या से जो पूजा विधान कहा था, उसकी संक्षिप्त मैं व्याख्या करता हूँ। अग्नि कार्य के अन्त तक किये जाने वाले कार्य को अभ्यन्तर अंग कहते हैं। उसे करके वहिर्याग करे या न करे।

उसमें द्रव्यों को मन से विचार कर शुद्ध कर विधिपूर्वक गणेश का ध्यान कर उनका पूजन करे। दक्षिण में नन्दीश उत्तर में सुयश की आराधना कर विद्वान् मन से आसन की कल्पना करे, आराधना आदि से युक्त होकर सिंहयोग, पद्मासन तथा निर्मल आदि आसन में बैठे, जो तीनों तत्त्वों से विराजमान् हो उसके ऊपर साम्बशिव का ध्यान करे।

जो सभी अवयवों से सुन्दर, सबके मन को हरने वाले तथा सभी लक्षणों

से युक्त हैं। सबसे श्रेष्ठ, सभी आभूषणों से सुशोभित, लाल मुख, हाथ, पैर वाले, कुन्द चन्द्र के सदृश मन्द हास्य युक्त सुख वाले, शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण वाले, खिले कमल के सदृश नेत्रों वाले, चार भुजाओं, उदार अंगों से विभूषित, सुन्दर चन्द्र कला को धारण करने वाले, वरदायक अभय हाथ वाले, भृगटंक को धारण करने वाले, साँपों की माला तथा कंकण को धारण करने वाले, नीलकण्ठ को शिव को सभी उपमाओं से रहित, सेवक कुटुम्ब सहित, जिनके वाम भाग में महेश्वरी हैं, उनका ध्यान करे।

खिले हुये कमल के समान कान्ति युक्त, बड़े चौड़े नेत्रों वाली, पूर्ण चन्द्र के सदृश जिनके मुख की कान्ति है, काले घुँघराले बालों वाली, नीलकमल दल के समान वर्ण वाली, अर्धचन्द्र जिनके मुकुट में हैं, गोल, घने, ऊँचे स्निग्ध तथा पुष्ट स्तनों वाली, कृषोदरी, विपुल नितम्बा, पीले तथा सूक्ष्म वस्त्र को धारण की हुयी, सभी आभूषणों से भूषित, मस्तक के तिलक से उज्ज्वल, जूड़े में लगाये हुये फूलों से सुशोभित, समस्त गुणों से युक्त, लज्जा से कुछ झुके हुये मुख वाली, स्वर्ण कमल को हाथ में धारण की हुयी, दूसरे हाथ दण्ड की भाँति रखकर महासन में बैठी हुयी संसार बन्धन को काटने वाली साक्षात् सच्चिदानन्द वाली को शतशत नमन है।

इस प्रकार शुभ आसन पर बैठे हुये शिव-शिवा का ध्यान करे और सभी उपचारों से भक्ति के साथ उन्हें भाव पुष्प अर्पित करे अथवा विभु की दूसरी मूर्त्ति बनाकर सदा शिव नामक माहेश्वरी मूर्ति की कल्पना करे अथवा षड्विंशक नामक या श्रीकण्ठ नामक मूर्त्ति की कल्पना करे।

अपने शरीर में मन्त्र न्यास आदि रूप मूर्तिमान् शिव को जो सत् असत् से परे हैं उन्हें बाहरी क्रम से ध्यान कर बुद्धिपूर्वक उनकी पूजा करे।

फिर समिधा तथा घी आदि से नाभि में होम करे। दोनों भौं के बीच में शुद्ध दीप की लौ के सदृश शिव का ध्यान करे।

इस प्रकार अपने शरीर में स्वतन्त्र रूप में, ध्यानमय योग में, उनका ध्यान करें। हवन पर्यन्त सर्वत्र समान ही विधि है। इस चिन्तामय आराधन क्रम को समाप्त कर लिङ्ग में, स्थण्डिल में अथवा अग्नि में देव की पूजा करे।

रावण ने कहा—शुद्धि के लिये पूजा स्थान का मूल मन्त्र से प्रोक्षण करे तथा उसमें गन्ध, चन्दन, पुष्प और जल डालें। अस्त्र से विघ्नों को हटाकर, कवच से ढककर फिर उस अस्त्र को दिशाओं में रखकर पूजा स्थान की कल्पना करे।

प्रोक्षण आदि से उस भूमि को शुद्ध कर वहाँ कुश बिछा दे। सभी पात्रों को

शुद्ध कर द्रव्यों को भी शुद्ध करे। प्रोक्षणी, अर्घ्यपात्र, पाद्यपात्र तथा आचमनी—इन चार पात्रों को धोकर, पोछकर, देखकर उनमें शुद्ध जल डाले।

जो प्राप्त हो वे सभी पवित्र द्रव्य उनमें डाले। रत्न, चाँदी, सोना, गन्ध, पुष्प, अक्षत, फल, पंचपल्लव, कुश तथा अनेक बार पूर्ण द्रव्य को डाले। स्नान तथा पीने के जल में विशेषकर सुगन्धित द्रव्य डाले। और शीतल, मनोहर फूल आदि भी डाले।

पाद्य जल में खस, चन्दन डाले। जायफल, कंकोल, कपूर, केवड़ा, तमाल इन्हें चूर्ण कर आचमन के योग्य जल में डाले। इलायची, कपूर तथा चन्दन सभी जलपात्रों में डाले। कुश के अग्र भाग, अक्षत, जौ, धान, तिल, घी, सरसों, फूल, भस्म—इन्हें अर्घ्यपात्र में डाले।

कुश, फूल, जौ, धान, केवड़ा, तमाल—इन्हें तथा भस्म को प्रोक्षणी पात्र में डाले। सर्वत्र मन्त्र न्यास कर बाहर से वर्म, कवच से लपेट कर फिर अस्त्र से सुरक्षित कर धेनु मुद्रा का प्रदर्शन करे।

सभी पूजा द्रव्यों का प्रोक्षणी पात्र के जल से प्रोक्षण कर के फिर मूल मन्त्र से उनका विधिवत् शोधन करे। पात्रों के न मिलने पर सभी कर्मों में एक प्रोक्षणी से उत्तम साधक सामान्य अर्घ्य दे। फिर विनायक देव को भक्ष्य भोज्य आदि द्वारा क्रम से पूजा विधि के अनुसार द्वार के दक्षिण में पूजे। फिर अन्तःपुर के स्वामी सुवर्णपर्वत की भाँति समस्त आभूषणों से युक्त नन्दीश्वर की भली-भाँति पूजा करे।

जो बालचन्द्र को मुकुट में धारण किये हैं। सौम्य, त्रिनेत्र, चतुर्भुज, दीप्त त्रिशूल, मृगीटंक तथा तेजस्वी नेत्रों वाले प्रभु हैं। चन्द्र मण्डल के समान मुख, हरिवस्त्र, उत्तर द्वार के समीप मरुत की कन्या सुयशा, जो पार्वती जी के पाद युगल को दबाने में लगी हैं, की पूजा करके परमेष्ठी के भवन में प्रवेश करे।

उक्त द्रव्यों से लिङ्ग पूजा करके निर्माल्य को हटाकर फूल को धोकर उसकी शुद्धि के लिये सिर पर रखे। हाथ में फूल लेकर शिष्य की शुद्धि के लिये यथाशक्ति मन्त्र का जप करे। ईशान में चण्ड देव की आराधना कर निर्माल्य से हिला दे। फिर आराधना आदि क्रम से वहाँ आसन रखे।

आधार शक्ति, कल्याणी तथा श्यामा का भूमि में ध्यान करे। उसके आगे फन उठाये हुये पाँच फणों युक्त सफेद वर्ण के कुण्डलाकार बैठे अनन्त को, जो मानों आकाश को चाट रहा हो उसके ऊपर भद्रासन, सिंह के सदृश चार पैरों वाले धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य तथा पद इनकों आग्नेय आदि कोणों में सफेद, लाल, पीला, श्याम—इन वर्णों से और अधर्म आदि पूर्व से उत्तर तक क्रम से इनके शरीरावयवों से राजावर्तमणि के रूप में ध्यान करे।

इनके ऊपर आच्छादन के रूप में निर्मल पद्मासन की भावना करे। उस कमल के आठ पत्र अणिमा आदि आठ गुणों वाले हैं। वाम आदि शक्तियाँ उसके केशर हैं। रुद्र वाम आदि शक्तियों से युक्त हैं। वे मनोन्मनी आदि शक्तियाँ ही बीज कही गयी है। ऊपर कर्णिका वैराग्य है, शिवात्मक ज्ञान ही उसकी नाल है।

शिव धर्मात्म रूपी उसका कन्ध है। कर्णिका के अन्त में तीन मण्डल है और उनके ऊपर तत्त्व आदि तीन आसन हैं। सब आसनों के ऊपर एक सुखद विचित्र आसन बिछा हुआ है। वहाँ एक शुद्ध विद्या के दिव्य आसन की कल्पना करे। आवाहन, स्थापन, चित्तवृत्ति का विरोध, निरीक्षण कर फिर अलग-अलग मुद्राओं द्वारा नमस्कार करे।

पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, धूप आदि ताम्बूल अर्पित कर शिव शिवा को शयन कराये। अथवा मूर्त्ति एवं आसन की कल्पना करके मूल मन्त्र, ब्रह्ममन्त्र तथा वेद मन्त्र से पूर्ण कर परम कारण शिव जी का देवी के साथ आवाहन करे।

जो शुद्ध स्फटिक के सदृश निश्चल तथा अक्षर देव हैं। जो सब लोकों के कारण हैं, सर्व लोकमय हैं, बाहर-भीतर व्याप्त होकर जो छोटे से छोटे और बड़े से भी बड़े हैं, जो अव्यय, ईश्वर बिना प्रयत्न के ही भक्तों को दर्शन देते हैं और जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र आदि देवता भी नहीं देख सकते। जो वेदसार हैं, विद्वानों ने जिन्हें वे अगोचर हैं--ऐसा सुना है, जो आदि, मध्य,अन्त रहित हैं और भवबन्धन रूप रोग की जो परम औषध हैं, जिन्हें शिवतत्त्व कहते हैं। जो संसार का कल्याण करने के लिये स्थिर हैं, ऐसे शिवलिङ्ग का पूजन पंचोपचार की भाँति भक्ति से करे।

परमात्मा महेश शिव की लिङ्गमूर्त्ति को स्नान कराते समय मांगलिक जय शब्द का उच्चारण करे। पंचगव्य भी दूध, दही, मधु तथा चीनी आदि फल, फलों के सार, तिल, सरसों तथा सत्तूओं से जौ आदि बीजों से, उड़द के चूर्ण से उबटन लगाकर, गरम जल से स्नान कराये।

लेप तथा गन्ध द्रव्यों को छुड़ाने के लिये बिल्व पत्र आदि से रगड़े। फिर चक्रवती उपचार पूर्वक जल से स्नान कराये। सुगन्धि युक्त आँवलों तथा हल्दी से पोतकर जल से लिङ्ग बेर को शुद्ध करे। सुगन्धित जल से, कुश तथा फूल मिश्रित जल से, सोना तथा रत्नयुक्त जल से तथा मन्त्रपूत जल से क्रमशः स्नान कराये।

उक्त द्रव्यों के न होने पर जो उपलब्ध हो अथवा मन्त्रपूत जल से श्रद्धापूर्वक शिव को स्नान कराये। कलश से, शंख से, वर्धनी से, हाथ से, कुश तथा पुष्प से मन्त्रपूर्वक शिव को स्नान कराये। पवमान, रुद्र, नीलरुद्र त्वरित मन्त्र लिङ्गसूक्त आदि

सूक्तों से, अथर्वशीर्ष, ऋग्वेद, सामवेद के मन्त्रों से, पंचब्रह्म मन्त्र से तथा ओंकार से देव देवेश शिव को स्नान कराये।

शिव शिवा के स्नान में कोई विशेष भेद नहीं है, क्योंकि वे दोनों समान हैं। पहले महादेव को स्नान कराये, बाद में महादेवी को; यह देवदेव की आज्ञा है। अर्धनारीश्वर दोनों ही पूज्य हैं उनके पूजन में आगे पीछे का विचार नहीं है।

अन्यत्र कहीं-कहीं शिव शिवा के पूजा का विचार है। लिङ्ग का अभिषेक करके पवित्र सुगन्धित वस्त्र से उसे पोछे। फिर वस्त्र तथा यज्ञोपवीत चढ़ायें। पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, भूषण, धूप-दीप, नैवेद्य मुख शुद्ध करने के लिये जल दे। फिर आचमनी, मुखवास, ताम्बूल, सभी रत्नों से जटित शुभ्रमुकुट पवित्र भूषण, अनेक प्रकार की मालायें, अंजन, चामर, छत्र, ताड़ का पंखा, दर्पण इन्हें अर्पित कर सभी मंगल वाद्यों को बजाते हुये नीराजन करे।

गीत-नृत्य, जय जयकार के साथ सोने, चाँदी, ताँबे अथवा मिट्टी के शुभ पात्र में कमल पुष्प, बीज, दही, अक्षत आदि से त्रिशूल, शंख, दो कमल, नन्द्यावर्त, करीष, श्रीवत्स, स्वस्तिक, आदर्श, वज्र, अग्नि से चिह्नित आठ दीपक चारों ओर, एक दीपक बीच में रखे।

उनमें वाम आदि नौ शक्तियों का ध्यान कर उनकी पूजा करे। कवच से ढककर, अस्त्रमन्त्र से चारों ओर रक्षा कर धेनुमुद्रा दीखाकर दोनों हाथों से पात्र को उठायें। अथवा उस पात्र में क्रमशः पाँच दीपों को रखे। विदिशाओं में भी एक-एक दीप रखे, एक दीप बीच में रखे तब उस पात्र को उठाकर मूल मन्त्र का ध्यान करते हुये तीन बार लिङ्ग के ऊपर घूमाये।

सुगन्धित भस्म युक्त अर्घ्यजल शिवजी के सिर पर छोड़ दे। फिर पुष्पाञ्जलि समर्पित कर उपहार दे। आचमनी से पीने योग्य जल दे। फिर पंचसुगन्धित से युक्त ताम्बूल अर्पित करे। प्रोक्षणी पदार्थों का प्रोक्षण करके नाच गाना आदि करें।

लिङ्ग में शिव-शिवा का ध्यान कर यथाशक्ति शिव का जप करे। प्रदक्षिणा, प्रणाम, स्तुति करके विनय के साथ अपने कार्यों तथा अपने को उन पर न्यौछावर करे। अर्घ्य, पुष्पांजलि देकर धेनु मुद्रा का प्रदर्शन कर अन्त में देव का हृदय में ध्यान करता हुआ क्षमा प्रार्थना करके उनका विसर्जन करे।

अतिसंकट की स्थिति में अर्घ्य, पाद्य से लेकर मुख वास समर्पण करे अथवा भक्तिपूर्वक केवल पुष्प चढ़ायें। इतना ही परम धर्म है, भाव से ही पुण्य मिलता है। प्राण रहते हुये शिव पूजन किये हुए भोजन न करे यदि कोई पापी भोजन कर लेता है, तो उसके पाप का कोई निराकरण नहीं है।

यदि भूल से खा लेता है, तो प्रयत्न से उसे उगल दे। स्नान करके शिव-शिवा का दूना पूजन कर ब्रह्मचर्य के साथ दस हजार शिव का जप करे। दूसरे दिन यथाशक्ति सुवर्ण आदि शिव को या शिवभक्त को देकर फिर महापूजा करके पवित्र हो जाता है।

योग भेद वर्णन

मेघनाद ने कहा—ज्ञान, क्रिया तथा पूजा में संग्रह ग्रन्थों से सार लेकर जो आपने कहा, सम्मत है, मैंने उसे सुना। अब मैं परम दुर्लभ योग को साधिकार, अंगों सहित, सविधि तथा सप्रयोजन सुनना चाहता हूँ।

यदि विधिपूर्वक किये योगाभ्यास से मृत्यु होती है और उसे शीघ्र सिद्ध किया जा सकता है जिससे आत्मघाती नहीं हो सकता। वह, उसके कारण और तत्काल के कर्त्तव्य, उसके भेदों तर-तम क्रम को आप ठीक-ठीक कहिये।

रावण ने कहा—सभी प्रश्नों के अर्थ को जानने वाले हे मेघनाद तुमने ठीक समय पर पूछा। उसे क्रमशः मैं सब कहता हूँ। तुम ध्यान से सुनो! मानसिक वृत्तियों को निश्चल मन से लगाना रूपवृत्ति है, वह संक्षेप में योग है।

वह पाँच प्रकार का होता है—मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, अभावयोग तथा सबसे बड़ा महायोग माना गया है। मन्त्र के अभ्यास से मन्त्र के वाच्यार्थ गोचर होकर जो मन्त्र से वृत्ति स्थिर हो जाती है, उसी का नाम मन्त्रयोग है।

प्राणायाम युक्त वही मनोवृत्ति स्पर्श योग कही जाती है। वही मन्त्र स्पर्श से मुक्त प्राणायाम भाव भावयोग कहा जाता है।

जिस योग से सम्पूर्ण संसार तिरोहित हुआ सा प्रतीत होता है, वह अभावयोग कहा जाता है। क्योंकि इसमें विद्यमान वस्तुओं का भी भान नहीं होता है।

शिव का स्वभाव ऐसा है कि उसमें उपाधि रहित एक का चिन्तन किया जाता है, अतएव इसे महायोग कहते हैं।

अब योगाधिकार के योग्य पुरुष का परिचय—देखने योग्य प्रजा, पशु आदि सम्पत्ति की प्राप्ति वेदोक्त ज्योतिष्टोम आदि स्वर्ग विषयों से जिसका मन विरक्त है, योग में उसी का अधिकार है, दूसरे का नहीं। विषयद्वय दोष युक्त ईश्वर के गुणों को देख लेने मात्र से मन विरक्त हो जाता है।

अष्टाङ्ग योग हो या षडङ्ग योग हो सभी योग संक्षेप से यम-नियम आदि हैं। उनमें स्वस्वस्तिक आसन आदि प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—ये संक्षेप से योग के आठ अंग विद्वानों ने कहे हैं।

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—संक्षेप से ये षडङ्ग

हैं। शिवशास्त्र में इनके पृथक लक्षण कामिका आदि और शिवागमों ने कहे हैं। योगशास्त्रों में तथा कुछ पुराणों में भी अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन्हें पंचावयवयोग के अनुसार सज्जनों ने यम कहा है।

शौच, तुष्टि, तप, प्रणिधि (गुरु सेवा)—ये नियम के पाँच भेद हैं। स्वस्तिक, पद्म, अधर्मेन्दु, विरासन, योगासन, प्रसाधित, पर्य, यथेष्ट—ये आठ आसन हैं।

अपने शरीर से निकली हुई प्राण वस्तु को रोकना प्राणायाम है। वह रेचक, पूरक, कुम्भक भेद से तीन प्रकार का होता है।

नासिका के एक छिद्र को अंगुली से बन्द करके दूसरे छिद्र से उदर स्थित वायु को बाहर निकालना रेचक है। बाहरी वायु से शरीर को मसक की भाँति दूसरे नासापुट से भरने का नाम पूरक है।

फिर उस वायु को न छोड़ना, न लेना, कुम्भ के समान अचल रहने का नाम कुम्भक है। योगसाधन इन रेचक आदि तीन विधियों को करने में शीघ्रता तथा विलम्ब न करे, अपितु इनका क्रमश: अभ्यास करे। रेचक आदि में नाड़ी शोधनपूर्वक अभ्यास करने में अपनी इच्छा ही अन्तिम अवधि है, ऐसा योगानुशासन में कहा है।

पहले छोटी मात्रा, फिर बड़ी मात्रा इस क्रम से प्राणायाम करे। यह छोटी बड़ी मात्रा गुड़ विभाग के अनुसार चार प्रकार की होती है।

प्राणायाम चार प्रकार का होता है। छोटा बारह मात्रा का, मध्यम दो उद्ग्धात वाला—चौबीस मात्रा का होता है। उत्तम प्राणायाम तीन उद्ग्घात छब्बीस मात्रा का होता है।

पसीना, कम्प, आदि जनक प्राणायाम उससे श्रेष्ठ होता है। आनन्द की उत्पत्ति, रोमांच, आँखों से आँसू गिरना, जल्प, भ्रमण—ये लक्षण योगी को प्रतीत होते हैं।

न शीघ्र, न विलम्ब से जानु के चारों ओर घुमाकर जितनी देर में चुटकी बजाया जाय उसे मात्रा कहते हैं। मात्राक्रम से उद्ग्घात क्रम जानना चाहिए।

नाडीशोधन करके ही प्राणायाम करे। प्राणायाम अगर्भ तथा सगर्भ भेद से दो प्रकार का होता है।

जप ध्यान बिना अगर्भ और जप ध्यान से युक्त सगर्भ है। अगर्भ से सगर्भ प्राणायाम सौ गुना अधिक महत्त्व का है। इसलिये योगी सगर्भ प्राणायाम ही करते हैं। प्राण वायु पर विजय पाने से ही शेष सभी वायु जीते जाते हैं।

शरीर के पाँच वायु ये हैं—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय—जीवनयापन में सहायक होने से इन्हें प्राण कहते हैं।

जो खाये हुये आहार आदि को नीचे की ओर ले जाता है, उसे अपान कहते हैं।

शरीर के सभी अंगों में व्याप्त होने और उन्हें बढ़ाने के कारण से व्यान कहते हैं।

मर्मों को उद्विग्न करने के कारण उसे उदान कहते हैं।

सम्पूर्ण अंगों को समान रखने के कारण उसे समान कहते हैं।

उद्गार (डकार) में नाग, कूर्म आँखों को खोलने तथा बन्द करने में कृकल, छींकने तथा जँभाई लेने में देवदत्त और जो मरे प्राणि को भी नहीं छोड़ता, वह सर्वव्यापी धनञ्जय है।

क्रम से अभ्यास किया हुआ यह प्रमाण युक्त प्राणायाम है। यह प्राणायाम सम्पूर्ण दोषों को भस्म करके कर्त्ता के शरीर की रक्षा करता है।

प्राण वायु को भलीभाँति जीत लेने पर उसके चिह्नों को देखे। इससे मल, मूत्र, कफ कम हो जाता है, बहुत खाने की शक्ति आती है, देर में श्वास आता है, शरीर में हल्कापन, शीघ्रगामिता, उत्सव, स्वर में मधुरता, सब रोगों का नाश, बल, तेज, सुरूपता, धैर्य, बुद्धि, जवानी, स्थिरता, प्रसन्नता, तपस्विता, पापक्षय, यज्ञ, दान, व्रत आदि ये गुण प्राणायाम के सोलहवीं कला के बाराबर नहीं है।

अपने क्रम से विषयों में फैली हुयी मन सहित इन्द्रियों को जो बलपूर्वक रोकता है, उसे प्रत्याहार कहते हैं।

स्वर्ग तथा नरक का कारण क्रमशः निगृहीत इन्द्रियाँ तथा अनिगृहीत इन्द्रियाँ होती हैं। इसलिये सुख का इच्छुक बुद्धिमान् पुरुष ज्ञान वैराग्य में स्थिर हो इन्द्रिय रूपी घोड़ों को शीघ्र नियंत्रित कर अपने से अपना उद्धार करे।

संक्षेप में चित्त को स्थिर करने का नाम धारणा है। शिव ही एक उत्तम स्थान है। औरों में तीनों दोष होते हैं। उचित काल को निश्चित करके उसमें मन लगाकर उसे शिवरूप लक्ष्य से अलग न होने दे।

मन की प्रथम स्थिरता धारणा से ही होती है। इसलिये मन को धारणा के अभ्यास से स्थिर करे।

'ध्यै चिन्तायाम्' धातु से ल्युट् प्रत्यय लगाने से ध्यान शब्द बनता है। अतः इसमें बार-बार शिव का ध्यान होना चाहिए। एकाकार चित्तवृत्ति से ध्यान करना चाहिए। ध्येय में विश्वासपूर्वक मन लगाना ही ध्यान है।

केवल एक पर ही विश्वास करना ध्यान है। परमशिव ही ध्यान करने के योग्य हैं। सबको छोड़कर एक शिव ही कल्याणकारक हैं, अथर्ववेद में यही कहा गया

है, और शिवा का ध्यान करे। ये शिव-शिवा सभी प्राणियों में व्याप्त हैं। इन दोनों को स्मृति तथा शास्त्रों ने सवर्ग, सर्वदा, उदीयमान, सर्वज्ञ कहा है।

अतः अनेक रूपों से इनका सदा ध्यान करना चाहिए। ध्यान के दो प्रयोजन कहे गये हैं। मुक्ति पर विश्वास करना तथा अणिमादि सिद्धियों पर विश्वास करना।

ध्याता, ध्यान, ध्येय तथा ध्यान का प्रयोजन—इन चारों को समझ कर योग को जानने वाला योग प्रारम्भ करे।

ज्ञान वैराग्य से युक्त, श्रद्धालु, क्षमावान्, ममतारहित, सदा उत्साही पुरुष को ध्याता कहा गया है। जप से थक जाये तो फिर ध्यान करे। ध्यान से थक जाये तो फिर जप करे।

योग मार्ग के विघ्नों का वर्णन

रावण ने कहा—आलस्य, घोर व्याधियाँ, सावधानी, स्थान का संदेह, चित्त की स्थिरता, श्रद्धा तथा ब्रह्म का दिखलायी देना, दुःख, दुर्बुद्धि, विषय भोग के प्रति चंचलता—ये दस योगमार्ग में प्रवृत्त पुरुषों के मार्ग में विघ्न आते हैं।

आलस्य और शिथिलता ये योगियों के देह तथा मन के द्वेष हैं। धातुओं की विषमता से तथा कर्मों के दोषों से व्याधियाँ होती है।

योग साधना के अभाव का नाम प्रमाद है।

यह सत्य है या वह, इस प्रकार के विपरीत ज्ञान का नाम संशय है।

मन की अस्थिरता को ही अनवस्थिति कहते हैं।

योग मार्ग में इसी भाव सहित वृत्ति को अश्रद्धा कहते हैं।

विपरीत बुद्धि को भ्रान्ति कहते हैं।

पुरुषों के मानसिक दुःख को आध्यात्मिक दुःख कहते हैं।

पूर्वजन्म के किये हुये कर्मों से उत्पन्न शारीरिक दुःख को आधिभौतिक कहते हैं।

शस्त्र-आघात, विष भक्षण से उत्पन्न दुःख को आदिदैविक दुःख कहते हैं।

इच्छा के पूर्ण न होने से उत्पन्न दुःख को दौर्मनस्यक कहते हैं।

विविध विषयों में चपलता का नाम विभ्रम है।

इन विघ्नों के शान्त होने पर योग में तत्पर योगी को जो लक्षण दिखलायी देते हैं, वे दिव्य सिद्धि के सूचक होते हैं।

प्रतिभा, श्रवण, दर्शन, वार्ता, आस्वाद, वेदना—ये छः लक्षण योग के अधिक होने पर सिद्धि सूचक होते हैं।

सूक्ष्म, व्यवधान युक्त, अतीत, सुदूर तथा जो वस्तु अभी प्राप्त नहीं है, उसको भी ठीक-ठीक जान लेना यही प्रतिभा है।

बिना प्रयत्न के सभी प्रकार के शब्दों का सुनायी पड़ना, सभी प्राणियों की भाषाओं का ज्ञान वार्ता है।

दिव्य वस्तुओं का बिना प्रयत्न के दर्शन होना ही दर्शन है। दिव्य रसों के आस्वाद करने की शक्ति को ही आस्वाद कहते हैं।

स्पर्श ज्ञान को वेदना कहते हैं। समस्त ब्रह्माण्ड व्यापी दिव्य गन्धों के ज्ञान को वेदना कहते हैं। योगी में ये योगरत्न रहते हैं। ये उन्हें दूसरे को देते भी हैं।

योगी के ऐश्वर्यों का वर्णन

इनके मुख से स्वच्छन्द मधुर वाणी निकलती है। इन्हें प्रणाम कर देवांगनाये दिव्य औषधियाँ तथा रसायन देती हैं। ये इन्हें सिद्ध हो जाती है।

योगसिद्धि का थोड़ा सा ज्ञान हो जाने पर मनुष्य मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है, जैसा मैंने इसे देखा है, वैसे ही मोक्ष भी हो जायेगा।

प्रसूता, स्थूलता, बचपन, बुढ़ापा, जवानी, अनेक जातियों का स्वरूप तथा चार प्रकार से देह धारण करना, पृथ्वी अंश के बिना प्रतिदिन मनमोहक गन्ध का संग्रह करना—ये आठ पिशाच सम्बन्धी पार्थिवपद के गुण कहे गये हैं।

जल में निवास, भूमि से निकलना, बिना कष्ट के समुद्र को पी जाने में समर्थ, वह इस भूमि में जहाँ चाहे पानी में दिखलाई दे।

बिना घड़े आदि पात्र का जल संग्रह तथा धारण करना और नीरस वस्तु को भी वह योगी खाना चाहता है, तो वह तत्क्षण सरस हो जाती है।

वह जल, तेज, वायु का रूप धारण कर सकता है। वह पार्थिव शरीर को छिद्र रहित धारण कर सकता है। यह सोलह आश्चर्यकारक गुण जलीय ऐश्वर्य के हैं।

शरीर से अग्नि को प्रकट करना और दाह का भय न होना। यदि वह चाहे तो विना यत्न के सम्पूर्ण शरीर को जला सकता है। अग्नि को पानी में या हाथ में रखना, सृष्टि को भस्म करके पूर्ववत् कर देना, मुख में अन्न आदि को पका देना, तेज और वायु से शरीर-निर्माण शक्ति जलीय ऐश्वर्य से युक्त होना, ये चौबीस प्रकार का तेज कहा जाता है।

मन के समान वेग का हाथ, क्षण भर में दूसरे के हाथ में प्रवेश कर जाना, बिना प्रयत्न के पर्वत आदि महाभार को धारण कर लेना, भारी का हल्का होना, हाथ से वायु को पकड़ना, अंगुलि के अगले भाग को रखते ही पृथ्वी को कँपा देना, एक वायु से ही शरीर को धारण करना, भोग तथा तेज से युक्त होना, वायु के बत्तीस ऐश्वर्य विद्वान् जानते हैं।

आकाश के ऐश्वर्य—छाया की हीनता, असमाप्ति, इन्द्रियों को न दिखलाई

देना, इच्छानुसार आकाश में विचरण करना, इन्द्रियों को अर्थों का परस्पर समन्वय, आकाश को लाँघना, उसका अपने शरीर में समावेश, आकाश को पिण्ड जैसा बना लेना, शरीर को लुप्त कर देना—ये महान् चालीस गुण वायु के हैं।

इन्द्र का ऐश्वर्य ही आकाश का ऐश्वर्य है। यथा काम प्राप्ति और यथा काम सिद्धि सभी को पराजित करना, सभी गुप्त पदार्थों को देखना कर्म के अनुसार निर्माण, वश में करना सुरूपता, एक ही स्थान में रहकर सम्पूर्ण संसार का दर्शन होना, इन्द्र के समान ऐश्वर्यों की प्राप्ति—ये चन्द्रमा के ऐश्वर्य हैं, जो मानस गुणों से भी अधिक है।

संसार में रहने वाला सभी प्राणियों को काटना, मारना, पीटना, बाँधना, छोड़ना, पकड़ना और उन पर प्रसन्न होना, मृत्यु तथा काल पर विजय पाना—ये अभिमान युक्त ऐश्वर्य प्रजापति के गुण हैं। ये चन्द्रमा के भागों से छप्पन गुण अधिक है।

इस शक्ति को प्राप्त कर लेने से योगी पुरुष संकल्प मात्र से सिद्धि, पालन, संहार कर सकता है।

सभी प्राणियों के मन में अपना अधिकार कर लेना और सबसे अलग रहकर वह संसार की रचना कर सकता है। भला, बुरा करने में समर्थ, प्रजापत्य ऐश्वर्य से संयुक्त चौंसठ गुणों वाला ब्रह्मा का ऐश्वर्य कहा जाता है।

इस बुद्धि से किये गये ऐश्वर्य को प्राकृत ऐश्वर्य कहते हैं। उसे वैष्णव तत्त्व कहा गया है। उसी से ये भुवन स्थित है। ब्रह्मा भी उस पद का पूर्ण रूप से वर्णन नहीं कर सकते, औरों की क्या शक्ति है।

उनका पुरुषार्थ सगुण है, उसके आगे ऐश्वर्य सम्पन्न गणेश का पद है, उस पद का कुछ ज्ञान विष्णु को है, औरों को नहीं।

परम ऐश्वर्य की सिद्धि नहीं होती है, इसलिये देवता, असुर, मनुष्यों के गुणों को तृणवत् छोड़ देता है, उसे उत्तम योग सिद्धि मिलती है अथवा संसार के अनुग्रह की इच्छा हो तो वह मुनि की भाँति विचरण करे, तब वह सभी भोगों को भोग कर मुक्ति को प्राप्त करेगा।

योग योग्य स्थान आदि वर्णन

अब मैं योग के प्रयोग को कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो—

शुभ समय में उत्तम स्थान क्षेत्र आदि पर, एकान्त वन में, शान्त एवं बाधारहित, लिपी हुयी भूमि में धूप आदि से सुवासित फूल आदि को बिखेर कर वितान आदि से सुशोभित योगी पुरुष कुश, फूल, समाधि, जल, फल, फूल युक्त, अग्नि, जल तथा सूखे पत्तों के समूह में, डास, मच्छर, साँप, श्वापद, दुष्ट मृग, दुर्जन

आदि जहाँ न हो और जहाँ किसी प्रकार का भय न हो, श्मशान, चैत्य, वल्मीक, पुराना घर, चौराहा, नदी तथा नद के तट पर, समुद्र तट पर, गली के समीप, पुराने बगीचे, गोशाला आदि में, अशुभ या निन्दित स्थान में, अजीर्ण होने पर, खट्टे डकार आने पर, मल तथा मूत्र से मलिन, उल्टी या अतिसार, अधिक खा लेने पर, थकान में, अधिक चिन्तित स्थिति में, न भूख, प्यास में, अपने गुरु की सेवा में लगा हुआ भी योग न करे।

ठीक आहार-विहार में तथा अपने कर्म में लगा हुआ ठीक समय पर सोने तथा जगने वाला, सभी प्रकार के परिश्रमों से मुक्त, मृदु, रमणीय, ऊँचा, बराबर तथा पवित्र आसन हो, पद्म तथा स्वस्तिक आसनों का प्रयोग करे।

योग प्रयोग कथन

अपने गुरु पर्यन्त प्रणाम करने योग्य को क्रम से प्रणाम करे। सीधी गर्दन, सिर, छाती करके बैठे और आँखें अधिक बन्द न करे।

सिर कुछ झुका रहे, दाँतों को दाँतों से न कटकटाये, दाँतों के आगे जीभ को रखकर उसे स्थिर रखे। एड़ियों से अण्डकोषों तथा लिङ्ग की रक्षा करे। जाँघों के ऊपर सावधानी से तिरछी भुजा को रखकर दाहिने हाथ के पिछले भाग को बायें हाथ के ऊपर रखे।

धीरे-धीरे पीठ को उठाकर और आगे से छाती को तान कर दिशाओं की ओर न देख अपनी नासिका के अग्र भाग को देखे।

प्राणवायु के संचार को रोक कर पत्थर की भाँति स्थिर होकर अपने मन में पार्वती के साथ शिव का ध्यान करे और उन्हें हृदय कमल के बीच में मूलाधार में, नासिका के अग्र भाग में, नाभि में, कण्ठ में अथवा तालु के छिद्रों में बैठाकर ध्यान यज्ञ से पूजे।

अथवा दोनों भौंहों के बीच में, ललाट में, मूर्धा में उनके दिव्य आसन की यथोचित्त कल्पना करके वहाँ आवरण युक्त अथवा आवरण रहित द्विदल, षोडशार, द्वादशार, दशार, षडस्त्र या चतुरस्त्र में शिव का स्मरण करे।

भौंहों के बीच में दो पत्र वाला कमल के समान उज्ज्वल कमल बनाये। भौंहों के बीच में स्थित कमल के उत्तर तथा दक्षिण बिजली के समान वर्ण वाले पत्तों के अन्त में षोडशार के पत्तों में सोलह स्वरों को स्थापित करे और कमल कन्द की जड़ से पूर्व आदि क्रम से क से ट तक वर्णों को स्थापित करे।

सूर्यवर्ण कमल के चारों ओर उन वर्णों का हृदय में ध्यान करे। उन अक्षरों को कमल पत्र समझें। नाभि के ऊपर की ओर गाय के दूध के समान ड से फ तक

इन्हें क्रम से रखे, नीचे की ओर ये कमल के छ: पत्ते हैं। धुआँ रहित अंगार के वर्ण वाले ब से ल तक वर्ण उसमें हैं। मूलाधार कमल सुवर्ण के सामन कांतियुक्त है।

उसमें व से स तक वर्ण पर्णमय है। इन कमलों में जहाँ मन रम जाये, वहीं धैर्यपूर्वक शिव-शिवा का चिन्तन करे।

अंगुष्ठ मात्र निर्मल, चारों ओर से प्रकाशमान दीपक की लौ के सदृश शुद्ध, अपनी शक्ति से सुशोभित चन्द्र रेखा के समान आकार वाले अथवा तारा के सदृश, मिवार, शूक अथवा कमलनाल के रेशा जैसे कदम्ब के फल जैसा, ओस के बूँद जैसा अथवा पृथिवी तत्त्व जैसा ध्यान करने वाला उसे समझता है।

अत: उन तत्त्वों के स्वामियों के स्थूल मूर्तियों का चिन्तन करे। ब्रह्मा, भव से लेकर सदाशिव पर्यन्त शिवजी की आठ मूर्तियाँ हैं। शिवजी की स्थूल मूर्तियों का निर्देश शिवपुराण में है।

मुनिवरों ने उन्हें घोर, मिश्र तथा प्रशान्त संज्ञायें दी हैं। फल की अभिलाषा से युक्त (अथवा-रहित) पुरुषों को इनका ध्यान करना चाहिए—ऐसा चिन्तन कुशल पुरुषों ने कहा है।

घोरसंज्ञक मूर्तियों का चिन्तन करने से पापों का नाश होता है। मिश्रसंज्ञक मूर्तियों का ध्यान करने से देर में और सौम्य (प्रशान्त) मूर्तियों का ध्यान करने से न शीघ्र और न देर में सौम्य का ध्यान करने से विशेष करके शान्ति, प्रज्ञा तथा मुक्ति मिलती है तथा सभी सिद्धियाँ इसके चिन्तन से प्राप्त हो जाती है, इसमें संदेह नहीं है।

नैमित्तिक कर्म पालन

रावण ने कहा—अब मैं शिवाश्रम का सेवन करने वालों के लिये शिवशास्त्र के अनुसार नैमित्तिक विधि को क्रम से कहता हूँ। सभी महीनों के दोनों पक्षों में अष्टमी, चतुर्दशी तथा पर्व दिन में शुभ अयन में, समान रात-दिन वाले मास में विशेषकर प्रणव में यथाशक्ति विशेष पूजा करनी चाहिए।

प्रत्येक मास में यथोचित ब्रह्मकूर्च (पंचगव्य) को बनाकर व्रती पुरुष उससे शिव जी को स्नान कराये, शेष पंचगव्य को पी ले। ब्रह्महत्या आदि महान् दोषों की निवृत्ति पंचगव्य को पीने से हो जाती है, कुछ शेष नहीं रहते।

पौष मास के पुष्य नक्षत्र में शिवजी का निराजन करे। माघ महीने में मघा नक्षत्र के दिन घी और कम्बल का दान करे। फाल्गुन में उत्तराफाल्गुनी युक्त पूर्णमासी को महोत्सव करे।

चैत्र में चित्रा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा को यथाविधि दोलोत्सव करे। वैशाख में

विशाखा युक्त पूर्णिमा को फूलों का शिव मन्दिर बनाये। ज्येष्ठ में मूल नक्षत्र के दिन शीतल जल युक्त घड़ा का दान करे।

आषाढ़ मास के उत्तराषाढा नक्षत्र में पवित्रारोपण करे। श्रावण में पूर्वोक्त और मण्डलों की स्थापना करे। श्रवण नक्षत्र में, उसके बाद भाद्रपद मास की पूर्णिमा को प्रोक्षण कर पूर्वाषाढा नक्षत्र के दिन जल की क्रीड़ा करे।

अश्विनी पूर्णिमा के दिन खीर तथा नये चावलों का भात दे, शतभिषा नक्षत्र में खीर से हवन करे। कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन कृत्तिका नक्षत्र में हजार दीप जलाये। मार्गशीर्ष में आर्द्रा नक्षत्र के दिन घी से शिव जी को स्नान कराये।

इन समयों में उक्त कर्मों को करने में असमर्थता हो तो उत्सव ही करे। सभा, महापूजा या अधिक पूजन करे। प्रशस्त कर्मों में कल्याण की पुनरावृत्ति होने पर, मन से दुखी होने पर, दुराचार में, दुस्वप्न में, दुष्ट दर्शन में, उत्पात दर्शन में, अन्य अशुभ में, प्रबल रोग में होने पर स्नान, पूजा, जप, ध्यान, होम आदि क्रियायें करे।

कारण के अनुरूप उक्त कर्मों को पूरश्चरणपूर्वक शिवाग्नि का पुन: स्थापना करे। जो इस प्रकार प्रतिदिन शिवधर्म में तत्पर रहता है, उसे शिवजी एक जन्म में ही मुक्ति दे देते हैं।

जो नित्य नैमित्तिक कर्मों को इस प्रकार करता है, वह श्रीकण्ठ नाथ के दिव्य आदि स्थान को जाता है। वह मनुष्य वहाँ सौ करोड़ कल्पों तक महाभोगों को भोग कर कालान्तर में वहाँ से छुटकर उमा, कार्त्तिकेय के लोकों को पाकर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के लोकों में विशेष रूप से चिरकाल तक रहकर तथा वहाँ के सुख भोगों को भोगकर ऊपर के लोकों में गया हुआ वह उन पाँच स्थानों से छूटकर श्रीकण्ठ देव से ज्ञान पाकर उसके कारण शिवपुर को जाता है।

पूर्वोक्त अनुष्ठानों को आधा ही करने से या दो बार में—ऐसा करने से बाद में ज्ञान पाकर शिव सायुज्य को प्राप्त होता है। जो पुरुष आधे से भी आधा करता है वह मरने के बाद ब्रह्माण्ड अथवा ऊपर के अव्यक्त भुवनों को पारकर गिरिजापति के पौरुष रुद्र स्थान को प्राप्त होकर अनेक हजार युगों तक अनेक प्रकार के भोगों को भोगकर पुण्यों के क्षीण होने पर भूलोक में उच्च कुल में पैदा होता है।

पूर्व संस्कारों के कारण वहाँ भी तेजस्वी होता है। वह सामान्य प्राणियों के धर्मों को छोड़कर शिवधर्म में तत्पर होता है। उस धर्म की श्रेष्ठता से वह शिव का ध्यान कर शिवपुर को जाता है। फिर अनेक भोगों को भोगकर विद्येश्वरपद को पा जाता है।

वहाँ क्रमश: विद्येश्वरों के अनेक भोगों को भोगकर ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर

एक बार वह फिर लौटता है। फिर वह उत्तम भक्ति को पाकर उसी से शिवज्ञान को पाकर शिव साधर्म्य को प्राप्त कर लेता है।

जिससे वह फिर संसार में नहीं आता; और जो विषयासक्त की भाँति शिवभक्त है, वह शिव धर्म को करे या न करे वह मुमुक्षु एक, दो, तीन बार जन्म लेकर मुक्त हो जाता है।

वह शिवधर्म का अधिकारी चक्र की भाँति अनेक योनियों में घूमता नहीं। इसलिये किसी भी प्रकार शिव की शरण में जाना चाहिए। यदि कल्याण के लिये उद्यम करना हो तो शिवधर्म में बुद्धि लगाये।

हम किसी को किसी बन्धन में नहीं डालते। इसमें कोई बन्धन या हठ नहीं है, क्योंकि यह हमारे स्वभाव विरुद्ध है। दूसरे को अपने पूर्ण संस्कारों की महानता से अच्छा लगता हो वही करें।

संसार का कारण जिनकों उस स्थान पर खड़ा करने में समर्थ नहीं है यह प्रकृति के अनुकूल है। इस प्रकार भली-भाँति विचार करे। यदि अपना भला चाहते हैं तो शिवधर्म पर अपना अधिकार करे।

काम्य कर्म का फल

मेघनाद ने कहा—हे पिजाश्री ! मैंने आपके मुख से वेदों के समान प्रामाणिक वचन सुने। जो शिवभक्तों के लिये आपने नित्य नैमित्तिक विधि कही है।

अब मैं शिवधर्माकारियों का जो काम्य कर्म है, उसे सुनना चाहता हूँ, आप उसे कहे।

रावण ने कहा—इस लोक का और कुछ उस लोक का फल है। यह यहाँ और वहाँ का कर्म पाँच प्रकार का है। कुछ लौकिक कर्म हैं और कुछ तपोमय कर्म हैं, कुछ जप ध्यानमय कर्म है तथा कुछ सर्वमय हैं।

होम, दान, अर्चन क्रम से क्रियामय कर्म भी हैं। ये कर्म शक्तिमानों के ही सफल होते हैं, दूसरे के नही। अत: आज्ञापालक ब्राह्मण काम्य कर्मों को सदा करता रहे। अब मैं दोनों लोकों में फलप्रद काम्य कर्मों को कहता हूँ। शिव या महेश्वर भक्तों को भीतर बाहर के क्रम से इन कर्मों को करना चाहिए। क्योंकि शिवमहेश्वर में कोई भेद नहीं है।

इसलिये शिव या महेश्वर के भक्तों में कोई भेद नहीं है। शिव के आश्रम में रहने वाले ज्ञानयज्ञ रत मनुष्य कर्मयज्ञ के करने वाले पृथ्वी में माहेश्वर कहे जाते है। इसलिये शैव भीतरी और माहेश्वर बाहरी कर्म करते हैं।

आगे कहे जाने वाले कर्म के प्रयोग में कोई भेद नहीं है। गन्ध, वर्ण, रस

आदि से भूमि की यथा विधि परीक्षा कर ले। मन के अनुसार सुन्दर, वीतान, तान कर, दर्पण के समान समतल भूमि को लीपकर शास्त्रीय दृष्टि से पूर्व की ओर एक या दो हाथ का मण्डल बनाये, उस पर सुन्दर कमल लिखे, जो अष्टदल तथा कर्णिका युक्त हो, उसे रत्न, स्वर्ण आदि के चूर्ण से सजाये।

उसे पाँच आवर्णों से युक्त कर सुशोभित करें। उसके दलों में सिद्धियों और केसरों में शक्तियों की कल्पना करे। वामदेव आदि आठ रुद्रों को पूर्व आदि दलों में क्रमशः स्थापित करे तथा कर्णिका में वैराग्य तथा बीजों में नौ शक्तियों की कल्पना करे।

कन्द में शिवात्मक धर्म, नाल में शिवाश्रित ज्ञान, कर्णिका के ऊपर अग्नि, सूर्य तथा चन्द्र मण्डल बनाये। उसके बाद शिव विद्यात्मक तीन तत्त्व तथा सब आसनों के ऊपर सुखद रंग-बिरंगे फूलों से तथा पंचावरण से युक्त पार्वती सहित शुद्ध स्फटिक के सदृश, प्रसन्न, शीतल कान्ति वाले देव की पूजा करे।

बिजली के कंकण के समान जटामुकुट से सुशोभित, बाघम्बर धारण किये हुये मन्द हास्य युक्त मुख कमल वाले लाल कमल जैसे जिनके पैर, हाथ, ओठ हैं, सब लक्षणों से युक्त, सभी आभूषणों से सुशोभित दिव्य आयुधों को धारण किये हुये, दिव्य गन्धों का अनुलेपन किये हुये, पाँच मुख, दस हाथ, शिखा में चन्द्रकला युक्त इनका पूर्वमुख सौम्य बालसूर्य के समान कान्ति वाला, तीन नेत्र कमल के समान मनोहर, सिर पर बालचन्द्रमा दाहिना नीले मेघ के समान कान्ति वाला, भृकुटि कुटिल तथा घोर, तीन आँखें लाल असह्य भयंकर दाढे, फड़कता हुआ होठ, उत्तर मुख मूंगे के समान तथा नीले बालों से सुशोभित विलास युक्त तीन नेत्र, चन्द्रमा के आभूषण से युक्त शेखर, पश्चिम मुख पूर्ण चन्द्र के समान तीन नेत्रों से शोभित चन्द्रकला धारण किये, सौम्यमूर्ति, मन्द हास्य से मनोहर, पाँचवाँ मुख स्फटिक मणि के समान चन्द्र रेखा से उज्जवल अत्यन्त सौम्य, खुले हुए तीन नेत्रों से शोभित, दाहिने हाथ में शूल, परशु, वज्र, खड्ग और अग्नि से उज्जवल बायें हाथ में नाग, बाण, घण्टा, पाश, अंकुश, निवृत्त कला से जानु अप्रतिष्ठा काल से नाभि सम्बद्ध कण्ठ तप विद्या कला और ललाट तक शान्ताकला से प्रतिष्ठित है।

उसके ऊपर शान्त्यतीत पराकला से युक्त है। पंचाध्वव्यापी साक्षात् कलापंचकस्वरूप, ईशान मुकुट देव जो पुरातन पुरुष है। अघोर जिनका हृदय है, वामदेव महेश्वर जिनके गुह्य हैं और सद्योजात जिनके चरण है वह अड़तीस कलामय मूर्ति हैं। ये ईशान मातृकामय तथा पंचब्रह्ममय हैं।

ये ॐकारमय तथा हंस शक्ति से युक्त हैं। जो इच्छात्मिका शक्ति से

कमण्डलों में आरूढ हैं। जो ज्ञानाख्या कला से दक्षिण की ओर क्रियाख्या कला से बायीं ओर विराजमान हैं। सदाशिव साक्षात् तत्वत्रय हैं अथवा वे विद्यामूर्ति हैं।

मूर्ति मूल संकल्प करके क्रमश: उनका संकलन करें। मूल विद्या से यथाविधि अर्घ्यदान पर्यन्त पूजा कर परम शक्ति के साथ साक्षात् मूर्तिमान शिव का आवाहन करके जो सत्-असत् विवेक से रहित, उन परमेश्वर का पंचोपचार से पूजन कर षडङ्गोक्त प्रणव पूर्वक वेद मन्त्रों से मातृकाओं के साथ क्रमश: पूजन करे।

शान्ति मन्त्रों से तथा और वेद मन्त्रों से पूर्णरूप से अथवा केवल शिवमन्त्रों से महादेव का पूजन करे। पाद्य से लेकर मुखवास पर्यन्त विसर्जन के विना करे। यथाविधि पंचावरण पूजा को भी आरम्भ करे।

ध्यान की महिमा

रावण ने कहा—श्रीकण्ठ नाथ का स्मरण करने वालों की सभी अर्थों की सिद्धियाँ हो जाती है और वे प्रसिद्ध हो जाते हैं—ऐसा मानकर कुछ लोग मन की स्थिति के लिये स्थूल रूप का ध्यान करते हैं। जब स्थूल रूप में मन स्थिर हो जाय तब सूक्ष्म का ध्यान करना चाहिए।

शिव का ध्यान करने से सभी सिद्धियाँ सिद्ध हो जाती हैं। दूसरी मूर्तियों का ध्यान करने पर फिर शिव रूप का ध्यान करे। मन की स्थिरता को देखकर बार-बार उसका ध्यान करे। पहले सविषय, फिर विषय रहित ध्यान करे।

सज्जनों का मत है कि निर्विषयक ध्यान होता ही नहीं। बुद्धि की निरन्तरा का नाम ही ध्यान है। अत: निर्विषयक ध्यान केवल इस संसार में ही प्रवृत्त होता है।

इसलिये सविषयक ध्यान सूर्य की किरणों के समान आश्रय वाला है। सूक्ष्म आश्रय का नाम ही निर्विषय है। इससे अधिक परिमार्थ और कोई नहीं है। अथवा सविषय ध्यान साकार के आश्रय वाला है।

निराकार आत्मा को जानने का ही नाम निर्विषय है। वह निर्बीज हो या सबीज हो उसी को ध्यान कहते हैं।

निराकार के आश्रय से साकार आश्रय वाला होता है। अत: पहले बीज सहित साकार का ध्यान करे। अन्त में निर्विषय ध्यान करे, निर्बीज ध्यान सभी सिद्धियों को देता है।

प्राणायाम से दिव्य शान्ति आदि से यह सिद्धियाँ मिलती है—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति तथा प्रसाद। सभी आपत्तियों की शान्ति का नाम श्रम है। भीतर बाहर अन्य कार्य के नाश का नाम प्रशान्ति है। बाहर-भीतर प्रकाश का नाम दीप्ति है। बुद्धि

की स्वस्थता का नाम प्रसाद है। उसमें बाहर-भीतर के सभी अवयव कारण हैं। बुद्धि के प्रसाद से ये शीघ्र सिद्ध हो जाते हैं।

ध्याता, ध्यान, ध्येय तथा ध्यान का प्रयोजन चारों को जानकर ही ज्ञान, वैराग्य तथा शान्त चित्त ध्यान करने का इच्छुक ध्यान करे। श्रद्धावान् तथा प्रसन्नचित्त पुरुषों को सज्जनों ने ध्याता कहा है।

'ध्यान शब्द' 'ध्यै चिन्तायाम्' से बना है। इसके द्वारा बार-बार शिव का ध्यान करे।

क्षण भर श्रद्धा से किया गया परमेश्वर का ध्यान थोड़ा भी योगाभ्यास से पापों का नाश करता है। मन में किसी प्रकार की हलचल न हो इसी को ध्यान कहते हैं। इस प्रवाह रूपी ध्यान का सहारा बुद्धि है।

जो ध्येय वस्तु है, वह है साम्ब सदाशिव—ऐसा विद्वानों का मत है। मुक्ति प्राप्ति के पहले अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है। शिवध्यान का यही साक्षात् प्रतिफल है। जिस ध्यान से सभी प्रकार के सुख तथा सम्पत्ति मिलती है उसे सब कुछ करना चाहिए। बिना ध्यान के ज्ञान नहीं मिलता; जो योगी नहीं है, वह ध्यान नहीं कर सकता। ध्यान और ज्ञान दोनों ही जिसके पास हैं उसने भवसागर पार कर लिया।

प्रसन्न, एकाग्रचित्त तथा समस्त उपाधियों से रहित का नाम ज्ञान है। यह ज्ञान योगी को ही प्राप्त होता है।

जब सब पाप क्षीण हो जाते हैं तब ज्ञान, ध्यान में बुद्धि लगती है। पापियों को तो ज्ञान तथा ध्यान की बात भी दुर्लभ होती है। जैसे जलती हुयी आग सूखे तथा गीले पदार्थों को जला देती है, वैसे ही ध्यान रूपी आग शुभ अशुभ कर्मों को जला देती है।

छोटा भी दीपक बहुत बड़े अन्धकार को मिटा देता है। उसी प्रकार थोड़ा भी योगाभ्यास बहुत बड़े पापों का नाश कर देता है। क्षणभर भी श्रद्धा से परमेश्वर का ध्यान करने से जो महान् कल्याण होता है, उसका कभी अन्त नहीं होता है।

ध्यान के समान कोई तीर्थ, तप तथा यज्ञ नहीं है। इसलिये परमेश्वर का सदा ध्यान करे। योगी पुरुष आत्मविश्वास के कारण जलपूर्ण तीर्थों तथा मिट्टी, पत्थर की मूर्तियों की शरण में नहीं जाते।

योगियों का सूक्ष्म शरीर प्रत्यक्ष शिवमय होता है। सामान्य पुरषों के लिये वह मिट्टी काष्ठ आदि का बनाया जाता है, जिस प्रकार राजा को भीतरी सेवक प्रिय होते हैं; न कि बाहरी। वैसे ही अन्तःध्यान में तत्पर भक्त शिवजी को प्रिय होते हैं न

कि बाहरी। जैसे राजभवन में बाहरी कर्मचारी अधिक लाभ के भागी नहीं होते, वैसे ही यहाँ के सेवक भी हैं।

यदि ज्ञानयोग के लिये तत्पर भक्त मर जाते हैं, तो वे योग का प्रयत्न करने मात्र से रुद्र लोक से बाहर जाते हैं। वहाँ सुख भोग कर वह फिर योगियों के कुल में जन्म लेता है। फिर वह ज्ञान योग को पाकर भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।

शिवयोग को जानने का इच्छुक पुरुष भी जिस शुभ गति को प्राप्त होता है, उस गति को महायज्ञ करने वाला भी नहीं पा सकता।

वेदों के ज्ञाता करोड़ ब्राह्मणों को पूजने का जो फल होता है, शिवयोगी को भिक्षा देने मात्र से वह फल मिल जाता है। यज्ञ, अग्निहोत्र, दान, तीर्थों में होम करने का जो फल होता है, वह फल शिव योगी को अन्न दान करने के समान ही है।

जो मूर्ख शिवयोगियों की निन्दा करते हैं, वह अन्य श्रोताओं के साथ प्रलय पर्यन्त नरक-यातना भोगते हैं। श्रोता होकर जो वक्ता से शिव योगियों की निन्दा सुनता है वह श्रोता महान् लोगों द्वारा दण्डनीय होता है और जो सदैव भक्ति से शिवयोगियों की भक्ति से सेवा करते हैं, वे महाभोगों को प्राप्त कर अन्त में शिवयोगी होते हैं।

इसलिये सुख भोग के इच्छुक मनुष्यों को चाहिए कि वे शिव योगियों का पूजन करे। घर, अन्न, पान, शैय्या, गद्दा, रजाई आदि देकर उनकी सहायता करे। योग धर्म ठोस है, वह पाप मुद्गरों से नष्ट नहीं किया जा सकता।

जैसे चावलों से वज्र नहीं टूटता, वैसे ही पाप से योगी नष्ट नहीं होते। वे पाप समूह से वैसे लिप्त होते हैं, जैसे कमल पत्र जल से।

जिस देश में शिव योगी मुनि निवास करता है, उसके कारण वह देश भी पवित्र हो जाता है। उसके पवित्र होने में क्या संदेह है; इसलिये बुद्धिमान् अन्य सभी कार्यों को छोड़कर सभी दुःखों का नाश करने के लिये शिव योग का अभ्यास करे।

योगफल की सिद्धि हो जाने पर योगी पुरुष संसार के हित की इच्छा से इच्छानुसार भोगों का भोग कर विचरण करे या साधारण व्यवहार करे अथवा विषय सम्बन्धी सुखों को तुच्छ समझकर इन्हें छोड़कर विरक्त होकर कर्मों को छोड़ दे।

जो योगी मनुष्य अरिष्ट लक्षणों को देखकर 'मृत्यु समीप आ गयी है' ऐसा जानकर योगाभ्यास में तत्पर हो कर शिवक्षेत्र का आश्रय ले। धैर्यवान् पुरुष वहाँ रहते हुये भी रोग आदि के बिना स्वयं भी प्राणों का त्याग कर दे।

उपवास करके अथवा अपने अंगों का शिवाग्नि में हवन करके अथवा तीर्थों में डुबकी लगाकर अपने शरीर को छोड़ दे। शिव शास्त्रोक्त विधि से जो अपने प्राणों को छोड़ता है, वह तत्काल मुक्त होता है, इसमें संदेह नहीं।

रोग आदि से विवश होकर जिसने शिवक्षेत्र का आश्रय लिया है और वह मर गया हो तो वह नि:संदेह मुक्त हो जाता है, जैसे उपवास आदि से हुयी मृत्यु को श्रेष्ठ कहा गया है। अत: शास्त्र पर विश्वास करने वाले को मन से इस क्रिया को करना चाहिए।

शिवनिन्दक का वध करके जो स्वयं भी घायल होकर जो इन न छोड़ने योग्य प्राणों को भी छोड़ता है, उसका पुर्नजन्म नहीं होता। शिव निन्दा करने वाले को मारने में असमर्थ जो स्वयं मर जाता है, वह इक्कीस कुलों के साथ स्वंय मुक्त हो जाता है।

जो शिवजी के लिये या शिवभक्त के लिये प्राणों को छोड़ता है, उसके समान कोई दूसरा पुरुष मुक्ति का अधिकारी नहीं है। उसकी संसार मण्डल से शीघ्र मुक्ति हो जाती है। इनमें से किसी एक उपाय का सहारा ले।

विधिवत् षडध्वशुद्धि किया हुआ पुरुष यदि मर जाता है, तो पशुओं की भाँति उसका क्रियाकर्म न करे। उसके पुत्र पौत्रादि को अशौच नहीं लगता। उसके शरीर को भूमि में गाड़ दे या पवित्र अग्नि में उसे जला दे या पवित्र जल में बहा दे। अथवा मिट्टी, लकड़ी की भाँति फेंक दे।

यदि इसके क्रिया कर्म करने की इच्छा हो, तो मंगल करे। शिवभक्तों को भोजन कराये। शिवभक्त सन्तान उसके धन की उत्तराधिकारी हो सकती है। ऐसी सन्तान न हो तो उस सम्पत्ति को शिव के लिये दे दे। उस धन सम्पत्ति को मूर्ख सन्तान को न दे।

।। इस प्रकार रावणसंहितान्तर्गत सदाशिव उपासना पञ्चम परिच्छेद सरल, सुबोध हिन्दी भाषा में मैथिल आचार्य शिवकान्त झा द्वारा सुसम्पन्नता को प्राप्त हुआ।।५।।

।। शुभमिति ।।

□□□

श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भण्डार

कचौड़ीगली, वाराणसी २२१००१

नमस्कार

PDF CREAT BY

RAJKUMAR RAMJI SONI

SHIV-VIHAR COLONY
(DEVNAGERI) RAIPUR (C.G)
RAIPURA
MO:- 97544-23544
81036-97154

Thank for Reading All